॥ श्रीः ॥

महाकवि-श्रीमदम्बिकादत्तव्यास-प्रणीतः

# शिवराज-विजयः

## ऐतिहासिक उपन्यासः

(द्वादशनिश्वासात्मकः, सम्पूर्णः)

—— 1988-89

व्याकरण-साहित्य-मीमांसाद्याचार्येण
( स्व० ) पं० श्रीरामजीपाण्डेयशास्त्रिणा
विरचितया वैजयन्त्या

काशिकहिन्दुविश्वविद्यालयीययोः
संस्कृत-पालिविभागयोः भारतीयदर्शन-धर्म प्राध्यापकाभ्याम्
श्रीकेदारनाथमिश्र-श्री श्रीनारायणमिश्राभ्याम्
राष्ट्रभाषानुवादेन च विभूषितः

प्रकाशकः—
प्रणेतृ-पौत्रः स्वर्गीय-श्रीराधाकुमार-व्यास-तनयः
श्रीकृष्णकुमारव्यासः

प्राप्तिस्थानम्–
व्यास-पुस्तकालयः,
डी १६/१४ मानमन्दिरम्, काशी ।

---


दशमं संस्करणम्
१९६९

---

प ञ्च द श रू प्य का णि

मुद्रक.—
विनायक प्रस,
साक्षीविनायक, वाराणसी

# पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य

विरचित ग्रन्थ*

| ग्रन्थ नाम | आरम्भ समय | समाप्ति समय | मुद्रण समय | मुद्रण यन्त्र नाम | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|
| १ प्रस्तारदीपक | १६२५ | | | | अपूर्ण हिन्दी भाषा |
| २ गणेशशतक | १६२६ | १६२७ | | | संस्कृत |
| ३ शिवविवाह | १६२७ | | | | अपूर्ण |
| ४ सांख्यसागरसुधा | १६३४ | १६३४ | १६५२ | व्यासयन्त्रालय भागलपुर | वात्रूमहावीरप्र० कृ भा टी सहित |
| ५ पातञ्जलप्रतिबिम्ब | १६३४ | १६३७ | १६४८ | व्यास यन्त्रालय | संस्कृत |
| ६ कुण्डलीदर्पण | १६३४ | १६३५ | | | संस्कृत, अमुद्रित |
| ७ सामवत नाटक | १६३४ | १६३७ | १६४५ | खड्गविलास बाँकीपुर | संस्कृत |
| ८ इतिहास संक्षेप | | | | | |
| ९ रेखागणित | १६३४ | | | | संस्कृत, अपूर्ण |
| (श्लोकबद्ध) १ अ० | १६३५ | १९३५ | | | संस्कृत, अमुद्रित |
| १० ललिता नाटिका | १६३५ | १६३५ | १६४० | हरिप्रकाश काशी | ब्रजभाषा |
| ११ रत्नपुराण | १६३५ | | | | संस्कृत, अपूर्ण |
| १२ आनन्द मञ्जरी | १६३६ | १६३६ | | | ब्रजभाषा(गीत) |
| १३ चिकित्सा चमत्कार | १६३६ | | | | अपूर्ण (मधुबनी में दग्ध होगया) |
| १४ अबोधनिवारण | १६३७ | १६३७ | १६३७ | हरिप्रकाश काशी | हिन्दीभाषा(तीन चार छप चुका) |
| १५ गुप्ताशुद्धि प्रदर्शन | १६२७ | १६३७ | १६३७ | ,, | संस्कृत (दो बर छपा) |

*'बिहारी बिहार' से उद्धृत।

| | ग्रन्थ नाम | आरम्भ समय | समाप्ति समय | मुद्रण समय | मुद्रण यन्त्र नाम | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १६ | ताशकौतुकपचीसी | १९३७ | १९३७ | १९३७ | काशी | हिन्दी भाषा |
| १७ | समस्यापूर्ति सर्वस्व | १९३७ | | | | संस्कृत अपूर्ण |
| १८ | रसीली कजरी | १९३९ | १९३९ | १९३९ | ,, | हिन्दी भाषा |
| १९ | द्रव्यस्तोत्र | १९३९ | १९३९ | १९३९ | खड्गविलास (बाँकीपुर) | संस्कृत |
| २० | चतुरग चातुरी | १९३९ | १९३९ | १९४१ | चन्द्रप्रभा काशी | हिन्दी भाषा |
| २१ | गोसकट नाटक | १९३९ | १९३९ | १९४१ | खड्गविलास | ,, |
| २२ | महाताश कौतुक पचासा | १९३९ | १९३९ | १९३९ | चद्रप्रभा, काशी | ,, |
| २३ | तर्कसग्रह भा टी | १९४० | १९४० | १९४१ | हरिप्रकाश | ,, |
| २४ | साख्य तरगिणी | १९४० | १९४८ | १९४८ | खड्गवि (बाँ पु) | ,, |
| २५ | क्षेत्रकौशल | १९४० | १९४० | १९४१ | च प्र काशी | ,, |
| २६ | पडित प्रपच | १९४० | | | | ,, |
| २७ | आश्चर्य्यवृत्तान्त | १९४१ | १९४५ | १९५० | व्यासयन्त्रालय भागलपुर | ,, |
| २८ | छन्दः प्रबन्ध | १९४१ | | | | अपूर्ण |
| २९ | रेखागणित भाषा | १९४२ | १९४२ | १९४३ | खड्गविलास | हिन्दी भाषा |
| ३० | धर्म्म की धूम | १९४२ | १९४२ | १९४२ | ,, | ब्रजभाषा |
| ३१ | दयानन्दमत मूलोच्छेद | १९४२ | १९४२ | १९४२ | ,, | हिन्दी भाषा |
| ३२ | दु खद्रुम कुठार | १९४२ | १९४३ | १९४३ | हरि प्रकाश | संस्कृत |
| ३३ | पावस पचासा | १९४२ | १९४२ | १९४२ | खड्गविलास | ब्रजभाषा |
| ३४ | कलियुग औ घी | १९४३ | १९४३ | १९४३ | नारायण प्रेस मुजफ्फरपुर | हिन्दी भाषा |

| ग्रन्थ नाम | आरम्भ समय | समाप्ति समय | मुद्रण समय | मुद्रण यन्त्र नाम | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|
| ३५ दोषग्राही ओ गुणग्राही | १९४३ | | | | अपूर्ण |
| ३६ उपदेशलता | १९४३ | १९४३ | १९४३ | खड्ग विलास | हिन्दी |
| ३७ सुकवि सतसई | १९४३ | १९४३ | १९४४ | नारायणप्रेस | व्रजभाषा |
| ३८ मानसप्रशंसा | १९४३ | १९४४ | १९४४ | खड्ग विलास | व्रजभाषा (रामायणकी भूमिका में छपी ) |
| ३९ आर्य्यभाषा सूत्रधार | १९४३ | | | | सूत्रवृत्ति संस्कृत, अपूर्ण |
| ४० भाषाभाष्य | १९४३ | | | | आर्य्यभाषा सूत्र धार पर, अपूर्ण |
| ४१ पुष्पवर्षा | १९४४ | १९४४ | १९४४ | नारायण | व्रजभाषा |
| ४२ भारतसौभाग्य | १९४४ | १९४४ | १९४४ | ख वि | हि भा नाटक |
| ४३ बिहारी बिहार | १९४४ | १९५२ | १९५४ | भारतजीवन | व्रजभाषा |
| ४४ रत्नाष्टक | १९४४ | १९४४ | १९४४ | च० प्र० | संस्कृत |
| ४५ मन की उमंग | १९४४ | १९४४ | १९४४ | नारायण | हिं तथा व्र भा |
| ४६ कथा कुसुम | १९४४ | १९४४ | १९४४ | ख वि | संस्कृत |
| ४७ पुष्पोपहार | १९४४ | १९४४ | १९४४ | ,, | सं तथा व्र भा |
| ४८ मूर्त्तिपूजा | १९४४ | १९४७ | १९४८ | व्यासयन्त्रालय | हिन्दी |
| ४९ संस्कृताभ्यास पुस्तकम् | १९४५ | १९४५ | १९४५ | च प्र काशी | सं अंग्रेजी |
| ५० कथाकुसुम कलिका | १९४५ | १९४५ | १९४५ | व्यासयन्त्रालय | हिन्दीभाषा |
| ५१ प्राकृतप्रवेशिका | १९४५ | १९४५ | | | अमुद्रित सं० |
| ५२ संस्कृतसंजीवन | १९४५ | १९४५ | १९४५ | च० प्र० | हिं० भाषा |
| ५३ प्राकृतगूढ शब्दकोश | १९४५ | १९४५ | १९४५ | ख० वि० | सामवत के अंत में |
| ५४ अनुष्टुपूल क्षणोद्धार | १९४५ | १९४५ | | | अमुद्रित० सं० |
| ५५ शिवराजविजय | १९४५ | १९५० | | | अमुद्रित सं |
| ५६ बालव्याकरण | १९४६ | १९४६ | १९४६ | च० प्र० | सं० अंग्रेजी |

| ग्रन्थ नाम | आरम्भ समय | समाप्ति समय | मुद्रण समय | मुद्रण यन्त्र नाम | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|
| ५७ हो हो होरी | १९४६ | १९४६ | १९४६ | व्यास यन्त्रा | ब्र. भाषा |
| ५८ झूलन झमक | १९४८ | १९४८ | १९४८ | व्यास यन्त्रा | ब्र. भाषा |
| ५९ स्वर्गसभा | १९४८ | १९४८ | १९४८ | व्यास यन्त्रा | ब्र० भा० |
| ६० विभक्तिविभाग | १९४९ | १९४९ | १९४९ | ,, | हिन्दी |
| ६१ पढे पढे पत्थर | | | | | |
| ६२ सहस्रनाम | १९४९ | | | | अपूर्ण |
| रामायण | १९५० | १९५० | १९५० | ,, ,, | संस्कृत |
| ६३ गद्यकाव्य मी० | १९५० | १९५० | १९५० | ,, ,, | संस्कृत |
| ६४ मरहट्ठा नाटक | १९५० | | | | अपूर्ण. हिं भा |
| ६५ साहित्यनवनीत | १९५० | १९५० | १९५० | औतयन्त्रालय | हिन्दी |
| ६६ वर्ण व्यवस्था | १९५० | १९५२ | | | हिन्दी, अमुद्रित |
| ६७ बिहारी चरित | १९५० | १९५४ | १९५४ | भारतजीवन | बिहारी विहार के आरंभ में |
| ६८ आश्रमधर्म निरूपण | १९५० | १९५२ | | | अमुद्रित |
| ६९ अवतार कारिका | १९५४ | १९५४ | १९५४ | व्यास यन्त्रा | अवतार मीमांसा के अंत में, स० |
| ७० अवतार मी० | १९५१ | १९५१ | १९५४ | व्या० य० | हिन्दी |
| ७१ विहारीव्याख्या कारचरितावली | १९५१ | १९५४ | १९५४ | भारतजीवन | बिहारी बिहार की भूमिकामें |
| ७२ पश्चिम यात्रा | १९५१ | | | | अपूर्ण |
| ७३ श्यामिचरित | १९५१ | १९५२ | | | अमु ब्र०भा० |
| ७४ शीघ्रलेख प्रणाली | १९५२ | १९५२ | | | ,, हिं० भाषा |
| ७५ गद्यकाव्य मीमांसा भा. | १९५३ | १९५३ | १९५४ | राजराजेश्वरी | हिन्दीभाषा |
| ७६ घनश्याम वि. | १९५३ | | | | अपूर्ण ब्र. भा |
| ७७ रांची यात्रा | १९५४ | | | | अपूर्ण, हिं भा |
| ७८ निज वृत्तान्त | १९५४ | १९५४ | १९५४ | | हिन्दी भाषा |

सविशेषं साक्षात्कृत्वा पीयूष-पूर-पूर्णैरिव दृक्पातैर्ज्योतयन्ती पारिजात-कुसुम-वर्षिभिरिव वचनैरुपदिशन्ती जननी सरस्वती समाराधितेव, मयः परनिर्वृतिश्च समासादितेव। भवभूतिजगन्नाथादीनां राजमान्यानां कवि-मण्डल-चक्रवर्तिनान्तु द्वेषविशेषैर्वा स्वग्रन्थ-मार्मिकजनालाभेन वा कारणान्तरकलापैर्वा महानेव शोक-सद्भाव आसीत "कोऽस्मद्ग्रन्थानवलोकयिष्यति ? को वाऽस्माकं गूढ-तात्पर्यं भोत्स्यति ?" इति चिन्ता-सन्तान-वितान-झञ्झावातोद्धूत-संशय-घनघनाडम्बर एव तथा समरीरमीद् हृदयाकाशम्, यथा ध्रुवं सद्यः परनिर्वृतिरूप-चन्द्रिका-प्रसारेणापि न रञ्जितमेव तदन्तः-करणकुमुद-वनम्।

तथा च तैरेवोक्तम्—

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥"

"विद्वांसो वसुधातले परवचःश्लाघासु वाचंयमा
भूपालाः कमलाविलासमदिरोन्मीलन्मदाघूर्णिताः।
आस्ये धास्यति कस्य लास्यमधुना धन्यस्य कामालस-
स्वर्वामाधर-माधुरीं विधुरयन् वाचां विलासो मम ॥"

अहन्तु तादृक्षाणां महाकवीनां चरण-रजो-विमर्श-भाजनमपि तदपेक्षयाऽधिकं भाग्यवत्तरोऽस्मीति निश्चिनोमि, यतो मद्ग्रन्थ-मार्मिकस्तु मिथिला-मही-महेन्द्रः, भारत-साम्राज्य-व्यवस्थापक-समाज-संजीवनः, महामान्यः, वदान्यः, धन्य-धन्यः, विविध-

विरुदावली-विराजमानः, राजमानोन्नतः, नतोन्नतिदायकः, महाराजश्रीरमेश्वरसिंहवीरवर एवास्ति। भाचन्ति च परश्शता वाराणस्यादि-पण्डित-मण्डल-मण्डना रसास्वादानुकूल-वासना वासितान्तःकरणा विबुध-जनाः।

सोऽयं स्वलेखनी-कण्डूमुपशमयितुं लिखितः लेखप्रकाण्डो यदि केषाञ्चित् पण्डित-प्रकाण्डानां कर्ण-कण्डूं खण्डयेत्; तत् कृतकृत्यः सम्पत्स्येय। ये तु पुरोभागिनो निर्गीर्यापि प्रबन्धममुं तुण्ड-मुण्ड-गण्ड-कण्डूयनैः, ताण्डव-करण्डीकृत-भ्रूभङ्गैश्चास्मानास्माकांश्च हासयिष्यन्ति; तेऽप्यसद्धय-प्रणति-पात्राण्येवास्माकम्। ये तु जोषं जोषमालोक्यापि काव्यानि, समासाद्यापि च तोषम्, सरोष-मुज्जृम्भिताभिर्जाठरज्वालाभिरेव तं जारयन्ति, जारयन्ति ते भाव्णोऽपि लौहमपि विषमपि दाधीचास्थीन्यपि चेति विलक्षण-कुक्षयस्ते न कस्य नमस्याः?

अम्बिकादत्तव्यासः।

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचितः

# शिवराजविजयः

## प्रथमो विरामः

'विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितञ्जगत्"

( भागवतम् १०।१।२५ )

'हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते"

( भागवतम् १०।७।३१ )।

---

### शिवराज-विजय-वैजयन्ती

वागीश्वर्यै नमः।

शिवाङ्के खेलन्ती शिवशिरसि गङ्गालहरिकां
समुद्यद्गम्भीरध्वनिभरसमुद्दीपितमदाम्।
निरीक्ष्योल्का वामा सरलहृदयाऽऽघूर्णितवती
यमासेव्यं देवं तमिह कलये चित्तनिलये॥

---

### शिवराज-विजय का हिन्दी अनुवाद

निःशेषाम्नायविद्याऽखिलमतिमतां माननीयान् नमस्यान्,
श्रीगोपीनाथपादान् गिरिधरचरणांस्तांश्चतुर्वेदिनश्च,
सश्रद्धं नौमि भक्त्याहमिह गुरुवरान् संनमत्कन्धरेण,
येषामेव प्रसादं सुविदितविदुषां देवताऽन्वेति वाचाम्॥१॥
गहनदर्शनशास्त्रमहोदधौ चिरनिमज्जनकौतुककारिणी।
सरससंस्कृतकाव्यसुधाम्बुधिं ममवगाहतु मेऽद्य सरस्वती॥२॥
शिवराजजयं नाम गद्यकाव्यमनूद्यते।
केदारनाथमिश्रेण छात्रेभ्यो राष्ट्रभाषया॥ ३॥

अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः । एष

तत्रभवान् कविकुलचूडामणिः सिद्धसरस्वतीकोऽम्बिकादत्तव्यासो वीररसप्रधानं गद्यकाव्यं चिकीर्षुर्महनीययशसो भारतभागधेयस्य दुर्दान्तोरगजिह्मजिह्वोत्पाटनकुशलस्य शिववीरस्य चरितचयनेनैव भारती कृतार्थयितव्येति विहितमनोरथ उपक्षिपति वेदव्यासोक्तिं श्रीमद्भागवतादुद्धृताम्-विष्णोर्मायेति । वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरात्मकं प्रपञ्चमिति विष्णुर्ब्रह्म, तस्य माया = सत्त्वप्रधाना शक्तिविशेषः । सा चैषा भगवती = समग्रषड्गुणसम्पन्ना ।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

इति प्रसिद्धो भगपदार्थः—तद्वत्त्वञ्च भगवत्त्वम् । यया = मायया । गच्छतीति जगत् स्थावरस्याप्युपलक्षणम् । सम्मोहितम् = सम्यग्रूपेण मोहितम् ।

हिंस्रः = घातुकः । खलः = दुष्टः । स्वस्यैव पापेन विहिंसितो भवति, न तु तत्र निमित्तान्तरापेक्षा । साध्नोति परकार्यमिति साधुः । तथाभूतश्च समत्वेन = विवेकवत्त्वेन । भयाद्विमुच्यते = अपगतभयो भवति । तत्रापि तस्य समत्वमेव हेतुर्न बीजान्तरापेक्षा । तदुक्तम् "न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः" इति । एतेनाऽऽत्मनिश्वासे पापिनामशोभनाः साधूनाञ्च शोभना आचाराः प्रदर्शिता भवेयुरित्युपक्षिप्तम् । सर्वञ्चेद सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्य भगवतो मायया त्रिगुणात्मिकया निबद्धेव समास्थीयत इति, काचन

---

भगवान् विष्णु की माया, जिसने सम्पूर्ण जगत् को मोह में डाल रखा है, सकल ऐश्वर्यशालिनी है। ( भागवत १०।१।२५ )

दुष्ट हिंसक अपने पाप से ही मारा गया और सज्जन अपनी समत्वबुद्धि के कारण भय से बच गया। ( भागवत १०।७।३१ )

पूर्व दिशा में भगवान् सूर्यदेव की यह लालिमा है। यह भगवान्

भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचर-चक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोक-विमोकः कोक-लोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य,

हिन्दुकन्या केनचन दुष्टेन हृता रक्षिता च सा साधुना, दुष्टनाशश्च स्वरापेनैव सवृत्त इति कथाभागश्च। विष्णुनामग्रहणेन मङ्गलमपि शिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितेतिकर्त्तव्यताकं सूचितम्।

कथाभागं प्रारभमाणो भगवदादित्यप्रकाशात्मवस्तुनिर्देशरूपमपि मङ्गलं समाचरति—अरुण एष इति। पूर्वस्यामिति—"दिशि" इति विशेष्यम्। मरीचीनां मालाऽस्यास्तीति मरीचिमाली—तस्य,सूर्यस्य। बहुव्रीहीतरसमासोपलक्षककर्मधारयपदघटितमपि "न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः" इति वचनं न सार्वत्रिकम्, 'असुब्वत्' इति भाष्यप्रयोगादिति ध्येयम्। अरुणः=ईषल्लोहितः "ज्योतिषां रविरंशुमान्" इति भगवद्विभूतिसमूहगतित्वेन भगवत्त्वं सर्वथा स्फुटम्। अथाऽऽदित्यं विशिनष्टि-एष भगवानिति। "दिनस्य" इत्यन्तं मालारूपकाऽलङ्कारो वैदर्भी रीतिः प्रसादाख्यश्च गुणः। मणिः=रत्नम्। यथा हीरकादिरन्धकारं वारयति प्रकाशयति च पदार्थसार्थं तथाऽयमपि बाह्याभ्यन्तरतमोऽपवार्य प्रकाशयति सकलानर्थानिति मणित्वेन रूपणम्। खे नभसि चरन्ति गच्छन्तीति खेचराः=भगणाः, तेषां चक्रस्य=समूहस्य, चक्रवर्ती=सम्राट्। सैन्य प्रवर्त्तयति सम्राट्, दिनाधिपोऽपि सर्वं ग्रहगणमिति रूपणम्। आखण्डलदिशः=इन्द्रसम्बन्धिन्याः प्राच्या नायिकायमानायाः। कुण्डलम्=कर्णाभरणविशेषः। वर्तुलत्वमारोपबीजम्। ब्रह्माण्डमेव भाण्डम्=सदनम्, तस्य दीपकः। प्रकाशकत्वमत्राऽऽरोपहेतुः। पुण्डरीकाणाम्=कमलानाम्, "पुण्डरीकं सिताम्भोजम्" इति विशेषग्रहणन्तु नात्र, श्वेतत्वस्याविवक्षितत्वात्, पटलस्य=समूहस्य। प्रेयान्=अतिशयेन प्रियः। कोकानाम्=

सूर्यदेव आकाशमण्डल के रत्न, नक्षत्रसमूह के सम्राट्, इन्द्र की दिशा (पूर्व) रूपी नायिका के कुण्डल, ब्रह्माण्डरूपी गृह के दीपक, कमलकुल

सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य । अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्, एष एवाङ्गीकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एतेनैव सम्पादिता युगभेदाः, एतेनैव कृताः कल्पभेदाः, एतमेवाऽऽश्रित्य भवति

---

चक्रवाकाणाम्, लोकस्य = समुदायस्य । शोकस्य विमोकः = मोक्षः । रूपकम् । कोकमिथुनानां रात्रिविरहः कविसमयख्यातः । अत्र बहुव्रीहिमदर्शनं टीकाकृतामनपेक्षितमसाम्प्रदायिकञ्च, बहुव्रीहिसमासाभिधेयस्य समारोपणादेवोपपत्तेः । रोलम्बानाम् = भ्रमराणाम्, कदम्बस्य = समूहस्य । अवलम्बः = आश्रयः । सर्वश्चासौ व्यवहारः = ऐहिकामुष्मिकलक्षणो व्यापारः, तस्य, सूत्रधारः = प्रवर्त्तयिता । दिनस्य, इनः = स्वामी । "इनः सूर्ये प्रभौ" इत्यमरः । इनपदस्य स्वामिसूर्योभयवाचित्वेऽप्यत्राद्यपर्यायत्वमेवेति ध्येयम् । अथ स्वभावोक्त्याऽलङ्करोति तमेव भगवन्तम्-अयमेवेति । अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रस्तम् । शशधरेऽपि किरणानुप्रवेशद्वारा विकासकत्वमेतदीयमेवेति भवति द्वितयजनकत्वमेवकारसार्थक्यञ्चेति विवेचनापटवः । द्वादशसु भागेषु = मेषादिमासरूपेषु । विभनक्ति = विभजते । भवति चात्र मानवं शासनम् 'अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके' इति । षण्णामृतूनाम् = वसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्तशिशिराणाम् । कारणम् = हेतुः । अयनम् = सूर्यमार्गः । युगानाम् = कृतत्रेताद्वापरकलीनाम् । भेदाः = विभागाः । एतेनैव सूर्येणैव, अन्यादेशत्वादेतनादेशः । कल्पभेदाः, षष्ठीतत्पुरुषः । कल्पश्चैक-

---

के प्रेमपात्र, चक्रवाकों का शोक दूर करने वाले, भ्रमरसमूह के आश्रय, समस्त व्यवहार के प्रवर्तक और दिन के स्वामी हैं। ये ही दिन और रात के जनक हैं, ये ही वर्ष को बारह भागों मे विभाजित करते हैं, ये ही छः ऋतुओं के कारण हैं और ये ही उत्तरायण तथा दक्षिणायन (उत्तर और दक्षिण मार्ग) का अवलम्बन करते हैं, इन्हों ने ही सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग का भेद किया है, इन्होंने ही कल्पों का विभाग किया है,

नित्यनियम-सम्पादनाय प्रयाते गौरवटौ, छात्रगण-सहकारेण प्रस्तुतासु च स्वागत-सामग्रीपु, "इत आगम्यतां सनाथ्यतामेष आश्रमः" इति सप्रणाममभिगम्य वदत्सु निखिलेषु, योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्ट-काष्ठ-पीठं भास्वानिवोदयगिरिमारुरोह, उपाविशच्च। तस्मिन् पूज्यमाने, "योगिराडुत्थित इति, आयात इति च" आकर्ण्य कर्णपरम्परया बहवो जनाः परितः स्थिताः। सुघटितं शरीरम्, सान्द्रा जटाम्, विशालान्यङ्गानि, अङ्गारप्रतिमे नयने, मधुरां गम्भीराञ्च वाचं वर्णयन्तश्चकिता इव सञ्जाताः।

देवतापूजन-स्नेहगुरुमन्त्रजपादि। नित्या ये नियमाः=सन्ध्यावन्दनादयः, तेषां सम्पादनाय। छात्रगणस्य, सहकारेण=साहाय्येन। स्वागतसामग्रीषु=उपचारद्रव्येषु। "यस्य च भावेन भावलक्षणमि"ति भावाधिकरणे सप्तमी। प्रस्तुतासु=सन्नद्धासु। सनाथ्यताम्=समलङ्क्रियताम्। निखिलेषु=समुपस्थितेषु सर्वेषु। जनेष्विति शेषः। काष्ठपीठम्=दारुनिर्मिता चतुष्पादिकाम्। "चौकी" इति हिन्दी। उदयगिरिमिव=उदयाचलमिव। आरुरोह=अधिशिश्रिये। उपाविशत्–आसितवान्। न सूर्य इवाधिश्रित्य दूर गतोऽपि तु तत्रैव स्थित इति क्रियाद्वयमुपात्तम्। उपमालङ्कारः।

सुघटितम्=यथावस्थित शोभनाङ्ग-संस्थानम्। सान्द्राम्=घनाम्। अङ्गारप्रतिमे=अङ्गारसदृशे, प्रतिमाशब्दोऽत्रोपमावाचकः, दृश्यश्च तादृशेऽर्थे "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इति वेदे, "गतः सुरान्यप्रतिमानि

करने के लिये, चले जाने पर, छात्रों के सहयोग से स्वागत सामग्री के प्रस्तुत हो जाने और, प्रणामपूर्वक सभी उपस्थित लोगों के "इधर पधारिये, इस आश्रम को सनाथ कीजिये" यह कहने पर, योगिराज आकर, उनके द्वारा निर्दिष्ट चौकी पर, उदयाचल पर सूर्य की भाँति चढ़कर बैठ गये।

उनकी पूजा हो ही रही थी कि 'योगिराज समाधि से जग गये हैं और यहाँ आये हैं' यह समाचार एक दूसरे से सुनकर चारों ओर लोगों की भीड़ लग गई। उनके सुगठित शरीर, घनी जटाओं, विशाल

अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम्, तावत् कुटीराद् अश्रूयत तस्या एव बालिकायाः सकरुण-रोदनम्।

ततः "किमिति ? कुत इति ? केयमिति ? कथमिति ?" पृच्छापरवशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुरुणा बालिकां सान्त्वयितुं श्यामबटुमादिश्य कथितम्—

भगवन् ! श्रूयतां यदि कुतूहलम्। ह्यः सम्पादित-सायन्तन-कृत्ये, अत्रैव कुशाऽऽस्तरणमधिष्ठिते मयि, परितः समासीनेषु छात्र-वर्गेषु, धीर-समीर-स्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु प्रततिषु,

---

हित्वे''ति वाल्मीकीये च। पृच्छा=प्रश्नः, तत्परवशे=तत्परतन्त्रे।

कुतूहलम्=कौतुकम्। वृत्तान्तश्रवणोत्कण्ठेति यावत्। ह्यः=गतदिवसे, सम्पादितम्=विहितम्, सायन्तनम्=सायभवम्, कृत्यम्=सन्ध्यादि येन तादृशे। कुशास्तरणम्=कुशासनम्। "कुश की चटाई" इति हिन्दी। 'अधिशीङ्' इति कर्मसंज्ञा। धीरः=मन्दगतिः, समीरः=वायुः, तस्य स्पर्शेन। आन्दोल्यमानासु=कम्पमानासु। प्रततिषु=लतासु। 'वल्ली तु प्रततिर्लता' इत्यमरः।

---

अंगों, अंगारों के समान (लाल) नेत्रों और मधुर गम्भीर वाणी का बखान करते हुए लोग चकित और मन्त्रमुग्ध से हो गये।

तदनन्तर, योगिराज का विधिवत् पूजन-सत्कार कर ज्यों ही ब्रह्मचारी के गुरु ने उनसे कुछ पूछना चाहा, त्यों ही कुटी से उस बालिका का करुण क्रन्दन सुन पड़ा। तब योगिराज के, "यह क्या ? कहाँ से आई है ! यह कौन है ? कैसे आई ?" यह पूछने पर ब्रह्मचारी के गुरु ने साँवले ब्रह्मचारी को बालिका को ढाढस बँधाने के लिये भेज कर, कहना प्रारम्भ किया—

भगवन् ! यदि आपको इसका वृत्तान्त जानने की उत्कण्ठा है तो सुनिये। कल, सायंकालीन नित्यकर्म से निवृत्त होकर, मैं यहीं कुशासन पर बैठा हुआ था और मेरे चारों ओर छात्रगण बैठे थे,

समुदिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दौ इव इन्दौ, कौमुदी-कपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषुषु इव मौनमारल-यत्सु पतग-कुलेषु, कैरव-विकाश-हर्ष-प्रकाश-मुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्, कम्पमान-निःश्वासम्, स्खलत्कण्ठम्, घर्घरितस्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्, अत्यवधानश्रव्यत्वादनुमितदविष्ठतं क्रन्दनमश्रौषम्। तत्क्षणमेव च "कुत इदम्? किमिदमिति द्रष्यतां

---

इन्दौ = चन्द्रमसि । समुदिते = उदय प्राप्ते। चन्द्रमस रूपयति—यामिनी = निशीथिनी, सैव कामिनी = ललना, तस्याः, चन्दनबिन्दौ = ललाट-तिलके इव। कौमुदी=चन्द्रिका, 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ने'त्यमरः, तस्याः कपटेन=व्याजेन। वर्षतीवेत्युत्प्रेक्षा। पतगकुलेषु=पक्षिसमूहेषु। मौनम् = निःशब्दताम्, आकलयत्सु = आश्रयत्सु। किमिति मौनावलम्बनमित्युत्प्रेक्षते-अस्मन्नीतीति। शुश्रूषुषु=श्रोतुमिच्छुषु। कैरवाणाम् = सिताम्भोजानाम्, यो विकाशः = प्रफुल्लनम्, तेन यो हर्षप्रकाशः = मोदाविर्भावः, तेन मुखरेषु = शब्दायमानेषु। चञ्चरीकेषु = द्विरेफेषु। "इन्दिन्दिरो मधुकरश्चञ्चरीको मधुव्रतः" इति वैजयन्ती। क्रन्दनम् = रोदनम्, अश्रौषम् = आकर्णियम्। सप्तभिर्विशेषणैः स्वभावोक्त्या

---

मन्द-मन्द वायु के झोंकों से लताएँ धीरे-धीरे हिल रहीं थीं, निशानायिका के चन्दनबिन्दु के समान चन्द्रमण्डल उदित हो चुका था, आकाश चाँदनी के बहाने मानों अमृत बरसा रहा था, पक्षिगण—मानो हम लोगों की नीतिचर्चा सुनने की इच्छा से—मौन धारण किये थे, और कुमुदों के खिल जाने से भौंरे हर्षातिरेक से गुनगुना रहे थे, कि मैंने किसी का अस्पष्ट अक्षरों और कम्पित निश्वासों वाला, रुँधे गले से निकलने वाला, घर्घरशब्दमय, चीत्कारमय और दीनतापूर्ण करुण क्रन्दन सुना। रोने की आवाज ध्यान देने पर ही सुनाई देती थी, जिससे उसके बहुत दूर होने का अनुमान होता था। मैंने उसी क्षण, "यह आर्तस्वर कहाँ से आ रहा

ज्ञायताम्" इत्यादिश्य छात्रेषु विसृष्टेषु, क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भयभीता सवेगमत्युष्णं दीर्घं निःश्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्राता, अश्रुप्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः कन्यकैका अङ्के निधाय समानीता। चिरान्वेषणेनापि च तस्याः सहचरी सहचरो वा न प्राप्तः। तां च चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्, मृणाल-गौरीम्, कुन्दकोरकाग्रदतीम्, सक्षोभं स्फुरन्तीमवलोक्याऽस्माभिरपि न पारितं

---

मन्दम् विसर्गादि—अस्पष्टानि अक्षराणि, यस्मिंस्तत्। कम्पमाना निःश्वासाः, यस्मिंस्तत्। श्लथन्=शिथिलः, कण्ठः, यस्मिंस्तत्। शत्यवधानेन=विशेषध्यानेन, श्रव्यम्=श्रवणार्हम्, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्, हेतौ पञ्चमी। अतिशयेन दूरं दविष्ठम्, तस्य भावो दविष्ठता, अनुमिता=विज्ञाता दविष्ठता=अतिदूरता यस्य तत्। आदिश्य=आज्ञाप्य। व्याघ्रेण=शार्दूलेन, आघ्राता=आक्रान्ता। उपमालङ्कारः। सवेपथुः=सकम्पा। एकेनाङ्के निधाय कन्यका समानीतेति स्थले क्रियापदद्वयम्। प्रधानक्रियानिरूपितकर्मत्वाभिधाने प्रधानक्रियानिरूपितकर्मत्वमनभिहितमप्यभिहितवत्प्रकाशत इति महाभाष्ये ध्वनितम्—

"प्रधानविषया शक्तिः प्रत्ययेनाभिधीयते।
यदा गुणे तदा तद्वदनुक्ताऽपि प्रतीयते॥"

इत्यादिना वाक्यपदीये स्पष्टीकृतञ्च। नवनीतेनेव=हैयङ्गवीनेनेव। 'मक्खन' इति हिन्दी। मृणालमिव=कमलदण्ड इव, गौरीम्=श्वेताम्, लुप्तोपमा। कुन्दकोरकाः=माघ्यकालिका, तेषामग्राणीव दन्ता यस्याः सा ताम्।

---

है? क्या बात है? देख कर पता लगाओ" यह आज्ञा देकर, छात्रों को भेजा और क्षण भर बाद ही एक छात्र, डरी हुई, जल्दी-जल्दी गरम और लम्बी साँसें ले रही, बाघ से सूँघी गई हरिणी के समान, आँसुओं से नहाई हुई और काँपती हुई एक बालिका को गोद में उठाकर लाया। काफी देर तक खोजने पर भी उसकी कोई सखी या उसका कोई साथी नहीं मिला। चन्द्रमा की कलाओं से रची गई सी, मक्खन से बनाई गई सी, कमल-नाल के समान गोरी और कुन्दकलिका के अग्रभाग के समान दाँतों वाली

॥ श्रीः ॥

# अथ चतुर्थो निश्वासः

"कार्यं वा साधयेयम् , देहं वा पातयेयम्"

—स्फुटकम्

मासोऽयमाषाढः, अस्ति च सायं समयः, अस्तं जिगमिषु-र्भगवान् भास्करः सिन्दूर-द्रव-स्नातानामिव वरुण-दिगवलम्बिना-मरुण-वारिवाहानामभ्यन्तरं प्रविष्टः। कलविङ्काश्चाटकैररुतैः परि-पूर्णेषु नीडेषु प्रतिनिवर्तन्ते। वनानि प्रतिक्षणमधिकाधिकां श्यामतां कलयन्ति। अथाकस्मात् परितो मेघ-माला पर्वतश्रेणीव प्रादुरभूत्।

---

श्रीरघुवीरसिंह आवश्यक वाचिक पत्रमादाय महता क्लेशेन तोरणदुर्गं निवेद्य प्रतिपन्नश्चानयदिति तुरीयनिश्वासीयकथाभाग श्रीशिवराजवीरस्य दृढ-तम-प्रतिज्ञयैवोपक्षिपति—कार्यमिति। आषाढर्क्षवलिता पूर्णमासी यस्मि-न्मासे स आषाढः=शुचिः। सिन्दूरद्रवेण=नागोद्भवरसेन, स्नाता-नामिव=कृतस्नानानामिवेत्युत्प्रेक्षा। वरुणदिक्=पश्चिमदिशा, तदवलम्बि-नाम्=तदाश्रितानाम्। कलविङ्काः=चटकाः "गौरैया" इति हिन्दी। चटकाया अपत्यानि चाटकैराः,"चटकाया ऐरक्" इत्यपत्ये प्रत्ययः, तेषां रुतैः= शब्दैः। नीडेषु=कुलायेषु। प्रतिनिवर्तन्ते=परावर्तन्ते। पक्षिणः समग्रं दिनमुड्डीय सायं स्वावासतरौ सम्मिलिता भूरि वाशितं कुर्वन्तीतीय पक्षि-जातिः। कलयन्ति=धारयन्ति। मेघमाला=वारिदराजिः। पर्वतश्रेणीव=

---

"या तो कार्य सिद्ध कर लूँगा, या शरीर को त्याग दूँगा।"

आषाढ का महीना है और सन्ध्या का समय। अस्ताचल पहुँचने के इच्छुक भगवान् सूर्य, पश्चिम दिशा में स्थित सिन्दूर से नहाये हुए से लाल …के बादलों में प्रविष्ट हो गये हैं। गौरैया पक्षी अपने बच्चों के कलरव …पूर्ण घोंसलों में लौट रहे हैं। वन क्षण-प्रतिक्षण अधिकाधिक अन्ध-…पूर्ण (श्याम) होते जा रहे हैं। अकस्मात् चारों ओर से पर्वतमाला

क्षणं सूक्ष्मविस्तारा, परतः प्रकटित शिखरि-शिखर विडम्बना, अथ दर्शित - दीर्घ - शुण्ड - मण्डित - दिगन्त-दन्तावल भयानकाकारा, ततः पारस्परिक संश्लेष विहित-महान्धकारा च समस्तं गगनतलं पर्यच्छदीत्।

अस्मिन् समये एकः षोडशवर्षदेशीयो गौरो युवा हयेन पर्वत श्रेणीरुपर्युपरि गच्छति स्म। एष सुघटित-दृढ शरीरः, श्यामश्यामै र्गुच्छ गुच्छैः कुञ्चित-कुञ्चितैः कच-कलापैः कमनीय-कपोलपालिः, दूरा

भूधरपङ्क्तिरिवेत्युपमा। प्रकटितम् = प्रदर्शितम्, शिखरिशिखराणाम् = महीधरशृङ्गाणाम्। विडम्बनम् = अनुकृति, यया सा। दर्शित- = प्रकटी कृत, दीर्घेण = लम्बायमानेन, शुण्डेन = करेण, मण्डितस्य = भूषितस्य, दिगन्तदन्तावलस्य = दिक्करिण, 'दन्ती दन्तावलो हस्ती" इत्यमर, भयानकः = भीतिप्रद, आकारः = आकृति, यया सा। पारस्परिकसंश्लेषेण = इतरेतरमिलनेन, विहितः = उत्पादित अन्धकारः = अन्धतमस यया सा। पर्यच्छदीत् = व्याप्नोत्।

उपर्युपरि—"उपर्यध्यधस सामीप्ये" इति द्वित्वम्। तद्योगे द्वितीया।

'उभसर्वतसो कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।

द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते" इत्युक्ते।

गौर युवान विशिनष्टि सुघटितदृढशरीरः = सुघटितपुष्ट ।

के समान मेघमाला प्रकट हो गई। वह मेघमाला थोड़ी देर कम विस्तृत रही, फिर पर्वतशिखरों के समान हो गई, तदनन्तर बड़ी-बड़ी सूँडों से सुशोभित दिग्गजों के समान भयानक आकारवाली हो गई, और उसके बाद उमड़ घुमड़ कर (बादलों के परस्पर मिल जाने से) भीषण अन्धकार करके सारे आकाशमण्डल पर छा गई।

इसी समय लगभग सोलह वर्ष का एक गोरा युवक, घोड़े पर चढ़ा पर्वतमाला के ऊपर चला जा रहा था। सुडौल और दृढ़ शरीर वाला काले गुच्छेदार और घुँघराले केशों से सुशोभित कपोलों वाला, दूर से

गमनायास-वशेन सूक्ष्म-मौक्तिक पटलेनेव स्वेद विन्दु-व्रजेन समाच्छादित-ललाट कपोल-नासाग्रोत्तरोष्ठ', प्रसन्न वदनाम्भोज-प्रदर्शित-दृढ-सिद्धान्त-महोत्साहः, राजत-सूत्र शिल्पकृत बहुल-चाकचक्य-वक्र हरितोष्णीष-शोभित., हरितेनैव च कञ्चुकेन प्रकटीकृत-व्यूढ-गूढचरता-कार्यः, कोऽपि शिववीरस्य विश्वासपात्र सिंहदुर्गात् तस्यैव पत्रमादाय तोरणदुर्गं प्रयाति।

तावदकस्मादुत्थितो महान् झञ्झावात., एक सायसमय-प्रयुक्तः

---

कमनीयकपोलपालिः = मनोहरगण्डस्थल । सूक्ष्ममौक्तिकपटलेनेव = लघुमुक्तानिचयेनेवेत्युत्प्रेक्षा । "समूहे पटल ननां" इत्यमर । स्वेदबिन्दुव्रजेन = घर्मजलकणसमूहेन । "घर्मो निदाघ स्वेद स्यात्" इत्यमर । समाच्छादितम् = व्याप्तम्, ललाटकपोलनासाग्रोत्तरोष्ठ यस्य स । प्रसन्नेन = विकसितेन, वदनाम्भोजेन = मुखकमलेन, प्रदर्शित, दृढ सिद्धान्तमहोत्साहः = कर्तव्यपरायणतामहाहर्षो येन स । राजत-सूत्रस्य = रौप्यतन्तो, शिल्पेन कृतम्, बहुलम् = प्रचुरम्, चाकचक्य यस्यैवम्भूत वक्रम् = अनृजु, हरितम् = हरिद्वर्णम्, उष्णीषम् = शिरोवेष्टनम्, तेन शोभित । प्रकटीकृतम्, व्यूढम् = अङ्गीकृतम्, गूढचरताकार्यम् = गुप्तचरताकृत्यम्, येन स विश्वासस्य, पात्रम् = भाजनम् । नित्यक्लीबम् । परिकराल‍ङ्कारो विशेषणाना साभिप्रायत्वादत्र गद्ये द्रष्टव्यः ।

झञ्झावात., "सवृष्टिको महावातो झञ्झावात प्रकीर्तित" । भरतल्य

---

आने के कारण थकान से उत्पन्न हुए छोटे-छोटे मोतियों के समान पसीने की बूँदों से व्याप्त मस्तक, कपाल, नाक के अग्रभाग और ऊपरके होंठ वाला, अपने प्रसन्न मुख कमल से दृढ सिद्धान्त के महोत्साह को प्रकट करने वाला, चाँदी के तार के काम के कारण चमचमा रहे और टेढ़े बँधे हुए हरे साफे से सुशोभित, हरे कञ्चुक से गुप्तचर होने की सूचना देने वाला, शिवाजी का यह विश्वासपात्र युवक उन्हीं का पत्र लेकर सिंहदुर्ग से तोरणदुर्ग जा रहा है।

तब तक अकस्मात् जोर से आँधी पानी आ गया। सायकाल में होने

स्वभाव-वृत्तोऽन्धकारः, स च द्विगुणितो मेघमालाभिः। झंझावातोद्धूतै रेणुभिः शीर्णपत्रैः कुसुम-परागैः शुष्कपुष्पैश्च पुनरेष द्वैगुण्यं प्राप्तः। इह पर्वतश्रेणीतः, पर्वतश्रेणीः, वनाद् वनानि, शिखराच्छिखराणि, प्रपातात् प्रपाताः, अधित्यकातोऽधित्यकाः, उपत्यकात उपत्यकाः, न कोऽपि सरलो मार्गः, नानुद्वेदिनी भूमिः, पन्था अपि च नावलोक्यते। क्षणे क्षणे हयस्य खुराश्चिक्कण-पाषाण-खण्डेषु प्रस्खलन्ति। पदे पदे दोधूयमाना वृक्ष-शाखाः सम्मुखमाघ्नन्ति, परं दृढ-संकल्पोऽयं सादी न स्वकार्याद् विरमति। परितः स-हुडहुडा-शब्दं

---

स्निग्धमिति प्रपातः = जलोत्पतनस्थानम्, "प्रपातस्त्वतटो भृगुः" इत्यमरः। अनुद्वेदिनी = दुःखादायिनी, सरलेति यावत्। चिक्कणपाषाणखण्डेषु = स्निग्धाश्मशकलेषु। प्रस्खलन्ति = प्रच्यवन्ते, "फिसलते हैं" इति भाषायाम्। दोधूयमानाः = बार बारं चलन्त्यः, सम्मुखम् = अभिमुखम्। आघ्नन्ति = ताडयन्ति। "आङो यमहनः" इत्यात्मनेपदस्य तु नात्र विषयता, अकर्मकात्स्वाङ्गकर्मकादेव च तद्विधानात्। सादी = अश्वारोहः। विरमति, "व्याङ्परिभ्यो रमः" इति परस्मैपदम्। वाताघातेन सञ्जातः पाषाणपातो येषां तेषाम्।

---

वाला स्वाभाविक अन्धकार मेघमालाओं से द्विगुणित हो गया। आँधी से उठी धूल, गिरे हुए पत्तों, पुष्पों के पराग और सूखे फूलों से यह अँधेरा और भी दूना हो गया। यहाँ पर्वत श्रेणियों के बाद पर्वतश्रेणियाँ, वन के बाद वन, शिखर के बाद शिखर, झरने के बाद झरने, अधित्यका (पर्वत के ऊपर की ऊँची भूमि) के बाद अधित्यकाएँ और उपत्यका (पर्वत के पासकी नीची भूमि) के बाद उपत्यकाएँ हैं। कोई सीधा रास्ता नहीं, कहीं समतल भूमि नहीं और रास्ता भी नहीं दिखाई देता है। घोड़े के खुर थोड़ी-थोड़ी देर बाद ही चिकने पाषाणखण्डों पर फिसलते थे। पद पद पर, हिलती हुई वृक्षों की शाखायें सामने टकराती थीं। परन्तु दृढ़संकल्पवाला यह घुड़सवार अपने कार्य से विरत नहीं होता। तभी

स्वामी स्वयमापदो न गणयति, कथं स गणयेदापदः ? यस्य च महाराजः स्वयं सङ्कल्पितं निश्चयेन साधयति, कथं स न साधयेत् स्व-संकल्पितम् ? अस्त्येष महाराज शिववीरस्य दयापात्रं चरः, तत्कथमेष झञ्झा-विभीषिकाभिर्विभीषितः प्रभु-कार्यं विगणयेत् ? तदितोऽप्येष तथैव त्वरितमश्वं चालयश्चलति।

अथ किञ्चिन्न स्रोतसमुल्लङ्घमानोऽस्य तुरङ्गः कस्यापि दोधूयमा-नतरोः शाखया तथाऽभिहतो यथोच्छलन् भूमौ पपात, सादिनं चैकतः समपीपतत्। किन्तु तत्क्षणादेव सादी समुत्थितो वाजिनो वल्गां गृहीत्वा, सचुचुत्कारं ग्रीवां पृष्ठं चाऽऽस्फोट्य, अज्ञासीद्-यदश्वः स्वेदैः स्नातोऽस्तीति। तच्चक्षुषी विस्फार्य, पार्श्वस्थ-पलाशिनं

---

अभिहतः = ताडितः। उच्छलन् = उत्पतन्। "उछलते हुए" इति भाषायाम्। समपीपतत् = पातयामास। णिजन्तात् लुङि सम्पूर्वकात्पतेर्लुङि। विस्फार्य = विकास्य। पार्श्वस्थ पलाशिनम् = वृक्षम्। "पलाशी द्रुद्रुमा-

---

आपत्तियों को नहीं गिनता वह आपत्तियों को कैसे गिने ? जिसका महाराज स्वयं संकल्प किये गये काम को निश्चयपूर्वक सिद्ध करता है वह अपने संकल्प को कैसे न पूरा करे ? यह महाराज शिवाजी का कृपापात्र दूत है, फिर यह कैसे सम्भव है कि यह झञ्झावात से डर जाय और प्रभु-कार्य की परवाह न करे ? अब भी यह घोड़ा बढ़ाता हुआ, उसी प्रकार तेजी से चला जा रहा है।

इसके बाद किसी सोते को पार करता हुआ इसका घोड़ा किसी हिलते हुए वृक्ष की शाखा से ऐसा टकरा गया कि चोट खाकर उछलता हुआ भूमि पर गिर पड़ा और सवार को एक ओर फेंक दिया। किन्तु सवार ने उसी क्षण उठ कर, घोड़े की लगाम पकड़ कर चुमकारते हुए, उसकी गर्दन और पीठ को थपथपा कर जान लिया कि घोड़ा पसीने से तर है निकटस्थ वृक्ष को विस्फारित नेत्रों से सावधानीपूर्वक देखकर

निपुण निरीक्ष्य, तच्छायायामेव कानिचिन्निजवस्तून्यासज्य, दक्षिण-कर-धृत रश्मिरश्वं शनैः शनैः परिभ्रमयितुमारेभे। अश्वश्च फेनान् पातयन् कन्धरामुद्धूनयन् हेषा-रवैश्चिर-परिश्रम प्रकटयन् प्रस्यन्द-जल-सिक्त-भूभागः, समुत्सृष्ट-पुरीषः, शुष्क-स्वेदः, मुहूर्तादेव विस्मृत परिश्रमः, सगति-स्तम्भं खुराग्रैर्भूमिमुत्खनन्, कर्णावुत्तम्भयन्, लाङ्गुल लोलयन्, सादिनो दक्षिणदेशे पृष्ठं निकटयन्, पुनरेनं वोढुं परतो धावितुं च समीहां समसूसुचत्।

तावदकस्मात् पूर्वस्यामतिरक्ताऽतिप्रलम्बाऽतिभयानका सक-डकडाशब्दं सौदामिनी समदेदीप्यत, तच्चमत्कार-चकितं चाश्वमेप

मना" इत्यमर, फेनान्=डिण्डीरान्। उद्धूनयन्=कम्पयन्। प्रस्यन्द जलेन=स्वेदाम्भसा, सिक्त.=क्लिन्नतां नीतः, भूभागो येन स। समुत्सृष्टम्=त्यक्तम्, पुरीपम्=गूथं येन सः। सगतिस्तम्भम्=सचलनाव-रोधम्। उत्खनन्=उत्पाटयन्। उत्तम्भयन्=ऊर्ध्वीकुर्वन्। लांगूलम्=पुच्छम्। "लाङ्गूलं पुच्छशेफयो" इति हैम। निकटयन्=समीपयन्। वोढुम्=नेतुम्। समीहाम्=इच्छाम्। समसूसुचत्=प्रकटितवान्।

उसकी छाया में ही अपना कुछ वस्तुओं को लटका कर और दाहिने हाथ से लगाम पकड़ कर उसने घोड़े को शनै शनै टहलाना आरम्भ किया। घोड़ा फेन गिराता हुआ, कन्धा कँपाता (हिलाता) हुआ, हिनहिनाहट से दीर्घ-परिश्रम को प्रकट करता हुआ, पसीने के जल से उस भूभाग को आर्द्र बना कर, लीद करके, पसीने के सूख जाने पर, क्षण भर में ही अपने परिश्रम को भूलकर, चलने या अनुरोध करता हुआ, टापों के अग्र भाग से भूमि को खोदता हुआ, कान उठाये हुए, पूँछ हिलाता हुआ, सवार के दाहिनी ओर अपनी पीठ बढ़ाता हुआ, पुनः उसे सवार करने और फिर दौड़ने की अपनी इच्छा को सूचित करने लगा।

तब तक अकस्मात् पूर्व दिशा में अत्यन्त रक्तवर्ण की, बहुत लम्बी और अतिभयानक बिजली कड़कड़ाहट के साथ चमक उठी। उसकी

यावत्स्थिरयति; तावत्स-तडत्तडा-शब्दं पूग-स्थूलैर्बिन्दुभिर्वर्षितुमारब्ध मघवा, परं राम-कार्यार्थं प्रतिष्ठमानेन मारुतिनेव न महते कार्यहानिः शिववीर-चरेण। तत्क्षणमेवासौ पुनः सज्जीभूय समुत्प्लुत्य घोटक-पृष्ठमारुरोह। घोटकश्च पुनस्त्वरितगत्या प्रचलितः। यदा यदा विद्युद् विद्योतते; तदा तदा पन्था अवलोक्यते, तदनुसन्धानेनैव वाहोऽयं शिलातलानि परिक्राम्यन् लताप्रतानानि त्यजन् स्रोतांस्युल्लङ्घमानः गर्त्तांश्च परिजिहदुच्चचाल। तावद् दूरत एवाऽऽलोक्यत तोरण-दुर्ग-दीपः, इतश्च चरस्यैतस्य दृढप्रतिज्ञतां निर्भीकतां सोत्साहतां स्वामिकार्य-साधनसत्य-सङ्कल्पतां च परी-

---

अश्वस्वभाववर्णनम्। समदेदीप्यत = अत्यन्त चमत्करोत्। पूगस्थूलैः= क्रमुकफलमहत्तरैः। मघवा = इन्द्र। मारुतिना = मरुत्तनयेन हनूमता। मारुतिरूपोपमानस्य, शिववीरचरस्योपमेयस्य, कार्यहान्यसहत्वस्य साधारणधर्मस्य, वाचकस्य चेवशब्दस्योपादानेन पूर्णोपमा। वाहः=अश्वः। परिजिहत्=परित्यजन्, "नाभ्यस्ताच्छतुः" इति नुम्निषेधः। आलोक्यत=

---

चकाचौंध से चकित घोड़े को जब तक सवार रोके तब तक तड़-तड़ा शब्द के साथ बादलों ने सुपारी के बराबर बूँदें गिरना शुरू कर दिया, लेकिन रामचन्द्र के कार्य के लिए चले हनुमान की तरह शिवाजी के दूत को भी कार्यहानि सह्य नहीं। वह उसी क्षण पुनः सुसज्जित हो, कूद कर घोड़े की पीठ पर बैठ गया और घोड़ा फिर तेज चाल से चल दिया। जब जब बिजली चमकती थी तब तब रास्ता दिखाई पड़ जाता था, उसी ज्ञान के आधार पर वह सवार, शिलातलों को लाँघता, लताओं के झुरमुटों को बचाता, सोतों को कूद कर पार करता और गड्ढों को बचाता हुआ चल दिया। दूर से ही तोरण दुर्ग का दीप दिखाई दिया और इधर उस दूत की दृढ़-प्रतिज्ञता, निर्भीकता, उत्साहपूर्णता और अपने स्वामी के कार्य को सिद्ध करने की सत्यसंकल्पता की परीक्षा-सी करके

इयेव प्रशशाम वृष्टिः। अम्ल-वलेन दुग्धमिव च खण्डशोऽभू-न्मेघमाला, ददृशे च पूर्वस्यां कलानाथः।

अथ क्षणेनैव पार्वत-नदी-वेग इव निर्जगाम झञ्झावातोत्पातोऽपि। ततो नूतन-वारिधारा-क्षालन-प्रकटित-परम-हारित्यानां परस्कोटि-कीर-पटल-परीतानामिव समवालोक्यत लोचन-रोचिका शोभा पलाशिनाम्। सादी च चञ्चच्चन्द्रचमत्कारेण द्विगुणितोत्साहः "मा भूद् द्वार-रोधो मद्गमनात् पूर्वमेव" इति सत्वर-सत्वरः झिल्ली-रव-मिश्रित-कवच-शिञ्जितः, वार्ष-वारि-व्रज-विधूत-स्वेद-

---

इष्टः। प्रशशाम = शान्ताऽभूत्। वृष्टौ सत्यामपि कार्यं नावारणवर इति तस्यास्ततरीक्षात्वेनोत्प्रेक्षणम्। अम्लवलेन = दुग्धमिवेत्युपमा। ददृशे = दृष्टः। कर्मणि तङ्। कलानाथः = चन्द्रः।

क्षणेनैव झञ्झावातोत्पातो निर्जगामेति सम्बन्धः। उपमिनोति पार्वतनदीवेग इवेति: ततो लोचनरोचिका = नेत्रानन्ददायिनी, पलाशिनां = वृक्षाणाम्, शोभा समवालोक्यतेति सम्बन्धः। पलाशिनो विशिनष्टि नूतनया = अभिनवया, वारिधारया = पानीयाधारपातेन, क्षालनेन = निर्णेजनेन, प्रकटित परम हारित्यम् = हरिद्वर्णता, येस्तेषाम्। उत्प्रेक्षते—परस्कोटिना कीरपटलेन परीतानामिव = व्याप्तानामिव। झिल्लीरवेण = भृङ्गारीशब्देन, "भृङ्गारी

---

वृष्टि शान्त हो गई। खटाई से दूध की तरह बादलों का समूह छिन्न-भिन्न हो गया और पूर्व दिशा में चन्द्रमा दिखाई दिया।

इसके पश्चात् क्षण भर बाद ही पहाड़ी नदी के वेग की तरह आँधी-पानी भी निकल गया। फिर नवीन जलधारा से धुले होने के कारण अत्यधिक हरियाली को प्रकट करने वाले, करोड़ों शुक समूहों से व्याप्त-से वृक्षों की नयनाभिराम शोभा दिखाई दी। चञ्चल चन्द्रमा की छटा से दूने हुये उत्साहवाला, "कहीं मेरे पहुँचने से पहले ही फाटक बन्द न हो जाय" यह सोचकर और भी जल्दी करता हुआ, झींगुर के स्वरों में अपने कवच की झंकार को मिलाता, वर्षा के जल से धुली हुई पसीने की

बिन्दु सन्दोहः, साधुवाद-सर्वद्धित हेषमाण हयोत्साहः सपदेव तोरण-दुर्ग-यामिक-पादचार परिमर्दितायां भुवि समाजगाम।

अथ "को भवान्? कुतो भवान्?" इति यामिकैः पृष्टः, दत्त-निज-परिचयः, द्वारपालेनापि—"साधु! साधु! महता परिश्रमेण समायातोऽसि, उच्चैर्निश्वसिति तेऽश्वः, स्विन्नानि तव गात्राणि, आर्द्राणि तव वस्त्राणि, धन्योऽसि, तथाऽपि खेदं नाऽऽवहसि, समये समागतोऽसि, अवेक्षते तवैव पन्थानं दुर्गाधीशः। प्रविश्य-ताम्, अश्व उन्मुच्यताम्, सत्वरमेव च तेनापि साक्षात्कारो

---

झीरुका चीरी झिल्लिका च समा इमाः" इत्यमरः। मिश्रितम् = सम्प्रक्तम्, वृद्धिं गतमिति यावत्, कवचशिञ्जितम् = तनुत्राणध्वनि, यस्य सः। कवचानां वारभूषणत्वेन "भूषणानान्तु शिञ्जितम्" इत्यनेन न विरोध इति ध्येयम्। वार्षेण = वर्षभवेन, वारिव्रजेन = जलनिचयेन, विधूत. = विगत, स्वेदबिन्दूनाम् = श्रमपृषताम्, सन्दोहः = समूहो यस्य सः। साधुवादेन = प्रशंसनेन। सर्वाधितः = सम्यग् वृद्धिं नीतः, हेषमाणस्य = हेषानिरतस्य, हयस्योत्साहो येन सः। तोरणदुर्गस्य = तन्नामख्यातदुर्गस्य, यामिकानाम् = प्रहरिणाम्, पादचारैः = चरणभ्रमणैः, परिमर्दितायाम् = अतिक्षुण्णायाम्।

---

बूँदों वाला, शाबाशी दे-दे कर हिनहिनाते घोड़े के उत्साह को बढ़ाता हुआ, शीघ्र ही वह सवार तोरणदुर्ग के पहरेदार के (पहरा देने से) चरणों से मर्दित हुई भूमि पर आ पहुँचा।

तदनन्तर 'आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं?' इस प्रकार पहरेदार के द्वारा पूछे जाने पर, अपना परिचय देकर, द्वारपाल के द्वारा भी "शाबाश! शाबाश! बड़े परिश्रम से आये हो, तुम्हारा घोड़ा जोरों से हाँफ रहा है, तुम्हारे अंग पसीने से तर हैं, वस्त्र भीग गये हैं, तुम धन्य हो, जो कि फिर भी खिन्न नहीं होते, समय पर आ गये हो, दुर्गाधीश तुम्हारा ही रास्ता देख रहे हैं, दुर्ग के अन्दर प्रवेश करो, घोड़ा खोल दो, शीघ्र ही उनसे

विधीयताम्" इति सादरमालप्यमानो दुर्गं प्रविवेश।

अश्वमुन्मुच्य परस्सहस्र-पतग-पटल-कलकलोन्निद्रस्य सुदूर-वितत-काण्ड-प्रकाण्डस्य चैकस्य पनस-वृक्षस्य शाखायाम् बद्ध्वा अविश्रान्त एव दुर्गाध्यक्ष-समीपमगमत्।

तत्र तयोरेवमभूदालापः—

दुर्गाध्यक्षः—[ दूरत एव ] एहि, एहि, समये समायातोऽसि मुहूर्तं नायास्यश्चेद् द्वारेषु रुद्धेषु बहिरेव समस्तां रजनीमवत्स्यः।

सादी—विघ्नास्त्वभूवन्, परं माहात्म्यमेतत् प्रभु-प्रतापस्य

---

परस्सहस्रपतगानाम् = असंख्यातपक्षिणाम्, पटलस्य = समूहस्य कलकलेन = कोलाहलेन, उन्निद्रस्य = जाग्रतः। जाग्रताः शब्दं कुर्वन्ति उन्निद्रपदेन सशब्दत्वं लक्षितम्, यद्वा सार्वकालिकशब्दवत्त्वव्यञ्जनद्वारा पक्षिणामसङ्ख्यातत्वपर्यवसायि। सुदूरं, विततः = विस्तृताः, काण्डाः = शाखाः, प्रकाण्डाः = स्कन्धाः, यस्य तस्य। पनसवृक्षस्य = कण्टकिफलस्य "कटहर" इति हिन्दी।

नायास्यः = नागमिष्यः। रजनीमित्यत्र "कालाध्वनो" इत्यादिनाऽत्यन्तसंयोगे द्वितीया। अवत्स्यः = वासमकरिष्यः। हेतुहेतुमद्भावे लृङ्।

---

भेंट करो" इस प्रकार आदरपूर्वक बात किये जाते हुये सवार ने दुर्ग में प्रवेश किया।

वह घोड़े को खोल कर और उसे हजारों पक्षियों के कलकल से मुखर दूर तक फैली शाखाओं और तने वाले एक कटहल के वृक्ष की शाखा में बाँधकर, बिना विश्राम किये ही दुर्गाध्यक्ष के पास चला गया।

वहाँ उन दोनों में इस प्रकार बातचीत हुई :—

दुर्गाध्यक्ष—( दूर से ही ) आओ, आओ, ठीक समय पर आ गये अगर थोड़ी देर और न आते तो फाटक बन्द होने पर सारी रात बाहर ही गुजारनी पड़ती।

अश्वारोही—अड़चनें तो बहुत हुईं, लेकिन प्रभु के प्रताप की यह महिमा

यत् तदीया विघ्नैर्न व्याहन्यते।

दुर्गाध्यक्षः—( स 'शिरो नमयन्त जीवेत्युक्त्वा ) उपविश, उपविश।

ततो दुर्गाध्यक्षस्तु चुम्बित-यौवनामप्यत्यक्त-बालभावां तस्य मधुरामाकृतिं पश्यन्, सचकितं विचारयितुमारेभे यत्-"कथं बाल एव प्रेषितः श्रीमता महाराष्ट्र-राजेन गुप्त-विषय-सन्धानेषु" क्षणमवस्थाय च "द्रक्ष्यामि प्रथमं किमेतेनाऽऽनीतं पत्रादिकम्"—इति निश्चित्य "भगवन्! प्रभुणैकान्ते मामाहूय प्रदत्तमिदं पत्रमस्ति, तत् स्वीक्रियताम्" इति कटिबन्धनान्निःसार्य ददतो हस्तादादाय, उत्थाय च स्तम्भावलम्बित-दीप प्रकाशेन तूष्णीं मनस्येव पठित्वा, आकुञ्च्य, पूर्वोपविष्ट-मञ्चे उपविश्य, पुनः पौनःपुन्येन

चुम्बितं यौवनं यया तामपि, न त्यक्तः = न दूरीकृतः, बालभावः = अर्भकत्वं, यया ताम्। आकृतिम् = आकारम्। गुप्तविषयाणाम् = रहोविचार्याणाम्। सन्धानेषु = अनुसन्धानेषु, ज्ञानेषु। अवस्थाय, तूष्णीमिति शेषः। द्रक्ष्यामि, सामान्यभविष्यति। मञ्चे = पर्यङ्के। "शयन मञ्चपर्यङ्क-

है कि उनके लोग विघ्नों से बाधित नहीं होते।

दुर्गाध्यक्ष—( नतमस्तक हुए सवार को 'जियो' ऐसा कहकर ) बैठो, बैठो।

तब दुर्गाध्यक्ष तरुणाई को छूती हुई भी बाल्भाव का त्याग न करने वाली उसकी मधुर आकृति को देखते हुए चकित होकर विचारने लगे कि "श्रीमान् महाराष्ट्रराज ने ऐसे गुप्त विषयों के ज्ञान के लिए इस बालक को कैसे भेज दिया"। क्षणभर रुककर "पहले देखूँ क्या यह कोई पत्र आदि लाया है"—यह निश्चय करके, "श्रीमान्जी, स्वामी ने एकान्त में मुझे बुला कर यह पत्र दिया है, इसे स्वीकार कीजिये", यह कहकर कमरबन्द से पत्र निकालकर देने वाले उस अश्वारोही के हाथ से पत्र लेकर, उठकर, खम्भे पर अवस्थित दीपक के प्रकाश में चुपचाप मन में ही पढ़कर तथा मोड़कर, पहले जिस कुर्सी पर बैठे थे उसी पर

अलिपटल-विनिन्दकांस्तस्य कुञ्चित-कच-गुच्छान्, उत्पत्स्यमान-कशाङ्कुर-स्विन्नमुत्तरोष्ठम्, अविमसृण-कमलोदर-किशलय-सोदरौ कपालौ, उन्नतमंसम्, दीर्घौ बाहू, माधुर्य-वर्षिणी अक्षिणी, विनय-भरणेव विनतां कन्धराम्, तेजसेव गौरमङ्गम्, दाक्षिण्येने-वाङ्कितं ललाटम्, भद्रतयेव च स्नातं शरीरं विलोकयन्, वारं वारं विचिन्तयंश्च मशकैरप्यशङ्कनीयम्, मक्षिकाभिरप्यनीक्षणीयम्, समीरणेनाप्यचालनीयम्, प्रकाशेनाप्यप्रकाशनीयम्, लेखन्याऽप्य

पल्यङ्काः' इत्यमरः। अलिपटलविनिन्दकान् = भ्रमरसमूहाभिभावकान्। काव्यत्वं भ्रमरनिचयाऽपि पराजित इति नितान्तकाव्यत्वं व्यङ्ग्यम्। उत्पत्स्यमानेषु = उदेष्यमाणेषु। केशाङ्कुरेषु = श्मश्रुप्ररोहेषु। स्विन्नम् = आर्द्रम्। उत्तरम् = ऊर्ध्वञ्च, तदोष्ठम्। "आत्वोष्ठयोः समासे वा" इति वृद्धि-विकल्पः। अविमसृणकमलस्य = सुचिक्कणपद्मस्य, उदरे = मध्ये, यत् किशलयम् = पलाशम्, तस्य सोदरौ=तुल्यौ। आर्थीयमुपमा। विनताम् = नम्राम्। कन्धराम् = गलम्। स्वभावतो विनतत्वस्य विनय-भरणेवेत्युत्प्रेक्षणम्। एवमुत्तरत्रापि। दाक्षिण्येन = औदार्येण। भद्रतया = शान्ततया। मशकैरपि, कर्णान्तिके स्वनद्भिरपि न शङ्कितुमर्हमिति ध्वनिः। अनीक्षणीयम् = अनवलोकनीयम्। अत्र वृत्तान्तगतं गोप्यत्वमत्र मशकैर-

बैठकर दुर्गाध्यक्ष, भ्रमर समूह के विनिन्दक उस सवार के घुँघराले बालों के गुच्छों, जिन पर रेखा निकल रही थी ऐसे स्वेद से आर्द्र होठ, अत्यन्त कोमल कमल के भीतरी पत्तों के सहोदर कपोलों, ऊँचे कन्धों, दीर्घ बाहुओं, माधुरी की वृष्टि करने वाली आँखों, मानो नम्रता के भार से झुकी हुई गर्दन, मानों तेज से गौर वर्ण वाले अङ्ग, उदारता से अङ्कित से मस्तक और शान्त भाव से स्नात से शरीर को बार-बार देखते हुए, तथा मच्छरों से भी अशङ्कनीय, मक्खियों से भी न देखे जा सकने वाले, वायु से भी न हिलाये जा सकने वाले, प्रकाश से भी प्रकाशित न किये जा सकने वाले, लेखनी से भी न लिखे जा सकने वाले

लेखनीयम्, पत्रेणापि चाप्रकटनीयम्, गुप्ततमं वृत्तान्तम्, उपबर्हलग्नपृष्ठः, भ्रूमध्य-स्थापिताचल-दृष्टिः, क्षणं समाधिस्थित इव विचारपरवशोऽभूत्।

ततश्च पुनः सादिन आननं समवलोक्य, समप्राक्षीत्—वत्स! तत्रभवतः समीपात् कदा प्रचलितोऽसि?

स ऊचे—भगवन्! मार्त्तण्ड-मण्डले निम्लोचति।

तेनोक्तम्—कथं तर्हि प्रलम्बमुत्कटं चाध्वानमुल्लङ्घ्य, वात्या विधूय अल्पेनैव समयेन समायातोऽसि?

स चाह—श्रीमन्! ईदृश एवाऽऽसीदादेशोऽत्र भवतः।

---

प्यप्रकटनीयमित्यादिना प्रकारान्तरेणाभिहितमिति पर्यायोक्तमलङ्कारः। उपबर्हलग्नपृष्ठः = उपधानसंपृक्तपृष्ठभाग-। "उपधानं तूपबर्हः" इत्यमरः। भ्रूमध्ये स्थापिता अचला दृष्टिर्येन सः। अत एव "समाधिस्थित इव" इत्युपमानोपमेयभावः।

निम्लोचति = अस्ताचलं गच्छति। आसन्नास्तमनसमय इति यावत्। शानन्तम्।

वात्याः = वायुचक्राणि 'आँधी' इति हिन्दी। लोकोक्तिरलङ्कारः।

---

और पत्र से भी प्रकट न किये जा सकने वाले, अत्यन्त गुप्त विचारों के सम्बन्ध में बार-बार विचारते हुए, मसनद में पीठ लगाये हुए, भौंहों के बीच अचल दृष्टि को स्थापित किये हुए, क्षण भर समाधिस्थित से होकर विचारमग्न हो गये।

दुर्गाध्यक्ष ने सवार के मुख को पुनः भलीभाँति देखकर पूछा—वत्स! पूज्नीय शिवाजी के समीप से कब चले थे?

वह बोला—भगवन्, सूर्य के अस्त होते समय।

दुर्गाध्यक्ष ने पूछा—तो इतने लम्बे और उत्कट मार्ग को पार करके आँधियों को चीर कर, इतने अल्प काल में ही कैसे आ गये हो?

उसने भी कहा—श्रीमन्! पूजनीय प्रभु का ऐसा ही आदेश था।

ततः परं च—"अस्मै गुप्तसन्देशाः कथनीया न वा ? एष स्वस्मादप्याच्छाद्य मदुक्तं प्रभुकर्णातिथीकरिष्यति न वा ? यतो लिपिः कस्यापि कर्णेजपस्य हस्तेऽपि पतेद्, इति वाग्भिरेवोदीरणीयो मम सन्देशः, इति परीक्षेयैनं वाग्जालैः" इति विविच्य दुर्गाधीशस्तेन बहुशः समालपत्। अन्ततश्च तं सर्वथा गुप्त-सन्देश-योग्यमाकलय्य मनस्येव हर्षमनुभवश्चिरं प्रशशंस शिवराजं यत्—"नैतेषु विषयेषु कदाऽपि सतन्द्रोऽवतिष्ठते महाराजः, स सदा योग्यमेव जनं पदेषु नियुनक्ति, नूनं बालोऽप्येषोऽबालहृदयोऽस्ति, तदस्मै कथयिष्याम्यखिलं वृत्तान्तम्, पत्रं च कतिचिद् विषयेषु समर्पयिष्यामि। एवमालपच्च—

स्वस्मादपि, यदा स्वत एवाऽऽच्छादयति तदा किमु वक्तव्यं परस्मादिति ध्वानः। एवञ्चाऽऽत्मवाचा स्वशब्द इति तत्त्वम्। कर्णेजपस्य = सूचकस्य। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति विभक्तेरलुक्। परीक्षेय = परीक्षां कुर्याम्। तेन, "वृद्धो यूना" इति दर्शनेन सहार्थकशब्दाभावेऽपि तृतीया। तन्द्रया = आलस्येन, सहितः सतन्द्रः।

तदनन्तर, "इसे गुप्त सन्देश कहने चाहिए या नहीं, यह मेरी कही हुई बातों को अपने से भी छिपाकर प्रभु के कानों तक पहुँचायेगा या नहीं? लिखा हुआ पत्रादि किसी भी चुगलखोर के हाथ में भी पड़ सकता है। अतः अपना सन्देश मौखिक ही कहना चाहिए। इसलिए वाग्जाल से इसकी परीक्षा कर लूँ"—यह विचार कर दुर्गाधीश ने उसके साथ बहुत कुछ बातचीत की। और अन्त में उसे सर्वथा गुप्त सन्देश के योग्य समझ कर, मन ही मन हर्ष का अनुभव करते हुए, महाराज शिवाजी की बड़ी देर तक प्रशंसा की कि महाराज ऐसे विषयों में कभी भी असावधान नहीं रहते, वह सदा योग्य व्यक्ति को ही पदों पर नियुक्त करते हैं। अवश्य ही यह बालक होने पर भी अबाल हृदय वाला है, अतः इससे सारा वृत्तान्त कह दूँ और कुछ विषयों से सम्बद्ध पत्र भी दे दूँ। फिर ऐसी बातचीत की।

दुर्गाधीशः—मन्ये क्षत्रियोऽसि ।

सादी—आम् श्रीमन् !

दुर्गा०—[स्मित्वा] नान्येषामपत्यान्येवं तेजस्वीनि दृढ-हृदयानि प्रभुभक्तानि च भवन्ति । [ पुनः सम्मुखमवलोक्य ] किं ते नाम ?

सादी—[ अञ्जलिं बद्ध्वा ] आर्य ! मां रघुवीरसिंह इति वदन्ति जनाः ।

दुर्गा०—चिरञ्जीव [ क्षण विरम्य ] अस्तु, सम्प्रति दुर्गात् बहिरेव साम्मुखीने हनूमन्मन्दिरे रात्रिमतिवाह्य, श्वस्तु किञ्चिदुदञ्चति मरीचिमालिनि अत्राऽऽगत्य पत्रादिकं गृहीत्वा महाराज-निकटे यातासि ।

रघुवीरः—'बाढम् !'

इति शिरो नमयित्वा, प्रतिनिवृत्य, पनस शाखातोऽश्वमुन्मुच्य,

---

दु खेन गम्यत इति दुर्गः, दुर्गलक्षण तद्भेदादिकञ्च पुराणेषु द्रष्टव्यम् । साम्मुखीने=सम्मुखस्थे । अतिवाह्य=यापय, उदञ्चति=उदय प्राप्नुवति । शत्रन्तम् । मरीचिमालिनि=सूर्ये, यातासि = गन्तासि, प्रारणार्थकाद् याते-

---

दुर्गाधीश—लगता है, क्षत्रिय हो ?

घुड़सवार—हाँ ! श्रीमन् ।

दुर्गाधीश—( मुस्कुरा कर ) अन्य की सन्तानें ऐसी तेजस्विनी, दृढहृदय और प्रभुभक्त नहीं होतीं । ( पुनः सामने देखकर ) तुम्हारा नाम क्या है ?

सवार—( अञ्जलि बाँध कर ) आर्य ! लोग मुझे रघुवीर सिंह कहते हैं ।

दुर्गाध्यक्ष—चिरञ्जीव ! ( क्षण भर रुक कर ) खैर, इस समय दुर्ग से बाहर ही सामने वाले हनुमानजी के मन्दिर मे ही रात बिताओ, सवेरे सूर्य के कुछ निकलते ही यहाँ आकर पत्रादि लेकर महाराज के पास चले जाना । रघुवीर सिंह ने "बहुत अच्छा !" ऐसा कह कर, प्रणाम कर, लौट कर,

दुर्गाध्यक्ष प्रेषितस्य भृत्यस्यैकस्य हस्ते वल्गादान पुरःसरं समर्प्य, अपर दासेरकेण व्यादिष्ट-मार्गो नव-वारिद-वारि बिन्दु-वृन्द सम्पर्क-प्रकटित-सिन्धुर-सन्दोह-सन्तर्पण-मधुरगन्धि रजनीकर कर निकर विरोचितां भूमिमालोकयन्, मन्दं मन्दमाससाद मारुति मन्दिरम्। तत्र चाऽऽगन्तुकानामेव निवासाय कलित-यथोचित-साधनानां प्रकोष्ठानामन्यतमे प्रविश्य, गवाक्षानुन्मुद्रय, वाताभिमुखं नाग-

---

र्लुटि मध्यमपुरुषैकवचनम्। अपरदासेरकेण = इतरभृत्येन, व्यादिष्टमार्गः= प्रदर्शिताध्व । नववारिदस्य = नूतनमेघस्य, वारिबिन्दूनाम्=जलकणानाम्, वृन्दस्य = समूहस्य, सम्पर्केण = संसर्गेण, प्रकटितः = प्रादुर्भावित, सिन्धुरसन्दोहस्य = गजयूथस्य, सन्तर्पणः = तृप्तिजनक, मधुरः = हृद्य., गन्धो यस्यास्ताम् । रजनीकरस्य = शशिन, कराणाम् = दीधितीनाम्, निकरेण = वृन्देन, विरोचिताम् = विशेषत शोभिताम्। भूमेर्विशेषणद्वयमिदम् । आगन्तुकानाम् = अतिथीनाम् । कलितानि= सम्पादितानि, यथोचितम् = यथायोग्यम्, साधनानि = सामग्र्य, येषु तेषाम्। प्रकोष्ठानाम्=कक्षाणाम्, "कमरा" पदवाच्यानाम्। गवाक्षान्= वातायनानि, "खिड़की" इति हिन्दी। उन्मुद्रय = उद्घाट्य, "खोलकर" इति हिन्दी । नागदन्तिकासु = कीलिकासु, 'खूँटा" इति हिन्दी

---

कटहल की शाखा से घोड़े को खोल कर, दुर्गाध्यक्ष द्वारा भेजे गए एक नौकर के हाथ में उसकी लगाम देकर, दूसरे सेवक द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से बादलों के जलकणो के सम्पर्क से हाथियों के यूथो को तृप्ति देने वाली मधुर गन्ध को प्रकट करने वाली और चन्द्रमा की किरणमाला से सुशोभित भूमि को देखता हुआ रघुवीरसिंह धीरे धीरे हनुमानजी के मन्दिर तक आया। वहाँ आगन्तुकों के निवास के लिये ही सभी आवश्यक सामग्री से सम्पन्न कमरो में से एक कमरे में प्रवेश करके, खिड़की खोल कर, कवच और वस्त्रों को खूँटियों पर हवा के रुख की

दन्तिकासु वर्म वस्त्राणि चावलम्ब्य आसन्न-कूपाज्जलमुत्तोल्य हस्त-पादं प्रक्षाल्य, हनूमन्मूर्त्तिं दृष्ट्वा कमपि नित्य-नियममिव निर्वाह्य, दुर्गाध्यक्षप्रेषितं किञ्चिदाहारादिकमुपगृह्य, ग्रीष्मसुखावहानां वातानां सुखमनुभवन्, कदाचिच्चन्द्रम्, कदाचित्तारकाः, कदाचिद् गिरि-शिखराणि, कदाचिद् दुर्ग-प्राचीरम्, कदाचित् सुदूर-पर्य्यटद्यामिक-यातायातम्, कदाचिन्नतोन्नतभूभागान्, कदाचिच्चाभ्रङ्कषान् हनूम-न्मन्दिर-कलशान् अवलोकयन्, मन्दिरात् पश्चिमतः परिक्रमा-पर-पादाहति पिच्छिल-पाषाण-पट्टिका-परिष्कृत-वेदिकायां पर्यटन्

---

अवलम्ब्य = लम्बयित्वा। उत्तोल्य = उद्धृत्य। हस्तपादम्, प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भाव.। नित्यनियमम्=सन्ध्यादिम्। निर्वाह्येवेति सम्बन्धः। यातायातसमये समुचितरूपेण तदनुसरणमिवार्थव्यञ्जकम्। वातानाम् = वायूनाम्। दुर्गस्य प्राचीरम् = प्रान्ततो वृतिः "प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः" इत्यमरः। सुदूर पर्यटतां यामिकानाम्=प्रहरिणाम्, यातायातम्=गतागतम्। अभ्रम् = मेघम्, "अभ्रं मेघो वारिवाहस्तनयित्नुर्बलाहकः" इत्यमरः, कषन्ति=उल्लिखन्तीत्यभ्रङ्कषास्तान्। 'सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः' इति खच् "खित्यनव्ययस्य" इति मुम्। परिक्रमापराणाम्=प्रदक्षिणानिरतानाम्, पादाहतिभिः=चरणताडनैः, पिच्छिलाभिः=पङ्किलाभिः, गमागमचिह्नमयीभिरिति यावत्, पाषाणपट्टिकाभिः = प्रस्तरखण्डैः, परि-

---

ओर लटका कर, पास के कुएँ से पानी भर कर हाथ पैर आदि धो कर, हनुमन्मूर्ति का दर्शन कर, कुछ नित्य-नियम-सा पूरा कर दुर्गाध्यक्ष द्वारा भेजा गया भोजन खाकर, ग्रीष्मकाल में अच्छी लगने वाली वायु के स्पर्श-सुख का अनुभव करते हुए, कभी चन्द्रमा, कभी तारों, कभी पर्वत शिखरों, कभी दुर्ग की चहारदीवारी, कभी दूर तक गश्त लगाते हुए पहरेदार के गमनागमन, कभी नतोन्नत भूभाग और कभी आकाश चुम्बी मन्दिर के कलशों को देखते हुए, मन्दिर के पश्चिम ओर, परिक्रमा करने वाले लोगों के पैरों के आघात से पङ्किल और

कञ्चित् समयमतिवाहयाम्बभूव ।

तावत् तेन पयः-फेनासार-च्छवि-विजित्वरया ज्योत्स्नया द्विगुणितोत्साहेन, धीर-समीर-स्पर्श-शान्त-श्रमेण, प्रस्फुरच्चन्द्रकला-कलिका-भ्रमद्-भ्रमर-झङ्कार-भर-मन्द्र-स्वर-पीयूष-शीकर-परिमार्जित-श्रवणेन समश्रूयन्त केचित् शुकीर्मूकयन्तः, हंसीर्ध्वंसयन्तः, सारिकाः सारयन्तः, कोकिलाः विकलयन्तः, वीणां च विगणयन्तः, काकली-

---

ष्कृतायाम्=भूषितायाम्, वेदिकायाम्=वितर्दिकायाम्। अतिवाहयाम्बभूव=गमयाञ्चकार ।

तावत्तेन स्वरालापाः समश्रूयन्तेति सम्बन्धः। त त्रिभिर्विशिनष्टि—पयःफेनानाम्=दुग्धडिण्डीराणाम्, आसारस्य=धारासम्पातस्य, छवेः=शोभायाः, विजित्वरया=जयनशीलया, द्विगुणितोत्साहेन=प्रवर्द्धितहर्षेण। धीरसमीरस्य=मन्दवातस्य, स्पर्शेन शान्तः=अपगतः, श्रमः=खेदो यस्य तेन। प्रस्फुरन्त्या=चाञ्चल्यमुपगच्छन्त्या, चन्द्रकलया=चन्द्रिकया, विकसितासु कलिकासु, शाकपार्थिवादिगणीयमध्यमपदलोपिसमासः, भ्रमताम्=चरताम्, भ्रमराणां झङ्कारभरेण=गुञ्जनातिरेकेण, सञ्जातो मन्द्रस्वर एव पीयूषम्=अमृतम्, तस्य शीकरैः=कणैः, परिमार्जिते=शोधिते, श्रवणे=कर्णौ यस्य तेन। केचित्=कियन्तश्चित्, स्वरालापाः। शुकी हंसी-सारिकादिस्वरविजेतृत्वेनातिश्रेष्ठत्व निखिलस्वर-

---

प्रस्तरखण्डों से सुशोभित वेदी (चबूतरे) के ऊपर टहलते हुए कुछ समय बिताया।

तब तक दूध के फेन के धारासम्पात की छटा को जीतने वाली चाँदनी से द्विगुणित उत्साहवाले तथा मन्दवायु के स्पर्श से शान्त परिश्रम वाले एवं छिटकती हुई चाँदनी से विकसित कलियों पर मँडराते हुए भौंरों के गुञ्जन भार से मन्द्रस्वर रूपी अमृत कण से शुद्ध हुए कर्णों वाले, उस सवार ने, शुकों को मूक बनाने वाले, हंसियों को विजित करने वाले, सारिकाओं को पलायित करने वाले, कोयल को विकल बनाने वाले और

लमयाः स्वरालापाः। श्रवणेनैव तेनावगतं यत् आलापा एते स्या अपि बालिकायाः, सा च लज्जा परवशा; यतो नोच्चैर्गायति, च-कुलप्रसूता; यतो नान्यासामेवमुदारा वाक्, समीपवर्तिनी, यतः ष्टः स्वरः, पूर्वस्यामुपविष्टा च, यतस्तत एव मूर्च्छन्ति मूर्च्छनाः।

अथ कर्णाविव गृहीत्वा आकृष्टो रघुवीरसिंहो मन्दिरं दक्षिणा दक्षिणीकृत्य तयैव प्रदक्षिणा-वेदिकया तत्क्षणमेव मन्दिरस्याग्नि-कोणे कपोत-पोतक-गूंकार-मधुर-कपोतपालिकाधरस्तम्भारम्भ-

---

विल्लरध्वस्त ध्वनितम्। बालिकायाः = बाल्ययौवनसन्धौ विद्यमानायाः। लज्जापरवशा = त्रपाधीना। अप्राप्तपूर्णयौवनत्वात्त्रपारवशा। कन्याना हि लज्जाधीनत्वं लक्षणकोटिप्रविष्टम्। यतः = यस्माद्धेतोः। मूर्च्छना इति रतः "अचो रहाभ्याम्" इति द्वित्वे चरत्वे च तत्साधुत्वम्। तुक्तु न सम्भावना, रेफव्यवधानेन ह्रस्व दीर्घात्परत्वाभावादिति ध्येयम्।

कर्णाविव गृहीत्वाऽऽकृष्ट इत्यत्र लोकोक्तिरलङ्कारः। दक्षिणा = दक्षिणतः, आजन्तमव्ययम्, तद्योगे द्वितीया। कपोतपोतकानाम् = पारावतशावकानाम्, गूंकारेण = वक्तव्यशब्देन, मधुरायाः = मनोहरायाः, कपोतपालिकायाः = विटङ्कस्य, "कपोतपालिकायान्तु विटङ्कं पुन्नपुंसकम्"

---

वीणा को निन्दित करने वाले काकली ध्वनिमय स्वरों के आलाप सुने।

सुनने से ही उसने जान लिया कि ये आलाप किसी बालिका के ही हैं और वह लज्जा से दबी हुई है, क्योंकि ऊँचे स्वर से नहीं गा रही है तथा बड़े कुल में पैदा हुई है, क्योंकि औरों की वाणी इतनी उदार नहीं हो सकती एवं वह यहीं समीप में ही है, क्योंकि स्वर बिल्कुल स्पष्ट है, पूर्व दिशा में बैठी है, क्योंकि उधर से ही ये स्वर लहरियाँ आ रही हैं।

इसके बाद कान पकड़ कर खींचे गये से रघुवीरसिंह ने मन्दिर की दक्षिण ओर से प्रदक्षिणा करके, उसी प्रदक्षिणा की वेदी से, उसी क्षण, मन्दिर के अग्निकोण में स्थित कबूतरों के बच्चों के 'गुटरगूं' के मधुर शब्द से कपोतपालिका (टावली) के निचले खम्भे के

निकटे समुपतस्थे अवालोकयच्च-यत् पूर्वस्यामस्ति विशाला पुष्प-वाटिका, यस्यामतिमुक्त-लताः सौरभेण विष्णुपदमपि मदयन्ति, यूथिकाः सुगन्ध-तरङ्गैर्हरितामपि हृदयं हरन्ति, पाटलि-पटलानि अलि-पटल-रसनाश्चटुलयन्ति, मालतिकाश्च मरन्द-बिन्दु-सन्दोहैः वसुमतीं वासयन्ति। तस्यां मन्दिर-पूर्वद्वार-सम्मुखे एवास्त्येका परम-रमणीया ज्योत्स्ना-स्पर्श-प्रकटित-द्विगुणतर-चाकचक्या

---

इत्यमर, अधः = निम्नादौ, स्तम्भारम्भस्य निकटे। अथस्तम्भेत्यत्र 'तटेरे वारि वा विसर्गलोप'। अतिमुक्तलताः माधवीलता, "अतिमुक्तः पुण्ड्रक स्याद्वासन्ती माधवी लता" इत्यमर। सौरभेण = सौगन्ध्येन। विष्णुपदम् = नभ। "वियद्विष्णुपद वा तु पुंस्याकाशविहायसी" इत्यमर। यूथिकाः = मागध्य। "अथ मागधी। गणिका यूथिकाऽम्बष्ठा" इत्यमर। हरिताम् = दिशाम्। हृदयम् = मध्यम्। अन्तरालप्रान्तमिति यावत्। हरन्ति = स्वायत्तीकुर्वन्ति। पाटलिपटलानि = मोघासमूहः। 'पाटलि पाटला मोघा काचस्थाली फलेरुहा। कृष्णवृन्ता कुबेराक्षी" इत्यमरः। अलिपटलरसना = द्विरेफमालाजिह्वा। चटुलयन्ति = चञ्चलयन्ति। मालतिकाः = जातय। "सुमना मालती जाति" इत्यमर। मरन्द-बिन्दु सन्दोहैः = मकरन्दकणसमूहैः। वसुमतीम् = वसुधाम्। वासयन्ति = सुगन्धयन्ति। परमरमणीया = नितान्तहृद्या। वेदिकाविशेषणमिदम्। ज्योत्स्नायाः = कौमुद्या, स्पर्शेन = संसर्गेण, प्रकटित द्विगुणतर चाक-

---

निकट खड़े होकर देखा कि पूर्व मे एक विशाल वाटिका है, जिसमें माधवी-लतायें अपने सौरभ से आकाश को भी मदमस्त बना रही है, जूही के पेड़ सुगन्धित तरङ्गो से दिशाओ के भी हृदय को हर ले रहे हैं, पाटरि के समूह भ्रमर कुलो की रसनाओ को चञ्चल बना रहे हैं और मालती लतायें मकरन्द बिन्दु के समूहो से पृथ्वी को सुगन्धित कर रही हैं। उस वाटिका मे मन्दिर के पूर्व द्वार के सामने ही एक परम सुन्दर, चाँदनी के स्पर्श से द्विगुणित चमचमाहट को प्रक-

सोपानत्रयालङ्कृत-चतुरवरोहा हंसपक्ष-वलक्ष-च्छवि-विजितवर-धवल-ग्राव-वेदिका। अस्यामागन्तुकानामुपवेशाय रचिताः पाषाणमया एव कतिचन मञ्चाः, तेषामन्यतमे उपविष्टा बालिकैका। सेयं वर्णेन सुवर्णम्, कलरवेण पुंस्कोकिलान्, केशैः रोलम्ब-कदम्बानि, ललाटेन कलाधर-कलाम्, लोचनाभ्यां खञ्जनान्, अधरेण बन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नां तिरस्कुर्वती, वयसा एकादशमिव वर्षं

---

च्छवयम् = कान्तिविशेषो यया सा। सोपानत्रयेण = आरोहणत्रयेण, "आरोहणं स्यात् सोपानम्" इत्यमरः, अलङ्कृता=विभूषिता, अत एव चतुर्षु = वेदस्रयाकरयानेषु, अवरोहः = स्थितिस्थानं यस्याः सा। हंसपक्षाणाम् = कादम्बपत्राणाम्, "गरुत्पक्षच्छदाः पत्रं पतत्रं च तनूरुहम्" इत्यमरः, वलक्षायाः = सितायाः, छवेः = शोभायाः, विजितवराणाम् = जयनशीलानाम्, धवलानाम् = स्वच्छानाम्, ग्राव्णाम् = प्रस्तराणाम्, वेदिका। मञ्चाः = उच्छ्रितभूमयः, उच्छ्रायार्थकान्मञ्चेर्घञ्, "वृद्धोऽन्धः पतिरेव मञ्चकगतः" इत्यादौ प्रसिद्धम्। बालिका, इयमेव कथानायिका। "वर्णेन सुवर्णं तिरस्कुर्वती" इत्येवरूपेण सर्वत्रान्वयः। वर्णेन सुवर्णतिरस्कारोक्त्या सुवर्णरूपोपमानानादरप्रतीत्या प्रतीपालकारः सहृदयजनसवेद्यः। रोलम्बकदम्बानि = भ्रमरसमूहान्। बन्धुजीवम् = रक्तकम्, "रक्तकस्तु बन्धुको बन्धुजीवकः" इत्यमरः। "दुपहरिया" इति हिन्दी। हासेन, हासस्य

---

करनेवाली तीन सीढ़ियों से शोभित, चार अवरोहवाली, हंस के पक्ष की सी उज्ज्वल छवि को जीतनेवाले श्वेत पत्थरों से निर्मित, वेदी (चबूतरा) है। इस पर आगन्तुकों के बैठने के लिए पत्थर से ही बनी हुई कुछ कुर्सियाँ हैं जिनमें से एक पर एक बालिका बैठी है। यह बालिका अपने गौर वर्ण से सुवर्ण का, मधुर शब्द से पुरुष कोकिल का, बालों से भ्रमर-समूहों का, ललाट से चन्द्रमा की कला का, नेत्रों से खञ्जना का, अधर से दुपहरी पुष्प का, हास से चाँदनी का तिरस्कार करती हुई, वय से

स्पृशन्ती, श्याम-कौशेय-वस्त्र परिधाना, श्वेत-बिन्दु-सन्दोह-सङ्कुल रक्ताम्बर-कञ्चुकिका, कण्ठे एकयष्टिकां नक्षत्रमालां बिभ्रती, सिन्दूर-चर्चा-रहित-धम्मिल्लेन परिशिष्टं पाणिपीडनमिति प्रकटयन्ती, हस्ते पाटलि-कुसुमस्तवकमेकमादाय शनैः शनैर्भ्रामयन्ती, तमेव विलोकयन्ती च, अविदित-बहुल-तान-तारतम्यं मन्द-मन्दं मुग्ध मुग्ध मधुरं मधुरं किञ्चिद् गायतीति।

---

वर्णं श्वेतमय इति कविसमयख्यातिः। श्याम कौशेयवस्त्रम् = पट्टवसनम्, परिधानं यस्याः सा। श्वेतबिन्दूनां सन्दोहैः = समूहैः, सङ्कुलस्य = व्याप्तस्य, रक्ताम्बरस्य = रक्तवस्त्रस्य, कञ्चुकी = चोलिका यस्याः सा। बहुव्रीहौ "शेषाद्विभाषा" इति कपि "केऽण" इति ह्रस्वः। एकावलीम् = एकयष्टिकाम्। नक्षत्रमालाम् = सप्तविंशतिमुक्तामयीम्। "एकावल्येकयष्टिका। सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैः" इत्यमरः। सिन्दूरचर्चारहितेन = कुङ्कुमसम्पर्कशून्येन, अनूढाः सीमन्ते सिन्दूरं न धारयन्तीति प्रथा। धम्मिल्लेन = संयतकेशसमूहेन, "धम्मिल्लः संयताः कचाः" इत्यमरः। पाणिपीडनम् = विवाहः। परिशिष्टम् = अवशिष्टम्। स्तबकः = गुच्छः, तम्। अविदित बहुल तानतारतम्यम् = तानोत्कर्षापकर्षौ, यस्मिंस्तत्, क्रियाविशेषणम्, अग्रेतनानि च।

---

एकादश वर्ष का स्पर्श-सा करती हुई, श्याम वर्ण के रेशमी वस्त्रों को पहने, सफेद बिंदियों के समूह से व्याप्त रक्त वर्ण की कञ्चुकी धारण किये, गले में सत्ताईस मोतियों से बनी हुई एकलरी ( आभूषण ) पहने, सिन्दूर-सम्पर्क से शून्य सीमन्त ( माँग ) के द्वारा 'अभी इसका विवाह अवशिष्ट है' यह प्रकट करती हुई, हाथ में गुलाब के फूलों का एक गुच्छा लेकर उसे धीरे-धीरे घुमाती हुई और उसी को देखती हुई, तानों के क्रम विचार से रहित कुछ मन्द-मन्द मनोहर-मनोहर और मधुर-मधुर गा रही है।

यद्यपि नैतया सरस्वती सरूपया अज्ञात-तातोत्सङ्ग शयनातिरिक्त सांसारिक-सुखया कदाऽपि गातुं शिक्षितम् , न वा गायकानां तास्ताः कर्ण-रसायन-मूर्छनाः कर्णातिथीकृताः, तथाऽपि भज्यमानमपि, त्रुट्यमानमपि, आम्रेड्यमानमपि, अदर्शित-रागविशेषमपि, आरोहावरोह-ध्रुवाभोगालङ्कारादि-कथा-शून्यमपि, निजकल्पनामात्रम् , तद्देशीय ग्राम्यस्त्री-गानानुकल्पम् , सुदीर्घ-स्वर-रणनं

अज्ञात तातोत्सङ्गशयनादतिरिक्तं सांसारिकं सुखम् = प्रियानन्दो यया तया । कर्णयोः = श्रोत्रयोः, रसायनानि = आनन्ददायिन्यः मूर्छनाः । कर्णातिथीकृताः = श्रोत्रगोचरीकृताः । मूर्छनाना श्रोत्रगोचरत्वे स्थिते कर्णातिथीकरणरूपे भक्त्या समारोप इति समाधिर्नाम गुणः ।

गानमिदं परमसरसादि आसीदिति सम्बन्धः । गान विशिनष्टि भज्यमानम् = स्खलत् । त्रुट्यमानम् = विच्छिन्नप्रायम्, पूर्वापरसम्बन्धशून्यमिति यावत् । आम्रेड्यमानम् = पुनः पुनरुच्चार्यमाणम् । यद्यपि गाने गुणताऽऽम्रेड्यमानतायास्तथाप्यनवसरे स्थितत्वे दोषत्वमेवेति वेदितव्यम् । न दर्शितः = न प्रकटीकृतः, रागविशेषः = ललिताद्यनेकभेदः, यस्मिंस्तत् । आरोहः = स रि ग-म-प ध-नीनामुच्चैस्त्वम् , अवरोहः = तन्नीचैस्त्वम् । ध्रुवः = स्थिरपदम् , आभोगः = रागविस्तारः, अलङ्कारः = रसादिः, तत्कथाशून्यमपि । तद्देशीयाना ग्राम्यस्त्रीणाम्=हालिकदाराणाम् , गानस्य = गीतेः,

यद्यपि सरस्वती के समान रूपवाली तथा पिता की गोद में सोने के अतिरिक्त किसी भी सांसारिक सुख को न जानने वाली इस बालिका ने न तो कभी गाना ही सीखा था और न गायकों की कानों में मधुर वर्षा करने वाली स्वर-लहरियों को ही सुना था, फिर भी स्खलिताक्षर होने पर भी, पूर्वापर सम्बन्ध शून्य होने पर भी, पुन-पुनः उच्चारित होने पर भी, किसी विशेष राग से रहित होने पर भी, आरोह, अवरोह, ध्रुव ( स्वर की स्थिरता ), राग-विस्तार एवं अलंकार आदि के तत्त्व से शून्य होने पर भी, केवल अपनी कल्पना-मात्र, उस प्रान्त की कृषक वधुओं के गाने के समान, ऊँची आवाज में गाया यह गीत,

गानमिदं परम-सरस परममधुरं परमहारि चाऽऽसीत्।

रघुवीरसिंहस्तु स्वरालाप-श्रवणेनैव परवशो विलोक्यैनां 'कोऽहम्? काहम्? केयम्? किमिदम्?' इत्यखिलं यौगपद्येनैव विसस्मार।

अहो! आश्चर्यम्, य एव फणि-फणा-फूत्कारेष्वपि सक्रोध हर्य्यक्ष-जृम्भारम्भेष्वपि मल्ल-वल्लजाग्र-परिस्पर्धि ...

---

अनुकल्पम्=तुल्यम्। मुक्तु दीर्घाणाम्=धाराणाम्, स्वराणां रणनम्=ध्वनि यस्मिंस्तत्। परमहारि=अत्यन्ताकर्षकम्।

अखिलम्=समस्तम्। यौगपद्येनैव=एककालमेव।

"विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापञ्च तनुते॥"

इति प्राचीनस्य तदवस्थावर्णनमनुचिन्तनीयम्।

अहो आश्चर्यम्, "ओम्" इति प्रशस्त्य प्रकृतिमावय। फणिफणा फूत्कारेषु=सर्पस्फटा-'फूं'-रवेषु। सक्रोधस्य=कुपितस्य, हर्य्यक्षस्य= केशरिण. "हर्यक्ष केशरी हरिः" इत्यमरः, जृम्भारम्भेषु=मुखव्यादानोपक्रमणेषु। मल्लवल्लजानाम्=प्रशस्तमल्लानाम्, "मतल्लिका मचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ। प्रशस्तवाचकान्यमूनि" इत्यमरः। अग्रस्य परिस्पर्धिनः=प्रतिद्वन्द्विनः, खराः=कठोराः, नखराः=नखाः, येषां ते च ते

---

परम सरस, परम मधुर और परम मनोहर था।

रघुवीर सिंह उस स्वर लहरी के श्रवण मात्र से परवश होकर, उस बालिका को देख कर, 'मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ? यह कौन है? यह क्या है?' इत्यादि सभी कुछ एक साथ ही भूल गया।

अहो! आश्चर्य है। जिसने सर्पों के फनों की फुफकारों में भी, क्रोधाविष्ट सिंह की जमुहाई के समय भी, उत्तम भालों के अग्रभाग के प्रतिस्पर्धी तेज नाखून वाले रीछों के (मारने के लिये) दौड़ने के समय

धावनेष्वपि घन घनाघन-घर्षण-विघट्टित गैरिक व्रात जल प्रपात-गिरि-गह्वरोत्फालेष्वपि तरलतर-तरङ्ग-तोयावर्त्त-शताकुल-तरङ्गिणी-तीव्रतर-वेगेष्वपि गण्डक-मण्डल-घोणा-घर्षण घोर-घर्घराघोष-घोरतर-प्रान्तरेष्वपि च धैर्य नात्याक्षीत्, कार्यजात न व्यस्मार्षीत्, आत्मानं च न न्यगकार्षीत्; तस्याधुना स्विद्यन्त्यङ्गानि, रजते गात्र

भल्लाः = ऋक्षा, "भल्लो भल्लूकशस्त्रयो." इति कोष, तेषा धावनेषु = मार्गार्थत्वरितगतिषु। घनानाम् = सान्द्राणाम्, घनाघनानाम् = वर्षनिरत वारिदानाम्, "शक्रो घातुकमत्तेभो वर्षुकाब्दो घनाघन" इत्यमर, घर्षणेन = घट्टनेन, विघट्टितेषु = विदलितेषु, गैरिकव्रातेषु = गैरिकमिलितप्रस्तरखण्डेषु, जलप्रपाताः = आसारा, येषु तादृशानि यानि गिरिगह्वराणि तेषाम्। उत्फालेषु = उत्कूर्दनेषु। तरलतराः = अतिचञ्चला, तरङ्गाः = लहरय, येषु तादृशाना तोयानाम् = वारीणाम्, आवर्त्तशतैः = असख्य भ्रमरिकाभि, आकुलानाम् = क्षुभितानाम्, तरंगिणीनाम् = नदीनाम्, तीव्रतरेषु = अतितीव्रेषु, वेगेषु = ओघेषु। गण्डकमण्डलस्य = खड्गिसमूहस्य, घोणानाम् = नासानाम्, "घोणा नासा च नासिका" इत्यमर, घर्षणेन, घोरः = भयावह, यो घर्घराघोषः = घर्घररव, तेन घोरतराः = अतिकठोरा, प्रान्तराः = दूरशून्याध्वान, तेषु। अनुप्रासोऽत्र गद्यसमूहे। न-अत्याक्षीत् = न त्यक्तवान्। न व्यस्मार्षीत् = न विस्मृतवान्। न न्यगकार्षीत् = न न्यक्कारमकरोत्, न नीचैरमन्यतेति यावत्। स्विद्यन्ति =

भी, घने बरसते हुये बादलों के घर्षण से विदलित हुये और गेरू मिले हुये पत्थरों पर गिर रही जलधाराओं वाली पहाड़ी गुफाओं में कूदने में भी, अति चञ्चल तरग वाले जल में विद्यमान सैकड़ों भँवरों से भरी हुयी नदियों के तीव्रतर वेग में भी, गैंडों के समूह की नासिकाओं के घर्षण से उत्पन्न घोर घर्घर शब्द के कारण भयानक, दूर तक फैले शून्य मार्गों में भी धैर्य नहीं छोड़ा, अपना काम नहीं भुलाया, अपने को पतित नहीं किया, इस समय उसी के अग पसीने से तर हो रहे

यष्टिः, विमनायते हृदयम् अञ्चन्ति रोमाणि, क्षुभ्यति च मनः तत् कथमिदम् ? किमिदम् ? कुत इदम् ? अहह ! सत्यम् ! वीर बालोऽप्येष प्राप्यावसरम् आहतो मदन मृगयुना।

तावदकस्माद् "रघुवीर ! रघुवीर ! त्वं शिववीरस्य चरोऽसि गूढाभिसन्धिषु प्रेष्यसे, अल्पं तव वेतनम्, साधारणी तवावस्था, खड्ग-धारावलेहनमिव कष्टतरं तव कार्यम्, कैशोरं वयः, अतु

स्वेदयन्ति भवन्ति। एजते = कम्पते। विमनायते = वैक्लव्यमधिगच्छति। अञ्चन्ति = उद्गतानि भवन्ति। क्षुभ्यति = क्षोभमनुभवति। मदन मृगयुः = व्याधस्तेन। रूपकम्।

वीररसप्रधानेऽस्मिन् काव्ये तदङ्गतया विप्रलम्भशृङ्गारवर्णनमिदम्। सौवर्णी रघुवीरसिंहालम्बनविभावौ, रघुवीरधैर्यध्वंससमुद्भूताः स्वेदगात्र कम्पनादयोऽनुभावाः, निर्वेदादयश्चाग्रे वक्ष्यमाणा व्यभिचारिण इति विभावनीयम्।

तावदकस्मादन्तःकरणेन स्वयमेव प्रबोधितः पुनरतामेवेत्थिग्नेति सम्बन्धः। "शिववीरस्य चरोऽसि" इत्यनेनोपजनसम्पर्किणस्ते न युक्तमिदमिति व्यञ्जितम्। तथा च माघस्य पद्यम्—"न गणित यदि जन्म पयोनिधौ, हरशिरस्थितिभूः इति विस्मृता ?" गूढाभिसन्धिषु = गुप्तकृत्येषु। अल्पम् = सम्मीलनिर्वाहायोग्यम्। नागरव इव तदानीं दरिद्रा अलब्धभृतयश्चोद्वाह्य कामपि स्त्रियं स्वयं तस्याश्च जीवन व्यर्थयन्ति स्मेति विरायते। साधारणी तवावस्था, लोकोक्तिरियम्। अवस्था=दशा। वयोऽर्थकत्वे नु—"कैशोरं वयः" इत्यत्र वैयर्थ्यापात इति ध्येयम्। खड्गधाराया अवलेहनम्=रसनयाऽऽस्वादनम्।

हैं, शरीर काँप रहा है, हृदय अनमना हो रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, और मन क्षुब्ध हो रहा है। यह कैसे ? यह क्या ? यह कहाँ से ? अरे ! सचमुच इस वीर बालक को भी शिकारी कामदेव ने अवसर पाकर घायल कर दिया।

तब तक अकस्मात् "रघुवीर ! रघुवीर ! तुम शिववीर के दूत हो। गूढ़ कार्यों में भेजे जाते हो, तुम्हारा वेतन अल्प है, स्थिति साधारण है तलवार की धार को चाटने की तरह अत्यन्त कठिन तुम्हारा काम है

दर्शि हृदयम्, सर्वत्र जागरूको राजदण्डः, अवितर्कणीया च भाविनी घटना। तन्मा स्म त्वं मुखचन्द्रावलोकनेऽधर-सीधु-तृषाभिः, कोमलाङ्गाऽऽलिलिङ्क्षिषाभिः, मधुरालाप-शुश्रूषाभिश्चाऽऽत्मानं विक्रीणीष्व"-इत्यन्तःकरणेन स्वयमेव प्रबोधितो नेत्रे प्रमृज्य, स्तम्भावष्टम्भं परिहाय, लोचनयोरुपरि स्फुरतः कुञ्चित-कचानपसार्य, शीतलं निःश्वस्य च, आत्मनो दशां स्मरन्नेव पुनस्तामेव कौमारात्परं वयश्चुचुम्बिषन्तीं कुसुम-कुड्मल-घूर्णन-व्याजेन यूनां

"राजसेवा मनुष्याणामसिधारावलेहनम्।
पञ्चाननपरिष्वङ्गो व्यालीवदनचुम्बनम्॥"

इत्युक्तेः। जागरूकः = अनिद्रितः। सर्वत्र लब्धप्रसर इति यावत्। इयमपि लोकोक्तिः। मा स्म मुखचन्द्रावलोकनादिभिरात्मानं विक्रीणीष्वेति सम्बन्धः। अधरस्थितस्य सीधुनः = ऐक्षवमद्यस्य, तृषाभिः = तृष्णाभिः। कोमलाङ्गालिलिङ्क्षिषाभिः = मृदुतन्वाश्लेषवाञ्छाभिः, मधुरालापशुश्रूषाभिः=हृद्यशब्दश्रवणमनोरथैः। प्रमृज्य=प्रोञ्छ्य। स्तम्भावष्टम्भम् = स्थगितताम्। सौवर्णीदर्शनोत्था जडतामिति यावत्। शीतलं निःश्वस्य, लोकोक्तिः। "ठण्डी सास लेकर" इति लोके, स्वदशास्मरणखेदसमुत्थमिदम्। कौमारात्परं वयः=यौवनम्। "कौमार यौवन जरा" इत्यमरयथानितयाभि-

अभी किशोर वय है, अल्पदर्शी हृदय है और राजदण्ड सभी ओर सतर्क है तथा भविष्य अचिन्तनीय है। तो तुम मुखचन्द्र के अवलोकन से, अधर वारुणी के पान की तृष्णा से, कोमल अङ्गों के आलिंगन की अभिलाषाओं से और मधुर शब्दों के सुनने की आकांक्षाओं से अपने को मत बेचो," इस प्रकार अन्तःकरण द्वारा स्वयं ही उद्बुद्ध होकर, आँखों को पोंछकर, (उस लड़की के दर्शन से उत्पन्न) जड़ता को त्याग कर, आँखों पर लहराते हुए घुँघराले बालों को हटाकर, ठंडी साँस लेकर, अपनी दशा का स्मरण करते हुए ही, फिर एक बार, उस यौवन के चुम्बन की आकांक्षिणी पुष्पकलिका को घूमने के बहाने युवकों के मन को

मनो घूर्णयन्तीं सौन्दर्य-सारावतार-स्वरूपामैक्षिष्ट ।

अथ सा तु "सौवर्णि ! सौवर्णि ! तातस्त्वामाकारयति" कस्यापि वटोरिव वाचमाकर्ण्य, आम् ! एषा आगच्छामि" मधुरमुदीर्य, उत्थाय, वेदिकातोऽवतीर्य, वाटिकायामेव ... सुधा-धवलमेकं गृहं प्राविशत् ।

रघुवीरसिंहस्य समीपत एव गतेति गमन-समये स्तगति-स्तम्भं परिवृत्त-ग्रीवं "कोऽयम् ?" इत्येनं ... मास । परतश्च "स्यात् कोऽपि" इति समुपेक्ष्य गृहं प्रविष्टेत्यपरो

प्रायम् । चुचुम्बिषन्तीम्=चुम्बितुमिच्छन्तीम् । स्प्रष्टुमभिलषन्तीमिति कुसुमकुड्मलघूर्णनव्याजेन=सुमकलिकापरिचालनकपटेन । परिचालयन्तीम् । सौन्दर्यसाररय=सुन्दरतातत्त्वस्य । देहधारिणीम् । पिण्डीभूतसौन्दर्यामिति यावत् । आगच्छामि, "वर्तमा सामीप्ये वर्त्तमानवद्वा" इति लट्, सुधाधवलम्=चूर्णक-सितम् । इ 'चूना' इति भाषायाम् । चकितेन=विस्मयेन सह वर्तते यस्या क्रियायाम् स्तगतिस्तम्भम्=उगमनावरोधम्, परिवृत्तग्रीवम्=परिवर्तितकन्धर

घूरती हुई सौन्दर्य के सार की अवतार स्वरूपा उस (कन्या) देखने लगा ।

और वह "सौवर्णि ! सौवर्णि ! दादा जी तुम्हें बुला रहे हैं" प्रकार किसी बटु की-सी आवाज सुनकर, "अच्छा आ रही हूं" मधुरता के साथ कह कर, उठकर तथा वेदी से उतर कर, वाटिका में दक्षिण की ओर स्थित एक चूने से पुते हुए स्वच्छ घर में घुस गई ।

वह रघुवीर सिंह के पास से होकर ही गई । अतः उस ... उसने कुछ चकित नेत्रों से निस्तब्ध हो, कुछ रुककर, गर्दन घुमा "यह कौन है ?" इस प्रकार क्षण भर रघुवीरसिंह को देखा, फिर "... होगा" इस प्रकार उसकी उपेक्षा करके घर में घुस गई । यह (...

ो वशीकार-प्रयोग-प्रचारः।

त रघुवीरश्च ततः प्रतिनिवृत्य, पुनः स्वाधिकृत-कोण-कोष्ठ-ऽऽयातः।

तत्र च गवाक्ष-जाल-प्रसारितैः राजत-मार्जनी-निभैः ानिधि-कर-निकरैः समूह्य संशोधित इवान्धकारे; पयः-ोधि-फेनैरिवाऽऽस्तृते शयनीय-पीठे उपविश्य, कदाचिदध इव ं विदधत्, कदाचित् कपोलं करे कलयन्, कदाचिज्जाला-

्याविशेषणानीमानि। वशीकारप्रयोगप्रचारः=स्वायत्तीकरणविधानप्रसारः। ्वीरविषयकमिदम्।

स्वाधिकृतकोणकोष्ठम् = निर्दिष्टस्वावासप्रान्तकक्षम्।

गवाक्षजालप्रसारितैः = वातायनरन्ध्रविकीर्णैः। रजतस्येव राजती= ्यमयी, मार्जनी=बहुकरी "झाड़ू" इति हिन्दी, तत्तुल्यैः। कलानिधि-रनिकरैः = चन्द्रकिरणसमूहैः, समूह्य = सञ्चित्य। "इकट्ठा कर" ति भाषायाम्। संशोधिते = दूरीकृते। "नक्षत्रमृक्षं भं तारा तारकाऽ-ुडु वाऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। पयःपयोधिफेनैः = क्षीरवारिधिडिण्डीरैः। ास्तृते = विस्तीर्णे, शयनीयपीठे = पल्यङ्के। विदधत् = कुर्वाणः। नाभ्यस्ताच्छतुः" इति नुम्निषेधः। जालान्तरेण = वातायनरन्ध्रेण।

ुवक के लिए) एक और दूसरा वशीकरण के प्रयोग का अनुष्ठान हो ाया।

रघुवीर वहाँ से लौटकर फिर अपने अधिकृत कोने के कमरे में ही ला आया।

और वहाँ पर खिड़कियों की जाली से प्रविष्ट चाँदी की झाड़ू के मान चन्द्रमा की किरणो के समूह से इकट्ठा करके अन्धकार के साफ-ना कर दिये जाने पर, दुग्ध-समुद्र के फेन की तरह बिछे हुए बिस्तर र बैठकर कभी नीचे की ओर मुँह लटकाता, कभी हाथों पर

न्तरेण तारकमण्डलमवलोकयन्, कदाचित्किमिति मृषा चिन्तनैरि त्यात्मनैवाऽऽत्मानं सान्त्वयन्, कदाचिच्च 'निद्रे! कुत्र विद्रुताऽसि ?' इत्यशान्तिं बिभ्रत्, पार्श्वत पार्श्वे परिवर्त्तमानो होरामेकामयापयत्।

ततश्च 'अहह! शिववीरकार्यमसम्पादितमेकमवशिष्यत इति किञ्चित् सस्मृत्येव, कशयेव ताडितः सपद्युत्थाय, 'मन्दिर पुरोहितः क ?' इति काञ्चिदापृच्छ्य, केनाचिन्निर्दिष्टमार्गः वाटिकायां तदेव वालिकया प्रविष्टचरं गृहं प्रविवेश।

तत्र चैकस्मिन् प्रकाण्ड-काष्ठे निर्दिष्टं यद् एकस्यामारक्ट

तारकमण्डलम्=भगनम्। सान्त्वयन्=समादधत्। विद्रुता=निःसृतासि। पार्श्वतः पार्श्वे परिवर्त्तमानः, खेदस्वापे लोके "करवट बदलते हुए" इति समभिधीयते। लोकोक्तिः। होराम्=घटिकाम्। अयापयत्=व्यवाहयत्। कशया=अश्वताड़न्या, "चाबुक" इति भाषा। सपदि=सहसा, निर्दिष्टमार्गः=प्रदर्शितपथः।

प्रकाण्डकाष्ठे=विशाले कक्षे। "बड़े कमरे में" इति हिन्दी। आर

---

गाल रहता, कभी नाली के भीतर से तारामण्डल को देखता हुआ कभी "व्यर्थ के विचारों से क्या लाभ" इस प्रकार स्वयं अपने को सान्त्वना देता और कभी "निद्रे! तू कहाँ चली गई" इस प्रकार अशान्त होता हुआ, इधर-से-उधर करवटें बदलता रहा। इसी प्रकार एक घण्टा बीत गया।

तत्पश्चात् "अरे! शिवाजी के कामों में एक अभी बाकी रह गया" इस प्रकार कुछ स्मरण-सा करके, रघुवीरसिंह कोड़े से प्रताड़ित सा तुरन्त उठकर 'मंदिर के पुजारीजी कहाँ हैं?' इस प्रकार कुछ लोगों से पूछ कर किसी के द्वारा मार्ग बतलाये जाने पर उसी वाटिका में, जिसमें वह बालिका गई थी उसी घर में, प्रविष्ट हो गया।

वहाँ पर एक बड़े कमरे में देखा कि—पीतल की दीयट में एक

दीपिकायां प्रदीप एको ज्वलति, कुश-काशासनान्यनेकानि आस्तृतानि, आरक्त-वेष्टनेषु बहुशः पुस्तकानि पीठिका अधिष्ठापितानि, नागदन्तिकासु धौत वस्त्राणि पट्टाम्बराणि च लम्बन्ते, एकस्मिन् शरावे मसीपात्रम्, लेखनी, छुरिका, गैरिकम्, उपनेत्रं चाऽऽयोजितमस्ति। पात्रान्तरे च खादिरं चूर्णम्, आर्द्र-वस्त्र-वेष्टितानि नागवल्लीदलानि, पूगानि, शङ्कुला, देवकुसुमानि, एलाः, जाति-पत्राणि, कर्पूरं च निन्यस्तमस्ति। तन्मध्यत एव च महोपबर्हमेकं पृष्ठत

---

कूटदीपिकायाम्=धातुविशेषदीपिकायाम्। "रीति: स्त्रियामारकूटः" इत्यमरः, दीपिका-दीपस्थापनार्थं निर्मितं वस्तु। "दीयट" इति हिन्दी। आरक्तवेष्टनेषु=ईषद्रक्तबन्धनवस्त्रेषु। "खारुओं का बेठन" इति हिन्दी। पीठिका-अधिष्ठापितानि=उपवेशितानि, "अधिशीङ्स्थासां कर्म" इति पीठिकायाः कर्मत्वम्। शरावे=विस्तृत-पात्रे। "तस्तरी" इति हिन्दी। गैरिकम्, लिखितस्याशुद्धस्य दूरीकरणार्थमुपयुक्तम्। पात्रान्तरे=तथाविधेऽन्यपात्रे। नागवल्लीदलानि=ताम्बूलवल्लीपत्राणि "ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागवल्ली" इत्यमरः। पूगानि=क्रमुकाणि। शङ्कुला=पूगकर्त्री, "सरौता" इति हिन्दी। देवकुसुमानि=लवङ्गानि। एलाः=पृथ्वीकाः, "पृथ्वीका चन्द्रबालैला निष्कुटिर्बहुला" इत्यमरः, जातिपत्राणि=मालतीपत्राणि। कर्पूरम्=घनसारः। महोपबर्हम्=महदुपधानम्। "मसनद" इति हिन्दी। सत्रा-

---

दीपक जल रहा है, कुश और कास के अनेक आसन बिछे हुए हैं, रक्त-वेष्टनों (खारुओं का बेठन) में बहुत-सी पुस्तकें चौकियों पर रखी हुई हैं, खूँटियों पर धोती और दुपट्टे लटक रहे हैं, एक प्याले में दावात, कलम, चाकू, गेरू और चश्मा रखा हुआ है। दूसरे पात्र में कत्था, चूना, गीले कपड़े में लपेटे हुए पान, सुपारी, सरौता, लवंग, इलायची, मालती के पत्ते और कर्पूर रखा है।

उनके बीच में ही एक बड़े मसनद पर पीठ टेके हुए, पैरों को फैलाये

आश्रित्य पादौ प्रसार्य उपविष्ट एको वृद्धः, सम्मुखस्थश्च छात्र एक पादौ संवाहयति, अपरश्च किञ्चित् तालीपत्र-पुस्तकं दीप-समीपे पठति, वृद्धश्च किञ्चिन्निद्रा-मन्थरच्छात्र-प्रश्नानुसारेण मध्ये मध्ये आलस्यमुन्मुच्य, किमप्यर्द्ध विशिथिल-शब्दैरुत्तरयति-इति।

अथैनं पाद-संवाहन-परश्छात्रोऽवलोक्य 'को भवान्' इत्य पृच्छत्। एष च "श्रीमतां समर-विजयिनां महाराष्ट्र राजानां भृत्योऽस्मि" इति मन्दमभ्यधात्। तदवधार्य वृद्धोऽपि नेत्रे विस्फार्य निद्रामन्थरेण स्वरेण "आस्यतामास्यताम्" इति प्रण मन्तमुवाच। सोऽपि प्रणम्य, समुपविश्य, दत्त-निज परिचयः

---

हन करोति संवाहयति = मर्दयति। "संवाहनं मर्दनं स्यात्" इत्यमरः। तालीपत्रपुस्तकम् = तालपत्रपुस्तिकाम्। तदानीं नागरम् इव कागाधिक्य मासीत्। निद्रामन्थरः = निद्रयाऽलसः, निद्रोद्भूतालस्यवान्ति। अर्धविशिथिलशब्दैः=स्वल्पस्रस्ते पदे कियदक्षरविच्छिन्ने।

एनम्=रघुवीरसिंहम्। "निरैक्षिष्ट" क्रियाकर्तृत्वेनोपस्थितस्यावलोकन क्रियाकर्मत्वेन पुनरुपस्थित्याऽन्यादेशतेति द्रष्टव्यम्। एष च मन्दमभ्यधादिति

---

हुए एक वृद्ध बैठा हुआ है, सामने बैठा एक छात्र उसके पैर दबा रहा है और दूसरा किसी ताल्पत्र पर लिखी पुस्तक को दीपक के पास पढ़ रहा है, वृद्ध कुछ-कुछ निद्रा के आलस्य के वशीभूत होकर छात्र के प्रश्न के अनुसार बीच-बीच में आलस्य का त्याग कर टूटे फूटे एवं अस्ताक्षर शब्दों में कुछ उत्तर दे रहा है।

इसके अनन्तर पैर दबाने वाले छात्र ने इसे देखकर 'आप कौन हैं?' यह पूछा। 'मैं समरविजयी महाराष्ट्रराज का सेवक हूँ' उसने धीरे से यह उत्तर दिया। यह सुनकर वृद्ध ने भी आँखों को फैलाकर निद्रामन्थर स्वर से, प्रणाम करते हुए रघुवीर सिंह से 'बैठो, बैठो' यह कहा। रघुवीर सिंह ने प्रणाम कर, बैठकर, अपना परिचय देकर, कुशल

कुशलादि-वार्त्ता आलप्य, क्षणानन्तरं वृद्धादेशानुसारेण करौ सम्पुटीकृत्य न्यवेदयत्—

"भगवन्! प्रणम्य भवन्तं सम्रमवान् महाराष्ट्र-राजः कथयति यत्-साम्प्रतं शास्तिखान-द्वारा पुण्यनगरमपिहस्तितवता दिल्लीश्वरेण सह योद्धुमुपक्रान्तमस्ति, परमल्पीयसी अस्मत्सेना, असहयोगिनः पार्श्वस्थ पृथिवीपतयः, अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गेष्वपि समुद्धूत-ध्वजाः परिपन्थिनः, शैशवादेव यवनवराकैर्महाप्रवृद्धं मम वैरम्, सन्धेश्च कथामात्रमपि न सम्भोभवीति, यद्यप्यल्पेऽपि मामका युद्ध-विद्यासु कुश-

सम्वन्धः। अभ्यधात्=अकथयत्। करौ सम्पुटीकृत्य=हस्तौ संयोज्य। प्राञ्जलिर्भूत्वेति यावत्। नम्रतासूचकमिदम्।

हस्तितवता=स्वायत्तीकृतवता। "हथियाना" इति हिन्दी, पार्श्वस्थ-पृथिवीपतयः=निकटस्थभूमिपालाः, असहयोगिनः=साहाय्याकारिणः, समुद्धूतध्वजाः=समुड्डीनपताकाः। तेष्वाधिपत्यं लब्धमिति भावः। ध्वजोद्धूननं हि विजयोपलक्षणम्। परिपन्थिनः=शत्रवः। सम्भोभवीति=अतिशयेन वारं वारं वा भवति। यङ्लुगन्तम्। तदन्ताद्लत्लन-

आदि की बात-चीत करके, क्षण भर के बाद, वृद्ध की आज्ञानुसार, हाथ जोड़ कर निवेदन किया—

"भगवन्, आपको प्रणाम करके माननीय महाराष्ट्र-राज कहते हैं कि इस समय शाइस्ता खाँ के द्वारा पूना नगर को हस्तगत कर लेने वाले दिल्लीश्वर के साथ हमारा युद्ध छिड़ चुका है। किन्तु हमारी सेना थोड़ी है और पड़ोसी लोग साथ नहीं दे रहे हैं। शत्रुओं ने अंग बंग और कलिंग में भी अपनी विजयपताकायें फहरा दी हैं, बचपन से ही इन यवन नीचों के साथ हमारा वैर बढ़ता आया है और सन्धि की तो कथा मात्र की भी कभी सम्भावना नहीं है। यद्यपि थोड़े होने पर भी हमारे लोग युद्धविद्या में कुशल हैं, फिर भी, बीच-बीच में मन में, 'क्या होने वाला

ज्ञाः सन्ति, तथाऽपि किं भावीति मध्ये मध्ये संशेते हृदयम्, भवांस्तु प्रसिद्धोऽस्मद्देशे दैवज्ञः तद् विचार्य कथ्यतां किं भावि ?" इति।

तदवगत्य, पादावाकुञ्च्य "विजयतां शिवराजः" इत्यभिधाय, ताम्बूल-वाटिकां रचयितुं छात्रमेकमिङ्गितेनाऽऽदिश्य, पृष्ठस्थद्वाराभिमुखं ग्रीवां परिवर्त्य, "वत्से ! सौवर्णि ! वत्से ! सौवर्णि !" इत्याकार्य, "इयमस्मि तात !" इत्यागतां च तां "वत्से ! तासां यूथिकामालिकानामेकां मालां प्रसाद-मोदकं चैकमानय"-इत्यभिधाय, बाढमित्युक्त्वा तया विहितवत्यां च तत्याम्, रघुवीराभिमुखं "गृहाण, भुक्त्वेदं प्रसाद-मधुरान्नं निद्रामनुभव, यादृशं च स्वप्नमवलोकयि-

मिहित प्राक्। संशेते = सन्देहमापद्यते। दैवज्ञः = ज्यौतिषिकः। "दुगुपदशाप्रीकिर. कः"। "दैव दिष्ट भागधेय भाग्य स्त्री नियतिर्विधिः" इत्यमरः।

आकार्य = आहूय। यूथिकामालिकानाम् = मागधीस्रजाम्, प्रसादमोदकम् = भगवदर्पितमिष्टान्नम्। यद्यपि "प्रसादस्तु प्रसन्नता" इत्यमरेण प्रसन्नताभिधायकत्वमेव, तथापि लोकप्रसिद्धया भगवदर्पितत्वार्थकत्वमेवैदृशेषु स्थलेषु। व्यवहारो हि सर्वतो बलीयान् पदार्थनिर्णायक इति ध्येयम्।

है' यह शंका होती है। आप हमारे देश के प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं, अतः विचार करके यह बताइये कि क्या होगा ?

यह जान कर, पैरों को सिकोड़ कर, "शिवराज महाराज की जय हो" यह कह कर, पान का बीड़ा बनाने के लिए इशारे से एक छात्र को आदेश देकर, पीछे के द्वार की ओर गर्दन घुमाकर, "पुत्रि सौवर्णि ! पुत्रि सौवर्णि !" यह कर कन्या को पुकार कर, "आई, पिताजी" कह कर उसके आने पर, उससे "पुत्रि ! उन जूही की मालाओं में से एक माला और एक प्रसाद का लड्डू ले आ" ऐसा कहकर, 'अच्छा' यह कह कर उसके वैसा कर लेने पर, रघुवीर की ओर मुख करके "लो इस प्रसाद के मधुर मिष्टान्न को खाकर सो जाओ, जैसा स्वप्न देखना, वैसा मुझे प्रातः बतलाना,

तासि, तथा प्रातरेव मां कथयितासि, व्येति रजनी, तद् गच्छ, शेष्व" इत्युदीर्य समागतां सौवर्णीमिव मोदकमर्पयितु मालां च कण्ठे निक्षेप्तुमिङ्गितवान्।

सा चावलोक्य तमेव पूर्वावलोकितं युवानम्, व्रीडा-भर-मन्थराऽपि ताताज्ञया बलादिव प्रेरिता ग्रीवां नमयन्ती, आत्मनाऽऽत्मन्येव निविशमाना, स्वपादाग्रमेवाऽऽलोकयन्ती, मोदक भाजन-सभाजितं सव्येतर-करं तदग्रे प्रासारयत्। स चाऽऽत्मनो भावं कष्टेन संवृण्वं-स्तद्धस्तादुदतूतुलत्। पुनश्च सा अञ्चलकोण कटि-कच्छ-प्रान्ते

मधुरान्नम् = मोदकम्। व्येति = अतियाति। रजनी = निशीथिनी। शेष्व = स्वपिहि। उदीर्य = उक्त्वा। निक्षेप्तुम् = निधातुम्। इङ्गितवान् = चक्षुरादिचेष्टया बोधितवान्।

व्रीडाभरमन्थरा = लज्जाधिक्यादिगतमान्द्या। ताताज्ञया बलादिव प्रेरिता, तथा चोक्तं महाकविना कालिदासेन "आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया इति। निविशमाना, "नेर्विशः" इत्यात्मनेपदत्वे शानच्। मोदक-भाजनेन = मिष्टान्नभाण्डेन, सभाजितम् = पूजितम्। सहितमिति वाच्योऽर्थः। सव्येतरकरम् = दक्षिण हस्तम्। आत्मनो भावम्, रतितामापन्नम्। संवृण्वन् = समाच्छादयन्, उदतूतुलत् = उत्थापयामास। अञ्चलकोणम् = वस्त्रदशाम्। कटिकच्छप्रान्ते = कटिकच्छ भागे,

रात बीती जा रही है, तो जाओ, सो जाओ," यह कह कर वृद्ध ने, आई हुई सौवर्णी को ही मोदक देने और माला पहनाने के लिए संकेत किया।

वह उसी पहले देखे गये हुये युवक को देख कर, लज्जा के भार से धीरे धीरे चलती हुई भी पिता की आज्ञा से बलपूर्वक प्रेरित की गई, गर्दन झुकाती हुई, अपने मे ही सिमटती हुई, अपने पैर के अग्रभाग को ही देखती हुई, आगे बढ़ी और उसने लड्डू के पात्र से सुशोभित अपने दाहिने हाथ को उसके आगे बढ़ाया। रघुबीर सिंह ने कष्टपूर्वक अपने भाव को छिपाते हुए उसे उसके हाथ से ले लिया। फिर उसने

आयोज्य, हस्ताभ्यां मालिकां विस्तार्य नत-कन्धरस्य रघुवीरस्य ग्रीवायां चिक्षेप, ईषत्कम्पित-गात्रयष्टिश्च शनैर्यथागतं निववृते।

सैवेयं गौर श्याम सिंहयोरनुजा सौवर्णी, या शैशव एव यवन तनयेनापहृता, यस्याश्च वास्तविकं नाम कोशलेति, स चायं देव शर्म्मा ब्राह्मणः, यो गौरसिंहस्य कुल-पुरोहितः कोशलायाश्च रक्षकः।

ततः प्रणम्य, देवशर्म्मच्छात्रदत्तां वीटिकामादाय प्रतिनिवृत्त, रघुवीरोऽपि तथैव सुप्तः। को जानाति कोशलारघुवीरयोः काभि भावनाभिरद्यतनी रजनी व्यत्येतीति।

---

आयोज्य = निवेश्य। विस्तार्य = प्रसार्य। ईषत् = अल्पम्, कम्पिता = वेपमाना, गात्रयष्टिः = शरीर, यस्याः सा। सात्त्विकभावोदयप्रदर्शनमिदम्। यथाऽऽगतम्, आगतम् = आगति, तदनतिक्रम्य यथागतम्। क्रियाविशेषणम्। यथा समागता तथैव निवृत्तेति यावत्।

सैवेयमित्यादि-रक्षक—इत्यन्तं कविवाक्यं सौवर्णीपरिचयदानपरम्। अनुजा = अवरजा, शैशवे = बाल्ये।

को जानाति, कः = ब्रह्मा, स एव जानाति, नान्यः कश्चिदसर्वज्ञ इति तत्त्वम्। काकुर्वा तथात्वे न कोऽपि जानातीत्यर्थः। आत्मनैव विज्ञातत्वप्रत्वेन नान्यो ज्ञातेति सूक्ष्मवेदिन। भावनाभिः = विचारैः।

---

आँचल के छोर को कमर में खोंसकर दोनों हाथों से माला को फैला कर, सिर झुकाये हुए रघुवीर के गले में डाल दिया और कुछ काँपते हुए शरीर से धीरे धीरे, जैसे आई थी वैसे ही चली गई।

यही गौरसिंह और श्यामसिंह की छोटी बहन सौवर्णी हैं, जिसे बचपन में ही एक यवन युवक हर ले गया था और जिसका वास्तविक नाम कोशला है और यही वह देवशर्मा ब्राह्मण हैं, जो गौरसिंह के कुलपुरोहित और कोशला के रक्षक हैं।

उसके बाद प्रणाम कर, देवशर्मा के छात्र द्वारा दिये गये पान के बीड़े को लेकर, लौटकर, रघुवीर भी वैसे ही सो रहा। कौन जानता है कि कोशला और रघुवीरसिंह की आज की रात किन भावनाओं में बीत रही है।

अथोपस्येवोत्थाय नित्यकृत्यानि निर्वर्त्य, यावद्देवशर्म्मणः समीपमुपतिष्ठासते ; तावद्दौर्गिक-दूतेनाऽऽकारितो दुर्गाध्यक्षमासाद्य, तद्दत्तं पत्रादिकं वाचनिक-सन्देशं चाऽऽदाय, पुण्यनगरमधिवसतः शास्तिखानस्य प्रकृत वृत्तान्तं तत्प्रश्नानुसारं व्याहृत्य, निवृत्य, देवशर्म्माणं प्रणम्य, सङ्क्षिप्य स्व-स्वप्न-वृत्तान्तमकथयत्, यद्—

"यथा मया प्रभुणा च खड्गः समुत्तोलितः, शास्तिखानश्च दृष्ट्वैवैतत्पलायितः" इति।

स चाङ्गुलिपर्वसु किमपि गणयित्वेव प्रोवाच-यद् 'यवनैः सह विजयः, आर्यैश्च पराजयः !"

पुनश्च तं प्रणम्य, जिगमिषन्तमुवाच, यत्—

"तावद् बहिरेवोद्याने पर्य्यट, यावद् हनूमत्प्रसाद-सिन्दूरं प्रेषयामि, यत्कृततिलको दुर्द्धर्षो भवति शत्रूणाम्" इति।

---

उपसि=प्रातः। निर्वर्त्य=समाप्य। उपतिष्ठासते=उपस्थातुमिच्छति। दौर्गिकदूतेन=दुर्गाध्यक्षभृत्येन। वाचनिकसंदेशम्=वाचिकम्, "सन्देशवाग् वाचिकं स्यात्" इत्यमरः। अङ्गुलिपर्वसु=करजावयवेषु, पर्व=अङ्गुलिग्रन्थिः, 'ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी" इत्यमरः। "पोर" इति हिन्दी।

---

तत्पश्चात् सवेरे ही उठकर, नित्यकृत्य से निवृत्त होकर, रघुवीर, देवशर्मा के समीप जाना ही चाहता था कि दुर्ग के दूत के द्वारा बुलाये जाने पर दुर्गाध्यक्ष से मिल कर उनके द्वारा दिये गये मौखिक सन्देश और पत्रादि को लेकर, पूना में स्थित शाइस्ता खाँ का समाचार दुर्गाध्यक्ष के प्रश्नों के अनुसार बता कर, लौटकर, देवशर्मा को प्रणाम कर उसने संक्षेप में अपने स्वप्न का वृत्तान्त कहा कि "ज्यों ही मैंने और मेरे स्वामी ने खड्ग उठाया, शाइस्ता खाँ उसे देखते ही भाग गया।"

उँगली के पोरों पर कुछ गिन कर वह बोला, "यवनों से युद्ध हो तो विजय होगी, आर्यों से हो तो पराजय।" फिर प्रणाम करके जाने के इच्छुक रघुवीर सिंह से कहा, "तब तक बाहर उद्यान में ही टहलो, अभी हनुमानजी के प्रसाद का सिन्दूर भेजता हूँ, जिसका तिलक लगा लेने पर मनुष्य शत्रुओं के लिए दुर्द्धर्ष हो जाता है।"

स च तथेत्युक्त्वा बहिरागत्य पर्य्यटन् पूर्वेद्युः सौवर्ण्या सनाथितां वेदिकां समायातः, स्मृतवांश्च पूर्वदिन-वृत्तान्तम्, अवालोकयच्च सौवर्ण्यध्युषित-चरं पाषाण-मञ्चम्। तावन्निपुणं निरीक्ष्य दृष्टवान्-यदेका एकयष्टिका मौक्तिकमाला तत्र पतिताऽस्तीति, ताञ्चोत्थाप्य तस्या एवेयमिति निश्चित्य, तस्यै समर्पयामीति विचार्य इतस्ततश्चक्षुर्निचिक्षेप।

अथ व्यलोकयद्-यद् वाटिकायामेव कोशलाऽपि कदलीदल-पुटकमेकं वामकरे संस्थाप्य, दक्षिण-कर-पल्लवेन कुसुमपतङ्गान् उद्धूय कुसुमान्यवचिनोति।

ततश्च क्षणं विचार-भारैर्निरुद्ध-गतिरपि शङ्कातङ्कमपास्य, मालां हस्ते आदाय शनैस्तदभिमुखमेव प्रतस्थे। सा च तस्मिन्नवि-

---

सनाथिताम् = अधिष्ठिताम्। सौवर्ण्या, अध्युषितचरम् = पूर्वमुपविष्टम्। पाषाणमञ्चम् = प्रस्तरवेदिकाम्। एकयष्टिका = एकावली, मालाविशेष 'एकावल्येकयष्टिका' इत्यमरः। निचिक्षेप = निदधे। कुसुमपतङ्गान् = पुष्पभ्रमरिकाः। "तितली" इति हिन्दी। निरुद्धगतिः-अवरुद्धगमनः। शङ्काऽऽतङ्कम्-सदेहं भयञ्च। प्रत्यर्पयितुम्-

---

रघुवीरसिंह 'बहुत अच्छा' कह कर, बाहर आकर, घूमता हुआ, पिछले दिन सौवर्णी से सनाथ की गई वेदी तक आया, पिछले दिन के वृत्तान्त को स्मरण किया और जिस पत्थर की चट्टान प सौवर्णी बैठी थी उसके दर्शन किये। ध्यान से देखने पर देखा कि मोतियों की एक एकल्डी माला वहाँ गिरी पड़ी है, उसे उठाकर, यह उसी की है यह निश्चय करके, 'इसे उसी को दे दूँ' यह सोचकर इधर-उधर दृष्टिविक्षेप किया।

उसके बाद उसने देखा कि कोशला भी बगीचे में ही बाएँ हाथ में केले के पत्ते का एक दोना लिए, दाहिने हाथ से तितलियों को उड़ाकर, फूल चुन रही है।

विचार के भार से क्षण भर रघुवीर की गति रुद्ध हो गई, पर सन्देह के आतङ्क को दूर कर, माला को हाथ में लेकर वह धीरे-धीरे उसी की ओर

समीपमायाते पादाहतिमाकर्ण्य अवालुलोकत् । तस्याञ्चातिचकितायामिव स्तब्धायामिव च रघुवीरोऽवादीत्—

"भगवति ! भवत्या इयं मालिका तत्र पतिता, मया लब्धेति प्रत्यर्पयितुमायातोऽस्मि–इति, अनुमन्यसे चेदेना यथास्थानं निवेशयामि"

सा च व्रीडया कुलाङ्गनाङ्गीकृत-महाव्रतेन च स्तब्धवाग् न किञ्चन प्रावोचत् । रघुवीरश्च वाचंयमतामप्यङ्गीकारभङ्गीमङ्गीकृत्य तदन्तिकमागत्य, सौवर्णीचित्रं मानस-भित्तिकायामालिख्य नक्षत्रमालां तत्कण्ठे प्राक्षिपत्, पवित्रतमानि स्फुटतम-यौवनोद्भेद

---

प्रतिदातुम् । त्वया ह्यो मह्यमर्पिता माला, मया चाद्यतुभ्यमर्प्यत इति विचार्य प्रत्यर्पणाभिधानम् । अनुमन्यसे=स्वीकरोषि । कुलाङ्गनाभिः=सदन्वयजन्मीभिः, अङ्गीकृतेन=स्वीकृतेन, महाव्रतेन=ब्रह्मचर्यरूपेण । गुह्यभाषणस्यापि ब्रह्मचर्यविघातकतेति मौनावलम्बनम् । वाच यच्छतीति तद्भावो वाचंयमता=तूष्णीम्भवनम् । अङ्गीकारभङ्गीम्=स्वीकारप्रकारम् । "मौनं स्वीकारलक्षणम्" इत्युक्तत्वात् । नक्षत्रमालाम् = सप्तविंशतिमौक्तिकमयीं पूर्वोक्तामेकावलीम् । स्फुटतमस्य = नितान्तप्रकटस्य, यौवनस्य =

---

चला । रघुवीर सिंह के बहुत समीप आ जाने पर उसकी पदचाप सुनकर, कोशला ने उसे देखा । कोशला के चकित और स्तब्ध-सी हो जाने पर रघुवीरसिंह ने कहा—

"देवि ! आपकी यह माला वहाँ गिर गई थी, मैंने इसे पाया है, अब इसे लौटाने आया हूँ । यदि आपकी अनुमति हो तो इसे यथास्थान रख दूँ ।"

लज्जा और कुलाङ्गनाओं के महाव्रत से मौन कोशला कुछ न बोल सकी । रघुवीरसिंह ने उसके मौन को भी स्वीकृति का ही सूचक समझ कर, उसके पास आकर, मन की दीवार पर सौवर्णी का चित्र बना कर, उस मुक्तामाला को उसके गले में डाल दिया, पर स्फुट यौवन के स्पष्ट

लक्ष्म-रहितानि च तदङ्गानि नास्प्राक्षीत् ।

ततस्तस्यां मौनेनैवैकतः प्रयातायाम्, स्वयं पुनर्मन्दिरद्वारमागत्य देवशर्म्मणोऽन्यतमच्छात्रेणाऽऽनीतं सिन्दूरमादाय पुनरश्वमारुह्य मारुत-नन्दनं संस्मृत्य तोरणदुर्गात् सिंहदुर्गं प्रतस्थे ।

इति चतुर्थो निश्वासः

॥ इति प्रथमो विरामः समाप्तः ॥

---

लावण्यस्य, उद्भेदस्य=आविर्भावस्य, लक्ष्मभिः=चिह्नैः, शून्यानि, न अस्प्राक्षीत् = स्पृष्टवान् । मारुतनन्दनम् = वायुसुतम् ।

प्राप्त-शास्त्र-प्रयाचार्य-पदवीकेन धीमता ।
भगवत्या गर्भजेन विद्-भागवत-सूनुना ॥
विद्वत्‌निराठि मिश्र्येण रामजीशर्मणा मया ।
शिवदत्तपादतन्यावशास्त्राबभासिना ॥
पाण्डेयशास्त्रीत्यपराभिधेयेन सदक्षरा ।
शिराजस्य विजये वैजयन्ती विकाशिता ॥

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यां चतुर्थनिश्वासविवरणम् ।

आदिमविरामविवरणं समाप्तम् ।

---

चिह्नों से रहित उसके पवित्र अंगों का स्पर्श नहीं किया ।

तदनन्तर, कोशला के मौनपूर्वक ही दूसरी ओर चले जाने पर, स्वयं पुनः मन्दिर के द्वार पर आकर, देवशर्मा के प्रिय छात्र द्वारा लाये गये सिन्दूर को लेकर, पुनः घोड़े पर सवार होकर, हनुमानजी का स्मरण कर, तोरण दुर्ग से सिंह दुर्ग की ओर चल पड़ा ।

शिवराजविजय का चतुर्थ निश्वास समाप्त ।

शिवराजविजय के प्रथम विराम का हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ ।

॥ श्री ॥

महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचित

# शिवराजविजयः

## द्वितीयो विरामः

'वयं नो ते विप्राः प्रतिदिवसमासाद्य कृपणान्,
धनं ये याचन्ते प्रतिगणित-नक्षत्र तिथयः।"

—जगन्नाथपण्डितराजः

---

### शिवराज-विजय-वैजयन्ती

वागीश्वर्यै नमः

मनोन्नमदमन्येन मदमादधानो भव
स्वयं भवति विष्टरो विनत एव यस्याः कृते।
समर्चिन-पदद्वया त्रिदश मण्डली-मण्डनै
स्तमालदल-भासुरा भवतु काऽपि बुद्धिप्रदा॥

पञ्चमे निश्वासे हिन्दु धर्म-ध्वंस विध्वंसन पटुना शिववीरेण साकं महाकवेर्भूषणस्य सम्बन्धं विवर्णयिषुरुपक्षिपति पण्डितराजोक्तिम्-वयं नो ते विप्रा इति। यद्यपि तदात्वे बहवो ब्राह्मणब्रुवा धर्माधर्म-

---

### शिवराज-विजय का हिन्दी अनुवाद

ज्ञानप्रतीकशुभपुस्तकवामहस्ता
वीणागुणक्वणनरञ्जितसर्वलोका।
मन्मानसाच्छमुकुरार्पितविग्रहा सा
देवी स्मृता स्पृशतु मां स्वकृपाकटाक्षैः॥

"हम तिथि-नक्षत्रादि गिनने वाले उन ब्राह्मणों में नहीं हैं जो प्रतिदिन कञ्जूसों के पास जाकर उनसे धन माँगते हैं।"

—पण्डितराज जगन्नाथ

"हरेरस्य द्वारे शिव ! शिव ! शिवानां कलकलः"
—जगन्नाथपण्डितराजः

इतस्तु दृश्यतां किं भवति पुण्यनगर इति। ज्ञाल्म-यवनाखेट-व्यसनिनः शिववीरस्य शनैः शनैर्दिल्लीश्वरेणापि सह वैरं ववृधे। दिल्लीश्वरस्तु शास्तिखान-नामानं कञ्चिद् यवन-चौरं प्रेष्य पुण्य-नगरं तद्धस्तादाचिच्छिदे। सम्प्रति हि पुण्यनगरे शिववीराध्युषितचरे महाप्रासादे सपरिवारः शास्तिखानः प्रतिवसति। आसन्ने

विवेक विधुरास्तात्कालिकावस्थितिमात्रदृष्टयोऽप्यभवन्, तथापि तेषामेव ब्राह्मणानां विशिष्टा सख्याऽऽसीद् ये जीविका-निर्वाह प्रकारेऽदृष्टदृष्टयस्त्यागिनो धर्म-रक्षण-मान-व्रता इति सूचयति पद्यखण्डेनानेन। वक्ता चास्य दिल्ली वल्लभ-पाणि पल्लवतले नवीनस्य वयसो यापक इति परम वैशिष्ट्यम्। अपरा चात्र कथाऽऽगमिष्यति शिववीरहस्ताद् "शास्तिखान-" द्वारा दिल्लीवल्लभेन स्वायत्तीकृतस्य पुण्यनगरस्य, तत्र सिंहपराक्रमस्य शिववीरस्य द्वारि शृगाल-खद्वृणात्मातिरिच्यते यवनहतस्संवरणमिति समुपक्षिपति द्वितीयेन तदीयेनैव पद्यखण्डेन-हरेरस्येति। शिवानाम् = शृगाल-शृगालीनाम्। "पुमान्स्त्रिया"त्येकशेष। जाल्मानाम् = असमीक्ष्यकारिणाम्, यवनानाम्, आखेटस्य व्यसनिनः। ववृधे = एधामास। तद्धस्तात् = शिववीरकरात्। आचिच्छिदे=प्रसह्य जग्राह। स्व यत्तीचकारेति यावत्। "छीन लिये" इति हिन्दी। "छिदिर् द्वैधीकरण" इत्यस्य लिटि रूपम्। अध्युषित भूतपूर्वमध्युषितचरम्, "भूतपूर्वे चरडि"ति चरट्।

"शिव ! शिव ! आज सिंह के दरवाजे पर गीदड़ कोलाहल कर रहे हैं।"
—पण्डितराज जगन्नाथ

इधर देखिये पूना नगर में क्या हो रहा है। जालिम यवनों का शिकार खेलने के शौकीन महाराज शिवाजी का, धीरे-धीरे दिल्ली सम्राट् औरंगजेब के साथ भी वैर बढ़ गया। औरंगजेब ने शाइस्ता खाँ नामक किसी यवन चोर को भेजकर शिवाजी के हाथ से पूना नगर छीन लिया। इस समय पूना नगर के उस राजमहल में जहाँ पहले महाराज शिवाजी रहा करते थे, सपरिवार शाइस्ता खाँ रह रहा है। समीप में ही स्थित

सिंहदुर्गे च ससैनः शिववीरो विराजते। परस्परं च च्छलाशङ्का युद्धाशङ्काश्च जरीजृम्भन्ते।

अथैकदा रजन्यां सिंहदुर्गाविदूर एव सुकोमल-शादायां कलित-प्रसादायां केकि-केका-विहित-प्रहरि-प्रातिनिध्यायां भुवि, निष्कृप-कृपाण-पाणिः, कञ्चुकाच्छादित-कठिन-कवचः, कलित-सैनिक-भट-वेषः श्रीशिववीरो गुप्तवेषेण परितः पर्यटन्, दुग्ध-धारयेव

शिववीरेणाध्युषितचरम् तस्मिन्निति निग्रहः। छलाशङ्काः = चौर्यानङ्काः। जरीजृम्भन्ते = मुखं व्यादायेव वृद्धिमतिशयेन गच्छन्ति। "जृम्भी गात्रविनामे" इत्यस्य यङ्लुकि रूपम्। सुकोमलाः शादाः = हरिततृणानि यस्या तस्याम्। "शादो जम्बालशष्पयोरि"त्यमरः। कलितः = सम्पन्नः, प्रसादः = नैर्मल्यं यया तस्याम्। केकिकेकाभिः = मयूरवाणीभिः, "केका वाणी मयूरस्य" त्यमरः। विहितम् = सम्पादितम्, प्रहरिणाम = यामिकानाम्, प्रातिनिध्यम् = प्रतिनिधिकर्म यस्या तस्याम्। 'गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणीति" ष्यत्र्। भुवो विशेषणानि त्रीणि। शिववीरं विशिनष्टि—निष्कृपः = कृपाशून्यः, कृपाणः पाणौ यस्य सः। कञ्चुकेन = चोलकेन, आच्छादितः = प्रावृतः, कठिनः = दृढः, कवचः = तनुत्रं, यस्य सः। कलितः सैनिकभटस्य वेषः=नेपथ्यं येन सः। "सेना-रक्षास्तु सैनिका" इत्यमरः, "सेनाया समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्च त" इति

सिंहगढ़ में अपनी सेना के साथ महाराज शिवाजी रह रहे हैं। शाइस्ता खाँ और शिवाजी में परस्पर छल और युद्ध की आशङ्कायें बढ़ती जा रही हैं।

एक दिन रात में सिंहगढ़ से थोड़ी ही दूर पर सुकोमल हरी-हरी घास वाली निर्मल भूमि पर—जहाँ मयूर मानों बीच-बीच में बोल कर पहरा दे रहे थे—हाथ में निर्दय कृपाण लिये, कञ्चुक के नीचे लोहकवच पहने, एक सैनिक के छद्मवेष में घूमते हुए महाराज शिवाजी, दूध की धारा

क्षालितैर्ज्योत्स्नया प्रकाशितैः पथिभिरासन्नात् शिवमन्दिरादारादा जगाम। तत्र च द्वारि रेणु-रूषित-रोम-कुहरम्, शफोत्फालित-मृत्स्ना-स्नातम्, त्वरितगति-श्वास-प्रश्वास-सहचरित-हिणत्कार-सूचित-क्लमम्, उत्थायोत्थाय पृष्ठमुत्कम्प्य, ग्रीवामुद्धूय, पौनः पुन्येन पतित्वा, भुवि विलुण्ठन्तं कञ्चनाश्वमद्राक्षीत्। 'कस्यायम्? कुतोऽयम्?' इति मनसि विचिन्वंश्च समीपमागत्य, चुचुत्कारैरश्वं सान्त्वयन्तं

चामरः, "रक्षति" इति ठक्। जोत्स्नया = कौमुद्या। प्रकाशितैः = प्रद्योतितैः। उत्प्रेक्षते–दुग्धधारया=पयःप्रवाहेण। क्षालितैरिव = धौतैरिव। "आराद्दूरसमीपयो"रित्यमरः, तद्योगे "अन्यारादि"ति पञ्चमी। तत्र च द्वारि कञ्चनाश्वमद्राक्षीदिति सम्बन्धः। अश्व विशिनष्टि– रेणुभिः = धूलिभिः, रूषितानि = छुरितानि, रोम्णां कुहराणि=छिद्राणि, यस्य तम्। शफोत्फालितया = खुरोद्धूलितया, मृत्स्नया = प्रशस्तया मृदा, स्नातम् = अनुलिप्तम्। त्वरितगतीनाम् = शीघ्रगमनानाम्, श्वासप्रश्वासानाम्, सहचरितेन = सहवासिना, हिणत्कारेण = हेषारवेण, सूचितः = प्रकटीकृतः, क्लमः = दूरमार्गानुधावनोत्थः श्रमो येन तम्। अश्वाना दीर्घश्वासप्रश्वासौ हेषासहितावेव भवतः। उत्थायेत्यादि भुवि विलुण्ठन्तमित्यन्त स्वभावोक्तिः। उत्कम्प्य=कम्पयित्वा। विवर्णवदनम् =

से धुले हुए से लगने वाले, चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित मार्गों से समीपवर्ती शिवमन्दिर के पास पहुँचे। मन्दिर के द्वार पर उन्होंने धूल-धूसरित रोमकूप वाले किसी घोड़े को देखा, जिसका शरीर खुरों से उछलने वाली मिट्टी से लथपथ था। उसकी श्वास-प्रश्वास की गति तेज थी, साथ-ही-साथ वह हिनहिनाता भी था, जिससे प्रकट होता था कि वह थका है। वह उठता था, पीठ हिलाता था, गर्दन उठाता था और पुनः पृथ्वी पर गिर कर लोटने लगता था। उसे देख कर मन ही मन यह सोचते हुए कि "यह घोड़ा किसका है", "कहाँ से आया है" शिवाजी ने समीप आकर, चुमकार कर उस घोड़े को सान्त्वना दे रहे और उसके आगे

हरित-तृण-भारं च पुरतः प्रक्षिपन्तं कमपि शूद्र-युवकमप्यवालोकयन्। तं च विवर्णवदनम् आजानु-धूलि-धूसरित-चरण-युगलम्, मन्थरितशरीरम्, स्वेद-क्लिन्नञ्चावलोक्य, "दूरतः कश्चन समायातोऽस्ति, तद्भृत्य एवायम्" इति निश्चित्य शनैरप्राक्षीत्-'कियान् पन्थाः?' इति। स तु स्वकार्य-संलग्नोऽन्यमनस्क इव, "समायातः कोऽपि" इत्युदतरत्। पुनरपि 'कुत आगता यूयम्?" इति पृच्छति शिववीरे च, 'किमिति निरर्थं प्रश्नानुद्भावयसि, आलपितुमिच्छसि चेद् घटिका-युगलमनिवाह्य समायास्यसि, यदा पूरित-जठर-पिटकः, ताम्रकूट-धूमपानैर्गलनलं कवोष्णयन्, त्वया सह वार्त्ताभिरदूष्य-परि-

---

निष्प्रभाननम्। आजानु = जानुपर्यन्तम्, धूल्या = रजसा, धूसरितम् = मलिनम्, चरणयुगलं यस्य तत्। मन्थरितम् = स्थगितम्, शरीरम् = देहो यस्य तत्। स्वेदेन = घर्मजलेन, क्लिन्नम् = आर्द्रम्। शूद्रयुवक-विशेषणानीमानि। अन्यमनस्क इव = खिन्न इव। प्रश्ने प्रश्नकर्तरि च ध्यानमददतेति यावत्। निरर्थम् = प्रयोजनरहितम्। पूरितः = भरितः, जठरमेव पिटकः = मञ्जूषा येन तादृशः। 'पिटकः पेटकः पेटा मञ्जूषे' त्यमरः। गलनलम् = कण्ठरन्ध्रम्, कवोष्णयन् = ईषदुष्णं कुर्वन्।

---

हरी घास डाल रहे एक शूद्र युवक को भी देखा। उस शूद्र युवक का उतरा हुआ मुँह, घुटनों तक धूलधूसरित पैर और थका तथा पसीने से लथपथ शरीर देख कर महाराज शिवाजी ने यह अनुमान कर कि "कोई अश्वारोही दूर से आया है और यह उसका नौकर है" उससे पूछा "यह थोड़ा कितना है?" अपने काम में लगे हुए उसने अन्यमनस्कतापूर्वक उत्तर दिया 'कोई आया है।" पुनः महाराज शिवाजी के यह पूछने पर कि "तुम लोग कहाँ से आये हो?" वह बोला, "क्यों बेकार के प्रश्न पूछ रहे हो। यदि बातचीत करना चाहते हो तो दो घड़ी बाद आना; तब अपना पेट पिटारा भर कर, तम्बाकू पीना (अपनी नाड़ची का कुछ गर्म करना) हुआ तुम्हारे साथ बातचीत कर के गले की थकावट दूर

श्रममल्पयिष्यामि।" तदाकर्ण्यान्तर्विहसन्निव शिववीरः "तथा करिष्यामः, किन्तु कथय तावत्, कुत आगता यूयम्?"—इति पुनरप्राक्षीत्। स तु घोटके दत्तदृष्टिरेव सकोपमवादीत्—"कुत आगता यूयम्? कुत आगता यूयमिति कुतःकारैः स्फोटितौ मे कर्णौ, वयं दिल्लीत आगताः, दिल्लीतो दिल्लीतो दिल्लीतः, कथय किं गजं ददासि घोटकं वा?" तदाकर्ण्य, शिववीरस्तत्प्रकृतिं परिज्ञाय, शनैः परिसृत्य, मन्दिरस्य पश्चिमदेशे पर्य्यटितुमारेभे।

'कोऽयं, कुतोऽयं, चरो वा संदेशहरो वा, कपटपथिको वा, अस्मत्पक्षपाती वा, शत्रुपदातिर्वा, कोऽप्युभयपक्षोदासीनो वेति सद्य एव विज्ञेयम्" इति विचारयन्, मन्दिर-पाश्चात्य प्राचीर-गवाक्षादायान्तं कञ्चिदस्पष्टालाप-ध्वनिमश्रौषीत्। क्षणं विरम्य च, गवाक्ष-समीपमा-

मन्दिरस्य=देवालयस्य, पाश्चात्यः=पश्चाद् भवः, यः प्राचीरगवाक्षः=प्रान्ततोवृति वातायनम्, तस्मात् "प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः" इत्यमरः। अस्पष्ट० = अव्यक्तः यः, यथा कथंचिदेवमेवमिति निश्चितः आलापस्य =

करूँगा।" यह सुन कर मन-ही-मन हँसते हुए शिवाजी ने पुनः पूछा "अच्छा, ऐसा ही करेंगे, पर तब तक यह तो बताओ कि तुम लोग आ कहाँ से रहे हो?" वह घोड़े की ही ओर देखता हुआ झुँझला कर बोला "तुम लोग कहाँ से आये हो, तुम लोग कहाँ से आये हो, 'कहाँ कहाँ से तो तुम मेरे कान फोड़े डाल रहे हो, हम दिल्ली से आये हैं दिल्ली से, दिल्ली से, दिल्ली से, कहो, हाथी देते हो कि घोड़ा!" यह सुन कर शिवाजी उसका स्वभाव समझ कर, धीरे से लौट कर, मन्दिर के पश्चिम की ओर टहलने लगे।

"यह कौन है, कहाँ से आया है, गुप्तचर है या दूत, छद्मवेषी पथिक है या हमारे ही पक्ष का कोई व्यक्ति, शत्रुसेना का कोई सैनिक है या दोनों पक्षों से उदासीन कोई तटस्थ व्यक्ति, यह शीघ्र ही जानना चाहिये" यह विचार करते हुए शिवाजी ने मन्दिर की पश्चिम ओर की चहारदीवारी की खिड़की से आती हुई फुसफुसाहट (बातचीत की अस्पष्ट और मन्द ध्वनि) सुनी। क्षण भर रुक कर, खिड़की के पास आकर, शिवाजी ने, ध्वनि-

गुणग्रहणासमर्थान्, मिथ्या-मोद-रतान्, वाराङ्गना-व्रात-चरण-पाताघात-सहान्, मद्य-कीटान्, द्यूतानन्यभक्तान्, नृपम्मन्यान् स्वप्नेऽपि समुपास्महे। दिल्लीश्वर पद-विडम्बनमपि चाहं तादृशेष्वेवान्यतममवगत्य क्षणेनैव तत्सम्बन्ध-सूत्रं त्रोटयित्वा रसिकान्तरं कमपि वीरमन्विष्यन् दक्षिणां दिशं प्रस्थितोऽस्मि। पथि चामेर-देशाधीशेन बहुशः प्रार्थ्यमानोऽपि स तस्यैव दिल्ली-वलय-कलङ्कस्य लालाटिक इत्यवगत्य, गिरमीर-वीत्ताश्च श्रावं श्रावं कर्ण-

---

फनल कल्पनयैव समुपस्थापिते, रतान् = सक्तान्। वाराङ्गनाव्रातस्य = वेश्यानिकरस्य, चरणपाताघातम् = अङ्घ्रिनिपातताडनम्, सहन्ते च तान्। मद्यकीटान् = आसवभृङ्गान्। अतिमात्रं सुरापायिन इति यावत्। आत्मानं नृपं मन्यन्त इति नृपम्मन्यास्तान्। स्वप्नेऽपि = जागदवस्थायामस्तु नत्वेव का, निद्रायामपि नेदृशान् सेवामहे। रसिकान्तरम् = भिन्नं रसिकम्। न हि कवितानिवेदनमरसिकेषु युज्यते। तथा च प्राक्तनं पद्यम्—

"इतरपापफलानि निजेच्छया वितर तानि सह चतुरानन!।
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख॥"

आमेरदेशाधीशेन = जयपुराधीश्वरेण। अद्यतनं जयपुरराज्यं तदानीम् "आमेर" इति ख्यातमासीत्। "अम्बर" इत्यपि व्यवहारस्तत्र। लालाटिकः = भालदर्शिसेवकतुल्यः। यथा कार्याकार्ये कुरुते प्रभुभालावलोक

---

वाले, काल्पनिक आनन्द में ही रमण करने वाले, वेश्याओं के पादप्रहार को सहनेवाले, मदिराकीट और जुए के अनन्य भक्त हैं तथा अपने को राजा समझते हैं। मैं दिल्लीश्वर पद की विडम्बना करने वाले औरंगजेब को भी उक्त प्रकार के नृपाभिमानियों में से ही एक समझकर, तत्क्षण उससे सम्बन्ध सूत्र तोड़ कर किसी अन्य वीर रसिक को खोजता हुआ दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ा। रास्ते में आमेर (आधुनिक जयपुर) के राजा ने बार-बार प्रार्थना की, पर उसे दिल्ली साम्राज्य के कलङ्क औरंगजेब का लालाटिक (भाग्यदर्शी और असमर्थ सेवक) जानकर

योराकृष्ट इव इतः समायातोऽस्मि, द्रक्ष्यामि किं भावि ?"—

—इति वक्तारं कमपि कविं त्यक्त-दिल्लीश्वरद्वारं निजं दिदृक्षुमत्राऽऽगतमूरीकृत्य, पुनः परिक्रम्य, द्वार-मार्गेण मन्दिरं प्रविश्य, शिवं प्रणम्य, घण्टामाहत्य, बिल्व-दलमुत्थाप्य, नेत्रयोः संस्पृश्य शिखायां संस्थाप्य, मृत्तिका-शरावस्थं भस्मालिके विलिप्य, प्रदक्षिणच्छलेन पान्थाध्युषित प्रदेशमागत्य, तेनाऽऽलपन्तं शिवमन्दिराध्यक्षं प्रणम्य, बद्धाञ्जलिरागन्तुकमपि—'कुतः श्रीमान् ? कः श्रीमान् ?"—इति सादरं समपृच्छत्।

---

मात्र निरता भवन्ति कुत्सिता भूत्वा एवमयमपि दिल्लीकलङ्कस्य क्रोधप्रज्वालनकारणात् केवल तदीयभाल समयलोकयति, न स्वतन्त्रतया किमपि विधातु शक्नोति। ह्राऽ दुर्वारः कश्चो वञ्चलेशादितो मानसिंहदुरन्वयमनुगा जयपुरीयाणां इत्यादरत्यामलम्।

निजं दिदृक्षुम् = शिववीरदर्शनाभिलाषिणम्। "न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनामि" ति षष्ठीनिषेधः। शिवम् = शङ्करम्। आहत्य = ताडयित्वा। वादयित्वेति यावत्। भस्म = भसितम्। अलिके = ललाटे। "ललाटमलिकं गोधिरि" त्यमरः। आगन्तुकम् = प्राघुणिकम्।

---

महाराज शिवाजी का यश सुनकर, उससे आकृष्ट होकर ही इधर आया हूँ, देखूँ क्या होना है।' ऐसा कहने वाले किसी व्यक्ति को, दिल्लीश्वर औरंगजेब का दरबार छोड़कर, अपने ( शिवाजी ) को देखने के लिये यहाँ आया हुआ कोई कवि समझ कर, पुनः घूमकर, दरवाजे के रास्ते से मन्दिर में घुसकर, शिवमूर्ति को प्रणाम कर, घण्टा बजा कर, बिल्वपत्र उठा कर आँखों से लगाकर, शिखा में बाँध कर, मिट्टी के सकोरे में रखी भस्म को ललाट में लगाकर, प्रदक्षिणा के बहाने उस स्थल पर—जहाँ वह पथिक था—आकर, उस पथिक के साथ बातचीत करते हुए शिव मन्दिर के अध्यक्ष को प्रणाम कर, हाथ जोड़कर, आगन्तुक से भी सादर पूछा, "आप कहाँ से आये हैं और कौन हैं।'

मन्दिराध्यक्षस्तु स्वरेण आकृत्या च तं परिचिन्वन्नपि तन्नियमं संस्मृत्य न तथाऽचेष्टत; यथा स विज्ञातः स्यादपरैः ।

शिववीरस्तु तेन सह चिरमालप्य, तस्य वृत्तान्तमवस्थां प्रकृतिं चावगत्य, चिराय श्रुतचरं 'भूषण'-कविरित्यभिधानं चोररीकृत्य "श्वो द्रष्टा भवान् शिवराजम्" इत्यभिधाय न्यवर्तिष्ट ।

निवर्तमानश्च तेनापि "को भवान्?" इति पृष्टः "एतद्देशीयः कोऽपि वीरोऽस्मि" इत्युदतीतरत् ।

प्रातरेव च नित्य-नियमान्निर्वर्त्य स्वेष्ट-जन-सहितः संभासंस्थ एव स्वभृत्येन भूषण-कविमाकारयत् ।

---

परिचिन्वन् = शिववीरत्वेन जानन् ।

प्रकृतिम् = स्वभावम् । अवगत्य = बुद्ध्वा । उररीकृत्य = स्वीकृत्य, ज्ञात्वेति यावत् । न्यवर्तिष्ट = निवृत्तोऽभूत् । गतवानित्यर्थः । वीरः = राजभटः । "सिपाही" इति हिन्दी । उदतीतरत् = उत्तरं दत्तवान् ।

---

मन्दिर के अध्यक्ष ने स्वर और आकृति से शिवाजी को पहचानते हुए भी उन ( शिवाजी ) के नियम की याद करके कोई ऐसी चेष्टा नहीं की जिससे अन्य लोग उन्हें ( शिवाजी को ) पहचान सकें ।

शिवाजी ने उस पथिक के साथ काफी देर तक बातचीत कर के, उसका वृत्तान्त, अवस्था और स्वभाव जानकर, और उसका नाम 'भूषण' कवि—जिसकी प्रसिद्धि उन्होंने बहुत दिनों से सुन रखी थी—जान कर "आप कल शिवाजी के दर्शन करें" ऐसा कह कर लौट पड़े । लौटते समय, भूषण कवि के "आप कौन हैं" यह पूछने पर, "इसी देश का एक वीर हूँ" यह उत्तर दिया ।

प्रातःकाल ही नित्यकर्म से निवृत्त होकर, अपने सभासदों के साथ सभा में बैठे शिवाजी ने सभा में ही अपने सेवक से भूषण कवि को बुलवाया ।

स तु बद्धमहोष्णीषः, पादाग्र-पर्य्यन्त-विलम्बमान-कञ्चुकः, नारिकेल-फल-सार-सहितं यज्ञोपवीत-युगलं हस्ते आदधानः, द्वारपाल-दर्शितेन पथा सभां प्रविश्य "विजयतां महाराजः"-इति सिंहगर्जनमवधीरयता स्वरेणोच्चैरुक्त्वा स्वोपहारं महाराजहस्ते आर्पयत् ।

निर्दिष्टस्थान उपविश्य च, स एवायं पूर्वदृष्टो वीर इति निरीक्ष्य, "अहो ! वीरो वीरो वीरः । वीरमेवान्विष्यन् दिल्लीत इतो यावत् समायातोऽस्मि, वीरमेव च प्राप्तवानस्मि । विजयतां धर्मोद्धारण-धीरः, सपत्नोत्सारण-समीरः, वीरो महाराज" इत्युदीर्य

---

नारिकेल-फलस्य सारेण = तत्स्थांशेन, "गरी का गोला" इति हिन्दी, सहितम् । आदधानः = धारयन् । स्वोपहारम् = स्वोपायनम् । आर्पयत् = आदरेण दत्तवान् । 'ऋ गतिप्रापणयोः' स्यस्माण्णिचि "अर्त्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ" इति पुकि रूपम् । वीरो वीरो वीरः = सम्भ्रमेऽनेकशब्दोच्चारणमिति बहव । सपत्नानाम् = शत्रूणाम्, "रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः" इत्यमर. । उत्सारणे = दूरीकरणे, समीरः =

---

बड़ी-सी पगड़ी बाँधे, पैरों तक लटकने वाला लम्बा कुर्ता पहने, हाथ में गरी का गोला और यज्ञोपवीत की जोड़ी लिये महाकवि भूषण ने द्वारपाल द्वारा दिखाये गये रास्ते से सभाभवन में प्रविष्ट होकर, सिंहगर्जन को भी तिरस्कृत कराने वाले गम्भीर स्वर से "महाराज की जय हो" यह कह कर अपना उपहार महाराज शिवाजी के हाथ में रख दिया ।

तदनन्तर दिखाये गये स्थान पर बैठ कर भूषण ने "यह तो वही पहले ( कल ) देखा हुआ वीर है" यह देखकर, "अहा वीर ! वीर !! वीर !!! वीर की खोज में ही दिल्ली से यहाँ तक आया और वीर से ही आ मिला । जय हो, धर्म के उद्धार में धीर, शत्रुओं को उखाड़ने में समीर के समान महाराज शिवाजी की जय हो" यह कह कर, कुछ

किंचित् स्मयमानस्य महाराजस्य मुखमवलोकयंस्तत्प्रशंसायां वीररसमयीं कवितामेकामपठत् ।

महाराजस्तु "साधु साधु" इति व्याहृत्य, पुनः पठितुमाज्ञप्तवान् । पठितवति च तस्मिन् सर्वेषु प्रसन्नेषु पुनरप्यादिशत् । इत्येवं विंशतिवारं तेन सा व्रज-भाषामयी 'कवित्वकाम'-नामिका वृत्तिरपाठि । महाराजेन च तस्मै गजानां विंशतिर्वितीर्णा-इत्यद्यापि प्रसिद्धं कविता-रसिकानां मण्डले ।

तदेव च दिनमारभ्य तेन भूषण-कविः स्व-सभायां संस्थापितः ।

अथ दृश्यतां ततः शास्तिखानस्य काऽवस्थेति ।

---

साधु । स्मयमानस्य = ईषद्धास्यनिरतस्य । व्रजभाषामयी = व्रजभाषाया निर्मिता । तुलसीदासजन्मनः पूर्वं व्रजभाषैव कविताभाषात्वेन गणिता । यहोः कालादनन्तरमपि तस्यास्तद् गौरवं सुरक्षितमेवाभवत् । अधुना तु प्रायो हिन्द्यामेव कविता कुर्वन्ति । कवित्वकामनामिका = लोके "कवित्त" इत्यपभ्रंशतया ख्याता । वृत्तिः = छन्दः । विंशतिः, "विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वा सङ्ख्येय-सङ्ख्ययोरि"त्यमरः । गजशब्दस्य प्रथमान्तत्वेऽपि गजा विंशतिरित्येव ।

---

मुस्कराते हुए महाराज शिवाजी के मुख की ओर देखते हुए उनकी प्रशंसा में एक वीररसमयी कविता पढ़ी ।

महाराज ने "साधु साधु" कह कर पुनः पढ़ने की आज्ञा दी । भूषण के पढ़ने पर तथा सबके प्रसन्न होने पर पुनः आज्ञा दी । इस प्रकार भूषण ने बीस बार व्रजभाषा का कवित्त सुनाया । महाराज ने उसे बीस हाथी दिये, यह बात आज भी कविता-रसिकों की मण्डली में प्रसिद्ध है । उसी दिन से महाराज ने भूषण कवि को अपनी सभा में रख लिया ।

अब देखें, उधर शाइस्ता खाँ की क्या हालत है ।

अस्तमिते भगवति मरीचिमालिनि, अन्धकारेण व्याप्तासु हरित्सु, किञ्चित् किञ्चिच्चमत्कुर्वत्सु नक्षत्रेषु, शिववीरेणाध्युषितचरस्य महाप्रासादस्याट्टालिकायामात्मीयैः शास्तिखानः समुपविष्टोऽस्ति। परितश्चानेके योद्धारो मौद्गलाः पर्यवातिष्ठन्त। परितो दीपमाला चकास्ति। पुष्पवाटिकाभ्यश्च प्रस्फुटदतिमुक्त-कुसुमसौरभमादाय धीरः समीरः प्रवहति। शास्तिखानस्तु महदुपधानं पृष्ठेनाऽऽक्रम्य, सम्मुखस्थ-रत्न-जटित-धूमपान-यन्त्र-नलिकां हस्ते

---

अस्तमिते = अस्ताचलं गते। व्याप्तासु = सङ्कुलासु। हरित्सु = दिक्षु। चमत्कुर्वत्सु = प्रभां वितरत्सु। नक्षत्रेषु = उडुगणेषु। महाप्रासादस्य = विशाल राजमन्दिरस्य। अट्टालिकायाम् = तल्पिन्याम्, "अटारी" इति हिन्दी। आत्मीयैः = स्वीयैः। मौद्गलाः = मौद्गल्याः। "मोगल" इति हिन्दी पूर्वप्रदर्शितनयेनैतन्मते मौद्गल्यगोत्रा इमे क्षत्रिया इति मन्तव्यम्। साहित्याचार्यरामावतारशर्मादयोऽप्येतन्मतपथिका इति न विस्मरणीयम्। पर्यवातिष्ठन्त = परितः स्थिता अभूवन्। चकास्ति = दीप्यते। प्रस्फुटताम् = विकसताम्, अतिमुक्तकुसुमानाम् = माधवीपुष्पाणाम्, सौरभम् = शोभनं गन्धम्। सम्मुखस्थस्य = पुरःस्थापितस्य, रत्नजटितस्य = हीरकादिखचितस्य, धूमपानयन्त्रस्य = "हुक्का" इति ख्यातस्य, नलिकाम् = "नली" इति लोके ख्याताम्। यूथिकानीरकाणाम् = मागधीक-

---

भगवान् सूर्य अस्ताचल की ओर गमन कर चुके हैं, दिशाओं में अन्धकार फैल गया है, तारे कुछ कुछ टिमटिमाने लगे हैं। शाइस्ता खाँ उसी राजप्रासाद में, जिसमें पहले महाराज शिवाजी रहा करते थे, अपने मुसाहिबों के साथ बैठा है। चारों ओर अनेक योद्धा मुगल बैठे हैं। चारों ओर दीपक जल रहे हैं। फुलवाड़ी से, खिलते हुए माधवी पुष्पों की सुगन्ध लेकर, मन्द-मन्द वायु चल रही है। शाइस्ता खाँ एक बड़े मसनद पर पीठ रखे, सामने रखे हुए रत्नजटित हुक्के की नली को हाथ में

दधत्, मध्ये मध्ये च यूथिका-कोरक-पङ्क्ति-परिवेष्टित-नलिका-मतः सगुडगुडाशब्दं ताम्रक धूममाकर्षन्, पार्श्वस्थ-ताम्बूलवाहक-हस्ताद्वीटिकामपि गृह्णन्, उशीर-जल-सिक्त-व्यजन-वातैर्वीज्य-मानः, परितः संस्थापित-सतोय-भाजनस्थ-कुसुम-स्तबकैः सुरभी-क्रियमाणः केनचन कार्यवाहेण सहैवमालपत्।

शास्तिखानः—[ मुखात् ताम्रक-धूमं फूत्कुर्वन् ] बदरदीन ! कथय कीदृशस्ते प्रबन्धः पुण्यनगरे ?

---

लिकानाम्, पङ्क्तिभिः = राजिभिः, परिवेष्टितायाः = सर्वतो भूषितायाः, नलिकाया अग्रतः। "गुडगुडा" इत्यनुक्रियमाणः शब्दः गुडगुडाशब्दः, तेन सहितम्। ताम्रकस्य = "तम्बाकू" इति ख्यातस्य, धूमम्। पार्श्वस्थः=निकटे तिष्ठन्, यः ताम्बूलवाहकः तद्धस्तात्। वीटिकाम् = ताम्बूलीदलीम्। "बीड़ा" इति हिन्दी। उशीरजलेन = नलदाम्भसा, सिक्तस्य = आर्द्रीकृतस्य, व्यजनस्य वातैः। ग्रीष्मे शैत्यपरिमल्याधानार्थं पानीये उशीर ('खस' इति भाषाया) निक्षिपन्ति जनाः। वीज्यमानः = सेव्यमानः, परितः संस्थापितेषु = सर्वतो निहितेषु, सतोयेषु = पानीययुतेषु, भाजनेषु = पात्रेषु, तिष्ठद्भिः कुसुमस्तबकैः = पुष्पगुच्छैः, "गुलदस्ता" इति ख्यातैः। कार्यवाहेण = कृत्यसम्पादकेन। अनुचरेणेति यावत्।

बदरदीन ! सम्बुद्धयन्तम्। "बदरुद्दीन" इति लोकख्यातं तन्नाम।

---

लिये बैठा है। वह बीच-बीच में मागधी पुष्प की कलियों की माला से विभूषित उस नली के अग्रभाग से गुड़गुड़ शब्द करते हुए, तम्बाकू का धुआँ खींचता है और बीच-बीच में पास में खड़े ताम्बूलवाहक के हाथ से पान का बीड़ा भी ले लेता है। उसे खस के जल से भिगोये गये पखों की हवा और चारों ओर रखे जलयुक्त पात्रों में लगे गुलदस्तों की सुगन्ध मिल रही है। वह अपने किसी कार्यकर्ता से इस प्रकार बातचीत कर रहा है—

शाइस्ता खाँ—( मुख से तम्बाकू का धुआँ निकालता हुआ ) *बदरुद्दीन ! कहो, पूना नगर में तुम्हारा कैसा प्रबन्ध है ?*

**बदरदीनः**—[ करौ सम्पुटीकृत्य ] चमूपते, सर्वं सुष्ठु ! प्रति-शृङ्गाटकं प्रतिविपणि प्रतिगोपुरं प्रतिपल्लि च दोधूयन्ते दिल्ली-श्वरस्य विजय-पताकाः। विनाऽऽदेशं न कश्चिद् रुस्तम-सोदर्योऽपि शक्तो गोपुरावग्रहणीं पदा स्प्रष्टुमुल्लङ्घितुं वा। औद्वाहिक-वर-यात्रायै वा, मृतकोद्वहन-निमित्तं वा, श्रीमदादेश-मुद्रापत्रं विना ससमारोहं न केऽपि पारयन्ति सर्पितुम्। साधारणतोऽपि

---

शृङ्गाटके शृङ्गाटके प्रतीति प्रतिशृङ्गाटकम्। "अव्यय विभक्ती" त्यादिना वीप्सायामव्ययीभावः। एवमग्रेऽपि प्रतिविपण्यादौ। शृङ्गा-टकम् = चतुष्पथम्। "चौराहा" इति हिन्दी। विपणिः = पण्यवीथिका, "बाजार" इति हिन्दी। गोपुरम् = पुरद्वारम्, "पुरद्वारन्तु गोपुरमि" त्यमरः। पल्लिः = कुटी। आभीरादिगेहमिति यावत्। "कुटीकुमामयोः पल्लिरि"ति शाश्वतः। दोधूयन्ते = अतिशयेन कम्पन्ते। रुस्तमसोदर्यः = "रुस्तम"इति ख्यातस्य भ्राता। महान् बलशाली रुस्तम नामा कश्चिद् यवनः पूर्वमासीत्। अवग्रहणीम् = देहलीम्। पदा = अङ्घ्रिणा। उल्लङ्घितुम् = अतिक्रमितुम्। औद्वाहिकी = विवाहसम्बन्धिनी या वरयात्रा = "बारात" इति ख्याता, तस्यै। मृतकोद्वहननिमित्तम् = शववहनसंस्कारहेतुकम्। श्रीमदादेशस्य = भवदाज्ञायाः, मुद्रापत्रम् = मुद्राङ्कित पत्रम्। ससमारोहं = जनसम्मर्देन सहित यथा स्यात्तथा। सर्पितुम् = गन्तुम्। साधारणतः = सामान्यरूपेण। निःसमारोहमिति

---

**बदरदीन**—( हाथ जोड़ कर ) सेनापति ! सब ठीक है। प्रत्येक चौराहे, प्रत्येक बाजार, नगर के प्रत्येक बहिर्द्वार, और प्रत्येक गाँव में दिल्लीपति औरंगजेब की विजयपताकाएँ फहरा रही हैं। बिना अनुमति के कोई रुस्तम का भाई भी, नगर के बाहरी दरवाजे की देहली को पैर से छू या लाँघ नहीं सकता। आपकी अनुमति की मुहर से चिह्नित आज्ञापत्र के बिना कोई विवाह की बारात या मृतक की अर्थी भी समारोहपूर्वक नहीं

च द्वित्राधिका न सह पर्य्यटितुं शक्नुवन्ति जनाः। प्रतिप्रत्यूषं प्रत्यस्तमनवेलं प्रतिमध्याह्नं प्रतिनिशीथञ्च मस्जिद-स्थानेभ्यः समुत्थिता मौलिवि-वर्यैर्निषाद-स्वरेणोच्चैरुच्चारिता घमद्घमद्-मकितदिगन्तराला ध्वन्यन्तर-निपातनं "अल्ला, अल्ला, अल्ला"-इति ध्वनयः प्रतिगृहम्, प्रतिप्रासादम्, प्रतिहट्टम्, प्रत्यट्टम्, प्रत्यङ्गणम्, प्रतिशालम्, प्रतितडागम्, प्रत्यारामं चोत्थितैः प्रतिशब्दैः सहस्रगुणभूता नभोमण्डलं तरङ्गयन्ति। न जानीमो

---

यावत्। द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः, तेभ्योऽधिकाः। चत्वारस्तदधिका वा जना न मिथः सङ्गत्य वार्त्तालापादिकं कुर्युरिति साम्प्रतिक भारत-विधान-शास्त्रीय (ताजीरात हिन्द) चतुश्चत्वारिंशदधिकशततम्—(१४४) धाराया अर्थः। स यवनकालसमारभ्य एवेति हृदयम्। मस्जिदस्थानेभ्यः= "मसजिद" नामकभवनेभ्यः मौली=शिरसि, विरिव पक्षीव, येषां ते मौलिवयः="मौलिवी" इति ख्याताः, तेषां वर्यैः=श्रेष्ठैः। ध्वन्यन्तर-निपातनम्=इतरनादमभिभूय। क्रियाविशेषणम्। घमद्घमदिति ध्वन्यनुकरणम्। अल्ला=मातेत्यर्थः सस्कृतशब्दस्यास्य। यवनाः सर्वेश्वर-वाचकं मन्यन्ते। सागरपारस्थिताः क्षत्रिया महामायाया मन्वार आसन्निति तर्करत्नमतानुयायिनः। अट्टम्=अट्टालिका। प्रतिशब्दैः=प्रतिध्वनिभिः। नभोमण्डलं तरङ्गयन्ति=व्याप्नुवन्ति। तदूढभ्राष्ट्राः=अतितप्ताम्बरीषाणि।

---

ले जा सकता। वैसे भी दो-तीन से अधिक लोग साथ-साथ नहीं घूम सकते। प्रतिदिन सुबह, शाम, दोपहर और आधीरात को मस्जिदों से उठने वाली, मौलवियों द्वारा निषाद स्वर से जोर-जोर से की गयी, घमद्-घमद् शब्द से दिशाओं को गूँजाने वाली, अन्य ध्वनियों को अभिभूत कर देने वाली, "अल्ला, अल्ला, अल्ला" की ध्वनियाँ, प्रत्येक घर, प्रत्येक महल, प्रत्येक बाजार, प्रत्येक अट्टालिका, प्रत्येक आँगन, प्रत्येक शाला, प्रत्येक तालाब और प्रत्येक उपवन से उठने वाली प्रतिध्वनियों से हजारगुनी होकर आकाशमण्डल को तरङ्गित करती हैं। भट्ठी के समान जलते हृदय

वराकाः काका इव कुत्र उड्डीना उदूढ-भ्राष्ट्रा इव दुःखदन्दह्यमान-हृदया महाराष्ट्राः।

शास्तिखानः—[ प्रसन्नानां स्मयमानानां पार्श्वस्थानां मुखान्यवलोक्य, सकपट-हासम् ] अहो! अहो! एवं किम्?

बदरदीनः—[ सादरम् ] श्रीमन्! एवमेव! हता हता इति हता हिन्दु-हतकाः।

शास्तिखानः—अथ शिव-वियोगेन प्रजाः सीदन्ति प्रसीदन्ति वा।

बदरदीनः—भगवन्! सर्वोऽप्यत्यानन्दितः समालोक्यते पुण्य-नगर-निवासी जनः। सायं समय आसन्न एव जलैः सिक्तासु रथ्यासु क्षणे क्षणे खडखडाशब्दं पुष्परथाः प्रधावन्ति। बहव

---

"क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना" इत्यमरः। दुःखेन = पराजयप्राप्तिखेदेन, दन्दह्यमानम् = अतिशयेन दह्यमानम्, हृदयं येषां ते।

सीदन्ति = क्लेशमनुभवन्ति। प्रसीदन्ति = प्रसन्नतामनुभवन्ति। पुष्परथाः = उत्सवादिषु सुखभ्रमणाय यानानि। "असौ पुष्परथश्च-

---

वाले बेचारे दुःखसन्तप्त मराठे कौओं की तरह न जाने कहाँ भाग गये हैं।

शाइस्ता खाँ—( पास में बैठे प्रसन्न तथा मुस्कराते हुए लोगों के मुख की ओर देख कर कपट की हँसी से ) अहा हा, क्या—ऐसा है?

बदरुद्दीन—( आदरपूर्वक ) हाँ हुजूर, ऐसा ही है। हत गये-गुजरे काफ़िरों को मरा ही समझिये।

शाइस्ता खाँ—हाँ तो शिवाजी के वियोग से प्रजा दुःखी है या प्रसन्न?

बदरुद्दीन—हुजूर! पूनानिवासी प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न दीख पड़ता है। शाम होते ही पानी छिड़की हुई सड़कों पर क्षण-क्षण भर में पुष्परथ

एतद्देशीया अन्यदेशीयाश्च स्वच्छ-परिधानाः सुसूक्ष्म-वसनाङ्ग-रक्षिकोत्तरीयाः वीटिका-राग-रञ्जिताधराः सुवर्णादि-खचित-विविध-यष्टिकान्दोलन-चञ्चल-कराः प्रतोलीषु पर्यटन्ति। केचिद् "उत्तरीयाणि भोः! उत्तरीयाणि, नारङ्गाणि नारङ्गाणि, रम्भा-रम्भाः, व्यजनानि व्यजनानि, मालिका मालिकाः, पाचकं पाचकम्, मुरलिका मुरलिकाः क्रीडनकानि क्रीडनकानि, मोदका मोदकाः, परिमलं परिमलम्"–इति विविधभङ्गीभिः सुस्वरं स्व-स्व-वस्तूनि विक्रीणते। क्वचिच्चिदाकुञ्चिततिरस्करिणीषु अट्टालिका-गवाक्षिकासु

---

क्यान न समरान यदि' त्यमरः। प्रतोलीषु = रथ्यासु। पाचकम् = कोष्ठशोधकमौषधम्। विक्रेतारश्चतुष्पथादिषु प्रायः कदलीनागरङ्गादिपण्यवस्तुघोषण-पूर्वं मिलन्तीति ननु दृष्टिगोचरम्। मुरलिका = वंशः। क्रीडनकानि = "खिलौना" इति हिन्दी। परिमलम् = सौगन्धिकम्। "इत्र" इति हिन्दी। विविधभङ्गीभिः = नाना परिपाटीभिः। विक्रीणते = विक्रय कुर्वते। आकुञ्चितासु = ईषद्दूरीकृतासु, तिरस्करिणीषु = यवनिकासु, "पर्दा" इति हिन्दी। अट्टालिकागवाक्षिकासु = "अटारी की खिड़कियों में"

---

(बग्घियाँ) खड़-खड़ शब्द करते हुए दौड़ने लगते हैं। साफ सुथरे वस्त्र पहने, महीन कपड़ों के कुर्ते और उत्तरीय धारण किये, पान की पीक से लाल हो रहे अधरोष्ठ वाले, चञ्चल हाथों में स्वर्ण आदि जटित विभिन्न छड़ियाँ लेकर उन्हें हिलाने वाले, इस प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों के भी अनेक व्यक्ति सड़कों पर घूमने लगते हैं। कुछ "उत्तरीय लो उत्तरीय, नारङ्गी लो नारङ्गी, केले लो केले, पखे लो पखे, माला लो माला, पाचक चूर्ण लो पाचक चूर्ण, बाँसुरी लो बाँसुरी, खिलौने लो खिलौने, लड्डू लो लड्डू, इत्र लो इत्र," इस प्रकार नाना प्रकार की भावभंगियों से मधुर स्वर में बोलते हुए, अपनी-अपनी वस्तुएँ बेचने लगते हैं। कहीं खिसकी हुई चिकों वाली अट्टालिकाओं की खिड़कियों में बैठी, नाना प्रकार के

विविध-भूषण विहित-प्रबल-चाकचक्याः प्रसाधित-केशाः अञ्जन-रञ्जित-नयनाञ्चलाः सुवर्ण-कुसुमाङ्कित-पट्टाम्बर-धरा मद-विघूर्णित-लोचनाः उद्भिन्न-यौवना उन्नत-कुचाः मसृण-कपोलाः कपोत-कण्ठ्यो वाराङ्गनाः कटाक्ष-जल वागुराभिर्नव-युवक-मृगान् पाशयन्ति। किमिव कथयामि ? क्वचिदापान-गोष्ठ्यः, क्वचिद् मृदङ्गादि-ध्वनयः, क्वचिद् द्यूतकोलाहलाः, क्वचिद् वारवधू-तौर्यत्रिकमित्यखिलमानन्दमयमवलोक्यते।

---

इति हिन्दी। विविधैः, भूषणैः = अलङ्करणैः, विहित प्रबल चाकचक्यं याभि ताः। प्रसाधितकेशाः = कङ्कतिकया कृतसीमन्ताः। अञ्जनेन = कज्जलेन, रञ्जितानि = भूषितानि, नयनाञ्चलानि = नेत्रप्रान्ताः, यासां ताः। सुवर्णकुसुमैः = हिरण्मयतन्तुरचितकुसुमाकृतिभिः, अङ्कितानि=चिह्नितानि, पट्टाम्बराणि = कौशेयवासांसि, यासां ताः। उद्भिन्नयौवनाः = विकसिततारुण्याः, मसृणकपोलाः=चिक्कणगण्डस्थलाः। कपोत-कण्ठ्यः=पारावतकन्धरा। कटाक्षजालमेव वागुराः = मृगबन्धनानि, "वागुरा मृगबन्धिनी" इत्यमरः। ताभिः। नवयुवका एव मृगा इति रूपकम्। पाशयन्ति = बन्धयन्ति। वशीकुर्वन्तीति यावत्। आपान-गोष्ठ्यः = मद्यपानसभाः। वारवधूनाम्=वेश्यानाम्, तौर्यत्रिकम् = नृत्यगीतम्।

---

आभूषणों से चकाचौंध उत्पन्न करने वाली, सँवारे हुए बालों वाली, काजल लगे नेत्रों वाली, सोने के फूल कढ़ी रेशमी साड़ी पहनने वाली, मदमस्त नेत्रों से घूरने वाली, विकसित यौवना, उन्नत कुच, चिकने गाल और कबूतर की-सी गर्दन वाली वेश्याएँ अपने कटाक्ष जालों से नवयुवक रूप मृगों को फाँसती हैं। क्या-क्या कहूँ ! कहीं मद्यपानगोष्ठियाँ, कहीं मृदङ्ग आदि की ध्वनियाँ, कहीं जुए का कोलाहल, कहीं वेश्याओं का नाचगाना, सब आनन्द ही आनन्द दिखाई देता है।

शास्ति०—तत्किं शिवसहचरा महाराष्ट्रा अपि प्रसादमेवाऽऽसादयन्ति, न तु विषादम् ?

बद०—भगवन्! स्यान्नाम विषादस्तेषां हृदये, किन्तु बहिः प्रसादमेव दर्शयन्ति।

इत्याकलय्य अन्येऽपि श्लाघकाः—"भगवन्! को नाम जिजीविषुः प्रसादं न दर्शयेत्? प्रकटित-शिव-वियोग-विषादस्तु यलाद्-विषाद एव क्रियेत"—इत्याहुः।

आसीत् तत्रैवोपविष्ट एको वृद्धो वीरश्चान्द्रखान नामा। स तु केवलं रोचकमिदं मिथ्या-प्रशंसनमाकर्ण्य, कर्णयोस्तोद्यमान इव ग्रीवामाकुञ्च्य, भ्रू-युगं सन्नमय्य, ओष्ठ-युगं कम्पयन्, मनस्येव—

---

जिजीविषुः=जीवितुमिच्छुः। प्रकटित. शिववियोगस्य विषादः=क्लेशः येन स। विषमत्तीति विषादः=विषभक्षी। हन्येतास्माभिरिति तात्पर्यम्।

चान्द्रखान-नामा="चाँद खाँ" इति नाम यस्य सः। तोद्यमानः=कण्टकादिना वेद्ध्यमानः। भ्रूयुगम्=भ्रूयुगलम्। सहयुञ्जते=सयुक्ता.

---

शाइस्ता खाँ—तो क्या शिवाजी के साथी मराठे भी खिन्न न होकर, प्रसन्न ही हो रहे हैं?

बदरुद्दीन—हुजूर, वे दिल में भले ही सञ्जीदा हों पर बाहर तो खुशी ही प्रकट करते हैं।

यह सुनकर और भी खुशामदी बोल पड़े—"हुजूर, जिन्दगी चाहने वाला कौन सा ऐसा आदमी है जो प्रसन्नता न प्रकट करेगा। जो शिवाजी के वियोग के विषाद (दु:ख) को प्रकट करेगा, उसे बल्पूर्वक विषाद (विषभक्ष) ही बना दिया जायगा (अर्थात् मार डाला जायगा)।

वहीं चाँद खाँ नाम का एक बूढ़ा वीर बैठा था। इस रोचक झूठी तारीफ को सुनकर, मानों उसके कानों में पीड़ा होने लगी हो इस प्रकार, गर्दन सिकोड़ कर, भौंहे नीची कर, अधरोष्ठों को कँपाता हुआ, वह मन

"धिगेतांश्चाटुकार-हतकान्, ये प्रशंसाभिरेव प्रभूनन्धयन्ति। प्रतिक्षणमधिकं जाज्वल्यते शिव-तिरस्कार-जन्या ज्वाला महाराष्ट्राणां हृदये। गानेषु पानेषु नृत्येषु कुकृत्येषु चास्मत्सजातीया एव सह युञ्जते, न तु महाराष्ट्र-सिंहाः। यावदारभ्य चिक्कनदुर्गोऽस्माभिर्गृहीतस्तावदारभ्य महाराष्ट्र-बालकोऽप्यस्मांश्चिचर्वयिषुरिव सभ्रुकुटि पश्यति न त्वधीन इति बिभेति। पर्वतप्रायस्य कोङ्कणदेशस्य केशरिण एते। को जानीते कदाऽऽक्रम्यास्मान् कर्तयित्वा क्रव्यादेभ्यो विकिरिष्यन्ति, परन्तु कृतघ्ना एते मिथ्या-प्रलापैरेव चमूपतिं वञ्चयन्ति"—इत्यालपत्।

अथ पुनरारब्धवानालपितुं शास्तिखानः।

---

भवन्ति। सम्मिलन्तीति यावत्। चिक्कनदुर्गः="चाकन दुर्ग" इति प्रसिद्ध। चिचर्वयिषुः=चर्वयितुमिच्छुः। कर्तयित्वा=छित्वा। क्रव्यादेभ्यः=मांसभक्षकेभ्यः सिंहादिभ्यः। शतघ्न्यः=तोपाः।

---

ही मन कहने लगा—"इन गये-गुजरे खुशामदियों को धिक्कार है जो झूठी तारीफों से मालिक को इस प्रकार अन्धा बनाए दे रहे हैं। मराठों के हृदय में शिवाजी के अपमान से उत्पन्न होने वाली ज्वाला क्षण प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही है। गान, पान, नाच और कुकृत्यों में तो हमारी ही जाति के लोग इकट्ठे होते हैं, न कि मराठे वीर। जब से हमने 'चाकन' दुर्ग छीना है तब से मराठा बच्चा भी, "मैं मुगलों के अधीन हूँ" यह सोचकर डरने के बजाय, हम लोगों की ओर क्रोध से भौंह तान कर ही देखता है, मानो हमें चबा जाना चाहता हो। ये कोंकण के पहाड़ी प्रदेश के शेर ही हैं। कौन जाने कब आक्रमण कर के काट काट कर मांसभक्षी सिंहादिकों के आगे फेंक दें। परन्तु ये कृतघ्न खुशामदी झूठी बकवादों से सेनापति को धोखा दे रहे हैं, ठग रहे हैं।"

फिर शाइस्ता खाँ ने इस प्रकार बातचीत शुरू की।

शा०—अथ कः प्रबन्धश्चिक्नदुर्गस्य ?

व०—श्रीमन् ! तत्रापि परितो नीलध्वजाः समुद्धूयन्ते। यथास्थानं शतघ्न्यः संस्थापिताः, द्वारेषु च भटा नियुक्ताः सन्ति, अन्तश्च सानन्दं सेना निवसति।

चान्द्रखानः—[ मनस्येव ] सानन्दम्, न तु सतर्कम् ?

शास्ति०—[ स्मयं किञ्चिद् विचार्येव, सोल्लासम् ] सम्मुखयुद्धं प्राप्येत चेद्विजये एव को विलम्बः ?

तावत्तत्रस्थः कश्चिच्चाटुकारो महामदगणि-नामा सगात्रविक्षेपं प्रावोचत—

भगवन् ! महाराष्ट्राः स्वप्नेऽपि न पारयन्ति सम्मुखं योद्धुम्, तथा साहसं कलयितुञ्च।

---

सोल्लासम् = सोल्लुण्ठनम्। सोपहासमिति यावत्।

महामदगणि नामा = मुहम्मदगनी नामधेयः। सगात्रविक्षेपम् = शरीर प्रकम्प्य। हर्षातिरेकादिदम्।

---

शाइस्ता खाँ—अच्छा, चाकन दुर्ग का क्या प्रबन्ध है ?

बदरुद्दीन—हुजूर, वहाँ भी चारों ओर नीले झण्डे फहरा रहे हैं। यथोचित स्थानों पर तोपें रखी हैं, द्वारों पर योद्धा नियुक्त हैं और अन्दर सेना आनन्दपूर्वक रह रही है।

चाँद खाँ—( मन ही में ) आनन्दपूर्वक, न कि सतर्कतापूर्वक।

शाइस्ता खाँ—( स्वप मानो कुछ सोच कर, हँसता हुआ, यदि सम्मुख युद्ध करने को मिल जाय, तब तो हमारी विजय में कुछ भी देर नहीं है।

इसी बीच वहाँ बैठा हुआ मुहम्मद गनी नाम का कोई खुशामदी प्रसन्नता से शरीर हिलाता हुआ बोला—"हुजूर ! मराठे सपने में भी सम्मुख युद्ध नहीं कर सकते, तथा साहस भी नहीं कर सकते।"

चान्द्रखानस्तु असहमानः शनैरवोचत्-अहं तु मन्ये, ते उभयं कर्तुं पारयन्ति।

शास्ति०—कथम्?

चा०—किं न स्मर्यते चमूपति-चरणैर्यद् गत-वत्सरे चिकनदुर्गं प्रविश्याऽस्माकीनसेनां ते कथमिव वीरतया साहसेन प्राबल्येन च पश्यतामेवास्मदीय-वीरम्मन्यानां खण्डशः समकार्षुः? किं नैतत्सम्मुख युद्धम्? न वैतत् साहसम्? भगवन्! अहं तैः सह युद्धे बहुवारमासम्। किन्तु समसेनैरपि मौद्गलैर्युद्धे प्रवृत्ते तेषामेव ध्रुवो जयः—इति मे निश्चयः।

महम्मदगणिः—[ चमूपतेश्चान्द्रस्य च मुखमालोक्य ] आः!! तत्किं वयं दुर्बला वा, असाहसा वा, अचतुरा वा, कातरा वा? यत्समबलानामपि तेषामेव जयो भवेदिति।

---

चाँद खाँ से न सहा गया, वह धीरे से बोला—"मैं समझता हूँ वे दोनों कर सकते हैं, सम्मुख युद्ध भी और साहस भी।"

शाइस्ता खाँ—कैसे?

चाँद खाँ—क्या हुजूर को याद नहीं है कि पिछले साल मराठों ने चाकन दुर्ग में प्रवेश कर, अपने को वीर मानने वाले हमारे सिपाहियों के देखते-ही देखते, किस प्रकार वीरता, साहस और प्रबलता से हमारी फौज के टुकड़े टुकड़े कर डाले थे? क्या यह सम्मुख युद्ध नहीं है? अथवा यह साहस नहीं है? हुजूर, मैं मराठों के साथ युद्ध में कई बार रहा हूँ, किन्तु मराठों की सेना के बराबर मुगल सेना होने पर भी युद्ध में मराठों की ही जीत तय है, ऐसा मेरा पक्का विश्वास है।

मुहम्मद गनी—( शाइस्ता खाँ और चाँद खाँ का मुँह देखकर ) अरे, तो क्या हम दुर्बल हैं, साहसहीन हैं, डरपोक हैं, या हम में चालाकी या वीरता नहीं जो समान सेना होने पर भी उन्हीं की जीत होगी?

चा०—नैवम्, किन्त्वल्पाऽपि परिपन्थि-सेना द्वैगुण्येनैव आक्रमणीया-इत्येषोऽस्माकमभ्यासः। तेषां च द्विगुणाऽपि चतुर्गुणाऽपि च शत्रुसेना कतिपयैरेव सादिभिर्योद्धव्या, निरोद्धव्येति च विलक्षणो वीर-स्वभावः।

शा०—[ धूममाकृष्य हसित्वेव ] चान्द्रखानो वयोवृद्ध इति साम्प्रतं पार्वतेभ्य उन्दुरुभ्योऽपि बिभेति। ( चान्द्रस्तु कोष्ण-किरात-स्वरसमिव क्रोधमवगीर्य तूष्णीक एव तस्थौ )

महामदगणिः—आम्, आम्, आम्, सम्यगाज्ञप्तमार्यैः। उन्दुरव इवैव ते गिरि-कुहरेषु निवसन्ति।

बद०—हुं हुं हुम्, अन्धकारेषु बहिर्भवन्ति, ताड्यमानाश्च पलायमानाः पुनः कुहराणि श्रयन्ते।

---

पार्वतेभ्यः = पर्वतीयेभ्यः। उन्दुरुभ्यः = मूषकेभ्य.। "उन्दुरुर्मूषकोऽप्याखुरि"त्यमरः। कोष्णः = ईषदुष्णः, किरातस्वरसः = भूनिम्बक्वाथः, तमिव। "चिरायते का काढ़ा" इति हिन्दी। अतितिक्तोऽयम्।

---

चाँद खाँ—नहीं, यह बात नहीं है। फिर भी, हमारा अभ्यास थोड़ी-सी भी शत्रुओं की सेना पर दुगुनी सेना से आक्रमण करने का है और उनका दुगुनी और चौगुनी सेना से भी कुछ ही घुड़सवारों से भिड़ जाने और रोक लेने का अद्भुत वीरस्वभाव है।

शाइस्ता खाँ—( धुआँ खींचकर, हँस कर ) चाँद खाँ बुड्ढा हो गया है इसलिए अब पहाड़ी चूहों से भी डरने लगा है। ( चाँद खाँ गरम चिरायते के काढे की तरह क्रोध पीकर चुपचाप बैठा रहा )।

मुहम्मद गनी—जी हाँ, जी हाँ, जी हाँ, हुजूर ने ठीक फ़रमाया। ये चूहों की तरह ही पहाड़ों की खोहों में रहते हैं।

बदरुद्दीन—हूँ, हूँ, हूँ, अँधेरे में बाहर निकलते हैं और पीटे जाने फिर भाग कर बिलों में घुस जाते हैं।

चान्द०—आम् सत्यम्! किन्तु उन्दुरव एतेऽस्मद्ध्वजान् कञ्चुकान् उष्णीषांश्च खण्डशो न कुर्युः, अस्मदालयभित्तिका-तलानि जर्जरितानि न विदध्युः, पुण्यनगर-बहिःप्रदेशादेतत्पर्य्यन्तं चान्तरन्तरेव महागर्तं विधाय, अकस्मान्न पातयेयुः।

शा०—इह बहवो यवन-बिडालाः सन्ति, न भयमुन्दुरुभ्यः।

( तत सर्वेऽपि चाटुकाराः सकरतल-ध्वनि अहसन्, चाटुकारा एव च विजिग्यिरे। )

ततश्चिरं यावद् महाराष्ट्र-भटैःसह कथं योद्धव्यमित्येव विचारो जातः। किन्तु विक्रनदुर्ग-जय-समये महता कष्टेन महाराष्ट्राः पराङ्मुखीकृताः-इति दुर्गयुद्धायानुत्सहमानः शास्तिखानः प्रावोचत्—

पर्वतमयोऽयं समन्ताद् दुर्गमयः कोङ्कणदेशः। सदैकैकं

---

विजिग्यिरे = विजयं प्राप्तवन्तः। "विपराभ्यां जेः" इत्यात्मनेपदम्।

---

चाँद खाँ—हाँ, सच है। किन्तु ये चूहे कहीं हमारे झण्डों, कुर्तों और पगड़ियों को टुकड़े-टुकड़े न कर डालें, हमारे घरों की दीवारों की नींव जर्जर न कर दें, पूना के बाहर वाले प्रदेश से लेकर यहाँ तक अन्दर ही अन्दर खोखला बनाकर कहीं एकाएक गिरा न दें।

शाइस्ता खाँ—यहाँ बहुत से यवन-योद्धा रूप बिडाल रहते हैं, इसलिये चूहों से कोई डर नहीं है ( यह सुनकर सभी चापलूस ताली बजाकर हँस पड़े, और जीत चापलूसों की ही हुई। )

फिर देर तक यही विचार होता रहा कि मराठे सिपाहियों से कैसे लड़ना चाहिये। किन्तु चाकन दुर्ग की विजय के समय मराठों को बड़ी मुश्किल से भगाया जा सका था यह सोचकर, दुर्गयुद्ध के लिये अनिच्छुक शाइस्ता खाँ ने कहा—कोंकण प्रदेश पर्वतबहुल है और इसके चारों ही

दुर्गजयोद्योगः क्रियेत चेत्, "पादाङ्गुष्ठ-शिरीषाग्निः कदा मौलिमवाप्स्यति ?–" इति प्रतीक्षा–विडम्बना स्यात्। तस्मात् तिष्ठन्तु नाम दुर्गेषु कारागारेषु निगृहीता इव महाराष्ट्रा एव। अस्माभिस्तु साम्मुखीन–युद्धायैव यतनीयम्। चान्द्रखानस्तु एतद्विषयेषु अत्यन्त सप्रतिभ आसीत्। स तु किञ्चिद्विचार्येव करौ सम्पुटीकृत्य, नीतिपरिपूर्णमुपदिदेश यत्—

चमूपते ! दुर्गाण्येव महाराष्ट्राणां बलानि। प्रायस्ते व्यर्थमिति मत्वा कमपि प्रशस्तं भूभागं रणाङ्गणीकृत्य ध्वजान् समुद्धूय भेरीराहत्य न योत्स्यन्ते। किन्तु परितः पर्वतदरीषु महारण्येषु गिरिगणावृत दुर्गेषु च निर्भया अवस्थास्यन्ते। अस्मांश्च यदा कदाचिदे-

---

'पादाङ्गुष्ठशिरीषाग्निः कदा मौलिमवाप्स्यति ?' लोकोक्तिः। एकस्तु पदाङ्गुष्ठतले विद्यमानः सोऽग्नि च शिरीषाग्नि", तस्य सार्धत्रिहस्तोर्ध्वस्थितशिरः पर्यन्तगमने कियान् विलम्ब इति सम्भाव्यमेव। शिरीषम् = पुष्पविशेष. कोमलोपमानत्वे प्रसिद्धः। सप्रतिभः = नवनवोन्मेषशालिन्या

---

ओर किले हैं। यदि एक-एक किला जीतने का प्रयत्न किया जायगा तो इसमें काफी समय लगेगा, तब तक शिवाजी को जीतने की प्रतीक्षा विडम्बना ही होगी। पैर के अगूठे के नीचे विद्यमान शिरीष-पुष्पों की अग्नि, सिर तक कब पहुँचेगी इसकी प्रतीक्षा विडम्बना ही है। अतः मराठे दुर्ग रूप जेलों में कैदी की भाँति पड़े रहें, हमें तो सम्मुख युद्ध के लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। चाँद खाँ इन विषयों में अत्यधिक प्रतिभाशाली था। उसने कुछ विचार-सा करके, हाथ जोड़कर, यह नीतिपूर्ण उपदेश दिया—

सेनापति ! दुर्ग ही मराठों की शक्ति हैं। वे किसी सुन्दर भूभाग को युद्धस्थल बनाकर, ध्वज फहराकर, भेरी बजाकर, लड़ने को व्यर्थ समझकर प्रायः इस प्रकार का युद्ध नहीं करेंगे। किन्तु चारों ओर पहाड़ों की कन्दराओं में, घने जगलों में, और पहाड़ियों से घिरे दुर्गों में निर्भय

सावधानानाकलय्य पशुमारं मारयिष्यन्तीति शनैः शनैरेकैक-दुर्ग-ग्रहणायैवोद्योगः करणीयः—इति मे मतिः। सम्मुखं च युद्धा-योपस्थिता अपि पलायिष्यन्ते चेद् उच्चावचोपत्यकासु गण्ड-शैल-मय-निविडारण्य-कुञ्झटिकासु दुरूहारोहावरोह-पद्धतिषु सानुषु च तेषां कथामात्रमपि न प्राप्स्यतेऽस्माभिः।

शास्तिखानस्तु चिक्कन-दुर्गाधिकार-युद्ध स्मरणेन हृतहृदयः पुनस्तादृशं रोम हर्षणं युद्धमविधित्सुः कातरतरान्तरात्मा समुवाच—महाराष्ट्रा युद्धक्षेत्रमपास्य पलायिष्यन्ते चेत् किमस्माकोना नानु-

---

युद्धयाविभूषितः। असावधानान्=प्रमत्तान्। पशुमारं मारयिष्यन्ति=यथा पशून् मारयिष्यन्ति तथेत्यर्थः। अनायासेनेति यावत्। "उपमाने कर्मणि चे"ति णमुल्। उच्चावचोपत्यकासु=निम्नोन्नतासु पर्वतासन्न-भूमिषु। गण्डशैलमयानि निविडानि=घनानि, अरण्यान्येव कुञ्झ-टिकाः=दुरवगाहनीयभूमयः, तासु। दुरूहाः=दुर्विज्ञेयाः, आरोहाव-रोहपद्धतयः=ऊर्ध्वाधोगमनमार्गा येषु तादृशेषु। सानुषु=पर्वतनितम्बेषु, "नितम्बोऽद्रेः स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियामि"त्यमरः।

अविधित्सुः=अचिकीर्षुः। कातरतरः=अत्यन्तत्रस्तः, अन्तरात्मा=अन्तःकरणं, यस्य सः। अत्यन्तकातरत्वादेव प्रयोगे वारद्वयं किम प्रयुक्तवान्।

---

होकर रहेंगे और ज्यों ही हमें असावधान देखेंगे जानवर की मौत मार डालेंगे। अतः मेरे मत से धीरे-धीरे एक-एक दुर्ग पर अधिकार करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। सम्मुख युद्ध के लिये उपस्थित होने पर भी यदि वे भागें तो ऊँची-नीची घाटियों, पहाड़ियों वाले घने जंगलों, कठिन उतार-चढ़ाव वाले रास्तों और पहाड़ों की चोटियों में हम उनके निशान भी न पा सकेंगे।

चाकन दुर्ग पर अधिकार करते समय युद्ध के स्मरण से साहसहीन, और पुनः उस प्रकार का रोमाञ्चकारी युद्ध करने को अनिच्छुक, अधीर-हृदय शाइस्ता खाँ ने कहा—यदि मराठे युद्धस्थल छोड़ कर भागेंगे तो

धाविष्यन्ति ? अस्मत्सेनास्वश्वारोहा न सन्ति ? ते किं घोटक-खुर-खडखडा-शब्द-श्रवणेनैवार्द्धमृतप्रायान् कन्दरि कन्दरेष्वर्द्ध प्रविष्टानेव शक्ति प्रोतान् न करिष्यन्ति ?

चान्द्रखानः—महामात्य ! सक्ष्वेडं महाराष्ट्राः सम्मुखमायाताश्चेद् दिल्लीवल्लभस्य निश्चितो जयः, पलायिता अपि च गृहीरश्चेद वश्यमेव जयः, परं पलायितानामेषामनुधावनमेव कठिनम् ।

शास्ति०—तत्कथम् ?

चान्द्र०—भगवन् ! अस्माकं स्थूलकायाः सरल-भूभाग-मात्र-धावनाभ्यासिनो हयाः, तदुपरि च महाकवचाः शस्त्रास्त्रमहाभारभृतः सादिन –इति ते न शक्नुवन्ति उद्घातिनीषु उपत्यकासु तथा अश्वांश्चा-

---

शक्तिप्रोतान् = शक्तिनामकशस्त्रविद्धान् ।

सक्ष्वेडम् = ससिंहनादम् । "क्ष्वेडा तु सिंहनादः स्यादि"त्यमरः । गृहीरन् = गृहीता भवेयु । अनुधावनम् = अनुसृत्य धावनम् ।

महाकवचाः = विशालतनुत्राणा । उद्घातिनीषु = स्खलनयोग्यासु

---

क्या हमारे सैनिक उनका पीछा न करेंगे ? क्या हमारी सेना में घुड़सवार नहीं हैं ? क्या वे घोड़ों के खुरों के खड़ खड़ शब्द सुनने से ही प्राय अधमरे हो गए, पहाड़ों की खोहों में आधे ही घुसे मराठों को वहीं से छेदकर मार न डालेंगे ?

चाँद खाँ—महामात्य ! यदि मराठे सिंहगर्जन कर सामने आ जायँ तो दिल्लीपति की जय निश्चित है, भागते हुए भी यदि पकड़ लिये जायँ तो भी जीत अवश्य होगी, पर भागते हुए मराठों का पीछा करना ही तो कठिन है ।

शाइस्ता खाँ—वह कैसे ?

चाँद खाँ—हुजूर ! हमारे मोटे-ताजे और केवल मैदान में ही दौड़ने के अभ्यस्त घोड़ों पर बैठे, बड़े बड़े कवचों और शस्त्रास्त्रों का भारी भरकम बोझ सँभालने वाले घुड़सवार ऊँची-नीची घाटियों में घोड़ों को वैसे नहीं

लयितुं यथा महाराष्ट्रा लघुभिः पार्वतघोटकैरुन्दुरव इव कुहरेषु निविशन्ते, मर्कटा इव सानुमत्सानून्यारोहन्ति, पक्षिण इवोपत्यकात उपत्यकामुड्डीयेव गच्छन्ति, शशका इव च तरुलतासु सपदि स्वानमाच्छाद्य तिष्ठन्ति। तत् सपदि सेना आयोज्य सिंहदुर्गं एवाश्वनीयः। तस्मिन्नेव शिवोऽस्ति, मासेन मासद्वयेन वा दुर्गमेतद्धस्तगतं भविष्यति, शिवश्च बन्दीकरिष्यते, दिल्लीश्वरस्य च विजयपताकाः सर्वत्रापि कोङ्कणप्रदेशे दोधूयिष्यन्ते। इदमेवाध्यवस्यति मम तुच्छा बुद्धिः। श्रीमते च यथा रोचेत तथा विधेयम्।

शा०—[ भ्रुकुटि ] कथमिव साहसमुन्मुच्य सन्मुखयुद्धाद्विरज्यसि। [परितोऽवलोक्य ] किं कोऽपि नास्ति साहसिकोऽस्म-

निपमासु। उन्दुरवः=मूषका इव, उपमालङ्कारः। अग्रेऽप्येवम्। निविशन्ते, "नेर्विशः" इत्यात्मनेपदम्। सानुमत्सानूनि = पर्वतनितम्बान्। उड्डीयेवेत्युत्प्रेक्षा। आयोज्य = सघटय्य। अश्वनीयः = अश्वैरतिक्रमणीयः "तेनातिक्रामति"। अध्यवस्यति = निश्चिनोति। उन्मुच्य = परित्यज्य। विरज्यसि = विरक्तो भवसि।

दौड़ा पाते जैसे मराठे छोटे-छोटे पहाड़ी टट्टुओं से चूहों की तरह कन्दराओं में घुस जाते हैं, बन्दरों की तरह पहाड़ की चोटियों पर चढ़ जाते हैं, पक्षियों की तरह एक घाटी से दूसरी घाटी का मानों उड़कर चले जाते हैं और खरगोशों की तरह वृक्षलताओं के पीछे अपने को झट से छिपाकर बैठ जाते हैं। अतः जल्द ही सेना तैय्यार कर सिंह दुर्ग को घुड़सवारों से घर लेना चाहिये। शिवाजी इसी दुर्ग में है। महीने-दो-महीने में यह दुर्ग अपने हाथ आ जायगा, शिवाजी बन्दी बना लिया जायगा, और दिल्लीश्वर की विजयपताकाएँ सारे कोंकण प्रदेश में फहराने लगेंगी। मेरी तुच्छ बुद्धि तो यही निश्चय करती है, आगे हुजूर को जैसा अच्छा लगे वैसा करें।

शाइस्ता खाँ—( भौंहें तान कर ) छिः छिः, क्या साहस छोड़ कर सम्मुख युद्ध से भागते हो। ( चारों ओर देखकर ) क्या हमारी सेना में

त्सेनासु यत् त्वं रण-प्राङ्गण-समर-विरुद्धं मन्त्रयसे। [ ततो 'वयं रणाङ्गणयुद्धमीहामहे' इति परितश्चाटुवादिनोऽब्रुवन् ]

चा०—[ शोकक्रोधोन्मथितहृदयो मुखमधः कृत्वा निःश्वस्य च ] न सामर्थ्यं मम मन्त्रणस्य, किन्तु श्रीमद्भिरेव स्थिरीक्रियताम्, यथा चाऽऽज्ञापयिष्यते तथा विधास्यति दास एषः।

इति सम्प्रधार्य, धूमपान-नलिका-मुखं पार्श्वस्थोपबर्हे संस्थाप्य ताम्बूलिक-दत्तां वीटिकां दन्तैः सन्दश्य, सम्मुख-संस्थापित-राजत-पात्रस्थ-कुसुम-गुच्छानामन्यतममुत्थाप्य जिघ्रति तस्मिन्; अकस्मात् प्रतीहारेण प्रविश्य सजयध्वनि अभिवाद्य करौ सम्पुटीकृत्य कथितम्-दीनबन्धो! सिंहदुर्गात् पण्डित एकः समायातोऽस्ति।

---

साहसिकः=साहसवान्। मत्वर्थीये ठनि तस्य चेकि रूपम्।

ताम्बूलिकदत्ताम्=ताम्बूलवाहिदत्ताम्। यद्यपि ताम्बूलं पण्यमस्येति विग्रहे "तदस्य पण्यमि"ति ठकि साधुत्वेन ताम्बूलविक्रेत्रर्थे युक्तः प्रयोगः, किन्तूपचारेण ताम्बूलदायकेऽपि प्रयोगः कार्य इति ग्रन्थकृदभिप्रायः।

---

कोई साहसी वीर नहीं है जो तुम इस प्रकार युद्धस्थल में युद्ध करने के विरुद्ध राय देते हो! (तब सब ओर से चापलूस बोलने लगे, "हम युद्धस्थल में सम्मुख युद्ध चाहते हैं।")

चाँद खाँ—(शोक तथा क्रोध से उन्मथित हृदय, मुँह-नीचा कर के निःश्वास पूर्वक) आपको राय दे सकने की शक्ति मुझ में नहीं है, आप ही निश्चय करें, जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही यह दास करेगा।

यह सुनकर शाइस्ता खाँ हुक्के की नली के मुँह को पास की मसनद पर रखकर ताम्बूलवाहक (खवास) द्वारा दिये गये पान के बीड़े को दाँतों से काट कर, सामने रखे चाँदी के पात्रों में वर्तमान फूल के गुच्छों में से एक गुच्छा उठाकर सूँघ ही रहा था कि एकाएक द्वारपाल ने प्रवेश कर, जयध्वनि के साथ अभिवादन कर के हाथ जोड़ कर कहा—

"गरीबपरवर! सिंहगढ से एक पण्डित आया है।"

तदाकर्ण्य, आः! एवम्! स एव तु चिरात् प्रतीक्ष्यते मया। प्रवेशय प्रवेशय—इति साम्रेडमुक्तवान् शास्तिखानः।

तावत् सर्वेषु तत्पथमेव प्रविलोकयत्सु प्रतीहारेण सह सात्त्विकवेषः पण्डित एकः प्रविवेश।

तञ्च श्यामवर्णम्, चन्दन-त्रिपुण्ड्राङ्कितम्, आरक्तचक्रोष्णीषम्, सुन्दर-श्वेत-कञ्चुकम्, पीतोत्तरीय-शोभित-कन्धरम्, किञ्चित्खर्वाकृतिमपि अपांच्यदर्शनमवलोक्य सर्वे सभासदस्तथैवावास्थिषत।

“आगम्यतामिह समीपे स्थीयताम्”इति स्थानं निर्दिशति शास्तिखाने सोऽपि प्रह्वीभूय किमप्यादर-सूचकवचनमुच्चार्यैव समुपाविशत्। ततस्तेन तेषामेवमभूदालापः।

---

सात्त्विक इव प्रदर्शनेति—श्रद्धेयादिना। चन्दनत्रिपुण्ड्रेणाङ्कितम्। ललाटे तिसृभिः रेखाभिः मूल्यमानं त्रिपुण्ड्रम्। आरक्तम् = ईषद्रक्तम्, चक्रम् = वृत्ताकृति, उष्णीषं शिरस्त्राणम्। ‘गोल टोपी” इति हिन्दी। किञ्चित्खर्वाकृतिम् = ईषद्वामनम्। अपांच्यदर्शनम् = सामनावलोकनम्। सुन्दरमिति यावत्। अवास्थिषत = स्थिता बभूवुः।

---

यह सुनकर शाइस्ता खाँ ने “अच्छा, भेजो, भेजो। उसी का तो मैं कितनी देर से इन्तजार कर रहा था” कहा।

सभी लोग पण्डित की राह देखने लगे, इसी बीच प्रतीहारी के साथ सात्त्विकवेष में एक पण्डित ने प्रवेश किया।

साँवले रंग वाले, चन्दन का त्रिपुण्ड लगाये हुए, गुलाबी गोल पगड़ी और सुन्दर सफेद कुर्ता धारण किये हुए, कन्धे पर पीला दुपट्टा डाले, कुछ ठिगने होने पर भी देखने में सुन्दर लगने वाले महादेव पण्डित को देखकर सभी दरबारी ज्यों-के-त्यों बैठे रहे।

शाइस्ता खाँ के ‘आइये, इधर पास में बैठिये’ इस प्रकार स्थान निर्देश करने पर, वह पण्डित भी नम्रतापूर्वक कुछ आदरसूचक वाक्य कह कर बैठ गया। तब उस पण्डित के उन लोगों की इस प्रकार बातचीत हुई।

शास्तिखानः—पण्डित ! तव किं नाम ?

पण्डितः—नास्ति देहोऽपि गेहमपि नामापि मम किञ्चन । आम्, लोकास्तथाऽपि भाषन्ते [ सकासनम् ] मां महादेव इति । भगवन् ! अस्मिन्नसारे संसारे देहो वा गेहं वा नाम वा, तादृशं किमस्ति यदहं ममेति कथयामि । तथाऽपि मां जनाः "महादेवो महादेवः" इति कथयन्ति ।

[ तदाकलय्य सर्वेऽपि पण्डितानां भाषण-भङ्गीमभिननन्दुः ]

शा०—अथ को वृत्तान्तः सिंहदुर्गस्य ?

---

नास्ति देहोऽपि, गेहमपीत्यादिना तस्य वेदान्तिता प्रकटिता। सकासनम् = 'खाँसी के साथ" इति हिन्दी । कासश्वासादिप्रकरणे वैद्यकग्रन्थेषु बहुत्र ईदृशेऽर्थे व्यवहृतोऽयं धातुः । धातोरनेकार्थतायाः सर्वसम्मतत्वेन निर्वाहः । असारे संसार इति ते बहुधा कथयन्ति ये ससारार्णवे चिराय निमग्नाः पुत्रकलत्रादिरक्षणमात्रपराः सत्कृतावरदुर्दशाकरणरताश्च इति वीरहासयुक्तिः । अत एवाग्रे—"पण्डितानां भाषणभङ्गीम्"—इति बहुत्वं प्रायुङ्क्त कविरिति वर्णस्वारस्यवेदिनः ।

---

शाइस्ता खाँ—पण्डित ! तुम्हारा नाम क्या है ?

पण्डित—न तो शरीर ही मेरा है, न घर ही, और न मेरा कोई नाम ही है । फिर भी लोग मुझे ( खाँसते हुए ) 'महादेव' कहते हैं । भगवन् ! इस सारहीन ससार में, शरीर, घर या नाम ऐसी कौन-सी चीज है जिसे मैं अपना कह सकूँ । फिर भी लोग मुझे "महादेव", "महादेव" ऐसा कहते हैं । ( यह सुनकर सभी ने पण्डित की भाषणशैली की प्रशसा की )

शाइस्ता खाँ—अच्छा, सिंहगढ का क्या समाचार है ?

महादेवः—

"रसयन् गोस्तनी-कन्दम्, स्थितोऽपि स्वर्ण-पञ्जरे।

[ किञ्चित् कासित्वा ]

रसालवन-वियोग-ज्वालाभिर्दह्यते एव कोकिलः॥"

शास्तिखानः—किम्?

महा०-भगवन्! यद्यपि सुवर्ण-रचिते पञ्जरे कोऽपि कोकिल-स्तिष्ठेत्, यद्यपि च द्राक्षायाः कन्द प्रत्यहं खादेत्, तथाऽप्याम्रवन वियोग-दुःखेन दुःखी भवत्येव।

शा०—किं तात्पर्य्यम्?

महा०—चमूपते! एतदेव यद्, यद्यपि सिंह-दुर्गे सिंह सदृशै-

गोस्तनी = द्राक्षा। रसालवनेत्यत्र छन्दोभङ्गः स च विस्मृत पद्य-खण्ड स्वयं यथा तथा निर्माय पपाठेति द्योतयति। अत एव मध्ये कासन-मप्युपपद्यते। विस्मृत्य हि जनाः कासनादिना समयमतिवाहयन्ति।

किमिति पृष्टः श्लोकार्थमेव प्रकटयामासेति द्वितीया पण्डितानां भाषण-शैली। ते यदि किमपि वक्तुमुद्यता भवन्ति तदा शुद्धं श्लोकं निवेद्य तादृशै-रेवाक्षरैस्तदर्थं समुपस्थाप्य विरमन्ति।

महादेव—द्राक्षारस का पान करता हुआ और सोने के पिंजरे में रहता हुआ भी ( कुछ खाँस कर ) कोयल पक्षी, आम्रवन के वियोग की ज्वाला से जलता ही रहता है।

शाइस्ता खाँ—क्या?

महादेव—भगवन्! यदि कोई कोयल सोने के पिंजरे में भी रहे, और प्रतिदिन अंगूर भी खाये, फिर भी उसे आम्रवन के वियोग का दुःख तो होता ही है।

शाइस्ता खाँ—क्या मतलब?

महादेव—सेनापति! यही कि यद्यपि शिवाजी सिंहगढ़ में सिंह समान

वीर-भटैर्युतो रत्न-जटित-कनक-दण्डैः श्वेत-चामरैर्वीज्यमानः शिववीरः सुखेन वसति, तथाऽपि पुण्यनगर-वियोगस्य चिक्कन-दुर्ग-वियोगस्य च दारुणं व्रणमिव दुःखं स बिभर्त्ति ?

शा०—सत्यम्, किन्तु तस्य व्रणस्य का चिकित्सा ? दुःसाध्योऽयं रोगः।

महा०—सोऽप्यसाध्यं न मनुते, किन्तु दुःसाध्यमेव।

शा०—तत्किं प्रधानं चिक्कन-दुर्गं कोङ्कण-देश-रत्नमिव च पुण्यनगरं हस्तीकृतवत्यपि मयि शिवोऽधुना मया सह युयुत्सते ? युद्धेन वा महारोगस्यैतस्योपायं चिकीर्षति ? एवं चेज्जम्बुकस्य बुभुक्षित-केसरि-खर-नखराक्रान्तोरण-जिघृक्षा विफला।

हस्तीकृतवति = वशीकृतवति। जम्बुकस्य = शृगालस्य। बुभुक्षितस्य=क्षुधार्त्तस्य, केसरिणः खरनखरैः=तीक्ष्णाङ्गुलिप्रान्तैः, आक्रान्तस्य= आस्कन्दितस्य, गृहीतस्येति यावत्। उरणस्य = मेषस्य, जिघृक्षा= ग्रहीतुमिच्छा। यथा शिवकर्तृकताहशोरणग्रहणेच्छाया वैफल्यं, तथैव शिववीरस्य चिक्कनदुर्गादिलब्ध्यभिलाष इति तत्त्वम्।

वीर सैनिकों के साथ सुखपूर्वक रह रहे हैं, और उन्हें रत्नजटित सोने के दण्ड वाले, सफेद चँवरों से हवा की जा रही है, फिर भी पूना नगर और चाकन दुर्ग का वियोग उन्हें दारुण घाव की तरह कष्ट दे रहा है।

शाइस्ता खाँ—सच है, पर उस घाव का इलाज क्या है ? यह रोग तो दुःसाध्य है।

महादेव—शिवाजी भी इस रोग को असाध्य नहीं, दुःसाध्य ही मानते हैं।

शाइस्ता खाँ—तो क्या प्रधान चाकन दुर्ग और कोंकण देश के रत्नभूत पूना नगर के मेरे हथिया लेने पर भी शिवाजी मुझसे लड़ना चाहता है ? या इस महारोग का इलाज युद्ध से करना चाहता है ? यदि ऐसा है तो गीदड़ की, भूखे शेर के पैने नाखूनों से दबोचे गये भेंड़े को छीन लेने की कोशिश बेकार ही होगी।

महा०—चमूपते !

"न कुर्याच्चातको मुग्धश्चेत्स्ववाञ्छित-सूचनम् ।
न पूरयति किं मेघस्तत्तृष्णां जल-वृष्टिभिः ? ॥"

शा०—किम् ?

महा०—प्रभो ! यदि चातक-नामा पक्षी याचितु न जानीयात्, तर्हि किं मेघाः जलवृष्टिभिस्तत्तृष्णां न शमयति ? अर्थात् यदि सम्मुख-युद्ध पराभव-लज्जितो महाराष्ट्र-राजः स्वमुखेन सन्धये न प्रार्थयेत्, तर्हि भवान् स्वयमेव स्वादारतया यथोचित दानाऽऽदानैस्तेन सह न सन्दध्यात् ?

शा०—[ सन्धि-प्रस्ताव श्रुत्वा सानन्द ] तत्किं सन्धित्सते शिव. ?

---

न कुर्याच्चातको मुग्ध इत्यत्र शिववीरशास्तिखानचरिते प्रस्तुतेऽप्रस्तुत चातकमेघादिवर्णनादप्रस्तुतप्रशंसा ।

दानादानैः=दानप्रतिग्रहै । न सन्दध्यात्=न सन्धि कुर्वीत ? काका कुर्वीतैव । 'शेषे प्रथम" इत्यनेन भवत्पदयोगात् प्रथमपुरुषत्वम् ।

---

महादेव—सेनापते ! यदि भोलाभाला चातक पक्षी अपना अभिलाषा सूचित न करे, तो क्या मेघ जलवृष्टि द्वारा उसकी पिपासा शान्त नहीं करता ?

शाइस्ता खाँ—क्या !

महादेव—हुजूर ! यदि चातक नामक पक्षी माँगना न जानता हो तो क्या बादल पानी बरसा कर उसकी प्यास नहीं बुझाते ? अर्थात् यदि सम्मुख युद्ध में हार जाने के कारण लज्जित महाराज शिवाजी अपने मुँह से सन्धि की प्रार्थना न करें तो क्या आप स्वय ही अपनी उदारता से कुछ ले देकर उनसे सन्धि नहीं कर सकते ?

शाइस्ता खाँ—( सन्धि का प्रस्ताव सुनकर आनन्दपूर्वक ) तो क्या शिवाजी सन्धि करना चाहता है ?

महा०—चमूपते ! दिल्लीश्वरेण योद्धुं कोऽभिमन्येत ? सम्प्रति तु महाराष्ट्र-मण्डले प्रतिगेहं प्रतिभित्ति प्रतिमुखं च सन्धिः सन्धिरित्येव श्रूयते महाध्वनिः।

शा०—[ हसन्, चान्द्रखान प्रति सामर्षम् ] हू हू हू ! पश्य, महाराष्ट्राः सम्मुख-युद्धाद्भीताः ? आहोस्विद् दुर्ग-रोधाद् ? साम्रेडं कथयाम्येतैः कदर्य्य-हतकैः सम्मुखं योद्धव्यमिति। त्वं तु नैजानेव स्वप्नान् पश्यसि।

तदाकर्ण्य चान्द्रखानः क्रोधारक्त-वदनोऽप्यधोमुखः समतिष्ठत। महादेवश्च महाराष्ट्र-निन्दां सकष्टमश्रौषीत्। शास्तिखानः पुनर्महादेवाभिमुखीभूय तं सम्बोध्य सोत्प्रासमुवाच—

"साधु, साधु, पण्डित ! साधु, तव पाण्डित्येऽतितरां प्रसीदामि।"

---

समतिष्ठत, "समवप्रविभ्य.स्थ" इत्यात्मनेपदत्वम्। सोत्प्रासम् =

---

महादेव—सेनापते ! दिल्लीनरेश से युद्ध करने का अभिमान कौन कर सकता है ? इस समय तो महाराष्ट्र देश में हर घर, हर दीवार और हर मुँह से "सन्धि सन्धि" यही कोलाहल सुनाई दे रहा है।

शाइस्ता खाँ—( हँसता हुआ, चाँद खाँ की ओर क्रोधपूर्वक ) ह ह ह, ये मराठे सम्मुख युद्ध से डरे हैं या किले घेरने से ? बार-बार कहता हूँ कि इन क्षुद्र कायरों से सम्मुख-युद्ध करना चाहिये, पर तुम अपने ही सपने देखा करते हो।

यह सुन कर चाँद खाँ का मुँह गुस्से से लाल हो गया, पर वह मुँह नीचा किये ही बैठा रहा। महादेव ने बहुत कष्टपूर्वक मराठों की निन्दा सुनी। शाइस्ता खाँ पुनः महादेव की ओर मुँह कर उसे सम्बोधित कर मुस्करा कर बोला—

"ठीक है, ठीक है पण्डित जी ! आपकी विद्वत्ता से मैं बहुत खुश हूँ"।

चाटुकाराः—आम्, आम्, साधु, साधु, महानेष पण्डितः।

शा०—अहो! माधुर्यं संस्कृत-भाषायाः।

चाटु०—आः! अपूर्वमेव माधुर्यमिदम्!!

शा०—तत्किमायातो भवान् सन्धि-विषयक-वार्ताः कर्तुम्?

महा०—एवम्!

शा०—अथ दर्शय किमपि प्रमाणपत्रम्, यथा त्वं शिवेनास्मिन् विषयेऽधिकृतोऽसीत्यहं निश्चिनुयाम्।

महा०—तथा [इति पत्रं दर्शयामास] ततः शास्तिखाने पत्रं हस्ते गृहीतवत्येव कश्चन भृत्यो जाज्वल्यमान-दीपाश्रित-काच-मञ्जूषां हस्ते समादाय, सम्मुख आगत्य, पत्रोपर्युनुकूल-प्रकाशमकरोत्। स च द्वित्रिः पठित्वा, मुद्रादिकं सावधानतयाऽवलोक्य,

---

चापलूस लोग—हाँ हाँ, ठीक है, ठीक है, यह बहुत बड़े विद्वान् हैं।

शाइस्ता खाँ—अहा, संस्कृत भाषा कितनी मधुर है!

चापलूस लोग—वाह, अपूर्व माधुर्य है!

शाइस्ता खाँ—तो क्या आप सन्धि के सम्बन्ध में बातचीत करने आये हैं?

महादेव—हाँ, यही बात है।

शाइस्ता खाँ—अच्छा तो कोई प्रमाणपत्र दिखाइये जिससे मुझे यह निश्चय हो सके कि शिवाजी ने आपको सन्धिसम्बन्धी बातचीत करने का अधिकार दिया है।

महादेव—अच्छा (यह कह पत्र दिखा दिया)। तदनन्तर, शाइस्ता खाँ के हाथ में पत्र लेते ही, एक नौकर ने हाथ में लालटेन, (शीशे की मञ्जूषा, जिसमें जलता दीपक रखा था) लेकर, सामने आकर, पत्र के ऊपर उचित प्रकाश कर दिया। शाइस्ता खाँ ने पत्र को दो-तीन बार पढ़ कर, उसकी मुहर आदि का सावधानीपूर्वक निरीक्षण

पत्रं भुवि संस्थाप्य, "भद्रम्, ज्ञातमिदम्, अस्ति भवानाधिकृतोऽस्मिन् विषये तदारभ्यताम्"—इत्यब्रूत।

महा०—चमूपते! "वयमादौ पराजिताः, पुनश्च शोणित-शोण-धाराभिः क्षोणी-क्षालनं व्यर्थम्"—इति निवेदयति प्रभुः।

शा०—आम्!

महा०—अतः स सन्धित्सते।

शा०—तथाऽस्तु।

महा०—तन् कैर्नियमैः सन्धेयमिति स विवित्सति।

शा०—आदौ दिल्लीश्वरस्य वशंवदता कर-प्रदता चाङ्गीकरणीया, अपि रोचत इदं भवत्प्रभवे?

---

मन्दस्मितेन सह। शोणित-शोणधाराभिः = लोहित लोहित-प्रवाहैः। क्षोणी = पृथिवी।

विवित्सति = वेत्तुमिच्छति।

---

कर, उसे जमीन पर रखकर कहा—"हाँ समझ गया। आपको सन्धि-सम्बन्धी बातचीत करने का अधिकार दिया गया है। अच्छा तो प्रारम्भ कीजिये।"

महादेव—सेनापते! हमारे महाराज निवेदन करते हैं कि "हम पहले ही हार गए हैं, फिर खून की लाल धाराओं से जमीन को धोना बेकार ही है।"

शाइस्ता खाँ—हाँ।

महादेव—इसीलिये वे सन्धि करना चाहते हैं।

शाइस्ता खाँ—तो ऐसा ही किया जाय।

महादेव—वे जानना चाहते हैं कि सन्धि—किन नियमों से होगी!

शाइस्ता खाँ—पहले तो दिल्लीनरेश की अधीनता और करप्रदता (कर देना) स्वीकार करनी होगी, क्या आपके मालिक को यह —है?

महा०—तस्मै किं रोचते, का वा तस्य सम्मतिरिति वक्तुं नाधिकृतोऽस्मि, किन्तु यदादेक्ष्यतेऽत्रभवद्भिस्तदेवास्मै निवेदयिष्यामि, स चोरीकारमनूरीकारं वा स्वयं प्रकटयिष्यति।

शा०—अस्तु, कथ्यतां तस्मै यत्-प्रथमतो दिल्लीश्वराज्ञावाहकता तत्करदता चाङ्गीकरणीया। द्वितीयतो यानि दुर्गाणि स्थानानि चास्माभिर्जितानि,तेषां पुनरादित्सा न विधेया। तृतीयतश्चान्यान्यपि सिंहदुर्ग-प्रभृतीनि कानिचित् दुर्गाणि दिल्लीश्वरायोपहरणीयानि।

महा०—[ किञ्चिद् विचार्येव ] सिंहदुर्गादीनि कानि कानि ?

शा०—तानि विविच्य परस्तात् पत्रद्वारा सूचयिष्यामि।

महा०—नान्यत् ?

---

आदेक्ष्यते = आदेशः करिष्यते। ऊरीकारम् = स्वीकारम्।

आदित्सा = आदातुमिच्छा। उपहरणीयानि = उपायनीकरणीयानि।

---

महादेव—उन्हें क्या पसन्द है या उनकी क्या राय है, यह कहने का मुझे अधिकार नहीं दिया गया है, किन्तु जो कुछ आप आज्ञा करेंगे मैं उनसे निवेदन कर दूँगा, स्वीकृति या अस्वीकृति तो वे स्वय ही प्रकट करेंगे।

शाइस्ता खाँ—अच्छी बात है तो उनसे कह दीजिये कि पहले तो दिल्लीश्वर की आज्ञा मानना और उन्हें कर देना स्वीकार करना होगा, दूसरे वे उन दुर्गों या स्थानों को लेने की कोशिश न करें जिन्हें हमने जीत लिया है और तीसरे सिंहगढ़ आदि कुछ दुर्ग दिल्लीश्वर को उपहार में देने होंगे।

महादेव—( कुछ विचार-सा करके ) सिंहगढ़ इत्यादि कौन-कौन से ?

शाइस्ता खाँ—उन्हें विचार विमर्श कर बाद में पत्र द्वारा सूचित करूँगा।

महादेव—और कुछ नहीं ?

शा०—नान्यत्। इदमेव तस्मै कथ्यताम्, तत्सम्मतिश्च मह्यं सोसूच्यताम्।

महा०—अथास्मिन् विषये यावत् पत्रालापः, नियम-व्यवस्थापनं च भवेत्; तावत् युद्धं शाम्यतु-इत्यपि निवेदयति प्रभुः।

शा०—अलमुत्कीर्त्यापि तत्। यावन्नियमः स्थिरो न भवति तावद् यवन-वीरा यत्रैव महाराष्ट्र-सेना द्रक्ष्यन्ति, तत्रैव तैर्योत्स्यन्ते। गम्यतामधुना, कथ्यतामेष विषयः स्वप्रभुषु।

तदाकर्ण्य, "तथाऽस्तु" इति व्याहृत्य सप्रह्वभावमुत्थाय न्यवर्तत महादेवः।

चान्द्रखानस्तु महादेवस्य वार्त्ताः श्रावं श्रावम् "अप्येष स्वयं

उत्कीर्त्य = कथयित्वा। यत्तव्यमपि नैरपर्यः। सप्रह्वभावम् = सनम्रतम्।

शाइस्ता खाँ—और कुछ नहीं। उनसे जाकर यही कहो और उनकी राय से मुझे सूचित करो।

महादेव—हमारे स्वामी का यह भी निवेदन है कि जब तक सन्धि-विषयक पत्र-व्यवहार चले और जब तक इस सम्बन्ध में नियमों की कोई निश्चित व्यवस्था न हो जाय तब तक युद्ध बन्द रहे।"

शाइस्ता खाँ—उसका तो नाम भी न लीजिये। जब तक सन्धि के नियम स्थिर नहीं हो जाते तब तक मुगल सैनिक जहाँ कहीं भी मराठी सेना देखेंगे वहीं उनसे लड़ेंगे। अब आप जाइये और यह बात अपने मालिक से कह दीजिये।

यह सुनकर महादेव पण्डित "ऐसा ही होगा" यह कह कर नम्रतापूर्वक उठकर लौट पड़े।

महादेव पण्डित की बातें सुन-सुन कर—"क्या यह स्वयं शिवाजी

शिववीरः, अपि वा तस्यैव कश्चिदनुजः सहचरो वा ? यतः सवादिनी आकृतिरनुकारिणी च वागस्ति"–इति संशयानः, मुहुर्मुहुः परामर्श पराभ्यां नयनाभ्यां त निपुणं निरीक्षमाणः, चमूपतिरन्यादृश इति स्वाभिप्राय प्रकटयितुमप्यनीहमानः, उत्थित एवास्मिन्स्वयमप्युत्तस्थौ।

महादेवस्तु मुकुर-चित्र-पट्टिका-स्तम्भ-वितान-द्वार-कपाटा-यवलोकन-च्छलेन शनैः शनैर्निश्रेणी, कोष्ठानि प्राचीराणि शस्त्रागारं रक्षकावासं च यथाशक्ति गम्भीरमवलोकयत्। "किमितस्ततः पश्यसि ?" इति पृच्छति चान्यतमे रक्षके, "न किमपि, अस्मिन्नेव पूर्व शिववीर उवास, अधुना च सर्व युष्माभिराक्रान्तमित्येव स्मृत्वा भवदैश्वर्य विलोकयामि"–इत्युवाच।

---

संवादिनी = सदृशा। अनुकारिणी = तुल्या। परामर्शपराभ्याम् = अनुसन्धानासक्ताभ्याम्। अन्यादृशः = पर इव स्वविषये। अनीहमानः = अनिच्छन्। नि श्रेणी = अधिरोहिणी।

---

है या उस का कोई छोटा भाई या साथी है, क्योंकि इसकी आकृति तो शिवाजी की-सी ही है और बोली भी उसकी बोली के समान ही है" यह संशय करता हुआ, पण्डित को खोजपूर्ण नेत्रों से सावधानीपूर्वक बार-बार देखता हुआ, "सेनापति शाइस्ता खाँ तो कुछ दूसरा ही समझते हैं" यह सोचकर अपने अभिप्राय को प्रकट करने को अनिच्छुक चाँद खाँ भी महादेव पण्डित के उठते ही खुद भी उठ पड़ा।

महादेव पण्डित ने शीशों, चित्रपटों, स्तम्भों, तम्बुओं, दरवाजों और किवाड़ों को देखने के बहाने धीरे धीरे सीढ़ियों, कमरों, चहारदीवारियों, शस्त्रागार और रक्षकों के निवासस्थान को भी यथाशक्ति भली-भाँति देख लिया। किसी प्रहरी के—"इधर उधर क्या देख रहे हो" यह पूछने पर 'कुछ भी नहीं, पहले इसी किले में शिवाजी रहते थे, अब तो सब कुछ तुम लोगों ने दबा लिया है, यही सोचकर आपका ऐश्वर्य देख रहा हूँ" यह कहा।

अथ "गच्छ, यत्र शिवोऽधुना वसति तस्मिन्नपि वयमद्य श्वो वा, एवमेव विचरिष्यामः। किमिव गतं शोचसि ? तद्रक्षार्थमेव यतनीयमिति प्रभवे निवेदय"–इति प्रौढं भाषमाणे रक्षके अङ्गारप्रतिमाभ्यां चक्षुर्भ्यां त दहन्निव, आपादमामस्तकञ्च द्विस्त्रिरवलोक्य "यदाज्ञाप्यते वीरैः" इति सव्यङ्ग्यमाभाष्य, द्वारदेहलीमुल्लङ्घ्य, तत्रत्यानि पञ्चपाणि सोपानान्यवतीर्य घण्टापथेन यातायात कुर्वतां मनुष्याणां प्रवाहे मिश्रिता बभूव।

इति पञ्चमो निश्वासः।

---

प्रौढम् = उच्चैः। घण्टापथेन=राजमार्गेण। "दशधन्वन्तरो राजमार्गो घण्टापथ स्मृतः" इति चाणक्यः।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यां पञ्चमनिश्वासविवरणम्।

---

तदनन्तर, प्रहरी के, जोर से "जाइये, जहाँ इस समय शिवाजी रह रहा है वहाँ भी हम आज या कल में इसी तरह घूमेंगे। व्यर्थ बीती बातों को क्या सोचते हो ? जाकर मालिक से कहो कि जहाँ हैं उसी को बचाने की कोशिश करें।" यह कहने पर, अपने अंगारसदृश नेत्रों से उसे जलाते हुए से महादेव पण्डित, उसे सिर से पैर तक दो-तीन बार देख कर, व्यंगपूर्वक 'वीरवर की—जो आज्ञा" कह कर, दरवाजे की देहली पार कर, वहाँ की पाँच-छः सीढ़ियाँ उतर कर सड़क पर यातायात करते हुए लोगों की भीड़ में मिल गये।

शिवराजविजय का पञ्चम निश्वास समाप्त।

॥ श्रीः ॥

# अथ षष्ठो निश्वासः

"बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ?"

—पञ्चतन्त्रम् ।

आसीत् शिववीरस्य परम-मित्रं नीति-निष्णातो वीरवरः परम-साहसी विविध-युद्धेषु विहित-शिव-साहचर्यः, खड्ग-चालन-विद्या-कुशलो माल्यश्रीकनामा। स च महादेव-पण्डित-वेषमाकलय्य दूतताच्छलेन शत्रुभवनं प्रविविक्षुं शिववीरमालोक्य तदनुमत्या गृहीत-यवन-भिक्षु-वेषः, नील-निचोलाङ्क-

---

शिववीरेण महादेवपण्डितात्मना योषपुराधीश्वरः श्रीयशवन्तसिंहः स्वमनीषाप्रभावाद् वशीकृत इति कथोपक्षेपक पञ्चतन्त्रीय प्रतीकमुद्धरति-बुद्धिर्यस्येति । परमञ्च तन्मित्रम् । मित्रशब्दः नित्यक्लीबः सहचररूपेऽर्थे । नीतिनिष्णातः=राजनीतिकुशलः । विविधयुद्धेषु विहितं शिवस्य साहचर्यं येन सः । नित्यसापेक्षत्व विधानस्य केन कथं कुनाधर्यं इति न सविशेषणानाहृत्यभावानुचिन्ता । प्रविविक्षुम्=प्रवेष्टुमिच्छुम् । गृहीतः=

---

जो बुद्धिसम्पन्न है वही बलशाली है, बुद्धिहीन को बल कहाँ ?

—पञ्चतन्त्र

शिवाजी के माल्यश्रीक नाम के एक परम मित्र थे। वह नीति में निष्णात, अत्यन्त वीर, परमसाहसी, तथा तलवार चलाने की कला में अत्यन्त कुशल थे, और अनेक युद्धों में शिवाजी के साथ रहा करते थे। शिवाजी को महादेव पण्डित का वेष धारण कर, दूतता के बहाने शत्रुओं के घर में प्रवेश करने को इच्छुक देखकर वह शिवाजी की अनुमति ले कर, मुसल्मान फकीर का वेष धारण कर उनके पीछे पीछे चल दिये। उन्होंने अपने नीले कञ्चुक

लाधस्तिरोहित-तीक्ष्णतर-च्छुरिकः, कटि-पर्य्यन्त-विलम्बमान-मेचक-कुञ्चित-केशः, सुशोभित-कृत्रिम-श्मश्रु-कूर्चः, हरित-परिधानः, करेणैकेन तीव्रतम-शङ्कुकृत-दण्डम्, नारङ्गाकृति-मुखम्, विलम्बित-विविध-सुसूक्ष्म-शृङ्खला-खण्डम्, झणज्झणद् ध्वनि-रुचिरं वाद्यमेकं वादयन् भिक्षाटनार्थमिव, तत्पश्चादेव प्रचलितः। यवन-भिक्षुकाणां च नाऽऽसीत्तथा निरोधः-इति गोपुराध्यक्षेण

अङ्गीकृतः, यवनभिक्षोः = यवनयाचकस्य, "फकीर" इति ख्यातस्य, वेषः = नेपथ्यं येन सः। नीलनिचोलस्य = नीलरक्तकञ्चुकस्य, अञ्चलाधः = कोणनिम्नभागे, तिरोहिता = गुप्ता, तीक्ष्णतरा = खरतरा, छुरिका = कृपाणिका, येन सः। कटिपर्य्यन्तम् = श्रोणीपर्य्यन्तम्, विलम्बमानाः = समायाताः, मेचकाः = श्यामाः, कुञ्चिताः = वलिताः, केशाः = बालाः, यस्य सः। हरितपरिधान = हरितवासाः। यवनसाधवः प्रायो हरितवाससः एव भवन्ति। वाद्य विशिनष्टि—तीव्रतमः = अत्यन्तकठोरः, शङ्कुकृतः = कीलकीकृतः, दण्डो यस्य तत्। नारङ्गाकृति = नारङ्गाकारम्, अर्थात् गोलाकृति यस्य तत्। विलम्बितानि = आलम्ब्यमानानि, विविधानि सुसूक्ष्माणि शृङ्खलाखण्डानि यस्मिंस्तत्। झणज्झणद्ध्वनिना रुचिरम् = श्रोतृचित्ताकर्षकम्। भिक्षाटनार्थमिव भिक्षाटनवेषप्रदर्शनमात्रं न तु भिक्षार्थमटनम्-अत एवेवशब्दप्रयोगः। तथा = यथा हिन्दूनामिति शेषः। उक्तिवैचित्र्यार्थमनुक्तिः। गोपुराध्यक्षेण = पुरद्वाराधिकारिणा।

के नीचे तीखी कृपाण छिपा रखी थी, उनके घुघुँराले बाल कमर तक लटक रहे थे और उनके मुख पर बनावटी (नकली) मूँछ और दाढ़ी शोभित हो रही थी। वह एक हाथ से एक ऐसे वाद्यविशेष को जिसके वाद्यदण्ड में कीलें या खूँटियाँ (शङ्कु) लगी थीं, जिसमें विविध प्रकार की पतली और छोटी-छोटी जञ्जीरें या रस्सियाँ लटक रही थीं, और जिससे झन् झन् की मधुर ध्वनि आ रही थी—बजाते हुए, मानो भिक्षाटन के लिये, शिवाजी के पीछे-पीछे ही चल दिये। मुसल्मान फकीरों की उतनी रोक टोक नहीं थी (जितनी हिन्दुओं की) इसलिये दरवान से थोड़ी सी ही बात करके, उससे

किञ्चिदालप्यैवान्तः प्रवेष्टुमाज्ञप्तः सपदि प्रविश्य पारस्यभाषया कानिचिच्छन्दांसीवाऽऽम्रेडयन्, कर्हिचित् प्रपद-पातित-दृष्टिः, कदाचिद् गगनतलं समीक्षमाणः, निरपेक्ष इव, ब्रह्मानन्दनिमग्न इव च महादेव-पण्डित-वेषं शिववीरमेव कदाचित् किञ्चिद् दूरतोऽनुगच्छन्, कर्हिचिद्धस्त-ग्राहमनुसरन्, स्वयमपि शास्ति-खानाध्युषित-प्रासादस्य द्वारपर्य्यन्तमायातः। शिववीरे प्रासादान्तः प्रविष्टे च स्वयमेव तत्रैव पर्य्यटन्, प्रासादं भू-भागादट्टालिका-पर्य्यन्तं निपुणं निरीक्षमाणः, द्वार-पालानां रक्षकाणां च तानि तानि निवेशनानि समीक्षमाणः, भवनमेतत् परितः पूर्णतया दिदृक्षुः परितो विस्तीर्णायां पुष्प-वाटिकायां प्रविष्टः।

---

किञ्चिदेवालप्येत्यन्वय.। छन्दांसि–"गजल" प्रभृतीनि। प्रपदे=पादाग्रे "पादाग्र प्रपदमि"ति कोष, पातिता=स्थापिता दृष्टिर्येन सः। निरपेक्ष-ताव्यञ्जकमिदं। सापेक्षा हि पथि गच्छतो महतो विविक्षया इतो दयापूर्णया निभाल्यन्ति। हस्तग्राहम्=हस्तेन ग्रहीतुं योग्यो यथा स्यात्तथा। स्वयमेव=आत्मनाऽपि। एवकारोऽप्यर्थे। अत एव न समानार्थकशब्दद्वयस्यैकवाक्य-घटकत्वम्। द्वारपालानाम्=दौवारिकाणाम्। रक्षकाणाम्=प्रहरिणाम्। निवेशनानि=आवासकोष्ठकानि। समीक्षमाणः=सम्यक् पश्यन्। परितः=सर्वतः। भवनमिति शेष.। पुष्पवाटिकायाम्=गृहोपवने।

---

अन्दर जाने की अनुमति पाकर, तुरन्त अन्दर प्रवेश कर, फारसी की कुछ गजलें गुनगुनाता हुआ सा वह मुसलमान फकीर कभी पैरों के पञ्जों की ओर और कभी आकाश की ओर देखता हुआ, निरपेक्ष और ब्रह्मानन्दनिमग्न सा; महादेव पण्डित का वेश धारण किये हुए शिवा जी के कभी काफी पीछे और कभी हाथ-दो हाथ पीछे रहकर, उनका अनुसरण करता हुआ, स्वयं भी उस महल के दरवाजे तक आ गया जिसमें शाइस्ता खाँ रह रहा था। १

प्रथमतः सघन-हरित-लता-वेष्टित-द्रुमावलिः, द्वितीयतस्तमोबहुला तमी, तृतीयतश्च नील-निचोलोऽय जटिलः—इति वीक्षमाणैरप्यवीक्ष्यमाणः, प्रासादं परिक्रम्येव. सर्वाणि स्वाभिमतगुप्तस्थानानि सम्यगवलोक्य सप्रसादं मनस्येवाचकथत् यत्—

अहो ! न दुर्घटमाक्रमणमेतस्य शास्तिखान-वराकस्य। नगराद्बहिरेतस्य सेना, प्रासादरक्षका अपि च प्रासादादस्माद् दूरतो मन्दुरासु वमन्ति. यथासमयं च पञ्चपाः समागत्य द्वारि तिष्ठन्ति,

सघनाभिः = सघनाभि, हरिताभिः = हरिद्वर्णमयीभि, अशुष्काभिरिति यावत्, लताभिः = व्रततिभि, वेष्टिता – वलयिता, द्रुमाणाम्, आवलिः = पङ्क्ति। तमोबहुला = अन्धकारप्रचुरा। तमी = तमिस्रा। नीलनिचोलः = कृष्णप्रच्छद. । जटिलः = जटायुत। "लोमादि–पामादि–पिच्छादिभ्य शनेलचः"। वीक्षमाणैः = पश्यद्भिः। अवीक्ष्यमाणः = अनवलोक्यमान। सप्रसादम् = सप्रसन्नतम्। अचकथत्, लुङ्।

मन्दुरासु = वाजिशालासु। प्रासादरक्षकाणा प्रासादस्थितिरपेक्षिता

जब शिवाजी महल के अन्दर चले गये तो वह वहीं टहलता हुआ, उसको जमीन से लेकर आखिरी मञ्जिल तक ध्यान पूर्वक देखता हुआ, द्वारपालों और प्रहरियों के आवासों का भली भांति निरीक्षण करता हुआ, महल को चारों ओर से पूरी तौर से देख लेने की इच्छा से, उसके चारों ओर फैले उपवन में प्रविष्ट हो गया।

एक तो सघन और हरी लताओं से परिवेष्टित वृक्षों की पंक्ति, दूसरे अंधेरी रात, और तीसरे इस जटाधारी फकीर ने नीला कञ्चुक पहन रखा था अतः देखने वालों द्वारा भी न देखा जाता हुआ वह, महल की प्रदक्षिणा सा करके, अपने काम के सारे गुप्त स्थानों को भली भाँति देख कर प्रसन्न होकर मन ही मन कहने लगा।

इस बेचारे शाइस्ता खाँ पर आक्रमण करना असम्भव या कठिन नहीं है। इसकी सेना नगर से बाहर रहती है। महल की रक्षा करने वाले सैनिक भी महल से काफी दूर घुड़सालों में रहते हैं और उनमें से केवल पाँच-छः,

प्रासादस्य पृष्ठदेशे विशालमुद्यानम्। नात्र रात्रौ कोऽपि मनुष्यो विचरति। उद्यानं परितस्तु लोह-दण्ड-प्रावारः, यमुल्लङ्घ्य यतस्तत एव प्रविविक्षुः प्रवेष्टुमर्हति, यत्राऽऽच्छन्नशरीराश्च परस्सहस्राः परैरलक्ष्यमाणाः समस्तां रात्रिमतिवाहयितुं पारयन्ति। प्रासादे च बहवो गवाक्षा ग्रीष्मकालेऽस्मिन्नुन्मुद्रिता एवोपेक्ष्यन्ते। "कः समायाति ? परास्तो महाराष्ट्र-हतकः"-इति विश्वसन्तः प्रहरिणो रक्षकाश्च निर्निस्त्रिंशा एव निश्चर्माण एव च सोपेक्षं परस्परं हसन्तो हासयन्तश्च स्व-प्रहरमतियापयन्ति। प्रासादान्तःस्थितानां चमूपतेः सहवासिनां च पानैरेव शयनैरेव च तथा समयो व्यत्येति, यथा

---

सा नेति सोपहासमुक्ति। पृष्ठदेशे=पाश्चात्यभागे। लोहदण्डप्रावारः=आयसदण्डवृति। आच्छन्नशरीराः=प्रावृतदेहाः। परैः=शत्रुभिः। अलक्ष्यमाणाः=अज्ञायमानाः। उन्मुद्रिताः=उद्घाटिताः। उपेक्ष्यन्ते=निर्विचार त्यज्यन्ते। निर्निस्त्रिंशाः=खड्गशून्याः। निश्चर्माणः=स्वच-फलकाः, "फलकोऽस्त्री फलं चर्म" अमरः। सोपेक्षम्=उपेक्षया सहित यथा स्यात्तथा। स्वप्रहरम्=स्वयामम्। पानैः=मद्यगोष्ठीभिः। शयनैः=

---

अपने नियत समय पर आकर द्वार पर पहरा देते हैं। महल के पीछे बहुत बड़ा उद्यान है जिसमें रात में किसी आदमी का पहरा नहीं रहता। उद्यान के चारों ओर लोहे की सलाखों से बनी चहार दीवारी है। घुसना चाहने वाला जहाँ से भी घुसना चाहे इसे पार कर अन्दर घुस आ सकता है, और इस उद्यान में हजारों नकाबपोश इस तरह सारी रात गुजार सकते हैं कि दुश्मन देख या जान न पावे। महल में अनेक रोशनदान हैं जो इस गर्मी के मौसम में खुले ही छोड़ दिये जाते हैं और जिनकी ओर कोई ध्यान ही नहीं देता है। 'बिचारा मराठा तो हार गया, अब कौन आयेगा' इस विश्वास से पहरेदार और प्रासादरक्षक सैनिक बिना ढाल-तलवार लिये ही, उपेक्षा पूर्वक, परस्पर हँसते हँसाते हुए, अपना समय बिताते रहते हैं; और महल के

ते का प्राची ? का प्रतीची ? कः परकीयः ? क आत्मीयः ? दिनं वा ? रजनी वा ? शयामहे वा ? उद्बुध्यामहे वा ? श्वेतो वा ? कृष्णो वा ? इत्यादि चिरेण विदन्ति—इति ।

पुनः परावृत्य प्रधान-द्वारमागत्य तदधिकृतस्य प्रतीहारस्यैकस्य सम्मुखमागत्य वाम-हस्तेन वाद्यं झणज्झणत्कुर्वन् तस्यैव मुखमण्डले दत्तदृष्टिरनिमेषपातमवलोकयन्नस्थात् ।

स च—स्वामिन् ! किं कथ्यते ?—इति द्वित्रिश्चापृच्छत् । अस्मिन्नोत्तरमददत्येव तथैवावलोकयति; स्वामिन् ! अपि भोक्ष्यते किमपि ?—इति सादरमुवाच ।

---

रतिफलकैः स्वापैः । व्यत्येति = व्यतिक्रामति । परस्याय परकीयः = अनात्मीयः । गहाद्यन्तर्गणसूत्रेण कुक्छश्च । आत्मनोऽयमात्मीयः । गहादित्वाच्छः । श्वेतो वा कृष्णो वा, लोकोनिरेया । एतद्विवरणफलकान्येव पूर्वोक्तपदानि ।

परावृत्य = यथागतमागत्य । अनिमेषपातम् = निमेषानप्यपातयित्वेत्यर्थः । क्रियाविशेषणम् । अस्थात् = निवृत्तगतिकोऽभूत् । स्थाधातोरत्रैवार्थे मुख्यः प्रयोगः । "तिष्ठतु भवानि" त्यागन्तुकं प्रति पण्डितरानरशिवकुमारमिश्रकथने "किमपराद्धं मये"ति तदागन्तुककथाऽनानुसंधातव्या । स्वामिन् ! = "साईं" इति हिन्दी । यवनसाधोः सम्बोध्यमानत्वात् ।

---

अन्दर रहने वाले सेनापति के साथियों का समय तो शराब पीने और सोने में ही इस तरह बीत जाता है कि वे पूरब पश्चिम, अपना-पराया, दिन-रात, सोना-जागना और स्याह-सफेद भी बड़ी देर से जान पाते हैं ।

फिर लौट कर, मुख्य द्वार पर आकर, वहाँ पर नियुक्त एक प्रतिहार के सामने आकर, बाँएँ हाथ से बाजे को झन-झन बजाता हुआ वह उसी प्रतीहार के मुँह की ओर निर्निमेष नेत्रों से देखता हुआ खड़ा हो गया । उस प्रतीहार ने दो तीन बार, 'महात्मन् ! आप क्या कहते हैं' यह पूछा पर जब फकीर बिना कुछ उत्तर दिये उसे उसी प्रकार देखता हुआ खड़ा रहा, तो उसने आदर पूर्वक कहा, 'महात्मन् ! क्या आप कुछ खायेंगे ?'

स तु किञ्चित् मस्तकं कम्पयन्, मौनेनैव प्रतिनिवृत्य, निवर्तन-मार्गे एव कतिपयानि पदानि गत्वा, घण्टापथस्य प्रान्तस्थायामेकस्यामुन्नत-वेदिकायां पश्चिमाभिमुख उपविश्य पातितोभयजानु स्थित्वा वाद्यं पुरस्तात् संस्थाप्य मुखमधःकृत्य तूष्णीकः समतिष्ठत। तथा स्थितस्यैव तस्य हृदये विचाराकूपारस्य तरङ्गा इव बहुभङ्गमाकलयन्, यद्—

"अहह! कथमिव समायातोऽयं दुर्भाग्यमयः समयः कोङ्कण-देशस्य, यद् यत्र गरुडाङ्किता महाध्वजाः समुद्धूननैर्गगन-तलाद्-

---

स तु तूष्णीकः समतिष्ठदिति सम्बन्धः। मस्तकं कम्पयन्, न भोक्ष्यामीति बोधनायेदम्। निवर्त्तनमार्गे एव–येन पथा निवृत्तस्तेनैव कियद्दूरं गत्वेत्याशयः। घण्टापथस्य=राजमार्गविशेषस्य। प्रान्तस्थायाम्=समीपवर्तिन्याम्। उन्नतवेदिकायाम्=उच्चायां परिष्कृतभूमौ। पातिते उभयजानुनी यस्या तदिति स्थित्याविशेषणम्। विचाराकूपारस्य=भावनासागरस्य। बहुभङ्गमिव=आघातप्रतिघातमिव। आकलयन्=व्यधुः। स विविधविचारं कृतवानित्यर्थः।

गरुडाङ्किताः=गरुडचिह्निताः। विष्णुमन्दिरत्वात्। गगनतले=छायापथे, उद्धूयमानम्=सञ्चरन्तम्। पवनम्=समीरणम्, स्वयमपि पवित्रताहेतुमिति पवनशब्दव्यङ्ग्यम्। अपावयन्=पूतमकार्षुः। भार-

---

वह फकीर थोड़ा सा सिर हिलाकर (मैं कुछ न खाऊँगा, इस प्रकार का संकेत देकर) मौन धारण किये हुए ही लौट कर, उसी रास्ते पर कुछ कदम चलकर, सड़क के पास ही बने एक ऊँचे चबूतरे पर पश्चिम की ओर मुँह कर के, दोनों घुटने जमीन पर टेक कर, बाजे को आगे रख कर, मुँह नीचा कर के चुपचाप बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उस फकीर के हृदय पर विचार सागर की तरङ्गों ने अनेक घातप्रतिघात किये। वह सोचने लगा, हा, कोंकण देश का कैसा दुर्भाग्यपूर्ण समय आ गया है कि जहाँ गरुडचिह्न से अङ्कित बड़े बड़े ध्वज फहर-फहर कर आकाश में सञ्चरण कर रही वायु को

यमान-पवनमपावयन्, यत्र भारताभिजन-सघन-कलङ्का इव नील-ध्वजाः समुद्धूयन्ते, यत्र कोटि-जन्मार्जित-महापातक-दीर्घ-दाव-दावानल ज्वाला-मालाभिरिव हरि-नाम घोषणाभिर्व्यापूर्यत वसुधा; तत्र कर्ण-कषायाः, चीत्कारमयाः, हरि-हर-निन्दा-नादाः कर्णौ स्फोटयन्ति। यत्र कदा जन्माष्टमी? कदा रामनवमी? कदैका-दशी? कदा प्रदोषः?—इति पृच्छा समश्रूयत पण्डित-मण्डलेषु;

---

ताभिजनस्य=भारतदेशस्य, सघनाः=सान्द्रीभूता, कलङ्का इव। स्वभा-वत एव नीलध्वजस्य भारतीयजनकलङ्कत्वेनोत्प्रेक्षणम्। नीलध्वजाः= कृष्णपताका:, सचन्द्रा हरिद्वर्णा यवनध्वजा भवन्ति। कोटिजन्मभिः= असंख्यातजननैः, अर्जितानि=सञ्चितानि, यानि महापातकानि=ब्रह्म-हत्यादीनि—

> "ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
> महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह" इति—

मानव शासनम्, तान्येव दीर्घदावः=महाकाननम्, तस्य दावा-नलः=वनाग्निसदृशः, रूपकम्। भस्मीकरणरूपहेतुः, तस्य ज्वालामा-लाभिरिव=अग्निलतिभिरिवेत्युत्प्रेक्षा। हरिनामघोषणाभिः=भगव-न्नामोच्चारणैः। नाम्नि दहनत्वं तदुच्चारणे च ज्वालामालात्वमारोपितमिति ध्येयम्। व्यापूर्यत=पूरिता। कर्णकषायाः=श्रोत्रवेधका:। श्रवणानर्हा इति यावत्। चीत्कारमयाः=शब्दविशेषमयाः। अत्र "वाम" इति

---

पवित्र किया करते थे वहीं, भारत देश (भारतीयों) के सघन कलङ्क के से काले झण्डे फहराते हैं, जहाँ अनेक जन्मों में अर्जित महापातक रूप महावनों के लिये दावानल की लपटों के समान भगवान् के नामों के उच्चारण से पृथिवी मण्डल गूँजा करता था, वहीं कानों को वेधने वाले, चीत्कार पूर्ण, विष्णु और शिव आदि देवताओं की निन्दा के स्वर कानों को फोड़े डाल रहे हैं, जहाँ पण्डित-मण्डली में 'जन्माष्टमी कब है? रामनवमी कब है? एकादशी कब है? प्रदोष कब है?' इस प्रकार के प्रश्न सुनाई देते थे, वहीं

तत्र हि कदा 'मोहरमः ? कदा रामयानम् ?'—इत्यादिराकर्ण्यते आरब्य-भाषामयो मौलिवीनां वचन-विन्यासः। यत्र विपणिषु सर्वदा द्राक्षा रम्भा आम्राणि नारिकेलानि दाडिम्बानि बीजपूराणि जम्बीराणि लिकुचानि पनसानि च व्यक्रीयन्त; तत्राधुना वर्तिकाः तित्तिराः कुक्कुटाः लावाः कलविङ्काः सारसाः श्येनाः उलूकाः सत्तदण्डानि च विक्रीयन्ते। यत्र विशालतिलकाः कलित-रुद्राक्ष–तुलसी–कमलाक्ष–मालिकाः, ऊर्णा–कौशेय–मात्र–वसनाः,

---

यावनप्रसिद्धे तात्पर्यम्। हरिहरनिन्दानादाः=देवगर्हणाशब्दाः। उपलक्षण हरिहरपद देवमानस्य। रमयतीति रमः, मोहस्य रमो मोहरम इति संस्कृतशब्दता। "मुहरम" इति लोके। एतद्दिन एव मोहमदो घानितः। रामयानम् = "रमजान" इति लोके। नारिकेलानि=कूर्चशीर्षकाणि। "नारिकेलो दृढफलो लाङ्गली कूर्चशीर्षकः" दाडिम्बानि = लोहितपुष्पकाणि, "दाडिमः करको दन्तबीजो लोहितपुष्पकः" बीजपूराणि = मातुलुङ्गानि। "बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचकः फलपूरकः"। लिकुचानि = लकुचफलानि। "लिकुचो लकुचो डहुरि" त्यमरः। "बड़हर" इति हिन्दी। पनसानि= कण्टकिफलानि, "कटहर" इति हिन्दी। वर्तिकाः = 'बटेर' इति हिन्दी। लावाः=लघुवर्तिकाः। कलविङ्काः=चटकपक्षिणः। विशालं तिलकं येषां ते। कलिताः=धारिताः,रुद्राक्षस्य तुलस्याः कमलाक्षस्य च मालिका यैस्तैः। ऊर्णा= मेषादिलोम, कौशेयम्=कृमिजम्, तन्मात्राण्येव वसनानि=वासांसि येषां ते। ऊर्णादिवस्त्राणामेव संसर्गाभावेन शुद्धत्वाभिधानात् नाभोजनादिषु प्रायो व्यवह-

---

अब मौलवियों के 'मोहर्रम कब है ?' 'रमजान कब है ?' इस प्रकार के अरबी भाषामय वाक्य सुनाई देते हैं। जहाँ बाजारों में सदा अंगूर, केला, आम, नारियल, अन र, बीजपूर नीबू, बड़हल और कटहल बिका करते थे, वहीं अब बटेर, तित्तिर, मुर्गे, लवा,गौरैया,सारस,बाज,उलूक पक्षी तथा उनके अण्डे बेचे जाते हैं। जहाँ लोग,विशाल तिलक लगाने वाले, रुद्राक्ष,तुलसी और कमलाक्ष की माला धारण करने वाले,केवल ऊनी और रेशमी(पवित्र)वस्त्र धारण,करने

काष्ठ-पादुकारोहिणः, भगवन्नामामृत-रस-रसन-रसिक-रसनाः, विहित-तीर्थ सार्थ-सञ्चरण-चरणाः, स्वोचिताचाराचरण-मात्र व्यस-

रन्ति तान्येव धार्मिकाः। काष्ठपादुकामारोढु शील येषा ते। काष्ठपादुका= "खडाऊँ" इति हिन्दी। भगवन्नामैव अमृतरसः=सुधारसः, तस्य रसने= आस्वादने, रसिकाः=सलग्नाः, रसनाः=जिह्वा येषा ते। अनुप्रासोऽत्राग्रे च।

"नाम्नोऽस्ति यावती शक्ति पापनिर्हरणे हरे।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातक पातकी जनः॥"
साङ्केत्य पारिहास्य वा स्तोभ हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहर विदुः॥"
"अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तमृगैरिव॥"

इत्यादिविधायकवचनसमूहेन नामोच्चारणविधिः प्रदर्शित इति ज्ञेयम्। नान्त्यफलश्रुतेरर्थवादतेति श्रीकरपात्रिचरणानां सङ्कीर्तनमीमांसाया स्फुटम्। विहित तीर्थसार्थेषु=बदरी-जगन्नाथ-रामेश्वर-द्वारिकादिपूततमस्थानसमूहेषु, सञ्चरणम्=भ्रमणम्, यैस्तादृशाः, चरणाः=पादाः, येषा ते। तीर्थभ्रमणस्य स्वर्गापवर्गादिफल शतशः पुराणेतिहासेषु निरूपितम्। स्वोचितानाम्= स्वस्ववर्णाश्रमादियोग्यानाम्, वेदशास्त्रविहितानाम्, आचाराणाम्=शौचस्नानसन्ध्यावन्दनादिनित्यनैमित्तिककाम्यानुष्ठानानाम्, आचरणमात्रम्= पालनमेव, व्यसनम्=प्रतिदिवसकृत्यम्, येषा ते। यथा मद्यादिदुर्व्यसननिरता न कदाचिदपि परित्यजन्ति तानि तथा न कदाचिदपि नैत्यिकाद्य-

वाले लकड़ी की खड़ाऊँ पहनने वाले, भगवन्नाम रूप अमृत रस का रसास्वादन करने में रसिक रसना वाले, अनेक तीर्थों का भ्रमण कर चुके चरणों वाले, अपने (वर्ण और आश्रम के) अनुरूप आचरण के पालन में तत्पर महात्माओं को विनयपूर्वक, स्तुतिपूर्वक और चरणस्पर्शपूर्वक प्रणाम किया करते थे, वहाँ आज उन्हीं महात्माओं की, गलियों, सड़कों, सरोवर तटों,

निनो महात्मानः सप्रश्रयं सस्तवं सपादस्पर्शं च प्राणम्यन्त, तत्र त एवाधुना वीथीषु, राजपथेषु, तडाग-ह्रदेषु, उद्यानेषु, विपणिषु, समाजेषु च महामांस-ढक्कार-पूतिगन्ध-सम्बन्धान्धीकृत-पारिपार्श्विकैः, चिर-जलानवगाहनोद्भूत महामलावलि-मलीमसैः, मद्य-स्वेद-निष्ठ्यूत-कर्णकिट्ट-सिङ्घाण-दूषिकादि-विविध-मल-लिप्त-चिरा

---

नुष्ठान नानुतिष्ठन्तीति भावः। व्यसनपदस्वारस्येन चैतदेवैकं सत् व्यसनं न तु मद्यपानादिव्यसनमिति ध्वनयति। महान् = सत्त्वातिशयसम्पन्नः आत्मा=जीवात्मा येषां ते। आत्मनि महत्त्वञ्च निर्दूषणत्वम्। नित्यमुक्त-स्वभावो हि जीवः कर्मपाशबद्धोऽशुद्धाशयः इव लक्ष्यते, स्वस्ववर्णाश्रमोचित कर्त्तव्यज्ञातसमनुष्ठानेन चाज्ञानहाने स्वस्वरूपं परिचिनोति। तत्र कृतश्रमाश्च महात्मान इत्युच्यन्ते। अथवाऽत्रमपदमन्त्य करणतरमाश्रित्य क्षुद्रबुद्धि मोदाय व्याख्येयम्। सप्रश्रयम्=सनम्रतम्। सस्तवम्=स्तुतिपूर्वकम्। प्राणम्यन्त=समभिवाद्यन्त। कर्मणि प्रत्ययः। वीथीषु=लघुपथेषु। "गली" इति हिन्दी। समाजेषु = मानवसङ्घेषु। महामांसस्य= गोमांसस्य, ढक्कारैः=उद्गारैः, "डकार" इति हिन्दी, यः पूतिगन्धः= दुर्गन्धः, तत्सम्बन्धेन=तत्संसर्गेण, अन्धीकृताः=व्यर्थचक्षुष्कीकृताः, पारिपार्श्विकाः=समीपवर्त्तिनः, यैस्तैः। चिरजलानवगाहनेन=बहो कालाद्वारिनिमज्जनाभावेन, उद्भूतानाम्=सञ्जातानाम्, महामलानाम्= अतिमलिनतानाम्, आवलिभिः=पङ्क्तिभिः, मलीमसैः=मलिनैः। मद्यस्वेदः=सुराघर्मः। निष्ठ्यूतम्=थूत्कारः। कर्णकिट्टम्=कर्णमलम्। सिङ्घाणम्=नासिकामलम्। दूषिका=नेत्रयोर्मलम्। परस्परमतेषु द्वन्द्वः। एतदादिभिः। विविधैः=नानाप्रकारैः, मलैः लिप्तानि=व्याप्तानि,

---

उद्यानों, बाज़ारों और सभाओं में, खाये हुए गोमांस की डकार की दुर्गन्ध से समीपवर्ती लोगों को अन्धा बना देने वाले (लोगों में जुगुप्सा उत्पन्न कर देने वाले), बहुत दिनों से स्नान न करने के कारण उत्पन्न मैल से गन्दे शरीर वाले, मदिरा, पसीना, थूक, नाक का मैल, आँख का मैल आदि नाना प्रकार की गन्दगियों से युक्त और अधिक दिनों से धोये न जाने के कारण

क्षालित-मलिन वसनैः, वारवधूच्छिष्ट-भोजिभिः, दुराचार-हतकैरव-हेल्यन्ते, अवधार्यन्ते, गालि प्रदान-पुरःसरं विरस्क्रियन्ते, क्वचन ताड्यन्ते निःसार्यन्ते च।

अहह! सम्प्रति बहवः सरोदन सकष्टं तिलकादिधारण-मर्यादा त्यक्तवन्तः, अपरे च व्याघ्र-वदनाघ्राण साहस-सोदर्य-साहसोपबृंहिताः, कृपाण-धारास्विव धावन्त, प्राणानगणयन्तोऽ-

---

चिरात् = बहो कालात्, अक्षालितानि = अधौतानि, अत एव च मलिनानि = अत्यधिकमलिनताभाञ्जि, वसनानि = वस्त्राणि, येषा तै.। "दूषिका नेत्रयोर्मलम्। नासामलन्तु सिङ्घाणम्" इत्यमरः। बीभत्सरस। वारवधूनाम् = वेश्यानाम्, उच्छिष्टानि = भुक्तावशिष्टानि, भोक्तु शील येषा तै। दुराचारहतकैः — आचारनिरहितै पापिभि। अवहेल्यन्ते = तिरस्क्रियन्ते। अवधार्यन्ते, इत्यपि तदर्थकम्। तिरस्कारा-तिशयद्योतनाय नितयप्रयोग.। ताड्यन्ते = प्रहियन्ते। निःसार्यन्ते = बहि क्रियन्ते, गेहादिभ्य। स्थानशून्या क्रियन्त इति यावत्।

व्याघ्रवदनाघ्राणम् = शार्दूलमुखचुम्बनम्, एव साहसम् = बलकर्म, तत्सोदर्यम् = तत्समानोदरे शयितम्, तुल्यमिति यावत्, यत्साहसम् = बलकर्म तेन—उपबृंहिता = सवल्गिता, व्याघ्रमुखनिपतनेऽपि भयशून्या इति यावत्। कृपाणधारासु = असिधारासु। धावन्तः = त्वरया गच्छन्त।

---

मैले कपड़ों वाले, तथा वेश्याओं की जूठन खाने वाले दुराचारी अवहेलना करते हैं, अपमान करते हैं, गाली देकर तिरस्कार करते हैं, कहीं कहीं (महात्माओं को) मारते हैं और निकाल भी देते हैं।

हा, अब तो बहुतों ने रोते हुए, कष्टपूर्वक तिलक आदि धारण करना भी छोड़ दिया है। व्याघ्र का मुख सूँघने के साहस के समान साहस वाले, मानो कृपाण की धार पर दौड़ते हुए, और प्राणों की चिन्ता न करते हुए, कुछ

घुनाऽपि "हरे ! कृष्ण ! दामोदर ! महादेव ! राधावर ! सीताराम ! नारायण ! वामन ! वैकुण्ठ ! रमापते ! गौरीपते !" इत्यादीनि कलि-मल-मथनानि अधरीकृत-सुधा-माधुर्याणि सवीणा-वादं नारदेन रसनीयानि भगवन्नामानि उच्चारयन्तः, कल्पित परम पवित्र वेषाः,

---

अतिशयोक्तिरलंकारोऽस्ति । हरति पापानीति हरिस्तत्सम्बुद्धौ हे हरे ! "हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः" इति पुराणम् । कृषतेर्नक् कृष्णः, पापानि कर्षतीति व्युत्पत्तिः । औपनिषदा अपि "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" इति । दाम = रज्जुः, उदरे = कटौ, यस्य तत्सम्बुद्धौ । कृष्णो बद्धो गोपिकया यशोदयेति ब्रह्मवैवर्तादिषु स्फुटम् । सीतया सहितो रामः सीतारामस्तत्सम्बुद्धौ । मायाप्राबल्यबोधनाय सीताशब्दस्याद्यता । नारायण ! = "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः" इति निरुक्तिः । वैकुण्ठ != विष्णो ! "वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः" इत्यमरः । कलेः = तुरीययुगस्य, मलानाम् = पापानाम्, मथनानि = दूरीकरणानि । "हरेर्नामैव नामैव नामैव गतिरुच्यते । कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा" इति वचनात् । अधरीकृतम् = निम्नीकृतम्, सुधायाः माधुर्यं यैस्तानि । नारदेन = ब्रह्मसूनुना परमभागवतेन । मनस एव नारदसंज्ञा पौराणिकैः कृता, तस्य च चञ्चलत्वमभिलक्ष्यैकत्रास्थायित्वं द्विघटीतोऽधिककाल शापादिना प्रतिपादितमिति पुराणमतदीपिकायामस्माभिः स्पष्टीकृतम् । रसनीयानि = सरसास्वाद गेयानि । कल्पितपरमपवित्रवेषाः = स्वीकृतातिपूतनेपथ्याः । वाचाटानाम् =

---

दूसरे लोग, अब भी, कलियुग के पापों को दूर करने वाले, अमृत की मधुरिमा को भी पराजित करने वाले, नारद के द्वारा वीणा बजा कर गाये जाने योग्य, भगवान् के, हरि, कृष्ण, दामोदर, महादेव, राधावर, सीताराम, नारायण, वामन, विष्णु, रमापति, गौरीपति आदि नामों का उच्चारण करते हुए, परम पवित्र वेश धारण किये हुए, वक्तादियों के मर्मवेधी वचनों

सहमाना अपि वाचाटानामरुन्तुदा वाचः, कथं कथमपि स्वधर्मं निर्वहन्ति ।

अहह ! धिगस्मान् ! ये दुराचाराणामीदृशमात्म-धिक्कार-मीक्षामहे, सहामहे, जीवामश्च । म्लेच्छा एव भारत-साम्राज्य-सिंहासनमधितिष्ठन्तु, धर्मेण च शासनमूरीकुर्वन्तु । 'नराणां च नराधिपः"—इति मुद्रया स्वभाव-सिद्धाऽस्माकं राजभक्तिरुद्रेक्ष्यति,

असद्बहुभाषिणाम्, "आलजाटचौ बहुभाषिणि" सू० "कुत्सित इति वक्तव्यमि" त्येतत्सूत्रस्य वार्तिकम् । सम्यग् यो बहु भाषते स तु वाग्मी । अरूषि तुदन्तीत्यरुन्तुदाः = मर्मवेधकाः । "अरुन्तुदन्तु मर्मस्पृशि' त्यमर. ।

दुष्टा आचारा येषां तेषां—दुराचाराणाम् = सदाचारविरहितानाम् । ईक्षामहे = पश्यामः । दर्शकास्तूदासीना अपि भवन्तीति सहामहे । अथ किमपि कर्तुमशक्नुवानैः सोढव्यमेव तत्राह जीवाम इति । अशक्तैर्जीवनं त्याज्यम् । "सता माने म्लाने मरणमथवा दूरसरणमि"ति हि मनस्विगता प्रतीतिः । म्लेच्छाः = अपशब्दभाषिणः । असंस्कृतभाषाभाषिण इति यावत् । धर्मेण = मानवादि-प्रदर्शितशासनविधानेन । ऊरीकुर्वन्तु = अङ्गी-कुर्वन्तु । स्वभावसिद्धा = प्राकृतिकी । भारतीया हि प्रायः प्रकृत्या

को सहन करते हुए, किसी तरह अपने धर्म का पालन कर रहे हैं।
हा हमें धिक्कार है कि हम दुराचारियों द्वारा किये गये इस प्रकार के अपमान को देखते हैं, सहते हैं और जीवित हैं (मर नहीं जाते)। म्लेच्छ लोग ही भारत-साम्राज्य के सिंहासन पर बैठ जायें और धर्मपूर्वक शासन करें; राजा प्रजा का देवता होता है, ऐसा मानने वाले हम लोग स्वभावतः राजभक्त होते हैं अतः म्लेच्छ शासकों के प्रति भी हममें राजभक्ति आ ही जायेगी; परन्तु प्रजा की यह अकारण हत्या, यह लूट, यह बलात्कार कैसा ? लुटेरों से तो कोई प्रेम नहीं करता ! (निःश्वास लेकर)

हा ! हमें धिक्कार है कि हम दुराचारियों द्वारा किये गये इस प्रकार के अपमान को देखते हैं, सहते हैं और जीवित हैं (मर नहीं जाते)। म्लेच्छ लोग ही भारत साम्राज्य के सिंहासन पर बैठ जायें और धर्मपूर्वक

किन्तु येयं व्यर्थं प्रजा हत्या, लुण्ठनम्, बलात्कारश्च। नहि लुण्ठकेषु कस्याऽपि प्रीतिर्भवति। (नि श्वस्य)

अहह! ग्रहा एव प्रतिकूला, विधिरेव वाम., समय एवासु मनय., अदृष्टमेव निकृष्टम्, भवितव्यमेव निन्दितव्य भारत वर्षस्य। अन्यथा को वा भटम्मन्यो भारतीय-क्षत्रियाणां बालस्यापि क्रीडा चन्द्रहास-चमत्कारमपि सोढुमलम्। परन्तु ऐक्यमेव न भव त्यस्मद्देशीयानाम्, यदि नाम सर्वेऽपि भारताभिजन वीरवरा सह्युञ्जेरन्, तद्वय क्षणेन पारावारमपि मल्कुर्म., बन्धुभिरपि हृत वैरस्य महानीचस्य एतस्य मर्दन तु को नाम कठिनो व्यापारः? परन्तु राजपुत्र-देशीय-महाराजानामन्यतम प्रधान वीरोऽय महा राजो भट धराधीश्वरो यवनानामेव पार्श्व महत्तामङ्गीकृत्य अस्मा

राघमवणा आसन्। यद्यपि समये समये दुष्टानामारणमपि कृतमेव तै, यथा वेनेतिवृत्ते मनुनैव प्रदर्शितं स्पष्टम्। उद्वेक्ष्यति = एधिष्यते। लुण्ठकेषु = राननामधारिषु चौरेषु।

ग्रहा = शनैश्चरादय। विधिः = दैवम् अदृष्टम्—भागधेयम्। नहि सर्वज्ञातिरिक्त कोऽपि द्रष्टु शक्नोति तत्। भवितव्यम् = अवश्यभावि। नीलकण्ठनयत्वादिना तदवार्यता स्फुटा। आमान भट मन्यत इति भट म्मन्य' = "आममाने खश्च'। क्रीडाचन्द्रहासचमत्कारम् = लीलाऽ ह्गतक्षालनकौतुकम्। मल्कुर्म. = शुष्कतामापादयाम। पार्श्वमहत्ताम् =

शासन करें, राजा प्रजा का देवता है, ऐसा मानने वाले हम लोग स्वभावत राजभक्त होते हैं अत म्लेच्छ शासकों के प्रति भी हममें राजभक्ति आ ही जायेगी, परन्तु प्रजा की यह अकारण हत्या, यह लूट, यह बलात्कार कैसा! लुटेरों से तो कोई प्रेम नहीं करता! (नि श्वास लेकर)।

हा भारतवर्ष के ग्रह ही प्रतिकूल हैं, विधि ही वाम है, दिन ही बुरे हैं, भाग्य ही खराब है, भविष्य ही बुरा (निन्दा के योग्य) है, अन्यथा अपने को वीर मानने वाला कौन व्यक्ति भारतीय क्षत्रियों के बच्चे के तल्वार के खेल का चमत्कार सह सकने में भी समर्थ है? परन्तु हमारे देशवालों में

भिरेव सह योद्धुं ध्वजानुद्धूय, पुण्यनगरनेदीयस्येव प्रकाण्डभूभागे शिबिराण्यधितिष्ठति । राजपुत्र-गण-शिरोमणिरामेर-देशाधीशश्च दिल्लीश्वरस्यैव पृष्ठपोषकः। अयोध्या-प्रान्तस्थाः क्षत्रियकेसरिणश्च पूर्णतया परवन्तः संवृत्ताः-इति श्रूयते। कोङ्कण-देशे तु विजयपुरादीनां प्रधानतमस्थानानां यवना एवाध्यक्षाः, वङ्गदेशे तु प्रायः क्षत्रिया एव न सन्ति, सन्तोऽपि च युद्ध विद्यां न जानन्ति। केवलमेक आयुष्माञ्छिववीर एव धर्मे बलात्कारमेतमसहमानः सर्वदा यवनैर्युद्धाय सज्जति, न चैतस्य ऋते परमात्मनः कोऽपि साहाय्यं विदधाति।

हा भारत! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे? हा वसुन्धरे! किं दीन-

---

पक्षपातिताम्। प्रकाण्डभूभागे = विशालप्रदेशे, नात्र प्रशंसावाच्यय प्रकाण्ड-शब्दः, येन परनिपातः सम्भाव्येत। आमेरदेशाधीशः = अम्बराधिपतिः। क्षत्रियकेसरिणः = सिंहसदृशा राजानः, परवन्तः = पराधीनाः।

---

तो एकता ही नहीं होती। यदि भारतवर्ष के सभी वीर पुरुष सगठित हो जायें, तो हम क्षण भर में ही समुद्र को भी मरुस्थल में परिणत कर दें, अपने बन्धु बान्धवों से भी वैर करने वाले इस महानीच को समाप्त करना कौन कठिन काम है? किन्तु राजस्थान के राजाओं में अन्यतम, प्रमुख वीर, मरुदेश के महाराज, यवनों का ही पक्ष ग्रहण कर के, हम लोगों से ही लड़ने के लिये, झण्डा फहरा कर, पूना नगर के पास ही एक बड़े भूभाग में पड़ाव डाले पड़े हैं। राजपूतों के शिरोमणि, आमेरनरेश भी दिल्ली के सुल्तान के ही पक्ष के समर्थक हैं। अयोध्याप्रान्त के क्षत्रिय, सुनते हैं पूर्णतया पराधीन हो गये हैं। कोंकण देश में बीजापुर आदि प्रमुख स्थानों पर यवन ही राज्य कर रहे हैं। बङ्गाल में तो प्रायः क्षत्रिय ही नहीं हैं, जो हैं भी वे युद्ध करना नहीं जानते। केवल अकेले आयुष्मान् शिवाजी ही, धर्म का अपमान सहन न करते हुए यवनों से युद्ध करने के लिये सदैव सन्नद्ध रहते हैं; और भगवान् के सिवा अन्य कोई भी इनकी सहायता नहीं करता।

हा भारतवर्ष! क्या लुटेरे ही तुम्हारा उपभोग करेंगे? हा वसुन्धरे!

प्रजानां रक्तैरेव स्नास्यसि ? हा सनातनधर्म ! किं विलयमेव यास्यसि ? हा चातुर्वर्ण्य ! किं कथावशेषमेव भविष्यसि ? हा मन्दिर-वृन्द ! किं धूलिसादेव सम्पत्स्यसे ? हा साङ्गवेद ! किं भस्मतामेव प्राप्स्यसि ? अहह ! धिग् धिग् ! रे ! कलिकाल ! यस्त्वं रक्षकानेव भक्षकान् विदधासि !

हन्त भगवन् ! "महति दुराचारे प्रवृत्तेऽवतरामि" इति प्रतिज्ञातवानसि, तत्किमितोऽप्यधिकं दुराचारमपेक्षसे ? अहह ! परःकोटयो मूर्त्तयो भज्यन्ते, असङ्ख्यानि मन्दिराणि भूमिसात्क्रियन्ते, राशीकृतानि वेदादिपुस्तकानि ज्वालाजालैर्ज्वल्यन्ते, कुलीनानामपि कन्यकाः कदर्य्यहतकैः कुत्सिताभिप्रायेण बलादाच्छिद्यन्ते । शिरश्छेदानाम्, नयनोत्पाटनानाम्, करकर्त्तनानाम्, जिह्वाकर्षणानाम्,

अवतरामि = मानव लोके गृहीतदेहो भवामि ।

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ! ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥'

इति हि भगवदीया प्रतिज्ञा । कदर्य्यहतकैः = पापात्मभिः । कुत्सिता

क्या दीन दुःखी प्रजा (सन्तान) के रक्त से ही नहाओगी ? हा सनातनधर्म ! क्या विलीन ही हो जाओगे ? हा (ब्राह्मणादि चारोंवर्णों !) वर्णव्यवस्थे ! क्या तुम्हारी सिर्फ कहानी ही रह जायेगी ? हा मन्दिर समूह ! क्या धूल में ही मिल जाओगे ? हा छः अङ्गों सहित वेद ! क्या समाप्त ही हो जाओगे ? हा, धिक्कार है रे कलियुग तूने रक्षकों को ही भक्षक बना दिया है ।

हा भगवन् ! आपने दुराचार बढ़ जाने पर अवतार लेने की प्रतिज्ञा की है, तो क्या आपको इससे भी अधिक दुराचार की अपेक्षा है ? हा, करोड़ों मूर्तियाँ तोड़ी जा रही हैं, असङ्ख्य मन्दिर मिट्टी में मिलाये जा रहे हैं, ढेर के ढेर वेदादि ग्रन्थ अग्नि की लपटों के समूह में जलाये जा रहे हैं कुलीन लोगों की भी कन्याएँ पापियों द्वारा बुरे इरादों से (बलात्कार के अभिप्राय से) बलपूर्वक छीनी जा रही हैं। सिर काटने, आँख निकालने, हाथ काट देने, जबान खींच (काट) लेने, और भालों पर उछालने

उदरविदारणानाम् , शूलारोपणानाञ्च क्रीडा इव क्रियन्ते । याः प्रजाः पूर्वं राजभिरौरस-प्रजा इव प्राणाधिक-प्रेम्णा समपाल्यन्त ; ता अधुना निरर्थं निर्दयं लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, घात्यन्ते, ज्वल्यन्ते च । अहह ! नाधुनाऽपि तव हृदये दया संचरति ? भगवन् ! किमिति दीनबन्धु-पदेन सम्बोध्यसे ? यासां भारतीय-प्रजानां दीनतामव-लोक्य ग्रावाणोऽपि रुदन्ति ; तासामुपरि करुणामयीं दृष्टिमपि न क्षिपसि ? हन्त ! कियच्छयिष्यसे ? अहह ! अस्माकं महाक्रन्दन-कोलाहलैरपि न विद्राव्यते तव निद्रा ? हा ! तथापि कथं व्यामोहः ? गरलं तु धूर्जटिना पीतम् , मधु च दानवैरास्वादि, किन्तु चित्रं यद्, एष विलक्षणस्त्वयि दृश्यते व्यामोहः । त्वं हि राजत-प्रासादो वा

भिप्रायेण=बलात्कारकरणाभिलाषेण । उरसो जाता औरस्यः, ताश्च ताः प्रजा औरसप्रजाः=स्वोत्पन्नसन्तानानि । "हृदयादधिजायते" इति श्रुतिः । इवेनो-पमा । ग्रावाणोऽपि रुदन्ति, अतिशयोक्तिः । गरलम्= विषम् । धूर्जटिना= शम्भुना । मधु=मद्यम् । आस्वादि= कवलीकृतम् । व्यामोहः = मदा-तिरेकजन्या विचारशून्यता । कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वादसंगतिरलङ्कारः । रज-तस्य विकारो राजतः, स चासौ प्रासादः=हर्म्यम् । क्षीरस्य सागरः ।

के खेल से किये जा रहे हैं । जिस प्रजा का पहले, राजा लोग अपनी औरस सन्तान की भाँति प्रेम -पूर्वक प्राणों से भी अधिक मानते हुए पालन करते थे, वही प्रजा आज अकारण निर्दयतापूर्वक लूटी जाती है, मारी जाती है, और जलाई जाती है । हा, तुम्हारे हृदय में अब भी दया का सञ्चार नहीं होता ! भगवन् ! तुम्हें दीनबन्धु कह कर क्यों सम्बोधित किया जाता है! जिस भारतीय प्रजा की दीनदशा देखकर पत्थर भी रो देते हैं उस पर तुम अपनी करुणामयी दृष्टि भी नहीं डालते ! हा, कितना (कब तक) सोओगे ! हमारे भीषण रुदन की चीत्पुकार से भी तुम्हारी नींद नहीं टूटती ! हा, तुम्हें भी कैसा व्यामोह हो गया है ! विष तो शङ्कर ने पिया था और मद्यपान देवताओं ने किया था, पर आश्चर्य है कि नशा तुम्हें चढ़ा है । एक विलक्षण

क्षीर-सागरो वा दन्ति दन्त पर्यङ्को वा कुण्डलितानन्तभोगाऽऽभोगो वा इति किमपि न वेवेक्षि। अगणित-फणावलि-फूत्कृतैरिव वीज्यमानो विमल - कमलोदर सोदर-सौन्दर्याभ्यां कमल-कोमल-कमला करतलाभ्यां पादयोः पीड्यमानो निःशङ्कं तस्मिन्नेव कोमलतमवेषे शेषे शेषे। तत्किं जगतः शेषे तव निद्रया भङ्क्ष्यते ? अथवा तस्यैव महागरलस्य

दन्तिदन्तस्य = करिरदस्य, पर्यङ्कः = पल्यङ्कः। कुण्डलितः = कुण्डलाकृतिमुपगतः, अनन्तभोगः = शेषदेहः, स एव आभोगः = अधिष्ठानम्। वेवेक्षि = पृथक्पृथग् विचारयसि। "विजिर् पृथग्भावे"। इतिना निपातेनाभिहितत्वात् रात्रप्रासादादिशब्देषु द्वितीया। एतु टीकाकृता बहुव्रीहि प्रदर्शनं किमर्थकमिति बुद्धिमद्भिरवधारणीयम्। अगणितैः = असंख्यातैः, फणावलीनां फूत्कृतैः = फूत्कारशब्दैः। वीज्यमान इव = आसेव्यमान इव। उत्प्रेक्षा। विमलस्य = निर्मलस्य, कमलस्य = पद्मस्य, उदरसोदरम् = मध्यतुल्यम्, सौन्दर्यम् = सुषमा, ययोस्ताभ्याम्। कमलवत् कोमलाभ्यां कमलायाः = लक्ष्म्याः, करतलाभ्याम्। निश्शङ्कम्, अनेन फणावलिनाकुरुहनक्षमता ध्वनिता। कोमलतमः = नितान्तमृदुः, वेषः = नेपथ्यं, यस्य तस्मिन्। वेषमात्रं कोमलं शरीरन्तु कर्कशमिति ध्वनिः। शेषे = अनन्ते, शेषे = स्वपिषि। अगणितैरित्यारभ्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः। विमलकमलोदर, सोदरसौन्दर्याभ्यामित्यनेन कमलाकरतलयोलालित्यमौज्ज्वल्यवर्णत्वञ्च व्यञ्जितम्, कमलाकोमलेत्यनेन च मृदुत्वम्, कोमलतमाभ्यामपि ताभ्यां सम्पर्के भगवच्चरणयोः पीडेव सञ्जायते नितान्तकोमलत्वादिति। जगतः = संसारस्य। शेषे = समाप्तौ। भङ्क्ष्यते = नङ्क्ष्यते। "भञ्जो आमर्दने" भावे

व्यामोह तुममें दिखाई दे रहा है। तुम यह भी नहीं समझ पाते कि यह चाँदी का महल है या क्षीर-सागर, हाथीदाँत का पलँग है या कुण्डलित शेषनाग के फनों की शय्या। शेषनाग के अगणित फनों की फुफकार तुम्हें पँखा सा झल रही है, लक्ष्मी के, निर्मल कमल के मध्यभाग के समान सुन्दर, कमल के समान कोमल हस्तयुगल तुम्हारे चरणों की सेवा कर रहे हैं, और तुम निःशङ्क होकर उसी कोमलतम वेष वाले शेषनाग पर सो रहे हो, तो

महामद्यस्य च भगिन्या कनकाङ्गिन्या समालिङ्गित इति पन्नग कुल-मूलस्य शेष नागस्य गरलावलीढैर्निश्वासैः प्रतिरोम-कुहरं रुञ्जित इति च कलयति काञ्चन मूर्च्छाम्, मत्ततां च। कथमन्यथा क्षीरधि-वेष्टित एव क्षीरधि कन्यया रमेथाः ? किं तु मैवम्, क्षमस्वेना-मनल्प-जल्प कल्पनाम्। सर्वत्रैवासि, सर्वान् पश्यसि, सर्वं वेत्सि,

---

यद्। तस्यैव = पुराणादिषु सुप्रसिद्धस्यैव। महागरलस्य = सागरोत्थस्य हालाहलस्य। महामद्यस्य=वारुण्याः। भगिन्या = सहोदरया। समुद्रमन्थने हालाहलादिभिः साकं लक्ष्मीरपि निःसृतेति पुराणेषु स्फुटम्। कनकाङ्गिन्या = सुवर्णशरीरया। अतिगौरवर्णयेति यावत्। "धत्तूरः कनकाह्वय." इति धत्तूरवाची कनकशब्दः। धत्तूरवद्विषमिश्रिताङ्गयेति ध्वन्यमानोऽर्थः। इति = हेतौ। मूर्च्छां मत्ततां च कलयसीत्यनेन सम्बन्धः। इतरथा हेतुमाश्रयति—पन्नगकुलमूलस्य = सर्पान्वयप्रसूतेः। शेषनागस्य = अनन्तस्य। गरलावलीढैः = विषमिश्रैः। प्रतिरोमकुहरम्= सर्वेषु लोमच्छिद्रेषु। रञ्जितः = व्याप्तः। काञ्चन = अनिर्वाच्याम्। केवलानुभवैकशरणम्। पित्रा समुद्रेण वल्यितस्य हरेः तत्कन्यकया रमणं मत्तताकृत्याज्ञातिरिच्यते। अनल्पजल्पकल्पनाम्=बहुविधभाषणरचनाम्। सर्वत्रैवासि, विभुत्वात्। सर्वान् पश्यसि, सर्वद्रष्टृत्वात्। सर्वं वेत्सि, सर्वज्ञत्वात्। सर्वेषां दयसे, 'अधीगर्थदयेशाम्" इति षष्ठी अत्र=

---

"क्या संसार के समाप्त हो जाने पर ही तुम्हारी नींद टूटेगी ? अथवा उसी हालाहल (विष) और महामद्य (वारुणी) की बहिन कनकाङ्गिनी (१ सोने के से अंगों वाली अर्थात् गौरवर्ण की और २ धतूरे के समान विषपूर्ण अंगोंवाली) लक्ष्मी से आलिङ्गित होने के कारण, और सर्पकुल के मूल शेषनाग के विषपूर्ण निश्वासों से सारे रोमकूपों के व्याप्त हो जाने के कारण तुम्हें मूर्च्छा आ गई है, और तुम मतवाले हो गये हो, अन्यथा नागों और समुद्र से घिरे होते हुए भी समुद्र की कन्या के साथ (उसके पिता के मानने) रमण कैसे करते ? लेकिन नहीं ऐसा नहीं है। मेरी, बढ़ चढ़ कर की गई

सर्वेषां दयसे इति सन्त्यत्र परस्सहस्राणां प्रामाणिकानां वचनानि। येषु विश्वस्य तव सत्ताऽङ्गीक्रियते; कथं तेष्वेव विश्वस्य तवेदग्गुणिता नाङ्गीकरिष्यते ? परमहह ! पश्यन्नपि विदन्नपि न दयसे, हन्त ! किं कथ्यते, जगदीश्वरोऽसि ! तत् किं गजोद्धार-धावन-स्थगितोऽसि ? यन्न धावसि । विप्र-रावण-हनन-वनवास-व्रीडितोऽसि ? यन्नावतरसि।

---

विभुत्वसर्वज्ञत्वादिगुणगणनिलयस्य भगवतः सत्तायाम् । प्रामाणिकानाम्=वेदादीनाम् । नाङ्गीकरिष्यते, यदि वेदादिनिवेद्यमाना तदीया सत्ता सती, तर्हि तन्निवेद्यमानास्तदीया गुणा अपि सन्त्येवेति तात्पर्यम्। जगदीश्वरोऽसि=महाप्रभुरसि । महाप्रभुत्वादेव स्वतन्त्रोऽसीत्यत एव वचनानर्होऽसीति व्यङ्ग्यपरम्परा ।

पाणिनेर्न नदी गङ्गा यमुना न स्थली नदी।
प्रभु प्रभुत्वमापन्नः स्वातन्त्र्यमवलम्बते ॥

इत्यादिष्वयमर्थो व्यक्तीकृत । गजोद्धारे=हस्तिरक्षायाम्, धावनेन=शीघ्रगत्या, स्थगितः=खिन्न । विप्रस्य=ब्राह्मणस्य, रावणस्य=पौलस्त्यस्य, हननेन वनवासेन च व्रीडितः=लज्जित. । ब्रह्महत्या हि पर ब्राह्म

---

बकवाद की कल्पना को क्षमा करो। तुम सभी जगह हो सभी को देखते हो, सब कुछ जानते हो, और सभी पर दया करते हो, यह सिद्ध करने के लिये हजारो आप्तवाक्य (वेदादि) मिलते हैं। जिन आप्तवाक्यों में विश्वास कर के तुम्हारी सत्ता स्वीकार की जाती है, उन्हीं मे विश्वास कर के तुम्हारे ये गुण भी कैसे न स्वीकार किये जायें ? किन्तु हा, देखते हुए भी, जानते हुए भी, दया नहीं करते। क्या कहें, सारे ससार के ईश्वर हो ( महाप्रभु और समर्थ स्वामी हो इसलिये कुछ कहा नहीं जाता )। दौड़ते क्यों नहीं, क्या गज का उद्धार करने के लिये दौड़ने से थक गये हो? अवतार क्यों नहीं लेते ? क्या रावण को मारने ( ब्रह्महत्या ) और वनवास से

कंसच्छेदतायास-स्मरणेन वा तूष्णीकोऽसि ? चिरन्तन इति वली-पलित विग्रहो वा सम्पन्नोऽसि, न ज्ञायते तत्त्वम्। यादृशं तादृशमेव त्वां वयं नमस्कुर्मः।

हा विश्वम्भर ! काश्यां विश्वनाथ मन्दिरं धूलीकृतमेतैः। हा माधव ! तत्रैव विन्दुमाधव-मन्दिरस्य विन्दुमात्रमपि चिह्नं न प्राप्यते ! हा गोविन्द ! तव विहार-भूमौ श्रीवृन्दावने गोविन्द देव-मन्दिरस्यापि इष्टकाखण्डं स्वच्छन्दं भषकैराक्रम्यते। प्रभो ! दयस्व दयस्व, कदा तव कौमोदकी मोदं जनयिष्यति ? कदा तव चापस्तापं विलयं यापयिष्यति ? कदा तव नन्दको नन्दयिष्यति ? कदा तव चक्रं दुष्टचक्रं चङ्क्रमिष्यते ? मा स्मास्मदपराधान् स्मार्षीः, पाहि,

---

जनिका। चिरन्तनः=पुरातनः। वलीपलितविग्रहः=जराजायमानरी-त्योपलक्षितदेहः। न ज्ञायते तत्त्वम्, अतिदुरूहत्वाद्भगवन्मायायाः। इष्टकाः=अश्मविशेषाः। "ईंट" इति भाषायाम्। श्विनकादि-गणपाठादित्वाभावः। भषकैः=कुक्कुरत्यैर्म्लेच्छैः। कौमोदकी=भगवद्गदा। चापः=शार्ङ्गम्। नन्दकः=भगवत्खड्ग। चक्रम्=सहस्रारः सुदर्शन.। दुष्टचक्रम्=दुष्टसमूहम्। अत्र "अहह प्रथमिव

---

लज्जित हो ? क्या कंस को मारने में हुए परिश्रम का स्मरण हो जाने से चुप हो गये हो, या पुराण पुरुष होने के कारण वृद्धावस्था के कारण तुम्हारे बाल पक कर सफेद हो गये हैं। तुम्हारा तत्त्व समझ में नहीं आता। तुम जैसे भी हो, उसी रूप में हम तुम्हें प्रणाम करते हैं।

हा विश्वम्भर, काशी के विश्वनाथ मन्दिर को इन म्लेच्छों ने धूल में मिला दिया, हा माधव ! वहीं (काशी) के विन्दुमाधव मन्दिर का अब विन्दुमात्र चिह्न भी नहीं मिलता, हा गोविन्द ! तुम्हारी क्रीड़ास्थली वृन्दावन के गोविन्द देव मन्दिर की ईंटों पर स्वतन्त्रतापूर्वक कुत्ते विचरण कर रहे हैं, प्रभो, दया करो, दया करो। तुम्हारी कौमोदकी नामक गदा हमें कब मुदित करेगी ? तुम्हारा शार्ङ्ग नामक धनुष हमारे तापों को कब समाप्त करेगा ? तुम्हारा नन्दक नामक खड्ग हमें कब आनन्दित करेगा ? तुम्हारा

पाहि, भगवन्! पाहि—

एवं भावयत एव तस्यान्तर्दुःखमिव जलरूपेण द्रावयन्ती, कपोलं क्षालयन्ती, श्मश्रवमाद् बिन्दूभूय कूर्चं सिञ्चन्ती, भूतलमार्द्रं चकाराश्रु जल-धारा।

तं तथा ध्याननिष्ठमिव यवन-यतिं मन्यमाना बहवोऽध्वन्याः परितोऽवातिष्ठन्त। एक ऊचे महानेष महात्मा, अपर उवाच-अत एव भगवत्स्मरणेन पुलकितोऽस्ति, अन्योऽभाषत—ईदृश एव विचित्रो

समायातः" इत्यारभ्य करुणारसप्रवाहः। मन्नमन्दिरप्रभादय आलम्बनविभावाः, धर्मध्वसन मूर्तिखण्डन-भारतीयपीडनादय उद्दीपनविभावाः। दैवोपालम्भनिःश्वासवैवर्ण्यादयोऽनुभावाः। निर्वेदग्लान्यादयो व्यञ्जनतया स्थिता व्यभिचारिणः। एतैरभिव्यक्तोऽसौ चर्वणतां गतः।

तदास्वादनिरतदशां दर्शयति—एवं भावयत इति। भावयतः= भावनया चित्तगोचरतां नयतः। कूर्चम् = दाढिका।

ध्याननिष्ठम्=समाधिनिरतम्। अध्वन्याः=पथिकाः। परितोऽवातिष्ठन्त= परिवारितवन्तः। "समवप्रवि"इत्यात्मनेपदम्। पुलकितः = रोमाञ्चित.।

सुदर्शन चक्र दुष्टों के समूह का संहार कब करेगा? हमारे अपराधों को याद न करो, हमारी गलतियाँ भूल जाओ, रक्षा करो, रक्षा करो भगवन् रक्षा करो।"

इस प्रकार की भावना करते हुए ही उस (माल्यश्रीक) के आँसुओं की धारा ने मानो उसके आन्तरिक दुःख को जल के रूप में बहाते हुए, उसके कपोलों को धोते हुए, मूछों के अग्रभाग से बिन्दुरूप में परिणत हो कर, उसकी दाढ़ी को भिगोते हुए, पृथिवी को गीला कर दिया।

इस प्रकार ध्यानमग्न से माल्यश्रीक को, मुसलमान फकीर समझकर, अनेक राहगीरों ने घेर लिया। उनमें से एक ने कहा, 'यह कोई बहुत बड़ा महात्मा है,' दूसरा बोला, 'इसीलिये भगवान् का स्मरण करके पुलकित हो गया है;' अन्य ने कहा, 'भगवान् का स्मरण करने से इसी प्रकार से अद्भुत आनन्द को

भवत्यानन्दः परमात्मस्मरणतः, तथेतरोऽब्रूत—वहि सर्वैस्तूष्णीकैरेव स्थेयं न स्याद् यथा ध्यानभङ्ग एतस्य—इति मन्दस्वरेणाऽऽलपता-मेवैतेषां तस्य ध्यानभङ्गो जातः। नेत्रे उन्मील्य च भावना सहस्रैर्येषु वर्धित-महामर्ष-ज्वाला-जटाल आसीत्; तानेवापश्यत् लशुन गन्धैः श्वास-प्रश्वासैर्वमिमुत्तेजयतः परिपन्थिपथिकान्। ततो द्विगुणितकोपो ज्वलदङ्गार प्रतिम-नयनो वाघमुत्तोल्य सहुङ्कार ताडयितुमिवोदस्थात्। तेषु चेतस्ततः पलायन-परेषु शास्तिखान-भवनान्निवृत्तो महादेव-

भावनासहस्रैः = बहुविधविचारणाभिः। येषु = यवनेषु। वर्द्धितस्य = वृद्धिं प्रापितस्य, महामर्षस्य = महाक्रोधस्य, ज्वालाभिः = अर्चिर्भिः, जटालः = सवलितः। लशुनस्य = रसोनस्य गन्धो येषु तैः। वमिम् = उद्गीर्णिम्। उत्तेजयतः = उद्दीपयतः। परिपन्थि-पथिकान् = सपत्नाध्वनीनान्। ज्वलता = दीप्यता, अङ्गारेण प्रतिमा = सादृश्यम्, ययोस्तादृशे। उत्तोल्य = उत्थाप्य। सहुङ्कारम् = हुशब्द-सहितम्। ताडयितुम् = प्रहर्तुम्। अकस्मात् = सहसा। उपस्थाय =

अनुभूति होती,' और किसी दूसरे ने कहा, 'तो सब लोग शान्त रहो जिससे इनका ध्यान न भङ्ग होने पाये'। ये लोग आपस में धीरे धीरे यही बात कर रहे थे कि माल्यश्रीक का ध्यान भङ्ग हो गया। आँखें खोलने पर, उन्होंने, सामने उन्हीं शत्रुओं को देखा जिनके सम्बन्ध में हजारों प्रकार की बातें सोचकर, जिनको लक्ष्य बना कर, उनकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी, और जो लहसुन की ऐसी दुर्गन्ध से युक्त श्वास-प्रश्वासों से वमन को उत्तेजित कर रहे थे (अर्थात् जिनके श्वास-प्रश्वास से लहसुन की ऐसी दुर्गन्ध आ रही थी कि समीपस्थ व्यक्ति को उबकाई आने लगे और वमन हो जाये) उन्हें देखकर माल्यश्रीक का क्रोध दूना हो गया और आँखें जलते हुए अङ्गारों की तरह लाल हो गईं। वह बाजा उठाकर, हुकारता हुआ, इस प्रकार उठा मानो मारने को उठा हो। राहगीरों के इधर-उधर भाग जाने पर, शाइस्ता खाँ के महल से लौटे महादेव पण्डित ने भी एकाएक

पण्डितोऽप्यकस्मादुपस्थाय "किमिव स्वामिन्! किमिति कुपितोऽसि" इति पर्यप्राक्षीत्। स तु तमेव ताडयितुमिव वाद्यमुदतूतुलत्। महादेवस्तु भीत इव पलायितः काञ्चन महान्धकारावृत-वीथिं प्रविष्टः, तत्पश्चादेव चायमपि तस्मिन्नेवान्धकारसमुद्रे निमग्नः।

प्रधान-मार्गमपहाय ध्वान्त-मार्गेण सानुसन्धानं प्रतिनिवर्त्तनमेव महादेवस्याभीष्टमासीत्, तदेव च मुद्रयाऽनयाऽनायासेन सम्पन्नम्।

ततस्तु वीथिकातो वीथिकाम्, मार्गान्मार्गमुल्लङ्घमानः सपद्येव दूरमायातः। अथ महादेवः स्थित्वा कञ्चित्कालं यवनयतिमपे-

---

समीपमागत्य। पर्यप्राक्षीत्=पृष्टवान्। तमेव=महादेवपण्डितमेव। अन्योन्यानभिज्ञानबोधनायेदम्, भीत इव, इदमपि प्रदर्शनफलकम्। महता= प्रबलेन, अन्धकारेण=तमसा, आवृताम्=सञ्छन्नाम्, वीथिम्= मार्गम्। 'वीथि पङ्क्तौ गृहाङ्गे च रूपकान्तरवर्त्मनोरि'ति मेदिनी।

प्रधानमार्गम्=राजपथम्। ध्वान्तमार्गेण=अन्धकारच्छन्नेन पथा। सानुसन्धानम्=गम्भीरावलोकनपुरस्सरम्। मुद्रयाऽनया=अनेन प्रकारेण व्याजात्मना। अनायासेन=निष्परिश्रमम्।

यवनयतिम्=म्लेच्छभिक्षुमेव मालवश्रीकम्। अनागच्छति=

---

आकर, 'क्या है बाबा, क्यों नाराज हो रहे हो!' यह पूछा। उस फकीर ने बाजा कुछ इस प्रकार उठाया मानो महादेव को ही मारना चाहता हो। महादेव डरा हुआ सा भागा और किसी घने अँधेरे से ढकी गली में घुस गया। वह फकीर भी उसके पीछे ही उसी अँधेरे के समुद्र में डूब गया।

महादेव मुख्य सड़क छोड़कर अँधेरे रास्ते से रास्ते को खूब अच्छी तरह देखता हुआ लौटना चाहता था, और उसकी यह इच्छा, फकीर की मुद्रा को देखकर भागने के बहाने से अनायास ही पूरा हो गई।

उसके बाद एक गली से दूसरी गली, एक रास्ते से दूसरे रास्ते होता हुआ यवनभिक्षु (मालवश्रीक) दूर निकल आया। महादेव ने रुक कर

क्षाञ्चकार। तस्मिन्ननागच्छति चान्धकारे मार्गभ्रष्टोऽयमन्यतो गतः—इति निश्चित्य, "आस्तां तावत्, सङ्केतितस्थले तेन सह 'योक्ष्यामि'' इति मनस्येवावधार्य, निर्भयोऽन्धकार एव नगरस्य वर्त्तमानदशामवलोकयन्निव प्रचलितः।

अस्मिन्समये प्रायश एतद्वीथि वासिनः सर्वेऽपि सुप्ताः, द्वारो रुद्धाः, स्थाने स्थाने विचरन्तः प्रहरिणो वा तदुच्चाह्वानोद्बुद्धा अट्टालिकासु पिञ्जरावलम्बिताः शुकसारिकादयो वा क्वचित् क्वचित् शब्दायन्ते। सर्वतः सरणिषु ससणत्कारं समीरणः सरति।

गाढोऽयमन्धकारः कज्जलस्य रेणु-पटलमिव सर्वत उड्डीयते। गगनं मसीमिव वर्षति। महादेवस्तु परिचित-सकल-पुण्यनगर-

---

अप्राप्नुवति। शान्तम्। योक्ष्यामि = युक्तो भविष्यामि।

द्वारः = द्वाराणि। तेषाम् = प्रहरिणाम्, उच्चैन = तारेण, आह्वानेन = आकारणेन, उद्बुद्धाः = जागृताः। सरणिषु = मार्गेषु। ससणत्कारम् = सणदित्यनुक्रियमाणशब्देन सह। समीरणः = वायुः। सरति = गच्छति।

कज्जलस्य = अञ्जनस्य। रेणुपटलम् = धूलिनिकरः। इवेत्युत्प्रेक्षा। मसीमिवेत्यत्रापि। परिचितम् = पूर्वज्ञातम्, सकलम् = समस्तम्, पुण्य-

---

कुछ देर मुसलमान–फकीर (का वेष धारण करने वाले माल्यश्रीक) की प्रतीक्षा की और जब वह नहीं आया तो उन्होंने यह समझा कि वह निश्चय ही रास्ता भूल कर किसी दूसरी ओर निकल गया है। महादेव मन में 'अच्छा, अब उससे पूर्व-निश्चित सङ्केतित स्थान पर ही मिलूँगा' यह सोचकर, निर्भय होकर, अँधेरे में ही, नगर की वर्तमान दशा देखते हुए से चल दिये।

इस समय इस गली के प्रायः सभी निवासी सोये हुए हैं; दरवाजे बन्द हैं, कहीं कहीं पहरा दे रहे पहरेदारों, या उनकी तेज आवाज़ सुनकर जग जाने वाले, अट्टालिकाओं में पिंजड़ों पर टँगे शुक-सारिकादि पक्षियों के स्वर कभी कभी सुनाई पड़ जाते हैं। सभी ओर गलियों में सन-सन करती हवा चल रही है।

घना अन्धकार सब ओर काजल की धूल सी उड़ा रहा है। आकाश

मार्गजालः, वीथिकान्तरं प्रविष्टः। पूर्वं पूर्णतया पर्य्यटितचरमिदं नगरमिति अन्धतमसेऽपि सुखेन पर्य्यटितुमशक्त्। तत्रैकस्मिन् गृहे, गवाक्षे दीप एको मन्द मन्द ज्वलति। तस्मिन्नवतमसे तत एव गच्छन्, तद्द्वार सम्मुख-द्वार-वेदिकायां पुञ्जीभूतमन्धकारमिव, मूर्च्छित भल्लूकमिव, सुप्तं वायससमूहमिव, राशीकृत कृष्ण-सर्प-सङ्घातमिव, आकुञ्च्य स्थापितं कृष्ण-कम्बलमिव च किमपि श्याम-श्याममद्राक्षीत्। निकट आगत्य निपुणं निरीक्षमाणश्च दृष्टवान्,

---

नगरस्य मार्गजालम्=वर्त्मसमूहो येन स.। अन्धतमसे=गाढान्धकारे। पर्य्यटितुमशकत्=भ्रमितु समर्थोऽभूत्। गवाक्षे=वातायने। ज्वलति, स्मेत्यध्याहृत्येदरोषु स्थलेषु व्याख्येयम्। तात्कालिकीं वर्तमानतामाश्रित्य वा प्रयोगः। एवमन्यत्रापि। यथा पञ्चतन्त्रे "अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरु"रित्यादौ। अस्तीत्यस्य विभक्तिप्रतिरूपकस्याव्ययस्य सर्व-कालप्रयोगविषयस्य सत्त्वे तु तत्र निर्वाहेऽप्यत्र प्रकृतोपरीत्यैव कार्यमिति वेदितव्यम्। तस्मिन्नवतमसे किमपि, श्यामश्याममद्राक्षीदिति सम्बन्धः। अवतमसे=क्षीणान्धकारे, दीपप्रकाशात्। उत्प्रेक्षते-पुञ्जीभूतमन्ध-कारमिव। मूर्च्छितम्=विसंज्ञम्। आकुञ्च्य=मोटयित्वा। दिल्लीय-

---

स्याही की वर्षा, सी कर रहा है। पूना नगर के सारे गली कूचों से सुपरिचित महादेव एक दूसरी गली में प्रविष्ट हुए। वे इस नगर को पहले ही कई बार खूब अच्छी तरह घूम कर देखचुके थे अतः घने अँधेरे में भी आसानी से घूमते रहे। इस गली के एक मकान में झरोखे ( खिड़की ) पर रखा एक दीपक मन्द-मन्द जल रहा था। उस हल्के अँधेरे में, उधर से ही जाते हुए महादेव ने उस दरवाजे के सामने चबूतरे पर पुञ्जीभूत अन्धकार सी, मूर्च्छित रीछ सी, सोए हुए कौओं के झुण्ड सी, काले सर्पों के एकत्रीकृत समूह सी और मोड़कर रखे हुए काले कम्बल सी, कोई काली-चीज देखी। महादेव ने निकट जाकर ध्यान देने पर देखा कि एक प्रहरी सो रहा है और उसकी अधखुली पगड़ी एक ओर पड़ी है। पगड़ी पर जो

यदेकः प्रहरी स्वपिति, दिल्लीश-नामाङ्कित-रजतपट्टिका भूषितं तस्योष्णीषमेकतोऽर्द्धस्खलितं विशीर्यते। खड्गः शिरसः समीपे दूरत एव स्थापितोऽस्ति, उपानदेका वेदिका-प्रान्त-लम्बित पाद-च्युता अधः पतिता। मुख निर्गताभिर्लालाभिः सिक्तो बाहुः, धूलि-धूसरितानि नील-वसनानि च स्वेदैराक्लिद्यन्ते। तदालोक्य किञ्चिद्धसन्निव महादेवो–"मूर्खोऽयं यातैक-यामायामेव यामिन्यां सुप्तः"—इति मनस्येवोक्त्वा शनैस्तस्योष्णीषं खड्गं चापजहार।

ततश्च दक्षिणतो वणिग्वीथीं प्रविश्य यावत् किञ्चित् प्रयाति; तावत् पृष्ठतः समश्रावि कश्चित् पादध्वनिः। दत्तकर्णोऽवधार्य च

नाम्नाऽङ्किता रजतनिर्मिता। पट्टिका="पेटी" इति भाषा, तया भूषितम्। एकतः=एकस्मिन् पार्श्वे। सार्वविभक्तिकस्तसिः। अर्धस्खलितम्= अर्धभ्रष्टम्। विशीर्यते=विकीर्यते। शिथिलबन्धनं भवतीति यावत्। उपानत्=पादुका। "अथ पादुका। पादूरुपानत् स्त्री" त्यमरः। वेदिकायाः=उपवेशस्थानस्य, प्रान्ते=निम्नभागे, लम्बितात्। पादात्= अङ्घ्रेः, च्युता=पतिता। लालाभिः=सृणिकाभिः। "सृणिका स्यन्दिनी लाले"त्यमरः। धूलिधूसरितानि=रजोमिश्राणि। स्वेदैः=घर्मजलैः। आक्लिद्यन्ते=आर्द्रीक्रियन्ते। यातैकयामायाम्=व्यतीतैकप्रहरायाम्।
वणिग्वीथी=वणिजामावासमार्गे। दत्तकर्णः=अवहितश्रोत्रः।

रजत-पट्टिका लगी थी उस पर दिल्ली के सुल्तान का नाम अङ्कित था। तलवार सिर के पास ही अलग रखी थी। उसका एक पैर चबूतरे के बाहर लटक रहा था और उस पैर का जूता नीचे गिर गया था। उसके मुँह से निकली लार से उसका हाथ गीला हो रहा था और उसके धूलधूसरित गन्दे काले कपड़े पसीने से गीले हो रहे थे। उसे देखकर कुछ हँसते हुए से महादेव ने मन ही मन 'यह मूर्ख एक पहर रात बीतते ही सो गया' कह कर, धीरे से उसकी पगड़ी और तलवार उठा ली।

उसके बाद दाहिनी ओर की वणिकों की गली में प्रवेश करके कुछ दूर चलते ही महादेव को पीछे से किसी की पदचाप सुनाई दी। कान लगा

संशयितवान् यत्—किमेतदपहरन्तं मां कोऽप्यद्राक्षीत् ?

अथ दिल्लीश-नामाङ्कित-रजत-पट्टिकामादाय कक्ष-गुटिकायां संस्थाप्य, उष्णीषिकामेतामेकस्यां गवाक्षिकायामुत्क्षिप्य खड्गं कोषाभिस्सार्य स्वयमेकस्मिन् निबिडान्धकारे कोणे परिपन्थिनः पन्थानमवेक्षमाणः समस्थित। ततो मुहूर्त्तं यावन्नाश्रूयत कोऽपि ध्वनिः; निपुणं निरीक्षमाणेनापि च नाऽऽलोकि कश्चन जनः।

ततस्तु नैज एव भ्रम इति विभाव्य पुनरग्रे प्रातिष्ठत, न्यविशत च वीथिकातो वीथिकाम्। तावदकस्माद् वामत उपवीथिकायामेव कस्यचन जागरूकस्य, 'जाग्रत ! भो जाग्रत ! सन्तमसमिदं निबि-

अपहरन्तम् = मुष्णन्तम्। अद्राक्षीत् = दृष्टवान्।

कक्षगुटिकायाम् = बाहुमूलस्थापितलघुपोटलिकायाम्। गवाक्षिकायाम् = वातायनिकायाम्। कोषात् = असिरन्धात्। निबिडोऽन्धकारो यस्मिन् तादृशे = घनतमसि। कोणे = गृहैकदेशे, अवेक्षमाणः = प्रतीक्षां कुर्वन्। समस्थित = स्थितोऽभूत्। नैजः = स्वीयः। भ्रमः = भ्रान्तिः। न्यविशत = प्रविष्टः। उपवीथिकायाम् = उपपदव्याम्। जागरूकस्य = जागरण-

कर ध्यान देकर, उन्होंने संदेह किया कि 'इसकी पगड़ी और तलवार चुराते हुए मुझे किसी ने देखा तो नहीं है।'

तदनन्तर वे उस रजतपट्टिका को—जिस पर दिल्ली सुल्तान का नाम अङ्कित था—लेकर काँख (बगल) में दबी पोटली में रख कर, उस पगड़ी को एक खिड़की में फेंक कर, म्यान से तलवार खींच कर, उस घने अन्धकार में, एक कोने में, दुश्मन के आने की राह देखते हुए खड़े हो गये। जब थोड़ी देर तक कोई आवाज नहीं सुनाई दी और ध्यान से देखने पर भी कोई आदमी नहीं दिखाई दिया तो 'मुझे ही भ्रम हो गया था' यह सोचकर वे आगे बढ़ गये और एक गली से दूसरी गली में प्रविष्ट हो गये। इसी बीच में एकाएक बाईं ओर की गली से 'जागते रहो बड़ा घना अँधेरा है' इत्यादि पदसमूह को बार-बार दुहराने वाले पहरेदार का उच्च स्वर सुनाई

दम्'' इत्याद्याम्रेड्य वदतस्तारध्वनिमश्रौषीत्। मा स्म मामीक्षिष्टेति च दक्षत एकामुपवीथिकां प्राविक्षत्, किन्तु दैवाद् यामिकोऽप्येष घुणाक्षर-न्यायेन तामेव प्रविष्टः।

महादेवस्तु, अग्रे रुद्धो मार्गः, पश्चाच्चोच्चैश्चीत्कुर्वन यामिकहतकः समायातीति कान्दिशीकः, मार्गान्तरमलभमानः, उच्चामेकां वेदिकामारुह्य, निष्कोष निस्त्रिंश-हस्तः सतर्कः समतिष्ठत। तावत् प्रहरी तु तथैवाऽऽम्रेडमाम्रेडं तार-स्वरेण रटन्, पार्श्वस्थ-गृहिणां च कपट-क्षुत डक्कार-च्छिक्काः शृण्वन्, कर-कलित-काच-मञ्जूषा-

शीलस्य। आम्रेड्य = द्विस्त्रिरुद्घुष्य। तारध्वनिम् = उच्चैः शब्दम्। मा स्म मामीक्षिष्ट = मा स्म मामवलोकयत्, "माङि लुङ्"। दैवात् = अदृष्टात्।
चीत्कुर्वन् = चीत्कार कुर्वन्। कान्दिशीकः = भयद्रुतः। मार्गान्तरम् = अन्य पन्थानम्। निष्कोषनिस्त्रिंशहस्तः = नग्नखड्गकरः। सतर्कः = सावधानः। पार्श्वस्थगृहिणाम् = समीपस्थगृहस्थानाम्। कपटेन=व्याजेन, क्षुतादयः। क्षुतम् = कासः। 'खासना'' इति हिन्दी। छिक्का = "छींक" इति भाषायाम्। करे=हस्ते, कलिता=

दिया। महादेव उस आवाज को सुनकर, इस आशङ्का से कि वह पहरेदार उन्हें देख न ले, दाहिनी ओर की एक गली में प्रविष्ट हो गये, किन्तु संयोग से वह पहरेदार भी घुणाक्षर न्याय से उसी गली मे आ गया।

महादेव ने यह देखकर कि (यह गली आगे जाकर समाप्त हो जाती है अर्थात्) आगे रास्ता नहीं है और पीछे से यह पहरेदार जोर-जोर चिल्लाता हुआ चला आ रहा है, भागना चाहा, पर कोई दूसरा रास्ता न मिलने पर वे एक ऊंचे चबूतरे पर चढ़कर, हाथ मे नंगी तलवार लेकर सावधान होकर खड़े हो गये। उसी प्रकार बार बार उच्चस्वर से पुकारता हुआ, समीप के घरों में रहने वाले लोगों की खाँसने, डकारने और छींकने की बनावटी आवाजें (जिन आवाजों के बहाने वे उस पहरेदार को अपने जागते रहने की *प्रतीति कराते थे) सुनता हुआ, हाथ में ली हुई काचमञ्जूषा(लालटेन)के अन्दर*

न्त-स्थ-दीप-प्रकाशेन पादाग्रस्थ-हस्त-चतुष्टयमात्र परिमाणामिव भुवं पश्यन् अलसनयनः, "कदेयं होरा समाप्नुयात् ? कदा वा गत्वा शयीय ?"—इतीव चिन्तयन् महादेवाध्युषित-वेदिकाया दूरादेव निवृत्तः। महादेवस्तु "नैतस्य जीवनमधुना समाप्तम्, चिरायुरेषः" इति मनस्येव निर्धारयन्, पुनर्मार्गान्तरं प्रविश्य, झटिति आकुलाभ्यामिव पद्भ्यां गच्छंस्तडागमेकमाससाद। यत्र चोच्चावचायां भुवि भग्न-मन्दिरेष्वेकं शिव-मन्दिरमिव प्रविश्य, "अस्ति कश्चिदत्र संन्यासी ?" इत्यपृच्छत्। ततस्तु तस्मादेवस्त एव यवन-भिक्षुः, अपरौ च द्वौ संन्यासिनौ निर्गतौ। तैश्च सह

धारिता, या काचमञ्जूषा = रक्तवर्त्तिका, तदन्तः स्थितस्य = तदन्तराल-वर्त्तमानस्य, दीपस्य प्रकाशेन। पादाग्रस्थम् = पुरो विद्यमानम् हस्तचतुष्टयमात्रपरिमाण यस्यास्तादृशीम् = चतुर्हस्तमिताम्। अलसे = निद्रातुरे, नयने यस्य सः। होरा = घण्टा। निर्दिष्टकाल इत्यर्थः। समाप्नुयात् = समाप्तिं गच्छेत्, शयीय = स्वापं कुर्याम्। न समाप्तम्, अन्यथा समीपमागमिष्यत्। तडागम् = जलाशयम्। उच्चावचायाम् = निम्नोन्नतायाम्। शिवमन्दिरमिव, कतिपयचिह्नानुमेयशिवमन्दिरत्वम्। अत एवेवकारसार्थक्यम्।

जल रहे दीपक के प्रकाश में अपने पैरों के पास की केवल चार हाथ भूमि को देखता हुआ, उनींदे नेत्रों वाला, 'कब घण्टा बीते ( मेरी ड्यूटी समाप्त हो) और मैं जाकर सोऊँ' यह सोचता हुआ सा वह पहरेदार भी जिस चबूतरे पर महादेव खड़े थे उसके पास न जाकर, दूर से ही लौट गया।

महादेव, मन ही मन, "इसका जीवन अभी समाप्त नहीं हुआ है, यह दीर्घायु है" ऐसा सोचते हुए, फिर दूसरे रास्ते में प्रविष्ट होकर, तत्क्षण, घबराये हुए से, लड़खड़ाते पैरों से चलते हुए,एक तालाब के पास पहुँचे। वहाँ की ऊँची-नीची भूमि में, अनेक टूटे मन्दिरों मे से शिव मन्दिर के समान प्रतीत होने वाले एक मन्दिर में जाकर उन्होंने "यहाँ कोई सन्यासी है"! ऐसा पूछा। उसके बाद उस मन्दिर से एक तो वही मुसलमान फकीर

तत्रैवैकस्मिन् पाषाणे उपविश्य बहुश आलप्य एकेनैवं समालपत्-

महा०—उद्वाहः कदा भविता ?

संन्या०—श्वः ।

महा०—अथ चरयात्रा-समयः कः ?

सन्या०—यातैक-यामायां यामिन्याम् ।

महा०—कति सहचरा अनुमता नगराधिकारिभिः ?

संन्या०—वाहनाद्यतिरिक्तास्त्रिंशत् ।

महा०—भद्रम्, वयमपि सह योक्ष्यामः ।

तावदकस्मात्, महादेवस्य कण्ठमिव लक्ष्यीकृत्य क्षिप्तः किञ्चिदेव लक्ष्यभ्रष्टः, कश्चिद् भयानकभल्लः स्कन्धे निपपात बाण एकः। स्कन्धस्योत्तरीयवस्त्रे ओतप्रोतमिवैनमालोक्य यावत् सर्वे

---

एकेन, साकमिति शेषः । विनाऽपि सहार्थशब्दयोग तृतीयेति 'वृद्धो यूना' निर्देशबलेन ।

योक्ष्यामः = सम्मिलिता भविष्यामः । भयानकभल्लः = तीक्ष्णाग्रभागः । बहुव्रीहिः । स्कन्धे तिष्ठतीति स्कन्धस्य ताद्दशञ्चोत्तरीयवस्त्रम् = उपरि धारणीय प्रावरणम्, तस्मिन् । ओतप्रोतम् = विद्धानुविद्धम् ।

---

और दो अन्य सन्यासी निकले । महादेव ने उनके साथ वहीं एक शिला पर बैठकर उन दोनों सन्यासियों में से एक से इस प्रकार बातचीत की ।

महादेव—शादी कब होगी ?

संन्यासी—कल ।

महादेव—बारात जाने का समय क्या है ?

संन्यासी—रात का एक पहर बीत जाने पर ।

महादेव—कोतवाल ने कितने लोगों को साथ जाने की अनुमति दी है ?

संन्यासी—वाहन चलाने वालों को छोड़कर तीस व्यक्तियों को ।

महादेव—हम लोग भी साथ हो लेंगे ।

तब तक अकस्मात्, मानो महादेव के गले को निशाना बनाकर फेंका

सचकितमुत्तिष्ठन्ति; तावच्छक्तिरप्येका महादेव-वक्षस्थलं चुचुम्ब। ताञ्च कञ्चुकान्तःस्थित-वर्म्माघातेन सझणत्कारं परतः पतितामालक्ष्य यावत् ते पश्यन्ति, तावद् धृतखड्गमेकं प्रांशुं पिचण्डिलं यवनमपश्यन्।

स च—"तिष्ठ रे महाराष्ट्र-कुल-लाञ्छन! कपट-दूत! सर्वां शृणोमि ते दुर्वृत्त-वार्त्ताम्। किन्तु चान्द्रखाने जीवति न त्वादृशा जम्बुक-वराकाः कृतकार्या भवन्ति" इत्याक्ष्वेड्य सचन्द्रहासः श्येन

सचस्तिम्=साश्चर्यम्। शक्तिः="नेजा" इति, "बरछी" इति वा भाषा। कञ्चुकान्तः स्थितम्=चोलकान्तर्निहितम्, यद् वर्म=कवचम्, तदाघातेन सझणत्कारम्=झणत्कारशब्दसहितं यथा स्यात्तथा धृतखड्गम्=गृहीतासिम्। प्रांशुम्=प्रोन्नतम्। पिचण्डिलम्=तुन्दिलम्। "तुन्दिलः-स्तुन्दिभस्तुन्दी बृहत्कुक्षि पिचण्डिल." इत्यमरः।

दुर्वृत्तवार्त्ताम्=दुर्व्यवहारवृत्तान्तम्। 'दुर्वृत्त' इति पृथक् सम्बोधनं वा। जम्बुकवराकाः=दयनीयशृगालसदृशाः। भवन्ति "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा"। सचन्द्रहासः=सासिः। श्येन इव=शशादन इव।

गया एक तीखी नोक वाला भयानक बाण थोड़ा सा लक्ष्य भ्रष्ट होकर अर्थात् निशाने से थोड़ा सा हटकर महादेव के कन्धे के ऊपर गिरा। कन्धे पर डाले गये दुपट्टे से उलझ या फँस से गये उस बाण को देखकर, आश्चर्य चकित होकर, सभी लोग उठ ही रहे थे कि एक बरछी भी महादेव के वक्षस्थल में आ लगी। वह कुर्ते के अन्दर पहने गये कवच से टकराकर झन् झन् शब्द करती हुई दूसरी ओर जा गिरी। वे लोग उसे देख ही रहे थे कि हाथ मे तलवार लिये हुये एक लम्बा तुन्दिल (बड़े पेट वाला) मुसल्मान दिखाई पड़ा और उसने, "ठहर रे! महाराष्ट्र कुल के कलङ्क! कपट पूर्वक दूत का वेष धारण करने वाले! मैं तेरी सारी कुचेष्टाओं की बातों को सुन चुका हूँ; किन्तु चाँद खाँ के जीवित रहते हुये तुम्हारे समान क्षुद्र सियार अपने कार्य मे सफल नहीं होंगे," यह कहकर,

इवाभिपत्य खड्गं तद्वाम-बाहौ प्राक्षिपत्।

परं महादेवस्तु न 'टिड्ढाणम्' पण्डितः, किन्तु युद्ध-पण्डितः, खड्ग-विद्यायां च तथा निष्णातोऽस्ति, यथा महाराष्ट्र-देशे एतस्य परस्सहस्राः शिष्या अपि निज-निस्त्रिंश-बलेन रिपूणां शतेन सह योद्धुमभिमन्यन्ते। यद्यपि पाञ्चालाः सैन्धवाः मारवाः राजपुत्र-देशीया अपि च असि-चालन-विद्यायां जगत्प्रसिद्धाः सन्ति, तथा च निपतन्ति तेषां प्रबला असयः यथा सुबहून् कदलीस्तम्भान् क्रमेलक-पादास्थीनि, किमधिकं लोह-दण्डानपि च ते सकृदसि-

"अथ शशादनः। श्येनः पत्री" त्यमरः। उपमालङ्कारः।

टिड्ढाणम्पण्डितः="टिड्ढाणम्"......इति समग्र सूत्रं डीब्विधायकं कण्ठेघोषयन्। ईदृक्सूत्रमात्ररटनरतः पण्डितोऽमन्दैश्चर्यते, अयं न तादृशशुष्कपण्डित इत्याकूतम्। युद्धपण्डितः=सङ्ग्रामविधाभिज्ञः। निष्णातः=कुशलः, "निनदीभ्यां स्नातेः कौशले"। रिपूणां शतेन सह, एकाकीति शेषः। अन्यथा परस्सहस्राणां रिपुशतेन युद्धकरणे किं वैशिष्ट्यमाश्चर्यं वा। अभिमन्यन्ते=अभिमानं वास्तविकं कुर्वन्ति। पाञ्चालाः=पञ्चालदेशवासाः। सैन्धवाः=सिन्धुदेशीयाः। मारवाः=मरुदेशीयाः। सुबहून्=अत्यधिकसंख्याकान्। क्रमेलकपादास्थीनि=उष्ट्रचरणकीकसानि। सकृदसिक्षेपणेन=एकवार खड्गप्रहारेण। निहृन्त-

गरज कर, तलवार लेकर, बाज पक्षी की तरह झपट कर मार्टिन की बाई भुजा पर तलवार चला दी।

किन्तु महादेव 'टिड्ढाणम्' के पण्डित नहीं अपितु युद्ध के पण्डित हैं। वे तलवार चलाने की विद्या में इतने निपुण हैं कि महाराष्ट्र देश में उनके हजारों शिष्य भी अपने को, केवल अपनी तलवार के बल से अकेले ही सैकड़ों शत्रुओं से युद्ध कर सकने में समर्थ मानते हैं। यद्यपि पाञ्चाल, सिन्धु, मारव और राजपूताना के वीर भी तलवार चलाने की कला में संसार भर में प्रसिद्ध हैं, और उनकी प्रबल तलवारें इस प्रकार चलती हैं कि अनेक कदलीस्तम्भों, ऊँटों के पैरों की हड्डियों, अधिक क्या कहा जाये लोहे की छड़ों को भी वे एक ही बार में

क्षेपणेन निकृन्तन्ति, परं झटितिकारितेयं महाराष्ट्राणामेव। येऽतित्वरतया चन्द्रहास-चालनपरा हैहया इव बहुबाहवः समालोक्यन्ते। सर्वश्चैष महाराष्ट्र-देशीय वीरता-महिमा शिववीरकृत एवेति सोऽयं चञ्चल-चपला चमत्कारमिव चपलस्वरु सारेणेव सृष्टं कल्पान्त-सप्तजिह्वस्यैवैकं जिह्वा-विशेषं निज कर कलित महाचन्द्रहासं तथा प्राहिणोद्, यथा चान्द्रखानस्यासिं कन्धरां च एकेनैवाऽऽघातेन द्विरकरोत्। उक्तवांश्च यद्-"अरे रे शास्तिखान!

न्ति = खण्डयन्ति। झटितिकारिता = शीघ्रकरणम्। अतित्वरतया = नितान्तशीघ्रतया। हैहया इव = कार्त्तवीर्या इवेत्युपमा। सहस्र बाहवो हि कार्तवीर्यस्याऽऽसन्। बहुबाहवः=अनेकभुजा। महाराष्ट्रदेशीयाना वीरताया महिमा = महत्त्वम्। चञ्चलचपलाचमत्कारमिव = चपलविद्युद्विस्फुरणमिव। चपलश्चासौ स्वरुः= वज्रम्, "शतकोटि स्वरुरि"त्यमरः, तस्य सारेण = तत्त्वांशेन। सप्त जिह्वा यस्य स सप्तजिह्वः = दहनः, ताश्च—

> काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
> स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलिह्यमाना इति सप्त जिह्वाः॥

इति मुण्डके प्रसिद्धाः। कल्पान्ते सप्तजिह्वस्येति विग्रह। कल्पान्तविशेषणेन भीषणताऽऽधिक्य प्रतिपादितम्। एकम् = अद्वितीयम्। जिह्वा-

काट डालते हैं, टुकड़े टुकड़े कर देते हैं, किन्तु क्षिप्रकारिता ( तेजी से तलवार चलाने की निपुणता ) तो महाराष्ट्र के वीरों की ही विशेषता है, जो अत्यन्त शीघ्रता से खड्ग चलाने के कारण कार्तवीर्य की भाँति सहस्रबाहु दिखाई देते हैं। महाराष्ट्र देश की इस सारी वीरता की महिमा का श्रेय शिवाजी को ही है।

महादेव पण्डित ने अपने हाथ में ली हुई चञ्चल बिजली की चमक के समान, मानो चपल वज्र के सार भाग से निर्मित, प्रलय कालीन अग्नि की ( सात जिह्वाओं में से एक ) जिह्वा के समान, भीषण तलवार, इस प्रकार चलाई कि एक ही प्रहार में चाँद खाँ की तलवार और गर्दन के दो टुकडे कर दिये। फिर महादेव बोले—'अरे रे शाइस्ता खाँ! तूने मिथ्या तिरस्कार

मिथ्या-तिरस्कारेणैवाद्य यवन-वीर-श्मश्रूपममेतं चान्द्रखानं धर्म-राजाध्वन्यद्धवनीनं कारितवानसि। एक एवाऽऽसीदेष त्वत्पार्श्वे विचार्यकारी नीतिज्ञश्च । तदस्मिन् मदसिविलीढे को नाम कठिनो वारवधू-कर-शराव-चुम्बन-चञ्चुरस्य तव विजयः ?" —इति ।

तदालोक्य च चकितेनेव यवन-भिक्षुणा कथितं परमेष विघ्न इव विभात्यस्मद्विवाहोत्सवस्य; यतः प्रमुखोऽयं राजसभायाम्, श्व एवैतद्विषये घण्टा घोषो भविष्यति ।

---

विशेषमिवेत्युपमा । निजकरकलितम् = स्वहस्तधारितम् । प्राहिणोत्= प्रक्षिपत् । असिम् = चन्द्रहासम् । कन्धराम् = ग्रीवाम् । उत्थिताहस्तस्थितासिना साकं ग्रीवान्तर्नेन सुमहद्दैलक्षण्यमसिचालने प्रदर्शितम् । द्विरकरोत्=खण्डद्वयमकार्षीत् । अरे रे शास्तिखान ! बुद्ध्या सन्निधापितस्य तस्य सम्बोधनमानना । यवनवीराणाम् = यवनभटानाम्, श्मश्रूपमम् = ओष्ठस्यलोमतुल्यम् । अतिप्रधानमित्यर्थः। "यवनवीरों की मूँछ के समान" इति हिन्दी । धर्मराजाध्वनि=यममार्गे । अध्वनीनम्=पान्थम् । विचार्यकरोतीति तथाभूतः । मदसिना=मत्खड्गेन, विलीढे = आस्वादिते । मारित इति यावत् । वारवधूनाम्=वेश्यानाम्, करस्थितानां शरावाणाम् = मद्यभाण्डानाम्, चुम्बने = आस्वादने, चञ्चुरस्य=चपलस्य । वेश्याभिः समं मद्यपानाऽऽसक्तस्येति यावत् ।

---

करके ही आज, यवन वीरों की मूँछ के समान इस चाँद खाँ को यमराज के पथ का पथिक बनवा दिया । इसके मेरी तलवार द्वारा चाट लिये जाने पर, वेश्याओं के हाथों के प्यालों को चूमने मे चपल तुझ को जीतने मे अब कठिनाई ही क्या है ?

यह देखकर चकित से यवन भिक्षु ने कहा—"परन्तु यह तो हम लोगों के विवाहोत्सव में विघ्न सा प्रतीत होता है, क्योंकि यह (चाँद खाँ) राज-सभा का प्रमुख सभासद था और कल ही इसके विषय में डौंडी (डुग्गी) पिटेगी ।

श्रुत्वैवद् महादेव उवाच—'मा स्म भूद् विचिकित्सा काऽपि। अथायं राजसभायामनादृतः कानिचिद्दिनान्यगच्छत्यप्यस्मिन् न कोऽपि सन्धेक्ष्यति एतस्य जीवन-विषये। तत्सत्वरमेष आसन्नेऽस्मिन् शुष्क-कूपे निक्षेपणीयः, उपरिष्टाच्चास्य पाषाण-कर्पर-मृत्पिण्ड-खण्डान् निपात्य, तथाऽऽच्छादनीयो यथा निपुणं निरीक्षणेनापि न स्याच्छक्योऽवलोकयितुम्।'

तदाकर्ण्य च सपद्येव ते तथा विदधिरे। महादेवश्च शनैः शनैः पुनरप्यालप्य, कतिभिश्चिच्छोणित-शोण-बिन्दुभिरङ्कितं दक्षिणबाहुमूलमुत्तरीयेणाऽऽवृत्य पुनर्मार्गाद् मार्गान्तरं प्रविशन्, घण्टापथ-

विचिकित्सा = संशयः। अनादृतः = तिरस्कृतः। सन्धेक्ष्यति = सन्देह करिष्यति। आसन्ने = समीपस्थे। पाषाणानाम् = प्रस्तराणाम्, कर्पराणाम्=शकलितमृद्भाण्डानाम्, मृत्पिण्डानाम्=लोष्टानाम्, खण्डान्। शोणितशोणबिन्दुभिः = रक्त-रक्त(वर्ण)पृषतैः। अङ्कितम् = चिह्नितम्। उत्तरीयेण=प्रावरणेन। आवृत्य = आच्छाद्य। घण्टापथम् = राजमार्ग-

यह सुनकर महादेव बोला—

'आप किसी प्रकार का सन्देह न करें। आज यह राजसभा में अपमानित किया गया है, अतः यदि यह कुछ दिनों तक राजसभा में नहीं भी पहुँचेगा, तो भी कोई इसके जीवित होने के विषय में सन्देह नहीं करेगा। इसे शीघ्र ही इस समीपस्थ सूखे कुएँ में फेंक देना चाहिये और इसके ऊपर पत्थर, खपड़े और मिट्टी के ढेले डाल कर इसे इस प्रकार ढक देना चाहिये कि अच्छी तरह से देखने पर भी इसे देखा न जा सके।'

यह सुन कर उन सब ने तत्क्षण वैसा ही किया। तदनन्तर महादेव (उन सब से) पुनः धीरे-धीरे बातचीत कर के, अपने दाहिने कन्धे को—जिस पर खून की कुछ लाल बूँदों के धब्बे पड़े थे—उत्तरीय से ढक कर, पुनः एक रास्ते से दूसरे रास्ते में प्रविष्ट होते हुए, राजमार्ग पर आकर, बहिर्द्वार की ओर चलते हुए, किसी के द्वारा शङ्का किये जाने (टोके जाने पर)

मासाद्य, गोपुराभिमुखं प्रचलन्, केनचित् सन्दिह्यमानश्च शास्तिखान हस्ताक्षराङ्कितं पत्रं दर्शयन्, कुशलेन गोपुराद् बहिराजगाम। अग्रे एव कुटपटलीषु निलीयमान एव घनच्छायस्यैकस्य वट-वृक्षस्य तले मर्मर-श्रवण-स्तब्ध-कर्णम् अनिमेष-नयनाभ्यां सम्मुखमवलोकयन्तम् अश्वमेकमारूढं वीरवेषमात्मानं प्रतीक्षमाणं गौरसिंहमद्राक्षीत्। तत्समीपे च दासेरकेणैकेन गृहीत-वल्गमपरमपि निजार्थमानीतमाजानेयमपश्यत्। ततस्तेन किञ्चिदालप्य, अविगणित-परिश्रमः स्नातोत्थित इव स्फूर्ति स्फुरित-गात्रोऽनूनोत्साहः

---

विशेषम्। गोपुराभिमुखम्=अनुपुरद्वारम्। कुटपटलीषु=वृक्षसमूहेषु। घना = निबिडा, छाया यस्य तस्य। मर्मरस्य = शुष्कपर्णध्वनेः, श्रवणेन= आकर्णनेन, स्तब्धौ=शङ्कूभूतौ, कर्णौ यस्य तम्। अनिमेषनयनाभ्याम्=निमेषपतनोत्पतनशून्यनेत्राभ्याम्। आत्मानम् = महादेवपण्डितरूपं शिववीरम्। प्रतीक्षमाणम् = प्रतिपालयन्तम्। दासेरकेण - दास्या अपत्यं पुमान् दासेरकस्तेन भृत्येन। गृहीतवल्गम् = धारितरश्मिकम्। आजानेयम् = कुलीनमश्वम्। अविगणितपरिश्रमः = अज्ञातखेदः। पूर्वं स्नातः पश्चादुत्थित इति स्नातोत्थितः। "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेने"ति समासः। स इवेत्युपमा। स्फूर्त्या = स्नानादिजन्यलाघवविशेषेण, स्फुरितम्=चञ्चलता गतम्, शीघ्रकार्यकरणशीलता प्राप्तम्, गात्रम् = शरीरं यस्य सः। अनूनः=अधिकः, उत्साहो यस्य

---

शाइस्ता खाँ के हस्ताक्षरों से युक्त पत्र दिखाते हुए, सकुशल गोपुर के बाहर आ गए। वृक्षों के झुरमुट में घुसते ही आगे ही, एक घनी छाया वाले वटवृक्ष के नीचे पत्तों की मर्मरध्वनि सुनने के कारण चौकन्ने होकर निर्निमेष नेत्रों से सामने देख रहे, एक घोड़े पर चढ़े हुए, वीरवेष धारण किये हुए गौरसिंह को अपनी प्रतीक्षा करते हुए देखा। उन्हीं (गौरसिंह) के समीप, अपने (अर्थात् महादेव के) लिये लाये गये एक दूसरे घोड़े को देखा, जिसकी लगाम एक नौकर ने पकड़ रखी थी। तदनन्तर गौरसिंह से कुछ

स्मयमानमुखो वामहस्तेन रश्मिं संयम्य दक्षिणेन ग्रीवामालम्ब्याऽविलक्षितोत्प्लवनः सपदि तत्पृष्ठमारूढः। 'रात्रौ कश्चनास्मत्पण्डितः समागमिष्यतीति पत्रद्वारा प्राप्तास्मत्सन्देशः शिविरस्थो यशस्विसिंह-महाराजः पण्डितं प्रतीक्षते' इति कुशलप्रश्नानन्तरं गौरेणोक्तश्च, तेन सह मन्दं मन्दमालपन् कृतायामोऽप्यनायस्तः तामेव दिशं प्रातिष्ठत।

\+ \+ \+

तत्र राजपुत्रराजो यशस्विसिंहः शिविरान्तः पट-भवने

---

स्मयमानमुखः = ईषद्धास्ययुक्तमुखः। रश्मिम् = वल्गाम्। संयम्य = नियम्य। आलम्ब्य = धृत्वा। अविलक्षितम् = अनवलोकितम्, उत्प्लवनम् = उत्प्लुत्य गमनम्, यस्य सः। यशस्विसिंहमहाराजः = 'यशवन्तसिंह' इति नाम्ना ख्यातो जोधपुर-शासकः। कृतायामोऽपि = कृतपरिश्रमोऽपि। अनायस्तः = अश्रान्तः। तामेव दिशम् = यशस्विसिंहस्थितिं दिशम्।

राजपुत्रराजः = "राजपूताना" नाम्ना प्रसिद्धस्य देशस्य नरेशः।

---

दाब करके, थकान का अनुभव न करते हुए, स्नान करके उठे हुए थे, स्फूर्ति से फड़कते हुए अङ्गों वाले उत्साह से परिपूर्ण महादेव, मुस्कराते हुए, बायें हाथ से लगाम को सँभाल कर, दाहिने हाथ से घोड़े की गर्दन थामकर इस प्रकार कूद कर उसकी पीठ पर झट सवार हो गये कि कोई देख भी न पाया।

कुशल आदि पूछने के बाद, गौरसिंह के यह कहने पर कि "पत्र द्वारा हमारा यह सन्देश पाकर कि रात्रि में हमारे एक पण्डित जी आपसे मिलने आयेंगे, महाराज यशवन्त सिंह हमारे पण्डित जी की शिविर में प्रतीक्षा कर रहे हैं", उसके (गौरसिंह के) साथ धीरे-धीरे बातचीत करते हुए, परिश्रम कर चुकने के बावजूद भी, बिना थकान का अनुभव किये हुए, उसी (शिविर की) दिशा में चल दिये।

उधर शिविर में एक तम्बू में मसनद का सहारा लेकर बैठे हुए राज-

भ्यन्तरे कलितोपबर्हाश्रयः, केनचिद् भृत्येन मन्दं मन्दं वीज्यमानः, उपधान-स्थापित-बाहुमूले कमल-दल इव दक्ष-कर-तले, ईषदरुण-पाण्डुरं सायंसमय-मृगाङ्क-मण्डलमिव वदनं संस्थाप्य, पुरःस्थित-खड्गमालोकमालोकं वामहस्ततर्जन्यङ्गुष्ठाभ्यां च वामश्मश्रुं परिमृजन्नेवमचिन्तयत्—

'समायातं घोरं कलियुगम्, नात्र संशयः। यैराततायिदुर्वृत्तैर्दृशाऽप्यवलोकितमन्नादि अस्मत्पूर्वजैः शुनकेभ्यो निर्दीर्णम्, तेऽधुना साञ्जलि जयजयध्वनिपुरस्सरमभिवाद्यन्ते। नेभ्नक्षमंशार-मण्ड-

---

शिबिरस्य = सेनानिवासस्य, अन्तः = मध्ये, यानि पटभवनानि = तम्बू ना, तेषु। कलितोपबर्हाश्रयः = कृतोपधानावलम्बः। वीज्यमानः = व्यजनवायुना सेव्यमानः। उपधाने स्थापितं बाहुमूलं यस्य तस्मिन्। कमलदल इव = कमलपत्र इव कनम्नन्तम्। दक्षकरतले = दक्षिणहस्ततले। ईषदरुणपाण्डुरम् = किञ्चिदरुणपीतम्। सायंकालिकः शशाङ्कः उभाभ्यामपि वर्णाभ्यां भूषितो भवत्येव। मुखञ्च क्रोधेन रक्तम्, खेदेन च पीतम्। सायंसमय-मृगाङ्क-मण्डलमिव = सूर्यास्तवेलोदितचन्द्रबिम्बमिव। वदनम् = आननम्। आलोकमालोकम् = दर्शं दर्शम्। पुनः पुनः। 'नित्यवीप्सयोरि'ति द्वित्वम्। तर्जनी चाङ्गुष्ठश्चेति द्वन्द्वः। वामहस्तस्य तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्याम्।

---

पूना-नरेश जसवन्त सिंह—जिन्हें एक नौकर धीरे-धीरे पंखा झल रहा है—(दाहिने) कन्धे को मसनद पर टिकाए हुए, दाहिने हाथ की कमल पत्र के समान हथेली पर, कुछ अरुणिमा लिये हुए पीले, सन्ध्याकालीन चन्द्रमण्डल के समान मुख को रखे हुए, सामने रखी हुई तलवार को देख-देख कर बायें हाथ की तर्जनी और अँगूठे से बाईं मूँछ के अग्रभाग को स्पर्श करते (मूँछ पर ताव देते) हुए, इस प्रकार सोच रहे थे—

'घोर कलियुग आ गया है, इसमें सन्देह नहीं। जिन गये गुजरे आततायियों की आँखों से देखे (मात्र) गये अन्नादि तक को भी हमारे पूर्वज कुत्तों को दे दिया करते थे, उन्हीं का अब हाथ जोड़कर जय-जय की ध्वनि के साथ अभिवादन किया जाता है, जिन्हें हम लोग रहने के लिये

लेऽस्माभिर्वासभूमिरदीयत, तेषां विजयपताका अधुना वङ्गेषु, कलिङ्गेषु, अङ्गेषु, मगधेषु, मत्स्येषु, मैथिलेषु, काशीषु, कोशलेषु, कान्यकुब्जेषु, चोलेषु, पाञ्चालेषु काञ्चीषु, शौरसेनेषु, सिन्धुषु, सौराष्ट्रेषु च दोधूयन्ते । येऽस्मदिष्टदेव-निन्दकाः सजिह्वाच्छेद-मस्माभी राज्याद् निरवासिषत, तेऽद्य जीवत्स्वेव अस्मासु काश्या-

---

यद्यपि "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानामि" त्येकवद्भाव समपेक्षितस्तथाऽपि सर्वद्वन्द्वस्थलीयैश्वद्भावस्य वैकल्पिकत्वमतमनुसृत्येदमभिहितमिति न च्युत-संस्कृतिदोषोद्भावन युक्तम् । चरस्य परिमृजमितरनेन सम्बन्धः । यामस्म-श्रुयमम्=यामभागीयमुसकेशप्रान्तम् । आततं यथा स्यात्तथा अयितुं शील-मेषामित्याततायिनः—वधोद्यता, "सनद्धे ऽऽततायी वधोद्यते" इत्यमरः ।

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः ॥ इति स्मरणात् ।

दृशाऽप्यवलोकितम्=नेत्रेणापि दृष्टम् । स्पर्शादिस्तु कथैव का । शुनकेभ्यः=कुक्कुरेभ्यः, वितीर्णम्=दत्तम् । चाण्डालादिदृष्टामपानादि-परित्यागस्यापि मानवाद्यभिहितत्वेन "न नीचो यवनात्परः" इति स्मृत्या सर्वथा गर्हितैर्यवनैर्दृष्टान्नानामन्नादीनां सर्वथा भोजनाभाव एव युक्त इति विवेकः । अभिषाद्यन्ते=नमस्क्रियन्ते । चर्मकारमण्डलेषु=पादूकृत्समु-दायेषु । "पादूकृच्चर्मकार स्यादि" त्यमरः, वासभूमि=निवासस्थानम् । इष्टदेवनिन्दकाः=इन्द्राग्न्यादिनिन्दारताः । सजिह्वाच्छेदम्=सरसनो-त्कर्तनम् । न येन पुनरेवमविनयं कुर्युः । निरवासिषत=निस्सारिताः । आपानभूमीकुर्वन्ति=सुरापानशालीकुर्वन्ति । कमला इव श्रिय इत्येपुपमा ।

---

चमारों की बस्ती में जमीन दिया करते थे, उन्हीं की विजयपताकाएँ अब वङ्ग, कलिङ्ग, अङ्ग, मगध, मत्स्य, मिथिला, काशी, कोसल, कान्यकुब्ज, चोल, पाञ्चाल, काञ्ची, शूरसेन, सिन्धु और सौराष्ट्र (देशों या राज्यों) में फहरा रही हैं । अपने इष्टदेव के जिन निन्दकों को हमने जुबान कटवा कर राज्य से निर्वासित कर दिया था, वे ही अब, हमारे जीवित रहते हुए भी,

दिपु मन्दिराणि मर्दयन्ति, तीर्थान्यापानभूमीकुर्वन्ति । कमला इव विमलाचाराः कुलीन-कन्याः कदर्थयन्ति । सगात्र-कम्पं साश्रुपातं सकरुणं "त्रायस्व-त्रायस्वे"ति आम्रेडन-पराणां परम-पूज्यपाद-वेद-विदुषामपि शोणितैर्भुवं शोणयन्ति । अहह ! धिगस्मादृशान् क्षत्रिय-कुलकलङ्कान्; ये तेषां मानवाकाराणां क्रव्यादानां रुधिरैर्देवान् पितॄंश्च न तर्पयामः, अपितु तत्साहाय्य-दानेन स्वधर्म-रक्षण-

---

विमलाचाराः = सदाचारिण्यः । कुलीनानाम् = सद्वंशजातानाम्, कन्याः= अविवाहिता बालिकाः । (प्रायो यवना अविवाहिता एवाग्रहन् बालिका इत्यत एव "अष्टवर्षा भवेद् गौरी" इत्यादिवचांसि धर्मशास्त्रे सम्मेल्य तदानीन्तना बुद्धिमन्तो बालविवाह प्रचारितवन्त इति वेदितव्यम्) । सगात्रकम्पम् = सशरीरवेपनम् । क्रियाविशेषणम् । आम्रेडनपराणाम्=वारं वारं कथयताम् । परमपूज्यपादाश्च ते वेदविद्वांसस्तेषाम् = नमस्करणीयचरणश्रोत्रियाणाम् । भुवम् = धराम् । शोणयन्ति=रक्तां कुर्वन्ति । मानवाकाराणाम् = मनुष्य-शरीरधारिणाम् । क्रव्यादानाम् = आममांसभक्षणतत्पराणाम्, रक्षसाम् । रुधिरैर्देवान् पितॄंश्च न तर्पयामः, एतेषां हननेन देवानाञ्च पितॄणाञ्च महती तृप्तिः स्यादित्येवमुक्तिः । तत्र दोषलेशाभावसूचनाय तु तर्पयाम इत्यभिहितम् । एवं कृते पुण्यमेव भवेदिति वास्तव तत्त्वम् । स्वधर्मरक्षणपरान्=हिन्दुधर्मरक्षानिरतान्, शिवराजप्रभृतीन् । स्व-

---

काशी आदि स्थानों में मन्दिरों को तोड़ रहे हैं और तीर्थों को मदिरालय बना रहे हैं; लक्ष्मी के समान निर्मल आचरण वाली कुलीन कन्याओं को भ्रष्ट कर रहे हैं; काँपते हुए शरीर और अश्रुधार बहाते हुए नेत्रों वाले, करुण स्वर में, "रक्षा करो, रक्षा करो" की रट लगाने वाले, परमपूज्य वेद के विद्वानों के भी रक्त से पृथिवी को रक्तिम बना रहे हैं। हा ! धिक्कार है मेरे समान क्षत्रियकुल के कलङ्कभूत राजाओं को, जो उन मनुष्याकृति राक्षसों (यवनों) के रक्त से देवों और पितरों का तर्पण नहीं करते, प्रत्युत उन्हीं को सहायता प्रदान कर,अपने धर्म की रक्षा में तत्पर अपने ही बन्धुओं

परान् स्वबन्धूनेव चिक्लेशयिषामः। हा! सर्वोऽप्ययमदेशः परतन्त्र एव संवृत्तः। केवलं महाराष्ट्रदेशे स्वातन्त्र्यस्य उद्यानं विकसितमवलोक्यते। अहह! तदप्येतेऽनुदारा भूदारा इव उल्लुलूपन्ति, परन्तु न्यक्कार विषया वयमेव; ये तुच्छानामेषामुच्छृङ्खलानां म्लेच्छहतकानां चाटुकारा इव, किमिदमित्यविगणय्य, प्राप्त-सङ्केता एव स्वबन्धु सर्वस्वमेव कृत्रिम कोप-ज्वालाभिर्दिधक्षामः। अथवा किं कुर्मः? पूर्वजचरणा एवास्माकं महा-महिम-मर्यादामुल्लङ्घिरे। आसीदेव आमे-

बन्धून्=देशभ्रातॄन्। एव=केवलम्। चिक्लेशयिषामः=क्लेशयितुमिच्छामः। परतन्त्रः=पराधीनः। उद्यानम्=वाटिका। विकसितम्=कुसुमितम्। अनुदाराः=उदारताशून्याः। भूदारा इव=वराहा इव। "कोलो भूदार" इत्यमरः। उल्लुलूपन्ति=उल्लवितुमिच्छन्ति। न्यक्कारविषयाः=तिरस्कारपात्राणि। तुच्छानाम् = अतिनीचानाम्। उच्छृङ्खलानाम्=उच्छृङ्खलानाम्। चाटुकारा इव=मिथ्या श्लाघका इव। प्राप्तसङ्केता एव=आदेशप्राप्तिसमकालमेव। कृत्रिमकोपज्वालाभिः, वास्तविकक्रोधकारणाभावादिति भावः। दिधक्षामः=दग्धुमिच्छामः। महामहिम्नाम्=अतितेजस्विनाम्, मर्यादाम्। सीमाम्। उल्लङ्घिरे=अतिचक्रमुः। आमेराधीशः=अम्बराधिपतिः।

को कष्ट देना चाहते हैं। हा! हमारा सारा देश गुलाम ही हो गया है। केवल महाराष्ट्र देश में (ही) स्वतन्त्रता का उद्यान फल-फूल रहा है (विकसित दिखाई दे रहा है)। आह, उसे भी सूर यवन सूअरों की भाँति नष्ट कर देना चाहते हैं। परन्तु धिक्कार के विषय तो हम लोग ही हैं—जो इन तुच्छ, उच्छृङ्खल यवनापसदों के खुशामदियों की भाँति, 'हम यह क्या करने जा रहे हैं' यह विचार किये बिना ही, उनका सङ्केत मात्र पाकर, अपने ही बन्धुओं के सर्वस्व को ही बनावटी क्रोध (रूपी अग्नि) की ज्वाला से जला देना चाहते हैं। अथवा हम लोग ही क्या करें! हमारे पूज्यपाद पूर्वजों ने ही हमारी महामहिमशालिनी मर्यादा का उल्लंघन किया है।

राधीशो वीरवरो महामानो मानसिंह एव; यो बहूनां पैतृकीं पारम्परीणां प्राणाधिक-मूल्यां सर्वस्व-हानेनापि रक्षणीयां धर्मार्थ-काम-मूलभूतां स्वतन्त्रतासम्पत्तिं बलादाच्छिद्य खड्ग-धारासारैरखिलान् आत्मानं चान्धीकृत्येव दुराचार-यवनराज-हस्ते समर्पयति स्म। अथवा कस्तस्य दोषः? क्रूरतमोऽयं कलिः, अभद्राणि भाग्यानि, अभव्यं भाव्यम्, पतनोन्मुखी सम्पत्तिः, विधूतप्रायो धर्मः, ध्वस्ता धीरता चञ्चला चक्रवर्त्तिता, स्रस्ता च

---

पारम्परीणाम् = परम्पराप्राप्ताम् मूलपुरुषक्रमायातामिति यावत्। प्राणाधिकमूल्याम् = जीवनतुल्याम्, आधारभूतामिति यावत्। सर्वस्वहानेनापि = निखिलत्यागेनापि। रक्षणीयाम् = पालनीयाम्। स्वतन्त्रतासम्पत्तिम् = स्वातन्त्र्यलक्ष्मीम्। बलात् = प्रसह्य। आच्छिद्य = सङ्गृह्य। खड्गधारासारैः = असिपतनवर्षैः। अन्धीकृत्येव = विचारविरहितीकृत्येव। अभद्राणि = अमङ्गलानि। अभव्यम् = अशोभनम्। भाव्यम् = भवितव्यम्। पतनोन्मुखी = विनाशप्रवणा। विधूतप्रायः = विध्वस्तकल्पः। चक्रवर्त्तिता = साम्राज्यम्। "चक्रवर्ती सार्वभौमः" इत्यमरः। स्रस्ता = पतिता।

---

"यह आमेर नरेश (जयपुर के महाराज) वीरवर महामानी मानसिंह ही तो थे जो अनेक भारतीयों की पैतृक परम्परा प्राप्त, प्राणों से भी अधिक मूल्य वाली, सर्वस्व खोकर भी रक्षा करने योग्य, धर्म, अर्थ और काम की मूल आधार, स्वतन्त्रता रूप सम्पत्ति को, उन से बल पूर्वक छीनकर, तलवार की धार की मूसलाधार वर्षा से, सभी को तथा स्वयं को भी, अन्धा सा करके, दुराचारी यवन सम्राट् के हाथों मे समर्पित कर देते थे। अथवा, उनका भी क्या दोष है! यह कलियुग महाक्रूर है; हम लोगों का भाग्य अच्छा नहीं है; भविष्य खराब है, हमारी सम्पत्ति पतनोन्मुख है; हमारा धर्म प्रायः नष्ट हो चुका है, धैर्य ध्वस्त हो चुका है, चक्रवर्तित्व चञ्चल

स्वतन्त्रता, तद् महतां विनिन्दनेन व्यर्थोऽयं वदन-मलिनीकारः" इत्यादि बहुशश्चिन्तयत एव तस्य कतिभिश्चिदश्रुबिन्दुभिः श्मश्रुमूलमसिच्यत। यावच्चैष उपधानं परित्यज्य, जानुद्वयं सम्पात्योपविश्य, करपृष्ठाभ्यां नेत्रे सम्मृज्योत्तरीयाञ्चलेन बाष्पमपाकृत्य सम्मुखमवलोकयति, तावदन्यतमः प्रतीहारः प्रविश्य, सजयध्वनि करौ सम्पुटीकृत्य प्रावोचद्–"देव! शिववीर-प्रेषितो महादेव-पण्डितो दिदृक्षतेऽत्रभवतः"। तदूरीकृत्य च, 'ओम्! प्रवेशय' इत्युक्तवति

---

वदनमलिनीकारः = मुखकालिमानयनम्।

श्मश्रुमूलम् = कूर्चिकाग्रम्। असिच्यत = सिक्तमक्रियत। शोकादश्रुपतनमारब्धमिति यावत्। अथ शोकावस्था दर्शयति–यावच्चैष इति। अन्यतमः=अनेकेष्वेकः। सजयध्वनि=जय-शब्दपुरस्सरम्, क्रियावि॰। सम्पुटीकृत्य = संयोज्य। अत्रभवतः = पूजनीयान्। ऊरीकृत्य = स्वीकृत्य।

---

हो गया है और स्वातन्त्र्य समाप्त हो गया है, अतः अपने महान् पूर्वजों की निन्दा करके अपना मुख मलिन करना निरर्थक है।"

इसी प्रकार अनेक बातें सोचते-सोचते उनकी (जसवन्त सिंह की) मूँछों का मूल भाग आँसुओं की बूँदों से सिंच गया (उनकी मूँछें अश्रुसिक्त हो गई)।

महाराज जसवन्त सिंह ने मसनद छोड़कर, दोनों घुटनों को टेक कर, बैठ कर हाथों के पृष्ठ भाग से नेत्रों को पोंछ कर, उत्तरीय के आँचल से आँसुओं को पोंछ कर, सामने देखा ही था, कि प्रतीहार ने प्रवेश करके, 'जय-जय' कहते हुए हाथ जोड़कर निवेदन किया–'देव! शिवाजी के द्वारा भेजे गये महादेव पण्डित आपका दर्शन करना चाहते हैं।' प्रतीहार की बात स्वीकार करके, महाराज जसवन्त सिंह के, 'हाँ, ले आओ' यह कहने पर, प्रतीहार ने भी वैसा ही किया।

महाराजे प्रतीहारोऽपि तथाऽकरोत्। ततः प्रतीहारेण सह प्रविष्ट-मात्रे महादेव-पण्डिते, यशस्विसिंहः प्रणम्य आसन्न स्थानमुपवेशार्थं दक्षकरेण निर्दिष्टवान्। तं च स्वेदात् क्लिन्नवदनमवलोक्य सम्यगुपवीजयितुं व्यजनिनमिङ्गितवान्। तेन वीज्यमानमपगत-परिश्रमं च कुशलादिकमपृच्छत्। स च यथोचितमालप्य विशेष-वार्ता आलपितुं राजप्रश्नं प्रतीक्षमाण इव तस्थौ।

ततस्तयोरेवमभूदालापः।

यशस्विसिंहः—पण्डितवर! महाराष्ट्र-राजस्य पत्रन्तु प्राप्तवानेवास्मि। तत्र तेन यद्यदलेखि तत्तत् पठितवानस्मि। तदधिकं भवतः किं प्रस्तोतव्यमिति निरूप्यताम्।

महादेवपण्डितः-मरुराज! नाहं तत्रभवता किमपि प्रस्तोतुं प्रेषितोऽस्मि, अपि तु शोकं प्रकाशयितुम्।

---

आसन्नस्थानम् = समीपवर्तिदेशम्। "समीपे निकटासन्नावि" त्यमरः। दक्षकरेण = दक्षिणहस्तेन। स्वेदात् = घर्मजलात्। क्लिन्नवदनम् = आर्द्राननम्। उपवीजयितुम् = व्यजनेन सेवितुम्। व्यजनिनम् = व्यजन-चालकम्। इङ्गितवान् = चेष्टया बोधितवान्। अपृच्छत्-पृच्छधातोर्द्विकर्मकत्वात्'''परिश्रम कुशलादिकमित्यत्र न द्वितीया। प्रस्तोतव्यम् = वक्तव्यम्।

---

तदनन्तर प्रतीहार के साथ महादेव पण्डित के प्रविष्ट होते ही, जसवन्त सिंह ने, प्रणाम कर, दाहिने हाथ से सङ्केत करके बैठने के लिये समीपस्थ स्थान की ओर निर्देश किया तथा महादेव पण्डित के मुख को पसीने से भीगा हुआ देखकर पखा झलने वाले को ठीक से पंखा झलने के लिये इशारा किया।

उसके बाद जसवन्तसिंह ने, महादेव पण्डित—जिनको पखा झलने वाला पंखा झल रहा था और जिनका परिश्रम दूर हो गया था—से कुशल वृत्तान्त पूछा।

महादेव पण्डित यथोचित बातचीत करके विशेष बातें करने के लिये, महाराज जसवन्तसिंह के प्रश्न की प्रतीक्षा करते हुये से बैठे रहे। उसके बाद उन दोनों व्यक्तियों में इस प्रकार की बातचीत हुई।

यश० तत् किं पुण्यनगरेण सह प्रधानचिह्न-दुर्गोऽपि हारित इति शोकः ?

महा०-तस्य हस्ते बहवो दुर्गाः सन्ति-इति दुर्गार्थं न खिद्यते।

यश०-अथ किं भारत-चक्रवर्त्तिना दिल्लीश्वरेण युद्धरूपा महती विपदुपतिष्ठते-इति शोकः ?

महा०-क्षत्रियराज ! विपत्समये धीरतात्यागः शिवेन नाभ्यस्तः।

यश०-तत् किमिति शोकः ?

महा०-[ उच्चैर्निरश्वसत् ]

यश०-कथ्यतां कथ्यतां किमिति शोकः ?

---

क्षत्रियराज, क्षत्रिय एव केवल न, राजाऽपि। किमिति=कस्माद्धेतोः।

---

जसवन्त सिंह—पण्डितप्रवर ! महाराज श्री शिवाजी का पत्र तो मुझे मिल ही गया है, उसमें उन्होंने जो कुछ लिखा है वह मैंने पढ़ लिया है, उससे अधिक(आगे) आप जो कुछ कहना चाहते हों कहिये।

महादेव पण्डित—महराज ! महाराज शिवाजी ने मुझे आप के पास कुछ कहने के लिये नहीं अपि तु शोक प्रकट करने के लिये भेजा है।

जसवन्त सिंह—क्या उन्हें पूना नगर के साथ ही मुख्य चाकन दुर्ग के भी हार जाने का शोक है ?

महादेवपण्डित—शिवाजी के हाथ (अधिकार) में अनेक दुर्ग हैं अतः वे दुर्ग के लिये खिन्न नहीं हैं।

जसवन्त सिंह—तो क्या उन्हें इस बात का शोक है कि भारत-चक्रवर्ती दिल्लीश्वर के साथ युद्ध रूप महा विपत्ति उपस्थित हो गई है ?

महादेव पण्डित—क्षत्रियराज ! विपत्ति के समय में धैर्य छोड़ देने का अभ्यास शिवाजी ने नहीं किया है।

जसवन्त सिंह—तो फिर वे शोकग्रस्त क्यों हैं ?

[ महादेव पण्डित ने ऊँची (लम्बी) निःश्वास ली। ]

जसवन्त सिंह—कहिये कहिये, उन्हें किस बात का शोक है ?

महादेव पण्डित—" भगवान् !

महा०-भगवन् ! यः क्षत्रियता धूर्धरः, येन राजन्वतीय भूः, ोऽस्मादृशानामभिमान भाजनम्, यस्मिन् धर्म धुरन्धरा आमह-गृहिलाः, य पीयूष-पूरमिव चक्षुश्चषकैश्चिराय पिपासामहे यः सना-न धर्मरक्षाया एकमात्र शरणम् , यश्च भारतीय वारकुल-मुकुट-मणिः समेवाद्य कदर्य्य हतकानां पाटच्चराणां जाल्माना धर्म ध्वसि-नामतेषां दासपदलाञ्छनमालोक्य शोकाकुलो महाराष्ट्र-राजः !

उच्चैर्निरश्वसन् , महान् शोको यो वाचामगोचर इति दर्शयितु केनाप्यनभिधाय निश्वासग्रहणम्। क्षत्रियतायाः = क्षात्रस्य, निखिलनिरत-क्षणरूपस्य, धुरम् = भार धर्तात्वम्भूत , अनित्यत्वात् 'ऋक्पूरब्धूरि' त्या-दिना समासान्ताभाव. । राजन्वती=सुराजवती, 'राजन्वान् सौराज्ये'। "सुराज्ञि देशे राजन्वानि त्यमरः। अभिमानभाजनम् = अभिमानकार-णीभूत । यस्मिन्, सति । भावसप्तमी । धर्मधुरन्धराः=धार्मिका.। आग्रहग्रहिलाः=धर्मरक्षणासिन । पीयूषपूरम् = अमृतप्रवाहम् । चक्षु-श्चषकैः=पानपात्रामेदता गतैर्नयनै । एकमात्रम् = अद्वितीयम् । भारतीय-वीरकुलस्य=हैन्दवीयशूरसमूहस्य, मुकुटमणिः=मस्तकरत्नम् । पाट-च्चराणाम्=चौराणाम् । जाल्मानाम्=असमीक्ष्यकारिणाम् , धूर्त्तानाम्। दासपदलाञ्छनम् = भृत्यशब्दचिह्नितम् । एतादृशापवादगोचरतामुपगत-

जो क्षत्रियत्व की धुरा को धारण करते हैं, जिनकी उपस्थिति के कारण यह पृथिवी राजन्वती ( अच्छे राजा वाली ) कही जाती है, जिन पर हम जैसे लोगों को अभिमान है, धर्मधुरन्धर ( धर्मात्मा ) व्यक्ति जिनके अत्यधिक आग्रही या पक्षपाती हैं, जिन ( आसेचनक दर्शन महाराज ) को हम नेत्र रूपी प्यालों से पीयूषप्रवाह की भाँति देर तक पीते रहना चाहते हैं, जो सनातन धर्म के एकमात्र रक्षक और शरणस्थल हैं, जो भारतीय वीरों के कुल के मुकुटमणि हैं, उन्हीं को आज इन कायर, चोर, जालिम धर्मध्वसक यवनों के दासपद से लाञ्छित हुए देखकर महाराष्ट्र राज शिवाजी शोकाकुल हैं।"

ततो यशवन्तसिंहस्तु स्फुटमेष मां धिक्करोतीति किञ्चित् कुपितः, सतां न्यक्करणीयमेव भारतविद्रोहि यवन-वशंवदतास्वार्थं करोमीति ग्लानः, विचित्रेयमुत्थानिकैतत्प्रस्तावस्येति चकितः, मामेष निरुत्तरयतीति ह्रीणः, किमितोऽपि कथयेदिति च सकुतूहलः, स्वेदापसारण-च्छलेन विविध भाव भङ्ग-तरङ्गितमाननं पटान्तेन साच्छादन-

मिति यावत् । सतां न्यक्करणीयम् = सज्जनतिरस्करणीयम् । "कृत्यानां कर्त्तरि वे"ति वैकल्पिकषष्ठी । भारतविद्रोहिणाम् = आर्यावर्तघातिनाम्, यवनानाम्, वशंवदता = अधीनतास्वीकरणम्, मेव कार्यम् । ग्लानः = क्षीणहर्षः । "ग्लै हर्षक्षये" इत्यस्माद् "गत्यर्थाकर्मक" इति कर्त्तरि क्त, "संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः" इति नत्वम् । उत्थानिका = भूमिका । चकितः = भीत । निरुत्तरयति = उत्तरशून्यं करोति । ह्रीणः = लज्जित । इतोऽपि, अधिकमिति शेष । स्वेदापसारणच्छलेन = घर्मपय दूरीकरणव्याजेन । विविधानाम् = अनेकेषाम्, भावानाम् = शोकग्लान्यादीनाम्, भङ्गैः = आविर्भावतिरोभावै, तरङ्गितम् = समुत्पन्नलहरिम्, आकुलीभूतमिति यावत् । साच्छादनम् = सगोपनम्, प्रोञ्छन् = "पोंछते हुए" इति हिन्दी । क्रोडे = भुजाभ्यन्तरे । स्थापितकफोणिः = धृतकूर्परः । "स्यात्कफोणिस्तु कूर्परः" इत्यमर । विक्षरिणाम् = दिङ्मातङ्गानाम्, करैः = शुण्डादण्डै, दोधूयमानम् = वार वार

यह सुनकर, जसवन्त सिंह ने, 'यह मुझे साफ-साफ धिक्कार रहा है', यह सोचकर कुछ क्रुद्ध हो कर, 'मैं भारत के द्रोही यवनों की दासता का ऐसा कार्य ही करता हूँ जो सज्जनों द्वारा निन्दनीय है', यह सोचकर ग्लान होकर, 'इन पण्डित जी की अपनी बात को कहने की यह प्रस्तावना विचित्र ही है', यह सोचकर चकित होकर, 'यह मुझे निरुत्तर किये दे रहे हैं', यह सोचकर लज्जित होकर, 'अब आगे और क्या कहेंगे', यह सोचकर कुतूहलाक्रान्त हो कर, पसीना पोंछने के बहाने, अपने नाना प्रकार के विचारों से तरङ्गित मुख को, वस्त्र के छोर से छिपाते और पोंछते हुए,

प्रोञ्छन्, उपधानं क्रोडे संस्थाप्य, तदुपरि च स्थापित-कफोणिः, यावत् पुरः पश्यति; तावत्पुनरारभत तथैव वक्तुं महादेवः—महाराज! त्रिकरि-कर दोधूयमान-यशःपुञ्ज-पुण्डरीकस्य स्वातन्त्र्य-पोत-कर्णधारस्य क्षत्रिय-कुल-कमल-दिनेशस्य उदयपुराधीश-श्रीप्रताप-सिंहस्य कुल प्रसूतं स्त्री-रत्नं यस्यार्द्धाङ्गम्, विद्युद्विनिन्दक-कृपाण-

सञ्चाल्यमानम्, यद् यशःपुञ्ज एव = कीर्तिव्रात एव, पुण्डरीकम् = सिताम्भोजम्, यस्य तादृशस्य। समस्तभूखण्डव्यापियशस इति वाच्योऽर्थः। स्वातन्त्र्यमेव = स्वतन्त्रतैव, पोतः = नौः, तत्कर्णधारस्य = तन्नाविकस्य। क्षत्रियकुलमेव = क्षात्रान्वय एव, कमलम् = पद्मम्, तद्दिनेशस्य = तदुदयकारणस्य खेचराधिनायकस्य। उदयपुराधीशश्चासौ श्रीप्रतापसिंहस्तस्य। श्रीप्रताप. सुप्रतापः सूर्यवंश्यः क्षत्रिय आसीदकबर साम्राज्यकाले। तस्मिन्नृपवरस्य श्रीमानसिंहस्य भगिनी "जोधाबाई" अकबर (अकबर) पट्टमहिष्यभूदिति श्रीप्रतापेनैव मानसिंहमपमानितवान् कदाचिदसहभोजनेनेति सुमहान् सङ्ग्रामो हल्दीघट्टे सञ्जात इत्यादि सुप्रसिद्धमेव भारतीयेतिवृत्तेषु। स्त्रीरत्नम् = स्त्रीषु श्रेष्ठा। "रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपी"ति नानार्थेऽमरः। अर्द्धाङ्गम् = अर्द्धदेहः, स्त्रीत्यर्थः। विद्यु-

मसनद को गोद मे रखकर, उस पर हाथ की कुहनी टेककर ज्योंही सामने देखा कि महादेव पण्डित ने पुनः उसी प्रकार कहना प्रारम्भ कर दिया।

"महाराज! जिनका यशःपुञ्ज रूपी कमल दिग्गजों की सूंड से बार-बार हिलाया जाता है (अर्थात् जिनका यश दिग्दिगन्त तक व्याप्त है), जो स्वतन्त्रता रूपी जलयान के कर्णधार और क्षत्रियकुलरूपी कमलों के सूर्य हैं; उदयपुर-नरेश श्री प्रतापसिंह के कुल में उत्पन्न महिलारत्न जिनकी धर्मपत्नी हैं, जो ऐसे सैकड़ों वीरों द्वारा 'जय जय' ध्वनिपूर्वक वरण किये गये मरुदेश के राजसिंहासन को पदाक्रान्त (चरणाधिष्ठित) कर विराजमान हैं, जिनके (जिन वीरों के) हाथों में बिजली को भी मात करने वाली कृपाणें

करैः, घनश्मश्रु कूर्च-समाच्छन्न-कन्धरैः, वाम-पाद-कलित-राजतैक-कटकैः, दक्षकर कलित कनकवलय-द्वयैः, पीतरक्त-श्यामारुणार्जुन-कर्बुर-पाण्डुर-धूसर-पाटल चित्र-विचित्रोष्णीषैः, विविध-मणिमय-हाटक-माला-सङ्घट्ट-किरणाङ्किताधिक-विकट-वक्षस्थलैः, रणाङ्गण-विपोथित प्रत्यर्थि सार्थ-मुकुट-मौक्तिक मण्डलारचित-कुण्डलैः, सिंह-

द्विनिन्दकानि=चरम-जुगुप्सा कारणानि, कृपाणानि=असय, करे येषां तैः । घनेन-सान्द्रेण, श्मश्रुणा=दाढिकया, कूर्चेन=उत्तरोष्ठस्थकेशेन, च समाच्छन्नाः=व्याप्ताः, कन्धराः येषा तैः । वामपादे=दक्षिणेतरचरणे, कलितः = धारितः, राजतः=रजतनिर्मितः, एकः= अद्वितीयः, कटको यैस्तैः, इयं तत्तत्प्रयेति भाति। दक्षकरे=दक्षिणहस्ते, कलित कनकवलयद्वयम्=हिरण्यकङ्कणयुगलम्, यैस्तैः । पीतादिभिश्चित्राण्युष्णीषाणि येषा तैः पीतादीनि चित्राणि उष्णीषाणि येषा तैरिति वा। अरुणम्=ईषद्रक्तम्, अर्जुनम्=धवलम् । "वलक्षो धवलोऽर्जुनः" इत्यमरः। कर्बुरम्=चित्रम्, अनेकवर्णमिश्रणरूपश्च तु स्वतन्त्रम्। पाण्डुरम्=ईषत्पीतम्, श्वेताभम्, धूसरम्=मृण्मिश्रश्वेतम्, "भूरा" इति हिन्दी। पाटलम्=पाटलपुष्पवर्णम् । 'गुलाबी' इति हिन्दी। विविधानाम्=अनेकप्रकाराणाम्, मणिमयहाटकमालानाम्=हीरकादिजटितसुवर्णस्रजाम्, सङ्घट्टस्य=व्रातस्य, किरणैः=मयूखैः, अङ्कितम्=लाञ्छितम्, अत एव अधिकम्=बहु, विकटम्=विस्तीर्णम्, वक्षस्थलम्=उर स्थलं येषा तैः । रणाङ्गणे=रणभूमौ, विपोथितानाम्=विनाशितानाम्, प्रत्यर्थिनाम्=शत्रूणाम्, सार्थस्य=व्रजस्य, मुकुटानाम्=उष्णीषाणाम्, मौक्तिकमण्डलैः=मुक्तासमूहैः, आरचितानि=निर्मितानि, कुण्डलानि

हैं, जिनकी गर्दनें घनी मूँछ दाढ़ी से ढकी हैं, जो बायें पैरों में चाँदी के एक एक कड़े को पहने हुए हैं तथा दाहिने हाथों में सोने के दो दो कड़े धारण किये हुए हैं, जिनकी पगड़ियाँ पीली, लाल, काली, अरुण, सफेद, चितकबरी, हल्की पीली, मटमैली, गुलाबी आदि विभिन्न रंगों की हैं, जिनके वक्षःस्थल विविध प्रकार की मणियों से युक्त सोने की मालाओं की किरणों

संहननैः, मधुनयनैः, परश्शत-वीरवरैः सजयजयध्वनि व्रियमाणं मरुदेश राजसिंहासनं पदा समाक्रम्य यो विराजते, यत्कथोपकथनै राजपुत्र-देश-कामिन्यो बालकान् शाययन्ति; एष दिल्ली-कलङ्कोऽवरंगजीवोऽपि सिप्रातीरे यद्बाहुविक्रममवलोक्य, क्षणम-निमेषो विस्मृतात्मदेहो विस्मितस्तस्थौ; सदैव यतो बिभेति, साहाय्यं च समपेक्षते, अस्मिन् विश्वस्मिन्नपि भारते वर्षे, नगरे नगरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे मन्दिरे मन्दिरे च यस्य क्षेमाय विजयाय बलवृद्ध्यै राज्यसमृद्ध्यै विपुलसम्पत्त्यै रिपु-निकर-हत्यै च द्विज-

येषा तैः। सिंहसंहननैः=वरागरूपोपेतैः। "वरागरूपोपेतो यः सिंहसहननो हि सः" इत्यमरः। अतीव सुन्दरैरित्यर्थः। मधुनयनैः=मत्तनेत्रैः। परश्शतैः=अगणनीयैः, वीरवरैः=श्रेष्ठैर्बलिभिः, व्रियमाणम्=स्वीक्रियमाणम्। यत्कथानाम्=यच्चरितानाम्, उपकथनैः=वर्णनैः। बालकान् शाययन्ति=स्वापयन्ति, तच्चरितक्रूरता निशम्य भीता बालाः स्वपन्तीति तत्त्वम्। सिप्रातीरे=सिप्रातटे। उज्जयिनीभूषणायिता मालवविहारिणी सिप्रा नदी। विस्मृतात्मदेहः=अविगणितस्वशरीरः। विस्मितः=विलक्षः। विश्वस्मिन्नपि=सम्पूर्णेऽपि। क्षेमम्=कल्याणम्, लब्धसरक्षणरूपम्। रिपुनिकरस्य=शत्रुव्रजस्य, हतिः=मारणम्, तस्यै। हत्यै, इत्यत्र

से अङ्कित होने के कारण और अधिक भयङ्कर प्रतीत होते हैं, जिन्होंने युद्ध-भूमि में मारे गये शत्रुसमूह के मुकुटों के मोतियों से कुण्डल बना लिये हैं, जिनका शरीर सिंह के समान है और जिनकी आँखें नशीली हैं; जिन (महाराज जसवन्त सिंह) की कहानियाँ सुना-सुनाकर राजपूताने की महिलायें बच्चों को सुलाया करती हैं, शिप्रा नदी के किनारे जिनके भुज-पराक्रम को देखकर दिल्लीकलङ्क औरङ्गजेब भी थोड़ी देर के लिये निर्निमेष, आत्मविस्मृत और विस्मित हो गया था, और वह जिनसे सदैव डरता रहता है, तथा जिनकी सहायता की अपेक्षा करता है; इस सम्पूर्ण भारतवर्ष में नगर-नगर, ग्राम-ग्राम, घर-घर और मन्दिर-मन्दिर में जिनके कल्याण, विजय, बल-वृद्धि, राज्यसमृद्धि, विपुल सम्पत्ति की प्राप्ति और शत्रुसमूह के

वरा हस्तावुन्नमय्य, सनाम-सकीर्त्तनमाशीराशीनुच्चारयन्ति, 'अस्मास्वपि केचन वीरा ऊर्जस्वलयशसस्ते महापुरुषाः सन्ति' इति यं वारं वारं स्मारं स्मारं वय सर्वेऽप्यभिमन्यामहे, स एव महावीरः, स एव भारत-रत्नम्, स एव राजकुल भूषणम्, स एव च धर्मधारिधौरेयः, अद्य यवनानां पक्षमवलम्ब्य स्वकीयानामेव शिरांस्युच्छेत्तुं चतुरङ्गिणी सज्जितवानस्तीत्यवलोक्य क्षुभितं महाराष्ट्र-राजस्य हृदयम्।

यशस्विसिंहं किञ्चिल्लज्जया तिर्यग्वदनं विमनायमानमिवावलोक्य पुनः—

वीरवर! साधारणोऽहं दूतः, महाराजैः सह कथमालपनीयमिति भाषण-परिपाटीमपि न जानामि-इति भाषण-भङ्गीवैधुर्य-

"अनचि च"ति वैकल्पिक द्वित्वम्। ऊर्जस्वलयशसः = विपुलकीर्त्तयः। धर्मधारिधौरेयः = धार्मिकाग्रेसरः। स्वकीयानामेव = स्वदेशीयानां स्वगोत्राणाञ्च। उच्छेत्तुम् = कर्त्तितुम्। क्षुभितम् = आविलम्, व्याकुलमित्यर्थः। तिर्यग्वदनम् = साचीकृतमुखम्। भाषणपरिपाटीम् = कथनशैलीम्। भाषणभङ्गीवैधुर्य-प्रयुक्तः = कथन प्रकार शून्यताजन्य। किमर्था = किंप्रयो-

नाश के लिये, श्रेष्ठ ब्राह्मण, दोनों हाथ उठाकर, नाम लेकर, आशीर्वाद उच्चारण करते हैं जिनको हम लोगों में भी कुछ 'वीर और महिमाशाली महापुरुष हैं', इस प्रकार बार-बार स्मरण कर, हम सब लोग अभिमान (स्वाभिमान का अनुभव) करते हैं, उन्हीं महावीर, भारतरत्न, राजकुल-भूषण धार्मिकों में श्रेष्ठ महाराज ने आज यवनों का पक्ष लेकर अपने ही लोगों का सिर काटने के लिये चतुरङ्गिणी सेना सजाई है, यह देखकर महाराष्ट्र राज शिवाजी का हृदय क्षुब्ध हो रहा है।"

जसवन्तसिंह कुछ लज्जित से होकर, मुँह घुमाकर, अनमने से हो गये। उन्हें इस प्रकार अन्यमनस्क सा देखकर महादेव पण्डित पुनः कहने लगे—

"वीरवर! मैं सामान्य दूत हूँ। महाराजाओं के साथ किस प्रकार बातचीत करना चाहिये यह (वार्तालाप का ढग) भी मैं नहीं जानता

प्रयुक्तोऽपराधो भवेच्चेन् क्षन्तव्यः, किन्तु निरीक्ष्यतां किमर्थेयं रण-सज्जा ? किमर्थं एष महोपकार्या-सन्निवेशः ? किमिति भयानक भल्ला भासन्ते ? किमिति चञ्चलाश्चन्द्रहासाश्चमत्कुर्वन्ति ? कम-ञ्जयितुमेते सादिन ? कञ्च भस्मसात्कर्तुं ज्वालाजटिल एष भवत्कोप दावानलः ? किं ये भवन्तमाशिषो नयन्ति, तेषामेव रक्तै रेणुकाराशिमरुणयितुम् ? ये भवन्माहात्म्य समाकर्णनेन मोदन्ते, तेषामेव मेदोभिर्मेदिनीं मेदस्विनीं निर्मातुम् ? ये भवन्त निजकु-लावतंसं मन्यन्ते, तेषामेव वंश ध्वंसयितुम् ? ये निरर्थं दीनान् लुण्ठन्ति, कुलीन-कन्या अपहरन्ति, मन्दिराणि निपातयन्ति, सद्यो वृक्णैः प्रजानां मस्तकैर्नयनैश्च विमर्दयन्ति, तानेव नैविष्व मर्य्यादा-

जनिका । महोपकार्यासन्निवेशः=महाशिविरविन्यास । अञ्जयितुम् = अश्वैराक्रमितुम् । सादिनः = अश्वारोहा । भस्मसात्कर्तुम् = दग्धुम् । ज्वालाजटिलः = ज्वालावर्द्धित । भक्तो दुष्यादित्यत्र भवन्तमाशिष इत्युभयस्यापि कर्मत्व बोध्यम् । रेणुकाराशिम् = धूलिव्रातम् । अरुणयितुम् = रक्तयितुम् । मेदोभि = निःक्षै । 'मेदस्तु वलतेन वगोद्भवम् । विलमस्थियकर स्नेहवर गौतमभित्यरी' ति वैजयन्ती । मेदिनीम् = धरणीम् । मेदस्विनीम् = विलमयीम् । निर्मातुम् = कर्तुम् । निजकुलावतंसम = स्वान्वयसम्भूतम् । निरर्थम् = निष्प्रयोजनम् । लुण्ठन्ति = चोरयन्ति । सद्यो वृक्णैः = तत्काल

हूं, अत यदि, अपनी बात को ठीक तरह से कह सकने की कला न जानने के कारण, वार्तालाप में कोई अशिष्टता या अपराध हो गया हो तो क्षमा कीजिये, किन्तु यह देखिये कि युद्ध की यह तैयारी किस लिये है ? ये भीषण भाले क्यों चमक रहे हैं ? ये चञ्चल तलवारें क्या चमचमा रही हैं ? तथा आपकी यह उद्दाम क्रोधाग्नि किसको भस्मसात् करना चाहती है ? क्या जो आपको आशीर्वाद देते हैं उन्हीं के रक्त से धूलि को रञ्जित करने के लिये ? जो आपको अपने कुल का भूषण समझते हैं उन्हीं के वंश का विध्वंस करने के लिये ? जो अकारण ही असहायों को लूटते हैं, मन्दिरों को ध्वस्त करते हैं, तत्काल काटे गये प्रजा के

विलोपनव्रतिनो वैरिहतकान् वा वर्द्धयितुम्? महाराज! यथा श्येनो वज्रनिक्षेपनिष्ठुरैर्निजचञ्चुचरणाघातैर्दीनान् भयविह्वलान् पतत्रिणो निहत्य व्याधाय समर्पयति, स्वयं च वधमात्रफलभाग् भवति, तथाभूतं व्रतं न शोभते श्रीमति यन्निरर्थं स्वतन्त्रा अपि प्रजा विजित्य, केवलमविचार-व्यभिचार-प्रचाराय धूर्तानामेषां यवनानां हस्ते समर्प्यन्ते। क्षत्रियव्याघ्र! किमहं कथयामि? स्वयमेव विवेच्योऽयं विषयः।

---

वृत्ते। चिर्क्रीडन्ति=बार बार क्रीडा कुर्वन्ति। वैदिकमर्यादायाः=आर्यपद्धतेः, विलोपनम्=विनाशनमेव, व्रतं तद् येषामस्तीति तान्। "व्रत इनिठनौ"। वर्द्धयितुम्=वृद्धयितुम्। श्येनः=पक्षिघाती पक्षी। वज्रनिक्षेपनिष्ठुरैः=कुलिश-पतन-कठोरैः। निजचञ्चु-चरणाघातैः=स्वत्रोटिपादमारणैः। भयविह्वलान्=भीतिकातरान्। पतत्रिणः=पक्षिणः। द्वितीयान्तम्। व्याधाय=मृगयवे। समर्पयति=ददाति। व्याधाः श्येनान् पालयन्ति तद्द्वारा चाखेटं कारयन्तीति लोकप्रसिद्धम्। वधमात्रस्य=केवलमारणस्य, फलं भवति तथाभूतः। अविचारस्य=अविवेकस्य, व्यभिचारस्य=मर्यादालङ्घनस्य, च प्रचाराय। क्षत्रियव्याघ्र!=राजन्यश्रेष्ठ! विवेच्यः=विचारणीयः।

---

मुण्डों और नेत्रों से बार बार खेलते हैं, उन्हीं वेद की मर्यादा को हटा कर देने का व्रत धारण करने वाले नीच शत्रुओं को बढ़ावा देने के लिये? महाराज! बाज पक्षी अपनी चोंच और चंगुल के वज्रपात के समान कठोर प्रहार से दुर्बल और भयभीत पक्षियों को मारकर व्याध को सौंप देता है और स्वयं केवल हिंसा के फल का ही भागी होता है, (किन्तु) उक्त बाज पक्षी के समान आचरण श्रीमान् को शोभा नहीं देता, कि आप अकारण ही स्वतन्त्र प्रजा को भी जीतकर, केवल अविवेक और दुराचार के प्रचार के लिये, इन धूर्त यवनों के हाथ में सौंप रहे हैं। क्षत्रियश्रेष्ठ! मैं क्या कहूँ? इस विषय पर आप स्वयं ही विचार करें।"

अथ काञ्चित् क्षणान् शिरःकण्डूयनैरेव यापयित्वा किञ्चिद् ह्रीणोऽपि त्रपां संवृण्वन्निव शनैरवादीद् मरुराजः।

यशस्वि०–दूतवर! साधु तव भाषण-भङ्गीमत्यन्त प्रशंसे। न तव भाषणे गौरवमवगूर्यते, पदवैधुर्यं म्रियते, प्रसादो निरस्यते, संशयापादक-पद-प्रचयो वा प्रचीयते। विलक्षण तव पाटवमालापेषु, गहन गहनैः, कोमल कोमलैः, मधुर-मधुरैः, वाचां विलासैर्मनो हरसि। यदेव वस्तु प्रवर्त्तसे, तन्मूर्तिमिव पुरो निलिखसि, यदेव वक्तुमीहसे, तदासार प्रसारैरिव परितः प्लावयसि। धन्यः

---

शिरःकण्डूयनैः = शिर खुजनैः। लज्जितस्योत्तरदौर्बल्ययुतस्य च ग्लानिसूचकमिदम्। त्रपाम् = ह्रियम्। संवृण्वन् = आच्छादयन्। गौरवम् = श्रेष्ठयम्। अवगूर्यते = हिनस्ति। पदवैधुर्यम् = उत्थिताकाङ्क्षाशमनाय समपेक्षितपदशून्यता। न म्रियते = नावतिष्ठते। प्रसादः = स्पष्टार्थतात्मा गुणः। निरस्यते = क्षिप्यते। "असु क्षेपणे"। संशयापादकानाम् = सन्देहजनकानाम् पदानाम्, प्रचयः=आधिक्यम्। प्रचीयते=वर्धते, निरर्थकपदराहित्यमिति यावत्। पाटवम्=पटुता। गहनगहनैः =अतिगम्भीरार्थैः, तन्मूर्त्तिम् = तत्स्वरूपम्। ईहसे = वाञ्छसि। तदासार-प्रसारैः = तद्धारासम्पातप्रपातैः। गौणोऽत्र प्रयोगः। "धारासम्पात आसार" इत्यमरः।

---

इसके पश्चात् कुछ क्षणों तक सिर खुजलाते हुए से कुछ लज्जित होते हुए भी लज्जा को छिपाते हुए से जसवन्तसिंह, मन्द स्वर से बोले—

जसवन्तसिंह—दूतवर! शाबाश! तुम्हारी वार्तालाप की कला की मैं बहुत सराहना करता हूँ। तुम्हारी उक्तियों से गौरव का अभिघात नहीं होता, उनमें पदों की न्यूनता का अनुभव भी नहीं होता है, उनमें न तो प्रसाद गुण का अभाव है और न संशयात्मक शब्दों का बाहुल्य, तुम्हारी वार्तालाप की कुशलता अद्भुत है। अत्यन्त गूढ़, सुकोमल और मधुरतम वचनविन्यास से तुम मन को मुग्ध कर देते हो। जो भी कहना प्रारम्भ करते हो मानो उसका चित्र ही सामने खींच देते हो, जो चाहते हो उसे मानो वर्षा की धारा से सर्वत आप्लावित कर देते हो।

शिवो यस्त्वादृशान् कल्पना-केसरिणो दूतत्वे नियुनक्ति। त्वदुक्ति-श्रवण-विरिरंसैव न भवत्यस्माकम्।

महा०-महाराज! एष साधारणोऽस्ति दूतो न जानीते उचितमनुचितं वेति सर्वथा क्षमा-भिक्षुरेष जनः। ( इति नतकन्धरः समास्थित )।

यश०-अथ प्रकृतमाकलय। न खल्वस्मामी राजपुत्रदेशीय-क्षत्रियैर्भयेन वा, लोभेन वा, कस्याप्युपचिकीर्षया वा, अपचिकीर्षया वा यवनकरतेष्वात्मा समर्पितः। अस्माभिरेव वारसहस्रं यवनाः खड्गैः खण्डशः कृताः, अस्माभिरेव वारं वारं ते आसिन्धु-कूलं विद्राविताः, पारतन्त्र्य-कलङ्कमसहमानानामस्माकमेव नव-

कल्पनाकेसरिणः=नवनवविचारमृगेन्द्रान्, तादृशविचारपटूनिति यावत्। त्वदुक्तेः=त्वद्वाक्यस्य, श्रवणात्=आकर्णनात्, विरिरंसा=विरन्तुमिच्छा।

क्षमाभिक्षुः=क्षमाप्रार्थी। नतकन्धरः=नमितग्रीवः। समास्थित= स्थितोऽभूत्। "समवप्रविभ्यः स्थः" इत्यात्मनेपदम्।

उपचिकीर्षया=उपकर्तुमिच्छया। अपचिकीर्षया=अपकर्तुमिच्छया। वाराणां सहस्रं वारसहस्रम्=अनेकवारम्। आसिन्धुकूलम्=

शिवाजी धन्य हैं जिन्होंने तुम्हारे जैसे कल्पनाकुशलों ( प्रतिभाशालियों ) को दूत नियुक्त किया है। तुम्हारी बातों को सुनने से हमारा मन ही नहीं भरता है।

महादेव पण्डित—महाराज! मैं साधारण दूत हूँ, उचित या अनुचित नहीं जानता, अतः सर्वथा क्षमा-प्रार्थी हूँ।

( यह कह कर महादेव पण्डित सिर झुकाये बैठे रहे। )

जसवन्तसिंह—अच्छा, अब वार्तालाप के मुख्य विषय पर आओ। हम राजस्थान के क्षत्रियों ने भय से, या लोभ से, या किसी का उपकार या अहित सोचकर, यवनों के हाथों में अपने को नहीं सौंप दिया है। हम लोगों ने ही हजारों बार यवनों को तलवारों से टुकड़े-टुकड़े किया, हम लोगों ने ही कई बार इनको सिन्धु के तट तक भगाया है, पराधीनता के कलङ्क को सहन

नीत कोमला रमण्यो ज्वाला-जाल-जटालेषु ज्वलनेषु आत्मानं ज्वलयाम्बभूवुः। एवमेवाऽऽपदोऽनुभवतामस्माकं वत्सराणां शतकानि व्यतीतानि। न जानीमहे किमिवेहितं भगवत्या महामायायाः, यदितोऽपि अधिकार-वैशिष्ट्यमेव कलयति भारत-विद्रोहि-सन्दोहः। वयं च अनिच्छन्तोऽपि आत्मनस्तद्धस्तगतानेव पश्यामः। अधुना तु विश्वस्मिन्नपि राजपुत्रदेशे तेषां तथाऽधिकारोऽस्ति, यत् केवलमात्मोच्छेदायैव तैः सह विरोधः स्यात्-इति किमिव क्रियेत ? भाग्यैरेतेषां कदर्य्याणां परस्परमैक्यमपि नास्ति अस्माकम्। तद् यथोचितं निर्वहामः।

सिन्धुनदतटपर्यन्तम्। अभिविधावाङ्। विद्राविताः=उत्सारिताः। पारतन्त्र्यम्=पराधीनतैव, कलङ्कः, तम्। नवनीतकोमलाः=हैयङ्गवीनमृद्वङ्ग्यः। ज्वालाजालैः=कीलमालाभिः, जटालेषु=उपचितेषु। ज्वलनेषु=दहनेषु। ईहितम्=चेष्टितम्। महामायायाः='अजामेकाम्' इति श्रुतायाः सकलजगदुद्भवस्थितिनिरोधलीलायाः अगणितगुणगणसमुचितकलेवराया अपि निर्गुणात्मिकायाः। अधिकारवैशिष्ट्यम्-विशिष्टमधिकारम्। कलयति=धारयति। भारतविद्रोहिसन्दोहः=हैन्दवप्रत्यर्थिनिकरः, यवना इत्यर्थः। आत्मोच्छेदाय=स्वविध्वंसनाय। कदर्य्याणाम्=कुत्सिताचरणानाम्। निर्वहामः=समयं यापयामः।

न करने वाले हम लोगों की ही नवनीत के समान कोमल ललनाओं ने ज्वालाओं के समूह से प्रदीप्त अग्नि में आत्माहुति दी है। इसी प्रकार की आपत्तियों को सहन करते हुए हमें सैकड़ों वर्ष बीत गये। न जाने भगवती महामाया को क्या अभीष्ट है कि इतने पर भी भारतवर्ष के शत्रुओं का समूह, और भी अधिक अधिकार प्राप्त करता जा रहा है और हम लोग न चाहते हुये भी अपने को उनके हाथ (अधिकार) में देख रहे हैं। इस समय तो समस्त राजपूताने पर उनका ऐसा अधिकार है कि उनसे विरोध करने का अर्थ केवल अपना विनाश करना ही है। इस दशा में क्या किया जाये ? इन दुराचारियों के भाग्य से हम लोगों में परस्पर एकता भी नहीं है, अतः हम समय के अनुरूप ही किसी प्रकार निर्वाह कर रहे हैं।

महा०—महाराज! सम्यगवैमि, मा स्म भूद्राजपुत्रदेशे तादृशं यौष्माकीणं बलम्, परमस्मिन् देशे तु यवनानामधुनाऽपि तथा प्रबलोऽधिकारो न संवृत्तोऽस्ति। शतशो दुर्गाणि सन्ति, यवन-रुधिर-तृषित-खड्ग प्रचयोद्भासित-भुजाः सहस्रशो महाराष्ट्र व्याघ्राः सञ्चरन्ति। एषां च सर्वोऽपि वीरता धुरन्धरान् क्षत्रियकुलमणीन् भारत-गौरवाश्रयान् वृत्त म्लेच्छ हस्तावलम्बनान् युष्मानवलोक्य रोदिति। युष्मदग्रे सर्वोऽपि बद्ध कर सम्पुटः। राज्यमेतदखिलं भावत्कम्, शिववीरोऽपि भवता स्वसेनापतिष्वेकान्यतमोऽङ्गीक्रियताम्, दिल्लीश्वरेण च सह युद्धमारभ्यताम्। यो

युष्माकमिदं यौष्माकीणं तच्च तद् बलम्=सामर्थ्यम्। शैषिकेऽपि "तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकावि"ति युष्माकादेशः। यवनानाम्=म्लेच्छानाम्, रुधिरस्य=लोहितस्य, तृषितानाम्=पिपासितानाम्, खड्गानाम्=असीनाम्, प्रचयैः=निकरैः, उद्भासिता=चञ्चद्भासः, भुजाः=बाहवो येषां ते। महाराष्ट्रव्याघ्राः=श्रेष्ठा महाराष्ट्रदेशीयाः। सर्वोऽपि, अस्य 'मध्ये' इत्यादौ, 'जन' इति चान्वे शेष। वृत्तम्लेच्छहस्तावलम्बनान्=यवनसाहाय्यकारिणः। बद्धकरसम्पुटः=कृत हस्ताञ्जलि.। भावत्कम्=भवदीयम्। अङ्गीक्रियताम्=स्व क्रियताम्।

महादेव—महाराज! मैं (आप की बात को) भली भाँति समझता हूँ। भले ही राजपूताने में आप लोगों की वैसी सामर्थ्य न हो, परन्तु यहाँ तो (महाराष्ट्र में) अभी तक यवनों का उतना प्रबल अधिकार नहीं हो पाया है। सैकड़ों दुर्ग हैं, यवनों की रक्त की प्यासी तलवारों से सुशोभित भुजाओं वाले सहस्रों महाराष्ट्रकेसरी घूम रहे हैं। इनमे से सभी वीरश्रेष्ठ, क्षत्रियकुलभूषण और भारत की प्रतिष्ठा के आश्रयभूत आप को म्लेच्छों का सहायक बनते देखकर रो रहे हैं। आप के आगे सभी बद्धाञ्जलि हैं। यह सम्पूर्ण राज्य आप का है। शिवाजी को भी आप अपने सेनापतियों में से एक मान लीजिए और दिल्लीश्वर से युद्ध छेड़ दीजिये। जिसे

यौवराज्यसमय एव महासमरे चित्रार्पित इव चकितीकृतो भवता, य: प्राप्त साम्राज्य-सिंहासनोऽपि बिभ्यदिव श्रीमन्तमितस्ततो महायुद्धेषु सम्प्रेष्य श्रीमदनिष्टं शुश्रूषते, स सर्वदा दण्डेनैव शिक्षणीय आर्यैः अस्मिन् महाकार्ये श्रीमत्प्रतिवेशी आमेर-देशाधीशो न सहयुङ्क्ते भवता चेन्निजभक्तो महाराष्ट्रराज एव विधेयो विधीयताम्। ऐक्यं नास्तीति मा स्म भूच्छोकः श्रीमताम्। उद्योगेनैक्यमारभ्यताम्।

शिवो भारतीयानां पारतन्त्र्यं नावलुलोकयिषति। राज्यलोभस्तु तस्य नास्ति-इति विजये राज्यमिदमप्यत्र भवतामेव भवेत्, किन्तु

---

सेनापतिमेव जानीहीति यावत्। यौवराज्यसमये = राज्ञा धराप्राप्त्यवसरे। चित्रार्पित इव = चित्रलिखित इव। चकितीकृतः = साश्चर्यीकृतः। यशस्विसिंहनावराङ्कजीवस्य चादौ प्रत्यक्षं युद्धमभूत् पश्चादपि चान्तःकलह आसीदितीतिवृत्तेषु प्रसिद्धम्। प्राप्तसाम्राज्यसिंहासनोऽपि = लब्धचक्रवर्तित्वपदोऽपि। बिभ्यदिव = भयं कुर्वाण इव। भवत इति शेषः। शुश्रूषते = श्रोतुमिच्छति। दण्डेनैव, न तु सामादिभिः। श्रीमत्प्रतिवेशी = भवत्पार्श्ववेदेशस्थ। सहयुङ्क्ते = सहयोगं करोति। विधेयः = आज्ञाकारी। पारतन्त्र्यम् = वैदेशिकाधिपत्यम्। अवलुलोकयिषति=द्रष्टुमिच्छति।

---

आपने युवराज होते ही महायुद्ध में चित्रलिखित की भाँति चकित कर दिया था, जो सम्राट् का सिंहासन प्राप्त करके भी (आप से) डरता हुआ सा आपको इधर-उधर महायुद्धों में भेज कर, आपका अनिष्ट सुनना चाहता है, उसको तो आप दण्ड से ही शिक्षा दीजिये। इस महान् कार्य में यदि आपके पड़ोसी आमेर के राजा आपको सहयोग नहीं दें तो अपने भक्त शिवाजी को ही सेवक बना लीजिये। 'एकता नहीं है,' यह चिन्ता आप न करें। (एकता के लिये) उद्योग करके एकता का प्रारम्भ कीजिये।

शिवाजी भारतीयों की परतन्त्रता नहीं देखना चाहते। राज्य का लोभ तो उन्हें है नहीं, अतः विजय प्राप्त हो जाने पर यहाँ भी आप का ही

यथा भारत द्रुहां यवनानां प्राबल्येन प्रत्यहं धर्मलोपो न स्यात्, तथैव शिवस्याभिप्रायः।

यश०—राज्यं त्वस्माकमपि बह्वस्ति। वयमपि गर्द्धाभिभूता न स्मः। शिवस्योद्देश्यं चाखिलं प्रशस्यमस्ति। वयमपि शिवमवलोक्य क्षत्रियकुलस्य च सारवत्तामाकलय्य मोदामहे, किन्तु शिवस्य व्यापारेष्वेकमेवास्मभ्यं न रोचते, यदेष चौराणां लुण्ठकानाञ्च वृत्तमनुसरति-इति।

महा०—महाराज ! मैवम्, किं कुत्रापि कुतश्चिदपि समश्रौषीत् श्रीमान्, यद् निरपराधान् पथिकान् लुण्ठति महाराष्ट्रराजः ? आहोस्वित् कस्यापि भित्तिं भित्त्वा धनमपजहार श्रीमान् ? किन्तु

---

भारतद्रुहाम् = हैन्दवद्रोहकारिणाम्। चिरतम्। प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्

गर्द्धया = अतिलोभेन, अभिभूताः-तिरस्कृताः। प्रशस्यम् = अतिश्लाघ्यम्। सारवत्ताम् = शक्तियुक्तताम्। व्यापारेषु = कार्येषु।

अस्मभ्यं न रोचते = अस्मत्प्रीतिकरो न भवति। "रुच्यर्थानां प्रीयमाणः" इति सम्प्रदानसंज्ञा।

समश्रौषीत् = सम्यक् श्रुतवान्। निरपराधान् = दोषरहितान्। भित्तिम् = कुड्यम्। भित्त्वा = त्रोटयित्वा। सन्धिं कृत्वेति यावत्। अपजहार = चोर-

---

राज्य रहा, किन्तु जैसे भी हो भारत के द्रोही यवनों का प्रतिदिन की प्रबलता से धर्म का लोप न हो, यही शिवा जी का अभिमत है।

जसवन्तसिंह—राज्य तो हमारा भी बहुत (रहा) है, लोभ से तो हम भी आक्रान्त नहीं हैं और शिवाजी का सम्पूर्ण उद्देश्य भी श्लाघ्य है। हम भी शिवाजी को देखकर तथा क्षत्रिय वंश की शक्ति को सोचकर प्रसन्न होते हैं, किन्तु शिवाजी के कार्यों में एक ही हमें अच्छा नहीं लगता कि वे चोरों और लुटेरों के आचरण का अनुकरण करते हैं।

महादेव—महाराज ! ऐसा मत कहिए। क्या आपने कहीं भी किसी से भी यह सुना है कि शिवाजी निर्दोष यात्रियों को लूटते हैं ? या उन्होंने किसी की दीवाल खोदकर धन चुराया है ! किन्तु इन लुटेरों (यवनों)

लुण्ठकानामेषामत्याचारमसहमानो लुण्ठका यथा न लुण्ठेयुरव-थैतान् दण्डयति। सन्ति प्रबलाः परिपन्थिनः, भवादृशाश्च तेषामेव दत्तहस्तावलम्बनाः। धर्मो हि सर्वथा रक्षणीयः। सतीत्वध्वसन-मन्दिरावपातादिरूपो घोरतरो दुराचारः सर्वथा प्रतिरोद्धव्यः। आततायिनश्चावश्यमेव दण्डनीयाः—इति क्वचन परवशतया नीति-विशेषस्यापि आश्रयोऽपेक्ष्यत इति किमियं लुण्ठकता ?

दिल्लीकलङ्कस्तु प्राधान्येन श्रीमन्तमेव द्वेष्टि। श्रीमानपि तद्दु-

---

यामास। एषाम्=यवनानाम्। दण्डयति=पीडयति। परिपन्थिनः= विरोधिनः। सतीत्वध्वसन-मन्दिरावपातादिरूपः=पातिव्रत्यविनाशन-देवालयविध्वंसरूपः। आततायिनश्चावश्य दण्डनीयाः।

"आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।
नाऽऽततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन॥"

"आततायी वधार्हणः" इत्यादिभिः शास्त्रः स्मृतिपुराणेतिहासवचनैरनेको दण्डनीयत्व सुव्यक्तम्। परवशतया=परवत्तया, आवश्यकतयेति यावत्। नीतिविशेषस्य="व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः" इत्येवरूपस्य।

---

के अत्याचारों को सहन न कर सकने वाले वे ( शिवाजी ) इन लुटेरों को ऐसा दण्ड देते हैं जिससे ये लूट ही न सकें। शत्रु प्रबल हैं, और आप जैसे लोग भी उन शत्रुओं की ही सहायता करते हैं; जैसे भी हो धर्म की रक्षा करनी है, सतीत्व का अपहरण, मन्दिरों का विध्वंस आदि दारुण दुराचार रोकना है और आततायियों को दण्ड देना भी अनिवार्य है, अतः कहीं कहीं विवशता के कारण विशिष्ट नीति के आश्रय की अपेक्षा होती है तो क्या यह लुटेरापन है ?

दिल्लीकलङ्क औरङ्गजेब तो आपसे ही द्वेष करता है। श्रीमान् भी उसके अनाचार को न सहन करने के कारण उसके शिवाजी से

राचारमसहमानः शिवापेक्षयाऽप्यधिकतरस्तच्छत्रुः। श्रीमताऽपि शठे शाठ्यमिति मुद्रया कूटनीतिरङ्गीक्रियेत चेत्, किमियं दुष्टता स्यात्?

यश०—[दीर्घमुष्णं निःश्वस्य] अथ मां किमभिदधाति शिवराजः?

महा०—महाराज! स श्रीमतः साहाय्यमभयं च वाञ्छति।

यश०—दिल्लीश्वरेण सह कृतप्रतिज्ञः कथमन्यथा विधास्यामि?

महा०—भगवन्! ये हि रोदं रोदं पादयोर्विलुण्ठतामपि "त्रायध्वं त्रायध्वम्" इति सहाहाकार-चीत्कारैः रोदसी रोदयतामपि दारा अपहरन्ति, इष्टदेव प्रतिकृतीश्चूर्णयन्ति, बालान् वृद्धांश्च सकष्टं

---

अधिकतरः=श्रेष्ठतर। तच्छत्रु, "शठं प्रति चरेच्छाठ्यमि" ति समाश्रयतः शत्रुत्व मिनव्यापाच्छन्न न दोषावहम्।

"रामकृष्णेन्द्रादिदेवैः कूटमेवाऽऽदृतं पुरा"

इत्यादिवचनशतेन नीतिकारैः सेतिहासप्रदर्शनं समर्थितमावश्यकञ्चेदमिति मन्तव्यम्।

रोदं रोदम्=रुदित्वा रुदित्वा। रोदसी=द्यावापृथिव्यौ। रोदयताम्=विलापयताम्। दारा.=स्त्री। हेमचन्द्रानुसारि-पूर्वप्रदर्शित-टान्तस्य शवि। "पुं भूम्नि दारा" इति कोशोक्तस्य तु दारानित्येव। इष्टदेवप्रति·

---

भी बड़ा शत्रु है। यदि आप भी 'दुष्ट के साथ दुष्टता' के सिद्धान्त के अनुसार कूटनीति का सहारा लें तो क्या यह दुष्टपन होगा?

जसवन्त सिंह—(दीर्घ और उष्ण निश्वास लेकर) तो शिवाजी मुझसे क्या कहते हैं?

महादेव—महाराज! वे आप से सहायता तथा अभय चाहते हैं।

जसवन्त सिंह—मैंने दिल्लीश्वर से प्रतिज्ञा की है, उसके विपरीत कार्य कैसे कर सकूंगा?

महादेव—भगवन्! जो रो रो कर पैरों पर गिरने वालों, 'रक्षा करो, रक्षा करो' इस प्रकार हाहाकार करते हुये चीत्कार से पृथिवी और आकाश को रुलाने वालों की भी स्त्रियों को बलपूर्वक अपहरण कर लेते हैं,

घ्नन्ति; तेषामेषां दुर्विनीतानामाततायिनां बलेनापि च्छलेनापि च दण्डनं परम-पुण्यमेव, न पापम्। स्वयमेव धर्म-मर्म-गौरव-लाघवाभ्यामालोचनीयोऽयं विषयः।

यश०—[ चिरं तूष्णीं चिन्तयित्वा, आत्मनोऽप्यवरङ्गजीवस्य राज्यप्राप्तेरपि पूर्वसमयमारभ्याद्यावधि अन्तरेव जाज्वल्यमानं क्रमशः गुप्तरूपेणैव प्रवर्द्धमानं क्वचित् क्वचित्स्फुटमुद्दृश्यमानं कथञ्चिदपि वीरवर-जयसिंहादिभिरुपशम्यमानं महावैरं विचार्य नैजमपि च महादेव-सदृशमेव सिद्धान्तं विभाव्य सर्वं मनस्येव निगीर्य्य प्रकृतानुरूपमाह ]

---

कृतीः = रामादिप्रतिमाः। छलेनापि = कूटनीत्याऽपि धर्ममर्मगौरवलाघवाभ्याम्, धर्मस्य हि सूक्ष्मा गतिः, कियन्तोऽधर्मत्वेनाऽऽपाततो भासमाना धर्माः, कियन्तश्च धर्मत्वेन भासमाना अधर्मा इति शतशः स्मृतिवचनैः स्पष्टीकृतम्।

जाज्वल्यमानम् = अतितरां ज्वलत्। क्रमशः = शनैः शनैः।

---

इष्टदेव की मूर्तियों को चकनाचूर कर देते हैं, बालकों और वृद्धों को ( भी ) कष्ट देकर मार डालते हैं, ऐसे इन उच्छृङ्खल आततायियों को बल से और छल से भी दण्ड देना परम पुण्य ही है, पाप नहीं। धर्म के मर्म का, गौरव और लाघव द्वारा विवेचन करके आप स्वयं इस विषय पर विचार करें।

जसवन्तसिंह बड़ी देर तक मौन रह कर, सोच कर, औरङ्गजेब के राज्य प्राप्त करने के भी पहले से लेकर आज तक अन्दर ही अन्दर सुलगने वाली क्रमशः गुप्त रूप से ही बढ़ने वाली, कहीं-कहीं स्पष्ट दिखाई पड़ जाने वाली और किसी प्रकार वीरवर जयसिंह आदि राजाओं के द्वारा शान्त की गई शत्रुता को स्मरण कर, तथा अपने सिद्धान्त को भी महादेव पण्डित के सिद्धान्त के समान ही समझकर, सब कुछ मन ही मन पीकर, प्रकृत विषय के अनुरूप बोले।

दूतप्रवर ! दिल्लीश्वर "महाराष्ट्रैः सह योत्स्ये"-इति कथयित्वा समायातोऽस्मि, तद् योत्स्ये।

महा०—सत्यं योत्स्यते, स्ववंशजातानामेव क्षत्रिय-बालकानां वक्षः क्षुरिकाभिर्विदारयिष्यते। सद्यश्छिन्न ब्राह्मण-कन्धरा-विगलद्रुधिरप्रवाहैर्भगवती वसुमती स्नपयिष्यते। यवनहस्तेषु अधिकारं समर्प्य महामांस-दिग्धा च भारतभूर्द्रक्ष्यते—

इति प्रस्फुरिताभ्यामधराभ्यामरुणिमाञ्चिताभ्यां च प्रस्फारिताभ्यां नयनाभ्यामचकथत्।

---

प्रवर्द्धमानम् = वृद्धिं गच्छन्। उपशाम्यमानम्=निर्वाप्यमाणम्। निर्वाप्य= निर्वाप्य। शमयित्वेति यावत्। प्रकृतानुरूपम् = स्थित्यनुकूलम्। दिल्लीश्वरम्, कथनक्रियायाः कर्म।

वक्षः = उरःस्थलम्। क्षुरिकाभिः = कृपाणीभिः। विदारयिष्यते = भेत्स्यते। सद्यश्छिन्नेभ्यः = तत्कालकृत्तेभ्यः, ब्राह्मणकन्धराभ्यः = विप्रग्रीवाभ्यः, विगलताम् = पतताम्, रुधिराणाम् = लोहितानाम्, प्रवाहैः = धाराभिः। वसुमती = धरणी। स्नपयिष्यते, रक्तरञ्जिता विधास्यत इति यावत्। महामांसेन = गोमांसेन, दिग्धा = लिप्ता। द्रक्ष्यते = अवलोकिष्यते।

प्रस्फुरिताभ्याम् = प्रचलद्भ्याम्। अरुणिमाञ्चिताभ्याम् = लौहित्ययुताभ्याम्। प्रस्फारिताभ्याम् = विकासिताभ्याम्। अचकथत् कथयामास।

---

जसवन्त सिंह—दूत प्रवर ! मैं दिल्लीश्वर से यह कह कर आया हूँ कि मराठों के साथ युद्ध करूँगा, इसलिये मैं युद्ध करूँगा।

महादेव पण्डित—आप सचमुच युद्ध करेंगे, अपने वंश के ही क्षत्रिय बालकों के वक्षस्थल को कटारों से फाड़ेंगे, तत्काल काटी गई ब्राह्मणों की गर्दन से बहते हुए रक्त की धारा से भगवती वसुन्धरा को स्नान करायेंगे, यवनों के हाथों में अधिकार समर्पित कर गोमांस से आर्द्र भारतभूमि को देखेंगे।

यह बात महादेव पण्डित ने फड़कते हुए अधरोष्ठों और अरुणिम तथा विस्फारित नेत्रों से कही।

यशस्विसिंहस्तु तदाकर्ण्य स्थगित इव चकित इव ह्रीत इव अवहेलित इव आक्षिप्त इव पुत्तलीकृत इव क्षणमधः क्षणं पुरः क्षणं त्रिवली-मण्डिते महादेव-ललाटे क्षण च नासाग्रे दत्तदृष्टिः अवागिव स्तब्धवागिव मन्त्रित इव च तूष्णीमेव तस्थौ।

महा०—धर्म-मर्मज्ञ! प्रार्थनामात्रमस्मादृक्षाणाम्, कार्यस्वीकारे तिरस्कारे वा प्रभव एव प्रमाणम्।

यश०—पण्डित! भवादृशा वा भवादृशाना मन्त्रणा या तिरस्करणीया न भवन्ति। किन्तु स्वच्छेन हृदा स्वाभिप्रेतं प्रकटयति

स्थगित इव = निश्चेष्ट इव। चकित इव = साश्चर्य इव। ह्रीत इव = लज्जित इव। "ह्रीणह्रीतौ तु लज्जिते" इत्यमर। अवहेलित इव = तिरस्कृत इव। आक्षिप्त इव = निरस्त इव। पुत्तलीकृत इव = कृत्रिममानवाकृतीकृत इव। त्रिवलीमण्डिते = रेखात्रयभूषिते। अवागिव = मूक इव। स्तब्धवाक् = जडीकृतभाष.। मन्त्रितः = मन्त्रैः कीलितः। तूष्णीम् = अभाषणपरः। किं वा भाषेत, तादृशीं भाषां निशम्य। भारतीयत्वाभिमानिभिः श्रोतव्येयमेकदा सस्कृतपण्डितवचनावली।

मन्त्रणा = विचारणा। तिरस्करणीयाः = अनादरणीयाः।

जसवन्तसिंह तो यह सुनकर निश्चेष्ट से, चकित से, लज्जित से, तिरस्कृत से, लाञ्छित से, कठपुतली से बने हुए, क्षण भर नीचे, क्षण भर सामने क्षण भर त्रिपुण्ड्र से विभूषित महादेव के ललाट की ओर तथा क्षण भर नासिका के अग्रभाग की ओर देख कर मूक से, स्तम्भित से, तथा मन्त्र के प्रभाव से (कीलित अर्थात्) मौन कर दिये गये से चुप ही रहे।

महादेव—धर्म के मर्मज्ञ! हमारे जैसे लोग तो केवल प्रार्थना ही कर सकते हैं, कार्य की स्वीकृति या उसका तिरस्कार करना तो आप ही के हाथ में है।

जसवन्तसिंह—पण्डित जी! आप जैसे लोग तथा आप जैसे लोगों की सलाह तिरस्कार करने योग्य नहीं होती, परन्तु निर्मल हृदय से शिवाजी के अपना मन्तव्य प्रकट करने पर तथा आप जैसे वाक्पटु ब्राह्मण के धर्मसम्मत

महाराष्ट्र-राजे, नाति-गर्भं सधर्मोपदेशं च मन्त्रयमाणे भवादृशे वाग्मिनि, अहमपि हृद्गतानां निज-विचाराणामाच्छादनमयुक्तं मन्ये-इति तथा कथितवानस्मि। शिवस्य सर्वोऽप्युद्देशो मह्यं रोचते, परं भवानेव विचारयतु। प्रतिज्ञाविरुद्धाचरणं महतां कार्यं वा ?

महा०—महाराज ! य भवान् दिल्लीश्वर इति ब्रूते, तस्यैव राक्षसोचितानि कर्म्माणि दृश्यन्ताम्—आत्मनो जनन-पोषण हेतु-भूतस्य वलीपलितस्य सक्रन्द-नयनजल-सिक्त-श्वेत-श्मश्रु-

---

भवादृशाः, मन्त्रणा-रत्नुमयान्वयार्थं तिरस्करणीया इत्यत्र पुल्लिङ्गयोरेकशेष। स्वच्छेन=पूतेन, स्वाभिप्रेतम्=निजाभिमतम्। नीतिगर्भम्=नयमिश्रम्। आच्छादनम्=गोपनम्। कार्यं वा ? नैवानां वेति शेष। वास्तव धर्मं पर्यालमविज्ञायापाततो निरूपयतीति स्पष्टमेव।

राक्षसोचितानि=राक्षसैरेव कर्तुमर्हाणि। जननस्य=उत्पत्ते, पोषणस्य=रक्षणस्य च हेतुभूतस्य-कारणता गतस्य। वलीपलितस्य=जठरे भङ्गीरूपरेखया धावल्येन च युक्तस्य। "पलित जरसा शौक्ल्यम्" इत्यमर। क्रन्देन=रोदनेन, सह यन्नयनजलम्=यदस्रम्, तेन सिक्तौ श्वेतश्मश्रुकूर्चौ यस्य तस्य। साश्र-

---

और नीतियुक्त सलाह देने पर, मैं भी अपने हार्दिक विचारों को छिपाना अनुचित समझता हूं, अतः मैंने वैसा कह दिया (अर्थात् युद्ध करने के अपने निश्चय को आपसे स्पष्ट कर दिया)। शिवाजी के सभी उद्देश्य मुझे पसन्द हैं, परन्तु आप ही सोचिये, प्रतिज्ञा के विरुद्ध आचरण करना क्या महापुरुषों का काम है ?

महादेव—महाराज ! जिसे आप दिल्लीश्वर कह रहे हैं, उसी के राक्षसोचित कर्मों को देखिये। अपने जन्मदाता, पालन-पोषण करने वाले, पके बालों वाले (अत्यन्त वृद्ध) रोने से निकले हुए आँसुओं से सफेद मूँछ और दाढ़ी को सींचने वाले पिता को अपमानपूर्वक कैद कर, कारागार में

कूर्चस्य पितुः सावहेलं निगृह्य कारागारे स्थापनं महतां कार्यं वा ? यैः सह जननी-करस्थ-मोदकमहमहमिकया समाच्छिद्य भुक्त्म्, तात-तातेति-भाषणैः क्रीडा कौतुकैश्च पूर्वं वयो व्यत्यायितम्, तेषामेव सोदर्याणां सच्छलं सदर्पं सक्रौर्यं च मारणम्, दृशोभिर्हिंसाभिरपि सोद्दण्डभावं लज्जानावहनञ्च महतां कार्यं वा ? केवलमार्य-स्वभावानामार्य-जनानां क्लेशनार्थमेव गो हिंसनम्, प्रतिमा-खण्डनम्, दीन-हीन सनातन-वैदिकधर्म शरणानामेवास्माकं "जीव-जीवं" करग्रहणं महतां कार्यं वा ? वाराणस्यादिदेव-तीर्थेषु बलात् पतितानां मन्दिराणां भग्नावशेषैः कपाट देहली-

हेलम् = सतिरस्कारम् । कारागारे=बन्दिगृहे । जननीकरस्थ मोदकम् = मातृहस्तस्थमिष्टान्नम् । अहमहमिकया = अहङ्कारेण "अहमहमिका तु सा स्यात्परस्पर यो भवत्यहङ्कारः" इत्यमरः । क्रीडाकौतुकैः = लीलाकौतूहलैः । व्यत्यायितम् = यापितम् । सोदर्याणाम् = भ्रातृणाम् । सोद्दण्डभावम् = सक्रूरतम् । लज्जानावहनम् = त्रपाया अनङ्गीकरणम् । आर्यस्वभावानाम् = उदारप्रकृतीनाम् । जीवंजीवं-करग्रहणम् =हिन्दुभ्यो "जजिया" नामक राजस्व गृह्यते स्मावरङ्गजीवनकाल इति नेतिहासविदां तिरोहितम् । कपाटस्य=अररस्य, देहल्याः = गृहावग्रहण्याः, पाषाणस्य-प्रस्तर-

रखना क्या महापुरुषों का काम है ? अथवा, जिनके साथ, 'मैं पहले लूँगा, मैं पहले लूँगा' कह कर माता के हाथ के लड्डू खाये, भैया-भैया कहते हुए खेल-कूद में बचपन व्यतीत किया, उन्हीं सहोदर भाइयों को कपटपूर्वक, दम्भपूर्वक, और क्रूरतापूर्वक मार डालना, तथा इस प्रकार की हत्याओ ( हिंसा ) से भी उद्दण्डतावश लज्जित न होना क्या महापुरुषों का काम है ? अथवा, केवल उदारप्रकृति आर्यों ( अर्थात् हिन्दुओं ) को कष्ट देने के लिये ही गोहत्या करना, मूर्तियों को तोड़ना, तथा निर्धन, असहाय और सनातन वैदिक धर्म के अनुयायी हम लोगों से 'जजिया' नामक कर वसूलना क्या महापुरुषों का काम है ? अथवा, वाराणसी आदि देवतीर्थों में, बल-पूर्वक गिरा दिये गये मन्दिरों के भग्नावशेष किवाड़ों, चौखटों,

पाषाणेष्टकादि-प्रचयैरेव स्वमज्जित रचना च महतां कार्यं वा ? अन्तरेव किञ्चन पुरातन वैरं संस्मृत्य खरतरयुद्धेष्वग्रभरत एव प्रेषण भवदनिष्टचिन्तनञ्च महतां कार्यं वा ? यशस्वि शिव-योर्यतर एव महावीरो महाराष्ट्र-युद्धेऽस्मिन् शयिष्यते, तत्र एव गिरि-गुरु-महाभार इव भारतमहावीरः प्रशममेष्यति-इति विचार्यैव श्रीमताऽत्र प्रेषण महतां कार्यं वा ?

येषां दुराचाराणां दलनाय क्षमाऽपि क्षमां त्यजति समुद्रोऽपि मर्य्यादामुल्लङ्घते, भगवान्नारायणोऽपि च करुणां जहाति, तेषां दुर्वृत्तानां दण्डनं भवादृशानां महाराजानामुचितम्, उत प्रतिज्ञा-पालन-व्याजेन महापातकवर्द्धनम् ? इति स्वयमेव विविनक्तु श्रीमान् ॥

---

खण्डस्य, इष्टकादेश्च, प्रचयैः=समूहैः । स्वस्य मज्जितम्="मस्जिद्" इति ख्यात यावनदेवस्थानम्, तस्य रचना । खरतरयुद्धेषु-भयङ्करतरसङ्ग्रामेषु । यतर =ययोरेक । गिरिगुरुमहाभार इव = हिमालयभार इव ।

क्षमा = पृथिवी । क्षमाम् = शान्तिम् । मर्यादाम् = वेलाम् । प्रतिज्ञा पालन व्याजेन=स्वीकृत निर्वहण-च्छद्मना । विविनक्तु=विविच्य विचारयतु ।

---

पत्थरों और ईंटों आदि से ही अपनी मस्जिदों का निर्माण करना क्या महापुरुषों का काम है ? अथवा, मन मे संजोये गये किसी पुराने वैर का स्मरण कर, भयङ्कर युद्धों में आप ही को भेजना तथा आपका अमङ्गल सोचना क्या महापुरुषों का काम है ? अथवा, 'जसवन्तसिंह और शिवाजी में जो भी महायोद्धा इस महाराष्ट्र के युद्ध में धराशायी होगा, वही हिमालय सदृश गुरुतर भार सा भारतीय महावीर विनष्ट होगा,' यह सोचकर आपको यहा भेजना क्या महापुरुषों का काम है ?

आप जैसे महाराजाओं को क्या करना उचित है, जिन दुराचारियों को कुचलने के लिये पृथिवी भी क्षमा छोड़ देती है, समुद्र भी मर्यादा का उल्लङ्घन कर जाता है, भगवान् विष्णु भी करुणा का परित्याग कर देते हैं, उन कुकर्मियों को दण्ड देना, या प्रतिज्ञा पालन के बहाने महापातक को बढ़ाना ? इसका विवेक आप स्वयं करें ।

यश०—[ किञ्चिद्विचिन्त्य ] दूतवर ! तव वाग्मिता मां बलेन वाचयमं विधत्ते, किन्तु शिवस्य वञ्चकता कर्ण-परम्परयाऽस्मद्देशेऽपि प्रतिगृहं प्रसृताऽस्ति । कथमहमेतस्य प्रस्तावेषु विश्वसिमि ?

महा०—[ सक्रोधमिव ] महाराज ! महाराज !! खलु खलु प्रोच्यैवम् !!! मा स्म सनातन धर्मैक-शरणं महाराष्ट्रराजमेवं मिथ्या-कलङ्क-पङ्केनाङ्कय । को ब्राह्मणः, क्षत्रियः, वैश्यः, शूद्रो वा तेन वञ्चितः ? म्लेच्छेष्वेव वा सज्जनः कोऽवमानितः ? अपि तु धर्म-मर्यादा-घस्मराणामपि प्रत्यर्थिनां व्यर्थहिंसा सदैव एतेन निवार्यते । अहह ! देव ! न शोभते युष्मादृक्षाणां मुखादेवं कलङ्क-

न धर्मस्य वास्तविकं गौरवं लाघवञ्च त्वया विचारितमिति कटाक्षः ।

वाग्मिता = सती भाषणशैली । वाचयमम् = मौनिनम् । वञ्चकता = कपटपटुता । अस्मद्देशेऽपि = राजपुत्रस्थानेऽपि । सकलभारतस्यैकदेश-त्वकल्पना न तेदासीदित्यपि पारस्परिककलहकारणम् ।

सक्रोधमिव, सत्यपि क्रोधकारणे नीतिनिपुणतया न क्रोधं वस्तुतोऽङ्गीकृतवानितीवक्तव्यम् । मिथ्याकलङ्कपङ्केन = असत्यापवादकर्दमेन । अङ्कय = चिह्नितं कुरु । धर्ममर्यादाघस्मराणाम् = सनातनधर्मसीमाविध्वंसि-

जसवन्तसिंह—( कुछ सोचकर ) दूतवर, तुम्हारी वाग्मिता मुझे बलात् मौन ( निरुत्तर ) किये दे रही है, किन्तु शिवाजी का छल-छद्म कर्णाकर्णि-कया हमारे देश में भी हर एक घर में सुविदित है । ऐसी स्थिति में मैं उनके कथन पर विश्वास कैसे करूँ ?

महादेव—( क्रुद्ध से होकर ) महाराज ! महाराज ! ऐसा मत कहियें । सनातन धर्म के एकमात्र शरणस्थल महाराष्ट्र राज शिवाजी को इस प्रकार के झूठे कलङ्क के कीचड़ से लाञ्छित मत कीजिये । किस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र को उन्होंने छला है ? अथवा म्लेच्छों मे ही उन्होंने किस सज्जन ( म्लेच्छ ) का अपमान किया है ? प्रत्युत वे तो धार्मिक मर्यादा के विध्वंसक शत्रुओं की भी अकारण हिंसा को बचा जाते हैं और रोकते हैं । हा, महाराज ! आप जैसे लोगों के मुख से इस प्रकार के लाञ्छन शोभा नहीं देते ।

नम्—इत्युक्तवत एव महादेव-पण्डितस्य चक्षुषी बाष्प-बिन्दु द्वयमुदगिरताम्। महादेवश्च पटप्रान्तेन प्रामार्ट्।

सदालोक्याकस्मादेव महाराजस्यापि प्रेमपारावार-पूराप्लुतमिव हृदयम्, बाष्पोद्गारेण सिक्तमिव पक्ष्मपङ्क्ति-युगलम्, पुलकोद्भिन्न-रोम-राजिभिः कण्टकितमिव शरीरम्, उत्साहसुधासारैश्च मुदितमिव मनः समजनि।

ततश्च महाराज उन्नत वीरासनेन स्थित्वा, "पण्डित! क्षम्यताम्, अद्यावधि मित्रं मे महाराष्ट्रराजः साम्प्रतमहं तमालिलिङ्क्षिपामि, अतः सपदि दर्शय तं क्षत्रिय-कुलावतंसम्"—इति भाषितवान्।

---

नाम्। बाष्पबिन्दुद्वयम् = अश्रुपद्द्वयम्, उदगिरताम् = बहिर्निरसारयताम्। पटप्रान्तेन = वसनकोणेन। प्रामार्ट् = परिमार्जितवान्।

महाराजस्य = यशस्विसिंहस्य। प्रेमपारावारपूराप्लुतमिव = स्नेहसमुद्र प्रवाह बुडितमिव। बाष्पोद्गारेण = अश्रुप्रवाहेण। पक्ष्मपङ्क्तियुगलम् = नेत्र लोमराजि द्वयम्। पुलकोद्भिन्न रोमराजिभिः = हर्षोद्भिन्नलोमावलिभिः। उत्साहसुधासारैः = उत्साहपीयूषसम्पातैः।

उन्नतम् = उच्चैः, क्रियाविशेषणम्। वीरासनेन = मल्लालिस्थितिप्रकार विशेषेण। आलिलिङ्क्षिपामि = आलिंगितुमिच्छामि। सपदि = शीघ्रम्।

---

यह कहते कहते ही महादेव पण्डित के नेत्रों से दो अश्रुबिन्दु ढुलक पड़े। महादेव ने उन्हें वस्त्र के छोर से पोंछ दिया।

यह देख कर अकस्मात् ही जसवन्तसिंह का भी हृदय प्रेम के सागर के प्रवाह में निमग्न सा हो गया, उनकी पलकें आँसुओं की धारा से सिंच सी गईं, उनका शरीर प्रसन्नता से रोमाञ्चित हो जाने वाली रोमावली से कण्टकित सा हो गया और मन उत्साह रूपी अमृत की वर्षा से प्रमुदित सा हो गया।

तदनन्तर महाराज जसवन्तसिंह उन्नत वीरासन से बैठकर बोले—'पण्डित जी! क्षमा कीजिये, आज से महाराष्ट्रराज शिवाजी मेरे मित्र हैं, अब मैं उनका आलिङ्गन करना चाहता हूँ, अतः शीघ्र ही उन क्षत्रियकुल भूषण से मिलाइये।'

महादेवस्तु तदाकर्ण्य, व्यजनिनो मुखमवलोक्य, महाराजं चावलोक्य, शनैः प्रोक्तवान् यद् "अचिरादेव शिवः समुपस्थास्यते श्रीचरणयोरन्तिके"। महाराजस्तु तृतीयेनाश्रवणीयं किञ्चन वचनीयमवशिष्यते इत्याकलय्य, व्यजनिनं भ्रूसञ्ज्ञया वहिर्यापयित्वा, पुनर्महादेव-पण्डितमपृच्छत्–"कथय, कथय, कदाऽहं प्रियस्य शिवराजस्य परिष्वङ्गेन म्लेच्छ-पक्षावलम्बन ग्लानिग्लपितमात्मानं मोदयिष्ये–" इति।

अथ महादेवस्तु नम्रीभूय, को जानीते किमिव तस्य कर्णे अचकथत्। यशस्विसिंहश्च तदाकर्ण्य सचकित सप्रफुल्लनयनं द्वित्रि-

व्यजनिनः = व्यजनचालकस्य। उभयमुखनिरीक्षणेन व्यजनी श्रोष्यतीति न वच्मि किमपीति सूचितवान्। अश्रवणीयम् = अश्रोतव्यम्। वचनीयम् = वक्तव्यम्। यापयित्वा = प्रापय्य। परिष्वङ्गेन = आलिङ्गनेन। म्लेच्छानाम् = यवनानाम्, पक्षावलम्बनेन = पक्षग्रहणेन, या ग्लानिः = घृणाविशेषः, तथा ग्लपितम् = क्षीणहर्षम्। मोदयिष्ये = हर्षयिष्ये।

नम्रीभूय तस्य कर्णेऽचकथदिति सम्बन्धः। किमचकथत् तत्राह–को जानीते किमिवेति—भाषणचातुर्यं शिवस्य ग्रन्थकर्तुरेव वा।

यह सुन कर, महादेव ने पखा झलने वाले के मुख की ओर तथा महाराज की ओर देख कर धीरे से कहा कि शीघ्र ही शिवा जी आपके चरणों के समीप उपस्थित होंगे। 'तीसरे व्यक्ति के न सुनने योग्य कोई बात कहना बाकी है जिसे महादेव कहना चाहते हैं', यह सोचकर, महाराज जसवन्त सिंह ने, पखा झलने वाले को भौंहों के इशारे से बाहर भेजकर, महादेव पण्डित से पुनः पूछा—'कहिये, कहिये, मैं म्लेच्छों का पक्षपात करने की ग्लानि से ग्लान (अपनी) आत्मा को प्रिय शिवाजी के आलिङ्गन से कब प्रसन्न कर सकूँगा?'

इसके बाद महादेव ने झुककर जसवन्त सिंह के कान में न जाने क्या कहा जिसे सुनकर जसवन्त सिंह ने आश्चर्य से आँखें फैलाकर दो-तीन बार

श्राऽऽमस्तकमापादं च महादेवं निपुणं निरीक्ष्य ससम्भ्रममुत्थाय, तथैवोत्थितं महादेवं बाहू प्रसार्य सानन्दं परिषस्वजे। द्विस्त्रिर्गाढमालिङ्ग्य च स्वाधिष्ठितोन्नत-तूलिकास्तरणे उपधान-समीपे महादेवेन सहोपविश्य मुहूर्त्तं यावत् सगोपनं शनैः शनैर्बहु संल्लाप। तावत् निशीथ-समय-सूचको भेरीनादः समश्रावि। महादेवस्तु समाकर्ण्य तत् प्रतिनिविवृत्सुरिवोदतिष्ठत्, सपदि सप्रश्रयं महाराजं न्यवेदयच्च—करुणाकर! श्वो रात्रौ पुण्यनगरात् कियत्क्रोशान्तराले एव केनापि व्याजेन स्थेयतां महाराजेन।

महाराजः समपृच्छत्-तत् किं पुण्यनगरमाचिक्रंसते भवान् श्वः?

---

सप्रफुल्लनयनम् = सविकसितनेत्रम्। आमस्तकम् = शिरःपर्यन्तम्। आपादम् = चरणमारभ्य। ससम्भ्रमम् = सशीघ्रतम्। परिषस्वजे = आलिलिङ्ग। द्विः = वारद्वयम्। त्रिः = वारत्रयम्। सुप्रन्ते इमे! स्वेनाधिष्ठिते, उन्नते = उच्चे, तूलिकास्तरणे = तूलविष्टरे। उपधानसमीपे = उपबर्हान्तिके। मुहूर्त्तम् = क्षणम्। संल्लाप = सम्भाषणम् कृतवान्। प्रतिनिविवृत्सुः = प्रतिनिर्वर्तितुमिच्छुः। सप्रश्रयम् = सविनयम्।

आचिक्रंसते = आक्रान्तुमिच्छति।

---

महादेव को सिर से पैर तक भली भाँति देख कर, शीघ्रता से उठकर, उसी प्रकार उठकर खड़े हुए महादेव पण्डित को, बाहें फैला कर सहर्ष आलिङ्गन किया। दो तीन बार गाढालिङ्गन करके जसवन्त सिंह ने अपने नीचे बिछे मोटे रुईदार गद्दे पर मसनद के पास महादेव के साथ बैठ कर, धीरे धीरे, गुप्त रूप से, काफी बातचीत की। तब तक अर्धरात्रि की सूचक भेरी की ध्वनि सुनाई पड़ी। उसे सुनकर महादेव मानो लौटने की इच्छा से उठ पड़े, तथा तत्काल विनयपूर्वक महाराज जसवन्त सिंह से बोले—'दयानिधि! आगामी रात्रि में आप किसी न किसी बहाने पूना नगर से कुछ कोसों की दूरी पर रहें।'

महाराज जसवन्त सिंह ने पूछा—तो क्या आप कल पूना नगर पर आक्रमण करना चाहते हैं?

महा०—औद्वाहिकी वरयात्रा भवित्री।

यश०—बाढम्! अहमपि श्वो वाताहत–भीमा–शीकर–शीतलीकृते क्रमुक–कानने मृगयाभिरामानं विनुनोदयिषामि।

महा०—आम्! अतिसमीचीनमदः।

यश०—[ मन्दं स्मयमानो महादेवमुखमवलोक्य ] धन्योऽसि पण्डित! खरतर-फक्किकासु विप्रतिपत्तिषु च ते महाभ्यासः।

महा०—[ कन्धरां नमयित्वा स्मित्वा च ] असंख्यावच्छेदकतानल्प–कल्पन–कल्पतरौ तर्कशास्त्र एव मम महान् अभ्यासः, येन खड्गा

---

औद्वाहिकी = विवाहसम्बन्धिनी, वरयात्रा "बरात" इत्यपभ्रंशीभूतो लोके।

वाताहतायाः = वायुसञ्चालितायाः, भीमायाः = तन्नाम्न्या नद्याः, शीकरैः = जलकणैः, शीतलीकृते क्रमुककानने = पूगविपिने। विनुनोदयिषामि = विनोदयितुमिच्छामि।

अतिसमीचीनम् = अतिशोभनम्। अदः = मृगयाविनोदनम्।

खरतरफक्किकासु = कठोरपङ्क्तिषु। विप्रतिपत्तिषु = विरुद्धकोटिद्वयोपस्थापकेषु शब्देषु विपत्तिषु च। असङ्ख्यानाम् = अनेकासाम्, अवच्छे॰

---

महादेव—वैवाहिक बारात निकलने वाली है।

जसवन्त सिंह—अच्छा, मैं भी कल वायु से चञ्चल भीमा नदी के जलकणों से शीतल किये गये सुपारी के जङ्गलों में शिकार खेल कर अपना मनोरञ्जन करना चाहता हूं।

महादेव—हाँ, यह बहुत ठीक है।

जसवन्त सिंह—[ मन्द-मन्द मुस्कराते हुए, महादेव के मुख को देख कर, ] धन्य हे पण्डित जी! कठिन फक्किकाओं तथा विप्रतिपत्तियों का आपको बड़ा अच्छा अभ्यास है।

महादेव—[ सिर झुका कर तथा मुस्करा कर ] असंख्य अवच्छेदकताओं की अधिकाधिक कल्पना के कल्पवृक्ष रूप तर्कशास्त्र मे ही मेरा अभ्यास है,

आस्माकीना अवच्छेदकाः, दुरात्मानो यवन-म्लेच्छाश्च अवच्छेद्या इति शिक्षितवानस्मि ।

यश०—किन्तु च्छात्रता चिरं त्यक्तेति तद्विद्याशैथिल्यमपि सम्भोभवीति ।

मह०—महाराज ! भवत्कृपया छात्रतां त्यक्त्वा अध्यापकताम्ङ्गीकृतवानस्मि । साम्प्रतं परस्सहस्रा मम च्छात्रा एव विवादे विजयमासादयितुमलम् ! चिरत्यक्ताध्ययनस्यापि मे विद्यया दिल्लीश्वरोऽपि विस्मितवानस्ति ।

अथ द्वावपि हसन्तौ मन्दमन्दमालपन्तौ द्वारपर्य्यन्तमायातौ ।

---

दकतानाम् = विशेषकनिश्चधर्माणाम् खण्डकतानां वा, अनल्पस्य = अत्यधिकस्य, कल्पनस्य=आविष्कारणस्य, कल्पतरौ=कल्पवृक्षे, भूरिकल्पक इति भावः, तर्कशास्त्रे=न्यायशास्त्र इत्यर्थः । अवच्छेदकाः=खण्डकाः । अवच्छेद्याः=खण्ड्याः ।

छात्रता=छात्रस्य भावः । पराधीनतेति तत्त्वम् ।

अध्यापकताम्=शासनकारिता स्वतन्त्रताञ्च ।

विवादे=विरुद्धे वादे, शास्त्रार्थे सङ्ग्रामे च ।

---

क्योंकि हम लोगों की तलवारें अवच्छेदक ( काटने वाली ) हैं और दुरात्मा यवन-म्लेच्छ अवच्छेद्य ( काटे जाने योग्य ) हैं । मैंने यही सीखा है ।

जसवन्त सिंह—किन्तु छात्रभाव तो बहुत दिन से छूटा है, अतः विद्या में शिथिलता भी हो सकती है ।

महादेव—महाराज ! आपकी कृपा से छात्रभाव को छोड़ कर अब शिक्षक हो गया हूँ । अब मेरे सहस्रों छात्र ही विवाद में विजय प्राप्त करने के लिये पर्याप्त हैं । मेरे चिरकाल से अध्ययन छोड़ देने के बावजूद, मेरी विद्या से, दिल्लीश्वर भी विस्मित हो गये हैं ।

इसके बाद जसवन्त सिंह और महादेव पण्डित दोनों ही हँसते हुए धीरे-धीरे वार्तालाप करते हुए द्वार तक आये । महराज ने पुनः कहा—

निवर्त्तमानं महादेवमनुमन्यमानः श्रीमान् मरुधराधीशः पुनः प्रोवाच-"द्रष्टव्यम्, युद्धविषये यथाऽऽलापो जातस्तथैव विधेयम्।"

महा०—आम, श्रीमन्! तथैव विधातुं विनिवेदयिष्यामि तत्र भवन्तम्।

यश०—आ! एवम्, विस्मृतवानस्मि। तथैव विधातुं महाराष्ट्र-राष्ट्र-सृष्टि-परमेष्ठी निवेदनीयः श्रीमान् शिववीरः।

ततो बाढमित्यभिदधद् महादेवः प्रचलितः, मरु-मेदिनी परि-वृढोऽपि च किञ्चित् स्मयमानोऽन्तः प्रविवेश।

इति षष्ठो निश्वासः।

---

महाराष्ट्राणां राष्ट्रस्य सृष्टेः = उत्पत्तेः, परमेष्ठी = पितामहः। मरुमे-दिनीपरिवृढः = मारवधराधिनाथ। अभिदधत् = कथयन्, अन्तः = मध्ये, उपकार्यायां इति शेषः।

इति श्री शिवराजविजयवैजयन्त्यां षष्ठनिश्वासविवरणम्।

---

'ध्यान रखियेगा, युद्ध के विषय में जैसी बातचीत हुई है, वैसा ही कीजियेगा।'

महादेव पण्डित—हाँ महाराज! वैसा ही करने के लिये महाराज से निवेदन करूँगा।

जसवन्त सिंह—हाँ ठीक है, मैं भूल गया था। वैसा ही करने के लिये महाराष्ट्र रूपी राष्ट्र की रचना करने वाले ब्रह्मा श्री शिवाजी से कह दीजियेगा।

तदनन्तर 'बहुत अच्छा' कहते हुए महादेव पण्डित चल दिये और मरुभूमि के शासक महाराज जसवन्त सिंह भी कुछ मुस्कराते हुए अन्दर चले गये।

शिवराजविजय का छठवाँ निश्वास समाप्त।

॥ श्रीः ॥

# सप्तमो निश्वासः

अयं रेवा-कुञ्जः कुसुमशर-सेवा-समुचितः
समीरोऽयं वेला दर-विदलदेला परिमलः ।
इयं प्रावृड् धन्या नव-जलद विन्यास चतुरा
पराधीनं चेतः सखि ! किमपि कर्तुं मृगयते ॥

—कविरत्नभानुदत्तः

सप्तमे निश्वासे सौवर्णी भविष्यतः सम्बन्धस्य प्रथमपरिच्छेदरूपमनुराग-मौत्सुक्यञ्च वर्णयिष्यति, तदुपक्षिपति कविरत्नभानुदत्तवचसा—अयं रेवाकुञ्ज इति। अयम् = पुरो दृश्यमानः। रेवायाः = एतन्नामिकायास्तरङ्गिण्याः, कुञ्जः = लतादिपिहितगृहविशेषः। एतेन परकीयचक्षुरविषयत्वसूचनद्वारो-द्दीपनत्वं ध्वनितम्। विशिनष्टि कुञ्जम् कुसुमानि = पुष्पाणि, शराः = बाणा यस्य मन्मथस्य। सेवायै = उपासनायै, समुचितः = अत्यन्तमुपयुक्तः। रहसि हि सेविता देवा मनोऽभिलषितमानन्दं समुपस्थापयन्तीति देवप्रियजन-प्रतीतिः। वस्तुतस्तु कुसुमशरसेवा पुङ्कर्तृक कामिनीसन्तर्पणमेव, स्त्रीकर्तृकं च कामुकसन्तर्पणमेवेति वेदितव्यम्। तदुत्थश्चानन्दो ब्रह्मानन्दसहोदर इति नाविदितचर विदितवेदितव्यानाम्। वेलायाम् = तटे, दरम् = ईषत्, विदलन्तीनाम् = विकसन्तीनाम्, एलानाम् = चन्द्रबालानाम्, परि-मलः = सौगन्ध्यम्, यस्मिन् तादृशः। समीरः = पवनः। अस्याप्युद्दीपकत्व

रेवानदी के तट पर स्थित यह कुञ्ज कामदेव की सेवा (रति-क्रिया) करने के लिये अत्यन्त उपयुक्त स्थल है। यह समीर नदी तट पर लगी हुई अर्धविकसित एला (इलायची) की लताओं की मादक

"गर्ज गर्ज क्षणं मूढ ।"

—चण्डी

क्रामन्त्यः क्षत-कोमलांगुलि-गलद्रक्तैः सदर्भाः स्थलीः
पादैः पातित-यावकैरिव गलद्बाष्पाम्बु-धौताननाः ।
भीता भर्तृ करावलम्बित करास्त्वद्वैरि-नार्योऽधुना
दावाग्निं परितो भ्रमन्ति पुनरप्युद्यद्विवाहा इव ॥

—रुद्रटकम्

स्फुटमेव । इयम् = एषा । प्रावृट्=वर्षाकालः । धन्या = रमणीया । कथम्भूता प्रावृडित्याह–नवानाम् = नवीनानाम्, जलदानाम्=वारिदानाम्, विन्यासेषु=विभिन्नरूपेणोपस्थापनेषु, चतुरा = दक्षा । सखि !=हे आलि ! एतेन हार्दिकभावप्रकटीकरणयोग्यत्व ध्वनितम् । चेतः=मानसम् । पराधीनम्=परस्य मनसैवेष्टस्य, आयत्तीकृतम् । किमपि=अनिर्वाच्यम् । कर्तुम्=विधातुम् । मृगयते=अन्विष्यति । विरहिण्या उक्तिः । अनुप्रासः ।

अनेन निश्वासे शास्तिपानस्य पराजयमपि दिदर्शयिषुरिति सप्तशतीप्रर्षितं महामायाभिहितं मन्त्रैकखण्डमपि स्मारयति–"गर्ज गर्ज क्षणं मूढ !" तत्र महिषासुरो वाच्यः ।

पराजिते शास्तिपाने तदीयवनितानां क्रन्दनादिकमपीहैव वर्णनीयमिति तदप्युपनिबध्नाति–क्रामन्त्य = इति । कवेरुक्तिः कमपि नरपतिं प्रति ।

सुगन्ध से युक्त है । वर्षाकाल का मनोहर समय है और आकाश में नये-नये बादल विभिन्न रूपों में छाये हुए हैं । हे सखि ! ऐसे वातावरण में मेरा मन, जो मेरे वश में नहीं है और कभी का दूसरे के अधीन हो चुका है, कुछ ( रमण ) करने को आतुर हो रहा है ।'

—भानुदत्त

'रे मूढ, क्षण भर गरज ले'

—चण्डी

'हे राजन् ! इस समय आपके शत्रुओं की स्त्रियाँ पुनः विवाह करने के लिये उद्यत सी लगती हैं । दर्भयुक्त भूमि को पार करने में

अहह! चिरराय भ्रान्तमस्मन्मन पुण्यनगरान्धतमसवा थिकासु। क्षण तोरण दुर्गोपत्यकोद्यान भ्रमणैरात्मा विनोदनीय

---

अधुना = सम्प्रति। त्वद्वैरिनार्य = त्वदीयशत्रुवनिता। पुनरपि = भूयो ऽपि। ऊर्द्धिवाहा इव = समुत्थितभिवाहा इव। दावाग्निम् = वनाग्निम्। परित = सर्वत्र। भ्रमन्ति, लाजहोमे वह्निप्रदक्षिणा प्रसिद्धा सानुग्रहस्तमह णञ्च। वनिता शिशिनाऽपि क्षताभ्यः = कुशादिना विदारिताभ्य कोमलाभ्यः अङ्गुलिभ्य = चरणाभ्य, गलत् = पतत्, रक्तम् = लोहित, येषु तै। पादै = चरणै। उत्प्रेक्षते-पातितयावकैरिव = निपातनकैरिव। सदर्भा = कुशकाशमयी। स्थली = स्थण्डिलभूमी। होमेऽपि वेदिकाम भित कुशा प्रस्तीर्यन्त इति न विस्मर्तव्यम्। आमन्त्य = छयन्त्य। गलता = प्रच्यवता, बाष्पाम्बुना अश्रुजलेन, धौतम् = प्रक्षालितम्, आननम् = मुख यासा ता। होमकाले धूमव्यासङ्गादश्रूद्गमनमिह न खेदात्। भीता = भयाश्रयीभूता। इह रिपोस्तन च वरादिगुरुत्वनादिति ध्येयम्। भर्तृणाम् = पतीनाम्, करेषु = हस्तेषु, अवलम्बिता करा यासा ता।

अहह!, कचेहचि। लेखशैलीयमेका। चिरराय = चिरम्।

---

उनके पैरों की कोमल उँगलियाँ कुशों से क्षतविक्षत हो गई हैं और उनसे रक्त बह रहा है, मानो पैरों में लगा महावर गिर रहा हो, अश्रुजल के प्रवाह से उनके मुँह धुल गये हैं, और वे पति के हाथ का सहारा लिये हुए, डरी-डरी, दावाग्नि के चारो ओर घूम रही हैं।'

—स्फुट

अहा हा! मेरा मन पूना नगर की घने अन्धकार से व्याप्त छोटी छोटी गलियों में बहुत समय तक भ्रमित हो चुका। अब थोड़ी देर तोरण दुर्ग की घाटी के उद्यान में घूमकर मन बहलाना चाहिये। देखिये यहाँ कैसा अनुपम आनन्द प्राप्त हो रहा है।

इति दृश्यतां कीदृश आनन्द-सन्दोहोऽत्रेति। तोरण दुर्ग-समीपे एव सुदृढ सुन्दर मारुति-मन्दिरम्, ततोऽपि पूर्वतः क्रोशार्द्धं यावद्विस्तृत रमणीयमुद्यानम्। अर्द्धव्यतीतोऽयमाषाढः, कदाचिज्जलदपटलाच्छन्नम्, कर्हिचिच्च निर्मेघमपि सान्द्र-नील गगनतलमालोक्यते। क्वचिन्मयूर नृत्यानि, क्वचिच्चातक-विरावाः, क्वचिज्जलप्रवाहा, क्वचिद्धारासाराः, क्वचनेन्द्रगोप संसर्गाधिक मनोहराणि शाद्वलानि प्रतिभान्ति। पञ्चषाणि दिनानि चण्डकर करैः ससार

---

अन्वयः। पुण्यनगरस्य, अन्धतमसवीथिकासु=गाढान्धकारव्याप्तस्थलेषु। तोरणदुर्गस्य उपत्यकायाम्=अद्रेरासन्नभूमौ, उद्यानस्य=वाटिकाया, भ्रमणे.=पर्यटने। आत्मा=अन्तःकरणम्। विनोदनीयः=आनन्दयितव्य। आनन्द-सन्दोहः=आह्लादसमूह। सुदृढम्=सुघटितम्, त्रोटयितुमनर्हमिति यावत्।

विस्तृतम्=विस्तीर्णम्। आषाढ=शुचि, मासविशेष। जलदपटलाच्छन्नम्=मेघसमूहसमावृतम्। सान्द्रनीलम्=घनीभूतनीलम्, अतिनीलम्। चातकस्य विरावाः=शब्दा। धारासाराः=धाराप्रपाता। इन्द्रगोपानाम्=वर्षाकालिकरक्तवर्णकीटविशेषाणाम्, संसर्गेण=सम्पर्केण, अधिकमनोहराणि-नितान्तरम्याणि। शाद्वलानि=शादवन्ति चेत्राणि, तृणपूर्णानि। "नड्शादाड्ड्वलच्" । "शाद्वल शादहरिते" इत्यमरः। प्रतिभान्ति=शोभन्ते। चण्डकरकरैः=भास्करदीधितिभि। कृशिमानम्=कृशताम्। "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा"। 'रश्रुतोहलादेर्लघो"।

---

तोरण दुर्ग के समीप ही हनुमान् जी का सुदृढ तथा सुन्दर मन्दिर है। उस मन्दिर से पूर्व की ओर एक रमणीय उद्यान है जो मील भर तक फैला है। आधा आषाढ व्यतीत हो चुका है। कभी मेघसमूह से ढका हुआ और कभी मेघ रहित आकाश घने नीले रंग का दिखाई पड़ता है। कहीं मयूरों के नृत्य, कहीं पपीहों की पुकारें, कहीं जल प्रवाह, कहीं जल की धारा का गिरना, और कहीं बीरबहूटी से युक्त होने के कारण अधिक मनोहर लगने

सन्ताप्य अद्य केश्चिन्मेघखण्डैः किमपि व्याप्तं नभः—इत्युष्णता किञ्चित् क्रिमिमानमालम्बते।

मारुतिमन्दिरात् किञ्चिद् दूरं वाटिकामध्ये सुदृढौ द्वौ स्तम्भौ, तयोरुपरि तिर्य्यग् विन्यस्तो दारुस्तम्भः, एतन्मध्यत एव विलम्बमान शृङ्खला-युग-द्वयम्, एतत्प्रान्ते च विलम्बमाना प्रतिकोणासक्तैक शृङ्खला सुरुचिरा पीठिकेव सुभगेयं दोलिका। सर्वतोऽप्यस्यां शिल्पि-शिल्प चमत्कारः। विविधा लताश्च स्तम्भौ वेष्टयित्वा पारस्परिक-सर्वाङ्गीण-संश्लेषेणेव प्रफुल्लास्तथाऽवतिष्ठन्ते;

---

सुदृढौ=सुपुष्टौ। तिर्य्यक्=तिरश्चीनः। 'पट'या'बेंडी' इति हिन्दी। दारुस्तम्भः=काष्ठस्थूणा। शृङ्खलायुगयोर्द्वयम्, द्वे द्वे शृङ्खले स्थानद्वय इति भावः। एतत्प्रान्ते=शृङ्खलान्तभागे। विलम्बमाना=तत्साहचर्येण निम्नभागे स्थिता। कोणं कोणं प्रतिकोणम्, आसक्ता=लग्ना एका शृङ्खला यस्याः सा। सुभगा=शोभना। दोलिका=क्रीडार्थदोलायन्त्रम् 'झूला'इति भाषा। शिल्पि-शिल्पचमत्कारः=कारुनिर्माणकौशलम्। पारस्परिकेण=अन्योन्यजातेन, सर्वाङ्गीणेन=निखिलशरीरभवेन, सर्वविधेनेति यावत्, संश्ले-

---

वाले हरी घास के मैदान सुशोभित हो रहे हैं। आकाश, पाँच-छः दिन सूर्य की प्रचण्ड किरणों से संसार को तपाकर आज कुछ मेघखण्डों से घिर गया है अतः गर्मी कुछ कम हो गयी है।

हनुमान् मन्दिर से कुछ दूर पर, वाटिका के मध्य में दो मजबूत खम्भे हैं। उन पर एक लकड़ी का खम्भा बेंड़ा रखा गया है। इस खम्भे के मध्य में चार शृङ्खलायें लटकी हुई हैं, जिनके छोर पर एक मनोहर काष्ठफलक लटक रहा है, जिसके चारों कोने एक एक शृङ्खला से बँधे हुए हैं। इस प्रकार परम सुन्दर झूला सजा हुआ है। काष्ठफलक में चारों ओर शिल्पियों के शिल्प का चमत्कार दिखाई पड़ रहा है। अनेक प्रकार की पुष्पित लतायें इन खम्भों से लिपटी हुई हैं, ऐसा लगता है मानो वे एक दूसरे के अङ्गों

यथा विविध-कुसुममयी भ्रमद्-भ्रमर-निकर-झंकृता दोलिकेयं दर्शनमात्रेण चक्षुष्मतां मनो हरति। एतद्दोलिकाधिष्ठित शाद्वलस्य मध्ये मध्ये श्वेत-श्यामादि-पाषाण-निर्मिता रमणीया आसन्द्यः, प्रत्यासन्दि चोभयतः प्रफुल्लसुमाः क्षुपाः, प्रतिक्षुपमालवालेष्वपि सकोरका विविधा अङ्कुराः शोभन्ते। वर्तुल-क्षेत्रं चैतत् परितः कुसुमिताः कदम्बकुटाः, तेषां चैकैकमन्तरा महाफला माकन्द-द्रुमाः, मध्ये मध्ये च विहित पार्श्वस्थ पादपाश्लेषा मन्दमन्दम-

---

पेण = ससर्गेण। प्रफुल्लाः = पूर्णतया विकसिताः। भ्रमताम् = सञ्चलताम्, भ्रमराणां निकरैः झङ्कृता = निनादिता। चक्षुष्मताम् = वास्तविकरूपेण द्रष्टुं शक्तिमताम्, रसिकानामिति यावत्। अरसिकास्तु काष्ठकुड्याश्मसन्निभाः सत्यपि नेत्रद्वये किमवलोकयेयुः। एतया दोलिकयाऽधिष्ठितस्य शाद्वलस्य = तृणहरितस्य। आसन्द्यः = आसनविशेषाः। "कुर्सी" इति हिन्दी। प्रफुल्लानि सुमानि = कुसुमानि येषु ते क्षुपाः = ह्रस्वशाखा द्रुमाः। आलवालेषु = जलाधारेषु वृक्ष परितो रचितेषु। सकोरकाः = सकलिकाः। अङ्कुराः = नूतनोद्भिदः। वर्तुलं चैतत् क्षेत्रम् = गोलस्थलम्। परितः=सर्वतः। तद्योगे द्वितीया। कदम्बकुटाः=कदम्बवृक्षाः। महाफलाः = बहुफलमयाः, बृहत्फला वा। माकन्दद्रुमाः = आम्रवृक्षाः।

---

का गाढालिङ्गन करने के कारण प्रफुल्लित हों। विकसित लताओं से आवेष्टित होने के कारण यह झूला नाना प्रकार के पुष्पों से युक्त है और इस पर भौंरों के समूह गुञ्जार कर रहे हैं। इसे देखकर ही दर्शकों का मन मुग्ध हो जाता है।

जिस शाद्वल (लॉन)में यह झूला सजा हुआ है, उसके बीच बीच में सफेद, काले आदि रंग के पत्थरों की बनी कुर्सियाँ हैं। प्रत्येक कुर्सी के दोनों ओर विकसित पुष्पों वाले पेड़ हैं और प्रत्येक पेड के आलवाल (क्यारियों)में कलियों से युक्त अनेक छोटे-छोटे पौधे अङ्कुरित हो आये हैं। इस गोलाकार क्षेत्र (शाद्वल=घासों से हरे) के चारों ओर पुष्पित कदम्ब वृक्ष हैं। एक एक कदम्ब वृक्षकेबाद बड़े-बड़े फलोंवाले आम्रवृक्ष हैं;और बीच-बीचमें, समीपस्थ वृक्ष से

निलालोला लता लसन्ति।

अमूं दोलां समवयस्कास्तिस्रश्चुम्बितयौवनाः सुन्दर्यः समारूढाः। एका हस्ताभ्यां शृङ्खले धृत्वा मध्ये समुपविष्टा, इतरे च धृतशृङ्खले अभितः समुत्थिते स्थोपवेशाघातैर्दोलां दोलयतः।

यासांस्यासां महाराष्ट्र-कन्योचितानि अतिरमणीयानि। ये एते उत्थायमुत्थाय दोलां चालयतः, तयोर्दक्षतो वामतश्च विभज्य प्रसा-

---

चिह्नित-पार्श्वस्थ-पादपाश्लेषाः=कृतासन्नवृक्षसम्पर्काः। अनिलेन=वायुना, आलोलाः=ईषच्चञ्चलाः। लताः=प्रततयः। लसन्ति=शोभन्ते। द्रुमाणां लतानाञ्च प्रस्तुते सम्पर्के समभिधीयमानेऽप्रस्तुतानां नायकनायिकानामालिङ्गनादिप्रतीतेः समासोक्तिः।

समम्=समानम्, वयः=अवस्था यासां ताः। चुम्बितम्=लब्धम्, यौवनम्=तारुण्यं याभिस्ताः। सुन्दर्यः=अभिरामाः। स्थोपवेशाघातैः=मध्ये मध्ये समुपवेशेन जातैस्ताडनैः, दोलयतः=चालयतः।

महाराष्ट्रकन्योचितानि=महाराष्ट्रीयबालिकार्हाणि। ये एते, "ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्" इति प्रगृह्यता "प्लुतप्रगृह्या" इत्यनेन प्रकृतिभावश्च। उत्थायमुत्थायम्=ऊर्ध्वं स्थित्वा स्थित्वा, णमुलन्तम्। दक्षतः=दक्षिणतः। प्रसाधिताः=विरचिताः। पीतश्च तद्रक्तं पीतरक्तम्, तच्च

---

लिपटी हुई, हवा के झोंकों से धीरे धीरे हिलने वाली लताएँ सुशोभित हो रही हैं।

इस झूले पर, समान उम्र की तीन नवयुवती सुन्दरियाँ चढ़ी हुई हैं। उनमें से एक दोनों हाथों से शृङ्खलाओं को पकड़े हुए बीच में बैठी है, और शेष दोनों युवतियाँ शृङ्खलाओं को पकड़े हुए, दोनों ओर खड़ी हुई, अपने बैठने के आघात से (पेंग मारकर) झूले को झुला रही हैं।

इन सब के वस्त्र महाराष्ट्रदेश की कन्याओं के अनुरूप अति सुन्दर हैं।

इनमें जो दो युवतियाँ उठ-उठ कर झूले को चला रही हैं, उन्होंने बालों को दाहिनी ओर और बाईं ओर विभाजित कर के (बीच में माँग

धिताः केशाः, पीत रक्त-कौशेय-सूत्र-ग्रन्थन-पाटवाङ्किता कबरी, विविध-मणि-जटित-बालपाश्या, कनककुसुमालंकृतं शिरः, सुवर्ण-सूत्र वेष्टनाविष्कृत-बहुल-सुषमा कुण्डलीकृत्य वेष्टिता वेणी।

सिन्दूर-रेखाङ्किता कबरी-मध्य-रेखा, मौक्तिक-गुच्छाङ्कित-सुवर्णाभरणालङ्कृता नासा। आरक्त कौशेय-कूर्पासक-समाच्छन्नमारब्ध-

कौशेयसूत्रम् = पट्टसूत्रम्, तस्य ग्रन्थनपाटवेन=गुम्फनचातुर्येण, अङ्किता= भूषिता "कबरी = केशवेशः"। एवमेवामरः। विविधमणिभिः = अनेकप्रकारकरत्नै, जटिता = मिलिता, बालपाश्या = सीमन्तभूषणम्। कनककुसुमैः = सौवर्णपुष्पैः, अलंकृतम् = भूषितम्। शिरः = शीर्षम्। सुवर्णसूत्रवेष्टनेन = हिरण्यतन्तुवलनेन, आविष्कृता = प्रकटीकृता, बहुला= प्रचुरा, सुषमा=परमशोभा, यस्याः सा। कुण्डलीकृत्य=कुण्डलाकृतिं प्रापय्य, वेष्टिता = त्रुटिता। वेणी = केशबन्धनम्। सिन्दूररेखया = नागोद्भव-लेखया, अङ्किता = लिखिता। कबरीमध्यरेखा = केशवेशान्तरालगत-लेखा। मौक्तिकगुच्छेन = रत्नस्तवकेन, अङ्कितम् = युतम्, यत् सुवर्णाभरणम् = हिरण्यरचितमाभूषणम्, तेन, अलङ्कृता = मण्डिता। नासा = नासिका। आरक्तेन = समन्ततो रक्तवर्णेन, कौशेयकूर्पासकेन = पट्टवस्त्रचोलकेन, समाच्छन्नम् = नितान्तगोपितम्। आरब्धः = उपक्रान्तः, कुचयोः = स्तनयोः, उन्नतिमहोत्सवः = उद्गमनोदयः, यस्मिंस्तत्।

निकाल कर) सँवार रखा है। उनकी कबरी पीले-लाल रेशमी धागों से चतुरता पूर्वक गूँथी गई है, और बेंदी (सीमन्तभूषण) अनेक प्रकार की मणियों से जटित है। उनका सिर सोने के पुष्पों से सजा हुआ है। उनकी वेणी, जिसे लपेट कर उन्होंने जूड़ा बना लिया है, स्वर्णसूत्रों से संयुक्त होने के कारण अत्यधिक सुन्दर लग रही है। उनकी माँग सिन्दूर की रेखा से अङ्कित है और नासिका में मोती के गुच्छे से युक्त स्वर्णाभूषण शोभित हो रहा है। उभरते हुए उरोजों से रसिकों के नेत्रों को वश में करने वाला उनका वक्षस्थल गुलाबी रंग की रेशमी चोली से आच्छादित है। कर्णफूल

कुचोन्नति-महोत्सवमवलोचक नयन वशीकरणं वक्षः। कर्णिका-युगल चोचुम्ब्यमानं दोलन-श्रमोद्भूत स्वेद-कणिका-पटल परि-लसितं समीर-सरणान्दोलित चूर्ण-कुन्तल वीजितं कपोल युगलम्। सौवर्ण मौक्तिक-राजि-राजित ग्रैवेयकाङ्किता कम्बुग्रीवा, दोला-दोलन-दोदुल्यमान-ललित-ललन्तिका-लालितमुरः, पद्म-कन्दभङ्गया

अवलोचकानाम् = द्रष्टृणाम्, नयनानाम् = नेत्राणाम्, वशीकरणम् = आयत्तीकरणम्। वक्षः = उरस्थलम्। कर्णिकायुगलेन = कर्णभूषणद्वयेन, "कर्णिका कर्णभूषणम्" इति हैम, चोचुम्ब्यमानम् = वार वार स्पृश्यमानम्। दोलनश्रमेण=दोलाखेलनश्रान्त्या, उद्भूतानाम्=जातानाम्, स्वेदक णिकानाम् = घर्मजलबिन्दूनाम्, पटलेन = समूहेन, परित, लसितम् = शोभितम्। समीरसरणेन = वायुचलनेन, आन्दोलितैः = सञ्चालितै, चूर्णकुन्तलैः = अलकै। 'अलकाश्चूर्णकुन्तला" इत्यमर। वीजितम् = धूतव्यजनम्, कपोलयो अलका लसता इति यावत्। सौवर्णा-नाम् = सुवर्णमयानाम्, मौक्तिकानाम्=मणीनाञ्च। राजिभिः=श्रेणिभि, राजितम् = लसितम्, यद् ग्रीवाया भव ग्रैवेयकम्-कण्ठाभरणम्, 'कुल-कुक्षिग्रीवाभ्य श्वास्यलङ्कारेष्वि ति ढकञ्। तेन, अङ्किता- मण्डिता। कम्बु ग्रीवा = शङ्खाकारा शिरोधरा। दोलादोलनेन = दोलिकाहिल्ल लनेन, दोदु ल्यमानया = वार वार चलन्त्या, ललितया = शोभनया, ललन्तिकया = आलम्बिलम्बितया कण्ठिकया, लालितम् = शोभितम्। उरः = वक्ष। पद्मानाम् = पद्मसङ्घातकानाम्, कन्दानाम् = वस्त्रस्थानाम्, भङ्गया =

उनके, झूला झूलने में होने वाले परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदों से सुशोभित दोनों कपोलों का वार वार स्पर्श कर रहे हैं। हवा चलने से उनके गालों की लटें इस प्रकार हिल रही हैं मानो कपोलों को पखा झल रही हों। उनका शङ्ख के समान गला मोतियों की पंक्ति से सुशोभित स्वर्णमय आभूषण से, तथा वक्षस्थल झूला झूलने से वार-वार हिलने वाले हार से सुशोभित हो रहा है। उन्होंने पद्मकन्द की रीति से हरे

परिहितं हरितं परिधानम्, हंसक काञ्ची कङ्कणादि-मण्डितान्यङ्गानि। या चैयं मध्यतः समुपविष्टा सा तदपेक्षयाऽप्यल्पं वयो जुषमाणा, धम्मिल्ल-समुल्लसन्मूर्द्धभागा, कुङ्कुम-बिन्दु-सुन्दर-ललाटा, कज्जलाञ्जन-रञ्जित-लोचन-युगला, नागवल्ली-दल-रसना-संरक्ताधर-विवर्द्धित-रसिकजन-पिपासा, वृन्ताक-श्यामा, कौशेय-

प्रकारेण। महाराष्ट्रदेशीयाः परिधानीयं तथा परिदधति यथा पश्चात् कच्छा जायत इति तात्पर्यम्। तत्र पश्चाद्भागे कच्छमेकं त्रिधा ... न्तर्गतं ... म्, नीवी तुरीया, उपरिधारणीयभागः स्कन्धप्रदेशेऽवलम्ब्य यत्नमेति पञ्चतन्यं स्यनुभवसिद्धः। परिहितम् = धारितम्। हरितम् = हरिद्वर्णम्। परिधानम् = वासः। हंसकेन = नूपुरेण, काञ्च्या = रशनया, कङ्कणादिभिः = वलयादिभिश्च, मण्डितानि = भूषितानि, अङ्गानि = चरणाद्यवयवाः। तदपेक्षया = तयोर्दोलाचालिकयोरपेक्षया। जुषमाणा = सेवमाना। धम्मिल्लेन = संयतकेशपाशेन, समुल्लसन् = शोभमानः, मूर्धभागो यस्याः सा। 'धम्मिल्लः संयताः कचाः' इत्यमरः। कुङ्कुमबिन्दुना सुन्दरम् = मनोहरम्, ललाटम् = गोधिर्यस्याः सा। "ललाटमलिकं गोधिः" इत्यमरः। कज्जलाञ्जनेन = कज्जलविन्यासेन, रञ्जित लोचनयुगलं यस्याः सा। नागवल्लीदलस्य = ताम्बूलपत्रस्य, रसनेन = आस्वादनेन, आ = समन्तात्। संरक्ताभ्याम् = अतिलोहिताभ्याम्, अधराभ्याम् = दन्तच्छदाभ्याम्, विवर्द्धिता = वृद्धिं नीता, रसिकजनपिपासा यया

रंग की साड़ी पहन रखी है और उनके चरण आदि अङ्ग नूपुर, करधनी (काञ्ची), कङ्कण आदि आभूषणों से सुशोभित हो रहे हैं।

झूले के बीच में बैठी रमणी, उपर्युक्त दोनों युवतियों की अपेक्षा कम उम्र की, सँवारे हुए बालों से सुशोभित सिर, कुङ्कुम बिन्दु से सुशोभित ललाट और काजल लगे नेत्रों वाली, तथा पान खाने से लाल हो गये अधरोष्ठों से रसिकों की प्यास को बढ़ाने वाली है। वह अपने उभरते उरोजों वाले वक्षस्थल पर, बैंगनी रंग की, रेशमी सूत

सूत्र-रचितां समावृतार्द्धांयाम् सुवर्णसूत्र-रचित-लता-वितान-रोचित-प्रान्तां कञ्चुकीमभिनव-समासादित-मांसल-भावेन वक्षसा बिभ्रती, दोला-दोलन-वेग-भङ्ग-परवशतया उच्छालमुच्छालमुरसि

---

सा। स्वभावत रक्तयाऽप्युत्तम ताम्बूलभक्षणेनातितरा लौहित्यमिति विशेषण सार्थक्यम्। अक्तरक्तेति छद विपरीतार्थाभास इति "ताम्बूलीदलरसना"—इति पदस्य पाथक्यमाश्रित्य व्याचक्षणास्तु भिक्षुकाममनानुचिन्तया स्थाल्यनधिश्रयणाद्यो नटो न तस्य नमस्या" कञ्चुकीं विशिनष्टि—वृन्ताकश्यामाम=भण्टाकीकृष्णाम् 'बैंगनी रंग की' इति हिन्दी। "वृन्ताक स्त्री तु वार्ताकुर्भण्टाकी भाण्टिकाऽपि च" इति निघण्टुः। कौशेयसूत्ररचिताम् = पट्टसूत्रनिर्मिताम्। समावृतम् = समाच्छन्नम्, अर्धं यस्याः सा ताम्। अर्धबाहुकामिति यावत्। "अधबहियाँ" इति हिन्दी। सुवर्णसूत्रे = हैमवततुभिः "जरी" इति हिन्दी, रचितानाम्= निर्मितानाम्, लतानाम् = वल्लीनाम्, वितानेन = विस्तारेण, रोचित = भ्राजमान, प्रान्त = कोणभागो यस्यास्ताम्। कीदृशेन वक्षसा, तत्राह—अभिनव = नूतन अभिनवमिति समासादनक्रियाविशेषण वा। समासादित = प्राप्त, मांसलभावः = स्थूलता येन तेन। समत्वद्यमानकुचौन्नत्यनेनेति यावत्। नक्षत्रमाला धारयन्तीति बालिका विशेषणम्। कीदृशीं नक्षत्रमालाम्, तत्राह दोलादोलनेन = दोलायन्त्रहिल्लोलनेन, या वेगभङ्गः = जवरोधः, तत्परवशतया = तदायत्ततया। उच्छालमुच्छालम्=उच्छाल्य उच्छाल्य। "उछल उछल कर" इति हिन्दी।

---

से बनी आधी बाँह का ढक्कन वाली, सोने के तार (जरी) से बने बेल बूटों से सुशोभित किनारों वाला कञ्चुकी धारण किये है। वह सत्ताईस मोतियों से बनी एक माला पहने है जो पेंग मारने से झूले का वेगभङ्ग होने के कारण उछल उछल कर उसके वक्षस्थल पर गिर रही है, और जिसका नार का आधा भाग उसके वक्षस्थल से नीचे लिपटे लाल वस्त्र

निपतन्तीं नक्षत्रमाला कुच-प्रदेशाधस्तात् परिवेष्टित-शोण-चैलाञ्चलापातिनीमपि तदुपरिभागे प्रत्यक्षतो दरादृश्यमान-पूर्वार्द्धां धारयन्ती, सुवर्ण-विजित्वर वर्णा मूर्तिमतीव शोभा, धारितदेहेव प्रेम-परम्परा कलितावतारेव च रतिरासीत्।

शनैः शनैर्दोलाया वेगो ववृधे। एकतो गच्छन्ती दोला याव-न्निवर्तते, तावत्तस्या दिशि स्थिता साङ्कहारमुपवेश-मुद्रया दोलां तथा हन्ति, यथा सा साधिकवेग परतो निवर्तते स्म। ततोऽप्यव-

---

उरसि = वक्षसि। निपतन्तीम् = स्रवन्तीम्। नक्षत्रमालाम् = सप्तविंशतिमौक्तिकमयीं हारयष्टिम्। "नक्षत्रमाला स्या सप्तविंशतिमौक्तिकै" इत्यमरः। कुचप्रदेशाधस्तात् = स्तनतटाधोभागात्। परिवेष्टितम् = वलितम्, यत् शोणम् = रक्तम्, चैलम् = वसनम्, तस्य, अञ्चले = कोणे, आपातिनीम् = पतनशीलाम्। तदुपरिभागे = चैलाञ्चलोपरिप्रदेशे। प्रत्यक्षतो दरादृश्यमानम्=भृशं समवलोक्यमानम्, पूर्वार्धं यस्यास्ताम्। धारयन्ती=बिभ्रती। सुवर्णस्य विजित्वरः=जयनशील, वर्णो यस्या सा। अतिगौरीत्यर्थः। मूर्तिमती = रूपधारिणी। धारितदेहा = गृहीतशरीरा। कलितावतारा = कृतावतरणा। रतिः = कामपत्नी।

ववृधे=एधाञ्चक्रे। साङ्कहारम्=अङ्गविक्षेपसहितम्। क्रियाविशेषणम्। उपवेशमुद्रया=आसनप्रकारेण। हन्ति=ताडयति। साधिकवेगम्=अतिजवेन सह। अवधिपर्यन्तम्=यावद् गन्तु शक्नोति श्रान्तलायन्निता सती तस्मी-

---

पर गिर रहा है, तथा आधा भाग स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। उसके शरीर का रंग सोने से भी अधिक सुन्दर है। उसे देखकर, ऐसा लगता है मानो शोभा ही मूर्तिमयी हो उठी हो, प्रेम परम्परा ही देह धारण कर के आ गई हो, रति ही अवतरित हो गई हो।

धीरे धीरे झूले का वेग बढने लगा। एक ओर जाता हुआ झूला जब तक उस (दूसरी ओर स्थित रमणी झटके से बैठती हुई, इस प्रकार पेंग मारती है कि झूला और भी तेजी के साथ दूसरी ओर लौट जाता है। झूले के, उस दिशा में जितनी दूर जा सकता है उतनी दूर पहुँचते पहुँचते उस

धिपर्य्यन्तं गतायां च तस्यां तद्दिशि सज्जा इतराऽपि तथैवानुकरोति। द्वयोरपि गत्योरन्तरेषु मञ्जीर-रशनादीनां विलक्षणशिञ्जनं भवति। प्रतिगतं च प्रत्यागतञ्च तासां सर्वासां वासांसि वारमेकमेकतः परतश्च परतः समुड्डीयन्ते। कर्णाभरणीकृतानां पाटलि-कुसुमानां केशेषु व्यासञ्जितानां मल्लिका-कोरकाणां सर्ववस्त्राणामुपरि लम्बमानानां च विशिथिल-दलानि परिस्खलन्ति स्म। एवं दोला-दोलनासक्ताभिरेव ताभिरारब्धा महामधुर-माध्वीक-मधुरिम-धिक्काराधिकार - धारिणी प्रफुल्लोल्लास - वल्लज - मल्लार - रागानुसारि-

मान यावत्, सज्जा=सन्नद्धा,हन्तुम्। अनुकरोति,हन्तीति यावद्। मञ्जीररशनादीनाम्=नूपुरकाञ्चीप्रभृतीनाम्। विलक्षणम्=अलौकिकम्, शिञ्जनम्=भूषणशब्दः। "भूषणानाञ्च शिञ्जितम्" इत्यमरः। प्रतिगतम् = प्रतिगमनम्। प्रत्यागतम्=प्रतिपराङ्वृत्ति। कर्णाभरणीकृतानाम्=श्रवोभूषणीकृतानाम्। पाटलिकुसुमानाम् = अमोघापुष्पाणाम्। व्यासञ्जितानाम्=निबद्धानाम्, चितानामिति यावत्। मल्लिकाकोरकाणाम् = मालतीमुकुलानाम्। सर्ववस्त्राणाम्=निखिलवाससाम्। लम्बमानानाम्, सुमानाम्, विशिथिलदलानि=विश्लथबन्धनानि पत्राणि। परिस्खलन्ति स्म = पेतुः। दोलादोलनासक्ताभिः=दोलान्दोलननिरताभिः। आरब्धा=प्रस्तुता। महामधुरस्य=अतिस्वादुनः, माध्वीकस्य="महुआ" इति भाषाया प्रसिद्धस्य, मधुरिम्णः=माधुर्यस्य, धिक्कारे=तिरस्कारे, योऽधिकारः=स्वाम्यम्, तस्य धारिणी। अनुप्रासः। एवमन्यत्राप्यनुचिन्तनीयः। लोकोत्तरमाधुर्य-

और पहले से ही पेंग मारने को तैयार रमणी भी वैसा ही करती है। इन दोनों रमणियों के पेंग मारने के समय नूपुर, काञ्ची आदि आभूषणों की विलक्षण ध्वनि होती है। हर बार झूले के आने और जाने में, इन सभी रमणियों के वस्त्र एक बार एक ओर और दूसरी बार दूसरी ओर उड़ते हैं। कर्णाभूषण के रूप में धारण किये गये पाटलिपुष्प और केशों में गूँथी गई मल्लिका पुष्प की कलियाँ उनके वस्त्रों पर लटक रही थीं और उनकी पखुड़ियाँ टूट-टूट कर गिर रही थीं। इस प्रकार झूला झूलने में लगी

णीय गीतिगातुम् । तथा हि—

घन पटली बहु वर्षति तोयम्,
घनपटलीनमुखः पथिकोऽयम् ।
बहुधारासाराश्च समुदिता
बहुधा रागे रसिका मुदिताः ॥

वर्तीति भाव । प्रफुल्लः=विकसनशील, उल्लासवल्लजः=प्रकृष्टोल्लास, बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपो वा, यो मल्लाररागः=मल्लारीत्यभिधीयमाना मेघरागस्य रागिणी, तदनुसारिणी=तदनुकूला, गीति, प्रधानारब्ध-क्रियानिरूपितस्य कर्मत्वस्याभिधानान्न गीति निरूपिताऽप्रधानकर्मत्वाश्रया द्वितीयेति स्वादुमिसूत्रस्यभाष्यानुसारी पूर्वाभिहित पन्था ।

घनपटली=मघराजि । बहु=अधिकम् । अयम्=साक्षाद् दृश्यमान । पथिक=यात्रिक, घनपटे=मेघखण्ड, लीनम्=सलग्नम्, मुखम्=वदन यस्य स । सर्वथा मेघे दत्तदृष्टिरिति तात्पर्यम् । अथवा घने=सान्द्रे, पटे=वस्त्रे, लीनम्=छन्नम्, मुख यस्य स । मेघस्योद्दीपकत्वात्तद्दर्शन पथिकः परिहरतीति भाव । बहूना धाराणामासाराः=सम्पाताः । समुदिताः=सम्यगुदय प्राप्तवन्त, मेघेभ्य प्रादुर्भूता इति यावत् । रसिकाः=रागिणः । बहुधा=अनेकधा । रागे=विषयाभिलाषे । मुदिता=प्रसन्नता गता । प्रथमचरणे "घनपटली" ति सार्थकम्, द्वितीय च निरर्थकम् । प्रथमद्वितीयनाद्योर्यम्यत्वे "मुखम्" नाम यमकम्, तृतीयचतुर्थयोश्च "पुच्छम्" नामेति तयो सर्वाष्टिः । अन्त्यानुप्रासोऽपि ।

हुई उन रमणियों ने महामधुर माध्वीक की मधुरिमा को भी धिक्कारने का अधिकार धारण करने वाली, उत्कृष्ट उल्लास के अभिव्यञ्जक 'मलार' नामक मेघराग की अनुसारिणी यह गीति गाना प्रारम्भ कर दिया ।

मेघ-समूह बहुत अधिक जल बरसा रहा है । यह पथिक मोटे कपड़े से अपना मुँह ढके हुए है ( अथवा निर्निमेष नेत्रों से मेघखण्ड को देख रहा है । ) मूसलाधार वृष्टि हो रही है । रसिक लोग नाना प्रकार की प्रेम क्रीडाएँ कर के ( अथवा विभिन्न प्रकार के रागों को सुन कर ) प्रसन्न हो रहे हैं ।

एव कियत्कालगानेनैव श्रान्तयोस्तयोः पार्श्वं परिवर्तिन्योः स्वेदैः कपोलौ क्षालितौ, वसनमार्द्रितम्, कञ्चुकी कुचयोर्दृढ सलग्ना, वपुर्वेपथुना चुम्बितम्, श्वास-प्रश्वासयोर्गतिस्त्वरिता, आनन च्छटा च काञ्चन कमनीयां शोणता शोभामकल्यत्। ललिता-विशाखाभ्या विमानेन गगनतल नीयमाना राधिकेव चेयमपरा दोलापट्टिकोपविष्टा नीप शाखाप्रचुम्बि दोला वेगमसहमाना कदा·

कियत्कालगानेन=स्वल्पसमयव्यवग्नेन। पार्श्वपरिवर्तिन्यो=पार्श्वं परिवर्त्तनकारिण्यो। स्वेदैः घर्मबिन्दुभि। क्षालितौ=धौतौ। वसनम्= वस्त्रम्। आर्द्रितम्=क्लेदितम्। कञ्चुकी=अर्धगाढुका। सलग्ना= ससक्ता। वपु.=शरीरम्। वेपथुना=कम्पेन। चुम्बितम्=स्पृष्टम्। त्वरिता=वेगवती। जातेति शेष। आननच्छटा=मुखच्छवि। यद्यपि प्राक्तनैरय 'छटा' शब्द समूहेऽर्थ प्रयुक्तस्तथापि साम्प्रति कैश्छविशालार्येण प्रयुज्यत इति वेदितव्यम्। काञ्चन=कामप्यनिर्वचनीयाम्, कमनीयाम्= हृद्याम्। शोणताशोभाम्=रक्तताकान्तिम्। अकलयत्=अधारयत्। ललिताविशाखाभ्याम्=तन्नामिकाभ्यां राधिकासखीभ्याम्। विमानेन= वायुयानेन। नीयमाना=प्राप्यमाणा। राधिकेवेत्युपमा। इयम्= एषा, अपरा-द्वितीया, गौवर्णी। दोलाया, पट्टिकायाम्-काष्ठपीठे, उपविष्टा=स्थिता। नीपशाखाया=कदम्बशाखाया, अग्रचुम्बिन्या, दोलायाः, वेगम्=जवम्। असहमाना=वोढुमशक्नुवती।

इस प्रकार थोड़ी देर तक ही गाने में ये दोनों युवतियाँ थक गईं और पार्श्व-परिवर्तन करने लगीं (अँगड़ाई लेने लगीं)। पसीने से उनके कपोल धुल गये, वस्त्र भीग गये, कञ्चुकी स्तनों से चिपक गई, शरीर काँपने लगा, श्वास प्रश्वास की गति तेज हो गई, चेहरा लाल हो गया, और उनकी मुखच्छवि ने अतिसुन्दर अद्भुत लालिमा की शोभा धारण की।

झूले के पटरे पर बैठी हुई, ललिता और विशाखा नामक सखियों द्वारा विमान पर बिठा कर आकाश में ले जाई जाती हुई राधिका के समान यह अन्य अल्पवयस्का रमणी जिसकी बालों की लटें आँखों पर लटक

चिद्भुवम्, कर्हिचित् आत्मानम्, कदाचन द्रुमाग्राणि, कर्हिचन समीरवेगाहत – निज–वसनाग्र–ताड्यमान – दोलावलम्बि शृङ्खलाम्, कदाऽपि तारस्वर–गान–श्रवण–विद्रावित–निद्रान्, कदम्ब–शाखा–सन्धि–विलम्बि–नीडान्तराल–रिङ्खणान्, सित–पीत–सृक्विणीन्, अप्राप्त–पक्ष्मति–पुष्टीन्, अर्धोन्मिषित–लोचनान्, निहित–मञ्जी

---

कदाचिद् भुवम् इत्यादि अवलोकयन्ती क्रियासमभिहारेण वत्सानध्यवसातीति सम्बन्धः। भुवम्=पृथिवीम्। आत्मानम्=स्वम्, द्रुमाग्राणि=वृक्षशाखाः। समीरवेगाहतस्य=पवनजवताडितस्य, निजवसनस्य=स्ववस्त्रस्य अग्रेण=प्रान्तेन, ताड्यमानायाम् आहन्यमानायाम् दोलायाम्, अवलम्बिनीम्=शृङ्खलाम्, शृङ्खलाम्=लौहदाम। कदाचनि कशावकानिति मध्ये सम्बन्धः। पिकशावकान् विशिनष्टि तारस्वरेण=उच्चस्वरेण, पञ्चमनादेनेति यावत्, यद् गानम्=गानि, तस्य श्रवणेन=कर्णातिथितापादनेन, विद्राविता=दूरीकृता, निद्रा=स्वापो येषां तान्। कदम्बशाखानाम्=नीपद्रुमावयवानाम्, सन्धिषु=जोडेषु, विलम्बिनाम्=लम्बमानानाम्, नीडानाम्=कुलायानाम्। अन्तरालेषु–मध्येषु, रिङ्खणम् भ्रमणम्, येषां तान्। सिताः=श्वेतवर्णाः, पीताः=पीतवर्णाः, सृक्विण्यः=ओष्ठप्रान्तभागाः, येषान्तान्। अप्राप्ता=अनधिगता, पक्ष्मतीनाम्=पक्षमूलानाम्, पुष्टिः= उड्डयनसामर्थ्यम्, यैस्तान्। अर्धोन्मिषिते

---

आई थीं—कदम्ब वृक्ष की चोटी का स्पर्श करने वाले झूले की तेजी को न सह सकती हुई, कभी पृथ्वी को, कभी स्वयं को, कभी वृक्षों को चोटियों को, कभी तेज हवा के झोंकों से हिलते हुए अपने आँचल के द्वारा स्पर्श किये जाते हुए झूले में लगी शृङ्खलाओं को, कभी ऊँचे स्वर मे गाये जाते हुए गाने को सुनने से नींद टूट जाने के कारण जग गए, कदम्ब वृक्ष की शाखाओं के सन्धिस्थलों पर लटक रहे घोंसलों में घूम रहे, अधखुले नेत्रों वाले और नूपुर की ध्वनि के समान ध्वनि करने वाले—कोयल के बच्चों—जिनके अधरोष्ठों के कोने श्वेत तथा पीले थे और जिनके पङ्ख

रानुकारि-रावान्, पिक-शावकान्, कथमपि दोलान्दोलन-दोल्यमान दोलाप्र विलम्बि लता प्रतान निपात्यमान कुसुम स्तबकान् अवलोकयन्ती भ्रमरिकाकलित-दृष्टि प्रतिगतिभेदं पतन्तीव, कम्पमानेव, आहतेव भीतभीतेव मुग्धा क्रियासमभिहारेण वक्तुमारब्धवती—"अम्बऽम्ब विरमत विरमतम् पतामि पतामि"—इति।

अथ तयोरेका सौवर्णि! किमिति बिभेषि? आवयोर्मध्ये स्थिताऽसि शृङ्खला ग्रहणासक्तां मुष्टिं मा शिथिलय, न पतिष्यसि।

---

=किंचिदुन्मीलिते, उड्डयने यथा तान्। विहिता मञ्जीरानुकारिणः = नूपुरध्वनितुल्याः, रावाः = शब्दाः, यैस्तान्। पिकशावकान् = कोकिलशिशून्। दोलान्दोलनेन = दोलिकासञ्चालनेन, दोल्यमानानाम् = सञ्चाल्यमानानाम् दोलाप्रविलम्बिनाम् = दोलिकाप्रान्तप्रलम्बमानानाम्, लतानाम् = व्रततीनाम्, प्रतानेभ्यः = कुटिलतन्तुभ्यः निपात्यमानान्, कुसुमानां स्तबकान्-गुच्छान्। भ्रमरिकाभिः = [illegible], आकलिता व्याप्ता, दृष्टिः, यस्याः सा प्रतिगतिभेदम् = प्रतिगतागतम्। पतन्तीव = स्खलन्तीव। कम्पमानेव = वेपमानेव। आहतेव = ताडितेव। भीतभीतेव = अतिभयान्वितेव। मुग्धा = अल्पवयस्का। क्रियासमभिहारेण = पुनः पुनः। वक्तुम् = कथयितुम्। अनुप्रासो यत्र वर्णानुचिन्तनीयः। विरमतम् लोट् मध्यमपुरुषद्विवचनम्।

---

अभी उड़ने योग्य नहीं हो पाये थे—को, कभी झूले के चलने से हिलने वाली झूले के पास ही फैली हुई लताओं से गिरते हुए फूलों के गुच्छों को देखती हुई हर बार झूले के इस ओर आने और उस ओर जाने पर गिरती हुई सी, काँपती सी, चोट खाई हुई सी, डरी हुई सी, बार बार 'बस बस, रुको रुको, मैं गिरी, गिरी' यह चिल्लाने लगी।

उन दोनों सखियों में से एक मुस्कराती हुई बोली—'सौवर्णि! डरती क्यों हो? हम दोनों के बीच में बैठी हो, जिस मुट्ठी में तुमने जंजीर पकड़ रखी है उसे ढीला न करो, गिरोगी नहीं, यदि तुमने अभी अभ्यास कर

साम्प्रतमेव विहिताभ्यासा चेत् पत्या समं सुखेन दोला-विहार-रसं रसयिष्यसि—इति सस्मितमालपत्।

सौवर्णी च—चारुहासिनि! अलं हासैः। भ्रमति मे चक्षुः, क्षुभ्यति मनः, तत्सपदि स्थिरीकुरु दोलाम्। अये विलासिनि! नास्ति मम तथा क्षमता यथा भवत्योः, तत् न पारयामि, विरम विरम—

इत्युभयतो ग्रीवां परिवर्त्य, मन्दं सक्षोभमिवाचकथत्। ततस्तृतीयाऽपि-प्रियसखि! किमिव क्षुभ्यसि? पश्य, विरतमावाभ्याम्, दोला च क्रमतो मन्दीभूता स्वयमेव स्थिरा भवित्री-इति सप्रेम समवादीत्।

---

विहिताभ्यासा = कृतवारंवारानुभवा। दोला विहार रसम् = दोलाक्रीडानन्दम्। रसयिष्यसि = अनुभविष्यसि।

सौवर्णी चाचकथदिति सम्बन्धः। किन्तवाह—चारुहासिनि! इति विलासिनि इति च सम्बोधनपदे सखीनाम्नी। अलम् हासैः = क्ष्वेलाभिः साध्यं नास्ति। "क्रिया गम्यमानाऽपि कारकविभक्तौ निमित्तम्" इत्युक्तेस्तृतीया। भ्रमति = घूर्णते। "घूमती है" इति हिन्दी। क्षुभ्यति = सञ्चलति। क्षमता = सोढुं शक्तिः। न पारयामि = न शक्ता भवामि। ग्रीवाम् = शिरोधराम्। परिवर्त्य = वक्रयित्वा। सक्षोभम् = सहृदिमनोधम्। मन्दीभूता = वेगशून्या सती। भवित्री = भाविनी। सप्रेम = सस्नेहम्।

---

लिया तो पति के साथ सुख पूर्वक झूला झूलने के आनन्द का रसास्वादन कर सकोगी।'

सौवर्णी क्षुब्ध सी होकर, दोनों (चारुहासिनी और विलासिनी की) ओर गर्दन घुमाकर धीरे से बोली—'चारुहासिनि! मजाक मत करो, मेरी आँखें घूम रही हैं (चक्कर खा रही हैं), मन घबड़ा रहा है, तुरन्त झूला बन्द कर दो।' 'अरी विलासिनि! जितनी सामर्थ्य तुम दोनों में है, उतनी मुझ में नहीं है, मैं नहीं झूल सकती, रुको, रुको।'

तब तीसरी ने प्रेमपूर्वक कहा—प्रिय सखि! नाराज़ क्यों होती हो, देखो हम लोगों ने पेंग मारना बन्द कर दिया है, झूला धीरे-धीरे धीमा होकर स्वयं रुक जायेगा।

—

अथ प्रेमालाप-परायणास्वेव तासु स्थिरीभूतायां दोलायां चारुहासिनी विलासिनी च पूर्वमवतीर्णे. तद्धस्तावलम्बनेनैव च सभयं सौवर्ण्यप्यवतीर्णा। क्षण चक्षुषी निमील्य चारुहासिनी-स्कन्धमेव गृहीत्वा सावेगं स्थितवती। परस्तात् प्राप्तधैर्य्या सम्मुखस्थाऽऽसन्द्यां समुपाविशत्। चारुहासिनी विलासिनी च महाराष्ट्र महिले इति दोलारोह एतयोः स्वाभाविकः। दोलन-प्रयुक्तं वैकल्य वा शैथिल्यं वा चक्षुर्भ्रमरिकां वा मनोग्लानिं वा एते न जानीतः स्म। ते खिन्नस्विन्न-सर्वाङ्गिण्याविति कदली-दल-खण्डेनाऽऽ-

---

प्रेमालापः = नर्मोक्तिः, तत्परायणासु = तन्निरतासु। सावेगम् = दोलाखेलनभ्रमरिका ("घुमरी" इति भाषा) सहितम्। प्राप्तधैर्य्या = लब्धस्थैर्या। सम्मुखस्थायाम् = पुरः स्थापितायाम्, आसन्द्याम् = वेत्रासने। दोलनप्रयुक्तम् = दोलाखेलसमुत्थम्। वैकल्यम् = विकलताम्। शैथिल्यम् = चपलतामत्यधिकश्रमजन्याम्। चक्षुर्भ्रमरिकाम् = नेत्रभ्रमम्। मनोग्लानिम् = चेतःक्लान्तिम्। खिन्नम् = क्लान्तम्, स्विन्नम् = घर्मजलार्द्रम्। सर्वाङ्गम् = निखिलशरीरं ययोस्ते। ङिन्यन्तात् ङीप्। कदली-

---

उनके इसी प्रकार प्रेमपूर्ण बातचीत करते ही करते, जब झूला रुक गया तो पहले चारुहासिनी और विलासिनी झूले से उतरी फिर उनके हाथ का सहारा लेकर सौवर्णी भी डरती-डरती उतरी और घुमरी (घुमनी अर्थात् चक्कर) आ जाने के कारण, क्षण भर, आँखें मींच कर, चारुहासिनी का कन्धा पकड़े खड़ी रही। कुछ देर बाद जब सँभली और धैर्य बँधा तो सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गई।

चारुहासिनी और विलासिनी महाराष्ट्र की महिलाएँ हैं, अतः उनके लिये झूले पर चढ़ना स्वाभाविक है। वे झूलने से होने वाली विकलता, शिथिलता, आँखों का घूमना, मन का घबड़ाना (मिचली आना) आदि जानती ही नहीं हैं। उनका सारा शरीर थककर चूर चूर और पसीने से लथपथ हो गया था अतः वे केले के पत्ते का टुकड़ा लेकर अपने ही को

त्मानं वीजयन्त्यौ पर्य्यटितुमारेभाते। एवमितस्ततः शाद्वले पर्य्यटन्त्योस्तयोः पार्श्वस्थ-मल्लिका-स्तवक-परिक्रम-परवश-मिलिन्द-वृन्द-दत्तदृष्टेः सौवर्ण्याश्चैवमभूवन्नालापाः।

विलासिनी—अस्माकं सौवर्णी न किमपि वेत्ति।

चारुहासिनी—[ समन्दस्मितम् ] आम् ! न किमपि, यतो मुग्धा।

विला०—अज्ञातयौवना च।

चारु०—[ सहासम् ] सत्यं दुग्धमुखीयम्।

[ उभे सौवर्णीमालोकमालोक जहसतुः ]

---

दलखण्डेन=रम्भाच्छदशकलेन। पर्य्यटितुम्=भ्रमितुम्। पार्श्वस्थमल्लिकास्तवकस्य = समीपस्थजातीगुच्छस्य, परिक्रमपरवशे=भ्रमणसलग्ने, मिलिन्दवृन्दे=द्विरेफव्राते, दत्तदृष्टेः=सस्तम्भितनयनायाः। आलापाः, 'स्यादाभाषणमालापः' इत्यमरः। अत्र हासमया वेदितव्याः।

मुग्धा=बाला। अज्ञातयौवना = अविदिततारुण्या। यौवनश्रियमाण हावभाव न वेत्तीति भावः।

दुग्धमुखी=पयोमुखी। "दुधमुँही" इति हिन्दी। आलोकमालोकम् = दृष्ट्वा दृष्ट्वा, आभीक्ष्ण्ये णमुल्न्तम्।

---

पखा झलती हुई टहलने लगीं। इस प्रकार हरी घास ( के मैदान ) पर घूमती हुई इन दोनों सखियों और समीप ही लगी मालती के फूलों के गुच्छों पर मँडराते हुए भौंरों को एकटक देखती हुई सौवर्णी में इस प्रकार वार्तालाप होने लगा।

विलासिनी—हमारी सौवर्णी कुछ भी नहीं जानती।

चारुहासिनी—[ धीमी मुस्कराहट से ] हाँ, कुछ भी नहीं जानती, बड़ी भोली है।

विलासिनी—और यौवन का तो इसे पता ही नहीं है।

चारुहासिनी—[ हँसती हुई ] सचमुच, अभी तो बेचारी दुधमुँही बच्ची है।

[ दोनों सौवर्णी को देख-देख कर हँसने लगीं ]

सौवर्णी—[ सकपट कोपम् ] भवतीभ्यामेव रोचन्ते भवत्योः क्ष्वेलनानि।

विला०—मैवं, मैवं, क्षमस्व, त्वं सर्वं वेत्सि।

चारु०—इयं रासपञ्चाध्यायीं पठन्ती आत्मानमपि विस्मरति। गीतगोविन्दस्य च 'उरसि मुरारेरुपहितहारे'—इत्यादि-गीतानि गायन्त्येव बाष्प-प्रवाहेणाञ्जनम् अधर-रागं वक्षः रोमराजीं च क्षालयति, तत् किं न वेत्सि? किन्त्वस्मदग्रे आत्मानं मुग्धतममेव परिचाययति। [ पुनरुभे अहसताम् ]

भवतीभ्याम्, चतुर्थी द्विवचनम् "रुच्यर्थानां प्रीयमाणः" इति चतुर्थी। क्ष्वेलनानि=नर्मवाक्यानि।

रासपञ्चाध्यायीम्=श्रीमद्भागवते सन्दर्भविशेषः कृष्णविलासप्रदर्शनपरो रासपञ्चाध्यायी। रागिणस्तदर्थं रागपरतया, पण्डिताश्च कामविजयपरतया सङ्गमयन्ति। अत्र च "तमस्तनेषु परिधेहि" "स्त्रिन्धि हृच्छयाग्निम्" इत्यादिभिरितरतात्पर्यम्।

> उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके।
> तडिदिव पीते रतिविपरीते, राजसि सुकृतविपाके॥

इति सप्तम गीतगोविन्दपद्यम्। बाष्पप्रवाहेण=अश्रुधारया। अधररागम्=ओष्ठलौहित्यसाधनम्। रोमराजीम्=लोमपङ्क्तिम्। क्षालयति=धावयति।

सौवर्णी—[ कृत्रिम क्रोध के साथ ] तुम्हारे मजाक तुम्हीं को अच्छे लगते हैं, मुझे नहीं।

विलासिनी—नहीं नहीं, क्षमा कर दो, तुम सब कुछ जानती हो।

चारुहासिनी—यह रासपञ्चाध्यायी पढ़ते-पढ़ते अपने आपको भी भूल जाती है और गीत गोविन्द के 'उरसि मुरारेरुपहितहारे' ( श्री कृष्ण के वक्षस्थल पर, जिस पर हार सुशोभित हो रहा है ) इत्यादि गीत गाती-गाती अश्रु प्रवाह से आँखों में लगे काजल, अधरोष्ठों पर लगी लाली, वक्षस्थल और रोमराजि को भी धो डालती है। यह क्या नहीं जानती? परन्तु हमारे सामने अपना भोलापन दिखाती है। [ फिर दोनों हँसती हैं। ]

सौवर्णी-सख्यौ ! यदि मामेवं ह्रेपयथस्तदहं गच्छामि । युवामेवात्र विहरतम् । [ इति उदतिष्ठत् ] ।

विला०—[ सौवर्ण्या बाहु गृहीत्वा ] उपविश उपविश । नाऽऽवामेवं परस्तादालपिष्यावः ।

[ सौवर्णी तूष्णीमुपाविशत् ]

चारु०—[ समीपस्थायामासन्द्यामुपविश्य, विलासिनीं चोपवेश्य ]

सौवर्णि ! सत्यं कथयति विलासिनी । यदि नाम तुभ्यं प्रेमवार्ता आत्मीयोचितालापाश्च न रोचन्ते, तत्किमग्निहोत्रविधिं वा योग-साधन-पद्धतिं वा कथयावः ? तथैव चेत् तव तात एव वेदान्तोपदेशैस्त्वामपरां गार्गीं विधास्यति, किमस्मत्साहचर्यैः ? किं वा

---

ह्रेपयथः=लज्जयथः । विहरतम् = क्रीडतम् ।

अग्निहोत्रविधिम् = यागविशेषविधानम् । योगसाधनपद्धतिम् = चित्तवृत्तिनिरोधात्मकस्य योगस्य यानि साधनानि यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्यात्मकानि तेषां पन्थानम् । वेदान्तोपदेशैः = ब्रह्मविद्याकथनैः । गार्गीम्=वाचक्नवीम् जनकसदसि याज्ञवल्क्येन कृत ब्रह्मविद्याविवादा विशिष्टा विदुषी बृहदारण्यके श्रुता । अस्मत्साहचर्यैः =

---

सौवर्णी—सखियो ! यदि मुझे इस प्रकार लज्जित करने पर तुली हो, तो मैं चली, तुम्हीं दोनों यहाँ घूमो । ( यह कह कर उठ खड़ी होती है । )

विलासिनी—[सौवर्णी का हाथ पकड़ कर ] बैठो बैठो, अब हम दोनों इस प्रकार की कोई बात नहीं करेंगी । [ सौवर्णी चुपचाप बैठ गई । ]

चारुहासिनी—[ पास में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठकर, और विलासिनी को बिठा कर ] सौवर्णि ! विलासिनी ठीक ही तो कहती है । यदि तुम्हें प्रेमवार्ता, और आत्मीय जनों में आपस में जैसी बातें होती हैं उस प्रकार की बातें नहीं अच्छी लगतीं तो क्या हम लोग अग्निहोत्र की विधि या योग की साधन-पद्धति के सम्बन्ध में बात करें ? यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम्हारे पिताजी ही वेदान्त की शिक्षा देकर तुम्हें दूसरी गार्गी बना देंगे, हम

'सखि सखि' इति मुधैवाऽऽवां सम्बोध्य वञ्चनै ?

विला०— प्रिये ! मास्म उपेक्षिष्ठाश्चारुहासिन्या वचनम् । आवामेव तव प्रीतिपात्र, अन्तरङ्गित्व गर्विण्यौ सख्यौ । आवयोरप्यग्रे कदाऽपि किमपि न वक्षि । अन्तरेव कञ्चनानुरागमिव वहसि, कदाचिद्विमनायसे अस्माभिः शृङ्गार रस स्नातानां बहूनामाननान्य वलोकितानि सन्ति, त्व तु सदैवास्माभि. सह क्रीडसि । कथ त्वया गोपिताऽप्यप्रकटो भवेत् तवानुराग प्रवाह. ? त्वमेव केवल स्पष्ट न

आवयोः सान्निध्ये. । मुधैव = व्यर्थमेव । वञ्चनै. - प्रतारणै । समदु ख-सुख सखीजनं रहस्यस्य निवेदनीयत्वादिति भाव ।

मा स्मोपेक्षिष्ठा.= उपेक्षा मा कार्षी । "माङिलुङ्" 'न माङ्योगे' त्याभ्या लुङडागमाभावौ । प्रीतिपात्रे=स्नेहस्थाने । अन्तरङ्गित्वस्य = रहस्यज्ञत्वस्य, गर्विण्यौ=अभिमानयुक्ते । न वक्षि=न कथयसि । अनुरागम्= व्यक्तिविशेषे प्रेम । शृङ्गार रसस्नातानाम् = प्रेमप्रणयप्रवाहे कृतमज्जनानाम् । अनुभूतविषयरसानामिति यावत् । गोपितोऽपि=यत्नादाच्छादितोऽपि ।

लोगों के साथ रहने और झूठ ही हम लोगों को 'सखी ! सखी !' कह कर पुकार कर धोखा देने से क्या लाभ होगा ?

विलासिनी—प्रिये ! चारुहासिनी के कथन की उपेक्षा न करो । हम दोनों ही तुम्हारी स्नेहभाजन तथा तुम्हारी अन्तरङ्ग होने का अभिमान रखने वाली सखियाँ हैं । तुम, हम दोनों के आगे भी कभी कुछ भी नहीं कहती हो । अन्दर ही अन्दर किसी ( के प्रति ) अनुराग को धारण करती जान पड़ती हो, और कभी-कभी अनमनी हो जाती हो । हम लोगों ने शृङ्गार रस में डूबे ( या नहाए ) हुए अनेक व्यक्तियों के मुखों को देखा है, और तुम तो सदैव हमारे साथ ही खेलती हो, फिर तुम्हारा ( किसी के प्रति ) अनुराग प्रवाह तुम्हारी छिपाने की चेष्टा के बावजूद भी, ( हम लोगों की दृष्टि से ) कैसे छिप सकता है ? यद्यपि तुम साफ-साफ नहीं कहती हो, ( लेकिन )

न्यूये, किं तु तव नवाभ्यस्तापाङ्ग-प्रसारे दृशौ, आलीढ-ताली-दल-च्छविः कपोल पाली, सह्रीस्तम्भ-निश्वास-मान्थर्य-माधुर्य-स्वर-भङ्गा आलापाश्च सर्वं स्फुटयन्ति। तदलमितोऽपि बाह्यैरालापशतैः। सत्यं कथय, किमिव चिन्तयसि ? केन च महाभाग्येन सहचरितां स्वमूर्तिं स्वापेषु पश्यसि ?

[ सौवर्णी पादाङ्गुष्ठ-नखेन भुवमालिखन्ती तूष्णीमेव समतिष्ठत ]

चारु०—सौवर्णि ! तव दुःखेन दुःखिते आवामिति विश्वसिहि।

---

अप्रकटः = अविस्पष्ट.। दुर्ज्ञेय इति यावत्। नवः = नूतनः, अभ्यस्तः = शिक्षित., अपाङ्गप्रसारः = कटाक्षपातप्रकारः, याभ्या ते। आलीढा = अङ्गीकृता, तालीदलच्छविः = द्रुमविशेषपत्रकान्तिर्यया सा, पाण्डुरिति यावत्। कपोलपाली = गण्डप्रान्तः। ह्रीस्तम्भेन = लज्जावरोधेन, जातेन, निश्वासेन = दीर्घश्वासेन, यद् मान्थर्यमाधुर्यम्=आलस्यलालित्यम्, तेन स्वरभङ्गो येषु तादृशाः। स्फुटयन्ति=प्रकटयन्ति। बाह्यैः=बहिरङ्गभूतैः। महाभाग्येन = विशिष्टभागधेयेन। सहचरिताम् = एकत्रावस्थिताम्। स्वापेषु=स्वप्नेषु। प्रत्यक्षं साहचर्यमनुभवन्त्या अपि, अनिच्छन्त्या अपि च स्वापेषु साहचर्यं भवतीति न ते दोष इति गूढव्यङ्ग्यम्।

पादाङ्गुष्ठनखेन, भूलिखन लज्जिताना जातिः। अस्मान् = सहचरीः।

---

तुम्हारे नेत्र—जिन्होंने अभी शीघ्र ही कटाक्षपात का अभ्यास किया है, तालपत्र की शोभा धारण करने वाले तुम्हारे गण्डस्थल, तथा लज्जा के अवरोध से उत्पन्न निःश्वास से होने वाली मन्थरता के लालित्य के कारण होने वाले स्वरभङ्ग से युक्त तुम्हारी बातचीत सब कुछ स्पष्ट कर देती हैं, केवल तुम्हीं ( ऐसी हो जो ) स्पष्ट रूप से कुछ नहीं बताती। अतः अब भी सैकड़ों बाहरी ( बनावटी ) बातें बन्द करके, सच-सच कहो कि क्या सोचा करती हो ? स्वप्न में अपनी मूर्ति ( अर्थात् स्वयं ) को किस भाग्यवान् के साथ देखती हो !

[ पैर के अँगूठे के नाखून से भूमि कुरेदती हुई सौवर्णी चुप ही रही। ]

चारुहासिनी—सौवर्णी ! तुम्हारे दुःख से हम दोनों दुःखी हैं, यह

त्वां हि कदाचित् सर्वा अस्मान् विहाय उद्यानं प्रविश्य एकान्ते तरुतले उपविशन्तीम्, क्वचन रहसि शिलासु उपविश्य करतले कपोलं संस्थाप्यानिमिषाभ्यां दृग्भ्यां किमपि चिन्तयन्तीम्, कहिचित् कुञ्जान्तः प्रविश्य गज-दन्त-फलके कस्यापि प्रतिमूर्तिमिव लिखन्तीम्, कदाचन पाण्डु-गण्ड तल विसृत्वराण्यश्रूणि पट-प्रान्तेन मार्जयन्तीम्, क्वचित् लुण्ठितेनेव वञ्चितेनेव प्रनष्टेनेव अपहृतेनेव च हृदा कञ्चिद् धवलिमानमिवाङ्गेषु वहन्तीं दर्शं दर्शं

एकान्ते = रहसि, उपविशन्तीम् = आसीनाम्। उपवेशश्चात्र न निरर्थक इत्यभिलाषाख्या प्रथमा स्मरदशा सूचिता। स्मरदशा हि दशसंख्याका, तथा च साहित्यदर्पणे—

अभिलाषश्चिन्ता स्मृतिगुणकथनोद्वेगसम्प्रलापाश्च।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशाः॥

चिन्तात्मिका द्वितीया दशा दर्शयति क्वचनेत्यादिना चिन्तयन्तीमित्यन्तेन। शिलासु = प्रस्तरखण्डेषु। दृग्भ्याम् = नेत्राभ्याम्। चिन्तयन्तीम् = विचारयन्तीम्। गजदन्तफलके = हस्तिदन्तनिर्मितपीठे। प्रतिमूर्तिम् = प्रतिच्छविम्। लिखन्तीम् = रचयन्तीम्। एतेन स्मृतिनाम्नी तृतीया दशा प्रत्यक्षीकृता, गुणकथनश्च मानसमेनेनैव बोध्यम्—नहि विना गुण विचारं प्रतिकृत्युल्लिखनं सम्भवि।

पाण्डु-गण्डतल विसृत्वराणि = पीत-कपोलस्थल - प्रसरण - शीलानि।

विश्वास करो! तुम्हें, कभी हम लोगों को छोड़कर उद्यान में प्रविष्ट होकर एकान्त में वृक्ष के नीचे बैठी हुई, कहीं एकान्त में चट्टानों पर बैठकर हथेली पर कपोल रखकर निर्निमेष नेत्रों से कुछ सोचती हुई, कभी कुञ्ज में प्रविष्ट होकर हाथी दाँत की पटिया पर किसी का चित्र सा बनाती हुई, कभी पीले पड़ गये कपोलों पर ढुलक रहे आँसुओं को कपड़े के छोर ( आँचल ) से पोंछती हुई, कहीं लुटे हुए से, ठगे हुए से, खोये हुए से, चुराये गये से हृदय वाली तथा अङ्गों में एक प्रकार की सफेदी सी धारण करती देख-देख

भिद्यत इवाऽऽवयोर्हृदयम्। किमिव कुर्मः! शतधा पृष्टाऽसि, सहस्रधा विश्वासमर्पिताऽसि, न वक्षि, न च सूचयसि। किन्तु विश्वासपात्रेऽस्मादृशे सखीजनेऽनुचितमेतत्। सर्वतः संवृताऽग्निरधिकं तापयति, अनुद्गीर्णं विषं प्राणानपहरति, असूचितो चाप्रतीकारो वर्द्धते, तदयमीदृशो दृढो निरोधस्तेऽनुरागस्याधिक्येन त्वां दुःखाकरिष्यतीति सहाये सखीजने किमिव नान्तर्ज्वरं विभजसि?

---

अश्रूणि = रोदनाम्बूनि। पटप्रान्तेन = वसनाग्रेण। मार्जयन्तीम् = प्रोञ्छन्तीम्। लुण्ठितेनेव = चोरितेनेव। एभिश्चिह्नैरुन्मादादवस्थातन्मो दशा दर्शिता। मृतिपदेन न मरणं गृह्यत इति ध्यातव्यं सुधीभिः। धवलिमानम् = श्वैत्यम्। वहन्तीम् = धारयन्तीम्। दर्शं दर्शम् = दृष्ट्वा दृष्ट्वा। अर्पिता = लम्भिता। न वक्षि = न कथयसि। न च सूचयसि = न बोधयसि। संवृतः = अवरुद्धः। अधिकम् = भृशम्। अनुद्गीर्णम् = अवान्तम्। विषम् = हालाहलादि। असूचितः = अबोधितः, परेभ्योऽप्रकटीकृतः। अप्रतीकारः = अप्रतिक्रियः। दृढः = प्रगाढः। निरोधः = गोपनम्। दुःखाकरिष्यति = खेदवतीं विधास्यति। सहाये = सहायताकारिणि। अन्तर्ज्वरम् = मानसिकं दुःखम्। ज्वरपदं कामज्वरोपस्थापकतया किमपि वैशिष्ट्यमाश्रयतीति स्वारस्यवेदिनः। विभजसि = विभागं करोषि। 'सविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवती'ति कालिदासः।

---

कर हम दोनों का हृदय विदीर्ण सा हो जाता है। क्या करें! सैकड़ों बार तुम से पूछा है, हजारों बार विश्वास दिलाया है, पर तुम बोलती ही नहीं, कुछ बताती ही नहीं हो। किन्तु हम लोगों के समान विश्वास पात्र सखियों के साथ ऐसा (दुराव या भाव गोपन का) व्यवहार करना ठीक नहीं है। सभी ओर से ढकी हुई अग्नि अधिक तपाती है, वमन न करने पर विष प्राण ले लेता है, और न बताने पर रोग, चिकित्सा के अभाव में, बढ़ (कर असाध्य हो) जाता है, अतः तुम्हारे अनुराग का यह इतना दृढ़ अवरोध (गोपन) तुम्हें और अधिक दुःखी कर देगा। ऐसी दशा में तुम अपनी

यथाऽऽवामपि सम-दुःख-सुखे भवेव।

सौवर्णी तु करस्थं कुसुम-स्तवकं क्षिप्त्वा, दक्ष-करतले एव कपोलं संस्थाप्य, निरन्तर-परिक्रमण-क्षम-क्लान्तं मुखं कमलपल्लवोदरे सुप्तं कलानाथमिव कदर्थयन्ती, विरह-जन्मना धवलिम्ना भस्मनेव रूषिता, बदर-पाण्डुना गण्डेन, उष्ण-श्वास-प्रश्वासाघात-शुष्केणाधरेण, स्वेदजुषा च वपुषा कञ्चन दुष्प्रतीकारमाधि-प्रधानं व्याधिं स्पष्टयन्ती, चक्षुषी धवलयता, कपोलौ मलिनयता,

कुसुमस्तवकम् = पुष्पगुच्छम्। क्षिप्त्वा = भूमौ निपात्य। निरन्तर-परिक्रमण क्षम-क्लान्तम् = सतत परिभ्रमण-खेद खिन्नम्। कमलपल्लवोदरे = पद्मकिसलयान्तराले। सुप्तम् = निद्रितम्। कलानाथम् = शशिनम्। इवेत्युत्प्रेक्षा। कदर्थयन्ती = तिरस्कुर्वती। विरहजन्मना = वियोगसमुत्थेन। धवलिम्ना = श्वैत्येन। भस्मनेव = भसितेनेव। रूषिता = छुरिता, लिप्ता। बदरवत् पाण्डुना=पीतेन। गण्डेन=कपोलेन। लुप्तोपमा। उष्णयोः श्वासप्रश्वासयोः, आघातैः, शुष्केण = नीरसेन। तापातिशयात् रूक्षेणेति यावत्। स्वेदजुषा = घर्मजलवता। दुष्प्रतीकारम् = दुश्चिकित्स्य निरौषधम्। आधिः = मानसिकी व्यथैव प्रधानम् = मुख्यम्, यस्मिन् तादृशम्। व्याधिम् = रोगम्। स्पष्टयन्ती = प्रकटयन्ती। चक्षुषी = नेत्रे। धवलयता = श्वेतिमानं लम्भयता। कपोलौ = गण्डस्थले।

सहायक सखियों के साथ अपना आन्तरिक ताप बाँट क्यों नहीं लेतीं जिससे हम दोनों भी समान सुख और समान दुःख वाली हो जायें!

सौवर्णी ने हाथ में लिये हुए फूलों के गुच्छों को फेंक कर, दाहिनी हथेली पर ही कपोल रखे हुए, (काफी देर तक) निरन्तर टहलते रहने के परिश्रम से थके और मुरझाए हुए मुख को कमल की पखुड़ी पर सोए चन्द्रमा के समान तिरस्कृत करते हुए, विरहजन्य धवलिमा के कारण मानो भस्म सी रमाये हुए, बेर के समान पीले कपोलों, उष्ण श्वास और निःश्वास के आघात से सूखे हुए अधर और पसीने से तर शरीर से, किसी मानसिक . । ।न असाध्य रोग को प्रकट करते हुए नेत्रों को धोकर सफेद

अधरं ताडयता, रागमपहरता, वक्षसि शतधारीभूय पट-सन्धिषु प्रवहता, बाष्प - बिन्दु - सन्दोह - प्रवाहेण स्वान्तस्थं धैर्यं गाम्भीर्यं च बहिः प्रवाहयामास।

तां तथा निःशब्द रोदनेनापि रोदसी रोदयन्तीम्, सधडत्कृतिना वक्षसा, विवर्णेन वदनेन, शून्यया दृष्ट्या, विकलया चाङ्गयष्ट्या, अतिस्फुटीकृत प्रिय-विरह-क्लेशमाकलय्य, परवशतामङ्गीकुर्वदिव

मलिनयता = मलिनता प्रापयता। ताडयता = प्रहरता। रागम् = मुखोष्ठादिगत रञ्जनम्। अपहरता-दूरीकुर्वता। बाष्पेणाच्छादनादिति भावः। शतधारीभूय = अनेकप्रवाहता गत्वा। पटसन्धिषु = वसनबन्धनेषु। प्रवहता = प्रसरता। बाष्प-बिन्दु-सन्दोहप्रवाहेण=अश्रुपृषत्समूहधारया। स्वान्तस्थम्=आभ्यन्तरिकम्। प्रवाहयामास=धारारूपेण निःसारयामास।

निःशब्दम्=ध्वनिशून्यम्, यद् रोदनं तेन। रोदसी = द्यावापृथिव्यौ। रोदयन्तीम्=खेदयन्तीम्। सधडत्कृतिना=धडत्कारसहितेन। वक्षसा= हृदयेन। विवर्णेन=शुभ्रेण। वदनेन=वपनेन। विकलया=व्युदितया, अङ्गयष्ट्या = देहेन। अतिस्फुटीकृत - प्रिय - विरहक्लेशाम् = अतिव्यक्तीकृत-प्रेयो-वियोग-खेदाम्। आकलय्य = ज्ञात्वा। परवशताम् = पराधीनताम्। अङ्गीकुर्वत् = स्वीकुर्वत्। भज्यमानाम् = त्रुट्यमानाम्।

कर देने वाले, कपोलों को मलिन कर देने वाले, अधर को स्पर्श ( ताडित ) करने वाले, ( अधर के ) राग ( रञ्जक द्रव्य के प्रयोग से उत्पन्न लालिमा ) का अपहरण करने वाले, वक्षःस्थल पर गिर कर सैकड़ों धाराओं में विभक्त होकर साड़ी की सन्धियों ( ग्रन्थियों या सिलन ) में बहने वाले अश्रुजल के प्रवाह से, अन्तःस्थित धैर्य और गाम्भीर्य को बाहर बहा दिया (अर्थात् बाहर निकाल दिया)।

उसे उस प्रकार मौन रुदन से भी आकाश-पाताल को रुलाती, और धड़कते हृदय, विवर्ण ( उदास होने के कारण मलिन ) मुख, सूनी दृष्टि और व्याकुल शरीर से प्रिय के वियोग की व्यथा को सुस्पष्ट करती जानकर, उन दोनों सखियों ने, अपने परवश से होते हुए हृदय, खण्डित

हृदयम्, भज्यमानामिव वाचम्, रुध्यमानमिव कण्ठम्, वेपमानमिव विग्रहम्, प्लाव्यमानमिव च चक्षुः, कथं कथमिव स्ववशंवदं विधाय ते अश्रु-मार्जनैः कदली-दल-वीजनैः शान्त-वचनैश्च सान्त्वयामासतुः।

अथ क्षणानन्तरमात्मानमात्मनैव स्थिरयित्वा चारुहासिनीं विलासिनीं च सम्बोध्य वक्तुमारभत सौवर्णी—

भगिन्यौ! भवत्यावेव मम जीवने, भवत्यावेव ममाऽऽधारौ, भवत्यावेव च सर्वथा बन्धू इति भवत्यौ विहाय कोऽन्योऽस्ति, यदग्रे मानसं सुखं वा दुःखं वा प्रकटयेयम्, किन्तु वित्थ एव भाग्य-

रुध्यमानम्=अनिर्गमच्छ्वासम्। वेपमानम्=कम्पमानम्। विग्रहम्=शरीरम्। प्लाव्यमानम्=स्नप्यमानम्। स्ववशंवदम्=स्वाधीनम्। ते=सहचर्यौ।

आत्मानम्=स्वम्। आत्मनैव=स्वयमेव। स्तम्भयित्वा=अवरोध्य।

जीवने=प्राणने। आधारौ=आश्रयौ। सर्वथा=सर्वप्रकारेण। बन्धू=भ्रातृकल्पे, कल्याणकारिण्याविति यावत्। मानसम्=मनस्सम्बन्धि। वित्थः=जानीथ। लटो मध्यमपुरुषस्य द्विवचनम्। भाग्यहीनायाः=

सी होती हुई वाणी, रुँधते हुए से कण्ठ, काँपते हुए से शरीर और डबडबा सी आई आँखों को, किसी प्रकार नियन्त्रित करके, उस (सौवर्णी) के आँसुओं को पोंछकर, उसे केले के पत्ते से पंखा झलकर और सान्त्वनापूर्ण बातें कहकर, उसको आश्वस्त किया (ढाढ़स बंधाया)।

तदनन्तर, क्षण भर बाद, अपने को स्वयं ही सँभाल कर, चित्त स्थिर करके, सौवर्णी चारुहासिनी और विलासिनी को सम्बोधित करके बोली—

बहनो! आप ही मेरा जीवन हैं, आप ही मेरा सहारा हैं, आप ही मेरी सभी प्रकार की साथी हैं, अतः आपके अतिरिक्त दूसरा और कौन है जिसके आगे अपने हृदय के सुख दुःख को प्रकट करूँ, परन्तु आप दोनों मुझ अभागिन के बीते हुए वृत्तान्त को तो जानती ही हैं। मुझे माँ की गोद में

हीनाया मम व्यतीतं वृत्तान्तम् । नाहं जननी-क्रोड-क्रीडासुखं स्मरामि । नाहं तात-लालन-सुखस्य स्वप्नमपि पश्यामि । नाहं स्वदेशस्य स्वजन्मभुवश्च कथामपि शृणोमि, न चाऽहं चिरविनष्ट-योर्भाग्यैः पुनः प्राप्तयोरपि भ्रात्रोः सहवास-सुखमनुभवामि । अहह ! मातापितृ-विहीनाया भाग्य-हीनाया दीनाया मम भ्रात-रावेव स्वाधारभूतौ । हन्त ! तयोश्च प्रत्यहं सम्मुखस्था खड्गधारा; प्रतिक्षणञ्च पार्श्वे परिवर्तिनः प्रत्यर्थिनः । द्वार देशमालोकयन्ती वासरं व्यत्यापयामि । हन्त ! स्वप्नेष्वपि रणाङ्गण-गतावेव सोदरौ पश्यामि—इति नास्ति मे कदाऽपि सुख लेशः । मृगतृष्णासु, तृष्णा-

---

भागधेयशून्यायाः, दुर्भाग्यायाः इति यावत् । व्यतीतम् = विगतम्, वृत्तान्तम् = स्तृतिम् । जननीक्रोड-क्रीडा-सुखम् = मात्रङ्क-परिष्वङ्ग-मोदम् । तात लालन सुखस्य = जनक पालनानन्दस्य । स्वप्नमपि पश्यामि, साक्षात्कारस्य = तु कथैव का । चिर-विनष्टयोः = अत्यधिककालादहष्टयोः । सहवास-सुखम् = एकत्रस्थिति-मोदम् । मातापितृ विहीनायाः = जननी-जनकशून्यायाः । 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' इत्यानङ् । सम्मुखस्था=पुरोवर्त्तिनी । खड्गधारा = असिधारा । पार्श्वपरिवर्त्तिनः = वामे दक्षे च स्थिताः । प्रत्य-र्थिनः = अरयः । व्यत्यापयामि = यापयामि । रणाङ्गणगतौ = सङ्ग्रामभूमि प्राप्तौ । सुखलेशः = अल्पमपि सुखम् । मृगतृष्णासु = मरीचिकासु ।

---

खेलने के सुख का स्मरण भी नहीं है, पिता के लाड़-प्यार का स्वप्न भी नहीं दिखाई पड़ता, मैं अपने देश तथा जन्मभूमि की चर्चा भी नहीं सुनती, न तो मैं अपने चिरकाल से खोये हुए तथा सौभाग्यवश पुनः प्राप्त हुए दोनों भाइयों के साथ रहने के सुख का ही अनुभव कर पाती हूँ । हा ! माता-पिता से रहित मुझ हतभागिनी दुःखिया के आधार तो मेरे दोनों भाई ही हैं । हा ! उनके भी आगे प्रतिदिन तलवार की धार ही रहती है, हर समय दोनों ओर शत्रु ही रहते हैं । दरवाजे की ओर देखती हुई ही दिन बिताती हूँ । हा ! स्वप्नों में भी दोनों भाइयों को युद्धभूमि में ही पहुँचा हुआ देखती हूँ । इस प्रकार मुझे लेशमात्र भी सुख नहीं है । प्यास के कारण मृगतृष्णा

भिरापतन्ती मृगीव च यं प्राणनाथं मन्यमाना···· इत्यर्द्धोक्तावेव निःश्वस्य व्यरमत्। ततस्तयोः—"कथय, कथय, मा स्म रोदीः, कस्मिन् मनोऽनुरक्तम् ? कः प्राणनाथता-सनाथितः ? को भवत्या मनोमन्दिरं प्रविष्टः ?"–इति साम्रेडं कथयन्त्योः पुनराह सौवर्णी–

यं च प्राणनाथं मन्यमाना मनोरथ-सन्तान-वितानैरात्मानं व्यथयामि, तस्य मासान् यावत् कथामात्रमपि न लभे। आवसथ-मपि न वेद्मि। पात्रेऽयमभिलाषः, सुपरिणामोऽयं चित्तबन्ध

पिपासिता मृगा निदाघे सौरीभिर्माभिर्भासमानेषूषरेषु दूरस्थेषु जलभ्रान्त्या धावन्ति, तत्र गत्वा जलमलब्ध्वा पुनर्दूरे तथाविधमेव स्थलान्तरं वीक्ष्य धावन्तीत्येवं क्रमेणातपसन्तप्ता म्रियन्ते। तदेतन्मृगतृष्णापदेनाभिधीयते। यम्= पौरुषधौरेयं कमपि, प्राणनाथम्=प्राणेश्वरम्। अर्द्धोक्तौ= अर्द्धमेव कथिते। व्यरमत्= भाषणाद् विरताऽभूत्। "व्याङ्परिभ्यो रमः" इति परस्मैपदता। लज्जाशोकातिरेकान्मध्ये तूष्णींभावः। अनुरक्तम्= सप्रेम। प्राणनाथतया= पतित्वेन, सनाथितः= वृतः। मनोमन्दिरम्= चेतःपूजालयम्।

मनोरथ-सन्तान-वितानैः= अभिलाषसमूहप्रसारणैः। व्यथयामि= पीडयामि। आवसथम्= गृहम्। पात्रे= योग्ये। सुपरिणामः= अन्ते

में पड़ी हुई मृगी की भाँति जिसको अपना प्रियतम मानती हुई. . सौवर्णी इतना, अपूर्ण वाक्य कहकर ही निःश्वास लेकर रुक गई।

इसके बाद उन दोनों सखियों के, "कहो कहो, रोओ नहीं, किसमें मन अनुरक्त हुआ है, किसको प्राणेश्वर का गौरव दिया है, कौन तुम्हारे हृदय-मन्दिर में प्रविष्ट हुआ है !" इस प्रकार बार-बार कहने पर सौवर्णी पुनः कहने लगी।

"जिसको प्रियतम मानकर कामनाओं के जाल में अपने आपको खिन्न करती हूँ, उसका महीनों से समाचार भी नहीं मिला है। मैं उसका निवास भी नहीं जानती, मैं यह भी नहीं जानती कि मेरी यह अभिलाषा योग्य-पुरुष-

इत्यपि न जाने। केवलमेनं प्रातिपदिकं चन्द्रमिव कदाचित् क्षणाय दूरतोऽवलोक्य चिर-दाह दग्धं हृदय हतकं शीतलयामि। दुःख-कथा-कथन-समये दुःखमधिकमधिकं वर्द्धते–इति भवतीभ्यां पृष्टाऽपि न ब्रवीमि, अनुरुद्धाऽपि चापवृणोमि। तत् सख्यौ! अलं मादृक्षाया हतभाग्याया मुखमप्यवलोक्य। परश्शता रत्नभूता रणाङ्गणेषु प्रत्यहं शेरते। मम तु विधिना मृत्युरपि ललाटे नालेखि—इति कथयन्त्या एव तस्या हस्तं गृहीत्वा चारुहासिनी समवादीत्—

---

सुखप्रदः, चित्तबन्धः = मनोनिवेशः। प्रतिपदि भव प्रातिपादिकम् = आद्यतिथ्युदितम्। यद्यपि द्वितीयाशशिन एव चक्षुर्गोचरता, तथापि तमेव प्रतिपच्चन्द्रत्वेनाश्रित्य कवय उपमानभाव कल्पयन्ति। तथा च दामोदरो भारविः–"प्रतिपच्चन्द्रमिव प्रजा नृपम्" "प्रतीपचन्द्रनिभोऽयमात्मजः" इति कालिदासश्च। चिर-दाह दग्धम् = तीव्रवियोगानलज्वलितम्। अनुरुद्धा = अनुरोधविषयङ्गमिता। अपवृणोमि = आच्छादयामि। मादृक्षायाः = मत्तुल्यायाः।

---

विषयक है, यह मन का लगाव सुखान्त है या नहीं। केवल उसे प्रतिपदा के चन्द्रमा की भाँति कभी क्षण भर के लिये दूर से देखकर दीर्घकाल के विरह से तप्त अभागे हृदय को शीतल कर लेती हूँ। दुःख की कहानी सुनाते समय दुःख और अधिक बढ़ जाता है। इसीलिये आप दोनों के पूछने पर भी कुछ नहीं बताती और अनुरोध करने पर भी छिपाती हूँ। अतः सखियों! मुझ अभागिनी का मुख भी न देखो। रत्न के समान सैकड़ों वीर युद्धभूमि में प्रतिदिन धराशायी हो रहे हैं, मेरे ललाट में तो विधाता ने मृत्यु भी नहीं लिखा है।"

सौवर्णी यह कह ही रही थी कि चारुहासिनी ने उसका हाथ पकड़ कर कहा —

हला ! मा स्म वदस्वत् । मातापितृ-सुखं सर्वे सदा नानुभवन्ति, विरह-दुःखमननुभूय न कोऽपि प्रेयसा संयुङ्क्ते, केनापि पारावार तरङ्ग-रिङ्गणाघातमसोढ्वा मुक्ता नाऽऽप्यन्ते, शतशः शङ्कुलाभिरनुत्कृत्ता देवमूर्तिः सुसिंहासनार्हां सुष्मां न कलयति। तत् समाश्वसिहि ।

ततश्चिराय तासां बहुविधो मदं मन्दमालापो जातः। अथाकस्मादेव समश्रावि कस्यापि बालस्येव—'अत्तिके ! अत्तिके !"–इति दूराहूतिः ।

---

हला !, सखीनाम्यारस्तारिक सम्बं धनमिदम् "हण्डे हञ्जे हलाऽऽह्वानम्" इत्यमरः। मा स्म वदः = मृत्युप्रभृतिविषये न किमपि निवेदय, अमङ्गलत्वात् । विरह दुःखम् = वियोगखेदम् । अननुभूय=अनुभवगोचरमविधाय । प्रेयसा=प्रियतमेन । सयुङ्क्ते=सम्मिलति । पारावार-तरङ्ग-रिङ्गणाघातम्= समुद्र लहरि सञ्चलन-ताडनम् । मुक्ताः = मणयः । नाप्यन्ते = न लभ्यन्ते । शङ्कुलाभिः = प्रकृते टङ्कैः । अनुत्कृत्ता = अनुल्लिखिता । सुसिंहासनार्हाम्= शोभनविष्टरस्थितियोग्याम् । सुषमाम् = शोभाम् । "सुषमा परमा शोभा" इत्यमरः । समाश्वसिहि = धैर्यमाश्रय ।

अत्तिके ! = भगिनि ! । "अत्तिका भगिनी ज्येष्ठा" इत्यमरः ।

---

सखि ! ऐसा न कहो । माता-पिता का सुख सभी लोग सदैव नहीं पाते, वियोग की व्यथा का अनुभव किये बिना कोई भी प्रिय से नहीं मिलता, समुद्र की लहरों के नर्तन का आघात सहन किये बिना किसी को भी मोती नहीं मिलते, सैकड़ों बार छेनी से गढे बिना देवमूर्ति अच्छे सिंहासन पर आसीन होने योग्य सौन्दर्य नहीं धारण कर पाती, अत धैर्य धारण करो ।

उसके बाद बहुत देर तक उन सब की धीरे-धीरे तरह-तरह की बातचीत हुई । तब तक सहसा किसी बालक की सी "बहिन ! बहिन !" की, दूर से आती हुई पुकारने की आवाज सुनाई पड़ी ।

ततः सौवर्ण्या "चारुहासिनि! तवानुजस्त्वामाह्वयति' इति अवाचि। चारुहासिनी च विलासिनीमपि "उत्तिष्ठ प्रजावति! गच्छाव"—इति कथयित्वा, "गोपाल! एषाऽऽयामि, तद् गच्छ, अम्बां कथय" इति तमप्युक्त्वा, सौवर्णीं बहु सान्त्वयित्वा, सोत्प्रासमनुमतिमासाद्य प्रचलिता। तामेव च विलासिन्यप्यनुससार।

अनयोरेका मन्दिराध्यक्ष महाराष्ट्र-ब्राह्मणस्य पुत्री, अन्या च पुत्रवधूः।

तयोर्गतयोः पुनरेकलैवोपविश्य स्वकटि-पट-प्रान्तासञ्जितमेकं गज-दन्त पट्टिका-फलकमुत्सार्य करे धृत्वा, तत्र स्वयमेव लिखितां

दूराहूतिः = दूरादाह्वानम्। सम्बोधनमिति यावत्। अवाचि = उक्ता। अवोचीति प्रयुञ्जन्तस्तु विस्मृत—"वच उम्" सूत्रार्थां एवेति न तिरोहितम्। प्रजावति! = भ्रातृजाये! 'प्रजावती भ्रातृजाया' इत्यमरः। अम्बाम् = मातरम्। सोत्प्रासम् = सोपहासम्। अनुमतिम् = अनुज्ञाम्। अनुससार = अनुसृतवती।

अनयोरित्यनेन एते परिचाययति पाठकेभ्यः कविः, तयोरिति। पुत्रवधूः = स्नुषा। "वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च" इत्यमरः।

एकला = एकाकिनी। स्व-कटि-पट-प्रान्तासञ्जितम् = निज-मध्य-भागशाटिकाञ्चलनिबद्धम्। गजदन्त पट्टिका-फलकम् = हस्तिदन्त पीठिका-

तब सौवर्णी ने कहा—'चारुहासिनी! तुम्हारा भाई तुम्हें बुला रहा है,' और चारुहासिनी, विलासिनी को भी, 'उठो भाभी चलें' कह कर, 'गोपाल! मैं अभी आई, जाओ माँ से कह दो,' इस प्रकार अपने अनुज से कह कर, सौवर्णी को सान्त्वन देकर, उसकी अनुमति लेकर, मुस्कराती हुई चली गई।

इन दोनों में एक मन्दिर के अध्यक्ष—जो एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण है, की पुत्री तथा दूसरी उन्हीं की पुत्रवधू है।

उन दोनों के चले जाने पर अकेली ही बैठकर अपनी कमर के फेंटे में बँधी एक हाथी-दाँत की पटिया निकाल कर, हाथ में लेकर उसमें अपने ही द्वारा बनाये गये रघुवीर के चित्र को देखती हुई स्वयं भी चित्रलिखित सी

रघुवीर मूर्तिमालोकयन्ती, स्वयमपि चित्रलिखितेव यावत्कांश्चन क्षणानतिवाहयति, तावत् पृष्ठतः स्थितस्येव कस्यचन श्वास-भङ्गम-श्रौषीत्। सपदि पृष्ठतः परिवृत्य च तमेव चिरादन्वितं प्राणाधार रघुवीरमपश्यत्। चकित-चकितेव च झटिति समुत्थाय, मुदिता, मोहिता, कम्पिता, भीता, ह्रीता, चैकतो नतमुखी फलकं गोपयन्ती समवतस्थे। रघुवीरस्तु तस्मिन्नेवावसरे वेगेन हयेन समायातो मुहुरत्राऽऽयातीति केनापि सवैलक्ष्यमवीक्षितः, सपदि वृक्षस्यैकस्य शाखायामाजानेय-वल्गामायाज्य, उपवन-पर्य्यटनेन स्वेदानपनेतुमकस्मादितः समायातः-इत्यधुनाऽपि स्विन्न-कपोलयो-

खण्डम्। उत्सार्य = निःसार्य। क्षणान् = मुहूर्तान्। अतिवाहयति = यापयति। श्वासभङ्गम् = उच्छ्वासम्। चकितचकितेव = भीतभीतेव, इवेन भयस्याकिञ्चित्करत्वं द्योतितम्। मुदिता = प्रसन्ना। मोहिता = विक्षिप्ता। भावज्ञस्य अकस्माद्दर्शनेन हर्षाधिक्यात्। फलकम् = पट्टकम्। गोपयन्ती = आच्छादयन्ती। समवतस्थे = आसाञ्चक्रे। वेगेन = जवेन। सवैलक्ष्यम् = सविस्मयम्, "विलक्षो विस्मयान्विते" इत्यमरः। अवीक्षितः = अनवलोकित। आजानेयवल्गाम् = सदश्व कविकाम्। उपवन-पर्यटनेन = उद्यानभ्रमणेन। अकस्मात् = सहसा। चूर्णकुन्तलाः = अलका।

जब तक कुछ क्षण व्यतीत करती है तब तक जैसे पीछे किसी का उच्छ्वास सुनाई पड़ा। पीछे घूमकर देखने पर उसने उसी प्रियतम रघुवीर को देखा जिसके सम्बन्ध में वह बड़ी देर से चिन्ता कर रही थी। अत्यन्त चकित सी वह, झटपट उठकर, प्रसन्न, मुग्ध, भीत और लज्जित होकर, उस पट्टिका को छिपाती हुई, नीचे मुँह करके, एक ओर खड़ी हो गई।

रघुवीर अभी तीव्रगति वाले घोड़े से आया है। वह प्रायः यहाँ आता रहता है, अतः किसी ने उसे आश्चर्य या हैरानी से नहीं देखा। वह शीघ्रता से घोड़े की लगाम को एक वृक्ष की शाखा में बाँधकर, उद्यान में टहल कर पसीना सुखाने के लिए, अकस्मात् इधर आ गया है, अतएव अब भी उसके

ललाटे च चूर्णकुन्तला भ्रमरकाश्च श्लिष्टा एव। श्मश्रु-प्ररोह-स्थली मौक्तिक-व्रातेनेव स्वेद-बिन्दु-व्रजेनाङ्किनैव। ततोऽपि चाकस्माच्चिर-सन्दृष्टा चिराभिलषिता च प्रेयसी रहसि सन्दृष्टेति पुनरुद्वेल्लित इव स्वेद प्रवाहः।

रघुवीरो हि यदैवास्मिन् प्रान्ते समायाति; सदैव केनापि व्याजेन हनूमन्मन्दिरस्यापि परिक्रमान् करोत्येव, एतद्वाटिकाया अपि धीर-समीर-स्पर्श-सुखमनुभवति, यथासम्भव सौवर्णीसाक्षात्कारेण च चिरतृषिते नयने सन्तर्पयति। एतेन सौवर्ण्या सह समालापस्यापि पञ्चषा अवसराः प्राप्ताः-इति नायमालापस्य प्रथमः

भ्रमरकाः=बर्बरीकाः। "घुंघराले बाल" इति हिन्दी। श्मश्रु-प्ररोहस्थली= ओष्ठोपरिरोमोद्गमस्थलम्। मौक्तिकव्रातेन=मुक्ताव्रजेन। स्वेद-बिन्दु-व्रजेन=घर्मपृषद्गणेन। चिरसन्दृष्टा=बहुकालावलोकिता। प्रेयसी= प्रियतमा। उद्वेल्लित इव=उच्छलित इव। स्वेदप्रवाहः=घर्माम्बुपूरः।

प्रान्ते=देशैकदेशे। परिक्रमान्=परिभ्रमणानि। धीर-समीरस्य= मन्दमारुतस्य, स्पर्शसुखम्=सम्पर्कमोदम्। सौवर्णीसाक्षात्कारेण= सौवर्णीदर्शनेन। चिरतृषिते=चिररात्राय पिपासिते। समालापस्यापि= वार्त्ताकरणस्यापि। पञ्च वा षड् वा पञ्चषाः। क्षणः=कालः। कमलो-

पसीने से भीगे कपोलों और ललाट पर घुंघराले और उलझे हुए बाल चिपके हुए हैं। उसके मूँछों के उगने का स्थान, मोतियों के समूह की सी पसीने की बूँदों से अङ्कित है, उस पर भी एकाएक बहुत दिन पहले देखी गई चिर अभिलषिता प्रियतमा के एकान्त में पुनः दिखाई पड़ जाने से उसके पसीने का प्रवाह पुनः उमड़ सा पड़ा।

रघुवीर जब भी इस स्थान पर आता है तो किसी न किसी बहाने हनुमान् जी के मन्दिर की भी परिक्रमा अवश्य कर लेता है, और इस वाटिका के मन्द-पवन के स्पर्श का आनन्द भी ले लेता है, तथा जहाँ तक सम्भव होता है सौवर्णी को देखकर अपने चिर पिपासित नेत्रों को भी तृप्त कर लेता है। इसे सौवर्णी के साथ बातचीत करने के भी पाँच-छः अवसर

क्षणः । रघुवीरेणैतस्याः कमलोदरसोदरे करे दन्ति-दन्त-फलका-लिखिता स्वप्रतिकृतिरपि साक्षात्कृता, प्रेयस्या विलुलित-वारि-बिन्दु-व्रजे लोचने अपि चाऽऽलोकिते, तदेनां स्वविरह-दुःख-दुःखि-तामाकलय्य, स्वयमपि दुःखितः प्रोवाच—

प्रिये ! किमेतत्, अहह ! किमिति ताम्यसि, शुष्यसि, ग्लायसि, खिद्यसे च ? मुधा मादृशे पथिकजने पराधीने रज्यसे। हन्त ! अहमेव वा किं करोमि, अश्व-पृष्ठमेव मे गृहम्, असिरेव मम कुटुम्बम्, परिश्रम एव मे धनम्, स्वामिभक्तिरेव मे यशः, तत् कथं मामशरणमव्यवस्थञ्च चिन्तयन्ती चेतश्चञ्चलयसि ?

---

दरसोदरे=मध्यान्तरालतुल्ये। स्वप्रतिकृतिः=निजप्रतिमूर्तिः। विलुलितः=निस्सृतः, वारिबिन्दुव्रजः=जल-कण-समूहः, ययोस्ते। आलोकिते=दृष्टे।

ताम्यसि=दुःखिनी भवसि। शुष्यसि=शोषमेषि, दुर्बलीभवसीति यावत्। ग्लायसि=क्षीणहर्षा भवसि। खिद्यसे=खेदमनुभवसि। रज्यसे=अनुरागं करोषि। अश्वपृष्ठमेव=घोटकपृष्ठमेव, सर्वदा तदुपस्थानात्। कुटुम्बम्=कुटुम्बि। अशरणम्=अनाथम्। अव्यवस्थम्=अनिश्चिता-वासम्। चञ्चलयसि=चपलयसि। शुष्यन्तीम्=कार्श्यमाश्रयन्तीम्।

---

प्राप्त हो चुके थे अतः यह वार्तालाप का पहला अवसर नहीं था। रघुवीर ने सौवर्णी के कमल के मध्यभाग के सदृश सुन्दर हाथ में, हाथी दाँत की पटिया पर बनाया गया अपना चित्र भी देख लिया था और प्रियतमा की डब-डबायी हुई आँखें भी देख ली थीं, अतः उसे (सौवर्णी को) अपने वियोग की पीड़ा से व्यथित समझ कर स्वयं भी दुःखी होकर बोला—

प्रिये ! यह क्या, हा ! दुःखी क्यों हो रही हो, सूखती क्यों जा रही हो, उदास और खिन्न क्यों होती हो ? व्यर्थ ही मुझ जैसे पराधीन पथिक पर अनुरक्त हो गई हो। हा ! मैं ही क्या करूँ, घोड़े की पीठ ही मेरा घर है, तलवार ही मेरा परिवार है, परिश्रम ही मेरा धन है, स्वामिभक्ति ही मेरा यश है, तो क्यों मुझ जैसे अनाथ एवं अव्यवस्थित व्यक्ति के विषय में सोच-

प्रत्यहं शुष्यन्तीं तव गात्रयष्टिमालोक्य स्वप्नेऽप्युद्विजे। कतिवारं 'सौवर्णि! सौवर्णि! मा स्म खेदयथा आत्मानम्" इति स्वप्ने चाऽहं चीदकरवम्, व्यलपम्, उदस्थाम्, करौ प्रासारयम्, अरोदिषञ्च। सप्रश्रयं प्रार्थये—विरम विरम, मा स्म जटालाभिश्चिन्ता-ज्वालाभिः कुसुमानीव कोमलान्यङ्गानि धाक्षीः—इति।

सौवर्णी तु पटान्तेन चक्षुषी परिमृशन्ती, परिवर्तितवदना मन्दं मन्दमभ्यधात्—वीर! अभाग्य एव जनः, अस्वायत्तं हृदयम्, विगलितं धैर्य्यम्, पराधीनं चित्तम्, अस्थिर आत्मा,

उद्विजे = खेदमनुभवामि। चीदकरवम्=चीत्कारमकार्षम्। व्यलपम् = विलापमकरवम्। उदस्थाम् = उत्थितोऽभूवम्। करौ = हस्तौ। प्रासारयम्= क्रोडीकरणार्थम्। अरोदिषम्=अक्रन्दम्। सप्रश्रयम् = सनम्रतम्। जटालाभिः=जटामयीभि, विपुलाभिरिति यावत्। अङ्गानि = अवयवान्। मा स्म धाक्षीः=मा दह।

परिमृशन्ती=परिमार्जयन्ती। परिवर्त्तितवदना=अन्यतः कृतानना। अभ्यधात् = अकथयत्। अस्वायत्तम् = अस्वाधीनम्। विगलितम् =

सोचकर चित्त को चञ्चल कर रही हो! प्रतिदिन सूखते जा रहे तुम्हारे शरीर को देखकर मैं स्वप्नों में भी उद्विग्न हो जाता हूँ। मैं कितनी ही बार स्वप्न में "सौवर्णी, सौवर्णी! अपने को कष्ट न दो" इस प्रकार चिल्ला उठा हूँ, विलाप करने लगा हूँ, उठ गया हूँ, और मैंने अपने दोनों हाथों को फैला दिया है और तुम्हें न पाकर मैं रोया भी हूँ। मैं तुमसे विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूँ—'रुक जाओ, रुक जाओ, चिन्ता की भीषण ज्वालाओं में अपने फूलों के समान कोमल अंगों को मत जलाओ'।

सौवर्णी आँचल से आँखें पोंछती हुई मुख फेरकर धीरे-धीरे कहने लगी—

वीर! मैं अभागिनी हूँ, मेरा हृदय वश में नहीं है, धैर्य छूट ( समाप्त हो ) गया है, मन पराधीन ( हो गया ) है, और अन्तःकरण चञ्चल है;

दुर्निवारः प्रेमप्रवाहः, दुरन्तोऽभिलाषः, अप्रतिरोधा कर्मरेखा, तत् किमिव वच्मि ? किमिव भावयामि ? न जाने कीदृश वज्रादपि निष्ठुर हृदय भवादृशाना व्यरचि विधात्रा, ये स्वसमर्पित जीवनानामनन्यशरणाना वचनमात्रेणापि विश्वासमापाद्य, सुधासारासारैरिव ज्वलज्जीव - जीवन जीवातुभूतैरालापैरालोकैरपि च दु खदाव-दन्दह्यमान देह न शीतलयन्ति—

विनष्टम् । आत्मा = अन्त करणम् । दुरन्तः = असुखपरिणाम । अभिलाष. = मनोरथ । अप्रतिरोधा = रोद्धुमनहा, अवारणीयेति यावत् । भावयामि = करोमि । वज्रादपि = अशनेरपि । निष्ठुरम् = कठोरम् । भवादृशानाम् = लोकोत्तराणाम् ।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणा चेतासि को नु विज्ञातुमर्हति ॥

इत्युत्तररामचरिते भवभूति । स्वसमर्पितजीवनानाम् = स्वयमुत्सृष्ट प्राणानाम् । अनन्यशरणानाम्=अनितरनाथानाम् । सुधासारासारैरिव= पीयूषधारावर्षैरिव । ज्वलताम् = दहताम् । जीवानाम् = प्राणिनाम् , जीवनस्य = प्राणनस्य । जीवातुभूतै = जीवनौषधिभि । आलापै. = मधुरभाषणै । आलोकै. = दर्शनै । दु ख-दाव दन्दह्यमानम् = क्लेशाग्नि जाज्वल्यम नम् । न शीतलयन्ति = न शिशिरयन्ति ।

प्रेम प्रवाह को रोका नहीं जा सकता, मनोरथ का परिणाम दु ख ही है, और भाग्य की रेखा अमिट है । क्या कहूँ ? क्या करूँ ! विधाता ने आप के से लोगों के हृदय को न जाने कैसा वज्र से भी कठोर बनाया है कि आप के से लोग, अपने को जीवन समर्पित कर देने वाले, अपनी शरण में आये हुए, अनन्य शरण व्यक्ति के दुःख की ज्वाला में जलते हुए शरीर को, वचन मात्र से भी विश्वास पैदा करके अमृत की धारा की वर्षा के समान, जलते हुए प्राणियों के लिये प्राणदायक ( जल के समान ) मधुर भाषणों तथा दर्शनों से भी शीतल नहीं करते ।

इति कथयित्वा; अश्रूणि मुञ्चन्तीं स्वप्राणाधारभूतामालोक्य विस्मृतात्मा, सपदि समीपमागत्य, स्वकक्ष-गुटिकातः पट-खण्डं निस्सार्य स्वहस्तेन तद्बाष्पाणि अपहरन्, द्वित्रैर्मौक्तिकैरिव च स्वचक्षुः-पतितैः कवोष्णैर्बिन्दुभिस्तद्धम्मिल्ल-मतल्लिकामासिञ्चन्, भग्नेन स्वरेण मन्दमगादीद् रघुवीरः—

किमत्र संशेपे ? कोऽत्र सन्देहः ? काऽत्र विचिकित्सा ? कौमार-ब्रह्मचर्य-महाव्रतेनैव गात्राणि जर्जरयिष्यामि, त्वामेव वा

अश्रूणि मुञ्चन्तीम् = रुदन्तीम् । स्वप्राणाधारभूताम् = स्वजीवनाभयभूताम् । स्वकक्ष-गुटिकातः = निजबाहुमूलान्तरालस्थापितपोटलिकातः । पटखण्डम् = कर्पटम् । मौक्तिकैरिव, इत्युपमा । कवोष्णैः = ईषदुष्णैः । "कवञ्चोष्णे" इति कवादेशः । धम्मिल्ल-मतल्लिकाम् = प्रशस्त संयतकचम् । "मतल्लिका मचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ । प्रशस्तवाचकानि" इत्यमरः । "प्रशंसावचनैश्च" इति परनिपातः । भग्नेन = त्रुटितेन ।

संशेपे = संशयं करोषि । विचिकित्सा = संशयः । "विचिकित्सा तु संशयः" । दार्ढ्याय पुनरुक्तिः । कौमार-ब्रह्मचर्य-महाव्रतेन = आबाल-ब्रह्मचर्य रूपेण महता नियमेन । जर्जरयिष्यामि = जीर्णयिष्यामि ।

यह कहकर, आँसू बहाती हुई, अपनी प्राणप्रिया को देखकर आत्म-विस्मृत रघुवीर, तत्काल पास आकर, अपनी काँख में दबी पोटली से रूमाल निकाल कर अपने हाथ से उसके आँसुओं को पोंछता हुआ, अपनी आँखों से गिरे हुए, मोतियों के से, दो तीन कवोष्ण (कुछ गरम) अश्रुबिन्दुओं से-उसके प्रशस्त केशपाश को सींचता हुआ, लड़खड़ाते हुए स्वर से धीरे से बोला—

इसमें संशय क्यों कर रही हो ? इसमें क्या सन्देह है ? कौन सी विचिकित्सा है ? मैं या तो बाल-ब्रह्मचारी रहने का महाव्रत धारण कर इस शरीर को जर्जर कर डालूँगा, या तुम्हीं से विवाह करूँगा, यह मेरा दृढ़

परिणेष्यामीति सुदृढो मे नियमः। त्वं क्षत्रिय-कन्याऽसि, सुक्षत्रिय एवैष जनः। त्वं राजपुत्र-देशीयाऽसि, तद्देशीय एव चाहम्। अनुरागश्चोभयतः, तद् यदि तवाग्रजौ पूज्यपुरोहितश्चानुमन्येरन् तत्प्रकटमेव तूर्णमेव च स्यात् परिणयः—

इति वदत्येव तस्मिन्—"सौवर्णि! कुतोऽसि? अग्रजस्त्वां प्रतीक्षते, आगच्छ-आगच्छ"-इति देवशर्म-च्छात्र-विशेष-विहितेव दूराहूतिराकर्णि। सद्य एव च तौ कर्णयोः किमप्यालप्येव, एकतः सौवर्णी, परतश्च रघुवीरः—इति द्वावपि शाद्वलमेनद् रिक्तमकुरुताम्।

  

परिणेष्यामि = विवाहयिष्यामि। क्षत्रियस्य कन्या=बालिका। सुक्षत्रियः=शोभनः क्षत्रियः। विवाहयोग्यतासूचकमिदम्। अग्रजौ=ज्येष्ठौ भ्रातरौ। प्रकटम्=प्रत्यक्षम्। तूर्णम्=शीघ्रम्।

देवशर्म-च्छात्र-विशेष-विहिता=देवशर्म-शिष्यान्यतमकृता। दूराहूतिः=दूरात् आह्वानम्। शाद्वलम्=घासमयं हरितं स्थानम्। रिक्तम्=शून्यम्। अकुरुताम्=व्यधत्ताम्। ततोऽगच्छतामिति भावः।

  

निश्चय है। तुम क्षत्रिय की कन्या हो, मैं भी कुलीन क्षत्रिय हूं। तुम राजपूताने की हो, मैं भी वहीं का हूं, दोनों ओर से प्रेम भी है; तो यदि तुम्हारे दोनों भाई और पूज्य पुरोहित अनुमति दें तो प्रत्यक्ष ही और शीघ्र ही हम दोनों का विवाह हो जाए।

रघुवीर यह कह ही रहा था कि "सौवर्णी! कहाँ हो, तुम्हारे बड़े भाई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, आओ, आओ," इस प्रकार की, देवशर्मा के किसी छात्र की, दूर से पुकारने की सी आवाज सुनाई पड़ी। तत्क्षण एक दूसरे के कानों में कुछ कह कर, एक ओर सौवर्णी चल दी और दूसरी ओर रघुवीर चल दिया, इस प्रकार उन दोनों ने हरी घास के इस मैदान को खाली कर दिया।

तत्र तु गौरसिंहो देवशर्मणः पुरोहितस्योपवेश-भवने समुपविष्टो देवशर्म्मणैवमालपति स्म ।

गौरसिंहः—गुरो ! अद्यापि प्रधानभूता काचन घटना भवित्रीति श्रीमत आशिषमेव ग्रहीतुमायातोऽस्मि ।

देवशर्म्मा-[ प्रणमतः पृष्ठं संस्पृश्य ] विजयी भूयाः !

गौरसिंहः—आर्य ! अपि मे भगिनी सौवर्णी प्रसीदति ?

देव०—आम् , प्रसन्नाऽस्ति । अथवा किमिव प्रसीदेत् ? राजवंश-जातापि मातापितृ-विहीना भ्रातृ-साहचर्य-सुखमप्यननुभवन्ती वृद्धस्य मे सेवया कथं कथमपि दिनानि गमयति । अधुना तु तस्या विवाह-चिन्ताऽपि भवद्भ्यामावहनीया । कन्यका हि श्वशुरालये क्लेशिता अपि वरम् , न चान्यत्र सुखिन्योऽपि ।

उपवेश-भवने = वार्तादिकरणार्थके सदने । 'बैठक' इति हिन्दी ।

प्रणमतः = प्रणतिं कुर्वतः, शतृप्रत्ययान्तरूपम् ।

प्रसीदति = प्रसन्नाऽस्ति ।

राजवंशजाताऽपि = नृपान्वयोद्भवाऽपि । दिनानि = अहानि । गमयति = यापयति । आवहनीया = धारणीया । क्लेशिताः = क्लेश प्रापिताः ।

वहाँ गौरसिंह पुरोहित देवशर्मा की बैठक में बैठा हुआ उनके साथ इस प्रकार वार्तालाप कर रहा था ।

गौरसिंह—गुरु जी ! आज भी कोई महत्वपूर्ण घटना घटित होने वाली है, अतः आप का आशीर्वाद लेने ही आया हू ।

देवशर्मा— [ प्रणाम करते हुए गौरसिंह की पीठ पर हाथ रख कर ] विजयी बनो ।

गौरसिंह—आर्य ! मेरी अनुजा सौवर्णी प्रसन्न तो है ?

देवशर्मा—हाँ प्रसन्न है । अथवा प्रसन्न क्या रहे, राजवंश में उत्पन्न होकर भी माता-पिता से रहित तथा भाइयों के साथ रहने के सुख के अनुभव से भी वञ्चित वह,मुझ वृद्ध की शुश्रूषा में ही जैसे-तैसे दिन बिता देती है । अब तो आप लोगों को उसके विवाह की भी चिन्ता करनी चाहिये । लड़कियों के लिये ससुराल में कष्टों में रहना भी अच्छा और अन्यत्र सुखी रहना भी नहीं।

गौर०—आर्य ! आवयोरपि मनसि वारं वारमुदेत्येष विषयः, किन्तु कोऽपि योग्यो वर एव न हृदयमारोहति । अपि स्मरति भवान् तातेन कस्मैचिद्दातुमेषा मनसि कृता ?

देव०—स्मरामि, अम्बरार्धीशानां कुलजातः, कश्चिद् वीरसिंहो नामान्यतमो भूस्वाम्यासीत । स चैकदा सपुत्रस्तव तातेनोत्सवविशेषे समाकारितो बभूव । तत्पुत्रेण रामसिंहेन सह सौवर्णी चिरमक्रीडत् । अन्यैः समवयस्कैर्बालैश्च क्रीडास्वेव तयोर्विवाह-खेला व्यधायि। तदाकर्ण्य प्रीतः खड्गसिंहः स्वमित्रं सुचरितं वीरं प्रत्यज्ञासीत् यद्–"यद्युभौ चिरं जीवेताम् ; तर्हि कोशला रामाय दास्यते"—इति ।

---

उदेति = उदयं प्राप्नोति । आरोहति = समागच्छति । अनुरूपो वरो न दृश्यत इति भावः ।

कुले = अन्वये, जातः = उत्पन्नः । कुलपदस्य सविशेषणत्वेऽपि नित्यसाकाङ्क्षत्वात्समासः । भूस्वामी = "जमींदार" इति हिन्दी । समाकारितः = समाहूतः । अक्रीडत् = खेलामकार्षीत् । समवयस्कैः = तुल्यावस्थैः । विवाहखेला = क्रीडात्मकः परिणयः । व्यधायि = कृता । प्रीतः = प्रसन्नः । प्रत्यज्ञासीत् = प्रतिज्ञामकार्षीत् । कोशला = खड्गसिंहस्य कन्या सौवर्णी । रामाय=रामसिंहाय । वचनभङ्ग्या तदावश्यकं निवेदितम् ।

---

गौरसिंह—आर्य ! हम दोनों के मन में भी यह विषय बार-बार उठता है, पर कोई योग्य वर ही मन में नहीं बैठ रहा है । क्या आपको स्मरण है कि पिताजी ने इसे किसको देने का विचार किया था ?

देवशर्मा—हाँ स्मरण है । अम्बर ( आमेर ) के राजकुल में उत्पन्न वीरसिंह नाम के एक जागीरदार थे । उन्हें तुम्हारे पिताजी ने एक बार एक उत्सव में पुत्रसहित निमन्त्रित किया । उनके पुत्र रामसिंह के साथ सौवर्णी प्रायः खेला करती थी । अन्य समवयस्क बालकों ने खेल ही खेल में उन दोनों का विवाह रच दिया । यह सुनकर प्रसन्न खड्गसिंह ने अपने सच्चरित्र मित्र वीरसिंह को वचन दिया था कि 'यदि दोनों चिरञ्जीवी रहे तो कोशला का विवाह रामसिंह से कर दिया जाएगा ।'

गौर०—अपि ज्ञायते सन्ति ते कुशलिनः ?

देव०—[निःश्वस्य] विचित्रा घटना भगवतः। तस्य सेनानिवेश-शैथिल्यमेकदा समवलोक्य, अम्बराधीशेन जयसिंहेन तस्याखिला भूसम्पत्तिरपहृता। पत्नी चैतस्य विसूचिकापीडिता पुत्रमुखे दत्तदृष्टिरेव चरमं निरश्वसत्। वीरश्च सपुत्र-पुरोहितो रामेश्वरयात्रायै गतो नाद्यापि ज्ञायते क्वास्तीति।

एवमालपत्स्वेव तेषु सौवर्ण्यपि समायाता, प्रफुल्लनयना च गौरस्य समीपे समुपविष्टा। गौरोऽपि तत्पृष्ठे दत्तहस्तः कुशलादिकं

सेनानिवेशे = सैन्यसग्रहे, शैथिल्यम् = त्रुटिम्। भू-सम्पत्तिः = गृहभूम्याद्यात्मकमैश्वर्यम्। विसूचिकया = तन्नामकेन रोगविशेषेण, महामार्यपरपर्यायेण, पीडिता = क्लेशिता। चरमं निरश्वसत् = अन्तिम श्वासमग्रहीत्, चरममिति क्रियाविशेषणम्। मृतेति यावत्। रामेश्वरस्य = भगवद्रामभद्रसंस्थापितस्य दक्षिणभारतस्थस्य लङ्काविजयलक्ष्मभूतस्य धामचतुष्टयान्यतमाधीशस्य, यात्रायै = दर्शनार्थगमनाय।

प्रफुल्लनयना = विकसितनेत्रा।

गौरसिंह—क्या आप उन (वीरसिंह) की कुशलता के सम्बन्ध में जानते हैं?

देवशर्मा—[निःश्वास लेकर] भगवान् की लीला विचित्र है। एक बार सैन्यशिविर में असावधानी देखकर आमेर-नरेश जयसिंह ने उनकी सारी जागीर छीन ली। उनकी पत्नी ने भी, विसूचिका (हैजा) के प्रकोप से, पुत्र का मुख देखते हुए ही अन्तिम साँस ले ली। वीरसिंह भी पुत्र और पुरोहित के साथ रामेश्वर की यात्रा के लिये घर से चले गये, और तब से उनका पता नहीं है कि वे कहाँ हैं?

वे इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि सौवर्णी भी आ गई और प्रसन्न नयन से गौरसिंह के पास बैठ गई। गौरसिंह ने भी उनकी पीठ पर हाथ रखकर, कुशल मङ्गल पूछ कर, ज्यों ही कुछ कहना चाहा कि एका-

पृष्ट्वा यावत्किमप्यालपति, तावदकस्माद् रघुवीरोऽपि तत्राऽऽगत्य, देवशर्माणं प्रणम्य, सादरं गौरमुवाच—

आर्य ! क्षम्यतां किञ्चन अत्यावश्यकं निवेदयिष्यामि।

अथ तयोरेवमभूदालापः।

गौर०—कथय कथय किं कथयसि ?

रघु०—इतः पश्चिमतो गव्यूत्यन्तराले कतिभिश्चन यवनसादिभिरावृता बहुभिर्भल्लहस्तैर्धानुष्कैः शाक्तीकैश्च सुरक्षिता शिबिकैका नीयते। निरचैषमवेदिषं च यत् कस्मैचित् प्रयोजनाय गोलखण्डपर्यन्तं दिल्लीश्वरः समायातोऽस्तीति—तत्साक्षात्काराय तद्दुहिता रसनारी यातीति। तदत्राऽऽर्योः प्रमाणम्।

पश्चिमतः = पश्चिमायां दिशि। गव्यूतेः = क्रोशद्वयस्य, "गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगम्" इत्यमरः। अन्तराले = मध्ये। यवनसादिभिः = म्लेच्छाश्वारोहिभिः। भल्लहस्तैः = बाण-प्रहरणवद्भिः। धानुष्कैः = धनुर्धारिभिः। शाक्तीकैः = शक्तिप्रहरणवद्भिः। शिबिका = नरवाह्या पालकी। निरचैषम् = निर्णीतवान्। अवेदिषम् = अज्ञासिषम्। गोलखण्डपर्यन्तम् = "गोलकुण्डा" स्थानान्तम्। दिल्लीश्वरः = अवरङ्गजीवः। तद्दुहिता = तत्पुत्री, रसनारी = "रोशन आरा" इति ख्याता।

एक रघुवीर भी वहीं आकर देवशर्मा को प्रणाम कर, गौरसिंह से सम्मानपूर्वक बोला—

आर्य ! क्षमा कीजिएगा, एक अत्यन्त आवश्यक बात कहनी है। उसके बाद गौरसिंह और रघुवीर में इस प्रकार बातचीत हुई।

गौरसिंह—कहो, कहो, क्या कह रहे हो ?

रघुवीर—यहाँ से पश्चिम की ओर दो कोस की दूरी पर कुछ यवन अश्वारोहियों से घिरी हुई, और अनेक भाला धनुष और शक्ति चलाने वाले सैनिकों से रक्षित एक पालकी ले जाई जा रही है, मैंने निश्चित पता लगा लिया है कि किसी उद्देश्य से दिल्लीश्वर गोलकुण्डा तक आया है और उसकी पुत्री रौशन-आरा उससे मिलने जा रही है। आगे आप जैसा उचित समझें।

गौर०—आ! किमुक्तम्? दिल्ली-कलङ्कस्य कन्या?

रघु०—एवम्।

गौर०—योऽसावार्याणां दारानपहरति, सतीर्दूषयति; तस्यैव कन्याऽद्य महाराष्ट्र-सिंहानां कन्दर-द्वारि मृगीव स्वयमापतिता?

रघु०—एवमेव निश्चीयते।

गौर०—आर्यपुरोहित! सौवर्ण्यपहारक-यवन-युवक-हत्ययाऽपि न शाम्यति मे क्रोधः, तदद्य पर-वधू-कन्या-हरणं कथमिवारुन्तुदमिति 'अवरङ्गजीब'-हतकमनुभावयिष्यामि। तदनुमन्यतां त्वरितमार्यैः।

---

आर्याणाम् = हिन्दूनाम्। दूषयति = पांसुलयति। कन्दरद्वारि = गुहामुखे। मृगीव = हरिणीवेत्युपमा, दैन्यं द्योतितम्।

सौवर्ण्याः, अपहारकस्य=चोरयितुः। यवनयुवकस्य, हत्यया=मारणेन। परेषाम् = अन्येषाम्, वधूनाम् = स्त्रीणाम्, कन्यकानाम्=अविवाहितानां बालिकानाम्। कथमिव = केन प्रकारेण। अरुन्तुदम् = मर्मपीडकम्। अनुभावयिष्यामि = अनुभवगोचरतामानयिष्यामि। अनुमन्यताम् = अनुज्ञायताम्। त्वरितम् = शीघ्रम्।

---

गौरसिंह—एँ! क्या कहा, दिल्ली-कलङ्क (औरङ्गजेब) की कन्या!

रघुवीर—जी हाँ।

गौरसिंह—जो आर्यों की स्त्रियों का अपहरण करता है, पतिव्रताओं को दूषित करता है उसी की कन्या आज मृगी की भाँति महाराष्ट्र के सिंहों की गुफा के द्वार पर स्वयं ही आ गयी है।

रघुवीर—मालूम तो ऐसा ही होता है।

गौरसिंह—पूज्य पुरोहित जी! सौवर्णी को चुरा ले जाने वाले यवन-युवक को मार कर भी मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ है, इसलिये मैं आज नीच औरङ्गजेब को यह अनुभव करा दूँगा कि दूसरों की बहू-बेटियों का हरण कितना कष्टप्रद होता है। अतः आप शीघ्र ही अनुमति दें।

इति प्रणम्य सह रघुवीरेण सपदि निवृत्तः तोरणदुर्गात् कांश्चिदतिचतुरान् सैन्धवारोहान् सह नयन्, स्वाधिष्ठितचरकुटीरतः कटि-पटाच्छन्न-च्छुरिकान्, सान्तर्भल्ल-कृत्रिम-दण्डहस्तान्, शतं मस्करिवेषान् वीरान् सह नीत्वा येन पथा सा शिविका समानीयते तस्मिन्नेवैकत्र पर्वत-प्रान्ते गण्ड-शैलावृत-स्थले वर्षा-वारि-पूर्णमेकमल्पं कुण्डमालोक्य विषाक्तं विधाय, तत्प्रान्त-प्ररूढ-कुसुम-स्तबकेष्वपि घ्राणमात्रेण मूर्च्छावहं गरलमायोज्य, तत्परिसरवनभागे

सपदि = तत्कालम् । सैन्धवारोहान् = सादिनः । स्वाधिष्ठितचरकुटीरतः = स्वाध्युषितकुटीरात् । 'भूतपूर्वे चरट्' । कटिपटेषु = मध्यभागीयवसनेषु, आच्छन्नाः = गुप्ततया स्थापिता., छुरिकाः = असिधेनवः यैस्तान् । सान्तर्भल्लाः = सगुप्तशल्याः, कृत्रिमा. = निर्मिता, दण्डाः = 'गुप्ती' इति ख्याताः, हस्ते येषा तान् । शतम् = शतसङ्ख्याकान् । मस्करिवेषान् = परिव्राजकवेषधारिणः । "भिक्षुः परिव्राट् कर्मन्दी पाराशर्यपि मस्करी" इत्यमरः । पर्वतप्रान्ते = गिर्येकदेशे । गण्डशैलैः, आवृते = सन्छन्ने, स्थले = भुवि । वर्षा-वारि-पूर्णम् = प्रावृड्-जल-भरितम् । अल्पम् = क्षुद्रम् । कुण्डम् = पल्वलम् । विषाक्तम् = हालाहलादिमिश्रम् । तत्प्रान्त-कुसुम-स्तबकेषु = तद्देश-सञ्जात-पुष्पगुच्छेषु, घ्राणमात्रेण = केवलेन गन्धग्रहणेन, मूर्च्छावहम् = विचेतनतापादकम् । गरलम् = विषम् । आयोज्य = सम्मिश्र्य । तत्परिसरवनभागे = तदन्तिकविपिनैकदेशे ।

यह कह कर, प्रणाम कर के गौरसिंह रघुवीरसिंह के साथ, झट पट लौटकर तोरण दुर्ग से कुछ अत्यन्त कुशल अश्वारोहियों को साथ लेकर, अपनी पुरानी—कुटी आया। वहाँ से सन्यासी का वेश धारण किए हुए सौ ऐसे वीरों को जिन्होंने अपने कटि वस्त्र में छुरे छिपा रखे थे और जिनके हाथ में गुप्तियाँ ( अर्थात् ऐसी छड़ियाँ जिनके अन्दर भाले गुप्त थे ) थीं, साथ लेकर जिस मार्ग से वह पाल्की आ रही थी उसी पर, एक पहाड़ी पर बड़ी-बड़ी शिलाओं से घिरे स्थान पर, वर्षा के जल से भरा एक छोटा-सा कुण्ड देखकर उसमें विष घोल कर उसे विषाक्त बना कर, उसके किनारे उगे हुए फूलों के गुच्छों पर भी सूँघने मात्र से मूर्छित कर देने वाला

एव सर्वे समाच्छन्नाः समतिष्ठन्त ।

तावत् समायातास्ते सगणाः शिविकावाहाः । "अहो ! रम्यमिदं स्थानम्, क्षणं विरम्यताम्, उदकादिकं पीयताम्, परतो यास्यते" इति वदन्तः, उपविशोपविश, तिष्ठ तिष्ठ, रुन्धि रुन्धि, इति सर्वे तत्रैव विरेमुः । यावत्ते किमपि बुभुक्षव इव, इतस्ततः समवलोकयन्ति; तावदकस्मादेको वृद्धः करधृत गात्रावलम्ब्य-दण्डः पिटकमेकं वहन् दृष्टः । "अरे ! रे ! दशमिहतक ! किमास्ते पेटायाम् ? कुतो यासि ?" इति पृष्टोऽसौ ईषत्त्रस्त इव; "न न न न किमपि, भ भ भगवन !" इति कथयन् त्वरितं चलितः । ते तु सर्वे गृहीष्यं

समाच्छन्नाः = निलीनाः । समतिष्ठन्त=स्थिताः ।

सगणाः = ससैन्याः । रम्यम्=हृद्यम् । क्षणम्=मुहूर्त्तम् । परतः = पश्चात्, यास्यते = गमिष्यते । रुन्धि-रुन्धि = स्थगितो भव, स्थगितो भव । सम्भ्रमे द्विरुक्तिः । विरेमुः = यात्रा स्थगितामकार्षुः । बुभुक्षव इव = भोक्तुमिच्छव इव । अकस्मात् = सहसा । करधृतगात्रावलम्बनदण्डः = हस्तगृहीतशरीरालम्बदण्डः । पिटकम् = मञ्जूषाम् । वहन् = नयन् । दशमिहतक = दशमीमवस्था गत । वृद्ध नीच । नवतितः शतवर्षपर्यन्तमायुषः दशमीति संज्ञा । ईषत्त्रस्त इव = किञ्चिद्भयाक्रान्त इव । हरध्वम्=चोर-

विप छिड़क कर, उसके समीपस्थ वन प्रदेश मे ही, सभी के साथ छिपकर बैठ गया ।

तब तक पालकी ढोने वाले भी रक्षकों के साथ वहीं आ गये । 'अहा ! यह स्थान सुहावना है, क्षण भर रुक जाओ, जल पान कर लो, फिर आगे चला जाएगा, 'बैठो बैठो, ठहरो-ठहरो, यह कहते हुए रुको-रुको' कहते हुए वे सभी वहीं रुक गये और कुछ खाने की इच्छा से इधर-उधर देखने लगे; तब तक उन्हें हाथ में सहारे की छड़ी लिये हुए, एक पेटी ले जाता हुआ एक वृद्ध पुरुष दिखाई दिया । 'अरे ओ बुड्ढे ! इस पेटी में क्या है ? तू कहाँ जा रहा है', इस प्रकार पूछा जाने पर, वह वृद्ध कुछ डरा हुआ सा, 'न-न-न नहीं, कुछ भी नहीं, भ-भ-भगवन्' कहते हुए तेजी से चल दिया । उन सभी

गृह्णीध्वं, हरध्वं हरध्वम्, लुण्ठत लुण्ठत, हत हतेति तं वराकमहम्पूर्विकया लुलुण्ठुः। स च कृत्रिम-पथिकः सकपट-क्रन्दन-गलज्जलैर्मुखं क्षालयन् तिरोबभूव।

एते च तत्पेटकाद् मधुर-मोदक-वृन्दमाप्य, परस्परं विभज्य, बुभुजिरे। तत्र प्रत्येकं मूर्छक-द्रव्यमयमास्वाद्य सर्वेऽप्यशयिषत। तन्मण्डलाध्यक्षस्य तु समीपे शूलाकृतं मांसं काच-पात्र-परिपूरितं मद्यं चाऽऽसीदिति स तदास्वादनमात्रासादिततृप्तिः केवलं जागर्ति स्म।

---

यध्वम्। हत = ताडयतेत्यर्थकमव्ययम्। अहम्पूर्विकया=अहं पूर्वमहं पूर्वमिति मनीषापूर्वम्। लुलुण्ठुः = बलाचोरयामासुः। सकपटम् = सव्याजम्, यत् क्रन्दनम् = रोदनम्, तस्मिन् गलद्भिः = स्रवद्भिः, जलैः = अश्रुभिः। तिरोबभूव = अन्तर्हितः।

मधुर-मोदक-वृन्दम्=सरसमिष्टसमूहम्। आप्य=लब्ध्वा, आप्लृव्यवस्रलेपोऽत्र ध्येयः। मूर्छकद्रव्यमयम् = मोहकविषमिश्रम्। आस्वाद्य=रसयित्वा। अशयिषत = निद्रामलभन्त। तन्मण्डलाध्यक्षस्य = सेनापतेः, शूलाकृतम् = शूले पक्वम्। काचपत्रे=वर्तुले, "बोतल" इति हिन्दी। परिपूरितम्= भरितम्। मद्यम् = सुरा। तदास्वादनमात्रेण = तत्स्वादनपानमात्रेण, आसादिता = लब्धा, तृप्तिः = परितोषः, येन सः। केवलम् = एकाकि, क्रियाविशेषणम्।

---

(यवनों) ने, 'पकड़ो-पकड़ो, छीनो-छीनो, लूटो-लूटो, मारो-मारो', कह कर होड़ लगा कर उस बेचारे को लूट लिया और वह बनावटी पथिक बनावटी रुदन के कारण बहते हुए आँसुओं से मुँह धोता हुआ तिरोहित हो गया।

इन सब लोगों ने, उसकी पेटी में मीठे-मीठे लड्डू पाकर, आपस में बाँट कर खाया। उन सारे लड्डुओं में मूर्छित कर देने वाला विष था जिसे खा जाने के कारण सबके सब के सब सो गये। उनके नायक के पास कबाब (लोहे की सलाखों में लगा कर भूना गया मांस) और बोतल में भरी शराब रखी थी अतः केवल वही कबाब और शराब के आस्वादन मात्र से तृप्त होकर, (लड्डू न खाने के कारण विष से अप्रभावित रह कर) जाग रहा था।

अथाकस्मात् सतडतडाशब्दं वर्षन् कश्चन मेघखण्ड उपरिष्टात् समायातः। न कोऽप्युदस्थादित्यवलोक्य, अत्यन्तं समशयिष्टाध्यक्षः। स्वयं स्वास्तरणमेकस्याऽऽसन्नस्य च्छायातरोर्मूले आकृष्य, वाहकानाह्वयमानां शिबिकान्तस्थां रसनारोम्—"मन्ये न कोऽपि जागर्ति, सर्वेऽत्यन्तगाढनिद्रया सुप्ता एते दास्याः पुत्राः"—इति घोषयित्वा, अखिलान् पादाघातेन कराकर्षणेन चाऽऽलोक्य सत्यं मूर्च्छितानवगत्य, शीतलयितुं सुगन्धि-कुसुमानि जिघ्रापयिषुः, पार्श्व-परिवर्ति-क्षुपाग्रात् गुच्छकमेकमाचिनोत्। तत्समीपे समाग-

सतडतडाशब्दम् = सविद्युत्स्तनितध्वनि। समशयिष्ट = सन्देहमकृत। स्वास्तरणम् = स्वविष्टरम्। च्छायातरोः = च्छायादायिवृक्षस्य। वाहकान् = शिबिकावोढॄन्। अत्यन्तगाढनिद्रया = प्रबलस्वापेन। दास्याः पुत्राः = नीचाः। "षष्ठ्या आक्रोशे" इति षष्ठ्या अलुक्। पादाघातेन = चरणताडनेन, कराकर्षणेन = हस्ताकृष्ट्या। शीतलयितुम् = शिशिरयितुम्। निद्रां दूरयितुमिति यावत्। सुगन्धिकुसुमानि = आमोदिपुष्पाणि। जिघ्रापयिषुः = घ्रापयितुमिच्छुः। पार्श्वपरिवर्त्तिनः = समपस्थस्य, क्षुपस्य = ह्रस्वशाखिनः, अग्रात् = प्रान्तात्। गुच्छकम् = स्तवकम्। आचिनोत् = अत्रोटयत्। नवकुसुमस्तवकस्य, रूपदर्शनेन = शोभानिरीक्षणेन, मोहितः =

अकस्मात् तड़ तड़ ध्वनि के साथ पानी बरसाता हुआ एक मेघखण्ड आकाश पर आ गया। किसी को भी उठते न देखकर नायक को सन्देह हुआ और उसने स्वयं ही अपने बिस्तर को समीप के एक छायादार वृक्ष के नीचे खींच कर, पालकी के अन्दर से कहारों को बुला रही रोशन-आरा से, 'मालूम होता है कोई नहीं जाग रहा है, हरामज़ादे, सब के सब गाढ़ी नींद में सो रहे हैं', यह कहकर सभी को पैर की ठोकर मार कर तथा हाथ खींच कर, वस्तुतः मूर्छित जानकर, शीतल करने के लिये सुगन्धित फूलों को सुंघाने की इच्छा से पास के पौधे से फूलों का एक गुच्छा तोड़ लिया। उनके समीप आते हुए, नवीन कुसुमों के गुच्छे के सौन्दर्य से मुग्ध होकर

च्छंश्च नव-कुसुम-स्तबक-रूप-दर्शन-मोहितो गाढं स्वयमेवाघ्रात्। तत्क्षणाच्च भूमौ पतितो मुमूर्च्छ। वृष्टिरप्यकस्मात् प्रशममाप।

तत्क्षणादेव सन्यासि-कदम्ब-संवलितः कतिपयैः सादिभिरनुगतो गौरसिंहः समाजगाम। एते कपट सन्यासिनस्तु यवन स्पर्शे घृणामावहन्तोऽपि क्षात्र-धर्ममाकलय्य, झटिति तत्कञ्चुकैर्दिल्लीश्वर-नामाङ्कित-रजत - फलकालङ्कृतोष्णीषैस्तादृश-पित्तल - पट्टिकाङ्कित कटिबन्धैश्चाऽऽत्मानमलञ्चक्रुः। एवं केचन तरुशाखालम्बितान् वाजिन उन्मुच्य, वल्गादि-योजनैः सज्जीकृत्य, वलित-वारबाणाः, सुप्त-सादि-शस्त्रैरेव धानुष्काः, काण्डीराः, शाक्तीकाः,

वशीकृतान्तरङ्गः। अघ्रात्=घ्राणविषयमकृत। मुमूर्च्छ=मूर्च्छामधिगतवान्। प्रशमम्=शान्तिम्। आप=लेभे।

संन्यासि-कदम्ब संवलितः = मस्करि - व्यूह - समेत। घृणाम् = जुगुप्साम्। झटिति = त्वरया। तत्कञ्चुकैः = तेषा वसनै। दिल्लीश्वरनाम्ना, अङ्कितै. = चिह्नितै, रजतफलकैः=रौप्यपट्टिकाभि, अलंकृतैः=भूषितै, उष्णीषैः = शिरोवेष्टनै। तादृशीभि, पित्तलपट्टिकाभिः = रीतिफलकै, अकितै, कटिबन्धैः =परिकरबन्धै। अलञ्चक्रुः=भूषयामासु। तरुशाखालम्बितान्=वृक्षस्कन्ध निबद्धान्। वल्गादीनाम्=कविकादीनाम्, योजनैः = सम्बन्धनैः। वलिताः=धारिता, वारबाणाः=कवचानि यैस्ते। सुप्तसादिशस्त्रैः = निद्रालु घोटकवाहासिप्रभृतिभि। धानुष्काः = धनुर्धारिण। काण्डीराः =

उसने उसे स्वयं ही जोर से सूँघा, और तत्काल ही पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा मूर्च्छित हो गया। वर्षा भी एकाएक शान्त हो गई।

उसी समय गौरसिंह सन्यासियों के समूह के साथ आ गया। उसके पीछे-पीछे कुछ अश्वारोही थे। इन बनावटी सन्यासियों ने यवनों के स्पर्श से घृणा करते हुए भी, क्षात्र-धर्म समझ कर, शीघ्रतापूर्वक, उन मूर्च्छित यवनों के वस्त्रों ( कुर्तों ), दिल्लीश्वर के नाम से अङ्कित रजत पट्टों से अलङ्कृत पगड़ी तथा वैसी ही पीतल की पट्टियों से युक्त कमरबन्दों से अपने को

याष्टीकाः, पारश्वधिकाः, प्रासिकाः, नैस्त्रिंशिकाः, कौन्तिकाः, फलक-पाणयश्च भूत्वा तानारुरुहुः। अपरे तथैव परिवर्तितवेषा जङ्घाला, इतरे च वाहकवामङ्गीकृत्य पालङ्कीमुत्थाप्य, सर्वैः सह तोरणदुर्गाभिमुखमेव चल चलेति चेलुः। एवं रसनारीमेनां तोरण दुर्गे संस्थाप्य, दुर्गाध्यक्षं च यथोचितादरैस्सत्कर्तुं रक्षितुं च प्रार्थ्य, जवनं निजमाजानेयमारुह्य, तन्निगालमास्फोटय, सह रघुवीरेण क्वचिदास्कन्दितैः, क्वचिद् धौरितकैः, क्वचिद् वल्गितैः, प्लुतैः, निम्लोचति-

वाणवन्तः। शाक्तीकाः = शक्तिप्रहरणा। याष्टीकाः = यष्टिप्रहरणा। पारश्वधिकाः = परश्वधप्रहरणाः। प्रासिकाः = प्रासहरणाः। नैस्त्रिंशिकाः = खड्गप्रहरणाः। कौन्तिकाः = भल्लधारिणः। फलकपाणिनः = चर्महस्ताः। तान् = अश्वान्। परिवर्त्तितवेषाः = अगीकृतराजभटनेपथ्याः। जङ्घालाः = वेगेन धावकाः। वाहकताम् = शिविकावाहुताम्। पालङ्कीम् = शिविकाम्। "पालकी" इति हिन्दी। जवनम् = वेगवन्तम्। आजानेयम् = शोभनमश्वम्। तन्निगालम् = तद्गलोद्देशम्। आस्कन्दितैः = उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गमनैः। "पाईया" हिन्दी। धौरितकैः = वेगात् गमनैः। वल्गितैः=

अलङ्कृत कर लिया। इस प्रकार सन्यासी का वेष धारण कर आये हुए कुछ वीर वृक्षों की शाखा में बँधे हुए घोड़ों को खोल कर, लगाम आदि लगाकर, उन्हे तैयार कर, कवच धारण कर, सोए हुए अश्वारोहियों के शस्त्रों को लेकर, उन्हीं (शस्त्रों) से, धनुर्धर, बाणधारी, शक्तिधारी, यष्टिधारी, परशुधारी, प्रासधारी, खड्गधारी और शूलधारी बनकर, हाथ ढाल आदि लेकर उन (घोड़ों) पर सवार हो गए। कुछ अन्य वीर, उसी प्रकार वेष बदल कर, पैदल चलने वाले और पालकी उठाने वाले कहार बन कर, पालकी उठाकर, सभी के साथ तोरण दुर्ग की ओर ही 'चलो-चलो' कहते हुए चल दिये। इस प्रकार रोशन आरा को तोरण दुर्ग मे पहुँचा कर दुर्गाध्यक्ष से उसका यथोचित आदर-सत्कार करने तथा उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करने की प्रार्थना कर गौरसिंह अपने तीव्र वेग वाले घोड़े पर सवार होकर, उसकी गर्दन थपथपा कर, कहीं आस्कन्दित (सरपट), कहीं

मार्तण्डमण्डले सपदि सिंहदुर्गमायातो गौरसिंहः ।

अस्मिन् समये पश्चिमाशा-कुण्डलमिव मार्तण्ड-मण्डलमस्ताचल - चूडा - शोणोष्णीषतां भेजे । सिंहदुर्ग-प्राचीराभ्यन्तर एव निःशब्दं वीरा युद्धसज्जां विदधति स्म । भूषणकविर्वीररस-कविता-पाठैरखिलानामुत्साहं द्विगुणयति स्म । वीरा अन्तर्लौहं वर्म्म परिधाय, तदुपरि माङ्गलिक - वर्णैर्वारबाणैरङ्गरक्षिकाभिश्चाऽऽत्मानमाभूष्य, सारसनं बद्ध्वा, आयसशीर्षच्छादकस्योपरि स्वदेशीयं चक्रोष्णीषं धारयन्ति स्म ।

उच्छालनविशेषैः । "आस्कन्दित धौरितक रेचित वल्गित प्लुतम् । गतयोऽमूः पञ्च"ति कोशेऽश्वगतिः पञ्चप्रकारा प्रदर्शिता । निम्लोचति = अस्त गच्छति । मार्त्तण्डमण्डले = भास्करबिम्बे ।

पश्चिमाशायाः = वारुण्या दिशः, कुण्डलमिवेत्युपमा । अस्ताचलस्य = चरमगिरेः, चूडायाः = मस्तकस्य, शोणोष्णीषताम् = रक्तशिरोवेष्टनताम् । भेजे = स्वीचकार । सिंहदुर्गस्य, प्राचीरस्य = प्रान्ततो वृतेः । अभ्यन्तरे = अन्तराले । युद्धसज्जाम् = सङ्ग्रामसन्नाहम् । अन्तः = निम्नांशे । लौहम् = लोहनिर्मितम् । माङ्गलिकवर्णैः = पीतादिभिः । वारबाणैः = कवचैः । अङ्गरक्षिकाभिः = शरीररक्षयित्रीभिः । आभूष्य = भूषयित्वा । सारसनम् = कटिबन्धनम् । आयसस्य = लौहनिर्मितस्य, शीर्षच्छादकस्य = शिरस्त्राणस्य । स्वदेशीयम् = महाराष्ट्रनिर्मितम् । चक्रो-

धौरितक (दुल्की) कहीं वल्गित और कहीं प्लुतगति से घोड़े को बढ़ाता हुआ, सूर्यमण्डल के अस्त होते होते, शीघ्र ही, रघुवीर के साथ, सिंहदुर्ग पहुँच गया ।

इस समय पश्चिम दिशा के कर्णभूषण सा सूर्यमण्डल अस्ताचल के सिर की लालपगड़ी बन गया। सिंहदुर्ग की चहारदीवारी के भीतर ही वीर चुपचाप युद्ध की तैयारी कर रहे थे । भूषण कवि वीररस की कविताएँ सुनाकर सभी का उत्साह द्विगुणित कर रहे थे । वीर नीचे लौह-कवच पहन कर, उसके ऊपर (पीत आदि) माङ्गलिक वर्ण के कवचों तथा अँगरखों से अलङ्कृत होकर, कमरबन्द बाँध कर, लोहे की टोपी के ऊपर, अपने देश की गोल-पगड़ी बाँध लिए थे ।

अथोचाया एकस्या वेदिकाया उपरि समारूढो महाराष्ट्रराजः शिववीरः समवालोकयत्—यत् पूर्वस्यां रिङ्गत्तरङ्ग-भङ्गाहत-वीरा शीतल-समीरा धलद्धलद्-ध्वनि-धीरा गम्भीरा नीरानाम्नी नदी प्रवहति। दक्षिणा प्रतीच्यां च गिरिराजीना परतो गिरि-राजयः, स्वकीयैरभ्रलिहैरुच्चोच्चैः सानुभिरधित्यकास्थैररण्यानी-संस्थानै-र्मेघमाला मण्डल-भ्रममुत्पादयन्ति। उदीच्यां च सुदूर-विस्तृतं हरित-शाद्वलम्, ततश्च पुण्यनगरमवलोक्यते। दुर्गमिदं शैल शिखर-स्थमिति दूर-वीक्षण-नलिकातो वीक्षणेन विलिख्य स्थापितं

---

घ्णीपम्-गोल शिरोवेष्टनम्। रिङ्गत्तरङ्गभङ्गैः=धनुच्छलल्लहरिच्छेदैः, आहतम् = ताडितम्, वीरम् = तटप्रदेशो यस्याः सा। शीतलसमीरा = शिशिरवायुसमवेता। धलद्धलद्ध्वनिना = धलदित्यनुश्रूयमाणशब्देन, धीरा = मन्दगमना। गम्भीरा = अगाधजला। दक्षिणा=दक्षिणस्याम्। आजन्तमव्ययम्। प्रतीच्याम्=पश्चिमायाम्। गिरिराजीनाम् = पर्वतश्रेणी-नाम्। स्वकीयैः=नैजैः, अभ्रलिहैः=मेघस्पर्शिभिः। सानुभिः = शृङ्गैः। अधित्यकास्थैः = पर्वतोर्ध्ववर्त्तिभिः।अरण्यानी-संस्थानैः = महारण्यनिवेशैः। मेघमालामण्डलभ्रमम्=नीरदराजिविम्बभ्रान्तिम्। उदीच्याम्=उत्तरस्याम्। सुदूरविस्तृतम्=अतिविस्तीर्णम्। हरित शाद्वलम्=हरिद्वर्णघासमयम्। हरित-विशेषणं घनहारित्यद्योतनाय। दूरवीक्षणनलिकातः = 'दूरबीन' इति

---

तदनन्तर महाराष्ट्र नरेश शिवाजी ने एक ऊँचे चबूतरे पर चढ़कर देखा कि पूर्व की ओर, उछलती हुई लहरों से तट पर आघात करने वाली, शीतल पवन युक्त, गम्भीर, नीरा नाम की नदी, धल्-धल् शब्दपूर्वक धीरे-धीरे बह रही है। दक्षिण तथा पश्चिम दिशाओं में पहाड़ियों पर पहाड़ियाँ अपनी ऊँची गगनचुम्बी चोटियों तथा अधित्यकाओं में स्थित बड़े-बड़े जंगलों के जाल से मेघमाला के समूह का भ्रम उत्पन्न कर रही हैं, तथा उत्तर दिशा में दूर तक फैला हुआ हरी घास का मैदान और उसके बाद पूना नगर, दिखाई पड़ रहा है। यह दुर्ग पर्वत की चोटी पर बना है अतः यहाँ से सारा-

चित्रमिव साकल्येन नगरमिदमालोक्यते स्म। शिववीरः, तेन सह द्वित्राणि मित्राणि च, सतर्कं सविविध-भाव-भङ्गं नगरमेनदालोकयन्ति। रजन्यामेतस्मिन् नगरे केव दुर्घटा घटना भवित्रीति च पर्य्यालोचयन्ति स्म।

अस्मिन् मण्डले बहुदर्शी शिव-पितृ करपल्लव-च्छायायां यापित-बाल्य वयस्को युद्ध-विद्या-निष्णातः श्रीमुरेश्वराख्य एको वीरवर आसीत्। अपर आबाजीस्वर्णदेवाभिधो ब्राह्मणः, येन स्वबाहुबलेन सर्वोऽपि कल्याणप्रदेशः कल्याणदुर्गं च शिवस्य वशमानीतमासीत्। इतरश्च "अन्नजीवदत्तः"; येन स्ववीर्येण वर्षचतुष्टयात्

प्रसिद्धयन्त्रेण। वीक्षणेन=अवलोकनेन। विलिख्य=चित्रीकृत्य। स्थापितम्=रचितम्। साकल्येन = सम्भूय। सतर्कम् = सविचारम्। दुर्घटा = अभूतपूर्वा। घटना = दशा। पर्य्यालोचयन्ति स्म = व्यचारयन्।

बहुदर्शी = दीर्घदर्शी। शिव पितृ-कर पल्लव-च्छायायाम् = शिववीर-जनक हस्त किसलय-च्छायायाम्। तदाश्रये इति भावः। यापितम् = क्षपितम्, बाल्यम् = आद्यम्, वयः = अवस्था येन सः। युद्ध-विद्यायाम् = संग्रामकलायाम्, निष्णातः = निपुणः, श्रीमुरेश्वराख्यः = "मोरेश्वर, मोरोपन्त" इति प्रसिद्धः। अन्नजीवदत्तः = "अण्णाजीव, दत्तोबा" इति ख्यातः। स्ववीर्येण = स्वबलेन।

नगर दूरबीन की नली से बनाये गये चित्र की भाँति दिखाई पड़ता था। शिवाजी तथा उनके साथ दो-तीन मित्र भी ध्यान से विविध भावभङ्गिमापूर्वक इस नगर को देख रहे थे और यह सोच रहे थे कि रात्रि में इस नगर में कौन सी दुर्घटना घटित होने वाली है।

इस मण्डली में एक तो मुरेश्वर ( मोरो पन्त ) नाम का वीर था जो दूरदर्शी और युद्धविद्या में निपुण था, तथा जिसने अपना लड़कपन शिवाजी के पिताजी के करपल्लवों की छाया में बिताया था; दूसरा आबाजी स्वर्णदेव नामक ब्राह्मण, जिसने अपने बाहुबल से कल्याण दुर्ग सहित सम्पूर्ण कल्याण प्रदेश को शिवाजी के अधीन कर दिया था; और तीसरा वीर था अण्णाजी

प्राक् पानालय-दुर्गं यवन-दुर्गं च शिवस्य हस्तगतं कृतम्। तदेते त्रयोऽपि सम्मुखमायाता एवमालापमकार्षुः।

मुरेश्वरः–आर्य ! सत्यमेव स्थिरीकृतं यदद्य मां वा स्वर्णदेवं वा न सह नेष्यति श्रीमान् ?

शिवराजः–वीरवर ! क्षम्यताम्, नाहं युष्माकं धैर्यं गाम्भीर्यं चातुर्यं वीर्यं वा विस्मरामि। परमलमनुरोधेरद्य। केवलमाशीर्भिरेव संवर्द्धयतामेष जनः। निश्चयेनाहं युष्मदाशीःसवर्द्धितो विजेष्ये। दैवाद् वीरगतिं गतश्चेद् भवत्सु कुशलिषु पुनरपि स्वतन्त्रमेव महाराष्ट्र–राज्यम्, पुनरपि प्राप्तशरणो वैदिको धर्मः, पुनरपि च कम्प एव वक्षःसु भारत-प्रत्यर्थि-पत्नीनाम्। युष्मासु मया सह

धैर्यम्=धीरताम्। गाम्भीर्यम् = गूढप्रकृतिताम्। चातुर्यम्=कौशलम्। वीर्यम्=बलम्। विस्मरामि=विस्मृतिपथमानयामि। संवर्द्धयताम्=प्रोत्साहयताम्। युष्माकम्=भवताम्, आशीर्भिः=सदाशंसनैः, संवर्द्धितः=वृद्धिं गमितः। वीराणां गतिम्=सूर्यमण्डल भित्त्वोर्ध्वगतिम्। प्राप्तशरणः=लब्धरक्षणः। "शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः। भारत-

दत्तोवा, जिसने अपने बल से चार वर्ष पहले पानालय दुर्ग तथा यवन दुर्ग शिवाजी के अधिकार में कर दिये थे। ये तीनों वीर आगे आकर इस प्रकार बातचीत करने लगे।

मुरेश्वर—आर्य ! क्या सचमुच ही आपने आज मुझे या स्वर्णदेव को साथ न ले जाने का निर्णय कर लिया है ?

शिवाजी—वीरवर ! क्षमा करना। मैं आप लोगों के धैर्य, गाम्भीर्य, कौशल और वीरता को नहीं भूला हूं। परन्तु आज ( साथ चलने का ) अनुरोध मत कीजिए। केवल आशीर्वादों से ही मुझे संवर्द्धित कीजिये। मैं, आप लोगों के आशीर्वाद के बल से, निश्चय ही विजय प्राप्त करूंगा। संयोगवश यदि मुझे वीरगति भी प्राप्त हो जाएगी तो भी आप लोगों के सकुशल रहने पर महाराष्ट्र राज्य फिर भी स्वतन्त्र ही रहेगा, पुनः वैदिक धर्म को शरण मिलेगी, और पुनः भारतवर्ष के शत्रुओं की पत्नियों के हृदय

भारतभुवं विरहयत्सु च कस्मिन् धुरं धारयिष्यति धर्मः ? कमालम्बिष्यते भारताभिजन स्वातन्त्र्य भारः ? कस्याग्रे च रोदिष्यति नवोन्नतिमासादयन्ती महाराष्ट्र-जातिः ? तदलमालप्यान्यत् ! महसहचराय मे स्वस्त्युच्यताम्, यथा लीलयैवैतान् प्रमत्त-हतकान् विजये !

ततस्तेष्वाशीराशीन् वदत्सु सपदि प्रविश्य प्रणनाम गौरसिंहः। शिवेन सप्रेमाऽऽशीराश्युदन्तं पृष्टश्चोवाच–"भगवन् ! वरयात्राप्रस्थानात् प्रागेव वधू-प्रवेशो जातः" । अथ "किमिति ? किमिति ?" पृच्छति सर्व-वीर मण्डले, स विशकलय्य सर्वमकथयद् रसनारो-

---

प्रत्यर्थिपत्नीनाम्=हैन्दवशत्रुस्त्रीणाम् । विरहयत्सु=विरहितां कुर्वत्सु । धुरम्=भारम् । भारताभिजनस्वातन्त्र्यभारः=हैन्दवदेशस्वतन्त्रताधुरा । नवाम्=नवीनाम्, उन्नतिम्=वृद्धिम् । आसादयन्ती=प्राप्नुवती । सहसहचराय=सहगणाय । "नमः स्वस्ती" ति चतुर्थी स्वस्तियोगे । "प्रकृत्याशिषि" इत्यनेन सहस्य सादेशनिषेधः । विजये=विजयं करोमि । "विपराभ्यां जेरि" त्यात्मनेपदम् । सप्रेमाशीराशि = सस्नेहमङ्गलोक्तिपुरस्सरम् । उदन्तम् = वृत्तान्तम् । विशकलय्य = स्पष्टीकृत्य । रसनारो-

---

में कम्पन होता रहेगा, किन्तु मेरे साथ ही आप लोगों के भी भारतभूमि को छोड़ देने पर धर्म की धुरा को कौन धारण करेगा ? भारतवासियों की स्वतन्त्रता का भार कौन सँभालेगा ? और नवीन विकास प्राप्त कर रही मराठा जाति किसके आगे रोएगी ? अतः और कुछ भी मत कहिए । मेरे साथ जा रहे साथियों की तथा मेरी मङ्गलकामना कीजिए, जिससे हम खेल-खेल में ही इन नीच अहङ्कारियों को पराजित कर सकें ।

उसके बाद, अभी वे सब आशीर्वाद दे ही रहे थे कि सहसा गौरसिंह ने प्रवेश कर शिवाजी को प्रणाम किया । शिवाजी द्वारा प्रेम और आशीर्वचनों सहित वृत्तान्त पूछने पर गौरसिंह बोला—'महाराज ! बारात के प्रस्थान करने के पूर्व ही वधू घर में आ गई है ।' तब सभी वीरों के 'क्या है, क्या बात है !' इस प्रकार पूछने पर, उसने रोशन आरा की प्राप्ति और उसकी

लाभचरितम्, सुशलेन तोरणदुर्गे स्थापन-वृत्तान्तञ्च। तदाकर्ण्य चात्यन्त-प्रमुदिताः सर्वे—"अतिमाङ्गलिकमिदं, मूर्तिमतीयं जयश्रीः, निश्चितो जय आर्यचरणानाम्"—इति प्रोचुः।

शिवराजस्तु-'गौर! यद्यप्यल्पं ते वयः, तथाऽपि युद्धकार्येष्वनियुक्तोऽपि बहुधा मां तोषितवानसि, तदस्मिन्न युद्धयात्रा समये मङ्गलमाचक्षाणोऽवश्यं पुरस्कार्यः—इति साश्विना पञ्चसहस्त्रया अध्यक्षतायां त्वां विनियुनज्मि, अङ्गीकुरु'—इत्यगादीत्।

अथ समस्तक-नमनमङ्गीकुर्वति गौरे शिवेङ्गितेन तत्पदार्हाणि वासांसि विश्राणयति सुरेश्वरे, तत्पदसूचकमेकं सुवर्ण पट्टकं वक्षसि,

---

लाभचरितम् = "रोशन आरा" प्राप्तिवृत्तम्। जयश्री = विजयलक्ष्मी।

अनियुक्तोऽपि = अप्रेरितोऽपि। आचक्षाणः = कथयन्। पुरस्कार्यः = पारितोषिकदानार्हः। अध्यक्षतायाम् = स्वाम्ये, सैनापत्ये। विनियुनज्मि = स्थापयामि।

तत्पदार्हाणि = तत्स्थानयोग्यानि। तादृशसेनापतिधारणीयानीति यावत्। विश्राणयति = ददति। सुवर्णपट्टकम् = हैरण्यपट्टिकाम्।

---

तोरण दुर्ग में पहुँचा देने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—"यह तो बहुत ही शुभ लक्षण है, इस महिला के रूप में तो मूर्तिमती विजयश्री ही प्राप्त हुई है। महाराज की विजय निश्चित है!"

शिवाजी ने कहा — "गौरसिंह! यद्यपि तुम्हारी उम्र कम है, और तुम युद्ध कार्य में नियुक्त भी नहीं किये गये हो, तो भी तुमने मुझे अनेक बार सन्तुष्ट किया है और इस युद्धयात्रा के अवसर पर मङ्गल सूचक समाचार सुनाया है, अतः तुम्हें कुछ पुरस्कार अवश्य मिलना चाहिये। मैं तुम्हें पाँच हजार अश्वारोहियों का सेनापति नियुक्त करता हूँ, स्वीकार करो।"

गौरसिंह के सिर झुकाकर स्वीकार कर लेने पर, शिवाजी के सङ्केत से, सुरेश्वर द्वारा उस पद के उपयुक्त वस्त्रों के दिये जाने पर, स्वयं शिवाजी ने अपने हाथों से गौरसिंह के वक्षस्थल पर उस पद का सूचक एक

ससुवर्णकोश खड्ग च कटिप्रदेशे शिव. स्वहस्तेन स्वयमायोजयत्। तदुदारता-वर्णन-कविता रचयन्त पठन्त च भूषण मौक्तिक-मालया सम्मान्य यावत् पुर पश्यति, तावद् दृष्टम्—पुरतश्चिर सहचरो माल्यश्रीको नयन-जल क्षालित कपोल' सहग मनानुमति याच्ञतीति। तन्निषेधमनुचित मन्यमानस्तत्प्रार्थनामङ्गी कृत्य चरणयोः पतित रघुवीरमपश्यत्। "किं किं? कथनीय वा किमपि?"-इति पृष्ट स प्रावोचत्-'महाराज ! तद्दिने तोरण-दुर्गात् सपदि पत्रादिकमानीतवन्त मामवलोक्य प्रसन्न. पारितोषिक प्रत्यज्ञासीदार्यः।'

तत. शिवराजः प्राह-'सत्य दास्यते, किन्तु त्वरासमये साम्प्रत

---

ससुवर्णकोशम् = सुवर्णनिर्मितेन आच्छादकेन सहितम्। आयोजयत् = योजितवान्। तदुदारतायाः तदीयमुक्तहस्तविश्राणनस्य, वर्णने, कविना.- काव्यानि। नयनजलेन = अश्रुणा, क्षालितौ = धौतौ, कपोलौ = गण्ड स्थले यस्य स। प्रत्यज्ञासीत् = प्रतिज्ञातवान्।

---

स्वर्णपदक और कमर में सोने की म्यान सहित तलवार बाँधी। शिवाजी ने, अपनी उदारता का वर्णन करनेवाली कविता की रचना कर उसका पाठ करने वाले भूषण कवि को मोतियों की माला से सम्मानित कर ज्यों ही सामने दृष्टि डाली तो देखा कि सामने खड़ा उनका पुराना साथी माल्यश्रीक आँसुओं से अपने कपोलों को धोता हुआ उनसे (शिवाजी से आज के युद्ध में), साथ जाने की अनुमति माँग रहा है। उसको मना करना अनुचित समझते हुए, उसकी प्रार्थना स्वीकार कर, उन्होंने चरणों पर पड़े हुए रघुवीर की ओर देखा। उनके, क्या है? क्या है? कुछ कहना है क्या?' यह पूछने पर, रघुवीर ने कहा—'महाराज! उस दिन तोरण दुर्ग से अतिशीघ्र पत्र आदि ले आने पर प्रसन्न होकर आपने मुझे पुरस्कार देने का वचन दिया था।'

तब शिवाजी ने कहा—'अवश्य दूँगा, परन्तु शीघ्रता में इस समय उसकी याचना करना ठीक नहीं फिर भी कहो क्या चाहते हो?'

मसाम्प्रत तद्याचनम्। तथाऽपि कथय किं याचसे?' रघुवीर उवाच–'भगवन्निदमेवाभ्यर्थये यदनुगन्तुमाज्ञाप्योऽय विधेयः।' तदाकर्ण्यात्यन्तचकितः शिवराजः प्राह–'चित्रम्! सन्देशहर-पदे नियुक्तोऽसि, अतिशिक्षित-वीर-कार्य-प्रवाहे च पतितु साहस-माधत्से! कथमेतत्?'

रघुवीर आह—'महाराज! स्वकुटुम्बेऽहमेकोऽस्मि, विनष्टं माम-वगत्य न कोपि रोदिष्यति, प्रभु तोषयितुं शक्ष्यामि चेत् आयतिर्मे मङ्गलमयी।'

शिवस्तु विलम्बस्यानवसरमाकलयन् झटित्योमित्युवाच। स

---

असाम्प्रतम् = अयुक्तम्। "युक्ते द्वे साम्प्रत स्थाने" इत्यमर। आज्ञाप्यः = आदेशयितव्यः। चित्रम् = आश्चर्यम्। सदेशहर-पदे = वार्त्ताहर-स्थाने। अतिशिक्षिताना वीराणा कार्यप्रवाहे=कर्त्तव्यधारायाम्। साहसकार्ये इति यावत्।

विनष्टम् = अदृष्टम्। 'नश अदर्शने' क्त, मरणन्तु नार्थः मङ्गलवेलायाम-मङ्गलाभिधानस्य कविसमयख्यातिविरुद्धत्वात्। आयतिः=उत्तरकाल। "उत्तर काल आयतिरि" त्यमर।

अनवसरम् = असमयम्। आकलयन्=विचारयन्। ओम्, अङ्गीकार

---

रघुवीर ने कहा—'महाराज! यही निवेदन है कि साथ चलने के लिये इस दास का भी अनुमति दीजिए।'

यह सुनकर अत्यन्त विस्मय से शिवाजी ने पूछा—'आश्चर्य है! तुम दूत के पद पर नियुक्त हो, और अत्यन्त अभ्यस्त वीरों की कर्तव्यधारा में कूदने का साहस कर रहे हो। यह कैसे?'

रघुवीर ने कहा—'महाराज! अपने कुल में मैं अकेला हूँ। मुझे मारा गया जानकर कोई भी रोने वाला नहीं है, और यदि मैं स्वामी को सन्तुष्ट कर सका तो मेरा भविष्य मङ्गलमय होगा।'

शिवाजी ने विलम्ब का अवसर न समझ कर झटपट 'हाँ' कर दिया।

च शिरसा भुवं स्पृशन् प्रणम्य युद्धसज्जोऽभूत्। अथाऽऽपिपृच्छि-षमाणं गौरं सम्बोध्य शिवराजेनाभाणि—

'त्वं तु सादिनां पञ्चशतीं सह नीत्वा पुण्यनगरस्य पूर्वतः प्रतीक्षस्व, यदि रक्तमेकमग्निपुष्पं गगने समुड्डीयमानं पश्येः, ततस्त्वं बलात् प्रविश्य प्रत्यर्थिनामाक्रमणं विधास्यसि,इतश्च पश्चिमतः स्वर्णदेव आर्यः।'

स च तथेत्युक्त्वा तथा कर्तुं प्रचलितः स्वर्णदेवोऽपि चामिति स्वीचकार।

शिवराजोऽपि-'प्रतीक्ष्यताम्, जननीं प्रणम्याऽऽगच्छामि'-इति व्याहृत्यान्तः प्रविष्टो मुहूर्तानन्तरं च पटान्तेन चक्षुषी परिमृशन् निरगात्, आललाप च।

सूचनमव्ययम्। आपिपृच्छिषमाणम्=आप्रष्टुमिच्छन्तम्, अहमप्या गच्छामीति शेषः।

प्रतीक्षस्व=प्रतीक्षां कुरु। रक्तम्=शोणम्। अग्निपुष्पम्=“गुब्बारा” इति हिन्दी। समुड्डीयमानम्=समुत्पतत्।

चामिति, “ओमाङ्डोश्चे”ति पररूपम्। परिमृशन्=प्रोञ्छन्। निरगात्-निष्क्रान्तः।

रघुवीर भी सिर से पृथिवी का स्पर्श करते हुए प्रणाम कर युद्ध के लिये सुसज्जित हो गया। उसके बाद कुछ पूछने की इच्छा वाले गौरसिंह को सम्बोधित कर शिवाजी ने कहा—'तुम पाँच सौ अश्वारोहियों को साथ लेकर पूना नगर के पूर्व की ओर प्रतीक्षा करो, जब एक लाल रंग का अग्निपुष्प आकाश में देखना तब तुम बलपूर्वक प्रवेश कर शत्रुओं पर आक्रमण कर देना, और इधर पश्चिम से आर्य स्वर्णदेव आक्रमण कर देंगे।'

गौरसिंह—'ठीक है ऐसा ही करूँगा', कह कर, वैसा करने के लिये चल दिया। और स्वर्णदेव ने भी 'हाँ' कह कर स्वीकार किया।

शिवाजी भी, 'प्रतीक्षा करो, माताजी को प्रणाम कर मैं अभी आता हूँ' यह कह कर अन्दर गये और क्षण भर बाद वस्त्र के छोर से आँखें पोछते हुए बाहर आए और बोले।

शिवः—अपि सज्जा यूयम् ?

माल्यश्रीकः—आम् ! प्रस्तुता वयम् ।

शिवः—अथ विजयतां त्रिपुरमथनो देवदेवः ।

सर्वे–विजयते महादेवः ! विजयते सनातनधर्मः ! विजयते च श्रीमान् महाराष्ट्रराजः !

रघुवीरः–[ पुष्पमालामर्पयन् ] तोरण–दुर्गस्थ–मारुतिमन्दिराध्यक्षेणार्पितेयम् ।

शिवः–जय जय हनूमन् ! त्रायस्व !! [ इति सादर प्रसाद–मालां कण्ठे स्थापयति स्म । ]

ब्राह्मणाः—[कुङ्कुमाक्षत–दान–पुरःसरम् ]

"अक्षतान् विप्रहस्तेभ्यो नित्यं विन्दन्ति ये नराः ।
तेषां विवृद्धिमायान्ति लक्ष्मीरायुर्यशो बलम् ॥"

---

त्रयाणां पुराणां समाहारस्त्रिपुरम्, तत्र विद्यमानोऽसुरो लक्षणया त्रिपुरः, अथवा त्रीणि पुराणि यस्येति बहुव्रीहिः, तन्मथनः=तन्मर्दकः । प्रसाद-मालाम् = हनूमदर्पितमालिकाम् ।

अक्षतान् = क्षतशून्यान् तण्डुलकणान् । "लाजाः पुंभूम्नि चाक्षताः"

---

शिवाजी—आप लोग तैयार हैं न ?

माल्यश्रीक—जी हाँ, हम लोग प्रस्तुत हैं ।

शिवाजी—तो फिर, बोलो त्रिपुरविनाशक देवदेव महादेव की जय !

सभी—महादेव की जय! सनातन धर्म की जय !! महाराष्ट्रराजकी जय!!!

रघुवीर—[ शिवाजी को फूलों की एक माला देते हुए ] यह माला तोरणदुर्ग के महावीर-मन्दिर के अध्यक्ष ने महाराज के लिये भेजी है ।

शिवाजी—जय जय हनुमान् ! भगवन् ! रक्षा करो । [ शिवाजी ने प्रसाद के रूप में प्राप्त माला को सादर गले में पहन लिया । ]

ब्राह्मणसमूह—[ शिवाजी के हाथ में कुंकुम अक्षत देते हुए ।] 'जो मनुष्य नित्य ब्राह्मणों के हाथों से अक्षत ग्रहण करते हैं उनकी लक्ष्मी, आयु,

"शत्रवः पराभवं यान्तु, शाम्यन्तु घोराणि, शाम्यन्तु पापानि, हताश्च ब्रह्मद्विषः, हताश्च परिपन्थिनः, हताश्च विघ्नकर्तारः, श्रीरस्तु"।

माल्यश्रीकः—"यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः"—एवं सर्वे इष्टदेवं स्मरन्तो माङ्गलिक-शब्दानुच्चारयन्तो महता कोपेन रिपुनिकरं दिधक्षन्त इव दुर्गादवातरन्।

सिंहदुर्गात् पुण्यनगरपर्य्यन्तं शिवराजेन तूष्णीमदीपप्रकाशा अवाग्विलासा सेना सन्निवेशिता। स्वयं च पञ्चविंशतिं वा त्रिंशद् वा उत्साहधनान् धीरान् वीरान् सह नीत्वा, पुण्यनगर प्रवेशद्वार-

---

इत्यमरः। विप्राणाम् = ब्राह्मणानाम्, इतरेभ्यः। नित्यम् = सततम्। विन्दन्ति = प्राप्नुवन्ति, "विद्लृ लाभे"। विवृद्धिम् = विपुला वृद्धिम्।

शाम्यन्तु=शान्तिं गच्छन्तु। घोराणि=उपद्रवकराणि। ब्रह्मद्विषः= वेदद्रोहिणो ब्राह्मणशत्रवश्च।

रिपुनिकरम्=शत्रुव्रातम्। दिधक्षन्तः=दग्धुमिच्छन्तः।

अदीपप्रकाशा = आलोकरहिता। अवाग्विलासा = भाषणरहिता। सन्निवेशिता = संस्थापिता। उत्साहधनान् = सोत्साहान्। धीरान् =

---

यश और शक्ति में वृद्धि होती है।' 'आप के शत्रु पराजित हों, उपद्रव शान्त हों, पापों का दमन हो, ब्राह्मणद्वेषी विनष्ट हों, प्रतिद्वन्द्वियों का विनाश हो, विघ्नकारियों का दमन हो और आप को लक्ष्मी प्राप्त हो।'

माल्यश्रीक—'जिसके पक्ष में धर्म है, उसी के पक्ष में कृष्ण हैं, और जिसके पक्ष में कृष्ण हैं, उसी की विजय प्राप्त होती है।'

इस प्रकार सभी लोग इष्टदेव का स्मरण करते हुए, माङ्गलिक शब्दों का उच्चारण करते हुए, भयङ्कर क्रोध से मानों शत्रुसमूह को जला देने की इच्छा से दुर्ग से उतर पड़े।

शिवाजी ने सिंहदुर्ग से पूना नगर तक अपनी सेना लगा दी। उनकी सेना एक दम शान्त (मौन) थी। उसमें दीपक का प्रकाश तक न था और कोई भी सैनिक बातचीत नहीं कर रहा था। वे स्वयं पचीस-तीस

समीपे एव गहने गाढान्धकारे आम्रवणे प्रतीक्षमाणः समतिष्ठत।

तावत् "ढं ढं ढम्" इत्यश्रावि वाद्य-निनदः, आलोकिषत च स्थूलवर्तिका-महाद्युतयो दीपाः। परस्परमालोक्य तैः कथितमियं सा वरयात्रेति। अथ समीपमायाते तस्मिन् वरयात्रामण्डले शनैः शनैरेते सर्वेऽपि तैरेव सह मिलिताः सुखेन पुण्यनगरं प्रविष्टाः।

यत एव सपादाताः, सवाडवाः, घाण्टिक-चाक्रिकायुधिक-वैजयन्तिक-वादकादि-सहिताः कृशानुक्रीडा-कलन-कौतुकिन एते यान्ति स्म, तत एव गवाक्षेभ्यः क्रोड-स्थापित-स्तनन्धया गृहिण्यः,

---

धैर्यशालिनः। गहने = अविरलवृक्षके। गाढोऽन्धकारो यस्मिंस्तस्मिन्। आम्रवणे=रसालविपिने।

वाद्यनिनदः = भेरीध्वनिः। आलोकिषत = दृष्टाः। स्थूलवर्तिकया महाद्युतयः = विशिष्टकान्तिशालिनो दीपाः = "मशाल" इति ख्याताः। सपादाताः = सपदातिसैनिकाः, सवाडवाः = सघोटकाः। घाण्टिकाः= घण्टया चरन्तः, चाक्रिकाः = चक्रेण चरन्तः, आयुधिकाः = आयुध-जीविनः, वैजयन्तिकाः = ध्वजधारकाः। वादकाः = वाद्यवादनपटवः, एतदादिभिः सहिताः = समेताः। कृशानुक्रीडायाः = "आतिशबाजी" इति ख्यातायाः, कलने = करणे, कौतुकिनः = सकुतूहलाः, यान्ति स्म = अगच्छन्। क्रोडस्थापितस्तनन्धयाः=भुजाभ्यन्तरनिवेशितपयःपायिबालाः,

---

उत्साही और धैर्यशाली वीरों को साथ लेकर, पूना नगर के प्रवेश द्वार के पास ही घने अन्धकार से युक्त आम्र वन में प्रतीक्षा करने लगे।

तब तक 'ढ ढ ढम्' करके बाजे का शब्द सुनाई दिया और मोटी बत्तियों वाले, तथा तीव्र प्रकाश वाले दीपक दिखाई पड़े। एक दूसरे की ओर देखते हुए उन (आम्र-वन में छिपे) सैनिकों ने कहा, 'यह वही बारात है'। तदनन्तर उस बारात के, पास आ जाने पर, धीरे धीरे वे सभी उन बारातियों में मिलकर आसानी से पूना नगर में प्रविष्ट हो गए।

आतिशबाजी के कौतुकी ये बाराती पैदलों घुड़सवारों, घण्टा वालों, चक्र धारण करने वालों और बाजा वालों के साथ, जिधर से ही निकल जाते

उपकुचाग्रास्फालित-गवाक्ष-दण्डाः स्वप्रेमपात्र-प्रियजन-दन्तक्षत-व्रण-विषम-ताम्बूलराग-रञ्जिताधराश्चिरण्ट्यः अङ्गुल्याः इदमिदमिति निर्दिशन्त्यः पश्यन्ति स्म ।

शनैरायात एष समारोहः शास्तिखानाध्युषित-गृह-द्वार-पर्य्यन्तम् । शास्तिखान सीमन्तिन्योऽपि धमद्धमध्वनि-समाकर्णन-जात कुतूहलाः, निरादृततन्द्राः, मन्दाक्ष मन्द-प्रचाराः प्रतिसीराः अपसारमपसारम्, लशुन-पलाण्डु – गन्ध – कटुभिर्जम्भा-परम्पराभिर्नासा – मौक्तिकानि

---

उपकुचाग्रैः=उन्नतचूचुकैः, आस्फालिताः=ताडिता, गवाक्षदण्डाः= वातायनदण्डा याभिस्ताः । स्वप्रेमपात्रस्य=स्वस्नेहाधारस्य, प्रियजनस्य दन्तक्षतव्रणेन=दशनखण्डनव्रणेन, विषमाः = उच्चावचा, चिह्निता इति यावत्, ताम्बूलरागेण=ताम्बूलभक्षणजेन लौहित्येन, रञ्जिताः= रक्तिमानिश्च प्रापिता, अधरा यासां ताः । चिरण्टयः=वधूश्च । "चिरण्टा तु स्ववासिनी" इत्यमर ।

समारोहः=जनसम्मर्द । शास्तिखानस्य, सीमन्तिन्यः=सुकेशयेऽङ्गत्वो वनिता । 'नारी सीमन्तिनी' इत्यमर । धमद्धमद्ध्वनेः समाकर्णनेन=श्रवणेन, जातम्=उत्पन्नम्, कुतूहलम्=कुतुक यासां वा । निरादृता=परित्यक्ता, तन्द्रा = आलस्य याभिस्ताः । मन्दाक्षेण = लज्जया, मन्दः, प्रचार =सञ्चरण यत्र तत्, यासां ताः । प्रतिसीराः=यवनिका । अपसारमपसारम्=

---

थे उधर ही खिड़कियों से गोद में दूध-पीते बच्चों को लिए हुए गृहिणियाँ तथा उठे हुए चूचुकों से खिड़कियों की छड़ों पर आघात करती हुई, अपने प्रेमपात्र प्रियतम के दन्तक्षत के व्रण से अङ्कित ( विषम या उच्चावच ) तथा ताम्बूल के रंग से रंगे हुए अधरों वाली बहुएँ, उँगली से, 'यह देखो, यह देखो', इस प्रकार निर्देश करती हुई, देखने लगती थीं ।

धीरे धीरे यह जुलूस शाइस्ता खाँ के निवास भवन के द्वार तक आ गया । 'धम धम' की ध्वनि सुनकर, कुतूहलवश, आलस्य का तिरस्कार कर, लज्जा के कारण मन्द गति से चलकर, चिक हटा कर, लहसुन और प्याज की गन्ध से कड़वी जँभाइयों से नाक में पहने आभूषण में लगे मोतियों को

प्रलिनयन्त्यः; लोलत्कुण्डलाः, दोलल्ललन्तिकाः, स्खलद्वसनाः, बलद्धसनाः, मदव्याघूर्णितनयनाः, विहित-मेचक कुञ्चित कच प्रचय-सञ्चयनाः, अञ्जनरञ्जिताभिर्दृग्भिरिन्दीवरमाला इव वर्षन्त्यः, रोलम्ब-कदम्बमिव क्षिपन्त्यः, वीक्षितुमारेभिरे। समारोह एष शनैः शनैः परतो निर्यातः, किन्तु अन्यूनाखिंशद्वीरास्तद्भवन नेदिष्ठ-वाटिका विटपान्धतमस-च्छायास्वेव समलीयन्त।

---

दूरीकृत्य दूरीकृत्य। लशुनस्य = रसोनस्य, पलाण्डोः = "प्याज" इति ख्यातस्य, गन्धेन कटुभिः। जृम्भापरम्पराभिः = गात्रविनामसमूहैः। नासामौक्तिकानि = नासिकामणीन्। प्रलिनयन्त्यः = मलिनता नयन्त्य। लोलत्कुण्डलाः = चलत्कर्णभूषणाः। दोलल्ललन्तिकाः = हिल्लोलत्कण्ठिकाः। स्खलद्वसनाः = गलद्वस्त्राः। बलद्धसनाः = एधमानहासाः। मदव्याघूर्णितनयनाः = मद्यादिपानभ्रमन्नेत्राः। विहितम् = सम्पादितम्, मेचकस्य = श्यामस्य, कुञ्चितस्य = गुञ्चितस्य, कचप्रचयस्य = केशसमूहस्य, सञ्चयनम् = बन्धनम्, याभिस्ताः। अञ्जनरञ्जिताभिः = कज्जलाक्ताभिः, इन्दीवरमाला = पद्मश्रेणीः। वर्षन्त्य इव = प्रकिरन्त्य इवेत्युत्प्रेक्षा। रोलम्बकदम्बमिव = द्विरेफव्रातमिवेत्युत्प्रेक्षा। क्षिपन्त्य = प्रसारयन्त्यः। वीक्षितुम् = द्रष्टुम्। आरेभिरे = प्रारब्धवत्यः। परत = अन्यस्यां दिशि। तद्भवनस्य = तत्सदनस्य, नेदिष्ठायाः = नितान्तान्तिकस्थायाः, वाटिकायाः = उद्यानस्य, विटपानाम् = शाखानाम्, अन्धतमसच्छायासु = गाढान्धकारप्रतिबिम्बेषु। समलीयन्त = अन्तर्हिताः।

---

मलिन करती हुई, हिलते कुण्डलों वाली, डोलते हुए हारों वाली, सरकते हुए वस्त्रों वाली, हँसती हुई, मद से अल्साई आँखों वाली, काले और घुँघराले केशपाशों को बाँधे हुए, अञ्जन लगे नेत्रों से नीलकमलों की माला की वर्षा सी करती हुई, भ्रमरों के समूह को फेंकती हुई सी, शाइस्ता खाँ की स्त्रियाँ भी, इस जुलूस को देखने लगीं। यह जुलूस धीरे धीरे दूसरी ओर निकल गया, परन्तु पूरे तीस वीर इस भवन के समीप की वाटिका के वृक्षों के घने अन्धकार की छाया में ही छिप गए।

वरयात्रा कलकलः शान्तः, स्त्रियः पुनः स्व शयनीयेषु शयिताः। अन्धकारो ववृधे। नागरिक-जनरवोऽस्तः। पथि पथिकानां गतागतं निवृत्तम्। श्यामश्यामैर्मेघैस्तिमिर-सान्द्रता द्विगुणिता। झिल्लीरवानुसृतो नैशीथः स्वभावसिद्धोऽनाहतानुकारी ध्वनिरश्रूयत। प्रतीहारा अपि गृहीतभित्तिकाश्रयाः घुरघुरायित-घोर-घोणाः श्लथत्करवालाः समशयिषत।

अथार्द्धसुप्ताभिर्महामद-महिलाभिः प्रासाद-पृष्ठतः सीत्कारमयं खटखट-प्रधानं किञ्चन शब्दजातमिवाश्रावि, किन्तु निद्रया

स्वशयनीयेषु = स्वपर्यङ्केषु। ववृधे = एधामास। अस्तः-समाप्तिङ्गतः, पथिकानाम्=यात्रिणाम्। श्यामश्यामैः=अतिमेचकैः। तिमिरसान्द्रता = अन्धकारघनता। द्विगुणिता = ववृधे। झिल्लीरवानुसृतः = झिंगिटकाशब्दपूर्वगः। नैशीथः= अर्धरात्रिकः। स्वभावसिद्धः = प्राकृतिकः। अनाहतस्य = योगशास्त्रप्रसिद्धध्वनिविशेषस्य, अनुकारी=अनुकरणशीलः, प्रतीहाराः = दौवारिकाः। गृहीतभित्तिकाश्रयाः=अवलम्बितकुड्याधाराः। घुरघुरायितघोरघोणाः=घुरघुरशब्दनिस्सरणमयकरनासाः। गाढनिद्राक्रान्ता इति भावः। श्लथत्करवालाः=स्थानभ्रष्टतरवारयः। समशयिषत=सुप्ता।

बारात का कोलाहल शान्त हो गया। स्त्रियाँ पुनः अपने पलंगों पर सो गईं। नागरिकों का शोरगुल समाप्त हो गया। रास्तों पर पथिकों का आना-जाना बन्द हो गया। काले-काले बादलों से अँधेरे की गहनता और दूनी हो गई। झिल्लियों की झङ्कार के साथ ही, अनाहत नाद का अनुकरण करने वाला अर्धरात्रि का प्राकृतिक शब्द सुनाई पड़ने लगा। पहरेदार भी दीवार का सहारा लेकर सो गये, उनकी नासिकाएँ खर्राटे भरने की आवाज के कारण भयङ्कर लगने लगीं और उनके हाथों की तलवारें शिथिल हो गईं।

तदनन्तर शाइस्ता खाँ की स्त्रियों ने अर्धनिद्रित अवस्था में, महल के पिछवाड़े से आती हुई सीत्कारयुक्त खट् खट् की आवाज़ सी सुनी, परन्तु नींद में माती होने के कारण वे न तो उठ ही सकीं और न निर्णय करने

गाढमाक्रान्ताभिर्नोपार्य्यतोत्थातुं निर्णेतुं वा । घमघमाध्वनिरेष द्वैगुण्यं प्राप्तः, महानस-गृहे इष्टकाप्रावपात इव चान्वभावि । ततस्तु भीताः स्त्रिय उत्थाय पल्यङ्केपूपविश्य—"किमिदं कुतः ?—इति परस्परमालप्य दासीं प्रोचुः—"हण्डे ! हण्डे ! गत्वाऽवधेहि, रन्धन-गृहे किमिव सशब्दमास्खलितम्" ।

सा तु निद्रा-भर-मन्थरा प्रावोचत्- "भट्टिनि ! शेष्व, कोऽपि विडाल आखुं गृह्णन् समापतितो भवेत्" ।

क्षणानन्तरं पुनरार्कर्णि तथैवेष्टका-पात-घातः । अथ द्वित्राः

---

अर्धसुप्ताभिः=अपूर्णस्वापाभिः, महामदमहिलाभिः=शास्तिखानयोषाभिः । प्रासादपृष्ठतः=हर्म्यपश्चाद्भागे । शब्दजातमिव=ध्वनिसमूह इव । अश्रावि=श्रुतम् । आक्रान्ताभिः=व्याप्ताभिः । नापार्यत=न पारितम् । द्वैगुण्यम्=बाहुल्यम् । महानसगृहे—पाकस्थाने । इष्टकानां प्राग्णाञ्च पात इव=पतनमिव । अन्वभावि=अनुभूतः । पल्यङ्केषु=पर्यङ्केषु । हण्डे, दास्यादिनीचसम्बोधनम् । अवधेहि=जानीहि । रन्धनगृहे=महानसे । सशब्दम्=सध्वनि । आस्खलितम्=पतितम् ।

निद्राभरमन्थरा=स्वापभारसालस्या । भट्टिनि=राज्ञि । शेष्व=शयनं कुरु । आखुम्=मूषकम् । समापतितः=कूर्दितः ।

---

का साहस ही कर सकीं । धम् धम् की ध्वनि दूनी हो गई, तथा रसोईघर में ईंट-पत्थरों के गिरने का सा अनुभव हुआ । तब वे भयभीत होकर, उठकर, पलंग पर बैठकर, 'यह क्या है ( यह आवाज कैसी है ) ? कहाँ से ( आ रही है ) ?' इस प्रकार एक दूसरे से पूछती हुई, दासी से बोलीं—'अरी जाकर देख तो रसोईघर में धमाके के साथ क्या गिरा है ।'

निद्रा के भार से अलसाई दासी ने कहा—'रानी जी, सो जाइये, कोई बिडाल चूहे को पकड़ता हुआ कूदा होगा' ।

क्षण भर के बाद पुनः उसी प्रकार ईंटें गिरने की ध्वनि नाई दीसु ।

स्त्रियो भीतभीता रन्धनालय-द्वार-देशमुद्घाट्य मन्दालोकेन दीपेनाऽऽनुलोकन्त—यत् पञ्चषा महाराष्ट्र-वीरा भित्तिं भित्त्वा, अन्तरायाताः सन्ति, अन्ये चैकस्मात् परम्-अपरः, ततोऽपि परमपरः—इति विकोशखड्गाः प्रविशन्ति। तास्तु सचीत्कारं प्रतिनिवृत्ताः, गृहावग्रहणी-समुद्घाताहत-प्रपदाः प्रघाणे निपतन्त्यः कान्दिशीका अट्टेष्वितस्ततो धावन्त्यो घोरनिद्रया सुप्तं सेनान्यं समवूबुधन्नचकथंश्च यद्—'नग्नासिहस्ता महाराष्ट्रा गृहे प्रविष्टाः'—इति।

सेनानीस्तु महादेव-पण्डितालापं स्मरन् सुप्तः—इति स्वप्नेऽपि

मन्दालोकेन = अल्पप्रकाशजनकेन, शयनसमयार्थरक्षितेन। भित्तिम् = कुड्यम्। भित्त्वा = विदार्य, सन्धिं कृत्वेति यावत्। अन्तः = अभ्यन्तरे। एकस्मात्परमपरः = "एक के बाद दूसरा" इति हिन्दी। विकोशखड्गाः = नग्नासयः। गृहावग्रहणीषु = सदनदेहलीषु, समुद्घातेन = समुच्छलनेन, आहतानि = ताडितानि, प्रपदानि = पादाग्राणि यासां ताः। प्रघाणे = बहिर्द्वारप्रकोष्ठके। कान्दिशीकाः = भयद्रुताः। अट्टेषु अट्टालिकासु। सेनान्यम् = सेनापतिम्। समवूबुधन् = अजागरयन्।

तब दो-तीन स्त्रियों ने डरते-डरते रसोईघर का किवाड़ खोल कर, क्षीण प्रकाश वाले दीपक की सहायता से देखा कि पाँच-छः मराठे सैनिक दीवार तोड़कर भीतर आ गए हैं और अन्य सैनिक भी एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, इस प्रकार एक के बाद एक, नंगी तलवार लिये अन्दर आते जा रहे हैं। वे चिल्लाती हुई लौट गईं। घर की चौखट से पैरों के अग्रभाग में ठोकर खाकर, बाहरी कमरे में गिरती सँभलती, भयवश अटारियों पर इधर से उधर दौड़ती हुई, उन स्त्रियों ने गहरी नींद में सोए हुए सेनापति शाइस्ता खाँ को जगाया और बताया कि नंगी तलवारें लिये मराठे घर में घुस आए हैं।

सेनापति शाइस्ता खाँ महादेव पण्डित की बात का स्मरण करता हुआ

बद्धकरसम्पुटं सन्धिं प्रार्थयमानं स्वाग्रतः स्थितं शिवराजं पश्यन्नासीत्। अकस्मादुत्थापितश्च क्षणमुपधानम्, क्षणं पल्यङ्कपट्टिकाम्, क्षणं सीमन्तिनी-जन ग्रीवां समालिङ्गन्, परतः प्राप्तचेतनः समज्ञासीद्—यत् पुण्यनगरं वशवदं विधाय महाराष्ट्रा अन्तःपुराक्रमणमपि व्यधुरिति। अथैष झपदि समुत्थाय येनैव पथा पलायितुमियेष, तत एव सखड्ग महाराष्ट्र-वीरं मूर्तिमन्तमिव मृत्युमुपस्थितमवलोक्य पुनः प्रविश्य स्वाधिष्ठित-विशाल-कोष्ठस्य प्रधानद्वारं पक्ष-द्वाराणि च व्यधात्। स्त्रीभिः सहितः स्वयमेकल एव च पुम्पोऽन्तःस्थ प्रच्छन्नतया पलायितुं व्यचेष्टिष्ट।

---

बद्धकरसम्पुटम्-कृताञ्जलिम्। पल्यङ्कपट्टिकाम् = पर्यङ्कस्य शामीय दारवीय वा काष्ठम् "पाटी" हिन्दी। सीमन्तिनीजनस्य = नारीवर्गस्य, ग्रीवाम् = कन्धराम्। समालिङ्गन् = समाश्लिषन्। वशवदम्=स्वाधीनम्। व्यधुः = कृतवन्तः। स्वेन, अधिष्ठितस्य = अध्युषितस्य, विशालप्रकोष्ठस्य = महत्याः शयनकक्षायाः। प्रधानमार्गम्=गमागमपथम्। पक्षद्वाराणि= "खिड़की" इति ख्यातानि। व्यधात् = अर्गलितवान्। एकलः = एकाकी। अन्तस्थः = कोष्ठस्थः, लुकायित इति यावत्। प्रच्छन्नतया=गुप्ततया। व्यचेष्टिष्ट = यतितवान्।

---

सोया था अतः स्वप्न में भी, हाथ जोड़े हुए सन्धि के लिए प्रार्थना कर रहे शिवाजी को अपने आगे खड़ा देख रहा था। एकाएक जगाए गए शाइस्ता खाँ ने कभी तकिया, कभी पलँग की पाटी और कभी स्त्रियों के कण्ठ को ग्रहण करते हुए, अन्ततः चेतना प्राप्त करने पर समझा कि पूना नगर को अपने अधिकार में करके मराठों ने हरम पर भी हमला कर दिया है। उसके बाद उसने झटपट उठकर, जिधर से भी भागना चाहा उधर ही तलवार लिए मूर्तिमान् मृत्यु की भाँति मराठे वीर को उपस्थित देखकर, पुनः प्रवेश कर, अपने रहने के विशाल कक्ष के मुख्य द्वार को तथा किनारे के छोटे दरवाजों को भी बन्द कर लिया और स्त्रियों के साथ अकेले ही, छिप कर, गुप्त रूप से भाग जाने की कोशिश करने लगा।

इतस्तु कश्चित् कोलाहलमिवाऽऽकर्ण्य द्वार-देशस्था रक्षकाः पार्श्व-कोष्ठेपु चन्द्रशालासु मण्डपेपु च सुप्ता अपरे वीराः समुत्थाय श्येना इव समापतन्। महाराष्ट्रैः—"हरहर महादेव"-इति, यवनैश्च—"अल्ला अल्ला"-इति युद्धारम्भसूचको महानिनादोऽक्रियत। तस्मिन् घोरेऽन्धकारे दीप-प्रकाश साक्षिकं कुट्टिमेऽट्टे प्राङ्गणे च खड्ग-खणत्कार-क्ष्वेडा-हुङ्कार-ध्वनि प्रतिध्वनि-धर्षित-प्रतिवेशि-निचयं मुहूर्त्तं यावत्तुमुल युद्धमभूत्। "आक्रान्तमाक्रान्तम्, जितं जितम्"-इति वर्द्धितोत्साहैर्महाराष्ट्रैः-"आक्रान्ता आक्रान्ताः,

---

पार्श्वकोष्ठेपु=द्वारपार्श्वयो रक्षकनिवासाय रचितेषु लघुसदनेषु। चन्द्रशालासु=शिरोगृहेषु। मण्डपेपु=अङ्गनान्तराळशयनीयसदनेषु। तृणादिनिर्मितेषु लोकप्रसिद्धस्य तादृशसदनमाने प्रयोग इति बोधयति। महानिनादः=विशिष्टो ध्वनिः। दीपप्रकाशसाक्षिकम्=प्रदीपालोकसम्मुखे। कुट्टिमे=निबद्धभूमौ। "कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूः" त्यमरः। प्राङ्गणे=चत्वरे। 'अङ्गण चत्वराजिरे' इत्यमरः। खड्गखणत्कारस्य=असिखडखडाशब्दस्य, क्ष्वेडायाः=सिंहनादस्य, हुङ्कारस्य=हुंशब्दस्य च, ध्वनिप्रतिध्वनिभिः=शब्दप्रतिशब्दैः, धर्षितः=भयाकुलीकृतः। प्रतिवेशिनिचयः=पार्श्वसदनीयजनव्रातो यस्मिन् कर्मणि तादृशम्। येन तदिति युद्धविशेषण वा। मुहूर्त्तं-यावत्=घटिकाद्वयपर्यन्तम्। तुमुलम्=सङ्कुलम्। भग्नोत्साहाः=

---

इधर कुछ कोलाहल सा सुनकर द्वारपाल तथा पार्श्वभाग की ओर ऊपर की कोठरियों तथा बरामदों में सोए हुए सैनिक उठकर बाज़पक्षी की तरह झपटे। मराठों ने 'हर हर महादेव', और यवनों ने 'अल्ला, अल्ला' की युद्ध प्रारम्भ होने की सूचक महागर्जना की। उस घोर अन्धकार में, दीपक के प्रकाश में ही, फर्श पर, अटारियों पर, और आँगन में, थोड़ी देर तक, तलवारों की खनखनाहट, सिंहनाद तथा हुंकार की ध्वनि-प्रतिध्वनि से पड़ोसियों को भयभीत करने वाला घमासान युद्ध हुआ। 'घेर लिया, घेर लिया, जीत लिया, जीत लिया', इस प्रकार कहते हुए, बढ़े हुए उत्साह वाले मराठों द्वारा चारों ओर काटे जाते हुए, 'घिर गए, घिर गए, हार गए,

जिता जिताः"-इति भग्नोत्साहा यवनाः परितो विशस्यमानाः स्वमज्जरुधिरमेदोनिचयैर्मेदिनीं मेदस्विनीं पङ्किलां च समकार्षुः।

तावत्प्रासादबहिर्भागे एकमग्निमयं रक्तं कुसुमाकारं स्फुलिङ्गनिकुरम्बकमपि गगनं चुचुम्ब।

शिवराजस्तु सेनापतिमेवान्विष्यन् शुद्धान्तदिश्यापतितो मार्गमवरुध्य स्थितं द्वाविंशतिवर्षदेश्यमेकं सुन्दरं यवनयुवकमवलोक्य चान्द्रेण संवादिनीमिव तदाकृतिं निर्धारयन् उक्तवान्—यद् "मन्ये, चान्द्रखानस्य पुत्रोऽसि"। स ऊचे—'ओम्' इति।

---

निनदहर्षाः, विशस्यमानाः = हिंस्यमानाः। मज्जा=शरीरगतधातुविशेषः, रुधिरम् = लोहितम्, मेदः = अस्थिसारो धातुविशेष, तेषां निचयैः= समूहैः। मेदस्विनीम् = मेदसा बहुलाम्। पङ्किलाम् = कर्दमवतीम्।

कुसुमाकारम् = पुष्पाकृति। स्फुलिङ्गनिकुरम्बकम् = अग्निकणव्रजः। गगनं चुचुम्ब = नभः पस्पर्श। पूर्वनिश्चयानुसार दूरस्थितभटसूचनाय संकेतोऽयम्।

शुद्धान्तदिशि = अन्तःपुरमार्गे। आपतितः = वेगाच्चलितः। द्वाविंशतिवर्षदेश्यम् = प्रायो द्वाविंशतिहायनवयस्कम्। चान्द्रेण = चान्द्रखानेन। संवादिनीम् = सदृशीम्। तदाकृतिम् = तदाकारम्। ओम् = एवम्। अङ्गीकारेऽस्य शब्दः।

---

हार गए', इस प्रकार चिल्लाते हुए उत्साहहीन यवनों ने अपनी मज्जा, रक्त तथा चर्बी के ढेरों से पृथिवी को पङ्किल बना दिया।

इसी बीच राजमहल के बाहर वाले प्रदेश में एक अग्निमय रश्मि पुष्प के आकार का अङ्गारपुञ्ज आकाश में ऊपर जाता दिखाई दिया।

शिवाजी शाइस्ता खाँ को ही खोजते हुए अन्तःपुर की ओर आ गए और वहाँ मार्ग रोक कर खड़े हुए करीब बाईस वर्ष के एक सुन्दर युवक को देखकर, उसकी आकृति को चाँद खाँ से मिलती-जुलती पाकर बोले, 'मालूम होता है कि तुम चाँद खाँ के पुत्र हो'। उस युवक ने कहा, 'हाँ'।

शिवोऽभाणीद्–'अपसरापसर, किमिति मृषा स्वपितृ शोणित दिग्ध-मत्करवाल धारा-तीर्थे शरीरं विसिसृक्षसि ? समालोक्य तव मुग्धं मुखमण्डलं करुणा-परवशः क्रौर्यमाचरितुं नोत्सहे'—

इति कथयत एव तस्याकस्मादुत्प्लुत्य शितधारं खड्ग मूर्द्धनि प्राहिणोत् स रिपुबालः। शिवस्तु स्तिमित उत्प्लुत्य यावद् कृततिष्ठन् स्व-खड्ग-त्सरुं दृढं करेणाऽऽकलयति, तावदद्राक्षीद् यद् भयानकशल्यया कयाचित् हृदयं भित्त्वा परतोऽपि निःसृता

स्वपितृशोणितेन = स्वजनकलोहितेन, दिग्धे = लिप्ते, मत्करवाल-धारातीर्थे = मत्खड्गधारा पुण्यस्थले। विसिसृक्षसि=विसृष्टुमिच्छसि। यदि नापसरसि नून तदा मया हन्यसे इत्यर्थः। मुग्धम्=सुन्दरम्। करुणापरवशः=दयाधीन। क्रौर्यम्=क्रूरताम्।

उत्प्लुत्य=उच्छाल कृत्वा। शितधारम्=तीक्ष्णाग्रम्। प्राहिणोत् प्रैरयद्। रिपुबालः=शत्रुसूनुः। स्तिमितः स्तब्धीभूतः। स्वखड्ग-त्सरुम् = स्वासिमुष्टिम्। दृढम्=अशिथिलम्। भयानकम्=भीतिजनकम्, शल्यम्=भल्लम्, यस्यामेवम्भूतया शक्त्येति विशेष्यम्। हृदयम्=वक्ष। भित्त्वा=विदार्य। परतोऽपि=हृदयद्वितीयपार्श्वेऽपि, पृष्ठेऽपीति यावत्।

शिवा जी ने कहा—'हट जाओ, हट जाओ, अपने पिता के खून से सनी मेरी तलवार की धारा के तीर्थ पर अपने शरीर को व्यर्थ ही क्यों छोड़ना चाहते हो ? तुम्हारे भोले भाले मुखमण्डल को देखकर मुझे दया आती है और मैं क्रूरता नहीं करना चाहता।'

शिवाजी यह कह ही रहे थे कि चाँद खाँ के लड़के ने सहसा उछल कर अपनी तेज धार वाली तलवार उनके सिर पर चला दी। शिवाजी ने स्तब्ध होकर, उछल कर, एक तरफ खड़े होते हुए, अपनी तलवार की मूँठ को मजबूती से पकड़ते हुए, देखा कि उनके शत्रु को भयानक अग्रभाग वाली एक बर्छी ने, छाती चीर कर, बुरी तरह बींध कर, धराशायी कर दिया है, और उस बर्छी की नोक (शत्रु की छाती चीर कर उसके शरीर के) दूसरी ओर भी निकल आई है। तब तक उन्होंने (शिवाजी ने) देखा कि

मया शक्त्या तीव्रं विद्धो भूमौ शायितोऽस्ति शत्रुरिति। तावद् दृष्टवान्—यत् पिचण्डिल एकोऽपरः कृष्ण-कूर्च-प्रचय-चुम्बित-वक्षोभागो ज्वलद्भ्यामिव विस्फारिताभ्यां नयनाभ्यां दिधक्षन्निव सक्ष्वेडम्-अरे रे! अपसद! शास्तिखान-पुत्र-हस्तेनैव ते निधनं स्थिरीकृतं धात्रेति प्रकटमवलोकयन्तु सर्वे—इति कथयन् शक्तिमुदतूतुलत्। तच्छक्तिं छेत्तुं खड्गं सज्जीकुर्वन्नेव च केनापि भूमौ निपात्य च्छुरिका-विदार्यमाणं वेपमानावयवं शत्रुमपश्यत्।

एवमुत्थितं च विघ्न हर्तारं शत्रु-शोणित-शोणीकृत-करद्वयम्

---

निःसृताग्रया = समुद्गताग्रभागया। विद्ध = क्षतः। पिचण्डिलः = दीर्घोदरः। "बृहत्कुक्षिः पिचण्डिलः" इत्यमरः। कृष्णकूर्चप्रचयेन = कालश्मश्रुसमूहेन, चुम्बितः = स्पृष्टः, वक्षोभागो यस्य सः। ज्वलद्भ्यामिव = वह्निमुद्गिरद्भ्यामिव। दिधक्षन्निव = दग्धुमभिलषन्निव। सक्ष्वेडम् = ससिंहनादम्। उदतूतुलत् = उदस्थापयत्। छेत्तुम् = द्विधा कर्तुम्। सज्जीकुर्वन् = सन्नह्यन्। शिववीर इति कर्त्ता। छुरिकया = असिधेन्वा, विदार्यमाणं = स्फार्यमाणं, वेपमानावयवम् = कम्पमानगात्रम्।

विघ्नहर्त्तारम् = प्रत्यूहवारकम्। शत्रुशोणितशोणीकृतकरद्वयम् =

---

एक दूसरे, बड़ी तोंद वाले, अपनी काली दाढ़ी के बालों द्वारा चुम्बित वक्षस्थल वाले (अर्थात् जिसकी काली दाढ़ी छाती तक लटक रही थी ऐसे), जलते हुए से, विस्फारित नेत्रों से उन्हें (शिवाजी को) भस्म कर देने की इच्छा रखने वाले यवन ने शेर की तरह गरजते हुए, "अरे कमबख्त, तेरी मौत खुदा ने शाइस्ता खाँ के लड़के के हाथों ही लिखी है, इसे सब लोग जाहिर देख लें,' यह कहते हुए, बर्छी तान ली। उस बर्छी को काटने के लिये तलवार सँभालते हुए ही शिवाजी ने, किसी के द्वारा पृथ्वी पर पटक कर छुरे से फाड़े जा रहे और काँपते हुए अंगों वाले अपने शत्रु को देखा।

अपने ऊपर आई हुई विपत्ति को दूर करने वाले योद्धा के उठकर खड़े

इन्द्रगोप-द्युति-द्योतित-बिन्दु-वृन्दाच्छादित-वारबाणं निपुणमवलोक्य 'रघुवीर' इति पर्य्यचेष्ट।

ततश्च "साधु रघुवीर! साधु, न विस्मरिष्यामि ते वीरताकार्यमिदम्"—इति व्याहृत्य प्रणमतः पृष्ठं स्पृष्ट्वा पुनरग्रतो यावज्जिगमिषति; तावदकस्मादट्टालिकातो भटानां विंशतिरिव सोत्फालं शिवस्य परितः समापतत्।

शिवस्तु चन्द्रहास-चालने अद्वितीय इति झटिति केषांचिदविहितात्फालानामस्पृष्टतलानां गगन एवोदरं सविदरमकार्षीत्।

---

रिपुलोहितरक्तीकृतहस्तयुगलम्। इन्द्रः, गोपाः=रक्षको यस्य सः, इन्द्रगोपः= वर्षाकालिको रक्तः कीटविशेषः, तद्द्युतिद्योतितैः=तत्कान्तिभासितैः, बिन्दुवृन्दैः=पृषद्वजैः। आच्छादितम्=प्रावृतम्, वारबाणम्=कवचो यस्य तम्। निपुणम्=विचारपूर्वकम्। पर्यचेष्ट=परिचितवान्।

जिगमिषति=गन्तुमिच्छति। विंशतिरिव=प्रायो विंशतिसंख्याकाः अपरिगणितसंख्याः। सोत्फालम्=सकूर्दनम्।

चन्द्रहासचालने=असिमारणे। अस्पृष्टतलानाम्=भूतलमननुप्राप्ताम्। गगन एव=नभस्येव। सविदरम्=विदीर्णम्। परिपत्य=ऊर्ध्वाद् भूमिमागत्य।

---

होने पर, उसके शत्रु (यवन) के रक्त से रञ्जित दोनों हाथ और बारबहूटियों की कान्ति को प्रकट कर रहे रक्त बिन्दुओं के समूह से व्याप्त कवच को अच्छी प्रकार देखकर शिवाजी ने पहचान लिया कि यह रघुवीर है।

तदनन्तर, 'शाबाश, रघुवीर! शाबाश! मैं तुम्हारे इस वीरता के कार्य को कभी नहीं भूलूँगा,' इतना कह कर शिवाजी ने प्रणाम कर रहे रघुवीर की पीठ का स्पर्श कर पुनः ज्यों ही आगे बढ़ना चाहा तब तक एकाएक लगभग बीस सैनिकों ने अट्टालिका से कूद कर उन्हें चारों ओर से घेर लिया।

शिवाजी तलवार चलाने में अप्रतिम थे अतः उन्होंने शीघ्रता से कई ऐसे यवन सैनिकों के, जो अभी कूदे भी नहीं थे और पृथ्वी का स्पर्श भी

परेषां परिपत्योत्तिष्ठासतामेव शिरोधरामशिरोधरां व्यधित। अन्येषां मेदो-मांस-पिच्छिल कर्दम-चलितान् चरणानसंचरणानकृत, इतरेषां च खड्गोत्क्षेपणोत्क्षिप्तान् करान् निजासि-वृक्ण-बाहु-मूलानुदक्षैप्सीत्। क्रमतश्च रघुवीरोऽपि द्वित्रानपातयत्। तस्मिन् समिद्धक्रोधाः पञ्चषा युगपदेव परितः समापतन् यवन-भटाः। तं चाभिमन्युमिव महारथैराक्रान्तमालोक्य सगर्जनं चन्द्रहास-चक्रेणेव समावृतः समापप्तत् शिववीरः। चन्द्रहास-चालन-चातुरी-

---

उत्तिष्ठासताम् = उत्थातुमिच्छताम्। शिरोधराम् = ग्रीवाम्। अशिरोधराम्=शिरोधारणकर्मरहिताम्, खण्डितकण्ठामिति यावत्। व्यधित=अकार्षीत्। मेदोमांसपिच्छिले कर्दमे चलितान् = स्खलितान्। चरणान्=पदः, "पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। असञ्चरणान्=गन्तुमनर्हान्। खड्गोत्क्षेपणाय= करवालसञ्चालनाय, उत्क्षिप्तान्=उत्थापितान्। निजासिना वृक्णम्= खण्डितम्, बाहुमूलं येषां तान्। उदक्षैप्सीत्=उत्क्षिप्तवान्। अपातयत्= अपोथयत्। तस्मिन्=रघुवीरे। समिद्धक्रोधाः=विवृद्धकोपाः। अभिमन्युमिव=उत्तरागर्भजमर्जुनसूनुमिवेत्युपमा। महारथैः=अतिबलैः। य एकल एव हस्त्यश्वरथपादातैरनेकसल्यैर्योद्धुं शक्नोति स महारथ इति पारिभाषिकाः। चन्द्रहासचक्रेणेव=करवालसहस्रेणेव। चन्द्रहासचालने या चातु-

---

नहीं कर सके थे, पेट आकाश में ही चीर डाले; कूद कर उठने की चेष्टा कर रहे अन्य यवन सैनिकों की शिरोधरा (गर्दन) को अशिरोधरा (शिर से रहित) बना दिया; कुछ अन्य यवन सैनिकों के मज्जा और मांस से पिच्छिल कीचड़ में चलने वाले चरणों को चलने फिरने के अयोग्य कर कर दिया, और अन्य यवन सैनिकों के तलवार चलाने के लिए उठे हुए हाथों को अपनी तलवार से कन्धे पर से ही काट डाला। रघुवीर सिंह ने भी दो तीन यवनों को एक एक करके क्रम से गिरा दिया। पाँच छः अत्यन्त क्रुद्ध यवन सैनिक उसके ऊपर चारों ओर से एक साथ ही टूट पड़े। रघुवीर को महारथियों से घिरे हुए अभिमन्यु की भाँति यवन सैनिकों से घिरा हुआ देख कर, गरजते हुए तलवारों के समूह से घिरे हुए से शिवाजी कूद पड़े,

महिम्ना च खड्गेनैव तेषामाघातान् प्रतिरुन्धन्, तेषु बहून् यम-सदनमनैषीत्। तावदन्येऽपि महाराष्ट्राः परितः श्येना इवाभिपत्य काकोलानिवातिलोलांस्तान् दोला-योग्यानकार्षुः। एवं हतेषु बहुषु, परेषु पतितेषु, आर्तनादेन प्रासादं ध्वनयत्सु, उपद्रवः प्रशशाम। पुनरग्रेऽवरोधमवरोद्धुं प्रचचाल महाराष्ट्रमण्डलीमण्डनः। तत्र रुद्धान्यररराणि पादाघातैः प्रासनिपातैश्च भित्त्वा, "हर हर महादेव" इति गर्जनैरन्तर्निविश्यापश्यत्—यद् गवाक्षिकातः सर्वाः स्त्रियः पूर्वमुत्तार्य पश्चात्सेनानीरप्युत्तरतीति। शिव-

री=कुशलता। तन्महिम्ना=तत्प्रभावेण। श्येना इव=पक्षिमारका श्येनैरुपमा। काकोलान् = कृष्णकाकान्। "डोम कौआ" इति हिन्दी। अतिलोलान् = परमचञ्चलान्। दोलायाः = शिविकायाः, "डोली" इति हिन्दी, योग्यान्। स्वयचलितुमसमर्थत्वादिति भाव.। आर्तनादः = पीडितानां क्रन्दनध्वनिः। उपद्रवः = हिंसादिरूप अवरोधम् = अन्तःपुरम्। महाराष्ट्रमण्डलीमण्डन. = मरहट्टसमुदायभूषण। अरराणि = कपाटानि। "कपाटमरर

और उन्होंने तलवार चलाने की अपनी निपुणता की महिमा से उन यवन सैनिकों के आघातों को अपनी तलवार से ही रोकते हुए उनमें से बहुतों को यमराज के घर भेज दिया। तब तक अन्य मराठे सैनिक भी चारों ओर से बाज की तरह झपट पड़े और उन्होंने काकोल (डोम कौओं) की भाँति अति चञ्चल यवन सैनिकों को डोली में चढ़ कर चलने योग्य कर दिया। इस प्रकार बहुत से यवन सैनिकों के मार डाले जाने और अन्य यवन-सैनिकों के गिर कर करुण चीत्कार से महल को गुँजा देने बाद, उपद्रव शान्त हो गया, और मराठों के दल के शृंगार शिवाजी हरम को घेरने के लिए आगे बढ़े। वहाँ बन्द किवाड़ों को पैरों तथा भालों के प्रहार से तोड़कर 'हर हर महादेव' की गर्जना करते हुए भीतर प्रवेश कर शिवाजी ने देखा कि पहले सभी स्त्रियों को खिड़की से उतार कर बाद में उसी खिड़की से स्वयं सेनापति शाइस्ता खाँ भी उतर रहा है। शिवाजी के एक गुप्तचर ने

राजस्यैकेन चरेण खड्गः क्षिप्तः। तस्य च प्रसारित-करस्याङ्गुलिद्वयमेव च्छिन्नम्, तावत् सोत्फालमन्धकार-महोदधौ निमग्नः।

इतस्तु दानवा इव मानवान् महाराष्ट्रा म्लेच्छान् घ्नन्तीत्यालोक्य व्यर्थ-हत्या शिवेन निवारिता। "विजितं सनातनधर्मेण, विजितं महाराष्ट्रराजेन" इति महाञ्जयध्वनिः।

"सम्प्रति साधनीयम्, पलायितः शास्तिखानो नाऽऽयास्यति सम्मुखमिति क्षिप्रं सिंहदुर्ग आसादनीयः"—इति शिवेनाऽऽज्ञप्तास्त्यक्त-रुधिरारक्त-वसनाः, प्रासाद-नागदन्तिकावलम्बितैरेव बहुभिर्वसनैर्वेष्टिताः, कश्चिन प्रत्यर्थि-परिचारक-वसन-पट्टिका-

तुल्ये" इत्यमरः। प्रासनिपातैः = मल्लपातनैः। गवाक्षिकातः = वातायनिकातः। स्त्रियः = नारीः। चरेण = दूतेन। तस्य=सेनापतेः शास्तिखानस्य। सोत्फालम् = सकूर्दनम्। अन्धकारमहोदधौ = तमोवारिधौ। दानवाः=दनुतनया राक्षसाः। इवेनोपमा। व्यर्थहत्या=अनावश्यकमारणम्। जयध्वनिः = जयशब्दः।

साधितम् = विहितम्। साधनीयम् = कार्यम्। आसादनीयः = प्राप्तव्यः, त्यक्तानि = दूरीकृतानि, रुधिरारक्तानि = लोहिताक्तानि, वसनानि यैस्ते। प्रासादस्य = हर्म्यस्य, नागदन्तिकासु = कीलिकासु, अवलम्बितैः = स्थापितैः, वेष्टिताः = परिहितवसनाः, प्रत्यर्थिनः =

तलवार फेंक कर मारी। शाइस्ता खाँ के हाथ फैले हुए थे उसकी दो उँगलियाँ ही कटीं, तब तक वह कूद कर अन्धकार के समुद्र में लीन हो गया।

इधर शिवाजी ने यह देख कर कि मराठे यवनों को उसी प्रकार मार रहे हैं जैसे दानव मनुष्यों को मारते हैं; निरर्थक हिंसा रोक दी और 'सनातन धर्म की विजय हुई। शिवाजी की विजय हुई!' का जयघोष होने लगा।

"अब चलना चाहिए, शाइस्ता खाँ भाग गया, अब सामने नहीं आयेगा, अतः शीघ्र ही सिंहदुर्ग पहुँच जाना चाहिए" इस प्रकार शिवाजी की आज्ञा पाकर योद्धाओं ने अपने रक्तरञ्जित वस्त्रों को उतार कर, महल की

शस्त्रैरालोचकानां यवन-भृत्य-भ्रममुत्पादयन्तः, निर्भयाः सर्वेऽपि घोरान्धकारायां यामिन्यां प्रचलिताः। निर्विघ्नं पुण्यनगराद्बहिरागत्य, यथासङ्केतमाक्रमणेन विजित-बाह्य-सेना-सन्निवेशं सम्यगुन्मुद्रित-सर्वगोपुरं संस्थापित-निज-यामिक-द्वार-रक्षकं स्वर्णदेव गौरसिंहाधिष्ठितं बलं साक्षात्कुर्वन्तः, गव्यूतिं यावदन्धतमस एवोच्चावचं पाणिन्धममध्वानं व्यतीत्य, ततः शतशो दीपान् संज्वल्य,

---

शस्त्रैः, परिचारकाणाम् = भृत्यानाम्, वसनपट्टिकाशस्त्रैः। आलोचकानाम् = द्रष्टृणाम्। यवनभृत्यभ्रमम् = म्लेच्छपरिचारकभ्रान्तिम्। यामिन्याम् = रात्रौ। निर्विघ्नम् = निष्प्रत्यूहम्। विजितबाह्यसेनासन्निवेशम् = स्वायत्तीकृतबहिर्गतबलशिविरम्। उन्मुद्रितसर्वगोपुरम् = उद्घाटितनिखिलपुरद्वारम्। बलम् = सेनाम्। अन्धतमसे = गाढान्धकारे। उच्चावचम् = निम्नोन्नतम्। पाणयो ध्मायन्ते स्पर्शायनोदाय यस्मिंस्तम्, पाणिन्धमम्। अध्वानम् = मार्गम्। पाणिन्धमपदार्थकुक्षौ नाध्वप्रवेशो

---

खूँटियों पर टँगे हुए अनेक वस्त्रों को लपेट (पहन) लिया कुछ योद्धा शाइस्ता खाँ के परिचारकों के वस्त्रों, कमरबन्दों, और शस्त्रों को धारण कर दर्शकों में यवनों के सेवक होने का भ्रम पैदा करते हुए निर्भीक होकर घोर अन्धकारवाली रात्रि में चल दिए और बिना किसी विघ्न के पूना नगर से बाहर आकर स्वर्णदेव तथा गौरसिंह द्वारा सुरक्षित सेना से मिले। स्वर्णदेव गौरसिंह की सेनाओं ने पूर्वनिश्चित सकेत के अनुसार ही आक्रमण कर शाइस्ता खाँ की बाहरी (नगर से बाहर तैनात) सेना के शिविर पर धावा बोलकर उसे जीत लिया था और पूना नगर के सारे बाहरी दरवाजे खोल रखे थे और उन दरवाजों पर अपने ही पहरेदार तथा दरबान नियुक्त कर दिए थे। तदनन्तर वे मराठा योद्धा दो कोस तक घने अँधेरे में ही टटोल टटोल कर चलते हुए ऊँचे नीचे रास्ते को पार कर, पूना नगर

पुण्यनगरस्थैः कान्दिशीकैः पराजितप्रत्यर्थिभिः प्रजाभिश्च वीक्ष्यमाणाः कुशलेन सिंहदुर्गमारुरुहुः।

इति सप्तमो निश्वासः।

---

योगमात्रार्थप्रवृत्तिनिमित्तकत्वात्। कान्दिशीकैः=भीतैः। पराजितैः=परास्तैः, प्रत्यर्थिभिः=शत्रुभिः। प्रजाभिः, सानन्दाभिरति शेषः, वीक्ष्यमाणाः=दृश्यमानाः। कुशलेन=क्षेमेण। आरुरुहुः=आरूढवन्तः।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यां सप्तमनिश्वासविवरणम्।

---

में स्थित युद्ध से भागे हुए, हारे हुए शत्रुओं द्वारा सैकड़ों दीपक जलाकर देखे जाते हुए और पूना की प्रजा द्वारा देखे जाते हुए सकुशल सिंह दुर्ग पर चढ़ गए।

शिवराजविजय का सातवाँ निश्वास समाप्त।

---

॥ श्रीः ॥

# अष्टमो निश्वासः

'वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च।
तासु तेष्वप्यनासक्तः साक्षाद्भर्गो नराकृतिः॥"

—कुवलयानन्दे

तोरणदुर्गे तु रसनारी कामिश्चन मूर्छितप्रायाभिरुत्थाप्य समानीताभिः पुनः प्राप्तसंज्ञाभिः चेटीभिः सहिता, मञ्चासन्दी

---

अष्टमेऽस्मिन्ननङ्गजीवतनयाया रसनार्या श्रीशिववीरेऽनुरागं विवाहेच्छाञ्च वर्णयिष्यति कविः, तत्र च नायकोदात्तत्वरक्षणाय सत्यमेव श्रीशिववीरमनङ्गीकरणं प्रदर्शयिष्यति, तदेतदुपक्षेप्तुं कुवलयानन्दीयं पद्यमुपक्षिपति वेधा इत्यादि। वेधाः = जगन्निर्माता। द्वेधा = द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्। भ्रमं चक्रे = भ्रान्तिमुत्पादयामास। कान्तासु = आपाततो रमणीयासु रमणीषु। कनकेषु = धत्तूरविशेषायमाणेषु हिरण्येषु च। तासु = रमणीषु। तेषु = कनकेषु। अपिः = समुच्चये। अनासक्तः = असक्तः। नराकृतिः = मानवदेहधारी। साक्षात् = प्रत्यक्षताङ्गतः, भर्जयति कामादीनिति भर्गः = शङ्करः। नोभयोरणुतरोऽपि भेदः आकृतिविभिन्नत्वातिरिक्त इति तत्त्वम्। रूपकालङ्कारः।

तोरणदुर्गे॥ रसनारी न वेत्ति कमेति कमस्य। मूर्छितप्रायाभिः = प्रायो गतचैतन्याभिः। प्राप्तसंज्ञाभिः = लब्धचैतन्याभिः। मञ्च =

---

विधाता ने दो प्रकार से भ्रम की रचना की है, एक तो सुन्दरियों में तथा दूसरे सुवर्ण में। इन दोनों में अनासक्त रहनेवाला व्यक्ति मनुष्य के रूप में शरीरधारी साक्षात् शंकर ही है।

तोरणदुर्ग में लगभग मूर्छित हो जाने पर उठाकर लाई गई और फिर होश में आ गई अपनी कुछ परिचारिकाओं सहित राजमहल की

पल्यङ्क-वितान तूलिकोपवर्हादि सकल-परिच्छद-परिष्कृतायाम् अति-रम्य-हर्म्याट्टालिकायामवरुद्धा—'काऽऽयाता ? केन सयता ? किं भावि ?'—इति किमपि न वेत्ति स्म। तत्परिचर्य्यायामितरा महाराष्ट्र-देशीया अपि दास्य आसन्, किन्तु ता अपि रसनार्या बहुशःप्रलोभिता अपि सप्रश्रयं पृष्टा अपि तेषु तेषु विषयेषु वाचमेव न यच्छन्ति स्म।

रसनारी हि नित्यं प्रातर्निर्मलं कोष्णं यूथिका-मल्लिका चन्द-

---

लघुसुखासनिका, "मचिया" इति हिन्दी, आसन्दी = 'कुर्सी' इति रयाता, पल्यङ्क = पर्यङ्क, वितानम् = उल्लोच, "चन्दोया" इति हिन्दी। तूलिका=तूलविष्टरम्, उपबर्हः=उपधानम्, एवमादिभिः सकलपरिच्छदैः= समस्तावश्यकवस्तुजातैः, परिच्छदो नृपार्हेऽर्थे' इत्यमरः। परिष्कृतायाम् = भूषितायाम्। अतिरम्यायाम् = अतिढयायाम् हर्म्याट्टालिकायाम् = गवादाट्टे। अवरुद्धा = निग्रहीता। सयता = बद्धा। बन्दीकृतेति यावत्। तत्परिचर्य्यायाम् = तत्सेवायाम्। दास्यः=भृत्याः। प्रलोभिताः=गर्द्धिताः। सप्रश्रयम् = सविनयम्। तेषु विषयेषु = प्रश्नगोचरेषु। यच्छन्ति स्म = ददति स्म। मौनिन्योऽवर्तन्तेति भावः।

निर्मलम् = पवित्रम्, कोष्णम् = ईषदुष्णम्। शिरोऽतिरिक्तस्य शरीरस्य पावनाय कोष्णमेव वारि भवत्युपयुक्तम्, रोमच्छिद्रप्रविष्टमलापनर्यकत्वात्। शिरसा धावनन्तु शीतलवारिणेति वैद्यकग्रन्थेषु स्फुटम्। यूथिकादिभिः,

---

मचिया, कुर्सी, पलँग, चँदोवा, तोशक, रजाई, मसनद इत्यादि समस्त वस्तुओं से सजाई गई अत्यन्त रमणीक अट्टालिका में बन्दी बनाकर रखी गई रोशन आरा, वह कहाँ आ गई है, उसे किसने बन्दी बनाया है, और अब क्या होने वाला है इत्यादि कुछ भी नहीं जानती थी। उसकी सेवा में कुछ अन्य महाराष्ट्रदेश की दासियाँ थीं, परन्तु वे भी उसके द्वारा अनेक बार प्रलोभन देने तथा विनम्रतापूर्वक पूछने पर भी उन विषयों का उत्तर ही नहीं देती थीं।

रोशन आरा प्रातःकाल निर्मल, कुछ उष्ण, जूही, चमेली चन्दन

नादि-वासितम् आनीय स्थापितं स्नानीयं पानीयम्, कर्पूर-काश्मीर-पाटीर-क्षोद-रचितमुद्वर्त्तनञ्च रजत-पात्रेषु विन्यस्तम्, पटवास-वासितानि सुसूक्ष्माणि सौवर्ण-प्रान्तानि नानावर्ण-कौशेय-कुसुम-रचना-चिचित्रितानि वासांसि प्रसाधनीं दर्पणं धूपं सिन्दूरं कुसुममालाः अङ्गरागं चूडाबन्धं च प्रस्तुतमेवावलोकयति स्म। विविधासु दासीषु सतैलाभ्यङ्गं सोत्सादनमर्दनं सकेशमार्जनं च

वासितम् = सुरभीकृतम्। आनीय = सम्प्राप्य। स्थापितम् = निहितम्। स्नानीयम् = स्नानयोग्यम्। कर्पूरः = हिमवालुका, काश्मीरम् = कश्मीर-देशोद्भव केसरम्।

सहोदरा कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥

इति बिह्लणः। पाटीरम् = चन्दनम्। एतेषां क्षोदेन=चूर्णेन, रचितम्=निर्मितम्। उद्वर्त्तनम् = देहनिर्मलीकरणद्रव्यम् "उबटन" इति हिन्दी। रजतपात्रेषु=रौप्यभाजनेषु। विन्यस्तम्=स्थापितम्। पटवासैः= वसनवासकैः कुङ्कुमादिचूर्णविशेषैः। वासितानि=कृतसुगन्धीनि। सौवर्ण-प्रान्तानि = सुवर्णविकारतन्तुनिर्मितदशानि। "सुनहली जरी की किनारी" इति हिन्दी। नानावर्णानाम् = अनेकरङ्गाणाम्, कौशेयकुसुमानाम्=पट्ट-सूत्ररचितपुष्पाणाम्, रचनया, चिचित्राणि = दर्शनीयानि, प्रसाधनीम्= कङ्कतिकाम्, "कंघी" इति हिन्दी। दर्पणम् = आदर्शम्। धूपम् = केशवा-सकम्। अङ्गरागम् = शरीरानुलेपनद्रव्यम्। चूडाबन्धनम् = जूटिकाबन्ध-नम्। सतैलाभ्यङ्गम् = तैलमर्दनपूर्वकम्। सोत्सादनमर्दनम् = सोद्वर्त्तन

इत्यादि से सुवासितकर स्नान के लिये लाकर रखा गया जल, कर्पूर, केसर तथा चन्दन के चूर्ण से बनाया गया और चाँदी के बर्तन में रखा गया उबटन, इत्र से सुगन्धित, अत्यन्तसूक्ष्म, सुनहले किनारेवाले, विविध रंग के रेशमी फूलों की कढ़ाई से चित्रित वस्त्र, कंघी, दर्पण, धूप, सिन्दूर, पुष्पमालाएँ अङ्गराग तथा चूडाबन्ध आदि प्रस्तुत ही पाती थी। अनेक दासियाँ तेल की मालिश करके, उबटन मलकर और बालों को साफ

स्नानसेवा विहितवतोपु, धारितकौशेया द्राक्षा-द्रव-दाडिम्ब-दुग्धादि-महामधुर महोपस्कारमयीमाहार-सामग्रीमुपलभते स्म। क्षणे क्षणे जातीपत्र-केसर-कर्पूर-लवङ्गैला-सुवासितानि ताम्बूलानि, प्रहरे प्रहरे च पाटल-सुगन्धि ताम्रक-पिष्टकाङ्गारक-परिपूर्ण-साच्छादनक-हाटकामत्रिकालङ्कृतोर्ध्वभाग केतक-तोय-पूरित-पयःपात्र-परि-

---

लेपनम्। 'उद्वर्तनोत्सादने द्वे" इत्यमर। सकेशमार्जनम् = सकचक्षालनम्। धारितकौशेयाः = परिहितपट्टवस्त्रा। द्राक्षाद्रवः = गोस्तनीरस, दाडिम्बम् = दाडिमीफलम्, दुग्धम् = पय, एवमादिका, महामधुरा = अतिमिष्टा, महोपस्कारमयी = विशिष्टोपकरणयुता, ताम्। आहारसामग्रीम् = भोजनपदार्थम्। जातीपत्रम् = जातीदलम्, केसरः = काश्मीरज, कर्पूरः = हिमवालुका, लवङ्गम् = देवकुसुमम्, एला = चन्द्रवाला, आभि, सुवासितानि = सुरभीणि। पाटलसुगन्धि = आशुव्रीहिसुरभि, यत् ताम्रकम् = "तमाखू" इति ख्यातम्, तस्य, पिष्टकस्य = "टिकिया" इति ख्यातस्य, अङ्गारकेण = 'अङ्गार' इति हिन्दीप्रसिद्धेन। परिपूर्णया = युतया, साच्छादनिकया = समावरणिकया, "ढकी हुई" इति हिन्दी, हाटकामत्रिकया = सुवर्णनिर्मितधूमपानपात्रिकया, "सोने की चिलम" इति हिन्दी, अलङ्कृतः = भूषित, ऊर्ध्वभागो यस्य तत्। केतकतोयेन = "केवडा" इति प्रसिद्धपुष्पवासितेन वारिणा, पूरितेन = भरितेन, पयपात्रेण = जलपात्रेण, परिलसितम् = अतिशोभितम्, मूल यस्य तत्।

---

कर, उसे नहलाती थीं। तदनन्तर वह रेशमी वस्त्र पहन कर, अंगूर के रस, अनार, दूध इत्यादि अत्यन्त मधुर विविध पदार्थों से युक्त **भोजन सामग्री** प्रस्तुत पाती थी। क्षण-क्षण पर जातीपत्र, केसर, कर्पूर, लवङ्ग, इलायची से सुगन्धित ताम्बूल, घडी-घडी पर गुलाब की सुगन्ध वाली तम्बाकू की टिकिया तथा अङ्गारों से भरी, ढक्कन सहित सोने की चिलम से अलङ्कृत ऊर्ध्वभाग वाला, केवड़े के जल से पूर्ण जल्पात्र से सुशोभित अधो-

लसित-मूलं काञ्चन-चञ्चू-चमत्कृत-प्रलम्ब-नलिका-संवलितं धूमपानयन्त्रम्, सर्वदा च व्यजन-चामर-पतद्ग्राह-हस्ता दास्यः-इत्यखिलं सुसज्जमेवावलोकयति स्म।

क एवमाद्रियते ? कस्य कक्षे आपतिता ? कोऽधुनाऽपि मर्यादां न भनक्ति ?-इति तया किमपि ज्ञातुं न शक्यते स्म।

पुरुषः कोऽपि निकट एव नाऽऽयाति। निज-चेटी-द्वारा कथं कथमपि पृष्टश्च मूक इव न किमपि वक्ति, इति विचित्रं चरित्रं पश्यन्ती 'विलक्षणमिदं कारागारम्, अलौकिका अत्रत्या मानवाः'-इति

---

काञ्चनचञ्च्वा = सुवर्णनिर्मिताग्रभागेन, चमत्कृतया = सुसज्जितया, प्रलम्बया = सुदीर्घया, नलिकया = धूमाकर्षिकया, "हुक्के की नली" इति हिन्दी, संवलितम् = विशिष्टम्। धूमपानयन्त्रम् = "हुक्का" इति प्रसिद्धम्। व्यजन-चामर-पतद्ग्राहा हस्ते यासां ताः। पतद्ग्राहः = पतद्ग्रहः, 'पतद्ग्राहः पतद्ग्रहः' इत्यमरः। "पीकदान" इति हिन्दी। सुसज्जम् = सन्नद्धम्। अवलोकयति स्म = अपश्यत्।

आद्रियते = आदरं करोति। कक्षे = बाहुमूले। सर्वविधाधिकार इति यावत्। मर्यादाम् = सीमानम्, परदारदूषणरूपाम्। न भनक्ति = न त्रोटयति। मूक इव = वाक्शक्तिशून्य इव। विलक्षणम् = विचित्रम्, अलौकिकाः = दिव्याः। असाधारणा इति यावत्।

---

भाग वाला, सोने के अग्रभागवाली नली के कारण चमकती हुई लम्बी निगाली ( नली ) से युक्त हुक्का तथा हर समय पंखा, चामर तथा पीकदान लिए हुए दासियाँ, सब तैयार ही देखती ( पाती ) थी।

इस प्रकार मेरा सम्मान कौन कर रहा है ! मैं किसके कक्ष में पहुँच गई हूँ ! वह कौन है जो अब भी मर्यादा को नहीं तोड़ रहा है ! इत्यादि कुछ भी वह नहीं जान सकी थी।

कोई पुरुष तो उसके पास ही नहीं जा पाता था और उसकी दासियों द्वारा किसी प्रकार पूछने पर भी कोई कुछ भी नहीं बोलता था मानो सभी मूक हों यह अद्भुत आचरण देखती हुई, "यह कारागार विलक्षण है, यहाँ

मनस्येव तर्कवितर्कैश्चिर-चिन्ता-निमग्ना अभूत्।

अथैकदाऽट्टालिकायां पर्यटन्त्या, दक्षिणस्यां सुदूरं विस्तृतानां काननानाम्, अभ्रंलिहानां शैल-शिखराणाम्, कालिन्दी-सलिल-सौन्दर्य-विजित्वरातिहरित-वनौषधि वृन्द व्याप्तानामुच्चावच-तलान्तः-स्रवत्-प्रस्रवण स्रोतस्समीप-नरीनृत्यमान मेघनादानुलासि-लास्य-ललितानामुपत्यकानाम्, द्रुमाद् द्रुमम्, शाखातः शाखाम्, गण्ड-शैलाद् गण्ड-शैलम्, दन्तकाद् दन्तकम्, पादाच्च पादम्, सपत्र-

---

अथैकदाऽट्टालिकायां पर्यटन्त्या बहुना पादध्वनिरश्रावि इति सम्बन्धः। सुदूरम् = अतिविस्तीर्णप्रदेशम्। अभ्रंलिहानाम् = मेघस्पर्शकारिणाम्। अत्युच्चानमिति यावत्। शैलशिखराणाम्=पर्वतशृङ्गाणाम्। कालिन्दी सलिल सौन्दर्य विजित्वरेण = यमुनाजलसौन्दर्यविजयकारिणा, अति हरितेन = अतितरां हरिद्वर्णेन, वनौषधिवृन्देन व्याप्तानाम्, उच्चावचतलानाम्=निम्नोन्नतभूभागानाम्, अन्तः, स्रवताम् = प्रवहताम्, प्रस्रवणानाम् = निर्झराणाम्, स्रोतसाम् = प्रवाहाणाम्, समीपे = अन्तिके, नरीनृत्यमानानाम् = भृशं नृत्यताम्, मेघनादानुलासिनाम् = मयूराणाम्, "मेघनादानुलास्यपि" इत्यमरः। लास्ये = नर्तने, ललितानाम् = मनोहराणाम्। दन्तकात्=अद्रिकटकात्। "दन्तोऽद्रिकटके कुञ्जे

---

के मनुष्य अलौकिक हैं" इस प्रकार मन ही मन तर्क वितर्क करती हुई रोशनआरा बहुत देर तक चिन्ता में डूबी रहती थी।

तदनन्तर एक बार अटारी पर टहलती हुई, दक्षिण दिशा में दूर तक फैले हुए जङ्गलों, गगनचुम्बी पर्वतशृङ्गों यमुना के जल के सौन्दर्य को पराजित करने वाली अत्यन्त हरी भरी जङ्गली औषधियों के समूह से व्याप्त ऊँचे-नीचे धरातलों के बीच बहने वाले झरनों के प्रवाहों के समीप नृत्य कर रहे मयूरों के नर्तन से मनोहर लगनेवाली उपत्यकाओं, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, एक डाली से दूसरी डाली पर, एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर, एक दन्तक ( पहाड़ के बीच से निकले टेढ़े पत्थर ) से दूसरे दन्तक पर

कम्पनम्, सचञ्चु-चाञ्चल्यम्, समीवाभङ्गम्, सपक्षति-कण्डूयनम्, सतनूरुह-स्फुरणम्, सकूजनं च प्रडीनोड्डीन-सण्डीनै-रुड्डीय गच्छतां कलविङ्कानाम्, करेट्टूनाम्, किकीदिवीनाम्, कपोतानाम्, कोकानाम्, काकानाम्, कीराणाम्, क्रौञ्चानाम्, कुरराणां च शोभाः पश्यन्त्या अकस्मादश्रावि पादध्वनिरिव बहूनाम्।

झटिति तत आगत्य द्वारोपरिस्थ-गवाक्षाच्चाऽऽलोकितवती—

---

दर्शनेऽथौषधौ स्त्रियामि"ति। पादात् = प्रस्यन्तपर्वतात्। सपत्र-कम्पनम् = पक्षधूननसहितम्। सचञ्चुचाञ्चल्यम् = सत्रोटिचापल्यम्। सपक्षति-कण्डूयनम् = सपक्षमूल-खर्जनम्। सतनूरुह-स्फुरणम् = सरोमहर्षम्। सकूजनम् = सशब्दम्। प्रडीनोड्डीनसण्डीनैः = पक्षिणां गतिविशेषैः। "प्रडीनोड्डीनसण्डीनान्येताः खगगतिक्रियाः" इत्यमरः। कलविङ्कानाम् = चटकानाम्। करेट्टूनाम् = करेटूनाम्। "कर्करेटु. करेटु. स्यादि" त्यमरः। किकीदिवीनाम् = चाषाणाम्। "अथ चाषः किकीदिविरि" त्यमरः। कपोतानाम् = पारावतानाम्। कोकानाम् = चक्रवाकाणाम्। काकानाम् = वायसानाम्। कीराणाम् = शुकानाम्। क्रौञ्चानाम् = चक्रवाकविशेषाणाम्। कुरराणाम् = उत्क्रोशकाख्यानां पक्षिणाम्। पादध्वनिः = चरणशब्दः। बहूनामिव = अनेकेषामिव। अदृश्यत्वादनुमेयत्व बहुत्वस्येतीवशब्दः।

झटिति = त्वरितम्। द्वारोपरिस्थगवाक्षात् = निर्गमनमार्गोपरिविद्यमा-

---

और एक तलहटी से दूसरी तलहटी पर, पङ्खों को हिलाते हुए, चोंच चलाते हुए, गर्दन टेढ़ी करते हुए, डैनों को खुजलाते हुए, रोमाञ्चित होते हुए, तथा कूजते हुए, प्रडीन, उड्डीन और सण्डीन गतियों से उड़कर जाते हुए गौरैया, कर्करेटु, नीलकण्ठ, कबूतर, चक्रवाक, काग, शुक, क्रौञ्च, और कुरर पक्षियों की शोभा देखती हुई रोशन-आरा ने अकस्मात् अनेक व्यक्तियों के आने की पदध्वनि सुनी।

रोशन आरा ने शीघ्रतापूर्वक वहाँ से आकर द्वार की ऊपरवाली

यदेक ईषच्छ्यामल- सुन्दरो विधृत–मौक्तिक–माणिक्य–मरकत-गुच्छाङ्कितोष्णीषः सौवर्ण-सूत्र-रचित-कञ्चुको जाम्बूनद–कौशेय-कुसुम-चित्राङ्कित-प्रावार-परिलसित-वामस्कन्धो महार्ह-वज्रक-प्रचयाकलित-कोशस्थ-चञ्चच्चन्द्रहासावलम्बित-कटितटो मरकतमणि-महामाला–लसित–गल–कमनीयो युवाऽऽगच्छतीति। तस्याग्रे पश्चात् पार्श्वयोश्च समागच्छतः शतशो भुशुण्डिका-तोमर-पट्टिश-सौवर्ण-

---

नाद्वातायनात्। ईषत् श्यामल- = किञ्चित्कृष्णवर्णः। विधृतम्=शिरसि स्थापितम्, मौक्तिकमाणिक्यमरकतगुच्छैः, अङ्कितम्, उष्णीषम्=शिरोवेष्टनम्, येन सः। मौक्तिकम् = हस्त्यादिलब्धमणिः। माणिक्यम् खनिप्रभमणिः। मरकतस्य मणिविशेषत्वेऽपि ब्राह्मणवशिष्ठन्यायेन पृथगुक्तिः। सौवर्णसूत्ररचितकञ्चुकः = हैरण्यतन्तुनिर्मितचोलकः। जाम्बूनदैः = सुवर्णरचितैः, कौशेयैः = पट्टसूत्ररचितैश्च, कुसुमचित्रैः = पुष्पाकृतिकनिर्माणैः, अङ्कितेन = भूषितेन, प्रावारेण=उत्तरासङ्गेन, "द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ" इत्यमरः, परिलसितः = शोभितः, वामः = दक्षेतरः, स्कन्धो यस्य सः। महार्हवज्रकप्रचयेन = बहुमूल्यहीरकव्रजेन, आकलिते = युते, कोशे = असिधान्याम्, तिष्ठतीति तथाभूतेन, चञ्चता = चमत्कुर्वता, चन्द्रहासेन, अवलम्बितम् = आश्रितम्, कटितटं यस्य सः। मरकतमणिमहामालया, लसितेन = मण्डितेन, गलेन कमनीयः = मनोहरः। भुशुण्डिका = "बन्दूक" इति ख्याता, तोमरम्, पट्टिशम्, सौवर्ण-

---

खिड़की से देखा कि एक साँवला, सुन्दर, मोती, मानिक और मरकत मणियों के गुच्छों से अलंकृत पगड़ी धारण किए, सुनहले सूतों से निर्मित कञ्चुक ( कुर्ता ) धारण किए, सुवर्णसूत्र तथा रेशम से कढे पुष्पाकार बूटों वाली चादर से सुशोभित वामस्कन्ध वाला, बहुमूल्य हीरों से जडी म्यान में रखी हुई चमचमाती तलवार कमर मे लटकाए हुए, मरकत मणियों की लम्बी माला से सुशोभित कण्ठवाला युवक आ रहा है। उसके आगे-पीछे और दायें-बायें आते हुए, हाथों मे बन्दूक, तोमर, पट्टिश और

दण्ड-कलित-करान् भटान्; अपरांश्च च्छत्र-चामर-वेत्र-व्यजन-हस्ता ननुचरान् आलोक्य निश्चितमेष एवाध्यक्षो दुर्गस्यैतस्य, एष एव च सम्भोभोति परिवृढोऽस्मल्लुण्ठकगणस्येति मन्यमाना, किञ्चिद् भीतेव स्तब्धेव, खिन्नेव, क्षुभितेव, उद्विग्नेव च सा समवित्त।

अथ रसनारी स्वोपवेशदेशं प्रविश्य स्विन्नां गण्डस्थलीं याव- त्पटान्तेन परिमार्ष्टि; तावत्प्रतिसीरामुत्क्षिप्य झटिति प्रविश्य शिरो- नमन-पुरःसरमादराधारं विदधदवलोकितः स एव वीरवरः। इयं

---

दण्डाः=हैरण्ययष्टयः, एभिः कलिताः=युक्ताः करा येषां तान्। सम्भोभोति= अतिशयेन भवति। परिवृढः=प्रभुः। "प्रभौ परिवृढः"। अस्माक, कर्मणि षष्ठी, लुण्ठकस्य=चोरयितुः, गणस्य=समूहस्य। भीता=भयाक्रान्ता। भ्रान्तिमनिर्णयकर्त्ताऽऽयाति, किमनुष्ठास्यतीति विचारेण। स्तब्धा=निश्चेष्टा। खिन्ना=खेदाक्रान्ता। क्षुभिता=सञ्चलिता। व्याकुलेति भावः। उद्विग्ना= मानसिकोद्वेगवती। समवित्त=अशासीत्।

स्वोपवेशदेशम्=स्वावासभूमिम्। स्विन्नाम्=चिन्तासञ्जातघर्मजल- वतीम्। गण्डस्थलीम्=कपोलपालिम्। परिमार्ष्टि=प्रोञ्छति। प्रतिसी- राम्=यवनिकाम्। "प्रतिसीरा यवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा" इत्यमरः। उत्क्षिप्य=उत्थाप्य। शिरोनमनपुरस्सरम्=मस्तकनतिपूर्वकम्। आदरे-

---

स्वर्ण दण्ड लिए सैकड़ों सैनिकों तथा छत्र-चामर और पखा लिए नौकरों को देखकर, निश्चय ही यही व्यक्ति इस दुर्ग का अध्यक्ष है, और बहुत सम्भव है कि यही हम लोगों को लूटने वालों का मुखिया हो यह समझती हुई रोशन आरा कुछ डर सी गई और स्तम्भित सी, उदास सी, व्याकुल सी तथा उद्विग्न सी हो गई।

तदनन्तर रोशन आरा अपने बैठने के कमरे में आकर, स्वेदयुक्त कपोल- स्थल को पोंछ ही रही थी कि चिक हटाकर, शीघ्रता से प्रवेश कर शिर झुकाकर, सम्मान प्रदर्शित करता हुआ वही वीर युवक दिखाई पड़ा। उसे सम्मान सूचक संकेतों से अभिनन्दित कर, उसकी वाणी रूपी अमृत को

तमादरेङ्गितैः प्रत्यर्न्य, तद्वचन-सुधाधारा-पिपासिताभ्यामिव कर्णाभ्यां परमैकतानता-जडीकृताभ्यामिव नयनाभ्यां चित्रार्पितेवाभूत् । महाराष्ट्रराजस्तु बद्धकरसम्पुटः समवर्तत । न च बिन्दुमपि विसर्गमपि चाभूत । ततः पराधीना तदाकार-सौजन्य-लावण्य-गाम्भीर्यादराचाराद्यवलोकन-मोहिता रसनारी स्वयमेवाऽऽरभ्य एवमालपत् ।

रसनारी—आगम्यतामियमासन्दी सनाथ्यताम् ।

इङ्गितैः = आदरसूचकचेष्टाभिः । तद्वचनसुधाधारापिपासिताभ्यामिव = तदुक्तिपीयूषप्रवाहपानाभिलाषुकाभ्यामिव, उत्प्रेक्षा । परमैकतानता-जडीकृताभ्यामिव = अत्यन्तैकाग्रीकृतिनिश्चेष्टीकृताभ्यामिव । "एकतानोऽनन्यवृत्तिरि"त्यमरः । चित्रार्पितेव = चित्रलिखितेव । बद्धकरसम्पुटः = कृताञ्जलिः । बिन्दुमपि विसर्गमपि = उच्चारयितुमनर्हः केवलो बिन्दुरूपोऽनुनासिको बिन्दुद्वयरूपो विसर्जनीयश्चापि यदा नोक्तस्तदा वर्णसमूहरूपपदोच्चारणचर्चैव केति कैमुतिकन्यायेन किमपि नाकथयदित्यत्र तात्पर्यम् । भाषणभङ्गीपाटवमदर्शनाय त्वेवमभिधानम् । अनुनासिकविसर्जनीययोर्लिपिरेव बिन्द्वात्मिका, तौ तु वर्णावित्ययोगवाहनामसु शर्षु चोपसंख्यानेन भाष्ये दर्शितमित्यादिकं शाब्दिकशैलीविदा नातितिरोहितमिति शम् । पराधीना = अस्वतन्त्रा । तदाकारस्य = तदाकृतेः, सौजन्यस्य = सज्जनतायाः, लावण्यस्य = सौन्दर्यस्य, गाम्भीर्यस्य = प्रच्छन्नभावस्य । आदराचारादेश्च = आदृतिशिष्टाचरणादेश्च, अवलोकनेन, मोहिता = वशीकृता ।

आसन्दी = आसनविशेष. । सनाथ्यताम् = सस्वामिकीक्रियताम् । उपविश्यतामिति यावत् । आदरातिशयद्योतनायैवमुक्तिः ।

धारा के पिपासु कर्णों तथा अत्यन्त एकाग्रता के कारण निश्चेष्ट से हो गए नेत्रों वाली रोशन आरा चित्रलिखित सी हो गई । शिवाजी हाथ जोड़े खड़े रहे और बिन्दु या विसर्ग भी नहीं बोले । तदनन्तर उनकी ( शिवाजी की ) आकृति तथा उनका सौजन्य, लावण्य, गाम्भीर्य और शिष्ट व्यवहार आदि देखकर मुग्ध हो गई परतन्त्र रोशनआरा स्वयं ही बातचीत का आरम्भ करती हुई बोली।

**रोशन आरा**—आइये, इस कुर्सी को सनाथ कीजिए।

शिवराजः—यदाज्ञाप्यतेऽत्रभवत्या।

( इत्येकस्यामासन्द्यां महाराष्ट्रराजः, अपरस्यां च रसनारी, सार्द्ध-हस्तोच्छ्रायाया कौशेय-वसनाच्छन्नाया सजल कुसुम स्तबकालङ्कृतमध्याया वर्तुल-पीठिकायाः प्राक् प्रत्यक् चोपाविक्षताम्। )

रसनारी-वीर ! अतिसमादृताऽपि सुखं स्थापिताऽपि दुःखिताऽस्मितमाम्, यतो यत्नैरपि न ज्ञातुमशकं निज-धन्यवाद भाजनं धन्य-धन्य कमपि मान्य वदान्यम्; यत्प्रदत्तं द्राक्षा दाडिम-जातमास्वादमास्वाद केकि केका कोकिल कूजितानि श्रावं श्रावं दर्श दर्शं चोपत्यका-शाद्वलेषु शम्बर-शल्लकी-शशक-शिवा-पलायनानि

---

आज्ञाप्यते = आदिश्यते। अतिशयनम्रताप्रदर्शनायेदम्।

सार्धहस्तोच्छ्रायायाः = अर्धेन सह विद्यमानो हस्तः, अर्धाधिक, उच्छ्रायः = औन्नत्य यस्यास्तस्याः। कौशेयवसनाच्छन्नायाः = पट्टवस्त्रप्रावृतायाः। सजलकुसुमस्तबकैः = सवारिपुष्पगुच्छैः, अलंकृतं मध्यम् = मध्यभागो यस्यास्तस्याः। वर्तुलपीठिकायाः = गोलाकृतिकाष्ठपीठिकायाः, "मेज" इत्याङ्ग्लशब्दस्य हिन्दीप्रयोगविषयस्याभिधेयायाः। उपाविक्षताम् = आसिषाताम्। केकिकेकाः = मयूररुतानि, कोकिलकूजितानि = परभृतरणितानि। श्रावं श्रावम् = श्रुत्वा श्रुत्वा। शम्बरस्य = मृगविशेषस्य, शल्लक्याः = श्वाविध,

---

शिवाजी—जैसी आपकी आज्ञा।

[ तदनन्तर डेढ़ हाथ ऊँची, रेशमी मेज़पोश से ढकी हुई, जलयुक्त फूलों के गुच्छों से अलकृत ( गुलदस्तों से अलङ्कृत ) मध्य भाग वाली, वर्तुलाकार मेज़ के आमने सामने एक कुर्सी पर शिवाजी बैठ गए तथा दूसरी पर रोशन आरा बैठ गई। ]

रोशन आरा—वीर ! अत्यन्त सम्मानित की जाती हुई भी, सुखपूर्वक रखी जाती हुई भी मैं दुःखी हूँ, क्योंकि कोशिश करने पर भी मैं अपने धन्यवाद के पात्र, अतिशय धन्य उस माननीय आश्रयदाता को नहीं जान सकी, जिसके दिये गए अंगूर, अनार आदि का आस्वादन कर मयूरों की केका, तथा कोयलों की काकली को सुन सुनकर तथा उपत्यकाओं के घास

दिनानि गमयामि ।

शिवराजः—आर्ये ! अपि कस्यापि महाराष्ट्र-वीरस्य शिवराज इति नामधेयं श्रीमत्याः कर्ण-शष्कुलीमस्पार्क्षीत् ?

रस०—[ क्षणं चिन्तयित्वेव ] किं पार्वतोन्दुरुः शिव इति ?

शिवराजः—["दिल्ली-कलङ्का वराका एते मां पार्वतेन्दुरुमेवाऽऽख्यान्ति" इति स्वगतमेव विचार्य किञ्चिद् ह्रीण इव पुनरुन्नतीमूय ] भद्रे ! महाराष्ट्र-राजः शिववीरः ।

रसनारी—[ समौग्ध्यम् ] तत् किं पार्वतोन्दुरुः कोऽप्यन्यः ?

शिव०—अत्र भवती न वेत्ति मर्म्मैतस्य । अस्माकं सदैव युद्धानि भवन्ति श्रीमत्यास्तातचरणैः सह । वयं सदैव तान् विजया-

'साही' इति हिन्दी, शशकस्य, शिवायाः = शृगाल्याश्च, पलायनानि = धावनानि । दिनानि गमयामि = दिवसान् क्षपयामि । निरयं यापयामि कालमिति यावत् ।

कर्णशष्कुलीम् = श्रवणभिल्लीम् । श्रोत्ररन्ध्रम् । अस्पार्क्षीत् = स्पर्शनम-कार्षीत् शिवराज इति नाम कर्णयोर्गतं श्रुतमिति प्रश्नः । पार्वतोन्दुरुः = पर्वतीयाखुः । आख्यान्ति = कथयन्ति ।

के मैदानों में हरिणों, शल्लकियों ( साहियों ) खरगोशों तथा शृगालियों का भागना देख-देखकर दिन काट रही हूँ ।

शिवाजी—आर्ये ! क्या किसी महाराष्ट्र वीर के 'शिवाजी' इस नाम ने आपके कानों का स्पर्श किया है ?

रोशन आरा—[ क्षण भर सोचती हुई सी ] क्या पहाड़ी चूहा शिवाजी ?

शिवाजी—[ मन में, यवन मुझे पहाड़ी चूहा ही कहते हैं यह सोचकर कुछ लज्जित से होकर पुनः सिर उठाकर] भद्रे ! महाराष्ट्र के राजा शिवाजी ।

रोशन आरा—[ भोलेपन से ] तो क्या पहाड़ी चूहा कोई और है ?

शिवाजी—आप इसका रहस्य नहीं जानती हैं । हमलोगों का आपके पिताजी के साथ सदा ही युद्ध हुआ करता है; हमलोग सदैव उन्हें पराजित

मह्हे। तदीयानि कदर्य्याणि आचरणान्यवलोक्य च 'दिल्ली-कलङ्का इमे' इति कथयामः। ते च दग्धहृदया अस्मान् 'पार्वतेन्दुरून्' प्रचक्षते, परन्तु यथा तव तातस्तत्र राजा, तथा शिववीरोऽत्र राजा। तव तातस्तत्र प्रजासु तु, येषां दारा अपह्रियन्ते, येषां देव-मन्दिराणि निपात्यन्ते, येषां च तीर्थस्थानानि बलाद्विलोप्यन्ते, ते प्रतिप्रभातं प्रतिसायं च बाष्प-वारि-बिन्दु-सन्दोहैराननं क्षालयन्तः, दग्धहृदयाः, धमद्धमद्धमनी-धावमान-रुधिर-धारा-दुर्धर्ष-वदनाः, हस्तावुन्नमय्य तव तातस्योच्छेदाय शपन्ते, शिव-राज्ये तु प्रजाः प्रतिक्षणमाशीराशीनुच्चारयन्ति। त्वत्पितृराज्यं बहिरेव, न

मर्म = रहस्यम्। कदर्य्याणि = अतिनिन्द्यानि। आचरणानि = वर्त्तनानि। दग्धहृदयाः = ज्वलितान्तःकरणाः। प्रचक्षते = कथयन्ति। दाराः= वनिता। अपह्रियन्ते=चोर्य्यन्ते। विलोप्यन्ते = अदृश्यतां नीयन्ते। प्रतिप्रभातम् = प्रतिप्रातः। प्रतिसायम् = प्रतिसूर्य्यास्तमनवेलम्। बाष्प-वारिबिन्दुसन्दोहैः =अश्रुजलपृषत्समूहैः। क्षालयन्तः =धावयन्तः। धमद्-धमन्तीषु=भीत्याऽतितरां धड़त्कुर्वतीषु, धमनीषु=नाडीषु, धावमानस्य= शीघ्रगतेः, रुधिरस्य, धाराभिः = प्रवाहैः दुर्धर्षाणि वदनानि=रूपमानि येषान्ते। उच्छेदाय=नाशाय, शपन्ते=अनिष्टमाशासन्ते। उन्नमय्य =

करते हैं, और उनके निन्दनीय कुकृत्यों को देखकर, 'ये दिल्ली के कलङ्क हैं,' ऐसा कहा करते हैं, परन्तु जैसे आपके पिता वहाँ राजा हैं, वैसे ही शिवाजी यहाँ के राजा हैं। आपके पिताजी के राज्य में जिन लोगों की स्त्रियों का अपहरण कर लिया जाता है, जिनके देवमन्दिर गिरा दिये जाते हैं तथा जिनके तीर्थ स्थान बलपूर्वक लुप्त किये जाते हैं, वे लोग प्रतिदिन प्रातःकाल और सन्ध्या के समय आँसुओं की बूँदों के समूह से मुख धोते हुए, जले हृदय से, धमकती हुई धमनियों में दौड़ते हुए रक्त की धारा से, कठोर मुख से अपने दोनों हाथ उठाकर आपके पिता के विनाश के लिए शाप दिया करते हैं। किन्तु शिवाजी के राज्य में तो प्रजा प्रतिक्षण आशीर्वादों का उच्चारण करती रहती है। आपके पिता का राज्य बाहर ही है, प्रजा के

तु प्रजानामन्तःकरणे। शिवस्य तु राज्यं महाराष्ट्र-देशीय-प्रजानामन्तर्बहिश्च।

रस०—[ सलज्जम् ] तत् किं शिवराज्ये यवना अपि मोदन्ते ?

शिव०—सर्वासां प्रजानां समान एव मोदः, न भवति शासन-काले जातिनामाद्युट्टङ्कनमावश्यकम्।

रस०—ततः किमित्यहमपहारिताऽस्मि ?

शिव०—मा स्म भूच्छ्रीमत्याः काचन बलात्कार-भीतिः। बहुभी रुधिर-प्रवाहैर्भगवती विश्वम्भरा स्नापिता, बहवश्च युद्धाहूत-वीर-रमण्यो रोदिताः—इति यदि भवतीमाश्रित्य भवत्याः पित्रा सह सन्धातुं शक्येत, तद्यत्नायैव समानीता मङ्गलमय्यत्र भवती।

ऊर्ध्वीकृत्य। आशीराशीन्=आशीर्वादततीः। अन्तःकरणे = चेतसि। मोदन्ते=प्रसन्नतामनुभवन्ति। शासनकाले=रक्षणवेलायाम्। जातिनामादीनाम्, उट्टङ्कनम्=प्रकटीकरणम्। अपहारिता=चोरिता।

विश्वम्भरा = धरणी। स्नपिता = निर्णेजिता। युद्धे, आहूतानाम्=मारितानाम्, वीराणाम्, रमण्यः = स्त्रियः। मङ्गलमयी=माङ्गल्यकारिणी।

---

अन्तःकरण में नहीं। शिवाजी का राज्य तो महाराष्ट्र की प्रजा के हृदय पर भी है और बाहर भी।

रोशन आरा—[लज्जापूर्वक] तो क्या शिवाजी के राज्य में यवन लोग भी प्रसन्न रहते हैं ?

शिवाजी—सारी प्रजा समान रूप से प्रसन्न है। शासन के समय जाति नाम आदि का उल्लेख आवश्यक नहीं होता।

रोशन आरा—तो फिर मुझे क्यों अपहृत किया गया ?

शिवाजी—आप किसी बलात्कार का भय न करें। रक्त की अनेक धाराओं से भगवती वसुन्धरा को स्नान कराया जा चुका है, युद्ध में मारे गये सैनिकों की अनेक स्त्रियाँ रोने के लिए विवश की जा चुकी हैं, अतः शायद आपके सहारे आपके पिता से सन्धि हो सके, यही सोचकर सन्धि के

नैतद् मौद्गल-राज्यम्; यत्र प्रजानामपि भवेद् बलात्कार-साध्वसम्। अत्र तु महाराष्ट्राणां राज्यम्; यत्र परिपन्थिनामपि युवजन-मनो-मोहनेनातिमधुरेण कौमारात् परेण वयसाऽऽलिङ्गिता अपि सौन्दर्य-सार-विरचिता इवापि दुहितरः सम्मान्यन्ते, न त्ववहेल्यन्ते। अत्रभवत्येवात्र प्रमाणम्।

रस०—[तदाकर्ण्य शिरो नमयित्वा, अपाङ्ग क्षिप्त-लोल-तारकेण लोचनेन शिव-मुखमसकृदीक्षमाणा, उरोजयोः संसदिव वसन पुनः स्कन्धयोः क्षिप्त्वा]

बलात्कारात् साध्वसम् = भीतिः। परिपन्थिनाम् = लुण्ठकानाम्। युवजनमनोमोहनेन = नवयवकचेतस्समाकर्षकेण। कौमारात्परेण = यौवनेन। आलिङ्गिताः = आश्लिष्टाः। नवयुवत्य इति यावत्। सौन्दर्यसारविरचिताः = लावण्यतत्त्वनिर्मिताः, दुहितरः = कन्यकाः। अवहेल्यन्ते = तिरस्क्रियन्ते। अत्रभवती = माननीया। अत्र = अस्मिन् विषये। अतो न पौनरुक्त्यम्। प्रमाणम् = प्रमाकरणम्। मदुक्तिसत्यतासाधकमिति यावत्।

अपाङ्गे=नेत्रप्रान्ते, क्षिप्ता=प्रेरिता, लोला = चञ्चला, तारका = कनीनिका, यस्य तेन, लोचनेन = नयनेन। असकृत् = अनेकवारम्। ईक्षमाणा = अवलोकयन्ती। उरोजयोः = स्तनयोः। संसदिव = स्खलदिव। इवेन न स्वयं वक्षस्स्खलनमपि न् शिवासक्तिसूचनाय रसनयैव पातितमिति ध्वनितम्। स्कन्धयोः = अंसयोः। क्षिप्त्वा = अस्तव्यस्तं संस्थाप्य। "फेंक कर" इति हिन्दी।

लिए प्रयत्न करने के लिए मङ्गलमयी आप यहाँ लाई गई हैं। यह मुगल-साम्राज्य नहीं है; जहाँ प्रजा को भी बलात्कार का भय रहे। यहाँ मराठों का राज्य है जहाँ युवकों के मन को मुग्ध करने वाले अत्यन्त मधुर यौवन से आलिङ्गित मानों सौन्दर्य के सार से बनी शत्रु की भी लड़कियाँ सम्मानित की जाती हैं, उनकी अवहेलना नहीं की जाती। इस सम्बन्ध मे आप ही स्वयं एक प्रमाण हैं।

रोशन आरा—[ यह सुनकर, सिर झुकाकर, जिनकी चञ्चल पुतलियाँ

अथ क्वासौ महाराष्ट्र-राजो मोदित-सकल-समाजो रणधीरः शिववीरः ? तं दिदृक्षत एष जनः।

शिव०-[ समुत्थाय ] एषोऽत्र भवत्याः सम्मुख एव बद्धकरसम्पुट उपतिष्ठते शिवः, तदाज्ञाप्यतां काचन सेवा।

रस०-[ ससम्भ्रममुत्थाय ] आ ! एवमेतत् ? अपि श्रीमानेव महाराष्ट्रराजः, यो मामेवं धृष्टवादिनीं मनोरमैर्नम्रालापैर्लज्जयते ? उपविश्यतामुपविश्यताम्। मनसाऽप्यकल्पनीयोऽयमीदृशः स्वभावः, यत् सपत्नोऽप्यादरेष्वेव सयत्नो भवान्।

---

मोदितसकलसमाजः = प्रसन्नीकृतसमस्तजनसमूहः। दिदृक्षते = द्रष्टुमिच्छति।

धृष्टवादिनीम् = धाष्टर्येन भाषमाणाम्। मनोरमैः = चेतोहरैः। नम्रालापैः = कोमलभाषणैः। लज्जयते = लज्जिता करोति। अकल्पनीयः = अननुमेयः। सपत्नः = अरिः। आदरेषु = सम्मानेषु। सयत्नः = सश्रमः।

---

कोनों में जा लगी थीं ऐसे नेत्रों से शिवाजी के मुख को बार बार देखती हुई, स्तनों से सरकते हुए से वस्त्र को पुनः कन्धों पर डालकर ] अच्छा, समस्त प्रजा को प्रसन्न करने वाले महाराष्ट्र के राजा रणधीर शिवाजी कहाँ हैं ? मैं उन्हें देखना चाहती हूँ।

शिवाजी—[ उठकर ] यह आपके सामने ही हाथ जोड़े शिवाजी सेवा में उपस्थित है, कोई सेवा का आदेश दीजिए।

रोशन आरा—[ घबराहट के साथ उठकर ] अहा ! ऐसी बात है ! क्या आप ही महाराष्ट्र के नरेश हैं जो उच्छृङ्खलता पूर्वक बोलने वाली मुझको मनोरम, नम्र वचनों से लज्जित कर रहे हैं। बैठिए-बैठिए, ऐसा स्वभाव तो मन से भी नहीं सोचा जा सकता कि मेरे शत्रु होते हुए भी आप मेरे सम्मान के लिए सचेष्ट हैं।

ततः परमुपविष्टयोर्मुहूर्तं यावद् बहव आलापास्तयोः परस्परं चकितयोर्मुदितयोरनुरक्तयोश्चाभूवन् ।

अथ समार्दवं तदनुमतिमासाद्य, सिंहदुर्गं प्रति निवर्तमानो मार्ग एव महता हिमगिरि-खण्डेनेव कर्पूर-पूर-निर्मितेनेव चन्द्र-चन्द्रिका-चय-रचितेनेव मूर्तेनेव महाराष्ट्र-यशसा दुग्ध-धवलेन घोटकेन धावमानः, कतिभिश्चन सप्रसाद-नयनैरुत्साहमिव वमद्भिः, प्रत्यर्थि-प्रतापमिवारुण-रश्मिबन्धं सव्येन करेण वशयद्भिः, निज-

---

चकितयोः = साश्चर्ययोः । मुदितयोः = प्रसन्नयोः । अनुरक्तयोः = अन्योन्यासक्तिमतोः । सर्वत्राऽत्र 'पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषो बोध्यः ।

समार्दवम् = सकोमलतम् । हिमगिरिखण्डेनेव = प्रालेयाचलांशेनेव । कर्पूरपूरनिर्मितेनेव = हिमवालुकाधूलिरचितेनेव । चन्द्रचन्द्रिका-चय-रचितेनेव = शशाङ्कदीधितिनिकरनिर्मितेनेव । दुग्धधवलेन = पयःश्वेतेन । सप्रसादनयनैः = प्रसन्ननेत्रैः । वमद्भिः = उद्गिरद्भिः । प्रकटयद्भिरिति यावत् । प्रत्यर्थिप्रतापमिव = शात्रवतेज इव । अरुणम् = ईषद्रक्तम्, रश्मिबन्धम् = प्रग्रहम् । सव्येन = वामेन । वशयद्भिः = स्वायत्तीकु-

---

उसके बाद दोनों के बैठ जाने पर क्षण भर चकित, प्रसन्न तथा अनुरक्त उन दोनों की परस्पर बहुत सी बातें हुईं ।

तदनन्तर रोशन आरा से विनम्रता पूर्वक अनुमति लेकर सिंहदुर्ग को लौटते हुए शिवाजी ने मार्ग में ही हिमगिरि के टुकड़े के समान, कर्पूर के समूह से बने हुए से, चन्द्रमा की चाँदनी के पुञ्ज से निर्मित किए गए से, मराठों के मूर्तिमान यश के से, दुग्ध के समान सफ़ेद घोड़े पर सवार, प्रसन्नता भरी आँखों से उत्साह उगलते हुए से; शत्रु के प्रताप की सी लाल लगाम को बाँये हाथ से नियन्त्रित किए हुए; अपनी विजयपताका के समान धीरे धीरे हिलने वाले चाबुक के अग्रभाग से घोड़ों को हिनहिनाने

विजय-ध्वजेनेव मन्दमाघूर्णमानेन कशाग्रेण हयान् हेपयद्भिः, कटितट-विलम्बि-विलोल-करवालैरुष्णीष-पर-प्रान्त-दोदुल्यमानानिल-बल-विलोल-वाल-जालैः सादिभिरनुगम्यमानो माल्यश्रीकः समागच्छन्नालोकि। समीपमागतास्ते सर्वे 'जय जीव!' इत्युच्चैः शिवराजमाचाराशीराशिभिः सममानयन्। माल्यश्रीकस्तु-"विजयतां श्रीमान्! प्रतिहतममङ्गलम्, हता परिपन्थिनः"-इत्युदीर्य किञ्चन रहस्य निवेदनीयं न्यवीविदत्।

अथ शिवेङ्गितमासाद्य सर्वेष्वश्वारोहेषु धनुषां विंशत्यामिव

घैद्भिः। पुष्टतया गच्छद्भिरिति यावत्। निज-विजय ध्वजेनेव = स्वजयवैजयन्त्येव। आघूर्णमानेन = चञ्चलता। कशाग्रेण-अश्वताडनीप्रान्तेन। "अश्वेस्ताडनी कशा" इत्यमरः। हेपयद्भिः = हिणकार कारयद्भि। कटितटविलम्बि-विलोल-करवालैः = मध्यभागावलम्बिचञ्चलचन्द्रहासैः। उष्णीषपरप्रान्ते = शिरोवेष्टनद्वितीयाञ्चले, दोदुल्यमानस्य = अतिशयेनोड्डीयमानस्य, अनिलस्य = वायोः, बलेन विलोलानि = चञ्चलानि, वालजालानि = केशवृन्दानि, येषान्तैः। आलोकि = दृष्टः। प्रतिहतम् = विध्वस्तम्। अमङ्गलम् = अशुभम्। न्यवीविदत् = अबोधयत्।

शिवेङ्गितम् = शिववीरचेष्टाम्। धनुषां विंशत्यामिव = प्रायो विंश-

के लिए प्रेरित करते हुए, कमर में चञ्चल तलवारों को लटकाए, तथा पगड़ी की दूसरी ओर उड़ने वाले, पवन के वेग से चञ्चल केश समूहों वाले, कुछ अश्वारोहियों से अनुगत माल्यश्रीक को आते हुए देखा। समीप आने पर अश्वारोहियों ने जोर से, 'जय जीव!' कहकर शिवाजी को आचारानुकूल आशीर्वादों से सम्मानित किया, और माल्यश्रीक ने "महाराज की जय हो, अमङ्गल का नाश हुआ और शत्रु मारे गए" यह कहकर निवेदन किया कि कुछ रहस्य की बातें बतानी हैं।

अनन्तर शिवाजी का संकेत पाकर सभी अश्वारोहियों के, लगभग बीस धनुष की दूरी पर मण्डल बनाकर धीरे धीरे घोड़े की गर्दन थपथपाते हुए

दूरतः कृतमण्डलेषु, मन्दमन्दं तुरग-निगालास्फोटन-पुरस्सरं प्रचलत्सु, शिवस्य वामतः शनैः स्वमश्वं चालयन् मन्दं मन्दमगादीन्माल्यश्रीकः।

माल्यश्रीकः—[ जनान्तिकम् ] न्यवेदयमेव ह्यो रात्रौ श्रीमच्चरणेषु यत् पुम्पमय पारावार-प्रवाहमिव सह नयन् दिल्लीकलङ्कस्यावरङ्गजीवस्य तनयो मायाजिह्वो महाराष्ट्रैः सह योद्धुमायातीति।

शिव०—आम्! ततः परमुच्यताम्!

माल्य०—स त्वितो गव्यूति-सप्तकान्तराल एवोपकार्य्याः समासज्यावसरं प्रतीक्षमाण आसीत्।

---

तिषु परिमितप्यामिव। कृतमण्डलेषु = विहितपरित स्थितिषु। वर्तुलकारेणावस्थितिष्विति यावत्। तुरगनिगालास्फोटनपुरस्सरम् = अश्वगलोद्देशास्फालनपूर्वकम्। जनान्तिकम्—

'त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तिके जनात्।

अन्योन्यामन्त्रणं यस्माद् जनान्ते तज्जनान्तिकम्॥' इत्युक्तम्।

पुम्पमयम् = मानवप्रचुरम्। पारावारप्रवाहमिव = सिन्धुधारामिव। मायाजिह्वः="मुल्तान मुआजिम" इति प्रसिद्धः।

गव्यूतिसप्तकान्तराले = चतुर्दशक्रोशमध्ये। उपकार्य्याः = शिविराणि। समासज्य=सम्यगारोप्य। प्रतीक्षमाणः = प्रतीक्षां कुर्वन्।

---

चल देने पर, माल्यश्रीक शिवाजी की बाईं ओर अपना घोड़ा बढ़ाते हुए धीरे धीरे कहने लगे।

माल्यश्रीक[जनान्तिक में] मैंने आप के चरणों में कल रात्रि में निवेदन किया ही था कि मनुष्यों का महासागर सा साथ लेकर दिल्ली-कलङ्क औरङ्गजेब का लड़का 'मुल्तान मुआजम' मराठों से युद्ध करने के लिए आ रहा है।

शिवाजी—हाँ, उसके बाद कहिए।

माल्यश्रीक—वह यहाँ से चौदह कोस की दूरी पर ही शिविर लगाकर अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था।

शिव०—आसीदस्ति वा ?

माल्य०—प्रभो ! आसीदेव, सम्प्रति तु श्रीमच्चरणानां वशंवदः सञ्जातः—इति विशकलय्य निवेद्यते ।

शिव०—[ सप्रसाद हसन्निवाऽऽकाशे दृष्टिं बद्ध्वा ] अहह ! अरे रे ! अवरङ्गजीव ! महाराष्ट्रान् वञ्चयितुमिच्छसि ? न वेत्सि अस्मदीया बाला अपि त्वादृशांस्तृणाय मन्यन्ते । [ माल्यश्रीकाभिमुखम् ] अपि सत्यं निगृहीत एषः ?

माल्य०—महामान्य ! कोऽत्र संशयः ? स भवान्; यस्य प्रतापो नृसिंहस्य सटाम्, कपर्दिना जटाम्, फणिराजस्य स्फटां च स्पृशन् जाज्वल्यते ।

---

हसन्निव=हासं कुर्वन्निव । महता हासो नोग्रतामाश्रयतीति ध्वननायेतीवाभिधानम् । तृणाय, 'मन्यकर्मण्यनादरे' इति चतुर्थी ।

प्रतापः=तेजः । नृसिंहस्य=हिरण्यकशिपुहन्तुरवतारविशेषस्य । सटाम्=केसरम् । कपर्दिनः=शिवस्य । 'उग्रः कपर्दी' इत्यमरः । फणिराजस्य=शेषस्य । स्फटाम्=फणाम् । भवान् मुहुरत्यधिप्रताप इति यावत् ।

---

शिवाजी—था या है ?

माल्यश्रीक—महाराज ! था है, इस समय तो आपके आधीन है; यही विस्तार पूर्वक निवेदन कर रहा हूँ ।

शिवाजी—[ प्रसन्नता से हँसते हुए से आकाश की ओर देखकर ] अहा ! अरे ! औरङ्गजेब ! मराठों को धोखा देना चाहते हो ! नहीं जानते कि हमारे बच्चे भी तुम जैसों को तिनका समझते हैं, [ माल्यश्रीक की ओर देखते हुए ] क्या सचमुच उसे कैद कर लिया गया ?

माल्यश्रीक—महामान्य ! इसमें सन्देह क्या है ? आपका प्रताप नृसिंह की सटा ( केसर ), भगवान शङ्कर की जटा तथा शेष नाग की फना को स्पर्श करता हुआ जल रहा है ।

शिव०—अथ विशकलय्य क्रमतः कथ्यताम् ।

माल्य०—आर्य्य ! विनिवेदयामि भूतार्थम् । मायाजिह्न एष लम्पटराजस्य पुत्रः–इति कथं नानुहरेत्स्वपितरमिति महाराष्ट्र-देशे आगतमात्र एव "एतद्देशीयाः कीदृश्यो वारवनिता ? कीदृश आसां वेष ? कीदृशं गानम् ? कीदृक्च नृत्यम् ?–" इति लाम्पट्य-गर्भमभिलाषं प्रकटितवान् ।

शिव०—ततस्ततः ।

वृत्तान्तममुं पाञ्चसाहस्त्रिको गौरसिंहः समाकर्ण्य मायाजिह्ने मायां रचितवान् ।

शिव—आचार्य एष माया–कल्पनेषु । ततस्ततः ।

---

विशकलय्य-विविच्य ।

भूतार्थम् = व्यतीत सत्य वस्तु । लम्पटराजस्य = परस्त्रीलोलुपाधिनाथस्य । नानुहरेत्=नानुकुर्यात । वारवनिता = वेश्या । वेष = नेपथ्यम् । लाम्पन्न्यगर्भम्=परस्त्रीलोलुपताभिभम् ।

पाञ्चसाहस्त्रिकः=शरसहस्त्रसेनापतिः । पञ्चसहस्रभटाध्यक्ष इति यावत् ।

---

शिवाजी—तो विस्तार पूर्वक कहिए !

माल्यश्रीक—महाराज ! घटित हुए वृत्तान्त को बता रहा हूँ । यह मुआजिम, लम्पटों के सरदार ( औरङ्गजेब ) का पुत्र है, अतः अपने पिता का अनुसरण क्यों न करे ! इसलिए महाराष्ट्र में आते ही उसने, यहाँ की वेश्याएँ कैसी हैं ? उनका वेष कैसा होता है ? उनका संगीत और नृत्य कैसा होता है ? इस प्रकार की लम्पटता पूर्ण जिज्ञासा व्यक्त की ।

शिवाजी—उसके बाद ?

इस वृत्तान्त को सुनकर पाँच हजार अश्वारोहियों के सेनापति गौरसिंह ने मुआजिम पर माया जाल फैलाया ।

शिवाजी—वह तो कपट रचना म पण्डित है ही , उसके बाद ?

माल्य०—प्रभो ! गौरः प्रकृत्यैवातिसुन्दरः, तत्रापि दिवाकीर्ति-माहूय मसृणमुखः सवृत्य, अधररागमञ्जन-रञ्जन वारवधू-योग्यमाभरण-जात प्रच्छद-पट च धारयित्वा, पटवास-वासित-दिगन्तरः, रति-प्रतिकृतिरिव स्मितैः कटाक्ष-क्षेपैः, मधुर वचनैः, सजघनकम्प पाद-क्षेपैः, सकृत्रिम-कुच वेपन-वलित-वलि-भङ्ग-ललित-कञ्चुकिका-दर्शनै, यूनां मनो मन्मथोन्मथित विदधत्, ब्रह्मचारि-कुटीर

दिवाकीर्तिम् = नापितम्। एतद्वाचकशब्दाना रात्रौ नोच्चारण कार्यमन्यथा मरणाशौचागत इति मैथिलेषु प्रसिद्धि । सा चैतदभिधानमूलिका मृषा चेति वेदितव्यम्। मसृणमुखः = चिक्कणानन । सवृत्य=मूत्वा । अधररागम् = ओष्ठलौहित्यकारक रञ्जनद्रव्यम्, अञ्जनरञ्जनम् = कज्जलेन शोभासम्पादनम्, अक्ष्णोरिति शेषः। प्रच्छदपटम् = आवरकवस्त्रम्। पटवासवासित-दिगन्तरः=वसनसौगन्ध्यसुरभितहरिदन्तरालः । रतिप्रतिकृतिरिव=कामपत्नीप्रतिमूर्तिरिव । स्मितैः=ईषद्धास्यैः। कटाक्षक्षेपैः-भ्रूभङ्गप्रचालनैः । मधुरवचनैः=कोमलभाषणैः । सजघनकम्पपादक्षेपैः=जघनक्षेपनपुरस्सरमभिन्यासैः । कृत्रिमयोः = निर्मितयोः, कुचयोः, वेपनेन = कम्पेन, वलितैः = उपचितैः, वलिभङ्गेन = त्रिवलीभङ्गेन, ललितैः = सुन्दरैः, कञ्चुकिकादर्शनैः = चोलिकाप्रकटनैः । मन्मथोन्माथितम् = काममर्दितम्। विदधत्-कुर्वाण, अत्र तम् 'नाभ्यस्ताच्छतु' इति न नुम्। परिवर्तितवेषैः =

माल्यश्रीक-महाराज ! एक तो गौरसिंह स्वभावतः ही अत्यन्त सुन्दर है, उस पर भी उसने नाई को बुलाकर ( दाढ़ी मूँछ बनवाकर ) चिकने मुख वाला बनकर, अधरों पर लाली लगाकर, नेत्रों में काजल डालकर, वेश्या के योग्य सभी आभूषण धारणकर, तथा चादर ओढ़कर, वस्त्रों की सुगन्धि से दिशाओं को सुरभित करते हुए, मूर्तिमती रति के समान, मुस्कान, कटाक्षविक्षेप, मधुर वाणी द्वारा तथा जघनों को हिलाने के साथ चरणन्यास करते हुये कृत्रिम स्तनों को कँपाने के साथ ही साथ हो

वासि-सन्यासिनामेव परिवर्तितवेषैः, कैश्चित् कलितमृदङ्गैः, अपरैस्तानपूरिका-ताल-झर्झर-करैः, अन्यैर्व्यजन-पतद्ग्रह-ताम्बूलकरङ्क-मञ्जीर-पोटलिकादि वाहकैः, इतरैश्च पञ्चषैः कलित-दासीरूपैरनुगम्यमानः सौवर्णप्रच्छदाच्छन्नामतिरमणीयामेकां शिबिकामारुह्य, धीरैरेवाऽऽकलित भारवाह-वेषैरुह्यमानः, तदीय शिविर-मण्डलमासाद्य 'पद्मिनीनाम्नी जगत्प्रसिद्धा महाराष्ट्र-देशीया वाराङ्गना समागच्छति"–इति समसूसुचत्।

नर्वाङ्गवनेपथ्यैः। कलितमृदङ्गैः = धारितमृदङ्गैः। व्यजनम् = तालवृन्तकम्, पतद्ग्रहः = निष्ठ्यूतग्रह.। ताम्बूलकरङ्कम् = ताम्बूलाधारपात्रम्, "पान डब्बा" इति हिन्दी, मञ्जीरपोटलिका = "घुँघुरुओं की पोटली" इति हिन्दी, इत्यादीनां वाहकैः = धारकैः, भृत्यैः। पञ्चषैः=पञ्चभिः षड्भिर्वा। कलित दासीरूपैः=गृहीतभृत्यानेपथ्यैः। सौवर्णेन = हैरण्येन, प्रच्छदेन=आच्छादनपटेन, "ओहार" इति हिन्दी, आच्छन्नाम्=परितः पिहिताम्। आकलित भारवाह-वेषैः= धारितशिबिकोद्वाहकनेपथ्यैः। उह्यमानः = नीयमानः। वाराङ्गना = गणिका। समसूसुचत् = समबूबुधत्।

गए त्रिवलिभङ्ग से सुन्दर लगने वाली कञ्चुकी को दिखा-दिखाकर युवकों के मन को कामोन्मत्त करते हुए, मृदङ्ग धारण करने वालों, तानपूरा, करताल, झाँझ, पंखा, पिकदान, पानदान, घुँघरू की पोटली आदि ले चलने वालों एवं दासियों का वेश धारणकर पीछे पीछे चल रहे ब्रह्मचारियों की कुटियों में रहने वाले कुछ सन्यासी वीरों के द्वारा अनुगत, कहारों का वेश धारण किये हुए मराठा सैनिकों द्वारा वहन की जा रही, सुनहली चादर से ढकी हुई एक अत्यन्त सुन्दर पालकी में बैठकर, सुआज़िम के शिविर के पास पहुँच कर, उसके पास यह सूचना भेजी कि पद्मिनी नाम की महाराष्ट्र देश की विश्वविख्यात वेश्या आ रही है।

शिव०—ततः।

माल्य०—ततो नामश्रवणमात्रेण पुलकितः प्रफुल्लितः स्विन्नः आनन्दितश्च मायाजिह्मः रङ्ग-शिविरं प्रवेष्टुमादिदेश।

शिव०—रङ्ग-शिविरम्?

माल्य०—प्रभो! लम्पटानां शिविर सन्निवेशेषु रङ्ग शिविरमपि भवति, यत्र केवलं दुरोदर वा वारवधू विलासो वा नर्मशर्माणि वा पान-परम्परा वा भवति। तत्र न सर्वेऽपि निविशन्ते, किन्तु केचिदेवात्यन्तमन्तरङ्गैर्विषय-भोग भाजो भवन्ति भट्टारकाः।

शिव०—एवम्! ततः किमभूत्?

---

पुलकित = सरोमाञ्चः। प्रफुल्लितः = विकसित। स्विन्नः = आर्द्रवपुः। आनन्दितः=प्रसन्नीकृत। रङ्गशिविरम्=नृत्योपकार्याम्।

शिविरसन्निवेशेषु=सेनानिवेशदेशेषु। दुरमुदर दुरोदरम्=द्यूतम्। नर्मशर्माणि = हास्यादिसुखानि। पानपरम्परा=मद्यपानाभ्यास। भट्टारका =अधिपतय सेनादीनाम्, लघुराजा वा 'राजा भट्टारको देव 'इत्यमर।

---

शिवाजी—तब?

माल्यश्रीक—तदनन्तर पद्मिनी का नाम सुनकर ही रोमाञ्चित, खिले हुए, पसीने से भीगे हुए तथा प्रसन्न मुआजिम ने रंगशाला में प्रवेश करने का आदेश दिया।

शिवाजी—रङ्गशाला?

माल्यश्रीक—महाराज! लम्पटों के सैन्यशिविर में रङ्गशाला भी होती है, जहाँ केवल जूआ, वेश्या के साथ विलास, हँसी मजाक या मद्यपान ही होता है। वहाँ सभी नहीं जा सकते, अपितु कुछ अत्यन्त अन्तरगों के साथ अधिकारी ही विषयोपभोग के सुख का अनुभव करते हैं।

शिवाजी—ऐसा! फिर क्या हुआ?

माल्य०—आर्य ! तन्निदेशेन रङ्गशाला द्वारि शिविकामास्थाप्य सह सर्वैरनुचरैरन्तः प्रविवेश पद्मिनी। तत्रैकत्राऽऽस्तीर्णा वितस्त्युच्छ्राया कनक-सूत्रमयी तूलिका। तदुपरि स्थापितास्तादृशा एव त्रय उपबर्हाः। सम्मुखतः सौवर्णे वर्तुलास्तरणे सुसज्जितं प्रलम्ब-नलं कटु-मधुरामोदामोदित-दिगन्तरं धूमपानयन्त्रम्। एकतो राजत-पीठिकायां विन्यस्तानि, अन्तःस्थ-रक्त-पीतारुण द्रवाभा-भार धारा-स्नपितास्तरणानि, मध्यस्थ-दीप-द्योत-द्योतित-दीप्ति-

आस्थाप्य=सस्थाप्य। अनुचरैः, साकमिति शेषः। वितस्त्युच्छ्राया=हस्तार्धोच्छ्रिति। वितस्तिः="बित्ता" इति हिन्दी। कनकसूत्रमयी=सुवर्णतन्तुशिल्पसमेता। तूलिका="गद्दी" इति हिन्दी। उपबर्हाः=उपधानानि। वर्तुलास्तरणे=गोलमञ्चिकाविष्टरे। प्रलम्बनलम्=दीर्घधूमाकर्षकम्। कटुमधुरामोदमोदितदिगन्तरम्=अतिमिष्ट-सुगन्धिसुरभितहरिदन्तरालम्। राजतपीठिकायाम्=रौप्यपीठे। अन्तस्थानाम्=अन्तर्वर्तमानानाम्, रक्तपीतारुणद्रवाणाम्, अर्थात्तत्तद्वर्णाना सुराणाम्। आभायाः=भासः, भारधारया=गुरुतरस्रोतसा। स्नपितानि=क्षालितानि, तत्तद्रागरञ्जितानीति यावत्, तद्गुणालङ्कारः। आस्तरणानि=वर्तुलाच्छादनवसनानि यैस्तानि। मध्यस्थदीपद्योतेन=अन्तरालस्थापित दीपप्रकाशेन, द्योतितः=प्रकाशितः, यो दीप्तिप्रचयः=रश्म्यच्छविसमूहः,

माल्यश्रीक—महाराज ! उसके आदेश से पद्मिनी ने रङ्गशाला के द्वार पर पालकी रखवाकर सभी अनुचरों के साथ भीतर प्रवेश किया। वहाँ एक ओर एक बालिश्त ऊँची तोशक बिछी थी, जिस पर सोने की जरी का काम था। उसके ऊपर वैसे ही तीन मसनद रखे हुए थे। सामने सोने की वर्तुलाकार मेज पर लम्बी नली वाला कड़वी एवं मधुर गन्ध से दिशाओं को सुरभित करने वाला हुक्का रखा था। एक ओर चाँदी की चौकी पर शराब की बोतलें रखी थीं। उन बोतलों के भीतर भरी हुई लाल, पीली और गुलाबी मदिरा से निकल रही कान्ति की (स्थूल) धारा आस्तरण (बिछौने) को स्नान करा रही थी (रंगीन कर रही थी)। वे बोतलें बीच में रखे

प्रचय-विहित-बहुल-चाकचक्यानि, अधोमुख-विन्यस्त-विविध-काच-चषक-वृत्तानि माध्वीक-मैरेय-जगल-वारुण-परिपूरितानि, ऊर्ध्वमुखानि काचपात्राणि, परितोऽष्टापद-रचितमष्टापदम्, रत्न-निर्मिताः शारिवाटिकाः, दन्ति-दन्त-सार-रचिताः पाशकाः, परितो विलम्बमानेषु नानावर्ण-काच-कुसुम-स्तवकेषु ज्वलन्त. शतशो दीपाः,

तेन विहितम् = सम्पादितम्, बहुलम् चाकचक्यम् = चमत्कृतिर्येषु तानि । अधोमुखानि = निम्नाननानि, विन्यस्तानि = स्थापितानि, विविधानि = अनेकानि, काच-चषक-वृत्तानि = काचनिर्मित पान भाजनानि । माध्वीकम् = मधूकपुष्पजात मद्यम्, मैरेयम् = "मीरा" नामकौषधनिर्मित आसव., जगलः = मद्यकल्कः, "मेदको जगलः समौ" इत्यमरः, वारुणी = सुरा, एताभिः परिपूरितानि = भरितानि । ऊर्ध्व-मुखानि = उन्मुखानि, काचपात्राणि = वर्तुलानि, "बोतल" इति हिन्दी । अष्टापदेन = सुवर्णेन, रचितम् = निर्मितम् । अष्टापदम् = पाशक्रीडार्थ-शारिकाधारस्वरूप चतुष्कोटीनामक वसनम् । 'चौसर" इति हिन्दी । शारिवाटिकाः = पाशकप्रक्षेपार्थं निर्मितानि कोष्ठकानि । दन्तिदन्त-साररचिताः = करिदशनमध्यनिर्मिताः, पाशकाः = 'पासा' इति हिन्दी । विलम्बमानेषु = अधोमुखेषु स्थितेषु । नानावर्णानाम्, काचानाम्, कुसुमस्तवकेषु = कुसुमचित्रितगुच्छवदवभासमानेषु । व्यजनयुजः =

हुए दीपक की ज्योति से फैल रहे प्रकाशपुञ्ज से अत्यधिक चकाचौंध उत्पन्न कर रही थीं, और उनके चारों ओर औंधे मुँह करके रखे गए विभिन्न प्रकार के [ शराब पीने के उपयोग में आने वाले ] काँच के प्याले रखे हुए थे। उन बोतलों में माध्वीक, मैरेय, जगल और वारुणी भरी थी तथा उनका मुँह ऊपर की ओर था। चारों ओर सोने की बनी हुई चौसड़ और उसके रत्नमय कोष्ठ ( खाने ) और हाथीदाँत के बने हुए पाँसे थे। चारों ओर लटक रहे अनेक रंगों के झाड़-फानूसों में सैकड़ों दीप जल रहे थे और दोनों में पंखे लिए हुए नौकर चुपचाप खड़े थे।

कोणेषु तूष्णीं स्थिता व्यजनयुजो भरण्यभुजश्चाऽऽसन् ।

शिव०—ओम् !

माल्य०—तत्र प्रविश्यैकतः स्थित्वा किञ्चित्प्रतीक्षमाणायामेव पद्मिन्याम्, झटिति द्वित्रैर्वयस्यैर्वृतः, ताम्बूल–चर्वण–चञ्चल–रदन–वदनः, विस्फारिताभ्यामिव नयनाभ्यां पिबन्निव, विविध-परिमल-परिमर्दिताग्रया घोणया जिघ्रन्निव च मायाजिह्मः प्रविश्य पद्मिनी-दत्त-दृष्टिरेव तूलिकामलञ्चकार ।

अथ ताम्बूल–परिमलैला–लवङ्ग–पत्रक–पटवास–दानादानैरेव कियन्तं समयमतिवाह्य, महासं सस्मितं सानुरागं सकटाक्ष-विक्षेपणं सभ्रूभङ्ग-सन्धरा-परिवर्त्तनं च पद्मिन्या सहाऽऽलप्य, मुहूर्त

तालवृन्तकराहिनः । भरण्यम् = वेतनम्, भुञ्जते इति भरण्यभुजो वेतनिककर्मकराः । 'भरण्यभुक् कर्मकरः" इत्यमरः ।

वयस्यैः = समानावस्थामैत्रैः । ताम्बूलचर्वणे = वीटिकास्वादने, चञ्चलाः = चपलाः, रदनाः = दन्ताः यस्य तादृश वदनं यस्येति बहुव्रीहि-गर्भितबहुव्रीहिः । अथवा रदनाः वदनं च यस्येति केवलो बहुव्रीहिर्वा । विविध-परिमल परिमर्दिताग्रया=नानासौरभपरिमथितप्रान्तया । घोणया = नासिकया । पद्मिनीदत्तदृष्टिः = पद्मिनीनिरीक्षणनिरतः ।

शिवाजी—हाँ !

माल्यश्रीक—तदनन्तर पद्मिनी के अन्दर जाकर एक ओर बैठकर कुछ ही देर तक प्रतीक्षा करने के बाद शीघ्र ही दो तीन साथियों के सहित, ताम्बूल चर्वण के कारण चञ्चल दाँतों से युक्त मुख वाले मुआज़िम ने पद्मिनी को विस्फारित नेत्रों से पीते हुए से, विभिन्न सुगन्धों ( इत्र आदि ) से अनुलिप्त अग्रभाग वाली नासिका से सूँघते हुए से, प्रवेश किया और उस पर आँख गड़ाए हुए ही, तोशक को अलंकृत किया ( बैठ गया ) ।

तदनन्तर मुआज़िम ने ताम्बूल, इत्र, इलायची, लवङ्ग, पत्ती सुगन्धित चूर्ण इत्यादि के आदान-प्रदान में ही कुछ समय व्यतीत कर हँसते-मुस्कराते, अनुराग दिखाते, कटाक्ष-पात करते, भौंहों को टेढ़ी करते तथा

ससाधुवादं तद्गानानन्दं चानुभूय, पारितोषिकं निजकण्ठहारं समर्प्य, रजन्याः प्रथम-प्रहर-व्यत्यय-सूचकं समुरलीरणनं भेरी-नादमाकर्ण्य, सहचरान् विसृज्य, एकाकी संवृत्य, किञ्चित् समीप-मुपसृत्य शनैः पद्मिनीं पान गोष्ठी सहचार-स्वीकार-भिक्षां ययाचे। सा च स्मयमानेव लज्जमानेव ग्रीवा भङ्गमवनत-मुखी, कपटह्रिया स्वयं स्वस्मिन्नेव निविशमाना, तूर्णीङ्कारेणैवाङ्गीकारमाचक्षाणा चूर्णकुन्तल-मूलं कण्डूयितुमारेभे।

शिव०—ततः ?

---

ससाधुवादम्='साधु गीतम्' इत्यादिकथनपुरस्सरम्। पारितोषिकम्=प्रसन्नेन सता दीयमानम्। प्रथम-प्रहर-व्यत्यय सूचकम् = आदिमयामसमाप्ति-बोधकम्। एकाकी = अद्वितीय। संवृत्य = भूत्वा। पानगोष्ठीसहचारस्वीकारभिक्षाम् = मद्यसमाजसम्मिलनाङ्गीकरणयाञ्चाम्। स्मयमानेव= ईषद्धास्यनिरतेव। ग्रीवास्वत्यादिवोक्तिः। कपटह्रिया = कृत्रिमत्रपया। तूर्णीङ्कारेणैव = मौनेनैव, 'मौनं स्वीकारलक्षणम्' इति न्यायात्। आचक्षाणा = कथयन्ती। चूर्णकुन्तलमूलम् = कुटिलकेशमूलम्।

---

गर्दन घुमाते हुए पद्मिनी के साथ बातचीत कर कुछ देर तक उसके गीतों का आनन्द लेकर, उसके गीत की प्रशंसा करते हुए, पुरस्कार में अपने गले का हार सौंपकर, रात्रि के प्रथम प्रहर के बीतने की सूचना देने वाले मुरली की तान मिश्रित भेरी शब्द को सुनकर साथियों को विदा कर, अकेला होकर, कुछ पास पहुँचकर, धीरे से पद्मिनी से मदिरा पान की गोष्ठी में सम्मिलित होने की स्वीकृति की भिक्षा माँगी (शराब पीने में साथ देने का आग्रह किया)। वह भी मुस्कराती सी, लजाती सी, गर्दन टेढ़ी किए हुए, मुख नीचा किए बनावटी लज्जा से स्वयं अपने में ही समाती हुई, मौन से ही स्वीकृति की सूचना देती हुई अलकों के मूलभाग को खुजलाने लगी।

शिवाजी—तत्पश्चात् ?

माल्य०—ततो भ्रूभंगेन पद्मिनीसहचरानपि पुरुषान् द्वारदेशे प्रतीक्षितुमाख्याय, तेषु गतेषु, द्वित्रासु पद्मिन्याश्चेटिकास्वेव वर्त्तमानासु, मायाजिह्मो हाटकामत्रादुत्थाप्य पञ्चषा एलाः पद्मिन्याः करे आर्पयत्। साऽपि सखीहस्तादेकं रजत-सम्पुटमादाय, ततो वीटिका-द्वयं सुवासित पूग-चूर्णं ताम्रक-सार-लेहं च तस्मै प्रायच्छत्।

शिव०—साधितं पद्मिन्या। ततः ?

माल्य०—भगवन् ! स तु वीटिकामास्वादयन्नेव प्रेम-वार्ता विदधदेव, शनैः शनैस्तन्द्रा परवश इव, विनैव मैरेय-शराव-चुम्बनं मदपराधीन इव उपबर्हं पृष्ठेनाऽऽश्रयीकृत्य, शनैः शिरोऽपि तस्मिन् समासज्य निद्रापरवशोऽभूत्।

---

चेटिकासु = भृत्यासु। वर्तमानासु = तिष्ठन्तीषु। हाटकामत्रात् = सुवर्णपात्रात्। रजतसम्पुटम्=रौप्यनिर्मितं ताम्बूलाधारभाजनं लघुभूतम्। ताम्रकसारलेहम् = "किमाम" इति प्रसिद्धम्, ताम्बूलोपयोगिद्रव्यम्।

तन्द्रा = निद्रापूर्वरूपम्, आलस्यविशेषात्मकम्। मदपराधीन इव = मदवशग इव। तस्मिन्=उपबर्हे। समासज्य=संयोज्य।

---

माल्यश्रीक—तदनन्तर भ्रू के संकेत से ही पद्मिनी के सहायक पुरुषों को भी द्वार पर प्रतीक्षा करने के लिए कहकर, उनके चले जाने पर पद्मिनी का दो तीन दासियों के रह जाने पर मुआजिम ने स्वर्ण पात्र से पाँच छः इलायचियाँ निकाल कर पद्मिनी के हाथ में समर्पित की। पद्मिनी ने भी एक सखी के हाथ से चाँदी की पिटारी लेकर, उसमें से पान के दो बीड़े, सुगन्धित सुपारी का चूर्ण तथा किमाम मुआजिम को प्रदान किया।

शिवाजी—पद्मिनी ने काम बना लिया। फिर ?

माल्यश्रीक—महाराज ! वह पान का बीड़ा खाते खाते ही, प्रेमालाप करते-करते ही, धीरे धीरे आलस्य के वशीभूत हुआ सा, मदिरा का प्याला अधरों से लगाए बिना ही मतवाला सा, मसनद का सहारा लेकर, मसनद पर पीठ रखे हुए, कुछ देर बाद सिर को भी धीरे से उसी ( मसनद ) पर रखकर सो गया।

पद्मिनी तु मूर्छक-महौषध मिश्रितं किञ्चित् परिमलं नासापुटयोः संयोज्य तमधिकं मूर्छयित्वा, तस्य वस्त्राण्यपहृत्य स्वकीयेनांशुकेन तदङ्गमावृत्य, स्वयं च पोटलिकास्थेनापरेण दासीयोग्येन वाससा दासीभूय, बहुरूपविद्यया क्षणेन स्वाकृतिं तदाकृतिं च परिवर्त्य, मायाजिह्मपटैरुपबर्हमेकं सम्भृङ्गार्य शाययित्वा, उत्तरीयेण चैकत आच्छाद्य, चेटीभिः सह कलित-पद्मिनी वेषं मायाजिह्ममुत्थाप्य, बहिरानीय पश्यतामेव भ्रान्तानां द्वारपालानां – "अहो ! महानद्य विहितः सरकः, कादम्बरीयमतितीक्ष्णा, अवदंशमप्यास्वाद-

मूर्छकम् = मूर्छाजनकम्, यत् महौषधम् = श्रेष्ठौषधि, तन्मिश्रितम् = तत्सम्पृक्तम्। परिमलम् = सुगन्धिद्रव्यम्। अपहृत्य = दूरयित्वा। अंशुकेन = प्रावरकेण। वाससा। दासीभूय = दासीवेषभूषिता भूत्वा, बहुरूपविद्यया = अनेकस्वरूपधारणकलया। क्षणेन, एतेन तद्विद्यायामतिपाटवं बोधयति। परिवर्त्य=विनिमयं कृत्वा। उपबर्हम्=उपधानम्। संभृङ्गार्य = अलङ्कृत विधाय। शाययित्वा = प्रस्वाप्य। आच्छाद्य= सगोप्य। भ्रान्तानाम् = भ्रमे निपतितानाम्। द्वारपालानामित्यत्र 'षष्ठी चानादरे' इति षष्ठी। सरकः = सुरापानम्। कादम्बरी = वारुणी। अवदंशम् = भक्षणम्, 'अवदंशस्तु भक्ष्यम्' इत्यमरः, मद्येन सह

पद्मिनी ने इसकी नाक में मूर्च्छित करने वाली महौषधि से युक्त कोई सुगन्ध लगाकर उसको और अधिक मूर्च्छित कर उसके कपड़ों को उतार कर, अपने कपड़ों से उसे ढककर, तथा स्वयं पोटली में रखे हुए दासियों के योग्य वस्त्रों को धारण कर दासी का वेष बनाकर, वेषपरिवर्तन की विद्या से क्षणभर में ही उसकी तथा अपनी आकृति को बदल कर, उसके कपड़ों से एक मसनद को सजाकर, लिटाकर और एक चादर से एक ओर ढककर, दासियों के साथ, पद्मिनी का वेष बनाए मुआज्जिम को उठाकर बाहर लाकर, भ्रम में पड़े हुए द्वारपालों के देखते-देखते ही "अहा ! आज बहुत मद्यपान हुआ, यह शराब बहुत तेज़ है अधिक पी जाने के कारण भोजन का भी आनन्द नहीं

यितुं न पारयसि, प्रविश, शेष्व पालङ्क्यामेव"—इति सहचरीरालपन्ती शिविकायामतिष्ठिपत्।

एका चेटी द्वारपालमेकं शनैरकथयत्—"अत्रभवान् युवराजः शेते, तद् निर्मक्षिकमेव विधेयं भवद्भिः"। स च "अस्माकमन्तः प्रवेष्टुं नाधिकारः, वयं नग्नचन्द्रहासा अत्रैव पर्यटितुं नियुक्ताः"—इत्युदतारीत्।

वाहकाश्च पल्यङ्कीमुत्थाप्य चल चलेति चेलुः, अनुचराश्च सहैव गच्छत गच्छतेति जग्मुः।

शिव०—[ आकाशे दृष्टिं बद्ध्वा ] धिक् त्वां रे मायाजिह्म! सम्यग् गृहीतोऽसि!

---

भक्ष्यमाणं व्यञ्जनादि। शेष्व = स्वपिहि। पालंक्याम् = शिविकायाम्। सहचरीः = चेटीः। आलपन्ती = कथयन्ती। अतिष्ठिपत् = अस्थापयत्। गृहीतदासीनेपथ्या कर्त्री, ग्राहितपद्मिनीवेषा च कर्मत्वाश्रयीभूतेति वेदितव्यम्।

मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्=जनसञ्चारशून्यम्। अन्तःप्रवेष्टुम् = अन्तराले गन्तुम्। नियुक्ताः=अधिकृताः। उदतारीत् = उत्तरयाम्बभूव।

---

ले पा रही हैं, प्रवेश कीजिए, पालकी में ही सो जाइए" इस प्रकार कहते हुए उस दासी का वेष धारण किए हुए गौरसिंह ने पद्मिनी ( के वेष में मुआज़िम ) को पालकी में डाल ( बिठा ) दिया। एक दासी ने एक द्वारपाल से धीरे से कहा "शाहज़ादा सो रहे हैं अतः आप लोग वहाँ न जाएँ"। द्वारपाल ने उत्तर देते हुए कहा कि हमलोगों को भीतर प्रवेश करने का अधिकार नहीं है, हमलोग नंगी तलवार लेकर यहीं टहलने के लिए नियुक्त हैं।

पालकी ढोने वाले पालकी उठाकर 'चलो-चलो' कहते हुए चल दिए और अनुचर भी 'चलो-चलो' कहकर साथ ही चले गए।

शिवाजी—[ आकाश की ओर दृष्टि लगाकर ] अरे मुआज़िम ! तुम्हें धिक्कार है। पूरी तौर से पकड़ में आ गए।

माल्य०—भगवन्! ततो नल्व-द्वयान्तराले प्रतीक्षमाणानश्वा-नारुह्य त्यक्त-चेटी-वादकादि-वेषा वीराः सावधानतया माया-जिह्ममत्र ब्रह्मचारि-कुटीरे समानीतवन्तः सन्ति। तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्।

शिव०—अथ काऽवस्था तत्सेना-सन्निवेशस्य?

माल्य०-वीर! प्रातरेव ते प्रनष्टं मायाजिह्ममालोक्य, विवर्णाः पृष्ठत एव प्रस्थितवन्त इत्यश्रौषम्।

शिव०—अथासौ माया-भवने स्थापनीयो भोजनासनादिभिश्च सत्कारणीयः, अहमेनमवसरे द्रक्ष्यामि।

अथोमित्युक्त्वा कुटीराभिमुखं प्रस्थिते माल्यश्रीके, सिंहदुर्गा-

नल्वयोः = चतुश्शतहस्तमितदेशयोः, "नल्वः किष्कुचतुश्शतम्" इत्यमरः, द्वयम्, तदन्तराले।

प्रनष्टम्=अदर्शनताङ्गतम्। "नशेः षान्तस्ये"ति णत्वनिषेधः। विवर्णाः= म्लानाः। दुःखिता इति यावत्। मायाभवने = कूटागारे।

अथ ओम् = ततः स्वीकृत्य। "ओमाङोश्च" इति पररूपम्। महाराष्ट्र-

माल्यश्रीक—महाराज! वहाँ से दो नल्व (आठ सौ हाथ) की दूरी पर प्रतीक्षा कर रहे अश्वों पर आरूढ होकर, दासी तथा तबलची आदि का वेष छोड़कर हमारे वीर सैनिक सावधानी से उसे (मुआज़िम को) ब्रह्म-चारियों की कुटी में ले आए हैं। अब श्रीमान् की जैसी इच्छा हो।

शिवाजी—और उसके सैन्य शिविर की क्या दशा है?

माल्यश्रीक—महाराज! उसके सैनिक प्रातःकाल उसे (मुआज़िम को) मरा हुआ समझकर उदासीन होकर पीछे की ओर ही लौट गए, ऐसा सुना है।

शिवाजी—उसे कूटागार में रखा जाए तथा भोजन और आसन आदि से सम्मानित किया जाए, मैं अवसर आने पर उससे मिलूँगा।

तदनन्तर "अच्छा" कहकर माल्यश्रीक के कुटी की ओर प्रस्थान करते ही तथा शिवाजी के पुनः सिंहदुर्ग की ओर चलते ही, पश्चिम

भिमुखं च पुनः प्रचलति महाराष्ट्रभूपरिवृढे, पश्चिमघट्ट-महापर्वतश्रेणीतः समुत्तीर्य, समुद्धृत-ध्वजाः सन्देशहराः पञ्च सादिनः फेनाविलवल्गैः, हेषा विहित जयध्वनि-प्रातिनिध्यैः, सचामरैरिवोत्थितपुच्छैः, कलित-कमल-दल-द्वयैरिवोर्ध्वकर्णैः, हर्ष-वर्ष स्नातैरिव स्विन्नैः, घोटकैर्धावमाना दूरादेव जय जयेति वादिनः पञ्च सादिनः समागताः। कोङ्कणेश्वरश्च तान समासादित शुभ संवादानवगत्य निजाजानेय-रश्मिमाकृष्य स्वगतिं निरोध, भ्रूसङ्केनैव च किमिति पप्रच्छ। तेषु जयध्वनि-धाराभिर्धराधरं धाराधरं धराञ्च ध्वनयत्सु, तेषामेकः

सु०- परिवृढे = प्रभौ। पश्चिमघट्टे "घाटी" इति हिन्दी, ये महान्तः पर्वताः, तेषां श्रेणीतः = परम्परातः, समुद्धृतध्वजाः = समुच्चालितवैजयन्तीकाः। फेनाविलवल्गैः = डिण्डिरसंपृक्तरश्मिभिः। हेषया = हिंपत्कारेण, विहित जयध्वनिप्रातिनिध्य यैस्तैः। उत्थितपुच्छैः, उत्थितं पुच्छम् = लाङ्गूलं येषां तैः। सचामरैरिवेत्युत्प्रेक्षा। कलित कमलद्वयैरिव = धारितपद्मद्वितयैरिवेत्युत्प्रेक्षा। ऊर्ध्वकर्णैः = उद्गतश्रोत्रैः। हर्षवर्षस्नातैरिव = आनन्दवृष्टिनिर्णिक्तैरिव। पञ्चसादिनः = पञ्चसङ्ख्याका अश्वारोहाः। समासादितशुभसंवादान = समानीतहर्षसंदेशान्। अवगत्य = बुद्ध्वा। धराधरम् = पर्वतम्। धाराधरम् = जलधरम्।

की घाटी की विशाल पर्वत श्रेणी से उतरकर, पताका फहराते हुए, सन्देशवाहक पाँच अश्वारोही फेन से भीगी लगाम वाले, हिनहिनाहट से जयध्वनि का प्रतिनिधित्व करने वाले, पूँछ उठाए चामरयुक्त से, मानों कान उठाए हुए कमल की दो पखड़ियाँ धारण किए हुए से आनन्द की वर्षा से स्नान किए हुए के समान पसीने से भीगे घोड़ों पर बैठे हुए उन्हें दौड़ाते हुए, दूर से ही जय जय करते आ गए। कोङ्कणेश्वर ( शिवाजी ) ने उन्हें शुभ समाचार लाने वाले समझ कर अपने घोड़े की लगाम खींचकर अपनी गति को रोक दिया और भौंह के संकेत से ही 'क्या है' यह पूछा। उन्होंने जयध्वनि की धारा से पर्वत मेघ और पृथ्वी को गुँजा दिया और

समुपसृत्य साञ्जलि-बन्ध प्रणम्य प्रावोचत्—

'भगवन्! विजयस्व, विजयस्व, सर्वोऽपि खान-देशः, सकलोऽपि च पोत-परम्परा-प्रधावमान सांयात्रिक सकौतुक वीक्षित-पारावार वीचि-व्रज-मार्जितः कोङ्कणदेशः श्रीचरणानां हस्तगतः सम्पन्नः। सागर ससर्पि-सव-कूपकाना मस्तकष्वपि महाराष्ट्रमण्डलाऽऽखण्डलस्यैव जय-पताका गगन-तल विलोडयन्ति। विजयतां विजयतां विजयतां महाराजः। सेनापतिना पत्रमिदमर्पितम्"—इति कक्ष गुटिकातो निस्सार्य पत्रमेकमार्पयत्।

---

धराम् = पृथिवीम्। समुपसृत्य = अन्तिकमागत्य।

पोतपरम्पराभिः = नौकाश्रेणीभिः, प्रधावमानैः = शीघ्रगतिभिः, सायात्रिकैः=पोतवणिग्भिः, सकौतुकम् = सकौतूहलम्, वीक्षितः = दृष्ट। पारवारवीचिव्रजमार्जितः = जलधिलहरिव्रातधौतः। सागरे ससर्पिणाम् = सञ्चरताम्। प्लवानाम् = पोतानाम्, ये कूपकाः = "गुणवृक्षकः" इत्यमरः। "मस्तूल" इति हिन्दी। जयपताकाः = विजयवैजयन्त्य। विलोडयन्ति=सञ्चर्षयन्ति। कक्षगुटिकातः =बाहुमूलस्थपोटलिकातः।

---

उनमें से एक शिवाजी के पास पहुँच कर हाथ जोड़कर प्रणाम कर बोला—

महाराज की जय हो महाराज की जय हो, सम्पूर्ण खान देश आपके अधीन हो गया है। जहाजों पर बैठकर तीव्रगति से (समुद्र में) गमन करने वाले समुद्री व्यापारियों द्वारा कुतूहल पूर्वक देखी जाने वाली समुद्र की लहरों के समूह से प्रक्षालित कोंकण देश भी सारा का सारा आपके अधिकार में आ गया है। समुद्र में चलने वाले पोतों के मस्तूलों के ऊपर महाराष्ट्र देश के अधिपति आपकी ही विजयपताकाएँ आकाश तल को विलोडित कर रही है। महाराज की जय हो, जय हो, जय हो। सेनापति ने यह पत्र दिया है यह कहते हुए उस अश्वारोही ने अपनी काँख से दबी पोटली में से एक पत्र निकाल कर शिवाजी को दिया।

शिव०—[ पत्रावरणमन्मुद्रयन् ] अपि जानास्यवस्थां सुरतयुद्धस्य ?

सन्देशहर:—विजयतां भट्टारकः। एकेनैवाह्ना विजिताः सर्वेऽपि भारतद्रुहः। साम्प्रतं सुरत-नगरस्यापि गृहे गृहे चत्वरे चत्वरे प्राङ्गणे प्राङ्गणे च देवस्यैव विक्रम कथा जेगीयते।

शिव०—[ पत्रं प्रसार्य मुद्रां विलोक्य, सहचराश्चाऽऽनन्ददृशा सम्भाव्य] लिलिखत्येतद् धीरेन्द्रसिंहो विजयध्वजापरनामा।

तदाकर्ण्य सर्वेऽपि शिव-सहचराः सगुल्काहति सवल्गा-स्फालनं च सप्तीन् समीपमानीय—किमिति किमितीति सोत्कण्ठाः समाधिपत। ततस्त्वरितया दृशोद्ग्रीवमथ पश्चालोक्य सहचरस्यैकस्य हस्ते दत्त्वा, समन्दस्मितं पठितुमादिशन्। सोऽपि च—"महा-

---

पत्रावरणम् = "लिफाफा" इति प्रसिद्धम्। सुरते=गुर्जरदेशैकदेशे "सूरत"-इति नाम्नाऽधुना प्रसिद्धे, यद् युद्धं तस्य।

भट्टारक – स्वामी। अह्ना=दिनसेन। देवस्य-भवत। विक्रम कथा=पराक्रमवार्ता। जेगीयते=वारं वारमुद्घोष्यते। मुद्राम् = राजचिह्नम्, स्वीयाम्। सगुल्काहति=गुल्फैरश्वताडनपुरस्सरम्। एवं कृतेऽश्वा शीघ्रतया चलन्ति। सवल्गास्फालनम् = सकविकाऽऽकर्षणम्। सप्तीन् = हयान्। "हयसैन्धवसप्तय" इत्यमरः। सोत्कण्ठाः = उत्का। समन्दस्मितम्=अत्यल्प

---

शिवाजी—[ लिफाफा खोलते हुए ] सूरत के युद्ध की स्थिति जानते हो ?

सन्देशवाहक—महाराज की जय हो, एक ही दिन में सभी भारतद्रोही जीत लिए गए। इस समय सूरत नगर के भी घर घर, चबूतरे चबूतरे तथा आँगन आँगन में आपकी ही वीरता की गाथाएँ गाई जा रही हैं।

शिवाजी—[ पत्र खोलकर, मुहर देखकर और सहचरों को प्रसन्न दृष्टि से सम्मानित कर देखते हुए ] धीरेन्द्रसिंह जिसका दूसरा नाम विजयध्वज भी है ने लिखा है।

यह सुनकर शिवाजी के सभी साथी एँड मारकर लगाम खींचते हुए घोड़ों को पास लाकर—क्या है क्या है, इस प्रकार कहते हुए उत्कण्ठित हो

राष्ट्रराजस्य नास्ति लेखपाठादिषु पाटवम्"—इति स्मरन्, सपदि तद्धस्ताद् गृहीत्वा, वारमेकं मनसैव पठित्वा झटिति पठितुमारब्धवान् यद्—

"विजयतां पाथोधि-पय:पूर-परिवर्ति-परश्शत-पोतस्थ-सायात्रिक-समूह-जेगीयमान-कीर्तिचन्द्रिका-चुलुकन-चकोरीभूत-कोङ्कण-कल्याण-खानदेशादि-महामण्डल-प्रजागण:, सद्यश्छिन्न-प्रत्यर्थि-पृथिवीपति-कन्धरा-विगलत्कवोष्ण — शोण-शोणित-प्रवाह-

---

न दहासधहितम् । पाटवम् = दाक्ष्यम् ।

पयोधिपय:पूरे = वारिधिवारिप्रवाहे, परिवर्त्तिषु = सञ्चलितेषु, परश्शतेषु = शतादधिकेषु, पोतेषु, सायात्रिकाणाम् = पोतवणिनाम्, "सायात्रिक पोतवणिक्" इत्यमरः । समूहेन जेगीयमानायाः = वार वारमुद्धोष्यमाणाया, कीर्त्तिचन्द्रिकाया = यश कौमुद्या, चुलुकने = चुलुकीकरणे पाने चकोरीभूत: = चकोरपक्षिता गत, कोङ्कण कल्याण खानदेशादिमहामण्डलप्रजागणो यस्यैरम्भूत । सद्यश्छिन्नाभ्य: = तत्कालकृत्ताभ्य, प्रत्यर्थिपृथिवीपति-कन्धराभ्य: = विरोधि भूपालग्रीवाभ्य, विगलता = स्रवता कवोष्णेन = ईषदुष्णेन, शोणेन = रक्तवर्णेन, शोणितप्रवाहेण = रुधिर-

---

गए । तदनन्तर शिवाजी ने उस पत्र के ऊपर तथा नीचे दृष्टि डालकर, उसे एक साथी के हाथ मे देकर, मन्द-मन्द मुस्कराते हुए पढने को कहा । उसने भी 'महाराष्ट्र नरेश लिखने पढने में निपुण नहीं हैं', यह स्मरण कर तत्काल ही उस पत्र को उनके हाथ से लेकर, एकबार मन ही मन पढ़कर शीघ्र ही पढना प्रारम्भ कर दिया कि—

समुद्र की जलधारा में चलने वाले शताधिक पोतों पर बैठे हुए यात्रियों के समूह द्वारा गाई जा रही जिनकी कीर्ति रूपी चाँदनी के पान के लिए कोङ्कण, कल्याण, खानदेश आदि राज्यों की प्रजा चकोरी बन गई है और जिन्होंने तत्काल काटी गई शत्रु राजाओं की गर्दन से बहने वाले

परितर्पित-शाकिनी – डाकिनी-भूत-प्रेत-मण्डली-विलोडित – ताम्र – श्मश्रु-गण्ड-मुण्ड-माला-मण्डित-चण्डीकः, सनातन-धर्म-रक्षण-सक्षण, रिपु-निकर-सम्पत्ति-सीमन्तिनी-धम्मिल्ल-वेल्लित-मल्लिका-मतल्लिका-माल्य-सुवासित-करपल्लव-तल्लजः, परस्सहस्र-श्रीसंवलितः श्रीमहाराष्ट्रमण्डलाऽऽखण्डलः।

धारया, परितर्पितया = सन्तोषितया, तृप्तिमानीतया, डाकिनी-शाकिनी-भूत प्रेत मण्डल्या, विलोडितानाम् = मथितानाम्, ताम्रश्मश्रुगण्डानाम् = रक्तवर्णकूर्चकपोलानाम्, यवनानाम्, मुण्डमालाभिः = छिन्नमस्तकस्रग्भिः, मण्डिता = भूषिता, चण्डी = तमोगुणप्रधाना शक्तिरखिल भुवनधक्षणसामर्थ्यशालिनी, येन सः। "नद्यृतश्चे" ति कप्। डाकिन्यादयो वायवीय-शरीरोपेताः श्रुतौ तदर्थभूतेषु पुराणेषु लोकव्यवस्थासु च चिरप्रसिद्धाः। एतदनङ्गीकरणनिपुणास्तु लोकायतमतानुदम्य इति पुराणमतदीपिकाया निस्तरेण प्रतिपादितम्।

सनातनधर्मरक्षणे, सक्षणः = सोत्सवः। रिपुनिकरस्य = शत्रुसमूहस्य सम्पत्तिरेव = श्रीरेव, सीमन्तिनी = वनिता, तस्या धम्मिल्ले = केशबन्धे, वेल्लितस्य = दोलितस्य, मल्लिकामतल्लिकामाल्येन = प्रशस्तमल्लिकास्रजा, सुवासितः = सुरभितामापादितः, करपल्लवतल्लजः = प्रशस्तहस्तकिसलयं यस्य सः। परस्सहस्रश्रीसंवलितः - अत्यधिकशोभाशाली।

खूब उष्ण, लाल रक्त के प्रवाह से तृप्त की गई शाकिनी डाकिनी और भूत-प्रेत की मण्डलियों द्वारा लुढ़काए गए ( मेंहदी लगे होने के कारण ) ताम्र वर्ण के ( बालों से युक्त ) दाढ़ी कपोल और मुण्डों की माला से चण्डी को भूषित ( समर्पित ) किया है, उन सनातन धर्म की रक्षा का महोत्सव करने वाले, शत्रु समूह की सम्पत्ति रूपी स्त्री के केशपाश में झूलने वाली मल्लिका के उत्तम पुष्पों की माला से सुगन्धित किए गए उत्तम करपल्लव वाले, महाराष्ट्र मण्डल के इन्द्र ( अधिपति ), अनन्त श्री विभूषित शिवाजी की जय हो।

श्रीचरणेषु त्रिविध-प्रणति-तति-पुरस्सरं सजयध्वनि सविजय-ध्वजान्दोलनञ्च विनिवेदयत्येष विजयध्वजनामा सेनापति-पद-सनाथितः, यद् – 'ये हि कलित-मर्कयात्रि-वेषा वारं वारं हीनदीन प्रजाश्च बाधमाना महाराष्ट्रैर्युयुत्सव आसन्, तेषु शतशो महाराष्ट्र-रिष्टि-धारा-तीर्थे मुक्तिं गताः, अपरे च पलायिताः। अत्राल्पीयसी दिल्ली कलङ्केन प्रेषिता, अपरा च सुरताधिष्ठितैर्यवन-वणिग्भिर्योजिता चमूरस्मानभियोद्धुं चन्द्रहासान् कोशेभ्य कर्षितवती। तया सह श्रीमच्चरणौ स्मृत्वाऽस्मद्वीरैर्युद्धमारब्धम्। मुहूर्तं तुमुलमभूज्जन्यम्।

सविजयध्वजान्दोलनम् = विजयवैजन्तीहिल्लोलनपुरस्सरम्। सेनापतिपदेन = सेनानीपदव्या, सनाथितः = सनाथीकृतः। कलित-मर्कयात्रिवेषाः = धारित मर्कपान्थनेपथ्याः। मर्कं 'मक्का" इति प्रसिद्धयवन-तीर्थम्। पुरा हिन्दूनां तीर्थमिदमासीत्। अधुनाऽपि तत्र शिवलिंगं दृश्यते, तदेव च पूजयन्ति तत्र गता यवना इति आजरत्परम्परानुस्यूता वार्ता। बाधमानाः = पीडयन्तः, महाराष्ट्राणां रिष्टिधारातीर्थे = खड्गधारापूतस्थले। मुक्तिं गताः = मृताः। पलायिताः = युद्धमहीतः दूरं गताः। सुरताधिष्ठितैः = 'सूरत" नगरनिवासिभिः। योजिता = सङ्कलिता। चमूः = वाहिनी। कोशेभ्यः = असिधानीभ्यः। कर्षितवती, सङ्ग्रामोद्यताऽभूदिति यावत्। मुहूर्त्तम् = कियत्कालपर्यन्तम्। तुमुलम् = अविरलम्, जन्यम् =

श्री चरणों में अनेकवार प्रणाम पूर्वक जयध्वनि के साथ, विजयपताका फहराते हुए आपके द्वारा दिए गए सेनापति द्वारा सनाथ किया गया विजय-ध्वज निवेदन करता है कि जो यवन हाजियों (मक्का की यात्रा करने वालों) के वेष धारण कर दीन हीन प्रजा को बार-बार पीड़ित करते हुए मराठों से युद्ध करना चाहते थे, उनमें से सैकड़ों मराठों की तलवार की धारा के तीर्थ पर मुक्त हो गए (तलवार के घाट उतर गए) और अन्य भाग गए। यहाँ थोड़ी सी दिल्ली कलङ्क द्वारा प्रेषित तथा दूसरी सूरत में रहने वाले यवन व्यापारियों द्वारा सगठित सेना ने हम लोगों से लड़ने के लिए म्यान से तलवार खींच ली। उसके साथ, श्रीमान के चरणों का नाम लेकर, हमारे

परतश्चोद्यतखड्गैरस्मद्भटैर्वेभिद्यमानाः केचन पुरन्दरमन्दिरम्, अपरे च गिरिकन्दरं भेजुः। साम्प्रतमस्मद्धस्तगताः शतं पोताः, सुरतनगरम्, खानदेशः, निखिलश्च कोङ्कणदेशोऽस्ति। तदत्र श्रीचरणाः प्रमाणम्'—इति।

तदाकर्ण्यातिप्रसन्नः क्षणमालप्य, "अथाऽऽगम्यताम्, सिंहदुर्गे लप्स्यत उत्तरपत्रम्" इति कथयित्वा, इङ्गितज्ञैः, समीरं ग्रसद्भिरिव विपदङ्गणरिङ्गणमीहमानैरिव तुरङ्गैः सपदि सिंहदुर्गमायातः।

❀ ❀ ❀

---

युद्धम्। उद्यतखड्गैः = उच्छ्रितासिभिः। वेभिद्यमानाः=चेच्छिद्यमानाः। पुरन्दरमन्दिरम् = इन्द्रसदनम्, स्वर्गम्। गिरिकन्दरम् = पर्वतदरीम्। पोताः= महानौकाः। जलयानानीति यावत्।

लप्स्यते = प्राप्स्यते। इङ्गितज्ञैः = अभिप्रायवेदिभिः। समीरम् = वायुम्। ग्रसद्भिः = लिहद्भिः। वायुतोऽप्यधिकत्वरितगतिभिरिति यावत्। विपदङ्गणे = विपत्तिचत्वरे, रिङ्गणम् = भ्रमणम्। ईहमानैः = चेष्टमानैः। तुरङ्गैः = घोटकैः।

× × ×

---

बहादुरों ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया। कुछ देर तक घमासान युद्ध हुआ, अन्त में तलवार उठाए हुए हमारे बहादुरों द्वारा काटे जाते हुए कुछ शत्रु इन्द्रपुरी (स्वर्ग) तथा दूसरे पहाड़ों की गुफाओं में भाग गए। इस समय सौ बड़ी नौकाएँ, सूरत नगर, खानदेश तथा समस्त कोङ्कण प्रदेश हमारे हाथ (अधिकार) में है। आगे आप की जैसी आज्ञा हो वैसा ही किया जाय।

यह सुनकर अत्यधिक प्रसन्न होकर कुछ देर बात-चीत करके "अच्छा आओ, इस पत्र का उत्तर तुम्हें सिंह दुर्ग में दिया जायगा", यह कहकर संकेत समझने वाले, (वायु से भी अधिक तेज चलने के कारण) वायु को ग्रसित करते हुए से, आकाश के आँगन में विचरण करने की इच्छा करते हुए से घोड़ों पर सवार (साथियों के साथ शिवाजी) शीघ्र ही सिंह दुर्ग पहुँच गए।

सन्यासिकुटीरे तु दिल्लीश्वरतनयं तथाऽऽनीतमालोक्य, ब्रह्मचारिगुरुणा सह सर्वेऽपि तत्पार्श्वस्था मुमुदिरे। गौरं च पर्य्यायत सर्वेऽपि सानन्द परिषस्वजिरे। गौरस्तु मुत्रस्तैव तस्य पुरुषरूप परिवर्तयामास।

तस्मिन् गततन्द्रे च सर्वेऽपि सादर 'जय जीव' इति कथयन्तः, 'आज्ञप्यता काऽपि सेवा दिल्ली-वल्लभ-कुमारेण"—इति मोचुः।

स च वार वारमाश्चर्यपुर्षा तन्द्रा-सम्पर्क-जुषां चक्षुषां चिरालस्य-मन्थराभ्यां हस्ताभ्यां सम्मर्द्य, क्षणमात्मानम्, क्षण कुटीरम्, क्षण परितः परिसर्पिणो जनान्, क्षण सान्द्र-श्यामता-श्यामीकृत-

पर्य्यायतः = क्रमत। परिषस्वजिरे = पर्याशिश्लिषुः। पुरुषरूपम् = नरनेपथ्यम्।

गततन्द्रे = विनष्टमोहे, विधूतालस्य। आज्ञप्यताम् = आदिश्यताम्। 'मिता हुस्वः" इति हस्व। आश्चर्यपुषी = विस्मयाकुले। तन्द्रा-सम्पर्क-जुषी = निद्रावस्थासंसेविके। चिरालस्येन मन्थराभ्याम् = शिथिलप्रायाभ्याम्। सम्मर्द्य = मर्दनं विधाय। आत्मानम् = स्वम्। परिसर्पिणः = गच्छत। सान्द्रया = घनीभूतया, श्यामतया = कार्ष्ण्येन, श्यामीकृतम् = कृष्णतामापादितम्, स्निग्ध-

सन्यासियों की कुटी में दिल्लीश्वर के पुत्र को उस प्रकार लाया हुआ देखकर ब्रह्मचारियों के गुरु सहित पास में बैठे सभी लोग प्रसन्न हुए और सभी ने बारी-बारी से प्रेमपूर्वक गौरसिंह का आलिङ्गन किया। मुआज़िम के जगते ही सोते गौरसिंह ने उसकी पहिना की आकृति पुरुष की आकृति में बदल दी।

उसकी तन्द्रा समाप्त होने पर सभी आदर पूर्वक "जय जीव" कहते हुए "दिल्लीश्वर के कुमार कोई आज्ञा दें" यह बोले।

मुआज़िम भी आश्चर्य चकित और अलसाई आँखों को बहुत देर के आलस्य के कारण शिथिल हाथों से बार-बार मलता हुआ, कभी अपने को, कभी कुटी को, कभी चारों ओर चलते फिरते लोगों को, कभी घनी

दिग्वलयं वनम्, क्षणं च क्वचन कलित-विकोश-खड्गैर्भटैः, क्वचन ब्रह्मपाठ-परैर्ब्रह्मचारिभिः, क्वचन श्मश्रु-कूर्च-केश-जाल-जटालैः जटिलैः, क्वचन बाहुयुद्धमभ्यस्यद्भिः खड्ग-चालन-चातुरीमासादयद्भिर्व्यायामोत्तजितोच्छ्वासैर्धूलि-धूसरैः पटुभिर्वटुभिर्विहित विविध-क्रीडं शाद्वलम्, क्वचन सदक्षाक्षिकुञ्चनं भुशुण्डीमुत्तोल-मुत्तोलं चिञ्चाकिशलयाग्रेषु लक्ष्यमनुसन्दधतो वीरांश्चाऽऽलोकमालोकं चकितचकितो भीतभीतो लज्जितलज्जितो वाचंयम एवावतिष्ठ।

---

श्यम् = हरित्समूहो यस्मिंस्तादृशम्। कलितविकोशखड्गैः = धारितनग्नासिभिः। ब्रह्मपाठपरैः = वेदाध्ययननिरतैः। जटिलैः = जटायुतैः साधुभिः। बाहुयुद्धम्=नियुद्धम्, "कुश्ती" इति प्रसिद्धम्। आसादयद्भिः= प्राप्नुवद्भिः। व्यायामोत्तेजितोच्छ्वासैः = शारीरपुष्ट्यर्थकविधिविशेषवर्धितोच्छ्वासैः। सदक्षाक्षिकुञ्चनम् = दक्षिणनयनसङ्कोचनपुरस्सरम्। उत्तोलमुत्तोलम् = उत्थाप्योत्थाप्य। चिञ्चाकिसलयाग्रेषु = तिन्तिडीदलाग्रेषु। लक्ष्यम् = शरव्यम्। चिञ्चादलानां तनुत्वात् तान्येव लक्ष्यतां नीत्वा प्रातीप्य लक्ष्यमभिलषन्तीति भावः। अनुसन्दधतः = गवेषयमाणान्। वाचंयमः = मौनी। अवतिष्ठ = स्थितः।

---

श्यामलता से दिङ्मण्डल को श्यामल करनेवाले वन को और कभी कहीं नंगी तलवार लिए वीरों, कहीं वेदपाठ में तल्लीन ब्रह्मचारियों, कहीं दाढ़ी मूँछ और सिर के बालों के जाल वाले जटाधारियों और कहीं कुश्ती का अभ्यास कर रहे, तलवार चलाने में कुशलता प्राप्त कर रहे, व्यायाम करने के कारण लम्बी उच्छ्वास छोड़ रहे धूलि से धूसर हुए कुशल ब्रह्मचारियों की विविध प्रकार की क्रीडाओं के आश्रय भूत घास के मैदान को, और कहीं दाहिनी आँख बन्द कर बन्दूक उठा-उठा कर इमली की कोंपलों के किनारों पर निशाना साधते हुए वीरों को देख देख कर अत्यन्त चकित भयभीत और लज्जित होकर मौन ही साधे रहा (चुप ही बैठा रहा)।

तावदागत्य माल्यश्रीको गौरमालिंग्य मुहूर्तमालप्य युवराजमपि "श्रीमतो निवासाय प्रासाद एकोऽतिरुचिरः प्रस्तुतोऽस्तीति शिविकां सज्जीकृत्याऽऽनीतवानस्मि, करुणया सनाथ्यताम्। तत्रैव च यथोचितसेवाऽऽदेशैरस्मादृशोऽनुगृह्यताञ्च"–इति सादरमालपत्।

स तु हाटक-करहाट-च्छवि-कपोलो लोलतारको मुखमवनमय्य, विविधभाव-भावना-भंग-भज्यमान-भावो नोमिति, अथ वा नेति अकथयत्, तन्निर्दिष्टां शिविकामेव चाऽऽरोहत्।

---

आलिङ्ग्य = आश्लिष्य। प्रासादः = हर्म्यम्। करुणया = दयया। सज्जीकृत्य विनयप्रदर्शनम्। यथोचितसेवादेशैः = यथायोग्यशुश्रूषणादेशैः। अनुगृह्यताम् = अनुग्रहपात्रं क्रियताम्।

हाटक–करहाट–च्छवि–कपोलः = सुवर्ण-शिफाकन्द कान्तिकगण्ड–स्थलः। "कराहटः शिफाकन्दः" इत्यमरः। पीतगण्डस्थल इति यावत्। विविधभावानाम् = अनेकविधविचाराणाम्, भावनानाम् = वासनानाम्, भंगेन = तरङ्गेण, भज्यमानः = खण्ड्यमान, भावः = अभिप्रायो यस्य सः। नानाप्रकारविचाराविर्भावतिरोभावाभ्या अप्रकटितनिजाभिप्राय इति भावः। तन्निर्दिष्टाम् = तत्प्रदर्शिताम्।

---

तब तक माल्यश्रीक ने आकर गौरसिंह का आलिङ्गन कर कुछ देर बात करके आदर पूर्वक शहजादा मुआजिम से कहा

श्रीमान के निवास के लिए एक अत्यन्त सुन्दर प्रासाद प्रस्तुत है। मैं पालकी सजाकर ले आया हूँ, कृपा कर उस प्रासाद को अलंकृत कीजिए और वहीं पर उपयुक्त सेवा के लिए आदेश देकर हम जैसों पर अनुग्रह कीजिए।

स्वर्णिम कमलनाल की कान्ति वाले कपोलों वाले चञ्चल पुतलियों वाले और अनेक भावनाओं की तरगों से खण्डित विचारों वाले मुआजिम ने भी न तो हाँ कहा और न नहीं कहा, केवल मुख नीचे करके माल्यश्रीक द्वारा निर्दिष्ट पालकी पर सवार हो गया।

एवं त सह नीत्वा याते माल्यश्रीके, शाद्वले षटमास्तीर्य पविष्टेषु सब्रह्मचारिगुरुषु तत्रैवच्छत्रखिल्पु प्रजागर मन्थरोऽपि क्रियासमभिहारेणाऽऽहूयमानो गौरसिंहस्तत्राऽऽगत्य गोष्ठीमध्यं भेजे।

कथमिव किमिव सवृत्तं गतयामिन्याम्? कैः कौशलैः काभिर्मायाभिः कैरुपायैः काभिर्विद्याभिः कैर्नियोगैः काभिः प्रवञ्चनाभिः कैः प्रकारैः काभिश्च घटनाभिः आनीतवानसि मायाजिह्ममेतम्? कथं दीपोद्योत विद्योत चतुर्गुणित-चाकचक्य-चञ्चच्चन्द्रहास-भासा भयानकानां प्रहरिणां चक्षुःषु रेणुका-राशिमाहितवानसि? कथं वा गगनोड्डाभ्यासेनेव निशिततरैर्नाता-

प्रजागरेण=दीर्घया जागृत्या मन्थर=अलस। क्रियासमभिहारेण-पौनःपुन्येन। आहूयमान आकार्यमाण। भेजे सिषेवे।

कौशले=चातुर्यैः। मायाभिः छलैः। नियोगैः=अनुष्ठानैः प्रवञ्चनाभिः प्रतारणाभिः। दीपोद्योतस्य दीपप्रकाशस्य विद्योतेन =प्रभया चतुर्गुणितचाकचक्यानाम्=वृद्धिंगतचमत्कृतीनाम्, चञ्चताम्, चन्द्रहासानाम् खड्गानाम्, भासा तजसा। भयानकानाम् =भीतिप्रदानाम्। प्रहरिणाम्-यामिकानाम्। रेणुकाराशिम्-धूलिनिकरम्। आहितवान् दत्तवान्। आँखमें धूल झोंका इति हिन्दी। गगनोड्डाभ्यासेनेव-नभोमण्डल विदारणपरिशील्नेनेव। निशिततरैः=अतितीक्ष्णैः

इस प्रकार मुआज्जिम को साथ लेकर माल्यश्रीक के चले जाने पर घास पर चटाई बिछाकर वहाँ रहने वाले सभी ब्रह्मचारियों एवं गुरुओं के बैठ जाने पर जागरण से शिथिल होते हुए भी बार बार बुलाने पर वहाँ पहुँच कर, गौरसिंह गोष्ठी के बीच में बैठ गया।

विगत रात में कैसे क्या हुआ? तुम इस मुआज्जिम को किस कुशलता से किन मायाओं से किन उपायों से, किन विद्याओं से, किन क्रियाओं से किन प्रवञ्चनाओं से किन तर्कों से और किन घटनाओं से, ले आए हो? दीप के प्रकाश की प्रभा के कारण चौगुनी चकाचौंध उत्पन्न करने वाली चञ्चल तलवारों की चमक से भयानक दिखाई पड़ने वाले पहरेदारों की

घात-क्षालितैरिव चमत्कुर्वद्भिः परितः प्रसर्पिभिर्मयूख-पूरैरिव विहितातपत्र विडम्बनैर्भल्लैर्भयङ्करकरान् प्रतीहारान् मोहितवानसि ? इति सकुतूहलं सोल्लास सादरं साश्चर्यं च पृष्टवत्सु तेषु, सङ्क्षिप्यैव "एवमेवमिति" सर्वं यथातथं सूचितवान्। तदाकर्ण्य साधुवाद-वर्षैः कुटीरमापूरयत्स्वखिलेषु, ब्रह्मचारिगुरुराह-कथं न स्याः ? परमवीरवरस्य खड्गसिंहस्य पुत्रोऽसि, पिता तव बाल्य एव व्याघ्र-मृगया-व्यसनी समभूत्, यौवने च बहुभिश्चतुर्गुणबलैरयुध्यत, वार्द्धके च रणाजिर एव वीरगतिं गतो मार्तण्ड-मण्डलं भित्त्वा

---

रणैः। याताघातक्षालितैरिव=वायुताडननिर्णिक्तैरिव। मयूखपूरैः= दीधितिव्रजैः। विहितातपत्रविडम्बनैः=कृतच्छत्रानुकृतिभिः, भल्लैः= अस्त्रविशेषैः। भयङ्करकरान्=भयानकहस्तान्। सोल्लासम्=सहर्षम्। संक्षिप्य=तनूकृत्य। साधुवादवर्षैः=धन्यवादवृष्टिभिः। आपूरयत्सु= पूरयत्सु। व्याघ्रमृगयाव्यसनी=व्याघ्राखेटनिरतः। वार्द्धके=वृद्धा-वस्थायाम्। रणाजिरे=सङ्ग्रामाङ्गणे। मार्तण्डमण्डलम्=भानुबिम्बम्।

---

आँखों में तुमने धूल कैसे झोंक दी ? और मानों आकाश को चीरने के अभ्यास से तीक्ष्णतर, मानों वायु के आघात से धुले हुए, चमकते हुए, चारों ओर फैल रही किरणों के समूह से छातों का तिरस्कार करने वाले भालों को लिये होने से भयङ्कर पहरेदारों को कैसे मोहित कर लिया ? इस प्रकार सभी लोगों के कुतूहल पूर्वक, उल्लास पूर्वक, आदर सहित और आश्चर्य से पूछने पर गौरसिंह ने सक्षेप में यह "इस प्रकार हुआ" यह बताते हुए सारा वृत्तान्त ज्यों का त्यों कह सुनाया। उसे सुन कर सब ने कुटी को प्रशंसात्मक वाक्यों से गूँजा दिया। ब्रह्मचारिगुरु ने कहा—क्यों न हो, परमवीर खड्गसिंह के पुत्र हो। तुम्हारे पिता बचपन में ही शेर का शिकार किया करते थे। युवावस्था में उन्होंने अनेकबार चौगुने बलवालों से युद्ध किया था और

नन्दनवनविहारमाससाद।

ततस्तु अतिकुतूहल-समाविष्टेन गौरेण सह तस्यैवमभूवन् वार्ताप्रचाराः।

गौर०—अपि मम तातचरणैः सहाऽऽसीदार्याणां परिचयः ?

ब्रह्मचारिगुरु—[ किञ्चिद् निःश्वस्य ] आसीदतितराम्।

गौरः—[ अधिकाधिक-कौतुक-ग्रस्तानामखिलाना मुखमवलोक्य ]

आर्य! क्षम्यतां प्रौढिरेतस्य भवदनुकम्पापात्रस्य। एष चिररात्राय भवन्तं ब्रह्मचारिगुरुनामधेयं महाराष्ट्रराजस्य शुभोदयोदर्काभिलाषिणं कोङ्कण-पृथिवी-परिवृढस्य परमस्नेहपात्रं विक्रम-व्यापार-

---

भित्त्वा = द्विधा कृत्वा। तत एव मार्गादित्यर्थः। नन्दन-वन-विहारम् = इन्द्रकाननक्रीडाम्। आससाद = प्राप।

अतितराम् = अत्यन्तमधिकम्।

प्रौढिः = धार्ष्ट्यम्। चिररात्राय = चिरम्। ब्रह्मचारिगुरुः इति नामधेयं यस्य तम्। ननु नामान्तरं किमप्यस्ति विज्ञातमस्माभिः। शुभोदयोदर्काभिलाषिणम् = उत्तरकालिकाभ्युदयकामनावन्तम्। "उदर्कः फलमुत्तरम्" इत्यमरः। कोङ्कणपृथिवीपरिवृढस्य = कोङ्कणधराधिनाथस्य।

---

वृद्धावस्था में रणभूमि में ही वीरगति प्राप्त कर सूर्य मण्डल को भेद कर नन्दन वन की सैर की।

तदनन्तर अत्यन्त कुतूहलाक्रान्त गौरसिंह के साथ ब्रह्मचारिगुरु की इस प्रकार बातें हुईं।

गौरसिंह—क्या मेरे पिता से आप का परिचय था ?

ब्रह्मचारिगुरु—[ निःश्वास पूर्वक ] हाँ बहुत अधिक परिचय था।

गौरसिंह—[ सभी के अत्यधिक उत्सुकता-पूर्ण मुखों की ओर देखकर ] आर्य! अपने इस कृपापात्र की धृष्टता क्षमा कीजिये। मैं बहुत दिनों से आप को ब्रह्मचारिगुरु नामक महाराष्ट्र नरेश के भावी अभ्युदय की कामना वाला कोङ्कण देश के नरेश का परम प्रेम-पात्र, बहादुरी के कामों में यौवन को

व्यत्यायित-यौवनं सदा सदाचार-प्रचार-परं हविष्यभोजनं विविध-देवाराधनाऽनुष्ठानैकतानं कञ्चन क्षत्रिय-कुल-कलशं मन्यते।

महाराष्ट्रभाषाञ्चैव मधुरतया सुस्पष्टमुच्चार्य्योऽऽलपति भवान्, यत्र भवत्यल्पीयस्यपि मे विचिकित्सा भवतो महाराष्ट्रदेशीयत्वे। महाराष्ट्रदेशीयमहाशयेन च सहोदयपुर-निवासिनो मम तातपादस्य दुर्घटः परिचयः। तथावद् विशकलय्य नोच्यते तावन्न शाम्यत्युद्वेगः शङ्कापङ्कपङ्किलस्य हृदयस्य। तद् यदि नाम न भवेत् किमपि गोपनीयं नीतिविरुद्धं वा, तन्मादृशानुचरानुरोधात्

---

विक्रमव्यापारेषु = पराक्रमकर्त्तव्येषु, व्यत्यायितम् = क्षपितम्, यौवन येन तम्। सदा = सर्वस्मिन् काले। सताम्, आचाराणाम्, प्रचारपरम् = विवर्धनरतम्। विविधानाम् = अनेकेषाम्, देवानाम् = हनूमन्महादेवादीनाम्, आराधने = सेवायाम् अनुष्ठाने = मन्त्रादिजपे, एकतानम् = तत्परम्, "एकतानोऽनन्यवृत्तिः" इत्यमरः। विविधपदस्य आराधनानुष्ठानान्यतरविशेषणत्वं वा। क्षत्रियकुलकलशम् = क्षात्रान्वयावतंसम्।

अल्पीयसी = अतिन्यूना। विचिकित्सा = संशयः। दुर्घटः = दुःखेन भवितु योग्यः। विशकलय्य = स्पष्टीकृत्य। उद्वेगः = मानसमौत्सुक्य जिज्ञासासमुत्थम्। गोपनीयम् = रहस्यम्, अवाच्यमिति यावत्।

---

व्यतीत करने वाला निरन्तर सदाचार के प्रचार में तत्पर, हविष्यान्न का भोजन करने वाला तथा अनेक देवताओं की आराधना और अनुष्ठान में तल्लीन क्षत्रिय कुल का कलश ( भूषण ) समझता हूँ।

और आप मराठीभाषा इस प्रकार मधुर एवं स्पष्ट उच्चारण करके बोलते हैं कि आप के महाराष्ट्रीय होने में मुझे जरा भी संशय नहीं होता। महाराष्ट्र में रहने वाले आप के साथ उदयपुर के निवासी मेरे पिता जी का परिचय होना कठिन है। अतः जब तक आप स्पष्ट करके विस्तार से सारी बातें नहीं बतायेंगे तब तक सन्देह के कीचड़ में फँसे हुए मेरे हृदय का उद्वेग शान्त नहीं होगा। तो यदि कुछ गोपनीय या नीति विरुद्ध न हो तो मुझ जैसे

कृपया निर्वचनीयोऽयं वृत्तान्तः-इत्यभिधाय मौनमाकलयति गौरे, सकुतूहलमेकाग्रेषु चाखिलेषु, क्षणं स्थिरीभूय, उच्छ्वस्य च समारभत, व्याहर्तुं ब्रह्मचारिगुरुः।

ब्रह्म०—नास्म्यहं महाराष्ट्रदेशीयः। जनिभूर्मम राजपुत्रदेशः। महाराज-श्रीजयसिंह निर्मिताद् जयपुर नगराद् आराद्देवाऽऽश्वीन एको 'जितवार'-नामा ग्रामोऽस्ति, तदध्यक्ष एवाहमासम्। मथुरा-यात्रां कुर्वतः खड्गसिंहस्य मम च पित्रोः स्नेहः प्रगाढो जात इति तन्मूलक एवाऽऽवयोरपि परमः प्रेमा बभूव। सोऽपि बहुवारं मम

---

निर्वचनीयः = निःसन्दिग्धं वक्तव्य। एकाग्रेषु = संयतमनःसु। उच्छ्वस्य = दीर्घश्वासं गृहीत्वा। व्याहर्तुम् = वक्तुम्।

जनिभूः = जन्मभूमिः। महाराजेन, जयसिंहेन, निर्मितात् = निर्मापितात्, शासितादिति यावत्। आश्वीनः = अश्वेनैकेन दिनेन गन्तुं योग्यः। "त्रिष्वाश्वीनं यदश्वेन दिनेनैकेन गम्यते" इत्यमरः। "अश्वस्यैकाहगमः" इति खञ्। "जितवार" नामा = साम्प्रतं "जटवारा" इति ख्यातः, पिता च पिता च = पितरौ, तयोः। प्रकृतेऽस्यैवार्थस्य विवक्षितत्वात् "पुमान् स्त्रिया" इति नैकशेषः। प्रगाढः = अत्यधिकः, प्रेमा = स्नेहः। 'प्रेमा ना प्रियता

---

अनुचर के अनुरोध से कृपया इस वृत्तान्त को स्पष्ट कीजिये इतना कहकर गौर के मौन हो जाने पर और सभी लोगों के कौतूहल पूर्वक एकाग्र हो जाने पर, क्षण भर स्थिर हो उच्छ्वास लेकर ब्रह्मचारिगुरु ने कहना प्रारम्भ किया।

ब्रह्मचारिगुरु—मैं महाराष्ट्रीय नहीं हूँ। मेरी जन्मभूमि राजपूताना है। महाराज जयसिंह द्वारा निर्मित जयपुर के समीप ही एक दिन में घोड़े से पहुँच सकने की दूरी पर एक जितवार (जटवारा) नामक गाँव है। मैं उसी का अध्यक्ष था। मथुरा की यात्रा करने में खड्गसिंह के पिता तथा मेरे पिता में परस्पर गहरी मित्रता हो गई। अत वहीं से हम दोनों में भी

भवनं सनाथितवान्, अहमपि चानेकशस्तत्र गतः—इति।

गौर०—अप्यापृच्छे ? अपि कथयिष्यति कथमिहाऽऽयातो भवान् ? कथं वा त्यक्तवान् निजमाधिपत्यम् ?

ब्रह्मचारिगुरुः—गौर ! वयं महाराज जयसिंहस्य अधीना बान्धवाः सेनानियमेन भूमिभुजः। अकस्माज्ज्वरितेषु कतिपयेषु सादिषु बहुभिः कर्णेजपैरीर्ष्यापरवशैः किमप्युक्तोऽसूचितयात्रो महाराजः समायातः। सादिसङ्ख्यामूनामवलोक्य विनैव विचारं मम सर्वस्वमाहर्तुं स्वसभायामकथयत्। मम पत्नी तु ततोऽपि पूर्वमेव स्मृतिमात्र-विषया संवृत्ता। ततोऽहं दशवर्षदेश्यं रामसिंहं तनयं

---

हार्दं प्रेम" इत्यमरः।

अपि = पुनरपि। आपृच्छे = पृच्छामि। "आङि नु पृच्छ्योरि" त्यात्मनेपदम्। वर्तमानसामीप्ये लट्। आधिपत्यम्=ग्रामाधीशताम्।

भूमिभुजः = "जागीरदार" इति ख्याताः। ज्वरितेषु = ज्वरग्रस्तेषु, ज्वलितेषु वा पाठः। कर्णेजपैः = पिशुनैः, निन्दाकारिभिः। ईर्ष्यापरवशैः = गुणेषु दोषाविष्करणपरायणैः। असूचितयात्रः=अबोधितागमनः। ऊनाम्= अल्पाम्। सर्वस्वम् = निखिल वित्तजातम्। स्मृतिमात्रविषया = केवल-

---

अत्यधिक सौहार्द हो गया। वे भी बहुत बार मेरे घर आए और मैं भी कई बार उनके घर गया।

गौरसिंह—मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आप बतायेंगे कि आप यहाँ कैसे आए ? और आपने अपना आधिपत्य क्यों छोड़ दिया ?

ब्रह्मचारिगुरु—गौरसिंह ! हम लोग महाराज जयसिंह के अधीन बन्धु एवं सेना के नियम से 'जागीरदार' थे। कुछ घुड़सवारों के एकाएक ज्वरग्रस्त हो जाने पर बहुत ईर्ष्यालु निन्दकों के कुछ कहने पर यात्रा की सूचना दिये बिना ही महाराज आ पहुँचे और घुड़सवारों की संख्या कम देखकर बिना विचार किए ही, उन्होंने सभा में मेरा सब कुछ छीन लेने की आज्ञा दे दी। मेरी पत्नी पहले ही स्मृति शेष हो चुकी थी (मर चुकी

सह नयन् रामेश्वर-दर्शनार्थं प्रचलितः।

गौरो रामेश्वरयात्रा-समाख्यया तनयस्य नाम रामसिंह इति स्वयं च खड्गसिंहस्य गेहं बहुवारं गत इति च निष्कृष्टार्थं शृण्वन् देवशर्म्मणा कथिताञ्च नूत्नामेव कथां स्मरन्, समाधिस्थ इवैकतान उदन्तमेतं शुश्राव।

ब्रह्मचारिगुरु:—अतः परं यत् संवृत्तं तस्य तु कथनेनापि स्मरणमात्रेणापि च कम्पते मे हृदयम्। तथाऽपि किं कुर्य्याम्? वज्रेण रचितं हृदयं मानवानाम्, यस्य स्मरणमात्रेण रोमाण्युद्भवन्ति, वपुर्वेपते, मनो मथ्यते चित्तं चञ्चल्यते, लोचने लोलतः,

---

स्मरणगोचरा। मृतेति यावत्।

रामेश्वरयात्राया समाख्यया = नाम्ना। निष्कृष्टार्थम् = निर्गलिताभिप्रायम्। नूत्नाम् = नव्याम्। समाधिस्थः=चित्तनिरोधार्थक्रियानिरतः। एकतानः = अनन्यमनस्कः। उदन्तम् = वृत्तान्तम्।

रोमाणि = तनूरुहाणि। उद्भवन्ति=उद्गच्छन्ति। चञ्चल्यते = अतितरां चञ्चलं भवति। लोलतः = चञ्चले भवतः। जर्जरीभवन्ति = शीर्यते।

---

थी)। तदनन्तर मैं अपने लगभग दस वर्ष के पुत्र रामसिंह को साथ लिये हुये रामेश्वर के दर्शन को चल दिया।

गौरसिंह ने रामेश्वर यात्रा के सम्बन्ध में उच्चरित पुत्र का नाम रामसिंह सुनकर, 'स्वयं भी खड्गसिंह के घर बहुत बार गया हूँ' यह सब सारांश सुनते हुए तथा देवशर्मा द्वारा कथित नवीन कहानी को याद करते हुये समाधिस्थ की भाँति एकाग्र होकर इस वृत्तान्त को सुना।

ब्रह्मचारिगुरु—उसके बाद जो हुआ उसके कहने से भी स्मरण करने से भी मेरा हृदय काँपता है। फिर भी क्या करें, मनुष्यों का हृदय वज्र से बना है। जिसका स्मरण करने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, शरीर काँपने लगता है, मन व्याकुल हो जाता है, चित्त चञ्चल हो जाता

जीवनञ्च जर्जरीभवति; तदेव दुःखम्, तदेव व्यसनम्, तामेव च यन्त्रणाम् अनुभूयापि जीवामि-इति वदन्नेवोच्छ्वस्य अपाङ्गसङ्गिनो द्वित्रान् वाष्प-बिन्दून् पटप्रान्तेन अपाहरत्।

गौर०—तात! परिवर्त्ती संसारः, अवितर्कणीया दैवघटना, अवश्यम्भाविनो भावाः, सुखदुःखमय एव च संसारः, कस्य दुःखासम्भिन्नं सुखम्। कस्य निःशेषं पूर्णा अभिलाषाः? कस्य अपरिचित-पश्चात्ताप-संघर्षं हृदयम्? तत् पौर्वापर्य्येणाऽऽलोच्य धैर्य्यमेव धारणीयं धर्म-धारि-धौरेयैः।

---

करुणरसप्रवाहोऽत्र गद्ये। वैदर्भी च रीतिः स्फुटैव।

दुःखव्यसनयोरिह समानार्थत्वेऽपि दुःखिनाभिहितमिति न पुनरुक्तदोषः, प्रत्युत गुणः। यन्त्रणाम् = मानसव्यथाम्। उच्छ्वस्य = दीर्घं निश्वस्य। अपाङ्गसङ्गिनः = नेत्रप्रान्तलग्नान्। अपाहरत् = अदूरयत्।

परिवर्त्ती = परिवर्त्तनशीलः। अवितर्कणीया = असम्भाव्या। दैवघटना = भाग्यकृतिः। भावाः = भवनीयाः पदार्थाः, दुःखेन, असम्भिन्नम् = असम्पृक्तम्। निःशेषम्, यथा स्यात्तथा। अभिलाषाः = मनोरथाः। अपरिचित-पश्चात्ताप-सङ्घर्षम् = अविज्ञातानुतापसङ्घट्टम्। बहुव्रीहिः। धर्मधारिधौरेयैः = धार्मिकाग्रेसरैः।

---

है, आँखें चपल हो जाती हैं तथा जीवन जर्जर हो जाता है (निस्सार जान पड़ने लगता है), उसी दुख, उसी विरक्ति, तथा उसी यन्त्रणा का अनुभव करके भी मैं जीवित हूँ। यह कहते हुये ही लम्बी साँस लेकर पलकों में लगे हुये दो तीन अश्रुबिन्दुओं को वस्त्र के छोर से पोंछ दिया।

गौरसिंह—तात! संसार परिवर्तनशील है, दैवी घटना अचिन्त्य है। होने वाली बात भी होकर ही रहती है और संसार भी सुखदुःखमय है; किसका सुख, दुःख से अछूता है? अभिलाषायें किसकी पूर्ण हो सकी हैं? किसका हृदय पश्चात्ताप के संघर्ष से अपरिचित है? अतः पूर्वापर का विचार कर धर्मशीलों में श्रेष्ठ श्रीमान् को धैर्य ही धारण करना चाहिये।

ब्रह्मचारिगुरुः—[ बाष्पं निरुध्य ] अथाकस्मादेव सहड्हड़ा-शब्दमाकुलयितुमारब्धवती वात्या। पारावारश्च पयसः पर्वतानिव तरङ्ग-भङ्गान् रचयितुमारब्धवान्, पोतेन चास्माकमारब्ध दोल-येव दोलितुम्। तावदुद्विग्नानिव कर्णधारानालोक्य महान्तं क्रन्दन कोलाहलं कलितवन्तः सकला यात्रिनिकराः। ततो भय-भ्रान्त-नयनस्य रामबालस्य करं गृहीत्वा समागतः पुरोहितो मां झटि-त्यवादीत्—

"प्रभो ! नायमवसरः शुष्कचिन्तया क्षणमप्यतिवाहयितुम्। अस्मिन्नुडुपे बहवः कार्पास-भाराः सन्ति, तेषामेकं दृढं कराभ्यां

आकुलयितुम् = क्षुभितं विधातुम्। वात्या = वातसमूहः। पारा-वारः = अम्भोधिः। पयसः, पर्वतानिवेत्युत्प्रेक्षा। तरङ्गभङ्गान् = वीचिरचनाः। रचयितुम् = विन्यस्तुम्। दोलयेव = दोलायन्त्रेणेव। दोलितुम् = हिल्लोलितुम्। उद्विग्नान् = भीतिग्रस्तचेतसः। कर्णधारान् = नाविकान्। क्रन्दनकोलाहलम् = रोदनकलकलम्। कलितवन्तः = कृतवन्तः। भयभ्रान्तनयनस्य = भीतिचञ्चलनेत्रस्य।

शुष्कया=कर्तव्यशून्यया, वृथाप्रायया। चिन्तया = विचारधारया। अतिवाहयितुम् = यापयितुम्। उडुपे = नावि। कार्पासभाराः=तूलभाराः।

ब्रह्मचारिगुरु—[ आँसू रोक कर ] तदनन्तर अकस्मात् ही हहराता हुआ तूफान व्याकुल करने लगा, समुद्र पर्वतों के समान लहरें उछालने लगा और हमारा पोत भी झूले की तरह झूलने लगा। उसी समय नाविकों को उद्विग्न सा देखकर सभी यात्रीगण रोने चिल्लाने लगे। तदनन्तर भय से चञ्चल नेत्रों वाले बालक 'राम' का हाथ पकड़े हुए पुरोहित ने आकर मुझसे कहा—

महाराज ! कोरी चिन्ता में एक क्षण भी बिताने का समय नहीं है। इस नौका पर बहुत से कपास के गट्ठर हैं, उनमें से एक को हाथों में दृढ़ता

धृत्वा, भवता नव-प्रान्तस्थेन भाव्यम्। भवान् किञ्चित् तुन्दिभ इति न पारयिष्यते बालमेनं रक्षितुम्, तदहं पृथुकमेनमात्मना सह गोपायिष्यामि"--इति व्याहृत्य, स्वपृष्ठदेशे उत्तरीयेणातित्रस्तं रामसिंहं दृढं बद्ध्वा, कार्पास-भारमेकमानाय्य, तद्दत्त-हस्तावलम्बनस्तस्थौ। अहमपि च तथैव विहितवान्। द्वावपि चाऽऽवां परमेश्वरं स्मरन्तौ, परितो दोधूयमानस्योदन्वतो दोदुल्यमानैर्लोललोलैः कल्लोलैश्चङ्क्रम्यमाणौ, क्वचिन्नित् लोकालोकमाकृष्य लोका-

नवप्रान्तस्थेन=नौकासमीपवर्तिना। तुन्दिभ=तुन्दिल। "तुन्दिलस्तुन्दिभस्तुन्दी" इत्यमरः। रक्षितुम्=गोपयितुम्। पृथुकम्=बालम्। "पृथुको चिपिटार्भकाविः" त्यमरः। व्याहृत्य=कथयित्वा। उत्तरीयेण=प्रावरणेन। अतित्रस्तम्=परं भीतम्। तस्मिन्=कार्पासभारे, दत्तम्, हस्तावलम्बनम्=कराश्रयो येन तथाभूत। दोधूयमानस्य=अतितरां कम्पमानस्य। उदन्वतः=वारिनिधेः। दोदुल्यमानैः=अत्यन्तं चलद्भिः। लोललोलैः=अतिचञ्चलैः। प्रथमविशेषण तावदुद्गच्छतां कल्लोलानां द्वितीयं तूद्गतानां तेषामिति न पौनरुक्त्यम्। कल्लोलैः=महालहरिभिः। "महत्सूल्लोलकल्लोलौ" इत्यमरः। चङ्क्रम्यमाणौ=अतितरामुच्छाल्यमानौ। लोकस्य=संसारस्य, आलोकम्=प्रकाशम्। आकृष्य=अपकृष्य।

से पकड़कर आप नौका के किनारे हो जाइये। आप कुछ तोंद वाले हैं। अतः इस बालक की रक्षा नहीं कर पायेंगे, इसलिये मैं अपने साथ इस बच्चे की भी रक्षा करूँगा। यह कहकर अत्यन्त डरे हुये रामसिंह को अपने उत्तरीय से अपनी पीठ पर मजबूती से बाँधकर एक कपास का गट्ठर मँगाकर उस पर हाथ टेककर खड़े हो गये। मैंने भी वैसा ही किया। हम दोनों ने ही परमेश्वर का स्मरण करते हुये चारों ओर से उमड़ते हुये समुद्र की लहराती हुई अत्यन्त चपल उत्ताल तरङ्गों से उछाले जाते हुए, संसार के प्रकाश को समेटकर लोकालोक ( अस्ताचल ) को लाँघने की

लोकमिवोल्लिलङ्घयिषुमस्ताचलचूडाचुम्बिनं लोकलोचनमालोकमालोकम्, कदाचिद् बाष्पबिन्दुस्नातश्मश्रुं पुरोहितम्, रोरुद्यमानमस्माभिः स्वयं रोदनोन्मुखैरपि कथमपि बोबुध्यमानं बालकं च दर्शं दर्शं युगमिव मन्वन्तरमिव कल्पमिव च कांश्चित् क्षणानजीगमाव।

अथ बलवतैकेन तरङ्गाघातेन क्षणं विस्मृतात्मानौ परतश्च चक्षुषी उन्मील्य आवां दृष्टवन्तौ, यन्न स पोतः, न तत्स्थानम्, न वा ते तथाभूताः सहचराः। विक्षुभितेनापि मया धैर्यमाधायादर्शि-

लोकालोकम्=चरमाचलान्तिकगिरिम्। उल्लिलङ्घयिषुम्=उल्लङ्घयितुमिच्छुम्। अस्ताचलस्य=चरमगिरेः, चूडाचुम्बिनम्=उन्नतभागाश्लेषिणम्। अस्तं यान्तमिति यावत्। लोकलोचनम्=संसारनेत्रं सूर्यम्। आलोकमालोकम्=दृष्ट्वा दृष्ट्वा। बाष्पबिन्दुस्नातश्मश्रुम्=अश्रुक्लिन्नमुखकेशम्। पुरोहितम्=सर्वश्रेष्ठहितकारकम्, वैदिककार्यनिर्वाहकं ब्राह्मणम्। रोरुद्यमानम्=बारं बारं रुदन्तम्। बोबुध्यमानम्="मा भैः, बारं भावयामस्वामनैवे" इत्यादि शिक्ष्यमाणम्। युगमिव=कलिप्रभृतिमिव। मन्वन्तरमिव="मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः" इत्यमरः। कल्पम्=एकसहस्रमहायुगात्मकं कालम्। अजीगमाव=अक्षपयाव।

परतश्च=अन्यभागेन। तथाभूताः=मज्जन्तः। आधाय=अवलम्ब्य। अदर्शि=

इच्छा वाले, अस्ताचल की चोटी का स्पर्श कर रहे संसार के नेत्र (सूर्य) को देखते हुए, कभी आँसू की बूँदों से भीगी मूँछों वाले पुरोहित को और कभी स्वयं रुआँसे होते हुये भी हमलोगों द्वारा किसी प्रकार समझाये जा रहे और बार-बार रो रहे बालक रामसिंह को देखते हुए युग की भाँति मन्वन्तर की भाँति और कल्प की भाँति कुछ क्षण बिताए।

तदनन्तर एक बलवान् तरङ्ग के आघात से क्षणभर आत्म-विस्मृत होकर बाद में आँखें खोलकर हम दोनों ने देखा कि न तो वह नौका है, न वह स्थान और न तो वे साथी ही हैं। मैंने घबराये हुये होने

दृष्टम्। यद् धृतकार्पासभारोऽहं कदाचित्तरंगोत्तमाङ्गे कदाचिच्च तरंग-तले तरामि, अपरे च तथैव कार्पासभारान्, अभ्रीः, क्षेपणीः सेचनानि, आनायान्, कुवेणीश्च धृत्वा सचीत्कारं तरन्ति। तेषामेव च मध्ये मम पुरोहितोऽपि क्रन्दमानं राम पृष्ठे वहन्, वीचिभंगै-राहन्यते-इति क्षणत एव च तरंगभंगैराहतो न वेद्मि—के कुतः प्रयाताः ? पञ्चषा एव च वयं तथाभूता अवशिष्टाः।

एवमतिलोलं कोलमकूपारस्य तल प्रवेश्य, प्रशान्तो झञ्झावातः। उदन्वानपि तरंगोच्छालन-वेगं कथमपि मन्दमकार्षीत्। तदा मया

---

तरंगोत्तमांगे=लहरिशिरसि। तरामि=प्लवामि। अभ्रीः=काष्ठकुद्दालान् नौमलक्षालनार्थकान्, "अभ्रिः स्त्री काष्ठकुद्दालः" इत्यमरः। क्षेपणीः =नोदण्डान्। "नौकादण्डः क्षेपणी" इत्यमरः। सेचनानि=नौकागत-जलदूरीकरणभाण्डानि। आनायान्=जालानि। कुवेणीः=मत्स्याधानीः। "आनायः पुंसि जाल स्यात्, मत्स्याधानी कुवेणी स्यादि"ति चामरः। आहन्यते=ताड्यते। तथाभूताः = तरङ्गभङ्गाहताः।

कोलम्=प्लवम्। अकूपारस्य=क्षीरधेः। तलम्=अन्तरालम्। झञ्झावातः = सवृष्टिको महावायुः। तरंगोच्छालनवेगम्=लहरिहिल्लो-

---

पर भी हिम्मत करके देखा कि कपास का गट्ठर पकड़े मैं कभी तरङ्गों के ऊपर और कभी नीचे तैर रहा हूँ, दूसरे भी उसी प्रकार कपास के गट्ठरों, अभ्री ( नाव को साफ करने वाली काष्ठमय कुदाल ) पतवार, पानी उलीचने के काष्ठमय पात्र, जाल और टोकरी पकड़े चिल्लाते हुए तैर रहे हैं। उन्हीं में मेरे पुरोहित भी रोते हुये 'राम' राम को पीठ पर लिये, तरङ्गों के प्रवाह से आहत हो रहे हैं, क्षण भर बाद ही लहरों के प्रवाह से आहत हो रहे हैं, क्षण भर बाद ही लहरों के प्रवाह से आहत होने के कारण मैं न जान सका कि कौन कहाँ चला गया ? हम पाँच छः लोग उस आघात के बाद बच रहे।

इस प्रकार अत्यधिक लड़खड़ाती नौका को समुद्र के तल में पहुँचा

केवलं पुरोहित एव धृत-कार्पास-भारः सम्मुखमालोकि। इतरे च, नावेदिपं वीचि-घात-र्नातः कुतो नीता इति। इतः सूर्य्यस्यास्तमन-समयः, ततः समागच्छन्ती घोरा रजनी, तटस्य कथाऽऽपि नाऽऽसीत्, उपरि गगनम्, अधश्च सागरः, परितः प्रसर्पिणो वातवाताः, परिकलितात्पिष्टाकारा अपि भयानकास्तरङ्गभङ्गाः।

अथ शनैः शनैः समुद्रेणाहमेकतोऽपसारयितुमारब्धः, पुरोहितश्च परतः। उभयोरनिच्छतोरप्यन्तरालमावयोरवर्धिष्ट। क्षणानन्तरमेव च स मम चक्षुषोः पन्थानमतीतः। ततोऽहं कदाचिद् रामम्, कर्हिचित् पुरोहितं च स्मरन्, कर्हिचित् व्यतीतं निजजीवनं चिन्तयन्, कदाचित् समाप्तमिदं दुःखान्तमायुरिति भावयन्,

स्तनवम्। नावेदिषम् = नाज्ञासिषम्। समागच्छन्ती = आयान्ती। घोरा = भीतिप्रदा। वातवाताः = समीरताडनानि। परिकलितात्पिष्टाकाराः = धारितलघुतमाकृतयः।

एकतः = एकस्यां दिशि। अपसारयितुम् = दूरीकर्तुम्। अन्तरालम् = व्यवधानम्। अवर्धिष्ट = प्रैधिष्ट। सः = पुरोहितः सरामः। व्यतीतम् = भूतम्। दुःखान्तम् = क्लेशान्तम्। भावयन् = विचारयन्।

कर तूफान शान्त हो गया। समुद्र ने भी ऊँची लहरों को उछालने के वेग को किसी प्रकार कम किया। उस समय मैंने कपास का गट्ठर पकड़े हुये केवल पुरोहित को ही सामने देखा। अन्य यात्री लहरों के थपेड़ों से न जाने कहाँ पहुँचा दिये गये। इधर सूर्यास्त का समय था और उधर वे भयानक रात्रि, तट की तो बात ही नहीं थी, ऊपर आकाश नीचे समुद्र और चारों ओर फैल रहे वायु के झोंके और छोटी आकारवाली होने पर भी भयङ्कर समुद्री लहरें।

तदनन्तर धीरे-धीरे समुद्र मुझे एक ओर बहाने लगा, और पुरोहित को दूसरी ओर। हम दोनों के न चाहते हुए भी हम दोनों की दूरी बढ़ती गई। कुछ देर बाद ही वह मेरी आँखों से ओझल हो गए। तब मैं कभी रामसिंह को तथा कभी पुरोहित को स्मरण करता हुआ, कभी अपने बीते

कर्हिचित् सक्रन्दं परमात्मानं ध्यायन्, प्रतिपदं पयःपूरेण लाव्यमान इव, तिमिंगिलैर्गीर्यमाण इव, ग्राहैर्ग्रस्यमान इव, सामुद्रिकसत्त्वैरास्वाद्यमान इव, परीवाहैरुह्यमान इव, यमेन नियम्यमान इव, कालेन काल्यमान इव, मृत्युना च मार्यमाण इव, तारकितं गगनम्, तरङ्गितं सागरम्, प्रेङ्खितं वीचिप्रचयम्, क्षार-क्षोद-क्षीयमाणं चाऽऽत्मानमवलोकयन्, न वेद्मि कैः कैः क्रन्दनैर्धैर्य-

---

सक्रन्दम् = सरोदनम्। प्रतिपदम् = पदे पदे। पयःपूरेण = वारिप्रवाहेण। लाव्यमानः = निमज्ज्यमानः। तिमिंगिलैः = महामत्स्यैः। गीर्यमाण इव = उदरे क्रियमाण इव। ग्राहैः = नक्रैः। ग्रस्यमान इव = कवलीक्रियमाण इव। सामुद्रिकसत्त्वैः = यादोभिः। जलजन्तुभिः। आस्वाद्यमान इव = रस्यमान इव। परीवाहैः = आवर्त्तैः। उह्यमान इव = नीयमान इव। यमेन = वैवस्वतेन। नियम्यमान इव = निबध्यमान इव। कालेन = समयेन। मृत्योरग्रेऽभिधानादेवमेवार्थः। काल्यमान इव = प्रेर्यमाण इव। मृत्युना = अन्तकेन। मार्यमाण इव = ध्वस्यमान इव। तारकितम् = उडुपेतम्। गगनम् = नभः। तरङ्गितम् = लहरिसमेतम्। प्रेङ्खितम् = उल्लोलितम्। वीचिप्रचयम् = लहरिव्रजम्। क्षारक्षोदक्षीयमाणम् = समुद्रडिण्डीरापचीयमानम्। वर्मीम् = रात्रिम्।

---

हुए जीवन के विषय में सोचता हुआ, कभी यह दुःखान्त आयु समाप्त हो गई यह विचार करता हुआ, कभी रोता हुआ परमात्मा का ध्यान करता हुआ, पद-पद पर जल के प्रवाह से डुबोया जा रहा सा, तिमिङ्गिलों द्वारा निगला जा रहा सा, ग्रहों द्वारा कवलित हो रहा सा, समुद्र के जीवों द्वारा खाया जा रहा सा, आवर्तों द्वारा बहाया जा रहा सा, यमराज द्वारा पकड़ा जा रहा सा, समय द्वारा प्रेरित किया जा रहा सा, और मृत्यु द्वारा मारा जा रहा सा, तारकित आकाश, तरङ्गित सागर, उछलती लहरों और नमकीन फेन से गल रहे अपने आपको देखता हुआ, न जाने किस-किस

धारयैर्भगवत्स्मरणैश्च तमोमतिवाहयाम्बभूव।

अथ शनैः समुद्रफेनेष्विव लीयमानेषु तारकानिकरेषु, उडुपे इव प्रतीच्यां निमग्ने उडुपे, सरस्वत्तरङ्गोच्छालितांस्तोयकणान् माणिक्यानिव विदधत् प्राचीं कुङ्कुम-बलाहक-निकराक्रान्तामिवाकार्षीद्भगवान् भास्वान्। अस्मिन् समये वीचिक्षोभोऽतिमन्द आसीदित्यपारयमहं सुदूरमीक्षितुम्। उद्ग्रीवेणापि विस्फारितचक्षुषाऽपि नाऽऽलोकि पुरोहितो वा भूभागो वा।

---

अतिवाहयाम्बभूव = अतिगमयामास। लिट् उत्तमपुरुषस्य रूपम्। न चैतत्स्वनेन भिन्नविभागाभिधानात्तारोचयमुपपादनीयम् "बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहमि" इत्यादाविवेति वेदितव्यम्।

समुद्रफेनेषु = वारिधिडिण्डीरेषु। तारकानिकरेषु = भगणेषु। उडुपे = नावि। इवनाऽपेक्षा प्रतीच्याम् = पश्चिमायाम्। निमग्ने = ब्रुडिते। उडुपे = तारकाधिनाथे चन्द्रे। सरस्वतः = अर्णवस्य। "सरस्वान् सागरोऽर्णवः" इत्यमरः। तरङ्गोच्छालितान् = लहरिसमुत्थापितान्। तोयकणान् = अम्भोबिन्दून्। माणिक्यानिव = मौक्तिकानीव। कुङ्कुमबलाहकनिकराक्रान्तामिव = केसरमेघव्याप्तामिव। भास्वान् = दिनेशः। वीचिक्षोभः = लहरिसञ्चलनम्। अपारयम् = शक्तोऽभूवम्। ईक्षितुम् = द्रष्टुम्। उद्ग्रीवेणापि = उत्कन्धरेणापि। भूभागः = महीतलम्।

---

प्रकार रोकर, धैर्य धारण कर भगवान का स्मरण कर रात बिता पाया।

तदनन्तर तारा के समूह के धीरे-धीरे समुद्र के फेन में विलीन से हो जाने पर, पश्चिम दिशा में चन्द्रमा के नौका के समान डूब जाने पर, समुद्र की तरङ्गों से उछाले गये जलकणों को मणियों के समान बनाते हुए, भगवान सूर्य ने पूर्वदिशा को केसर के मेघों से व्याप्त कर दिया। इस समय लहरों के उठने का वेग बहुत कम था अतः मैं बहुत दूर तक देख सकता था, किन्तु गर्दन उठाकर और आँखें फैलाकर देखने पर भी पुरोहित को या भूमिभाग को नहीं देख पाया।

समुद्रेण तूर्मिघातैः प्रागेव प्रेर्यमाणश्चिरादनन्तरमद्राक्षं गुणवृक्षकमिव कस्यापि पोतस्य। क्षणेनैव वायुना समुद्धूयमानाः पटाः, परतश्च वेगेन मदध्यासितामेव दिशं समुपसर्पन् मय एको दृष्टः। तन्नियामकाश्च कथमप्युद्धृतकरं मामवलोक्यैव वायुविधूतान् पटान् विचाल्य मामेव लक्ष्यीकृत्य समायाताः, कथं कथमपि च मामुत्थाप्य स्वपोते समुपस्थापयन्। अहन्तु तत्र स्थाने प्राप्यैव निश्वस्य पतितश्चिरं मूर्च्छामापम। ते तु तैलमर्दनादिभिर्मां सुखयन्तः सुरत-नगरप्रान्तं आगत्य मामुद्बोध्य दुग्धादि पाययित्वा तटे व्यसृजन्।

अहन्तु क्षारोद-क्षार-नीलीकृत-वर्णः सुरतनगरे परिभ्रमन्,

---

ऊर्मिघातैः = तरङ्गताडनैः। प्रेर्यमाणः = प्रोह्यमानः। गुणवृक्षकमिव = कूपकमिव। समुद्धूयमानाः = विलोल्यमानाः। मदध्यासिताम् = मत्सेविताम्। मयः = जलयानम्। तन्नियामकाः = तत्सञ्चालकाः। उद्धृतकरम् = उत्थापितकरम्। वायुविधूतान् = वातचालितान्। समुपस्थापयन् = सम्यगुपानयन्। आपम = प्राप्तवान्। व्यसृजन् = त्यक्तवन्तः।

क्षारोदस्य = क्षारनिधेः, क्षारेण = लवणाम्भसा, नीलीकृतवर्णः =

---

तरङ्गों के आघातों से समुद्र द्वारा पहले से ही धकेले जाते हुए मुझको बहुत देर बाद किसी जहाज का मस्तूल सा दिखाई पड़ा। कुछ देर बाद ही हवा से उड़ते हुये पाल दिखाई दिये और फिर वेगपूर्वक मेरी ही ओर आती हुई एक बड़ी नौका दिखाई पड़ी। उसके चलाने वाले, किसी प्रकार हाथ उठाए हुये मुझे देखकर हवा से उड़ते हुये पालों की दिशा बदल कर मुझे लक्ष्य कर मेरे पास आ गये और किसी प्रकार मुझे उठाकर अपनी नाव पर बिठा लिया। मैं वहाँ पहुँचते ही दीर्घनिःश्वास लेकर मूर्छित हो गया, और बड़ी देर तक मूर्छा में ही पड़ा रहा। उन्होंने तेल की मालिश आदि करके मुझे आराम पहुँचा कर, सूरत नगर के किनारे आकर मुझे जगाकर दूध आदि पिलाकर तट पर छोड़ दिया।

समुद्र के खारे जल के सर्वाङ्ग स्पर्श के कारण साँवला हो गया मैं

रामचन्द्र-मन्दिरमेकमवाप्य तत्रैव विरक्त-भिक्षुकाणां मध्ये निवसन् मन्दिराध्यक्षेण चिकित्सित उल्लाघोऽभूवम्। एकदा विहितनित्यनियमं तं स्वपुत्रपुरोहितयोः कुशलविषये समपृच्छम्। स च चिरं ध्यात्वाऽनूक्त यत्—मा स्म प्रसिद्धा अमङ्गलचिन्तया, क्वापि समुद्रतटे संलग्नौ तव पुत्रपुरोहितौ त्वदपेक्षयाऽधिक तौ कुशलिनौ स्त.।

अथ "भगवन्! कथं तत्साक्षात्कारो भवेत्?"—इति पृष्टश्च मां मन्त्रमेकमुपादिक्षत्, उक्तवांश्च यद्—"आसन्ने तव तनयस्योद्वाहसमये तेन तव सम्मेलनं भविष्यति, तावदेनं मन्त्रराजं जप।" अहं तु मत्र वारं वारं लुण्ठकोपद्रवमवलोक्य, तुरुष्क-मौद्गल-

श्यामीकृतः। विरक्तानाम = विरागिणाम्। भिक्षुकाणाम् = भिक्षारतानाम्, मस्करिणां वा। चिकित्सितः = औषधेनोपचरित। उल्लाघः = रोगनिर्मुक्तः। "उल्लाघो निर्गतो गदात्" इत्यमरः। विहितनित्यनियमम् = कृतनैत्यिकृत्यम्। तम् = मन्दिराध्यक्षम्। मा स्म प्रसिद्धाः = प्रस्तो मा भू। अमङ्गलचिन्तया = मरणादिकल्पनया। कुशलिनौ = सानन्दौ।

उपादिक्षत् = उपदिष्टवान्। आसन्ने = समीपस्थे। तुरुष्काः "तुर्क" इति, मौद्गलाः "मोगल" इति, गोरण्डाः "गोरे" इति, पाठीनाः

सूरत नगर में घूमता हुआ भगवान रामचन्द्र के एक मन्दिर में पहुँच कर वहीं पर विरक्त भिक्षुओं के बीच में रहता हुआ मन्दिर के अध्यक्ष की चिकित्सा से रोग मुक्त हो गया। एक बार मैंने उनकी नित्यविधि के समाप्त होने पर अपने पुत्र और पुरोहित की कुशल के बारे में उनसे पूछा। उन्होंने बहुत देर तक ध्यान लगाकर मुझसे कहा कि तुम उनके अमंगल की चिन्ता से अपने को दुःखी मत करो। तुम्हारे पुत्र और पुरोहित कहीं समुद्र के किनारे लग गये हैं और तुम से भी अधिक कुशल से हैं।

तदनन्तर मेरे, 'महाराज! उनको कैसे मिल सकूँगा,' यह पूछने पर ने मुझे एक मन्त्र का उपदेश दिया और कहा कि तुम्हारे पुत्र के के समय के आसन्न होने पर तुम उससे मिलोगे, तब तक इस

गोरण्ड-पाठीनादीनां महासम्मर्दं च सम्भाव्य इतोऽस्मिन् देशे समागतोऽस्मि। न जाने कदा जीवन्तं रामं द्रक्ष्यामि—इति।

गौर०—विचित्रा दैवघटना, विचित्र एव चायं भवतो वृत्तान्तः। अवश्यमेव कञ्चित् समयमतिवाह्य मन्त्रबलेन द्रक्ष्यत्यार्यः स्वपुत्रस्यापि मुखम्। अपि पृच्छेयं कथमिव महाराष्ट्रराजेन समालापो जातः ?—इति।

ब्रह्मचारिगुरुः—भीमायास्तटे स्नात्वा परावर्तमानस्य ममैकदा द्वाभ्यां म्लेच्छलुण्ठकाभ्यां सह मेलनमासीत्। तयोरेकेनोक्तम्—"त्यज सर्वं वस्त्रादिकम्, अन्यथा व्यापाद्यसे"—इति। तत्क्षणमेव मयैकया प्रबलचपेटिकया स तथाऽभिहतो यत्पीतं रक्तं श्याममिव च दिक्चक्रमालोकयन् निरुद्धनिश्वासो भ्रान्त्वा भूमि-

---

"पठान" इति च ख्याता लोके। महासम्मर्दम् = अतिसंघर्षम्।

विचित्रा=आश्चर्या। कथमिव=केन प्रकारेण। समालापः=वार्ता।

परावर्त्तमानस्य = निवर्तमानस्य। म्लेच्छलुण्ठकाभ्याम् = यवनचौराभ्याम्। व्यापाद्यसे = हन्यसे। प्रबलया = असहनीयया, चपेटिकया = दलेन। पीतं रक्तं श्याममिव च दिक्चक्रम् = हरिद्गणम्। आसन्नमरणस्वभाववर्णनम्। निरुद्धनिश्वासः=स्तब्धप्राणवायुः। भ्रान्त्वा=परिभ्रम्य,

---

श्रेष्ठ मन्त्र का जप करो। मैं वहाँ पर बार बार लुटेरों का उपद्रव देखकर तथा तुर्कों मुगलों, गोरों और पठानों के भयंकर संघर्ष की सम्भावना देखकर इधर इस देश में आ गया हूँ। न जाने कब जीवित रामसिंह को देखूँगा।

गौरसिंह—भाग्य का विचित्र खेल है और आपका यह वृत्तान्त भी अद्भुत है। अवश्य ही कुछ समय व्यतीत कर मन्त्र के बल से आर्य अपने पुत्र का मुख देखेंगे। क्या यह पूछ सकता हूँ कि महाराष्ट्र नरेश से कैसे परिचय हुआ ?

ब्रह्मचारिगुरु—एक बार मैं भीमा नदी में स्नान कर लौट रहा था कि किनारे पर दो यवन लुटेरों से भेंट हो गई। उनमें से एक ने कहा—"सभी वस्त्र आदि उतार दो, नहीं तो हम तुम्हें मार डालेंगे।" उसी क्षण

मालिङ्गितवान्। द्वितीयश्च निस्त्रिंशं कोषाद्‌आकर्षन् मामभिचलितः। तस्य हस्तादर्द्धकृष्टमेव कृपाणमहमाच्छिद्य त्सरुणा तथा मस्तके हतवान्; यथा सोऽपि मूर्छितः स्वसहचरस्य चरणयोः पतित। तत्खड्गं गृहीत्वा चाहं कुशलेन न्यवर्तिषि।

घटनामेतां दूरतोऽश्वं चालयन् महाराष्ट्रराजोऽपश्यत्। स च मार्ग एव मत्समीपमागत्य,ससाधुवादं मम जातिमभिप्रेतञ्च पृष्ट्वा, पञ्चपान् भृत्यान् मम सेवायां नियोज्य, अस्मिंस्तडागतटे पर्णकुटीरे मामस्थापयत्। अहं च सर्वथा तस्य जयमीहमानो यथाशक्यं यतमानश्चात्र तिष्ठामि, मन्त्रं च साधयामि। महाराष्ट्र-

"चक्कर खाकर" इति भाषायाम्। आलिङ्गितवान् = आश्लिष्टः। निस्त्रिंशम् = खड्गम्। कोषात् = असिधान्याः। अभिचलितः = सम्मुखमागतः। अर्धकृष्टम् = कोषादर्धनिष्कासितम्। कृपाणम् = असिम्। आच्छिद्य = प्रसभं आकृष्य। त्सरुणा = खड्गमुष्टिना। न्यवर्तिषि = निवृत्तोऽभूवम्।

जातिम् = ब्राह्मणत्वादिव्यावर्तकधर्मम्। अभिप्रेतम् = इष्टम्। ईहमानः = समभिलषन्। यतमानः = चेष्टमानः।

मैंने उसे एक ऐसा जोर का थप्पड़ मारा कि उसे दिशायें पीली, लाल और हरी सी दिखाई देने लगीं, और उसकी साँस रुक गई, तथा वह चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़ा, दूसरा लुटेरा म्यान से तलवार खींचते हुये मेरी ओर बढ़ा, मैंने उसके हाथ से म्यान से आधी खिंची हुई तलवार छीन कर उसकी मूँठ से उसके सिर पर ऐसा प्रहार किया कि वह भी मूर्छित होकर अपने साथी के पैरों पर गिर पड़ा। उसकी तलवार लेकर मैं सकुशल लौट आया।

इस घटना को दूर से ही घोड़ा दौड़ाते हुये महाराष्ट्र नरेश ने देख लिया। उन्होंने मेरे मार्ग में ही मेरे पास आकर मेरी जाति और मेरा उद्देश्य पूछ कर अपने पाँच-छः सेवकों को मेरी सेवा में नियुक्त कर मुझे इस तालाब के किनारे पर्णकुटी में रहने के लिये स्थान दे दिया। मैं भी

राजोऽपि मम निखिल वृत्तान्तं न वेत्ति।

गौर०—[ मनसि बहुशश्चिन्तयन् ] आर्य ! क्षम्यतां श्रीमतो नाममन्त्रश्रवणेन कर्णौ पिपावयिषत्येष जनः।

ब्रह्मचारिगुरुः—किमिव नाम्ना ? यदा मम परितो गच्छतां गजानां घण्टानादैर्दिगन्तोऽपूर्यत तदा तु स्वप्नेष्वपि शत्रूणां कर्णकुहरं निविशमानं ममापरमेव किमपि नामाऽऽसीत्। अधुना तु ब्रह्मचारिगुरुरित्येव वदन्ति जनाः।

गौर०—क्षम्यताम्, परमं मम कुतूहलं तदेव श्रोतुं नाम श्रीमतः।

ब्रह्मचारिगुरुः—[ चिरं नूष्णीं स्थित्वा ] वत्स ! तदानीं मां वीरेन्द्रसिंह —इत्यवदन् जनाः।

गौर०—[ प्रणमन् ] आर्य ! वत्किं स्मर्यते यन्मम पित्रा कश्चन सम्बन्धोऽपि प्रतिज्ञातः ?—इति।

नामैव = अभिधानमेव, मन्त्रः = देवताप्रतिपादकवर्णानुपूर्वीविशेषः। तस्य श्रवणेन = तदाकर्णनेन। पिपावयिषति = पावयितुमिच्छति। भवतो नाम श्रोतुमिच्छामि इति यावत्।

कर्णकुहरम् = श्रोत्रच्छिद्रम्। कर्णशष्कुलीमिति यावत्।

सर्वथा उनकी विजय कामना करता रहता हूँ और उनकी विजय के लिये यथाशक्ति प्रयत्न भी करता रहता हूँ तथा अपना मन्त्र भी सिद्ध करता रहता हूँ। महाराष्ट्र नरेश भी मेरे पूरे वृत्तान्त को नहीं जानते हैं।

गौरसिंह—[ मन में अनेक प्रकार से सोचते हुये ] पूज्यवर ! क्षमा कीजिये, श्रीमान् के नामरूपी मन्त्र को सुनकर मैं अपने कानों को पवित्र करना चाहता हूँ।

ब्रह्मचारिगुरु—नाम में क्या रखा है ? जब मेरे चारों ओर चलने वाले हाथियों के घण्टाध्वनि से दिशायें भर जाती थीं उस समय स्वप्न में भी शत्रुओं के कर्णकुहर में प्रवेश करनेवाला मेरा दूसरा ही नाम था। अब तो लोग ब्रह्मचारिगुरु ही कहते हैं।

गौरसिंह—क्षमा कीजिये, मुझे आपके उसी नाम को सुनने की उत्सुकता है।

ब्रह्मचारिगुरुः—वत्स ! सर्वं स्मरामि, किन्तु तत्कथोपकथनैर्दुःख-मेव वर्द्धतेतमामिति–अलमालप्यामुष्मिन् विषये ।

गौर०—आर्य ! अलं तद्विषये शोकावहनेन । न भवन्ति भवादृशैः सनियममनुष्ठितानि मन्त्र-साधनानि विफलानि । राम-सिंहं वयमपि विशिष्य मार्गयिष्यामः ।

एवमालपतोरेव तयोरकस्मादुपावर्त्तत हयारूढो रघुवीरसिंहः । झटिति रामसिंहमयी दृष्टिरपतत् तदुपरि सर्वेषाम् । यदि जीवेद् वयसा रूपेण ईदृश एव सम्भोभूयेत रामसिंहः–इति विचारयति

---

तत्कथोपकथनैः=तद्वार्तालापैः । वर्द्धतेतमाम्=अतितरामेधते ।

सनियमम्=सविधि । अनुष्ठितानि=साधितानि । मार्गयिष्यामः= अन्वेषयिष्यामः ।

उपावर्त्तत=परावृत्तः । रामसिंहमयी=रामसिंहभावनाभरिता ।

---

ब्रह्मचारिगुरु—[ बहुत देर तक चुप रह कर ] पुत्र ! उस समय लोग मुझे वीरेन्द्रसिंह कहा करते थे ।

गौरसिंह—[ प्रणाम करते हुये ] पूज्यवर ! तो क्या आपको स्मरण है कि मेरे पिता जी से आपने किसी सम्बन्ध की भी प्रतिज्ञा की थी ?

ब्रह्मचारिगुरु—पुत्र ! सब स्मरण है, परन्तु उसकी चर्चा से केवल दुःख ही बढ़ता है अतः इस बारे में मत पूछो ।

गौरसिंह—आर्य ! उसके विषय में शोक मत कीजिए । आप जैसे लोगों द्वारा नियमानुसार सिद्ध किए गए मन्त्र निष्फल नहीं होते । हम लोग भी विशेष रूप से रामसिंह को खोजेंगे ।

दोनों इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि घोड़े पर सवार रघुवीरसिंह आ गया । तत्काल सभी लोगों की रामसिंहमयी दृष्टि उसके ऊपर पड़ी । वीरेन्द्रसिंह के, "यदि जीवित होगा तो रामसिंह भी ऐसा ही होगा" इस प्रकार सोचने लगने, तथा गौरसिंह के 'क्या है' यह पूछने पर रघुवीरसिंह ने

वीरेन्द्रसिंहे, किमिति पृच्छति च गौरे—"महाराजः स्मरत्यत्र भवन्तम्"—इति मन्दं गौरसिंहमभ्यधाद् रघुवीरसिंहः। सोऽपि चोमिति व्याहृत्य वाजिनमारुह्य तेन सह सपदि प्रतस्थे।

रघुवीरस्तु कियन्तमद्ध्वानमतीत्य, विकचसारसं सारस-कारण्डवादि-कदम्ब-कूजितं सर एकमवलोक्य, "अहं चिर-तृष्णा-गलितोत्साहं वाहं पानीयं पाययित्वा, अनुपदमेवाऽऽयामि, तावद्-गत्वा विलोकनीयः श्रीमता महाराजः"—इति कथयित्वा गौरं प्रस्थाप्य स्वयं वाहवल्गां तत एवाऽऽचकर्ष। तत्र च सैन्धवस्य मुखात् फेन-क्षालित-खलीनं रश्मिमपमार्ज्य तत्पृष्ठमार्द्रयन् जलं पाययन्

सम्वोभूयेत=सुतरां सम्भवेत्। तेन=रघुवीरसिंहेन। सपदि=तत्क्षणम्।

विकचसारसम्=प्रफुल्लसरोजम्। बहुव्रीहिः। सारसः=प्रलम्बचञ्चुचरणः श्वेतपक्षी, कारण्डवः=मद्गुनामा पक्षिविशेषः,एवमादीनां कदम्बेन=समूहेन, कूजितम्=नादितम्। चिरतृष्णागलितोत्साहम्=दीर्घकालपिपासाविधुतहर्षम्। वाहम्=घोटकम्। अनुपदम्=पदः पश्चात्। त्वरितमिति यावत्। प्रस्थाप्य=सम्प्रेष्य। सैन्धवस्य=घोटकस्य। फेनक्षालित-खलीनम्= डिण्डीरधौतकविकम्। रश्मिम्= प्रग्रहम्। "किरणप्रग्रहौ

गौरसिंह से धीरे से कहा कि महाराज आपको याद कर रहे हैं। गौरसिंह भी 'अच्छा' कहकर घोड़े पर सवार होकर रघुवीरसिंह के साथ शीघ्र ही चल पड़ा।

रघुवीरसिंह ने कुछ मार्ग पारकर, विकसित कमलों वाला, सारस, कारण्डव आदि पक्षियों के समूह से कूजित एक सरोवर देखकर, "मैं बहुत देर से प्यासे होने के कारण शिथिल घोड़े को पानी पिलाकर अभी आपके पीछे ही आ रहा हूँ, तब तक आप चलकर महाराज का दर्शन करें" यह कहकर गौरसिंह को विदाकर अपने घोड़े की लगाम वहीं खींच ली। और फिर वह ( रघुवीरसिंह ) घोड़े के मुख से निकल रहे फेन में लिपटी लगाम वाली रस्सी को उतार कर, उसकी पीठ भिगोता हुआ, उसे जल पिलाता हुआ तथा सरोवर के किनारे की घास पर टहलता हुआ, उसकी

सरस्तट-शाद्वले पर्य्यटयंश्च परिश्रममपनेतुमारब्धवान्।

अस्य तु सर्वक्षणे सौवर्णी-मूर्त्यैव चित्रितं चित्रफलकमिव चित्तमित्यस्मिन्नेकान्ते पुनस्तद्भूयस्तद्विषयिण एव मानसाः कथा-प्रसाराः—

यत् 'किमिव करोमि? अल्पं मे महत्त्वम्, क्षुद्रोऽधिकारः असिधारावलेहनमिव कार्यम्, प्रत्यहं वर्द्धमान उपद्रवो महाराष्ट्रदेशे, स्वप्रेम्णा क्रीतवती मे हृदयं सौवर्णी। सा महतां कुलरत्नम्, महाधिकारस्य श्रीमतो गौरसिंहस्य भगिनी, कस्यापि कृतपुण्यस्य जनस्य जनुः सफलयितुमवतीर्णा, तथाऽपि सा मदर्थमेव रोदिति,

---

रश्मी" इत्यमरः। अपमार्ज्य = दूरयित्वा। सरस्तटशाद्वले = सरसीतीरस्थघासयुक्तप्रदेशे। पर्य्यटयन् = भ्रामयन्। अपनेतुम् = दूरीकर्तुम्।

सौवर्ण्याः, मूर्त्या = प्रतिबिम्बेन। चित्रफलकम् = चित्रपटम्। चित्तम् = मानसम्। एकान्ते = रहसि। तद्विषयिणः = सौवर्णीसम्बन्धिनः कथाप्रसाराः = विचिन्ता आगताः।

क्षुद्रः = हीन। अधिकारः = स्वाम्यम्। स्वप्रेम्णा = निजस्नेहेन। कुले = अन्वये। रत्नम् = श्रेष्ठा। कृतपुण्यस्य = विहितसुकृतस्य। जनुः = जन्म। सफलयितुम् = सफलीकर्तुम्। स्त्रियो हि जन्मिनां जन्मनः साफल्यस्य वैफल्यस्य च कारणतां गताः। दूयते क्लिद्यते - प्रभूतानां प्राय

---

थकान दूर करने लगा। रघुवीर का चित्त तो निरन्तर सौवर्णी की मूर्ति से चित्रित चित्र फलक सा है और उस एकान्त में उसके मनमे पुनः तद्विषयक विचार उठने लगे, कि—

क्या करूँ? मेरा महत्त्व थोड़ा है, अधिकार कम है और कार्य तलवार की धार को चाटने के समान दुष्कर है, महाराष्ट्र में प्रतिदिन उपद्रव बढ़ रहा है, सौवर्णी ने अपने प्रेम से मेरा मन मोल ले लिया है। वह महान लोगों के कुल की रत्न है, महान् अधिकारी श्रीमान् गौरसिंह की भगिनी है, और किसी पुण्यवान मनुष्य के जन्म को सफल करने के लिए अवतीर्ण हुई है, फिर भी वह मेरे लिए ही रोती है, कष्ट पाती है, खिन्न होती है तथा

दूयते, खिद्यते, क्लिश्यति, रोमाञ्चति, सीदति, स्विद्यति, ताम्यति च। न जाने केनेयान्तरात्मना प्रेरितोऽहमपि तयैव पाणिपीडां प्रतिज्ञातवान्। अहह! कथमेतत् सम्भवेत्? मनोरथोऽयं चिरेणापि साधयितुं दुःशकः, मन्मथस्तु प्रतिक्षणमेव मनो मथ्नाति।

अहह! तस्यास्तानि तानि भाषितानि, तानि तानीङ्गितानि, तानि तानि भ्रूविभ्रमणानि तानि तानि प्रेक्षितानि, तानि तानि हसितानि, तानि तानि च रुदितानि शल्यानीव निमग्नानि मम हृदये। स्वप्नेष्वपि तामेव सुदतीं मदर्थं रुदतीमवलोकयामि; "प्रिये! प्रिये! मा स्म मृणाल-कोमलान्यङ्गानि चिन्ता-सन्तान-ज्वाला-

---

समानार्थकानां खेदाधिक्यप्रदर्शनार्थाभिधानं वक्तुश्च विरहदूयमानमानसत्वादिति पौनरुक्त्यदोषाङ्कुशताऽवधेया।

पाणिपीडाम् = विवाहम्। प्रतिज्ञातवान्=प्रतिश्रुतवान्। मन्मथः = कामः। मथ्नाति = आलोडयति।

इङ्गितानि=चेष्टितानि। भ्रूविभ्रमणानि = भ्रूचालनानि। प्रेक्षितानि= अवलोकनानि। शल्यानीव = कण्टका इव। निमग्नानि = पतितानि। सुदतीम् = शोभनदन्तवतीम्। चिन्तासन्तापज्वालाजालावलीढानि =

---

सन्तप्त होती है। न जाने किस अन्तरात्मा से प्रेरित होकर मैंने भी उसी के साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा कर ली है। हा! यह कैसे होगा? इस मनोरथ को चिरकाल में भी सिद्ध करना कठिन है, और कामदेव प्रतिक्षण हो मन को मथ रहा है।

अहा! उसकी वे बातें, वे हाव भाव, वे भौंहों के विलास, वे कटाक्ष, वे हास्य और वह रुदन मेरे हृदय में काँटों की तरह गड़ गए हैं। स्वप्नों में भी उसी सुदती (सुन्दर दाँतों वाली) का अपने लिए रोती देखता हूँ और लुब्ध होकर "प्रिये! प्रिये! कमलनाल के समान सुकुमार अंगों को चिन्ताओं की परम्परा की ज्वाला के समूह में मत जलाओ" इस प्रकार प्रलाप

जालावलीद्वारैः कार्याः" इति सक्षोभं विलपंश्च भग्ननिद्रः समुत्थाय परितस्तामेव कटाक्षपातैर्मां निघ्नतीमिवान्वेषयामि।

अहह! कथं तां प्राप्नुयाम्? कथं तां परिणयेयम्? कथं वै तदधर-सीधु-समास्वादेन सुधा-सुरसमधरीकुर्याम? हन्त! का जीवनं मादृशानाम्, किमिव नाहं युद्धभूमिषु विनाश्ये? हा दैव! किं प्रिया-वियोग-दुःखेनैव हृदयहतकं शोषयितुं जीवयसि?"—

एवं चिन्ता-सन्तान-वितान-परवशः सोऽश्वमारुह्य चलित-चित्त-परवशतया सिंहदुर्गं यामि—इति मनसि निधाय प्रस्थितोऽपि तोरणदुर्गं प्राप्तः। तत्र च चकितः काम-परवशतया धैर्य-विरहं च

चिन्तनानुतापलीलाक्रमहान्निहितानि। निघ्नतीम्=मारयन्तीम्। अन्वेषयामि=गवेषयामि।

परिणयेयम्=विवाहयेयम्। तदधरसीधुसमास्वादेन=तदधरमधुरस-ग्रहणेन। सुधासुरसम्=पीयूषपानानन्दम्। अधरीकुर्याम्=अधर विदध्याम्। विनाश्ये=मारितो भवामि।

चिन्ता-सन्तान-वितान-परवशः = विचार-समूह-विवर्धन-रत। कामपरवशताम्=कामाधीनताम्। धैर्यविरहम्=धीरताराहित्यम्।

करता हुआ निद्रा टूटने पर उठकर चारों ओर कटाक्षों से अपने को (मुझे) आहत करती सी उसी सौरणी को खोजता हूँ।

अहा! उसे कैसे पाऊँ, उससे कैसे विवाह करूँ, और किस प्रकार उसके अधरों की मदिरा के पान से अमृत के भी सुख को तिरस्कृत करूँ। हा! मेरे समान लोगों का जीवित रहना ही व्यर्थ है, मैं युद्धक्षेत्रों में ही क्यों नहीं मार डाला जाता हूँ। हा! भगवन्! क्या प्रिया के विरह के दुःख से ही इस अधम हृदय को सुखाने के लिए मुझे जीवित रख रहे हो?

इस प्रकार चिन्ता की परम्पराओं के जाल में फँसा हुआ, वह घोड़े पर सवार होकर चला और चित्त की परवशता के कारण मनमें "सिंहदुर्ग जाऊँगा" यह सोचकर चला हुआ भी तोरणदुर्ग पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर वह आश्चर्य में पड़ गया और काम की पराधीनता तथा धैर्य के अभाव को

निन्दन्, मारुति-मन्दिर पूर्व-वाटिकां प्रविष्टः, एकस्मिन् कुञ्जे उपविश्य निःशब्दं रुदतीं च तामेव प्राणप्रियां ददर्श। सा तु दृष्ट्वैव एनमुत्थाय "कितव! सुसमये समायातोऽसि, तिष्ठ, यावदहं त्वां पश्यन्त्येव शाखि-शाखयाऽऽत्मानमुद्बध्य प्राणांस्त्यजामि" इति रोषारुणाभ्यां नयनाभ्यामनिमिषमीक्षमाणा व्याहृतवती। रघुस्तु-"प्रिये! कथय, किमिव सवृत्तम्? केनावहेलिताऽसि? केन क्ष्वेलिताऽसि? तोरण-दुर्ग-नेदीयस्यस्मिन् महाराष्ट्र राज भट-सङ्घट्ट-रक्षिते उद्याने कस्य वा शक्तिस्त्वां धर्षयितुम्"—इति न्यवीविदत्।

सा तु पुनराह—वीर! रक्षक एवात्र भक्षकः। योऽयं क्रूरसिंहाभिधोऽश्वारोहाणां पञ्चशत्या अध्यक्षोऽत्र तोरणदुर्गं प्रान्त रक्ष-

---

कुञ्जे = लतादिपिहितोदरे स्थाने। निःशब्दम् = ध्वनिशून्यम्, अस्फुटशब्दमिति यावत्। कितव! = धूर्त! शाखिशाखायाम् = वृक्षविटपे। व्याहृतवती = जगाद। अवहेलिता = तिरस्कृता। क्ष्वेलिता = हास्यविषयीकृता। तोरण दुर्गस्य नेदीयसि = अन्तिकस्थे। महाराष्ट्रराजस्य, भटानाम् = वीराणाम्, सङ्घट्टेन = सम्मर्देन, रक्षिते = पालिते। धर्षयितुम् = दूषयितुम्।

तोरणदुर्गप्रान्तरक्षकत्वे = तोरणदुर्गयुतदेशखण्डशासकत्वे। व्या-

---

निन्दा करता हुआ हनुमान मन्दिर के पूर्व की वाटिका में चला गया और वहाँ जाने पर उसने एक कुञ्ज में बैठकर मूक रुदन करती हुई उसी प्राणप्रिया को देखा। सौवर्णी उसे देखते ही उठकर "धूर्त! अच्छे समय पर आ गए हो, ठहरो मैं तुम्हें देखती हुई ही वृक्ष की डाल में अपने को बाँधकर प्राणों का परित्याग कर दूँ" इस प्रकार क्रोध से लाल नेत्रों से निर्निमेष देखती हुई बोली। रघुवीरसिंह ने निवेदन किया "प्रिये! कहो क्या हो गया? किसने तुम्हारा अपमान किया? किसने तुम्हारा उपहास किया! तोरणदुर्ग के समीप ही स्थित महाराष्ट्र नरेश के सैनिकों के समूह से रक्षित इस वाटिका में तुम्हें दूषित करने की किसकी सामर्थ्य है?"

उसने फिर कहा—वीर! यहाँ तो रक्षक ही भक्षक है। यह जो क्रूरसिंह

पत्वे नियुक्तः, स स्वयमेव केनापि व्याजेनाऽऽगत्य मामवलोक्य हसति, भ्रवौ नर्त्तयति, करकम्पनैराह्वयति, मन्दं मन्दं किमप्यभिदधाति च। अद्य तु उद्याने पुष्पाण्यवचिन्वतीं मामकस्मादुपगत्य-चिर-'प्रिये प्राणेश्वरि! अनुगृहाण, पाणिं मे गृहाण" इति अवादीत्। मया बहुशो धिक्कृतश्च-'जाने त्वं रघुवीरेऽनुरक्तासि, तत् सपदि स मदसि-विलोडमालोक्य मां वरिष्यसि"-इत्युक्त्वा च्योतद्रक्ताभ्यामिव नेत्राभ्यां विदारयन् मम हृदयं, निरगात्।

तदाकर्ण्य तु खिन्नो रघुवीरश्चिरं तां सान्त्वयित्वा, त्वरं कुपितः सिंहदुर्गं प्राधित। अकस्मात् तस्मिन्नेव दिने पुण्यनगरात् पूर्वस्यां सेनास्थाने स्व-सादि-समूहेन सह स्थातुं शूरसिंहेन महा-

व्याजेन = छलेन। करकम्पनैः = हस्तान्दोलनैः। किमपि = अज्ञातमभिधत्ते च। अवचिन्वतीम् = संचिन्वतीम्। उपगत्य = समीपमागत्य। अनुगृहाण = कृपां कुरु। धिक्कृतः = गर्हित इति यावत्। मदसिना विलोडम् = विद्धम्। आलोक्य = दृष्ट्वा। वरिष्यसि = स्वीकरिष्यसि। च्योतद्रक्ताभ्यामिव = प्रवहल्लोहितस्रावाभ्यामिव। निरगात् = निष्क्रान्तः।

सान्त्वयित्वा = प्रशाम्य। स्वसादिसमूहेन = निजाश्वारोहिव्रातेन।

न मक पाल्व खाँ घुड़सवारों का नायक यहाँ तोरणदुर्ग के प्रदेश के रक्षक पद पर नियुक्त है वह स्वयं ही किसी बहाने आकर मुझे देखकर हँसता है, भौंहे नचाता है, हाथ हिलाकर बुलाता है और धीरे धीरे कुछ कहता भी है। आज तो जब मैं वाटिका में फूल तोड़ रही थी तो अकस्मात् आकर देरतक 'प्रिये! प्राणेश्वरी! दया कर, मेरा हाथ पकड़ लो" यह कहता रहा। मेरे बहुत धिक्कारने पर 'जानता हूँ, तुम रघुवीर से प्रेम करती हो तो शीघ्र ही उसे मेरी तलवार से काटा गया (कटा हुआ) देखकर मुझे वरण करोगी" यह कहकर रक्त टपकाती हुई सी आँखों से मेरा हृदय चीरता हुआ, चला गया।

यह सुनकर दुःखी रघुवीर ने उसे देरतक सान्त्वना देकर, क्रूर पर क्रुद्ध हो सिंहदुर्ग को प्रस्थान किया। एकाएक उसी दिन शूरसिंह को पूनानगर

राजस्याऽऽदेशः प्राप्त-इति स तथाऽकरोत् । अत्र चान्यः ससादिगणो रक्षक आगतः-इति किञ्चिच्छान्तः सौवर्ण्या आधिः ।

एवं विलक्षणा संवृत्ता दैवघटना, यदेकतः पुत्र-वियोग-दुःखितः पुनस्तत्प्राप्तये साधन-विशेषमनुतिष्ठन् वीरेन्द्रोऽवसीदति । अन्यतः सौवर्णी-विवाह-चिन्ता-ग्रस्तौ रामसिंहालुलोकयिषा-लोलुप-लोल-लोचनौ गौरश्यामौ विषीदतः, परतो रघुवीराय लज्जया विरहस्य वितीर्णेव उत्कण्ठया मनागाकृष्य समर्पितेव, इन्द्रिय-गणेन कुसुमेषु-घातैर्वशंवदां विधाय विनिवेदितेव, मदनेन किङ्करीकृत्योपहृतेव, कामेन दुर्मद-मदन-मदैर्मोमथ्यमानाऽ-

आधिः = मानसिकी व्यथा । "पुंस्याधिर्मानसी व्यथा" इत्यमरः ।

साधनविशेषम् = मन्त्रानुष्ठानम् । अवसीदति = खिद्यति । रामसिंहस्य, आलुलोकयिषया = द्रष्टुमिच्छया, लोलुपे = अभिलाषुके, लोले= चपले, च लोचने=नयने, ययोस्तौ । विषीदतः=विषाद कुरुतः । लज्जया= त्रपया । विरहस्य=वियोगस्य । वितीर्णा = दत्ता । उत्कण्ठया = आध्यानेन । कुसुमेषुघातैः = पुष्पेषुताडनैः । वशंवदाम्= अधीनाम् । विनिवेदिता = नम्रतया प्रदत्ता । दुर्मदस्य=दुर्दमनीयस्य, मदनस्य मदैः ।

से पूर्व, सेना के पड़ाव पर अपने घुड़सवारों सहित रहने के लिये महाराज शिवाजी का आदेश मिला, उसने वैसा ही किया, और यहाँ तोरणदुर्ग में) अश्वारोहियों सहित दूसरा रक्षक आ गया, अतः सौवर्णी की चिन्ता कुछ शान्त ( कम ) हो गई ।

ऐसी विचित्र दैवी घटना हुई कि एक ओर पुत्र के वियोग में दुःखी वीरेन्द्रसिंह उसकी पुनः प्राप्ति के लिये विशिष्ट उपाय करते हुये क्लेश झेल रहे हैं और दूसरी ओर सौवर्णी के विवाह की चिन्ता से ग्रस्त, रामसिंह को देखने की इच्छा से लोलुप चञ्चल नेत्रों वाले गौर और श्याम खिन्न हो रहे हैं । उधर हृदय से रघुवीर का चिन्तन करती हुई कोशला दिन गिन रही है । मानो लज्जा ने उसका परित्याग कर उसे रघुवीर को दे डाला हो, मानो उत्कण्ठा ने उसको

व्यधितं सम्मदय्य प्रदत्तेव, अनुरागेण सकल-गुण-गुणान् विगणय्य विक्रीतेव, हृदयेन रघुवीरं चिन्तयन्ती कोशला दिवसान् गणयति। ततो रत्नारी च महाराष्ट्रराजस्य मधुरालापैरिव क्रीता, मन्मथोन्मथितेन मनसेव विक्रीता—

"कथमेतेन परिणीता भवेयम्? कथमेनेन सह विहरेयम्? कथमेतस्य चिर-विहार-विसृमरान् स्वेद-कणानात्मनः शाटीप्रान्तेन परिहरेयम्? कथमेतस्य "प्रिये! पूर्णदृशाऽवलोक्यानुगृहाणेव माम्"—इति चाटु-वचन-रचनानि समाकर्णयेयम्? कथमिव चास्मै स्वमनोरथं सूचयेयम्? एष वैदिक-धर्मानुष्ठानायैव

---

बाधमाना = अतितरां बाधन्ता। सम्मदय्य = मत्तां विधाय। मन्मथोन्मथितेन = कामात्पीडितेन।

परिणीता = विवाहिता। विहरेयम् = विहारं कुर्याम्। चिरविहार-विसृमरान् = दीर्घकालक्रीडाप्रसृतान्। स्वेदकणान् = घर्मबिन्दून्। शाटीप्रान्तेन = धौताञ्चलेन। परिहरेयम् = दूरयेयम्। चाटुवचनानां रचनानि। समाकर्णयेयम् = शृणुयाम्। सूचयेयम् = बोधयेयम्। दत्तहस्तावल-

---

आकृष्ट कर रघुवीर को समर्पित कर दिया हो, मानो इन्द्रियों ने पुष्पबाणों के प्रहार से अपने अधीन कर उसे रघुवीर को निवेदित कर दिया हो, मानो कामदेव ने उसे अपनी दासी बनाकर रघुवीर को उपहार में दे दिया हो, मानो कामना ने प्रबल कामोन्माद से उन्मत्त उसे और भी अधिक मतवाली बनाकर रघुवीर को प्रदान कर दिया हो, मानो अनुराग ने उसके सारे गुणों की अवहेलना कर उसे रघुवीर के हाथ बेच दिया हो।

वहाँ रोशन आरा महाराष्ट्र नरेश के मधुर संभाषण से खरीद ली गई सी, काम पीड़ित मन द्वारा बेच दी गई सी —

इनके साथ मेरा विवाह कैसे हो! कैसे इनके साथ विहार करूँ! किस प्रकार चिरकाल तक विहार करने से उत्पन्न इनके (शरीर के) पसीने की बूँदों को अपनी साड़ी के आँचल से पोछूँ! कैसे इनको "प्रिये! आँख भर देखकर मुझे अनुगृहीत करो" ये चाटुकारितापूर्ण बातें सुनूँ! और

त-हस्तावलम्बनः, तत् कथमेष म्लेच्छराज-तनयां मामर्द्धाङ्गिन विधित्सिष्यति ? अहह ! हताऽहम्, किमिति म्लेच्छ-गर्भात् सम्भूताऽस्मि ? चक्रवर्ति-नन्दिनीति व्यर्थो मेऽभिमानः। वरं राजपत्नी; न तु राजकन्या। न जाने कस्मै दित्सते मां तातः, अवश्यमनुचरायैवानुगतायैव च कस्मैचन दास्यति, न तु स्वतन्त्रो महाराष्ट्रराज-सदृशो महाराजः कश्चन तस्य प्रेमपात्रम्। तत्किं लज्जया विरज्य, धैर्यमवधीर्य, गुणान् विगणय्य, वाचालतामुरीकृत्य, धृष्टतां शिरसि संस्थाप्य, अभिमानमवमान्य, चापलं चावलम्ब्य, स्वयमेव किमप्यमुष्मिन् विषये प्रकटयामि ? परं न वेद्मि प्रकारमीदृशे प्रेमाचारे स्वाभिलाप-प्रकाशनस्य। एतद्विषये एतस्य सत्का-

म्बनः = कृतकराश्रयः। अर्द्धाङ्गिनीम् = अर्धशरीररूपिणीम्। भार्यामिति यावत्। विधित्सिष्यति = कर्तुमेष्यति। सन्नन्ताद् लृट्। म्लेच्छगर्भात् = यवनान्युदरात्। जातिविवक्षया पुंस्त्वम्। "कुक्कुट्यादीनामण्डादिष्वि"ति वार्तिकमत्याख्याने भाष्ये समाश्रितमिदमिति सन्तोष्टव्यम्, म्लेच्छ इत्यत्रैकशेषो वा। चक्रवर्तिन = सम्राजः, नन्दिनी = तनया। दित्सते = दातुमिच्छति। अनुगताय = वच-पालकाय। विरज्य = विरागं कृत्वा। अवधीर्य = तिरस्कृत्य। अवमान्य = अपमानितं कृत्वा। चापलम् = चाञ्चल्यम्। अवलम्ब्य = आश्रित्य। प्रेमाचारे = स्नेहव्यवहारे। स्वाभिलापप्रका-

कैसे इन्हें अपनी अभिलाषाओं को बताऊँ ? यह वैदिक धर्म की साधना में सहायता करने वाला है फिर कैसे मुझ यवनराज की कन्या को अपनी पत्नी बनाना चाहेगा ? मैं अभागिन हूँ, मैं म्लेच्छ के गर्भ से क्यों उत्पन्न हुई ? मेरा चक्रवर्ती की कन्या होने का गर्व व्यर्थ है। राजकन्या होने से राजपत्नी होना अच्छा है। न जाने पिता जी मुझे किसे देना चाहते हैं, अवश्य ही किसी अनुचर या अनुगामी को देंगे। महाराष्ट्र नरेश के समान कोई स्वतन्त्र राजा उनका स्नेह-भाजन नहीं है। तो क्या लज्जा छोड़कर, धैर्य की अवहेलना कर, गुणों का तिरस्कार कर, वाचाल बनकर, धृष्टता को अपना कर, अभिमान को अपमानित कर, चपलता का सहारा लेकर स्वयं ही कुछ इस

रोऽपि तिरस्कारः, आदरोऽपि न्यक्कारः, स्तवोऽपि परिभवः, आलापोऽपि विलापः, सेवनमपि परिदेवनम्, भापणमपि भपणम्, हा हताऽस्मि ! दुराचारेण मारेण !"

—इति जल्पन्ती केनचन धवलिम्नेवाऽऽलिङ्गयमाना, पाण्डुरतयेव स्नप्यमाना, रोमपञ्जरेणेव निगृह्यमाणा, स्वेदबिन्दुसन्दोहैरियाभिषिच्यमाना, प्रेम-निगड-बद्धा, अनुराग-कारागार-संयन्त्रिता, कदाचिदुच्छ्वसन्ती, कदाचिदश्रूणि मुञ्चन्ती, कदाचिच्छून्यं जगदाकलयन्ती, कदाचित् तदभिनिविष्टचेतसा सम्मुख-स्थित-

शनस्य = स्वमनीषितप्रकटीकरणस्य । परिभवः = अनादरः, "परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया" इत्यमरः । विलापः = रोदनम् । परिदेवनम् = कृतस्य कर्मणोऽनुचितत्वबुद्ध्याऽनुतापः । "विलापः परिदेवनम्" इत्यमरः । भपणम् = कुक्कुररवः । दुराचारेण = कुव्यवहारेण । मारेण = मन्मथेन ।

धवलिम्ना = श्वैत्येन । आलिङ्गयमाना = आश्लिष्यमाणा । पाण्डुरतया = ईषत्पीतवर्णतया । रोमाण्येव पञ्जरम् = शुकादिबन्धनस्थानं तेन । निगृह्यमाणा = बध्यमाना । अभिषिच्यमाना = स्नप्यमाना । प्रेमैव निगडम् = लोहदाम, तेन बद्धा । अनुराग एव कारागारम् = चारकम्, तस्मिन् संयन्त्रिता = नियमिता । आकलयन्ती = अवधारयन्ती । तदभि-

विषय में प्रकट करूँ ? परन्तु मैं तो इस प्रकार के प्रेम के व्यवहार में अपनी इच्छाओं को व्यक्त करने का ढंग भी नहीं जानती। इस विषय में इनका सत्कार भी तिरस्कार है, आदर भी अपमान है, स्तुति भी निन्दा है, कहना भी दीनता प्रकट करना है, सेवा भी दैन्य है, बोलना भी भूँकना है, हाय ! दुष्ट कामदेव द्वारा मारी गई।

इस प्रकार प्रलाप करती हुई, किसी धवलिमा से आलिङ्गित की गयी सी, पीलेपन से नहलाई गई सी, रोमपञ्जर से जकड़ी-सी, पसीने के बिन्दुसमूह से अभिषिक्त-सी, प्रेम के पाश में बँधी, अनुराग के कारागार में कैद की गई, कभी दीर्घ निःश्वास लेती, कभी आँसू बहाती, कभी संसार को सूना समझती, कभी शिवाजी का ध्यान करती हुई उन्हें सामने खड़ा सा

मिव च महाराष्ट्रराजं पश्यन्ती खिद्यते। इतः क्रूरतया रघौ क्रूरं कर्म चिकीर्षुः कोशला-कामनया क्लिश्यति। ततो रघुवीरोऽपि क्रूर-क्रूरतामाकलय्य ग्लायति-इति बहूनां हृदये चिन्तासन्तान-वितानाः ज्वालामुखपर्वता इव जाज्वल्यन्ते।

× × ×

इतश्च माया-भवने सादरं संस्थापितोऽपि मायाजिह्मो नतरां केनापि सह सम्भाषते, नतमां वा कमपि पूर्णदृशाऽवलोकयति। एवं चिर-चिन्ता-पूर-पूरितोऽद्य हन्ये, श्वो विनाश्ये—इति स्वस्मिन् नृशंसं कर्माऽऽशङ्कमान एवैकदा कैश्चित्सहचरैः

---

निविष्टचेतना = विषमयीभूतचैतन्या। क्रूरः = तन्नामा। रघौ = रघुवीरे। क्रूरम् = अमानुषम्। क्रूरतया = कठोरतया। ज्वाला-मुखपर्वता इव = वह्न्युद्गिरका गिरय इव। जाज्वल्यन्ते = अतितरां ज्वलन्ति।

× × ×

नतराम् = सर्वथा नैव। सम्भाषते = वक्ति। पूर्णदृशा = समस्त चक्षुषा, द्रष्टव्यरूपेणेति यावत्। चिर-चिन्तापूर-पूरितः = दीर्घानुचिन्तन-प्रवाहपूर्णः। हन्ये, विनाश्ये, अहमिति शेषः कर्म। नृशंसम् = क्रूरम्। अद्य-

---

देखती हुई व्यथित हो रही है। इधर क्रूरता से रघुवीर के प्रति निर्दय काम करने की इच्छा से क्रूरसिंह कोशला की चाह में क्लेश पा रहा है। उधर रघुवीर भी क्रूर के प्रति क्रोध धारण कर दुःखी है। इस प्रकार बहुतों के हृदय में चिन्ता की लहरों के विस्तार ज्वालामुखी पर्वतों की भाँति अत्यधिक जल रहे हैं।

इधर मायामहल में सम्मान पूर्वक ठहराया गया भी मुअज्जम न तो किसी के साथ अधिक बोलता ही था और न तो किसी को पूरी दृष्टि से देखता ही था। इस प्रकार चिरकाल तक चिन्ता मग्न होकर "आज मारा जाऊँगा, कल मारा जाऊँगा" इस प्रकार अपने विषय में नृशंस कार्य की आशंका करते हुए ही उसने एक बार अपने कुछ सहयोगियों के साथ महाराष्ट्र राज शिवाजी का

सह समायान्तं महाराष्ट्रराजमद्राक्षीत्। यावदेव तत्प्रभाधर्षितः उत्थाय किमपि विमृशति स्म, तावत्स स्वयमेव सादरमुवाच यद्—"भद्रं भवतु राजकुमारस्य। न मां पूर्वमपश्यद् भवान्—इति सूचयामि, मां जनाः शिवराज—इति कथयन्ति। कुमारस्यापि पित्रा सह मम बहूनि युद्धानि जातानि, भवन्ति च। श्रूयते श्रीमानपि मया योद्धुमेव प्रेषित इति, परं स्वच्छतया वा, साधुतया वा, मुग्धतया वा अल्पवयस्कतया वा, संग्राममननुष्ठायैव मम गृहमायातः—इति स्वागतम्। कच्चिद् यथासमयं यथोचिताचारैरुपतिष्ठन्ते दासेराः? कच्चित् प्रसीदति वा भवान्? उपविश्यतामुपविश्यताम्"—इत्युक्त्वा, तमुपवेश्य स्वयमप्युपविष्टः। एवं साम्रेडमापृच्छयमानः कुमारोऽपि ह्रीरवशः कथ-

---

क्षीत् = अवालोकयत्। तस्य प्रभया = कान्त्या, धर्षितः। विमृशति स्म = व्यचारयत्। भद्रम् = कल्याणम्। स्वच्छतया = निर्मलतया। साधुतया = परोपकृतिपटुतया। मुग्धतया = सरलतया। अल्पवयस्कतया = न्यूनावस्थात्वया। अननुष्ठाय = अविधाय। स्वागतम् = शुभागमनम्। दासेराः = भृत्याः। उपतिष्ठन्ते = सेवां कुर्वन्ति, "उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणे" त्यादिनाऽऽत्मनेपदम्। प्रसीदति = तुष्यति। साम्रेडम् = अनेकवारम्। ह्रीपर-

---

आते देखा। उनके तेज से दबा हुआ सा वह, उठकर अभी कुछ सोच ही रहा था कि उन्होंने स्वयं ही आदर पूर्वक कहा "राजकुमार का कल्याण हो, आपने मुझे पहले नहीं देखा है अतः मैं अपना परिचय दे रहा हूँ, मुझे लोग शिवाजी कहते हैं। आप के पिता जी के साथ मेरे बहुत से युद्ध हुए हैं और अब भी हो रहे हैं। सुना जाता है कि आप भी मुझसे लड़ने के लिए ही भेजे गये थे, परन्तु निर्मलता या सज्जनता या सरलता, या अवस्था कम होने से बिना युद्ध किये ही मेरे घर आ गए, अतः आप का स्वागत है। समयानुसार यथोचित आचार से नौकर आप की सेवा तो करते हैं न? आप प्रसन्न तो हैं! 'बैठिये-बैठिये' यह कह कर उसको बैठाकर शिवाजी स्वयं भी बैठ गए।

मपि सम्मुखं मुखं विधायोक्तवान्-राजन्! अहं शत्रुपुत्रोऽस्मि, योद्धुं चाऽऽयातोऽस्मि इति निगृहीतश्चेद्धन्तव्यः, दण्डयितव्यश्च, न तु सत्कारैस्तिरस्करणीयः, स्वागत-वाणी बाणैश्च मर्मसु वेधनीयः।

ततस्तावेवमालापिष्टाम्।

शिव०—कुमार! केयं कथा? राज्ञां पारस्परिकाः सन्धिविरोधरूपा भवन्त्येव सम्बन्धा इति दैवान्मे विरोधस्तव पित्रा। त्वं तु यथा दिल्लीनायकस्य लालनीयस्तथा ममापि-इति दर्शं दर्शं तव यौवनोद्भेदसुभगान्यङ्गानि प्रीतिरेव मे वर्द्धतेतराम्।

---

वशः = वराधीनः। सम्मुखम् = पुरः। निगृहीतः=वारके कृत। दण्डयितव्यः = दण्डविषयीकर्त्तव्यः। सत्कारैः = आदरैः। स्वागतवाण्य एव बाणाः = इषवः, तैः। मर्मसु = कोमलेषु रक्षणीयेषु स्थानेषु च। वेधनीयः = प्रहरणीयः।

आलापिष्टाम् = वार्त्तामकुरुताम्। लुङ् प्रथम-पुरुषद्विवचनम्।

पारस्परिकाः = अन्योन्याः। दैवात् = अदृष्टात्। लालनीयः = सुखेन पालनीयः। यौवनोद्भेदसुभगानि = तारुण्योद्गमसुन्दराणि।

---

इस प्रकार बार बार पूछने पर कुमार ने भी लज्जित होते हुए किसी प्रकार मुख सामने कर के कहा—" राजन्! मैं शत्रु का लड़का हूँ और युद्ध करने के लिये आया हूँ अतः यदि पकड़ लिया गया हूँ तो आप मुझे मार डालें और दण्ड दें, न कि सत्कारों से तिरस्कृत करें और स्वागत की वाणी के बाणों से मर्माहत करें।"

तदनन्तर उन दोनों ने इस प्रकार वार्तालाप किया।

शिवाजी—कुमार! यह क्या बात है! राजाओं के परस्पर सन्धि और विग्रह के सम्बन्ध तो होते ही है, और संयोग से हमारा आपके पिता से विरोध है। आप तो जैसे दिल्ली के बादशाह के लिए स्नेहपात्र हैं वैसे ही मेरे भी, इसलिए यौवन के प्रस्फुटित होने से सुन्दर लगने वाले आपके अंगों को देख-देख कर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है।

कुमा०—एवं चेत् कथं निगृहीतोऽस्मि ? स्वतन्त्रः कथं न क्रिये ?

शिव०—कोऽत्र निग्रहः ? केवल मम साक्षात्कारायात्र वासितो भवान्। अधुना तु यथा रोचेत ; तथा विधातुं शक्यते। अस्मिन् देशे न कदाऽप्यायातो भवान्—इति कुतूहलं चेदवलोकयन्तां विविधानि दुर्गाणि पर्वतानां वनानाञ्च रामणीयकानि। निविवर्त्तिषते चेत् सुखेन गम्यतां स्वदेशे, निर्विघ्नमास्माकीनाः सादिनः प्रतियापयिष्यन्ति आयुष्मन्तम्।

कुमा०—[ तदौदार्येण चकित इव ] महाराष्ट्रराज ! किमिव व्यामोहयसि ? न भवति मे निश्चयो यन्महत्या वाहिन्या सह भवतो राज्यमात्मसात्कर्तुमायाते मादृशे श्रीमानेवं दयिष्यते—इति।

---

निग्रहः=बन्धनम्। साक्षात्काराय=अवलोकनाय। अवलोकयन्ताम्=दृश्यन्ताम्। रामणीयकानि=सौन्दर्याणि। निविवर्त्तिषते=निवर्तितुमिच्छति। प्रतियापयिष्यन्ति=तत्र प्रापयिष्यन्ति। आयुष्मन्तम्=चिरायुषम्।

व्यामोहयसि=बुद्धिभेदं जनयसि। वाहिन्या=सेनया। आत्मसात्कर्तुम्=स्ववशीकर्तुम्। दयिष्यते=दया करिष्यते।

---

कुमार—यदि ऐसा ही है तो मैं कैद क्यों किया गया हूं ? स्वतन्त्र क्यों नहीं कर दिया जाता हूं ?

शिवाजी—यहाँ बन्धन क्या है ? केवल मुझसे भेंट करने के लिये आप यहाँ ठहराये गये हैं। अब आप जो चाहें कर सकते हैं। इस प्रदेश में आप कभी नहीं आये हैं अतः यदि उत्सुकता हो तो विविध दुर्गों, पर्वतों और वनों की शोभा देखिये। यदि लौटने की इच्छा हो तो सुख पूर्वक अपने देश चले जाइये। हमारे घुड़सवार आपको निर्विघ्न पहुँचा देंगे।

कुमार—[ उनकी उदारता से आश्चर्य में पड़ा हुआ सा ] महाराष्ट्र नरेश ! भ्रम में क्यों डाल रहे हैं ! मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि बहुत बड़ी सेना के साथ आपके राज पर अधिकार करने के लिये आये हुये मुझ जैसे व्यक्ति पर आप इस प्रकार दया करेंगे।

शिव०—आः! कोऽत्र सशयः? नैतद्भवतस्तातचरणानां राज्यम्; यत्र विश्वासघातो विध्वंसो लुण्ठनं दाहश्च वशंवदानामपि क्रियते। राज्यमिदं महाराष्ट्राणाम्। नात्र दारापहरणम्, नात्र 'रक्ष रक्षेति' व्याहरमाणानां वधः, न चात्र वशमागतैः सह विश्वासघात-व्यापारः। सुखेन स्वगृहे इव यथेच्छं विहरतु भवान्।

तदखिलमिदं सदाचार-सौष्ठवाधिक-मधुरं वचनामृतं कर्ण-पुटाभ्यां पीत्वा स्वपितुर्दौरात्म्ये घृणामावहन्, महाराष्ट्रराजस्य निगृहीतेष्वपि सदाचारं बहु मानयन् चिरमालपत् शिवराजेन मायाजिह्मः।

---

वशंवदानाम् = अधीनानाम्। व्याहरमाणानाम् = कथयताम्। यथेच्छम् = यथाभिलषितम्। विहरतु = क्रीडतु, 'शेषे प्रथमः' इति प्रथमपुरुषत्वम्।

सदाचारसौष्ठवेन, अधिकम्, मधुरम् यद्। वचनामृतम्=उक्तिपीयूषम्। दौरात्म्ये = दुष्टतायाम्। आवहन् = धारयन्। मानयन् = मानितं कुर्वन्।

---

शिवाजी—आः! इसमें क्या सन्देह है? यह आपके पिताजी का राज्य नहीं है, जहाँ आधीन लोगों के साथ भी विश्वासघात, विध्वंस, लूटपाट और आग लगा देने आदि के दुष्कर्म किये जाते हैं। यह मराठों का राज्य है। यहाँ स्त्रियों का अपहरण नहीं होता, यहाँ 'रक्षा करो—रक्षा करो' कहकर शरण में आए लोगों का वध और अपने वश में कर लिये गये लोगों के साथ विश्वासघात का काम नहीं होता है। आप यहाँ अपने घर की भाँति सुखपूर्वक विहार करिए।

तब सदाचार के सौष्ठव से अत्यधिक मधुर शिवाजी के वचनामृत को कर्णपुटों से पीकर अपने पिता की दुष्टता पर घृणा करता हुआ, शिवाजी के कैदियों से किये गये अच्छे व्यवहार की मन ही मन प्रशंसा करता हुआ 'मुआज़िम' शिवाजी से देरतक वार्तालाप करता रहा।

ततः-"अद्य सपदि समायास्यति कश्चिन्मया प्रेषितोऽधिकृतः, भवन्तं च पुण्यनगरं कानिचिच्च दुर्गाणि दर्शयिष्यति"-इत्यभिधाय प्रस्थिते महाराष्ट्र-राष्ट्र त्रिविष्टपनाथे, कैश्चिन्नर्तितकाम्बोजैरश्वारोहैरनुसृतः, श्यामेनैकेन सुवर्ण-वल्गेन राजत-खलीनेन मौक्तिक-स्तवक-राजि-राजित-निगालेन रत्न-निचय रुचिर रोचिः-प्रचय-च्छुरित-वालधिना सुवर्ण-सूत्र-ग्रथित-प्रान्त-पीत कौशेयोप-

---

अधिकृतः = नियुक्त । महाराष्ट्राणां राष्ट्रम् = राज्यम्, तदेव त्रिविष्टपम् = सुरलोकः, तन्नाथे = तदधीशे । नर्तिताः = सुगत्या चालिताः, काम्बोजाः = कम्बोजदेशोद्भवा अश्वा यैस्तैः । अनुसृतः = अनुगतः । सुवर्णवल्गेन = हिरण्यरश्मिना । राजतखलीनेन = रौप्यकविकेन । मौक्तिकस्तवकानाम् = मणिगुच्छानाम्, राज्या = श्रेण्या, राजितः = शोभितः, निगालः=गलोद्देशो यस्य तेन । रत्ननिचयस्य = हीरकादिसमूहस्य, रुचिरेण = मनोहारिणा, रोचिःप्रचयेन = तेजोव्रातेन, छुरितः = रूषित, वालधिः = पुच्छ यस्य तेन । सुवर्णसूत्रग्रथिता = हिरण्यतन्तुस्यूता । प्रान्ते = चरमांशे, पीताः=पीतवर्णाः, 'गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणिलिङ्गास्तु तद्वति" इत्यभिधानात् शुक्लादीनां गुणगुण्युभयवाचकत्वं घटते।

---

तदनन्तर, आज अभी मेरा भेजा हुआ कोई अधिकारी आयेगा, और वह आपको पूनानगर तथा कुछ दुर्गों को दिखाएगा, यह कहकर महाराष्ट्र देशरूपी स्वर्ग के अधीश के चले जाने पर कम्बोजदेश के घोड़ों को नचा रहे कुछ घुड़सवारों से अनुगत, सुवर्णसूत्र निर्मित रास वाले, चाँदी की लगाम (खलीन) वाले, मोती के गुच्छों की माला से सुशोभित गले वाले, रत्नों के समूह की मनोहर कान्ति के पुञ्ज से अङ्कित पुच्छ वाले, सोने के तारों से कढ़े हुए किनारे वाले पीले रेशमी चारजामा (गद्दी) से आच्छादित मध्यभाग वाले, काले रंग के एक अरबी घोड़े को—जिसे

वेशनिकाऽऽच्छन्न-मध्येन कशाङ्कितकक्षेण धृतरश्मिनैकेन नियन्त्रा मन्दं मन्दमानीयमानेन वनायुजेन सहितः श्यामसिंहः समुपतस्थे ।

मायाजिच्चास्य तेनाऽऽलप्य हयमेनमारुह्य श्यामेन सह प्रथमं पुण्यनगरं प्राविक्षत् । तत्र च गृहे गृहे गीतानि द्वारि द्वारि रम्भा-स्तम्भान् कुट्टिमे कुट्टिमेऽवलम्बित-माणिक्य-दीपिकानुल्लोचान् वीक्ष-माणः, ग्रैवेयकालङ्कृतकन्धरान् सिन्धुरान्, उच्चैःश्रवस इव बान्ध-

---

या कौशेयस्य=पट्टवस्त्रस्य, उपवेशनिका=आसनिका, "चारजामा" इति हिन्दी, तया, आच्छन्नं मध्यं यस्य तेन । कशया=अश्वताडन्या, "कोड़ा चाबुक" इति हिन्दी, अङ्कितः=चिह्नितः, कक्षः=बाहुमूल यस्य तेन । धृतरश्मिना = गृहीतप्रग्रहेण, नियन्त्रा = सारथिना, "नियन्ता प्राजिता यन्ता सूतः क्षत्ता च सारथिः" इत्यमरः । आनीयमानेन = प्राप्यमाणेन, वनायुजेन=वनायुदेशे जातेन सदश्वेन । "अरबी घोड़ा" इति हिन्दी ।

एनम्=पूर्वोक्तगुणगणयुतम् । प्राविक्षत्=प्रविवेश । कुट्टिमे कुट्टिमे = प्रतिनिबद्धभूमि । अवलम्बितमाणिक्यदीपिकान् = धारितमणिप्रदीपान् । उल्लोचान् = मण्डपानि । ग्रैवेयकालंकृतकन्धरान् = ग्रीवाभूषणभूषित-ग्रीवान् । सिन्धुः=मदजलम्, अस्ति येषां तान् सिन्धुरान् =

---

अपनी काँख में चाबुक दबाये हुये एक साईस रास पकड़े हुये धीरे धीरे ला रहा था—साथ लेकर श्यामसिंह उपस्थित हुआ ।

मुआजिम ने श्यामसिंह से बात करके उसके द्वारा लाये गये घोड़े पर सवार होकर उसके साथ पहले पूना नगर में प्रवेश किया । वहाँ घर घर में गीतों की ध्वनि सुनकर, द्वारों पर केले के खम्भों और फर्शों पर जिनमें मणिमय दीप लटक रहे थे ऐसे तम्बुओं, गले के आभूषण से अलंकृत गर्दन वाले हाथियों, उच्चैःश्रवा के बन्धु बान्धवों के समान अश्वों, नूतन वस्त्र धारण किये पुरवासियों और फहराती हुई विजयपताकाओं से सुशोभित घरों को देखकर, भेरी, नगाड़े, झाँझ आदि के शब्दों को, सुनकर श्यामसिंह से

वान् सैन्धवान् , धारिताभिनववस्त्रान् पौरान् , समुद्धूत-विजयध्वजा-श्चाखिलान् गेहान् उपलभमानः, भेरी पटह-झर्झरादि-नादांश्चाऽऽक-र्णयन् , "अद्यास्ति कोऽप्यद्य उत्सवविशेष: ?"—इति श्यामम-पृच्छत् । स च 'अद्य एकपदमेव महाराजा दिल्लीश्वर सौरतान् विद्रोहिणः पोतयोधिनः सामुद्रांश्च पराजितवान्—इति महोत्सवोऽस्मिन् राज्ये" इति समुदतारीत् , मायाजिश्च सलज्जमश्रौषीत् ।

अथ ततो निवृत्त. सिंहदुर्गमायातस्तत्रत्यान् विजयध्वजाना-लोक्य किञ्चिदन्तर्गत्वा च शाहिस्तखान-शिरोभूषणादीनि बहूनि विजित्याऽऽच्छिद्याऽऽनीतानि वस्तूनि दृष्ट्वा ह्रीण इव हतोत्साह इव चकित इव च ततोऽपि निवृत्तः, पथि महदेक महाप्रघण शारद-

करिणः । उच्चैः श्रवस. = इन्द्रघोटकस्य । बान्धवानिव = भ्रातृनिवेत्यु-पमा । सैन्धवान् = हयान् । धारिताभिनववस्त्रान् = परिहितनूतनवस-नान् । पौरान् = नागरिकान् । समुद्धूतविजयध्वजान् = समुच्छ्रित-जय-वैजयन्तीकान् । उपलभमानः = समवलोकयन् । आकर्णयन् = शृण्वन् । उत्सवविशेषः = महोद्भवः । एकपदमेव=एकदैव । सौरतान = सूरतदेशीयान् । पोतयोधिन = नौसंग्रामकारिणः । सामुद्रान् = उदधिसम्बन्धिन । पराजितवान् परास्तवान् ।

विजयध्वजान् = विजयवैजयन्तीः । ह्रीण इव = सलज्ज इव । महा-प्रघण = बृहद्बहिर्द्वारप्रकोष्ठक, यस्मिस्तादृशम् , "प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वार-प्रकोष्ठक" इत्यमरः । शारदस्य = शरदि भवस्य, घनस्य=वारिदस्य, घनाघ-

पूछा, 'आज कोई विशेष उत्सव है क्या ?' उसने उत्तर दिया कि आज एक साथ ही महाराज ने दिल्लीश्वर को, सूरत के विद्रोहियों को और समुद्री लुटेरों ( नौका से संग्राम करने वाले समुद्रियों ) को पराजित किया है, इसलिये इस राज्य म महोत्सव है मुआजिम ने लज्जापूर्वक यह उत्तर सुना । तदनन्तर मुआजिम वहाँ से सिंह दुर्ग लौट आया । वहाँ की ( सिंह दुर्ग की ) विजय पताकाओं को देखकर और कुछ अन्दर जाकर शाइस्ताखाँ के मुकुट आदि बहुत सा जीतकर छीनकर लाई गई वस्तुओं को देखकर वह लज्जित

घन-घनाघन-विडम्बन भवनमद्राक्षीत् तत्र प्रविश्य च, रजतेन कनकेन च निर्मीयमाणा: शिवराजनामाङ्किता मुद्रा निष्काणि च दृष्ट्वा ततः प्रचलितो राजदुर्गमाससाद। दूरादेव दुर्गस्य समीपवर्तिनि प्रशस्ते शाद्वले च परस्सहस्रानश्वारोहान् उन्मुखयन्त भ्रामयन्तश्च महान्त कर्कमारूढं युवानमेकं समलुलोकत्। कोऽसाविति पृष्टश्च श्यामसिंह–कुमार! एष मे ज्येष्ठो भ्राता, महाराष्ट्रराजस्यान्यतमः सेनापतिरस्ति–इति व्याहार्षीत्।

तावदेकतो धौरितकेनाश्वारोह-शतकेनानुगम्यमानः, स्वयमपि पारसीकमेकमारूढः तथैव धावमानोऽनिल-लोलकुन्तलो नवीने

नस्य = वर्षुकमेघस्य, "वर्षुकाब्दो घनाघन" इत्यमरः। विडम्बना = अनुकृतिर्यस्य तत्, अभूतोपमालङ्कारः। निर्मीयमाणाः = विरच्यमाना। निष्काणि=सुवर्णमुद्रा। उन्मुखयन्तम्=अभिमुखयन्तम्, भ्रामयन्तम् = चालयन्तम्। 'कवायद करानेवाले' इति हिन्दी। यूनो विशेषणम्। कर्कम्=श्वेतमश्वम्। "शुक्लोऽश्व कर्क उच्यते" इत्यभिधानम्।

धौरितकेन = हयगतिविशेषेण। अश्वारोहाणाम् = सादिनाम्, शतकेन। पारसीकम् = पारस्यदेशोद्भवम्, अनिलेन लोलाः = चञ्चला, कुन्तलाः = चिकुरा, यस्य स, अनिलवत् लोला इति वा, "चिकुर कुन्तलो

सा, हतोत्साह सा, और चकित सा वहाँ से भी लौट पड़ा और रास्ते में उसने शरत्काल के घनी वर्षा करने वाले मेघ की विडम्बना करने वाले एक विशाल भवन को देखा जिसके बरामदे बहुत बड़े थे। उस भवन में जाकर चाँदी और सोने से बनाई जा रही शिवाजी के नाम से अङ्कित मुहरों और सिक्कों को देखकर, वहाँ से चलकर राजदुर्ग पहुँचा। दूर से ही दुर्ग के पास वाले साफ सुथरे घास के मैदान ( नीव ) में सहस्राधिक ( हजारों ) अश्वारोहियों को कवायद कराते हुए एक विशाल काय श्वेत अश्व पर आरूढ़ एक युवक को देखा। 'यह कौन है' यह पूछने पर श्यामसिंह ने कहा—'कुमार! ये मेरे बड़े भाई हैं जो महाराष्ट्र नरेश के सेनापतियों में से एक हैं'।

उसी समय एक ओर से दुलकी चाल से आ रहे सौ घुड़सवारों से अनुगत,

रुणैर्वासोभिरपरिचीयमानो रघुवीरसिंहः समागत । समादर-मुद्रया कुमार सम्भाव्य, श्यामेन भ्रूसञ्ज्ञयैव पृष्टो "मान्य ! शास्तिखान-युद्धे मयि प्रसन्नेन प्रभुणा शतमश्वारोहान ममाधिकारे निरूप्य, तदध्यक्षताया नियोजितोऽस्मि" इति समस्तकनमनमभ्यधात्। तेन "भद्रम, दिष्ट्या दिष्ट्या"—इति सप्रसादमुक्तश्च पुरत प्रचलित ।

अथ मायासिंहो राजदुर्गं परितः परिकाम्यन्, कुत्रचित् सेना निवेशान्, कुत्रचित् पदाति-निकर-विरचिता व्यूह-रचना, कुत्रचिद् धड्धड्ध्वनिपुरःसरं विहायसि प्रयुज्यमाना भुशुण्डिकाः, कुत्रचित् ह्रादिनी निर्ह्रादं ह्रेपयतीः शतघ्नीः, कुत्रचिन्मिथ्यायुद्धरचनया

---

बाल" इत्यमर । अरुणै = ईषद्रक्तैः । अपरिचीयमानः = अनवबुध्यमान । स्व प्रामस्वाधिकारानुरूपनवीनवेषधारित्वादिति भाव । समादरमुद्रया = गौरवप्रदर्शनभङ्ग्या । कुमारम् = मायासिंहम् । समस्तकनमनम् = सशिरोनति । दिष्ट्या = भागधेयेन ।

सेनानिवेशान् = शिविराणि । पदातिनिकरेण – पदगसमूहेन, विरचिताः = सघटिता । विहायसि = नभसि । ह्रादिनीनिर्ह्रादम् = वज्र-गर्जनम्। "ह्रादिनी वज्रमस्त्री स्यादि" अमरः। ह्रेपयतीः = लज्जयती ।

---

स्वयं भी एक पारसी घोड़े पर सवार हो उसी प्रकार घोड़े को दौड़ाता हुआ, हवा से हिल रहे बालों वाला, नवीन हल्के लाल वस्त्रों के कारण पहचान मे न आनेवाला रघुवीरसिंह आ गया। उसने आदर सूचक मुद्रा से कुमार को सम्मानित किया। श्याम ने भौंह के ईशारे से ही कुछ पूछा, उत्तर में उसने सिर झुका कर कहा—मान्य ! शास्ता खाँ के साथ युद्ध में मुझ पर प्रसन्न होकर महाराज ने सौ घुड़सवारों को मेरे अधिकार में देकर मुझे उसका नायक नियुक्त किया। श्यामसिंह ने हर्ष पूर्वक कहा "बहुत अच्छा, सौभाग्य है, सौभाग्य।" रघुवीर सामने की ओर ही चला गया।

तदनन्तर राजदुर्ग के चारों ओर घूमता हुआ, कहीं शिविरों को, कहीं पैदल सैनिकों द्वारा बनाई गई व्यूह रचनाओं को कहीं धड़ धड़ शब्द के

चन्द्रहास-चालन-चातुरीं प्रासासन-साहसं, पट्टिश-प्रयोग-पाटवं इषु-वर्षण-कौशलं च दर्शयतोऽनेकान् वीरान्, क्वचिच्च ध्वज-मुत्थाप्य भारतस्य सनातनधर्मस्य महाराष्ट्रराजस्य च जयनुद्‌घोषयतः प्रमोदपूरप्रफुल्लान् पौरान् पश्यन्, विविध-विभावना भङ्ग-भज्यमान-हृदयः पुनर्माया-प्रासादं निववृते ।

श्यामसिंहस्तु तं तत्र प्रवेश्य, स्वयमपि महाराष्ट्रराजस्य विजयोत्सवे राजदुर्गे समागतानां सम्भावित-मण्डलानां साकारे प्रताप-

शतघ्नीः = तोपान् । प्रासासनसाहसम् = कुन्तवेगपराक्रमं । पट्टिशस्य प्रयोगे = चालने, पाटवम् = कौशलम् । प्रमोदपूरप्रफुल्लान् = प्रसन्नताप्रवाहविकसितान् । विविधविभावनाभङ्गेन = अनेकविधविचारतरङ्गेण, 'भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा' इत्यमरः, भज्यमानम् = क्षुभ्यमानम्, हृदयं यस्य सः । मायाप्रासादम् = मायादुर्गम् । मायानिवासार्थं निर्दिष्टं भवनम् । सम्भावितमण्डलानाम् = प्रतिष्ठितवर्गाणाम् । साकारे = दर्शनीया-

साथ आकाश में छोड़ी जा रही बन्दूकों को, कहीं वज्रपात की ध्वनि या बिजली के गर्जन को लजाने वाली तोपों को, कहीं कृत्रिम युद्ध की रचना करके तलवार चलाने की निपुणता, भाला फेंकने का पराक्रम, पट्टिश के प्रयोग की पटुता और बाणों की वर्षा करने की कुशलता दिखा रहे अनेक वीरों को, कहीं झण्डा उठाकर भारत की, सनातन धर्म की, महाराष्ट्र नरेश की जय का उद्‌घोष कर रहे हर्ष प्रवाह से खिले हुए नगरवासियों को देखता विभिन्न विचारों की तरङ्गों से टूटते हुये हृदय वाला [illegible] पुनः माया-महल में लौट आया ।

श्यामसिंह उसे वहाँ पहुचा कर स्वयं भी महाराष्ट्र नरेश के [illegible] के अवसर पर राजदुर्ग में आये हुये सम्मानित लोगों के [illegible] ।

इव महति स्वर्ण-सिंहासने समारूढं मूर्तिमता यशसेव च्छत्र-मण्डलेन सुशोभितं प्रजाभिराद्रियमाणं महाराष्ट्रराजं द्रष्टुं राजदुर्गं प्रचलितः ।

इत्यष्टमो निश्वासः ।
इति द्वितीयो विरामः समाप्तः ।

---

रिणि । प्रताप इवेत्युत्प्रेक्षा । मूर्तिमता = आकृतिमता । यशसेव = कीर्त्यैवेत्युत्प्रेक्षा । आद्रियमाणम् = सत्क्रियमाणम् । जयजय-ध्वनि गोचरीक्रियमाणमिति यावत् ।

अशेष भूमीतल विद्यमान यम्दश लोकार्चित - पादयुग्म. ।
नारायण श्रीहरशब्दपूर्वस्त्रिपाठिवयो गुरुरस्ति यस्य ॥ १ ॥
अध्यानिरुद्धीशिवदत्तमिश्रतर्कांश्च य तार्किकमण्डलीशः ।
सिराहवासी भगवत्पुदीतो वेदान्तविद्यागयतोऽद्भवो यः ॥ २ ॥
श्यामा-पदद्वन्द्व मरन्द लुब्ध. स रामजीशर्मपद प्रसिद्धः ।
प्रादर्शयद्वीर-जये द्वितीये विरामके नूतनवैजयन्तीम् ॥ ३ ॥

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यामष्टमनिश्वासविवरणम् ।
द्वैतीयीकविरामविवरणं समाप्तम् ।

---

समान स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुये शरीरधारी यश के से छत्रमण्डल से सुशोभित, प्रजा द्वारा समादृत हो रहे महाराष्ट्र राज के दर्शन के लिये राज दुर्ग को चल पड़ा ।

शिवराजविजय का आठवाँ निश्वास समाप्त ।
शिवराजविजय के द्वितीय विराम का हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ ।

डाक्टर भगवान्दास

शान्तिसदन, सिगरा,
( बनारस कैण्ट )
तिथि १३ आश्विन २००३ वि०

श्री अम्बिकादत्तव्यासजी का "शिवराज विजय' नाम का गद्य-काव्य, बहुत वर्ष हुए, मैंने आद्योपान्त पढ़ा कुछ वर्षों के पीछे पुनः आद्योपान्त पढ़ा—इधर उसका पाँचवाँ संस्करण निकला—इस नये संस्करण की एक प्रति में इस काव्य को तीसरी बार पढ़ रहा हूँ—प्रत्येक आवृत्ति में आनन्द अधिक आया—

संस्कृत के, पण्डित-मण्डली में, प्रायः तीन गद्यकाव्यों की चर्चा अधिक होती रही है, सुबन्धु की 'वासवदत्ता', बाण की 'कादम्बरी', दण्डी का 'दशकुमारचरित'—दण्डी का गद्यकाव्य तो निश्चयेन, अन्य दोनों की अपेक्षा से अच्छा कहा जा सकता है,—यद्यपि 'अ-लौकिक' असम्भाव्यसी घटनाएँ उसमें कई बेर आई हैं, तथापि भाषा, ओजस्विनी होती हुई भी कुछ अर्थ रखती है, और राजनीति, लोकचातुरी, ललितकला आदि विषयक ज्ञान भी उसमें रखता है—पर वासवदत्ता और कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में तो बेचारा अर्थपथिक सर्वथा भूलभटक कर खो जाता है; उसका पता ही नहीं लगता कविता के गुणों में प्रसाद गुण एक मुख्य गुण है; वह इन दो काव्याभासों में मिलता नहीं—

विपरीत इसके, शिवराजविजय में, भाषा उत्तमोत्तम, ओजस्विनी भी, अर्थपूर्ण भी, सुबोध्य भी, यथास्थान, यथावसर, उद्दाम भी, कोमल भी। नवो रस भी इसमें बहुत औचिती और दक्षता से रक्खे हैं, वीररस, जिसका अर्वाचीन, संस्कृत-साहित्य में प्रायः अभाव ही है, वह इस ग्रन्थ में प्रधान है, शृङ्गार भी है, और सर्वथा सात्त्विक, सुशील, कोमल, प्रीति रूप; कहीं भी अश्लीलता आने नहीं पाई है; युद्धों के प्रसंग में रौद्र, भयानक, बीभत्स का और वीर के सम्बन्ध में अद्भुत का, रूप बहुत पर्याप्त मात्रा में दिखा दिया है। राजनीति और चार-चातुर्य और रणकौशल का भी निरूपण बहुत सुन्दर है। सर्वोपरि गुण इसका यह है कि विषय ऐतिहासिक, अधिकांश वास्तविक है, कपोल-कल्पित नहीं, और देशभक्ति, जन्म-भूमि-भक्ति, प्रजा की राज-भक्ति, राजा की प्रजा भक्ति, दोनों की धर्म-भक्ति, और भारतीय राष्ट्रीय-भाव से भरा है, जिन भावों का अर्वाचीन संस्कृत ग्रन्थों में सर्वथा अभाव है।

मैं जान नहीं सकता कि क्यों पण्डित मण्डली में अश्लीलतापूर्ण, 'हठाद्-आकृष्ट पद-पूर्ण' माघ किरात आदि काव्यों की इतनी महिमा है; और इस रत्नभूत ग्रन्थ से ईर्ष्या नहीं तो विमुखता है। इसका जितना अधिक प्रचार हो उतना अच्छा है—

भगवान्दास—

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचितः

# शिवराजविजयः

## अथ तृतीयो विरामः

"दैवी विचित्रा गतिः" —स्फुटकम्

येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत।
कुटजे खलु तेनेहा तेने हा! मधुकरेण कथम्? ॥ —जगन्नाथः

या सत्त्वैकगुणाश्रया भगवती वाणीति सम्बोधिता
लीना राजसहृतौ सुरवरैर्लक्ष्मीति चाभ्यर्थिता।
या कालीति तमोगुणा मधुमदोन्माथे चिरादर्चिता
सेयं काचिदनूतनाऽपि युवती वोभूयता भूतये ॥ १ ॥

नवमे निश्वासे वृद्धिं गच्छतः शिववीरमहिम्नः प्रबलबलसमवेतबल-समवेतजयपुरन्दरजयसिंहमहाराजतोऽवरोधं विवर्णयिषुस्तन्मूलाद्यामे भाविनीं दिल्लीवल्लभाधीनतामाशङ्कमानस्तदुभयमुपक्षिपति पद्यखण्डेन पण्डितराजी-येन पद्येन च।

दैवी = देवसम्बन्धिनी, अदृष्टाधीना वा।

येन = मधुकरेण, अमन्दमरन्दे = प्रचुरमकरन्दे, दलदरविन्दे = विकसत्पद्मे, दिनानि, सुखमयानि रसानुसेवनपराणि, अनायिषत=व्यति-यापितानि, हा! = कष्टम्, खलु = निश्चितम्, तेन, न ■ परेण, कुटजे = पार्वतमल्लिकायाम्, ईहा = इच्छा, अपि, कथम् = केन प्रकारेण, तेने =

"भाग्य की गति विचित्र होती है!" —मुक्तक

"हाय! पराग से ओत-प्रोत एवम् विकसित कमलिनी के बीच ही अपना सारा जीवन व्यतीत करनेवाले मधुकर ने आज कुटज-पुष्पों के बीच रहने की इच्छा क्यों की?" —जगन्नाथ

ऋतुरेव शरत्। साम्प्रतं पुण्यनगरप्रान्तेऽकालेऽपि वसन्त इव पुंस्कोकिलाः काकली-कलकलैर्दिगन्तं बधिरयन्ति। मिलित-मलयानिल-लोला लवङ्ग-लता दोलन्ति। मधु-गन्धान्ध-मधुव्रत-व्रात-विधुरा माकन्द-मञ्जर्यो माञ्जुल्यं वमन्ति। नितान्त-

---

विवृद्धिं गाता। धीरवीरस्वभावेन परमोदात्तेन नायकेन श्रीशिववीरेण अफजलखानवधयोगात्मके महति विपद्गणे समुपस्थितेऽपि सन्धित्सा कथमकारि, यन्मूलाऽऽवेदनो बन्धनादिरूपा दुर्यशोज्वाला धूमायितेति मधुकराव्याक्याऽवसरमाविर्दैवगतन्नैव या यन्त्रणेयेति प्राथमिकपद्यखण्डेन च दन्यन्यते।

ऋतुरेव शरत्, शरच्छब्दो नित्यस्त्रीलिङ्गो विधेयभूतः, उद्देश्यभूतश्च ऋतुशब्दो नित्यपुंलिङ्गः, उद्देश्यप्रतिनिर्देश्ययोरैक्यमापादयन्ति सर्वनामानि पर्यायेण तत्तल्लिङ्गमाप्नोति सर्वनाम्नि पुंस्त्वमुद्देश्यगतमाश्रित्य प्रयोग इति वेदितव्यम्। अकाले=असमये। पुंस्कोकिलाः=पिकाः। काकली-कलकलैः=पञ्चमस्वरैः। दिगन्तम्=हरिदन्तरालम्। बधिरयन्ति=शब्दश्रुतिरहितं कुर्वन्ति। निकरवो व्याप्ता इति यावत्। मिलितेन=संयुक्तेन, मलयानिलेन=मलयवायुना, लोलाः=चञ्चलाः। लवङ्गलताः=देवकुसुमलतयः। दोलन्ति=कम्पन्ते। मधुगन्धेन=मकरन्दपरिमलेन, अन्धानाम्=मत्तानाम्, मधुकराणाम्=द्विरेफाणाम्, व्रातेन=व्रजेन, विधुराः=व्याकुलिताः। माकन्दमञ्जर्यः=रसालपुष्पगुच्छाः। माञ्जुल्यम्=कोमलतामिश्रां सुन्दरताम्। वमन्ति=उद्गिरन्ति। नितान्त-

---

शरद् ऋतु का समय था। पूना के आस-पास असमय में ही कोकिल अपने काकली-कलकल से दिगन्त को उसी प्रकार गुञ्जित कर रहे थे जिस प्रकार वसन्त ऋतु में किया करते हैं। मलयानिल के मिलन से चञ्चल लवङ्ग-लतायें हिल रही थीं। पराग की सुगन्धि के आस्वाद में अन्ध मधुकरों के समूह से कम्पित हो रही आम की मञ्जरियाँ मञ्जुलता को उगल रही थीं।

विरह–क्लान्त–परम–श्रान्त–शून्य–स्वान्त–कान्ताजन–ज्वाला–जटाल–दाव–ज्वलन–जाज्वल्यमानाङ्गारक–कदम्बमिव पाटलपटलमुल्लसति। पुष्पपरागैः पीत–मकरन्द–बिन्दु–सन्दोहैरार्द्रः प्रफुल्लतालिङ्गनैः शीतः कुञ्जसंश्लेषैश्च धीरः समीरः प्रवहति स्म। दुःशकुनरूपत्वादागामि–भय–सूचकेऽपि वसन्तप्रायत्वात् सुखमयेऽ-

विरहक्लान्तः = अतिशयितवियोगखिन्नः, परमश्रान्तः = अत्यन्तं स्थगितः, शून्यस्वान्तः = विरहितचित्ताः, विक्षिप्तप्राय इति यावत्, यः कान्ताजनः = प्रेमिलोक एव ज्वालाजटालः = कीलालालङ्कृतः, दावज्वलनः = वनाग्निः; तेन जाज्वल्यमानानाम् = अतितरां ज्वलताम्, अङ्गारकाणाम् = वह्निदग्धकाष्ठखण्डानाम्, कदम्बमिव = समूहमिव। कान्ताजनेषु दावदहनत्वमारोपितं तदीयश्वासेषु ज्वलदङ्गारत्वनिमित्तमिति विशेषशोभाधायकत्वम्। पाटलपटलम् = पाटलासमूहः। पाटलम् "गुलाबफूल" इति भाषाप्रसिद्धम्। पुष्पपरागैः = कुसुमरजोभिः। पीतः = पीतवर्णः। मकरन्द-बिन्दु-सन्दोहैः = पुष्परसपृषत्समूहैः। आर्द्रः = क्लिन्नः। प्रफुल्लतालिङ्गनैः = विकसितव्रततिसमाश्लेषैः। शीतः = शीतलः। कुञ्जसंश्लेषैः = निकुञ्जसम्पर्कैः। धीरः = मन्दगतिः। समीरः = वायुः। प्रवहति स्म = सरति स्म। दुःशकुनरूपत्वात्, असामयिकत्वेन दुःशकुनत्वम्। आगामिभयस्य = भाविभीतेः, निग्रहात्मकानिष्टस्य, सूचके = बोधके। सुख-

[1] विरह से अत्यन्त सन्तप्त, परम श्रान्त तथा शून्य हृदय वाली कामिनियों की ज्वालाओं से विभूषित दावानल के फूल खिले हुए थे। पराग के सम्पर्क से पीला, पुष्परस की बिन्दुओं के समूह से भींगा हुआ, प्रफुल्लित लताओं के आलिङ्गन से शीतल तथा कुञ्जों के सम्पर्क से धीर समीर (वायु) बह रहा था। असामयिक और इसीलिए अपशकुन होने के कारण आगामी भय के सूचक होने पर भी वसन्तऋतु जैसे मनोरम दृश्य को प्रस्तुत करने से

रस्मिन् समये तोरणदुर्गादनतिदूरं पूर्वस्यां कुसुमवाटिकायां स्वयं महाराष्ट्रराज एकाकी पर्यटति स्म।

तत्र च भ्रमद्भ्रमरैश्चोचुम्ब्यमाना मल्लिकाः पश्यन्, दोदुल्यमानैः कर-पल्लवैरिव पल्लव-तल्लजैः पार्श्व-परिवर्ति-द्रुमान् स्पृशतीर्वासन्तीरवलोकयन्, पुंस्कोकिल-काकली-प्रतिवचनानीव कोकिल-कलरव-कुहूकारानाकर्णयन् अहरहः "जय महाराष्ट्रराज!" इति साम्रेडमाकर्णनेन विहित-तदनुकरण-विरावाभ्यासाः सारिका विभावयन्, अस्मान् परस्पर-ग्रथितं कुसुम-भार-निबिडं

मये = आपातरमणीये। अनतिदूरम् = अन्तिकम्। "दूरान्तिकार्थेभ्यश्च" इति द्वितीया। पर्यटति स्म = विहरति स्म।

भ्रमद्भ्रमरैः = सञ्चरद्द्विरेफैः। चोचुम्ब्यमानाः = समाश्लिष्यमाणाः। मल्लिकाः = मालतीः। दोदुल्यमानैः = उत्क्षिपद्भिः। करपल्लवैरिव = हस्तकिसलयैरिव। पल्लवतल्लजैः = प्रशस्तैः किसलयैः। पार्श्वपरिवर्तिनः = समीपस्थान्, द्रुमान् = वृक्षान्। स्पृशतीः = आश्लिष्यन्तीः। वासन्तीः = माधवीलता। पुंस्कोकिल-काकलीप्रतिवचनानीव = पिकोक्तिप्रत्युक्तीरिव, कोकिल कलरव-कुहूकारान् = पिकमधुरोक्ति कुहूरवान्। आकर्णयन् = शृण्वन्। अहरहः = प्रतिदिनम्। विहित तदनुकरण-विरावाभ्यासाः = कृतत[illegible]ः नशब्दावृत्तीः। सारिकाः = शारिकाः। विभावयन् = अवलोकयन्। परस्परग्रथितम् = अन्योन्यसंसक्तम्। कुसुम-

आपातत रमणीय उस समय में प्रवेश द्वार के समीप पूर्व दिशा में स्थित पुष्प वाटिका [illegible] महाराष्ट्रराज अकेले घूम रहे थे।

उस पुष्पवाटिका में घूमते समय चञ्चल भौंरों से पुनः पुनः चुम्बित होने वाली मालती पुष्प को देखते हुए, कर-पल्लव के समान हिलने पल्लवों से पास के वृक्षों का स्पर्श करती हुई वासन्ती लता का अवलोकन करते हुए, कोकिल की काकली (मधुरध्वनि) के प्रतिवचन की तरह कोयल की कूक को सुनते हुए, प्रतिदिन "महाराष्ट्रराज की जय हो, महाराष्ट्रराज की जय हो" इस जयध्वनि के भूयोभूयः सुनने के कारण उस (जयध्वनि) के अनुकरण करने के लिए बारम्बार उसी तरह का शब्द करने वाली सारिकाओं का निरीक्षण करते

मिलिन्द-व्याप्तं लता-प्रतान-निचयं हस्ताभ्यामुभयतोऽपसार्य निविशमानाम्, अष्टादशवर्षदेशीयाम्, धारित-हारित-परिधानाम्, कण्टकाकर्ष-श्लथद्वसन-दरीदृश्यमानमीषदुन्मिषितमुरोज-युगलमञ्चलेनाऽऽच्छादयितुं यतमानाम्, प्रफुल्ल-कमल-भ्रमेणेव वदनमभिपततो मधुकरान् ससम्भ्रमं सभ्रूभङ्गमीक्षमाणाम्, कपोल पालि लग्न पराग रागेण होलिका महोत्सव-नेपथ्येनेवावतर-

---

भारनिबिडम् = पुष्पभरघनम्। मिलिन्दव्याप्तम्=द्विरेफयुतम्। लताप्रताननिचयम् = प्रततिविस्तृतिसमूहम्। अपसार्य = दूरीकृत्य। निविशमानाम्-प्रविशन्तीम्। अष्टादशवर्षदेशीयाम्=प्रायोऽष्टादश-वर्षवयस्काम्। धारित-हारित-परिधानाम्=परिहितहरितवर्णवसनाम्। कण्टकानाम्, आकर्षण = आकृष्ट्या, श्लथतः = पतमानात्, वसनात्=वासस., दरीदृश्यमानम् = भृशं अवलोक्यमानम्। ईषदुन्मिषितम् = किञ्चिदुन्नतम्। उरोजयुगलम् = कुचद्वन्द्वम्। अञ्चलेन = वसनकोणेन। आच्छादयितुम् = गोपयितुम्। यतमानाम् = यत्नमादधतीम्। प्रफुल्ल-कमल-भ्रमेणेव=विकसितारविन्दभ्रान्त्येव। वदनम् = आननम्, अभि-पततः = समीपमुपसर्पतः। सभ्रूभङ्गम् = भ्रूपातपुरस्सरम्। ईक्षमाणाम्= अवलोकयन्तीम्। कपोलपाली = गण्डस्थलप्रान्ते, लग्नेन=सम्बद्धेन, परागरागेण = पुष्पधूलिलौहित्येन। होलिकामहोत्सवनेपथ्येन =

---

हुए महानुराग ने परस्पर-सम्बद्ध फूलों के भार से घनी ( लदी हुई ) और भौंरों से परिपूर्ण लताओं के कुञ्ज को दोनों हाथों से हटाकर घुसती हुई, करीब करीब अठारह साल की, हरे रङ्ग की साड़ी पहनी हुई, काँटों में फँस जाने के कारण साड़ी के नीचे खिसक जाने से अन्य व्यक्तियों द्वारा देखे जाने योग्य अपने नव विकसित स्तन-युगल को अञ्चल से ढकने में व्यस्त, खिले कमल के भ्रम से अपने मुख पर टूट पड़नेवाले मधुकरों को सम्भ्रम पूर्वक त्यौरी चढ़ाकर देखती हुई, गालों पर लगी पराग की लालिमा से मानो होली मनाने के वेश में आनेवाली, मालतीलता के सम्पर्क से उन्मथित

न्तीम्, मल्ली-वल्ली-सङ्घर्षोन्मथितेनाधररागेणाधिकमधिकं तर्षमिव जनयन्तीम्, शुक-शावक-रावानुकारि-मञ्जु-मन्द-शिञ्जिताम्, गृहीत-कुसुम-स्तबकां कामपि यवन-कामिनीमद्राक्षीत्।

सा तु दृष्ट्वैव महाराष्ट्रराजं द्वाकरमुत्थाप्य शिरो नमयित्वा अंसस्थान-वसन-दर्शित-ताटङ्क-निचया, रसना निःस्वनेनेव किञ्चन वचनीयमिति सूचयन्ती, लोलल्लटन्तिका, सूक्ष्मवसनान्तर्दीप्य-

---

हस्तोदकवत् । अवतरन्तीम् = आविर्भवन्तीम् । मल्ली वल्ली-संघर्षोन्मथितेन = मल्लीलता-घर्षणमर्दितेन । अधररागेण = ओष्ठलौहित्येन । तर्षम् = पानेच्छाम् । कर्षादधरमधुनः । जनयन्तीम् = उत्पादयन्तीम् । शुकशावकरावानुकारि = कीरशिशुशब्दविडम्बकम्, मञ्जु = सुन्दरम्, मञ्जीरयोः = नूपुरयोः, शिञ्जितम् = भूषणध्वनिः, यस्यास्ताम् । 'भूषणानां तु शिञ्जितम्' इत्यमरः । गृहीतकुसुमस्तबकाम् = धृतपुष्पगुच्छाम् । यवनकामिनीम् = म्लेच्छवनिताम् ।

द्वाकरम् = द्विहस्तम् । अंसस्थानात् = स्कन्धतः, वसनात् = वस्त्रात्, दर्शितः = प्रकाशितः, ताटङ्कनिचयः = कर्णभूषणसमूहो यया सा । रसनानिःस्वनेनेव = काञ्चीशिञ्जितेनेव । वचनीयम् = वक्तव्यम् । सूचयन्ती = बोधयन्ती । लोलन्ती = चपला, लटन्तिका = ज्ञानातिशयितचरित्रा, चपलः सा । सूक्ष्मवसनस्य = सूक्ष्मवस्त्रस्य, शुभ्र,

---

अधरोष्ठलाली से अधर पान की तृष्णा को बढ़ाती-सी, मधुर झङ्कार से तोतों के बच्चों की मधुरध्वनि के अनुकारी नूपुरों की ध्वनि से सुशोभित और हाथ में फूलों के गुच्छे लिए आ रही किसी यवनयुवती को देखा।

महाराष्ट्रराज को देखते ही उस यवनी ने दोनों हाथ उठाकर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और साड़ी के खिसक जाने के कारण दृष्टिपथ में आ जाने वाले कर्णालङ्कारों [कुण्डलों] से सुशोभित, करधनी के शिञ्जित से अपने वक्तव्य को प्रकाशित सा करती हुई, लटकते हार से मनोरम,

मात-श्यालपादपा, भद्रकरसम्पुटा, एकतः समवतस्थे ।

महाराजस्तु तां तथाभूतामालक्ष्यैवमालपत् ।

महाराजः—भद्रे ! का त्वम् ? कुतः समायाता ? किमीहसे ? किं विवक्षसि ? कथमेकाकिनी वनेषु भ्रमन्ती न लज्जसे ? न बिभेषि ? रमणीया तवाऽऽकृतिः, वरणीयं वयः—इति कथं न स्वकीये स्वकुटुम्बेन सार्धं वससि ? किमिति चाञ्चल्यमङ्गीकृतवत्यसि ? स्फुटं वद ।

यवनी—महाराज ! अवगम्यतां दिल्लीवल्लभस्य तनयायाः शाह-घटी मामवैतु श्रीमान् । श्रीमती [illegible] चन्द्रशाला-गवाक्ष-जालिकातो

"झूल, जाल" इति प्रसिद्धस्य, अन्तः-मध्ये, वैदीप्यमाना = भासमाना प्रकाशमाना, श्यालपादपा-विरालद्समुदा [illegible] ।

भद्रकरसम्पुटा-कृताञ्जलिः । समवतस्थे = स्थिता ।

आलक्ष्य = अवलोक्य ।

भद्रे ! = कल्याणि । विवक्षसि = वक्तुमिच्छसि । एकाकिनी = असहाया । बिभेषि = भयम् आप्नोषि । आकृतिः = अवयवसंस्थानम् । वरणीयम् = विवाहयोग्यम् ।

सह्यवर्णम् = सर्वकार्येषु सम्मिलन्ती पुत्र्याम् । चन्द्रशालाया =

पतले वस्त्र ( जाल ) के भीतर चमकते हुए चंचल पाओं वाली यह यवन-कामिनी हाथ जोड़कर एक ओर खड़ी हो गई ।

महाराज—तुम कौन हो ? कहाँ से आ रही हो ? तुम्हारी अभिलाषा क्या है ? क्या बोलना चाहती हो ? अकेली इस जङ्गल में घूमने में तुम्हें लज्जा नहीं आती ? (किसी चीज का) डर भी नहीं होता ? देखो—तुम्हारी आकृति बहुत ही मनोहर है और उम्र भी ब्याहने की ( नव यौवन ) है, फिर अपने परिवार के साथ अपने घर ही क्यों नहीं रहती ? तुम आज भी इतना चञ्चल क्यों हो ? ठीक ठीक बताओ ।

यवनी—महाराज ! मैं दिल्ली नरेश की पुत्री की दासी हूँ । राजमहल

घनानीक्षमाणा श्रीचरणानपश्यदिति किमपि सन्दिश्य मां प्रेषितवती। अहञ्च केवलं तदाज्ञा-पालन-व्रतं शिरसा वहन्ती समायाताऽस्मि। कस्या वाऽपरस्याः साहसं भवेद् महाराजस्य समीपे एवमुपस्थातुम् ?

महा०—अपि राजकुमार्याः सहचर्य्यसि ?

सहचरी-[ साभिवादनम् ] आम् , महाराज !

महा०—कच्चित् कुशलिन्यत्र भवती ?

सहचरी—महाराज ! कुतः कुशलम् ?

महा०—किं तत् ?

सहचरी०—महाराज ! अत्यन्तं खिद्यते सा !

---

शिरोगृहस्य, "चन्द्रशाला शिरोगृहम्" इत्यमरः। गवाक्षजालिकाद्वः = वातायनिकारन्ध्रतः। श्रीचरणान् = भवतः। सन्दिश्य = सन्देशं दत्त्वा। तस्याः, आज्ञापालनमेव व्रतम् = नियमम्। वहन्ती = धारयन्ती। अपरस्याः = अन्यस्याः, भवती भवदीयाया वाऽवरोधिन्याः।

---

के चौबारे की खिड़कियों से वन की ओर झाँकते समय राजकुमारी ने श्रीमान् को देख लिया है और इसलिये उन्होंने कुछ सन्देशा पहुँचाने के लिये मुझे आपके पास भेजा है। राजकुमारी की आज्ञा का पालन करना ही मेरा काम है, इसलिए मैं उनकी आज्ञा को शिरोधार्य समझ कर आपके पास आई हूँ। मुझ जैसी दूती को छोड़ कौन सी दूसरी स्त्री हो सकती है जो आपके पास इस प्रकार सहसा आ जाने का साहस कर सके ?

महाराज—अच्छा, तुम राजकुमारी की सेविका हो ?

यवनी सहचरी—( प्रणामपूर्वक ) जी हाँ, श्रीमन् !

महाराज—क्या राजकुमारी सकुशल हैं ?

सहचरी—महाराज ! सकुशल कैसे रह सकती हैं ?

महाराज—क्या बात है ?

सहचरी—महाराज ! राजकुमारी तो आज-कल बहुत ही खिन्न हैं।

महा०—तत्किम् ? किं भृत्या नावहन्ति तदाज्ञाम् ? सत्कारे नियुक्ता न सत्कुर्वन्ति ? समये नोपस्थाप्यते साममीजातम् ? विनय न रक्षन्ति रक्षकाः ? दिल्ली-गमनाभिलाषो वा विकलयति राजकुमारीम् ?

सहचरी—महाराज ! नेदं किमप्याशङ्कनीयम् ।

महा०—तर्हि एतद्देशीय-वायु-जलादिकं न भवति तदनुकूलमिति शिथिला राजकुमारी ?

सहचरी—दीनबन्धो ! नास्ति सोऽपि हेतुः खेदस्य ।

महा०—तर्कि मयैव किमप्यपराद्धम् ?

सहचरी—आः ! शान्तं पापम् ! नैतत्स्वप्नेऽप्याशङ्क्यते आतिथेयेषु कोङ्कणचक्रवर्तिषु ।

---

नावहन्ति = न पालयन्ति । विकलयति = खेदयति ।
शिथिला = खिन्ना ।
आतिथेयेषु = अतिथिषु साधुषु ।

---

महाराज—खिन्नता क्यों ? क्या सेवक लोग उनकी आज्ञा नहीं मानते या उनके सत्कार के लिए नियुक्त अनुचर उनका उचित सत्कार नहीं करते ? या समय पर उन्हें आवश्यक चीजें नहीं मिल पातीं ? अथवा उनके रक्षक औचित्य का निर्वाह नहीं कर रहे हैं ? या दिल्ली जाने की उत्कण्ठा ही उन्हें सता रही है ?

सहचरी—महाराज ! इन स्थितियों का तो नाम भी नहीं लिया जा सकता ।

महाराज—तो क्या यहाँ की जलवायु की प्रतिकूलता के कारण ही राजकुमारी खिन्न हैं ?

सहचरी—नहीं महाराज ! उनकी खिन्नता का यह भी कारण नहीं है ।

महाराज—तो क्या मुझसे ही कुछ अपराध हो गया है ?

सहचरी—आप जैसे अतिथिसेवक कोङ्कण-देश सम्राट् के विषय में तो इस तरह स्वप्न में भी नहीं सोचा जा सकता है ।

महा०–[ क्षणं चिन्तयित्वा ] अथापनयतु मे सन्देहं सहचरी, किमिति खिन्ना राजकुमारी ?

सहचरी–महाराज ! न विद्मः को नाम व्याधिर्धुनोति राजकुमारीम्। साऽस्माभिरतिसावधानतया सेव्यमानाऽपि प्रतिक्षणमनिमिषपात-निरुद्ध-निःश्वास वीक्ष्यमाणाऽपि रोमाञ्चति, स्विद्यति, सीत्करोति, ताम्यति, विलपति, वेपते, उद्भ्रमति, रोदिति, ग्लायति, क्लिश्यति, मुह्यति, मूर्च्छति च। धीरं समीरमासाद्याधिकं खिद्यते, शीतमयूखमालोक्याधिकं तप्यते, कोकिल-कलरवमाकर्ण्य कर्णयोस्तोद्यमानेव कराभ्यां कर्णकुहरं पिधायान्तर्निविशते, अस्माभिर्हास्य-

---

व्याधिः = रोग, व्यथा। विशिष्ट आधिर्व्याधिः, स चात्रत्या मानसिकव्यथैव। अग्रे च लक्षणेभ्योऽपि स्पष्टयति। प्रतिक्षणम् = क्षणे क्षणे। अनिमिषपातनिरुद्धनिश्वासम् = निर्निमेषश्वासरोधपुरस्सरम्। ईक्ष्यमाणा = अवलोक्यमाना। रोमाञ्चति = पुलकं बिभर्ति। धीरम् = मन्दगतिम्। आसाद्य = लब्ध्वा। शीतमयूखम् = हिमदीधितिम्। तप्यते = ज्वरनाति। कोकिलकलरवम् = पिककुहूशब्दम्। कर्णयोः = श्रोत्रयोः। तोद्यमानेव = पीड्यमानेव। कर्णकुहरम् = श्रोत्रशष्कुलीम्। अन्तर्निविशते = अन्तरगाले गच्छति। हास्यमाना = नर्मवचसां गोचरीक्रियमाणा। न हसति = न

---

महाराज—( कुछ देर सोचकर ) अच्छा, तो अब तुम ही मेरी शङ्का को दूर करो। यह बतलाओ कि राजकुमारी किस कारण से खिन्न हैं।

सहचरी—महाराज ! मैं नहीं जानती कि राजकुमारी को कौन सा मनारोग सता रहा है। यद्यपि हम लोग अत्यन्त सावधान होकर उनकी सेवा में लगी रहती हैं और श्वास-प्रश्वास क्रिया को भी रोक कर सर्वदा एकटक दृष्टि से उनको देखती रहती हैं, फिर भी उनके शरीर पर कभी रोमाञ्च हो उठता, कभी पसीना आ जाता, कभी जोरों से सांस लेने लग जाती है, कभी उतावली हो जाती है, कभी विलाप करने लग जाती हैं, कभी कांपने लग जाती हैं, कभी चक्कर खाने लग जाती हैं, कभी रोने लग जाती हैं, कभी हतोत्साह मालूम पड़ती हैं, कभी क्लेश का अनुभव

मानाऽपि न हसति, विविध-विलास-रामणीयकेष्वपि न रमते, पाटलि-पटल-कलिका-मालामपि ज्वलन-ज्वाला-जालावलीमिव वेवेत्ति। किं कथयामि? केवलं दक्षतो वामतश्च परिवर्तनैः, दीर्घ-निश्वासैः, सजृम्भाऽङ्गुलिस्फोटनैश्च सा क्षपां क्षपयति।

महाराष्ट्रराजः [ स्वस्मिन्नेव ] तन् किं मदन-व्याधिरेषः? अस्तु, शृणोमि तावत्।

---

क्नति। विविधेषु = अनेकप्रकारेषु, विलासरामणीयकेषु = क्रीडासौन्दर्येषु। पाटलिपटलकलिकामालाम् = पाटलासमूहकोरकस्रजम्। ज्वलनज्वालाजालावलीम् = दहनशीलाग्निज्वालापङ्क्तिम्। वेवेत्ति = अवधारयति। परिवर्त्तनैः = वलनैः। दीर्घनिश्वासैः = लम्बोच्छ्वासैः। सजृम्भाङ्गुलिस्फोटनैः = गात्रविनामाङ्गुलिमोटनपुरस्सरम्। क्षपाम् = निशीथिनीम्। क्षपयति = यापयति।

---

करती हैं, कभी मोहित हो जाती हैं, और कभी तो मूच्छित भी हो जाती हैं। मन्द पवन को पाकर तो और भी खिन्न हो जाती हैं, चन्द्रमा की चन्द्रिका को देखते ही अधिक क्लेश पाने लग जाती हैं, कोयल की मन्द मधुर काकली को सुनकर तो अपने दोनों कानों को बन्द कर इस तरह भीतर घुस जाती है जैसे उसे सुनने से उनके कानों मे पीड़ा उत्पन्न होने लग जाती हो। हम लोगों के परिहास पर भी उन्हें हँसी नहीं आती, अनेक प्रकार के मनोरञ्जक खेल मे भी उनका मन नहीं लगता, पाटर के फूलों की कलियों की माला को तो अग्निशिखा जैसी समझती हैं। मैं क्या कहूँ! राजकुमारी तो केवल दाँयी-बाँयी करवटें बदल कर लम्बी साँसें भर कर, जँभाई लेकर अङ्गुलियों को फोड़कर किसी प्रकार रात गमाती है।

महा०—( मन ही मन ) तो क्या यह काम-रोग है! अच्छा, और भी सुन लूँ।

सहचरी—महाराज ! सा साञ्जन-वारिधारा-सम्पात-सम्मर्द मलिनौ पाण्डुरौ कपोलौ, ताप-तपन-तप्त-निश्वासाहति-शुष्कमधरम्, कर्पूर-पूर-चूर्ण-मञ्जिम्ना केनचिद् धवलिम्ना कृशिम्ना च समालिङ्गितान्यङ्गानि वहति। कदाचिद् विमनायमाना किञ्चित्पुस्तकमादाय पिपठिषन्त्यपि बाष्प-जलैः पत्राण्याविलयति। कर्हिचिच्चक्षुषी निमील्य विरहमयानि कानिचिच्छन्दांस्याम्रेडते। कदाचन कोणात् कोणं पर्यटन्ती कुड्ये लग्नमानं महाराज-चित्र-फलकमालोकमालोकं बाष्प-बिन्दु-व्रज-व्याजेन धैर्यमिव वमति।

---

साञ्जनस्य = सकज्जलस्य, वारिधारासम्पातस्य = जलप्रवाहपतनस्य, सम्मर्देन = सम्पर्केण, मलिनौ = कज्जलाविलौ। पाण्डुरौ = पीतवर्णौ। ताप एव = कामज्वर एव, तपनः = सूर्यः, तेन तप्तस्य = उष्णीकृतस्य, निश्वासस्य आहतिभिः = ताडनैः, शुष्कम् = नीरसम्। कर्पूर-पूर-चूर्ण-मञ्जिम्ना = हिमवालुकापुञ्ज-क्षोद शोभया। केनचित् = अवर्णनीयेन। धवलिम्ना = श्वैत्येन। कृशिम्ना = दौर्बल्येन। विमनायमाना = उत्का। पिपठिषन्ती = पठितुमिच्छन्ती। बाष्पजलैः = अस्रैः। आविलयति = दूषयति। विरहमयानि = विप्रलम्भशृङ्गारवर्णनपराणि, छन्दांसि = पद्यानि। पारसीके 'शेर'' इत्यभिहितानि। कुड्ये = भित्तौ। बाष्पबिन्दुव्रजव्याजेन = अश्रुकणसमूहच्छद्मना। वमतीव = उद्गिरतीव।

---

सह०—महाराज ! राजकुमारी के दोनों गाल अञ्जन से मिली हुई अश्रुधारा के गिरने से मलिन हो गये हैं, उनका अधरोष्ठ कामज्वररूपी सूर्य से सन्तप्त निःश्वास के आघात से सूख गया है और उनके सम्पूर्ण शरीर में कर्पूर चूर्ण की शोभा की तरह शोभा को उत्पन्न करनेवाली एक वर्णनातीत श्वेतिमा ( उजलापन ) और दुर्बलता छा गई है। कभी उद्विग्न होकर किसी पुस्तक को पढ़ने की इच्छा से हाथ में तो ले लेती हैं पर उनके आँसुओं से उसके पन्ने धुल जाते हैं। कभी कभी आँखें मूँद कर कुछ विरह गीतों को बार-बार गाती हैं। कभी कभी अपने कमरे में इधर-उधर घूमती हुई जब दीवार में लटकते हुये महाराज के चित्र को देखती हैं तो आँसू गिराने के

कहिचन फलकार्पितामेवात्रभवतो मूर्ति सम्बोध्य चिरमालपति, उपालभते, स्तौति, प्रार्थयते, वन्दते च। अथ फलकमिदमवतारयति, करे करोति, वक्षसि धत्ते, निपुणमीक्षते, गाढं चुम्बति, चिरमालिङ्गति, शिरसा च वहति। क्वचन स्वहस्तेनापि श्रीचरणानामिव मूर्तिमालिखति, आत्मनश्च प्रतिमां तद्वामत एव विन्यस्यति, ततश्च क्षणं मोदते, क्षणं हसति, क्षणं विषीदति, क्षणं क्रन्दति, क्षणमालपति, क्षणञ्च विलपति–इति किमिव कथयामि ?

---

नियात्प्रेक्षा। फलकार्पिताम् = चित्रलिखिताम्। उपालभते = उपालम्भं ददाति। 'उलाहना देती हैं।' स्तौति = स्तुतिं करोति। वन्दते = नमस्करोति। अवतारयति = अवरोहयति। वक्षसि = उरसि। धत्ते = धारयति। गाढम् = घनं यथा तथा। मूर्तिम् = बिम्बम्। आत्मनः = स्वस्याः। प्रतिमाम् = मूर्तिम्। विन्यस्यति = स्थापयति। वामाङ्गस्थापनेन हिन्दुधर्मव्यवहारस्वीकरणपूर्वकं पत्नीत्वाङ्गीकरणं व्यनक्ति। क्रन्दति = रोदिति। आलपति = आलापं करोति। विलपति = परिदेवनं करोति।

---

वहाने वे अपने पैरों को ही गिरा देती हैं। कभी कभी तो आपकी चित्र लिखित मूर्ति को ही सम्बोधित करती हुई चिर-काल तक बातें भी करतीं, उलाहना भी देतीं, स्तुति भी करतीं, प्रार्थना भी करतीं और प्रणाम भी करती हैं। फिर बाद में उस चित्र को नीचे उतारकर कभी हाथों में लेतीं तो कभी अपने हृदय पर रखतीं, कभी टकटकी लगाकर देखतीं तो कभी चूमतीं और कभी गले लगातीं तो कभी माथे पर रखती हैं। कभी कभी तो अपने हाथ से ही आपका चित्र बनाकर उसकी बायीं ओर अपना भी चित्र बना डालती हैं और फिर कभी प्रसन्न होती हैं, कभी हँसने लग जाती हैं, कभी खिन्न हो उठती हैं, कभी रोने लग जाती हैं, कभी आलाप करती हैं और कभी विलाप भी किया करती हैं। और मैं कहाँ तक कहूँ ? राजकुमारी की

कुमार्या आदेशो मां मुखरितवानित्यपराधश्चेत् क्षन्तव्यो महाराष्ट्रराजैः।

महाराष्ट्रराजस्तु तां तथाऽभिधाय शिरो नमयित्वा बद्धकर-सम्पुटामेकतः स्थितामालोक्य, रसनायांश्च स्वस्मिन्ननुरागमवधार्य, तत्क्षणमेव प्राप्तावसरेण धैर्यघस्मरेण स्मरेण व्याकुलीक्रियमाणः क्षणं किञ्चिदपि नोक्तवान्। मार-विकार-प्रसार-भार-जर्जरितमाकारञ्च कथं कथमपि कुसुम स्तबकावचयैः कल-कूजित-पूजित-पतत्रि कुल-कलित-शाखाऽनुसन्धानैः, तत्क्षण-त्रोटित-कदली दल-वीजनैः स्वेदापनोदनैश्च निगूढवान्। तां सहचरीन्तु—

---

मुखरितवाम् = बहुभाषणवतीमकृत।

अभिधाय = निगद्य। शिरो नमयित्वा = प्रणम्य, कथनसमाप्तिसूचकमिदम्। बद्धकरसम्पुटाम् = कृताञ्जलिम्। प्राप्तावसरेण = लब्धसन्दर्भेण, धैर्यघस्मरेण = धीरताभक्षकेण। 'भक्षको घस्मरोद्मरः" इत्यमरः। स्मरेण = मदनेन। व्याकुलीक्रियमाणः = विनेतरकता नीयमानः। मारविकारस्य = कामविघ्ने, स्वदादे, प्रसारस्य = प्रसरणस्य, भारेण= आधिक्येन, जर्जरितम् = जीर्णप्रायम्। आकारम् = शरीरम्। कुसुमस्तबकावचयैः = पुष्पगुच्छसङ्कलनैः। कलकूजितेन = मधुररवेण, पूजितेन =

---

आज्ञा के कारण ही मुझे आपसे इतना कहना पड़ा। यदि मेरी कुछ गलतियाँ हुई हों तो कृपया आप क्षमा करें।

सारी स्थिति का वर्णन करने के पश्चात् नतमस्तक एवं करबद्ध मुद्रा में एक ओर खड़ी सहचरी को देखकर और रोशनआरा का अपने प्रति अनन्य प्रेम जानकर महाराष्ट्रराज तत्क्षण ही धैर्यहारक अवसरप्राप्त कामदेव की वेदना से व्याकुल होकर क्षण भर कुछ नहीं बोले। कामवेदना के अत्यधिक प्रसार से जर्जरित अपने स्वरूप को महाराष्ट्रराज ने फूलों के गुच्छे चुनने, कलरव करनेवाली पक्षियों के समूह से सम्बद्ध शाखाओं के देखने और

"त्रायतां महाराजः; त्यक्ष्यति प्राणानत्रभवती यदि न रक्ष्यते श्रीचरणैः"–इत्यभिदधानाम्, "ओम्! निवेदय भवतीमेषोऽहमायामि" इत्यभिधाय विसृष्टवान्।

तस्यां प्रयातायां च चिरं बहुशश्चिन्तयन् मुहूर्तमतिवाह्य, स्वयमपि शनैः शनैस्तोरणदुर्ग–शिरोगृहं सनाथयामास। तत्र च तथाभूतया रसनार्या सादरमुपवेशितः, स्वयं सखीजनेऽपसृते वारं वारं रसनार्या मुखं पश्यन्, करतल–न्यस्त–कपोला रसनारी व्यजिज्ञपद्, यद्

सङ्केन, पतत्रिकुलेन विहगनिवहेन, कलितानाम् = ध्यातानाम्, शाखानाम् = वृक्षावयवानाम्, अनुसन्धानैः = विचारणैः, समवलोकनैरिति यावत्। तत्क्षणम् = तत्कालम्, त्रोटितस्य = भञ्जितस्य, कदलीदलस्य = रम्भापत्रस्य, वीजनैः = व्यजनव्यापारैः। स्वेदापनोदनैः = घर्मबिन्दुदूरीकरणैः। निगूढवान् = गोपितवान्।

अभिदधानाम् = कथयन्तीम्। आयामि = आगच्छामि। "वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा"। विसृष्टवान् = त्यक्तवान्, गमनाय।

तोरणदुर्गस्य, शिरोगृहम् = चन्द्रशालाम्। स्वयम् = आत्मनैव। अप्रेरित एवेति यावत्। अपसृते = दूरीभूते। विज्ञाताभिप्रायत्वात्सहचरीणां स्वयं दूरीभवनम्। तदुक्तम् "परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः"। एतेन सहचरीणामतिनिपुणत्वं विज्ञाकलितम्। करतलन्यस्तकपोलाम् = हस्त-

तत्क्षण तोड़े कदली दल को झेलकर पसीना दूर करने के छल से किसी प्रकार व्यक्त न होने दिया और "रक्षा करें महाराज! यदि श्रीमान् राजकुमारी की रक्षा न करेंगे तो वे प्राणान्त कर देंगी" इस प्रकार अनुनय-विनय करती हुई उस सहचरी को "अच्छा, उनसे जाकर कह देना कि मैं अभी आ रहा हूँ" यह कह कर वहाँ से भेज दिया।

उस सहचरी के वहाँ से प्रस्थान के पश्चात् महाराजराज सोचने-विचारने में कुछ समय व्यतीत कर सिंहद्वार के चौबारे में घुस गये। वहाँ घुसते ही विरहिणी रोशनआरा ने उन्हें आसन पर आदरपूर्वक बैठाया और बाद में वहाँ से रोशनआरा की सहेलियों के चले जाने पर एकान्त में बारम्बार

"भद्रे ! श्रुतवानस्मि सहचरीमुखादखिलं वृत्तान्तम्, तथाऽपि भवत्या मुखादपि शुश्रूषे कोऽयं कथमयं कीदृशश्चायं खेदः ?"—इति ।

सा तु अतरल-तारकेण क्षुण्णपक्ष्मणेक्षणेन क्षणं राजमुखमैक्षिष्ट । ईक्षमाणैव च स्वेद-सलिल-सन्दोहैः स्नपितेव, महाराष्ट्र-मण्डलाखण्डलाय बाष्प-बिन्दु-मौक्तिकावलिमिवोपहरन्ती, श्वास-प्रश्वास-झञ्झावातोज्झित-धैर्या, शोकाङ्कुरैरिव रोम-निकरैर्निगूढांगा, भयेनेवाकम्पत ।

तालिकास्थापितगण्डाम् । व्यजिज्ञपत् = विज्ञापितवान् । शुश्रूषे = श्रोतुमिच्छामि । "ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः" इत्यात्मनेपदम् ।

अतरलतारकेण = अचञ्चलकनीनिकेन । क्षुण्णपक्ष्मणा = अनिमीलितनेत्रलोम्ना । ईक्षणेन = नयनेन । ऐक्षिष्ट = अलोकयत् । स्वेद सलिलसन्दोहैः = घर्म-जल व्रातैः । स्नपितेव = कृतनिर्णेजनेव । बाष्पबिन्दुमौक्तिकावलीम् = अश्रुपद्ललमालिकाम् । उपहरन्ती = ददती । श्वासप्रश्वासयोः, झञ्झावातेन = सवृष्टिकेन पवनेन, अत्र रोदनसहितेन; उज्झितम् = विलुप्तम्, धैर्यं यस्याः सा । शोकाङ्कुरैरिव = खेदोद्गमनैरिव । रोमनिकरैः = लोमचयैः । भयेनेव = भीत्येव ।

उसके मुखमण्डल को देखते हुये करतल पर गाल रख कर बैठी हुई रोशनआरा से उन्होंने पूछा—"भद्रे ! यद्यपि आपकी सहचरी के मुख से मैं सारा वृत्तान्त सुन चुका हूँ तथापि आपके मुख से भी मैं जानना चाहता हूँ कि आपको क्यों और किस प्रकार का कष्ट है ?"

रोशनआरा तो क्षणभर महाराज के मुखमण्डल की ओर टकटकाती ही रह गई । टकटकाते समय ही पसीने के जल से धुले शरीरवाली, आँखों से बहते आँसू की बूँदों से महाराष्ट्रराज के प्रति मोतियों का उपहार-सा समर्पित करती हुई, लम्बी साँस की आँधी से च्युत धैर्यवाली, शोकांकुर-से रहनेवाले रोमपुंजों से जकड़ी वह राजकुमारी मानो भय से ही काँपने लग गई ।

अथ "कथ्यतां, कः क्लेशः कुमार्याः ? किं वाऽभीप्सितम् ?–" इति वदति महाराष्ट्रराजे, सा वेपमानैरङ्गैरिव निवार्यमाणा, मन्मथोन्मथितेन मनसेव मूकीक्रियमाणा, उद्वेल्लितैर्बाष्पैरिव कण्ठे रुध्यमाना, अवहेलितया ह्रियेवावहेल्यमाना, अनासादितचरेण साहसेनेव हास्यमाना, मदन-मदेनेव च मामद्यमाना, न कञ्चन वाचो प्रचारमूरीचकार।

अथ क्रियासमभिहारेण महाराजेन सान्त्व्यमाना, अभ्यर्थ्यमाना च, अञ्चलान्तेन स्वेदैः सह लज्जामिवापसार्य, कदली-दलैः

अभीप्सितम् = अभिलषितम्। वेपमानैः = कम्पमानैः। निवार्यमाणा = निरुध्यमाना। मन्मथोन्मथितेन = कामजर्जरितेन। मूकीक्रियमाणा = मौनं नीयमाना। उद्वेल्लितैः = उच्छलद्भिः। रुध्यमाना= वार्यमाणा। अवहेलितया = तिरस्कृतया। ह्रिया = त्रपया। अवहेल्यमाना = तिरस्क्रियमाणा। अनासादितचरेण = पूर्वमप्राप्तेन। साहसेन = मानसिकेन बलकर्मणा। हास्यमाना = उपहस्यमाना। मदनमदेन = कामजविकारेण। मामद्यमाना = अतितरां माद्यन्ती। वाचां प्रचारम् = वाक्प्रसारम्। ऊरीचकार = स्वीचकार।

क्रियासमभिहारेण = पौनःपुन्येन। सान्त्व्यमाना = साम्ना प्रतिबोध्यमाना। अभ्यर्थ्यमाना = प्रार्थ्यमाना।

उसके बाद जब महाराष्ट्र राजा ने पूछा—"कहिये, आपको कौन-सी तकलीफ है ? आप क्या चाहती हैं ?" तो राजकुमारी ने कुछ उत्तर ही नहीं दिया, ऐसा लग रहा था कि उसका काँपता हुआ शरीर उसे बोलने से रोक रहा था, कामवेदना-व्यथित चित्त ने उसे मूक बना दिया था, अश्रुपात से उसका गला रुन्ध गया था, लज्जा से तिरस्कृत हो रही थी, अभूतपूर्व साहस करने के कारण उसका लोग उपहास कर रहे थे और काम-मद से अधिकाधिक उन्मत्त हो गयी थी।

फिर जब महाराज ने बारम्बार सान्त्वना पूर्वक पूछा तो अपने आँचल से पसीने के साथ-साथ लज्जा को भी पोंछ कर, पंखे के रूप में कदली-दल

योञ्चन-व्याजेन किञ्चनावशिष्टं धैर्यमप्युद्धूय, बाष्पापहरण-कैतवेन विवेकमपि च सम्मर्द्य, कर्णार्पित-कर्णिकार-पापत्यमान-मधुकर-निकर-विधूनन-च्छलेन निर्मक्षिकमिव विदधती, परितोऽवलोकन-च्छद्मना वास्तुदेवी-श्रवणमिवाऽऽशङ्कमाना, वक्तुकामाऽपि स्वाशयं प्रकटयितुं यतमानाऽपि स्फुरितोत्तराऽपि च विरह-ज्वालावलीढ-वसनया प्रकाशमनाऽऽजिगमिषन्त्या भगवत्या सरस्वत्या

अञ्चलान्तेन = वसनप्रान्तेन। स्वेदैः सह = घर्मबिन्दुभिः साकम्। लज्जामपसार्य = त्रपां दूरीकृत्य। सहोत्थितः = सहोदिताः। कदलीदलवीजन-व्याजेन = रम्भापत्रहिल्लोलनच्छद्मना। अवशिष्टम् = शेषम्। उद्धूय = दूरीकृत्य। बाष्पापहरणकैतवेन = अश्रुमार्जनव्याजेन। विवेकम् = विचारम्। सम्मर्द्य = विनाश्य। कर्णयोः = श्रोत्रयोः, अर्पितेषु = स्थापितेषु, कर्णिकारेषु = तन्नामकपुष्पेषु, पापत्यमानानाम् = बार बार पततान्, मधुकराणाम् = भ्रमराणाम्, निकरस्य = समूहस्य, विधूननच्छलेन = दूरीकरणव्याजेन। निर्मक्षिकम् = जनसञ्चारशून्यम्। वास्तुदेवीश्रवणम् = देहल्यधिष्ठातृदेवीश्रुतिम्। आशङ्कमानेव = शङ्कमानेव। एतेन वक्तव्यस्य परमगोप्यत्वं ध्वनितम्। वक्तुकामाऽपि = कथयितुमभिलषन्त्यपि। स्वाशयम् = स्वाभिप्रायम्। प्रकटयितुम् = व्यक्तीकर्तुम्। यतमाना = चेष्टमाना। स्फुरितोत्तरा = चञ्चलितोत्तरोष्ठा। किञ्चिदुक्तुं प्रवृत्तेव। विरहज्वालावलीढवसनया = वियोगवह्निज्वालाकवलितवाससा। प्रकाशम् = स्फुटम्। अनाजिगमिषन्त्या = आगन्तुमनभिलषन्त्या। निर्वसनत्वादिति

के झेलने से कुछ अवशिष्ट धैर्य को भी उड़ा कर, आँसू पोंछने के बहाने अपने विवेक को भी उड़ा कर, कानों में लटकते कर्णिकार की कलियों पर टूट पड़ने वाले मधुकरों के उड़ाने के छल से उस स्थान को एकान्त-सा बनाकर चारों तरफ देखने के कपट से वास्तुदेवी के सुन लेने की आशङ्का-सी करती हुई बोलने की इच्छा रखती हुई भी, अपने अभिप्राय को प्रकट करने के लिए चेष्टा करती हुई भी, फड़कते अधरोष्ठ वाली भी वह मौन ही रही, मानो विरहानल से उसकी साड़ी के जल जाने के

ा पुनर्मौनमेवाकल्पयत् ।
स्तच्छोकदर्शनातिखिन्नेन महाराजकुमारी-[illegible] पौनः-
प्रार्थितम्—भद्रे ! अकथितकारणो वर्द्धते खेदः । यदि
श्रणेन मामनुगृहीतवत्यसि, तत् कथं मानस-खेद-हेतु-
ाधिकं न कृतार्थयसि ? नात्र कश्चन तृतीयः, न [illegible]
याणी षट्कर्णा । प्राणान् संशयमारोपयसि, न च यदि ।
ानयसि, न तु जीवनम्—इति ।

---

। धारिता = निषिद्धा ।
ोकदर्शनातिखिन्नेन = [illegible] । महारा-
याः = [illegible] । "[illegible]"
। पौनःपुन्येन = [illegible] । अकथितकारणः = [illegible]
ः । वर्धते = एधते । अनुगृहीतवती = [illegible] । मानस-
कथनेन = [illegible] । षट्कर्णा = [illegible]-
गोचरा । तृतीयादिश्रवणे [illegible] । [illegible]
'षट्कर्णो [illegible] मन्त्रः' इति । [illegible] ।
[illegible] । मानयसि = [illegible] । जीवनम् = [illegible] ।

---

सके समक्ष [illegible] के प्रस्तुत न होने की [illegible]
[illegible] ने ही उसे बोलने से रोक दिया है ।
[illegible] राजकुमारी के शोक को देखकर [illegible]
[illegible] मुनि ने बारम्बार [illegible] कहा—"भद्रे ! [illegible]
[illegible] नहीं [illegible] रहा है [illegible]
यदि [illegible] मुझे [illegible]
ो मनोव्यथा के कारण का [illegible]
यों नहीं कर रही हो ? [illegible]
[illegible] वाणी षट्कर्ण ( [illegible] ) नहीं [illegible] ।
[illegible] संशय में डाल रही हो पर कुछ बतलाना नहीं
[illegible] रही हो [illegible] बनाने की [illegible] !

परतश्च निश्वासानुपातिभिर्मधुपैरिव परिपीतायाम्, खेद-सागर इव निमग्नायाम्, बाष्प प्रवाहेणेव क्षालितायाम्, मदन-दहनेनेव दग्धायाम्, नख-विलेखैरिव कर्तितायाम्, दीर्घोच्छ्वासैरिव विधूतायाम्, महाराजवचनैरिव विलुण्ठितायां च त्रपायाम्, चक्षुषी प्रमृज्य, अभिमुखीभूय, वक्तुमारभत रसनारी—

महाराज! सर्वं विदितमार्यस्य, केवलं पुनरुक्तिरियं भविता

---

निश्वासानुपातिभिः = निश्वासपश्चाद्गतिभिः। परित. पीतायाम् = आस्वादितायाम्। इवेनोत्प्रेक्षा। एवमग्रेऽपि। निमग्नायाम् = ब्रुडितायाम्। बाष्पप्रवाहेण = अश्रुपूरेण। क्षालितायामिव = धौतायामिव। मदनदहनेन = कामवह्निना। दग्धायामिव = प्रज्वलितायामिव। नखविलेखैः = नखविदारणैः। कर्तितायामिव = छेदितायामिव। विलुण्ठितायाम् = बलादपहृतायाम्। त्रपायाम् = लज्जायाम्। अभिमुखीभूय = सम्मुखीभूय।

सर्वं विदितमार्यस्य, एतेन विज्ञाताशयोऽपि महाराजो बलान्मदानन्वच्छ्रोतु वाञ्छति निखिलम्, तदिदञ्च महाराजस्य पुरुषत्वञ्चेति ध्वनयति प्रथमवाक्येनैव रसनारी। एषा हि पर विदुषी कवयित्री चेतीतिहासेषु ख्यातम्। नारीणां च विदुषीणां वचनं व्यङ्ग्यबहुलं भवतीति न तिरोहितम्— "विजृम्भितं यस्य किल ध्वनेरिदं विदग्धनारीवचनं तदाकरः।" इति श्रीहर्षोक्तिवेदिनामिति यत्किञ्चिदेतत्। पुनरुक्तिः = द्वितीयवारं कथनम्।

---

तदनन्तर जब रोशन आरा की लज्जा निश्वास के अनुगामी मधुकरों द्वारा परिपीत सी हो गई, खेद-सागर में डूब-सी गई, अश्रुधारा से धुल सी गई, कामानल से जल सी गई, नख-विलेखन से कट-सी गई, दीर्घश्वास से उड़-सी गई और महाराजराज की वाणी से अपहृत-सी हो गई तब उसने अपनी आँसूभरी आँखें पोंछकर महाराजराज के समक्ष कहना शुरू किया—

"महाराज! श्रीमान् को तो सब कुछ ज्ञात ही है, मेरा कथन तो पुन·

मदुक्ति, तथाऽपि वार वारमापृच्छ्यमानाऽपि यदि वाच यच्छेय प्रत्युत्तर च न प्रयच्छेय तत्परमापराधिनी स्यामिति निवेदयामि यत् महाराज एव कारण ममाऽऽधीनाम्। न शोभते महाराजे एव वनिता-जन-वञ्चन व्यर्थ-मर्यादा-विकत्थन च।

महाराजस्तु ईदृशीं भङ्गीमाकर्ण्य, दिल्लीश्वर-दुहितुर्लोलताम्, निर्भीकताम्, अभीरुताम्, चटुलताम्, चतुरताम्, कविताञ्च

---

मदुक्ति = मत्कथनम्। मदुक्तिरेव सहचरीमुखादधिगता भवद्भिरिति तामेव कथयिष्यामि नान्यदिमपीति व्यनक्ति। वाच यच्छेयम् = मौनिनी भवेयम्। प्रत्युत्तरम् = प्रतिवाचिकम्। न प्रयच्छेयम् = न प्रदद्याम्। आधीनाम् = मानसिकीना व्यथानाम्। वनिताजन वञ्चनम् = नारी जन प्रतारणम्। व्यर्थमर्यादाया = निष्प्रयोजनधार्मिकबन्धनस्य, विकत्थनम् = श्लाघनम्, धर्मरक्षणासुक्तिः श्लाघामानम्, विजनजनसंदनारण हि सर्वतो बलीयान् धर्म, स नानुष्ठीयते भवता।

भङ्गीम् = कथनप्रकारम्। लोलताम् = चपलताम्। निर्भीकताम् = निर्भयताम्। अभीरुताम् = कामुकत्वम्। "कम्र कामयिताऽभीरु कमन कामन ऽभिक" इत्यमर। चटुलताम् = चञ्चलताम्। चतुरताम् = कौश

---

दशि-मान होगा, फिर भी आपके बारम्बार पूछने के बाद भी यदि आपको उत्तर न देकर मैं मौन रह जाऊँगी तो मेरा बहुत बड़ा अपराध माना जाएगा, इस लिए मैं निवेदन कर रही हूँ—मेरी मनोव्यथा का कारण महाराज ही हैं। एक ओर तो वनिताओं की इस प्रकार की वञ्चना और दूसरी ओर धर्मरक्षण की झूटी श्लाघा महाराज को शोभा नहीं दे रही है।

राजकुमारी की इस प्रकार की वचन भङ्गी सुनकर उसकी चपलता, निर्भीकता, कामुकता, चटुलता, चतुरता और बोलने की कला पर विचार

विभावयन् पुनरुवाच—"भद्रे! विशकलय्य कथ्यताम्, कोऽनाचारः प्रादर्शि जनेनैतेन ?"

रसनारी—महाराज! किमिवाऽऽच्छन्दयसि? विचित्रास्तव मायाः, विलक्षणास्तव घटनाः। यदा यदा मां साक्षात्करोषि तदा तदाऽनया तु मूर्त्याऽऽचारं विनय मर्यादामेव च रक्षसि, किन्तु उत्थाय प्रस्थितोऽपि मायामय्येव मूर्त्या चक्षुषोरग्रत एव वर्वर्त्सि। अहह! साहचर्य्यमेव न त्यजसि, सहैव पर्य्यटसि, सहैव भुङ्क्षे, सहैव च शेषे। निद्रायामपि मम कदाचिदंशुकं स्पृशसि, कर्हिचित् कपोलयोः

---

रूम्। कविताम् = कवनशक्तिम्। विभावयन् = विचारयन्। अनाचारः = दुर्व्यवहार। प्रादर्शि = प्रदर्शित।

आच्छन्दयसि = मोहयसि, अनुरुणत्सि। मायाः = मोहनप्रकाराः। घटनाः = कार्याणि। साक्षात्करोषि = पश्यसि। मूर्त्या = आकारेण। आचारम् = व्यवहारम्। विनयम् = नम्रताम्। मर्यादाम् = धार्मिकसीमानम्। मायामय्या = वशीकरणशक्तियुतया। वर्वर्त्सि = अतितरां तिष्ठसि। पर्य्यटसि = भ्रमसि। अंशुकम् = वसनम्। अपहरसि = प्रोञ्छसि।

---

करते हुए महाराणा ने कहा—"भद्रे! साफ-साफ बतलाओ—मैंने कौन सा दुर्व्यवहार किया है?"

रोशनआरा—"महाराज!" आप मुझे मोहित क्यों कर रहे हैं! आपकी माया और आपकी क्रिया विधि विलक्षण हैं। जब जब आप मुझे देखने आते तब तब तो आप अपनी इस आकृति से आचार, विनय एवम् मर्यादा का पालन ही किया करते हैं, परन्तु जब मेरे पास से उठ कर चल देते हैं तब तो आप अपनी मायामयी प्रतिमा को मेरी आँखों के सामने ही छोड़ जाते हैं। अहा! आप मेरा साथ ही नहीं छोड़ते, साथ-साथ घूमते हैं, साथ साथ खाते हैं और साथ-साथ सोते भी हैं। कभी-कभी नींद में भी आप मेरी साड़ी छू बैठते हैं, कदाचित् दोनों गालों का

रवेदानपहरसि। केयं चातुरी यदेकया मूर्त्या मर्य्यादाया ध्वजं वहसि, परया चाचिन्तनीयमाचरसि! हन्त! कुत आयासि? मुद्रितं कवाट-युगलमपि नोद्घाटयसि, शृङ्खलामपि न चालयसि, सहचरीभिरपि नेक्ष्यसे, अनन्य-श्राव्यमालपसि, निभृतमेव वहसि, चित्रं चित्रं चित्रगतोऽपि च स्मयसे। अवलोकमवलोकं तवैतां मायामत्यन्तं बिभेमि, खिद्ये, उन्माद्यामि च। को वा न मुह्येदीक्षमाण ईदृशानि विलक्षणानि इन्द्रजालानि? तत् समये समायातोऽसि, निवेदितवत्यस्मि निखिलमितिवृत्तम्। साम्प्रतन्तु न शक्नोमि जीवि-

---

मर्यादाया ध्वजम् = धार्मिकतीभ्नो वैजयन्तीम्। परा धार्मिकतां प्रकटयसीति यावत्। अचिन्तनीयम् = अविचारणीयम्, मुद्रितम् = पिहितम्, कवाट-युगलम् = कपाटद्वयम्। 'क(वा)पाटमररं तुल्ये'' इत्यमरः। शृङ्खलाम् = अररबन्धनदाम. न चालयसि = न हिल्लोलयसि। कपाटोन्मुद्रणार्थं शृङ्खला सञ्चाल्य शब्दयन्ति जना इति लौकिकम्। अनन्यश्राव्यम् = अनितरश्रोतव्यम्। गुह्यभाषणमिति यावत्। निभृतम् = गुप्तम्। स्मयसे = किञ्चिद्धससि। खिद्ये = खेदिनी भवामि। इन्द्रजालानि = मायिकानि कार्याणि। इतिवृत्तम् = पूर्ववृत्तम्। जीवितुम् = प्राणान् धर्तुम्।

---

पसीना पोंछ देते हैं। यह कौन सी चतुरता है कि एक स्वरूप से तो धर्मध्वज उठाये हुए हैं और दूसरे स्वरूप से ऐसा काम किया करते हैं जिसके बारे में कोई सोच भी नहीं सकता! हाय! आप कैसे मेरे पास चुपके से आ जाया करते हैं कि ये किवाड़ियाँ भी बन्द ही रह जाती हैं, सिकड़ी भी नहीं खट-खटाती, मेरी सहेलियाँ भी आपको नहीं देख पातीं, एकान्त वार्तालाप भी किया करते हैं और छिपे भी रहते; और सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि चित्रगत होने पर भी आप मुस्कराया करते हैं। आपकी इस माया को बारम्बार देख कर मैं डरती भी हूँ, खिन्न भी होती जा रही हूँ और यदा-कदाचित् उन्मत्त भी हो जाया करती हूँ! इस तरह के विलक्षण इन्द्रजाल को देख कर कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो मोहित नहीं होगा? अब ठीक समय पर यहाँ आ गए हैं,

तुमिति पश्यत एव तव प्राणांस्त्यजामि। स्मरणीयाऽहम्, कोऽप्यप-राधश्चेत् भ्रमविहितः स क्षन्तव्य-इत्युक्त्वाऽञ्चल-प्रान्तेनाऽऽत्मानमुद्बद्धुमिव यतमानां करे धृत्वा सान्त्वयन्, शीतलयंश्च पुनराह महाराष्ट्रराजः—

भद्रे! मुधैव मामुपालभसे। यदा गम्भीरं निरीक्षिष्यसे, परीक्षिष्यसे च, तदा स्पष्टं समीक्षिष्यसे यन्ममाणुरपि दोषो नासकीनः। श्रीमत्या एव हृदयम्, मनः, वाञ्छा, यौवनम्, कामः, रागश्चात्रापराध्यति। धन्यमात्मानं मन्ये, यच्छ्रीमती दिल्ली-

स्मरणीया = स्मृतिपथमानेतव्या। प्राणत्यागानन्तरं दर्शनासम्भवात्। भ्रमविहितः = भ्रान्तिकृत। उद्बद्धुम् = पाशीकर्तुम्। सान्त्वयन् = सामवचांसि प्रयुञ्जानः। शीतलयन् = शिशिरयन्।

मुधा = व्यर्थम्। उपालभसे = उपालम्भं ददासि। निरीक्षिष्यसे = द्रक्ष्यसि। परीक्षिष्यसे = विचारयिष्यसि। समीक्षिष्यसे = आलोचयिष्यसि। अणुरपि=लघुतमोऽपि। वाञ्छा=अभिलाषः। यौवनम्=तारुण्यम्। रागः=प्रेम। अपराध्यति=अपराधहेतुर्भवति। धन्यम्=अतिश्रेष्ठम्। गर्वम्=

मैं सारी स्थिति बतला ही चुकी हूँ। अब मैं जी नहीं सकती हूँ, इसलिए आपके समक्ष ही मैं अपने प्राण छोड़ रही हूँ। यदाकदाचित् आप मेरी याद करेंगे और यदि भ्रमवश मुझ से कोई अपराध हुआ हो तो कृपया क्षमा करेंगे"—यह कह कर अपने आँचल के फन्दे में अपना गला देना ही चाहती थी कि महाराष्ट्रराज ने उसका हाथ पकड़ लिया और सान्त्वना देते हुए पुनः उससे कहा—

भद्रे! तुम व्यर्थ ही मुझे उपालम्भ दे रही हो। जब तुम गम्भीर विचार विमर्श करोगी तो तुम्हें स्पष्ट रूप में ज्ञात हो जाएगा कि मेरा कुछ भी दोष नहीं है। दोष तो तुम्हारे हृदय, मन, अभिलाष, यौवन, काम और प्रेम का है। मैं आज अपने को धन्य मान रहा हूँ, कि पर्वतोन्दुर (पहाड़ी चूहा) के रूप में (दिल्ली सम्राट् से) उपाधि प्राप्त करने के बावजूद भी तुम दिल्लीसम्राट् की नन्दिनी आज मुझसे इतना अनुरक्त हो। मैं समझता

वल्लभ-नन्दिनी गर्वमपहाय पार्वतोन्दुरनाम्ना प्रसिद्धिं गमितेऽपि मय्यनुरक्तवती। आनृण्यं चास्यानुग्रहस्य मन्ये न कदाऽप्युपयास्यामि, परमिदमत्र विभावनीयम्-पित्रा अप्रदीयमाना यं कञ्चिदेवाङ्गीकुर्वती व्यभिचारिणी वचनीया च भवति वदावदानाम्। मातापितृभ्यामदत्तामात्मसात्कुर्वंश्च 'लम्पटः' इति निन्द्यते। तदाज्ञा चेदत्र भवतीमहं सादरं स्वसेनया रक्ष्यमाणां कुशलेन तातभवनं प्रापयामि, तातेनानुमता च मां सूचयिष्यसि। मदपेक्षयाऽप्यतिसुन्दरम्, अतिकमनीयम्, अतिसम्पदम्, अतिप्रार्थनीयम्, तुरुष्काऽऽरब्य पार-

अभिमानम्। अनुरक्तवती=प्रणयं कृतवती। आनृण्यम् = ऋणशून्यत्वम्। अनुग्रहस्य = कृपायाः। विभावनीयम् = विचारणीयम्। अप्रदीयमाना = अवितीर्यमाणा। अङ्गीकुर्वती = स्वीकुर्वती। व्यभिचारिणी = परपुरुषरता। वचनीया = निन्दनीया। वदावदानाम् = कथयितॄणाम्। "वदो वदावदो वक्ता।" इत्यमरः। आत्मसात्कुर्वन्=स्वाधीनतां नयन्। लम्पटः=परस्त्रीरतः, कामुकः। अनुमता = आज्ञप्ता। सूचयिष्यसि = बोधयिष्यसि। अतिसुन्दरम् = अत्यन्तरूपिणम्। अतिकमनीयम् = अतितरामर्थयितव्यम्।

हूं कि तुम्हारे इस अनुग्रह के ऋण से मैं अपने को कदापि मुक्त नहीं कर सकूँगा। किन्तु इस प्रसङ्ग में इतना विचार-विमर्श कर लेना चाहिए—पिता के द्वारा (विवाह में) समर्पित हुये बिना ही यदि कोई स्त्री किसी व्यक्ति को अपने पति के रूप में स्वीकृत कर लेती है तो लोग उसे व्यभिचारिणी तथा निन्दित स्त्री कहा करते हैं और स्त्री के माता-पिता द्वारा प्रदान किये बिना ही किसी स्त्री को आत्मसात् कर लेने वाला पुरुष भी 'लम्पट' कहा जाता है और लोग उसकी निन्दा किया करते हैं। अतः यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं आदर पूर्वक अपनी सेना के संरक्षण में तुम्हें पिता के पास भेजवा दूँ और यदि वहाँ तुम्हारे पिता की अनुमति तुम्हें मिल जाय तो तुम मुझे सूचना देना। यदि अनुमति नहीं मिली तो मुझसे भी अधिक सुन्दर, अत्यन्त आकर्षक, अत्यन्त धनवान्, सुन्दरियों द्वारा अत्यन्त अभिलषित तुर्क अरब

स्यादिदेश राजकुमारेषु वा अन्यतमं वरं वरयिष्यसि। मा स्म अकृतार्थमात्मानं मंस्थाः। यैः पुण्यबलैर्दिल्लीवल्लभकुले जाताऽसि, तैरेव कञ्चन चक्रवर्ति-कुमारं वासन्त-वासन्तीव सहकारं वरयिष्यसि।

एवमालपद्भ्यामेव ताभ्यामन्वभावि कश्चन धूमगन्ध इव। यावच्चेतस्ततः पश्यतस्तावद् गवाक्षद्वारेण प्रविशन् शुण्डिशुण्डादण्ड इव प्रचण्डो धूमोऽवलोकितः। यावच्च तद्विचिन्तयितुं यतते; तावन्

---

वरयिष्यसि = स्वीकरिष्यसि। अकृतार्थम् = अपूर्णमनोरथम्। वासन्त-वासन्तीव = वसन्ते गृहीतजन्मा मालतीव। सहकारम् = रसालम्। उपमा।

एवं धर्ममनस्कत्वगुणवशेन शिववीरेण प्रत्याख्याता रसनारी, किन्तु न सर्वथा प्रार्थ्यमानायास्तिरस्कारोऽपि विधेयः, "स्त्रीणां वरमनुस्मरन्, रामाया जातरामाया प्रशस्ता हस्तधारणा" इत्यादिवचनेभ्य इति बुबोधयिषुः, अमङ्गलमयश्शस्यश्च भावि किञ्चनेति दुःशकुनं प्रदिदर्शयिषुः, रसनार्याः परमभिप्रायमालिङ्गन् दैवप्रेरितमिति च समर्थयितुमिच्छुरग्रेतनं ग्रन्थं निगदति—

अन्वभावि = अनुभवगोचरीकृतः। अनवलोकितत्वादिवः।। पश्यतः = अवलोकयतः। प्रविशन् = गेहमागामन्। शुण्डिशुण्डादण्ड इव = करिकरदण्ड इव। प्रचण्डः = अत्युत्कटः। विचिन्तयितुम् = कुत इति विवे-

---

एवम् पारसीक देशों के राजकुमारों में से किसी को चुन लेना। अपने को अकृतार्थ मत समझो। जिस परमपुण्य के प्रभाव से तुमने दिल्लीसम्राट् के कुल में जन्म लिया है उसीके प्रभाव से तुम उसी प्रकार किसी चक्रवर्ती के सुपुत्र (या किसी चक्रवर्ती राजकुमार) को प्राप्त करोगी जिस प्रकार वसन्त ऋतु में उत्पन्न होने वाली मालती लता (मञ्जरित) आम्रवृक्ष को प्राप्त करती है।

उपर्युक्त रीति से दोनों आपस में बातचीत कर ही रहे थे कि उन्हें धूएँ की गन्ध लगी। जब इधर उधर वे दोनों देखने लगे तो देखा कि खिड़की के माध्यम से हाथी की सूँड की तरह प्रचण्ड धूमलेखा घर में प्रवेश कर रही थी। उसे देख कर दोनों तर्क-वितर्क कर ही रहे थे कि

'अग्निरग्निरग्निः, वह्निर्वह्निर्वह्निः, ज्वाला ज्वाला ज्वाले'ति प्रचण्डोऽश्रावि क्षुभितानामिव दौर्गिकाणां कोलाहल। तत्कोलाहलश्रवणसमकालमेवात्युद्विग्ना रसनारी त्रायस्व त्रायस्वेति वदन्ती महाराजं बाहुलताभ्यां गाढमवेष्टयत्। महाराजोऽपि तां तथा भीत-भीतां किञ्चिदुदञ्चिताभ्यां कुचाभ्यां वक्षःस्थलं पीडयन्तीं बाहुपाशवेष्टितग्रीवां सवेपथुं गाढमाश्लिष्टामवलोक्य, मा भैषीरित्यभिधाय कराभ्यां क्रोडे उत्थाप्य, सपदि द्वारदेशान्निरसृत्य बहिरायात। सहचर्योऽपि च कान्दिशीका भय-भ्रान्त-नयना 'भट्टारक! भट्टारक! भट्टिनि!

---

चयितुम्। प्रचण्ड॰ = बहुलाभूतः। क्षुभितानाम्=व्याकुलानाम्। भयभ्रान्तानामिति यावत्। कोलाहल॰ = कलकलः। अत्युद्विग्ना = अतितरां भीता। त्रायस्व त्रायस्व = पाहि पाहि। बाहुलताभ्याम् = भुजवल्लतीभ्याम्। रूपकम्। अवेष्टयत् = आच्छादयत्। उदञ्चिताभ्याम् = उन्नताभ्याम्। वक्षःस्थलम् = उरःस्थलम्, महाराजस्य। पीडयन्तीम् = आनन्दवर्षिणीं पीडामुद्भावयन्तीम्। बाहुपाशवेष्टितग्रीवाम् = भुजबन्धयन्त्रितशिरोधराम्। सवेपथुम् = सकम्पाम्। मा भैषीः = भयं न विधेहि। क्रोडे = भुजद्वयमध्ये। कान्दिशीकाः = भयद्रुताः। भयभ्रान्तनयनाः = भीत्यु

---

"अरे रे आग लग गई! आग लग गई!" इस तरह का संक्षुब्ध दुर्गरक्षकों का भयङ्कर कोलाहल सुनाई पड़ा। कोलाहल सुनते ही रोशनआरा ने "बचाइये महाराज बचाइये!" कहती हुई शिवाजी को दोनों बाहों से आलिङ्गित कर लिया। महाराज ने भी अत्यन्त सन्त्रस्त, अल्प विकसित स्तनद्वय से अपने वक्षःस्थल को दबाने वाली और गले को बाहुपाश से वेष्टित करने वाली रोशनआरा को कम्पन पूर्वक गाढालिङ्गन करती हुई देख कर, "डरो मत, डरो मत!" कह कर अपने दोनों हाथों से उसे अपनी गोद में उठा लिया और झट से बाहर निकल आये। तत्पश्चात् रोशनआरा की उन्नस्वर से सन्त्रस्त और डर से घूमती आँखों वाली

भट्टिनि''–इत्युच्चैः प्लुतेनेव स्वरेणाऽऽकारयन्त्यस्तत्रैव समागमन्।

तावदुद्धूतमकृशं कृशानुमालोक्य दीर्घिकाः सर्वेऽपि यौगपद्येन कृतोद्योगा जलयन्त्रैः शमयाम्बभूवुः।

ततस्तु गृहीतकण्ठां रसनारीमालोक्य, "आः! कथमाश्लिष्ट एवास्मि यवनराज-तनयया"–इति तदभिमुखः 'एष जनः'–इत्यभिधाय, अनेकपुरुष-दर्शनेन लज्जमाना झटिति निर्दिष्ट-गृहे प्रविष्टां

---

द्घूर्णमाननेत्राः। प्लुतेन = विमानिकेण। आकारयन्त्यः = आह्वयन्त्यः।

एना कथा समुपस्थाप्य सर्वोऽप्ययमेतत्. शिवराजचारकीकरणादिरूपो दुर्यशोव्रातो रसनारीस्नेहजन्मेति बोधयति। दिल्लीगमन-बन्धिरवादावप्यय-मेवानुरागः कथोपकथनादिश्चान्तरङ्गीभूतो हेतुरिति विवेचनीयं सुधीभिः।

उद्धूतम् = उत्थितम्। अकृशम् = अदुर्बलम्। सुपुष्टमिति यावत्। कृशानुम् = हिरण्यरेतसम्। यौगपद्येन = एककालम्। कृतोद्योगाः = विहितश्रमाः। जलयन्त्रैः = वह्निशामनैर्धाराजनकैर्यन्त्रैः। "फायर ब्रिगेड" इति विदेशीयभाषाशब्दस्तद्वाचकः।

आश्लिष्ट एव = आलिङ्गित एव। न ज्ञानपूर्वकमिदं वृत्तमिति प्रदर्शयन् नायकोदात्तता रक्षति। एष जनः = अयं मनुष्यव्रातः, अवलोकयतीति गम्यमाना क्रिया। निर्दिष्टगृहे = पूर्वप्रदर्शितसद्मनि।

---

सहेलियाँ भी "भट्टारक, भट्टारक! भट्टिनी, भट्टिनी!" इस तरह पुकारती हुई वहीं आ पहुँचीं।

उस समय तक दुर्गरक्षक भी उस प्रचण्ड अग्निज्वाला को 'फायर ब्रिगेड' की सहायता से बुझा चुके थे।

तत्पश्चात् गले में लटकी हुई रोशनआरा को देख कर "आः! अरे तक मैं यवनराज की सुपुत्री द्वारा आलिङ्गित ही हूँ!" यह सोचकर रोशनआरा की ओर देखते हुये महाराज द्वारा "अरे रे! बहुत लोग हम दोनों को ऐसी दशा में देख लेंगे" ऐसा कहे जाने पर रोशन आरा अनेक पुरुषों द्वारा देख लिये जाने के कारण जब महाराज निर्दिष्ट कमरे में घुस गई तब

राजकुमारीं त्यक्त्वा, महाराजः सोपानैर्नीचैरवातरत्। तत्र च "महाराज! आकस्मिकोऽयमज्ञात-कारणो ज्वालाजालः सञ्जातो जातवेदसः, तदमङ्गलमिव सूचयति, सूचयति चामङ्गलमेव अकाल-कुसुमोद्गमः। तस्मात् सपदि ज्योतिर्विद देवशर्माणं पण्डितं दृष्ट्वा शान्तिरस्य काचन विधेया, फलं च प्रष्टव्यम्" इत्यभिदधत आत्मीयानालोक्य, स्वयमेवैकाकी सहचरान् प्रतिनिवर्त्य, देवशर्मणः साक्षात्काराय हनुमन्मन्दिरमयासीत्। दुर्गद्वाराद् बहिर्निर्गतमात्र एव च कांश्चिद् दूरत आयातांश्चरानद्राक्षीत्। तैश्कम्—

महाराष्ट्र-विश्वम्भरेश्वर! वीराणां महारण्येनेव सिन्धुराणां

---

सोपानैः = अवरोहणीभिः। आकस्मिकः = सहसा भवः। अज्ञातकारणः = अनवगतहेतुकः। जातवेदसः = तनूनपातः। अकालकुसुमोद्गमः = असमयसुमसमुद्भूतिः। फलम् = भाविशुभाशुभम्। निर्गतमात्रः = निष्क्रान्तप्रायः। चरान् = स्पशान्।

महाराष्ट्रविश्वम्भरायाः = महाराष्ट्रभूमेः, ईश्वर! = अधिनायक!। "रसा विश्वम्भरा स्थिरा" इत्यमरः। महारण्येनेव = अरण्यान्येव।

---

महाराज सीढ़ियों के माध्यम से नीचे उतर गए। वहाँ "महाराज! एकाएक यह अग्नि की ज्वाला धधक उठी, इसके कारण का परिज्ञान नहीं हो रहा है, इससे किसी अमङ्गल की सूचना मिल रही है। यह अकाल कुसुम प्रसव भी अमङ्गल सूचक ही है। अतः शीघ्रातिशीघ्र ज्यौतिषी पण्डित श्रीयुत देवशर्मा जी से मिल कर इसकी उचित शान्ति करवानी चाहिये और इसके फल को जानना चाहिये" ऐसा निवेदन करते हुये अपने बन्धुओं को देख कर अपने सहचरों को लौटा कर महाराज अकेले ही देवशर्मा जी से मिलने के लिये हनुमान् जी के मन्दिर की ओर चले। सिंह द्वार से बाहर निकलते ही महाराज ने दूर से ही अपनी ओर आते हुये कुछ दूतों को देखा। उन दूतों ने कहा—"महाराष्ट्र देशनायक! वीरों के भयङ्कर वन से, गजराजों के समूह से और घोड़ों की तरङ्गों से आवृत तथा

घटयेव वाजिनां वीचिभिरिव च परिवृतोऽम्बरेश्वरो जयपुर-संस्थापना-निपुणो महाराज-जयसिंहो दिल्लीपक्षं पुष्णन् योद्धुमागत्य, अविदूर एवोपकारिका आयोज्य, श्वो वा परश्वो वा समरमारिप्सते। अत्रभवन्त एवात्र प्रमाणम्-- इति।

महाराष्ट्रराजस्तु 'आम्, तदागमन-सूचना दूरचरैः पूर्वमेव दत्ता'' इत्यभिधाय, तत्क्षणात् सर्वानपि दुर्गाध्यक्षान् सेनापतींश्च रणसज्जनाऽपेक्षितुं सूचयितुमादिदेश। मात्रायामेकस्यां च व्यतीत-मात्रायां तोरणदुर्गे महानेकः शतघ्नीनिर्घोषो जातः। परतश्च

अश्वेषा। सिन्धुराणाम् = गजानाम्। घटयेव = समूहेनेव। वीचिभिरिव = लहरिभिरिव। परिवृतः = समवेत। अम्बरेश्वरः = आमेर-देशाधीश। जयपुरस्य = तन्नामकनगरस्य, संस्थापने = निर्माणे। निपुणः = कुशल। पुष्णन् = समर्थयन्। उपकारिकाः = शिबिराणि। आरिप्सते = आरब्धुमिच्छति।

दूरचरैः = दूरभ्रमणशीलैर्गुप्तचरैः। रणसज्जया = सन्नाहोद्योगेन। अपेक्षितुम् = प्रतीक्षितुम्। आदिदेश = आज्ञप्तवान्। मात्रायाम् = सार्धपलद्वये, "मिनट" इति लोके ख्याते। व्यतीतमात्रायाम् =

जयपुर नगर की स्थापना में निपुण अम्बरदेश के राजा महाराज जयसिंह दिल्ली सम्राट की ओर से आपसे युद्ध करने के लिये आकर निकट में ही अपने शिविर की स्थापना कर चुके हैं और कल या परसों से युद्ध छेड़ने की इच्छा कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में श्रीमान् ही प्रमाण हैं।

इस पर महाराष्ट्रराज ने "हाँ, गुप्तचरों से मुझे जयसिंह के यहाँ आ जाने की सूचना पहले ही मिल चुकी है।" ऐसा कह कर सभी दुर्गाध्यक्षों तथा सेनापतियों को तत्क्षण ही युद्ध की तैयारी कर आक्रमण की प्रतीक्षा करने की सूचना देने का आदेश दिया। ठीक एक मिनट के बाद ही दुर्ग में तोप की भयङ्कर आवाज सुनाई पड़ी। उसके पीछे ही दुर्गों तथा सेनाओं के शिविरों से मेघ के गर्जन के समान घरघराता हुआ अत्यन्त भयङ्कर शोर

युद्ध-सज्जा-सूचकाः सर्वेभ्योऽपि दुर्गोपन्नसेनासन्निवेशेभ्यश्च मथर्घराघोषाः, घोरघोराः, घनाघन-निर्घोष-निभाः, तोमनिस्वनाः प्रादुरभूवन्। घोरं घोषमनुमाकर्ण्य कथमुद्विग्ना रसनारीति दद्विरः को वेत्ति?

महाराष्ट्रराजस्तु हनूमन्मन्दिरमासाद्य, मारुतिमूर्तिं दण्डासनेन प्रणम्य, देवशर्माणं तत्रैवाऽऽकारयत्। सोऽप्यागतः, साशीर्वादं महाराजेन सह तत्रोपविष्टः पृष्ट्वा प्रोवाच—"महाराज! न भवते-घोऽभिदाहः समयं विनैव वासन्तकुसुमोद्गमश्च शुभः, वद दुष्फलसे-

---

समाप्तानामाम्। शतघ्नीनिर्ह्रादः = तोपगर्जनम्। युद्धसज्जासूचकाः = सङ्ग्रामसज्जताबोधकाः। सेनासन्निवेशेभ्यः = सैनिकशिविरेभ्यः। घोषाः = शब्दाः। घनाघननिर्घोषनिभाः = वर्षुकमेघध्वनितुल्याः। तोमनिस्वनाः = शतघ्नीरवाः। 'धम तुम हिंसायाम्'—इत्यस्माद् धातोः तोमः। लोके "तोप" इति। दद्विरः = रसनारीनिकरः। को वेत्ति, कोऽपि न कोऽपीत्यर्थः। अथवा ब्रह्मा वेत्तीति। कः = ब्रह्मा।

मारुतिमूर्तिम् = हनूमत्प्रतिमाम्। दण्डासनेन = साष्टाङ्गपातेन। प्रणम्य = नमस्कृत्य। हनूमतः प्राणौ योगशास्त्रे प्रसिद्धः। समयं विनैव = वसन्तकालाभावेऽपि। वासन्तकुसुमोद्गमश्च = माधवीप्रसूननादु-

---

का गर्जन सुनाई पड़ा। उस घोर गर्जन को सुनकर वीरांगनाएं कितनी उद्विग्न हो उठीं, इस विषय को उन्हें छोड़कर अन्य व्यक्ति कैसे जान सकता है?

उधर महाराष्ट्रराज ने हनूमान जी के मन्दिर में प्रवेश कर, हनूमान जी की प्रतिमा को साष्टाङ्ग प्रणाम कर देवशर्मा को वहीं बुला लिया। देवशर्मा भी वहाँ पहुँच गए और आशीर्वादपूर्वक महाराज के साथ वहाँ बैठ कर उन्होंने महाराज से कहा—'महाराज यह, अनिष्ट एवं तथा असमय में ही वसन्तऋतु में मिलने वाले फूलों का खिल जाना

तस्य हवनैः, विप्र-पूजनैः, दानैश्च प्रशमनीयम्"-इति।

महाराजस्तु सदैव मन्दिर-पुरोहितमाहूय, देवशर्म-निदेशानुसारेण हवन-पूजनादिकं विधातुमाज्ञप्तवान्। परतश्च जयसिंह-युद्ध-विषये पप्रच्छ। देवशर्मा तु 'महाराज' एतेन समरेऽनुष्ठितेऽवश्यं महाराष्ट्राणां पराजयः इति सर्वथा सन्धातव्यम्' इत्याह।

महाराष्ट्रेश्वरोऽपि चिरं चिन्तयित्वा "सत्यम्, बहुतरैर्युद्धैः साम्प्रतं स्थगिता मे सेना, वीराश्च केचन सुरतदेशे, केचित् कल्याण-देशे, अपरे सामुद्रकेष्वनूपेषु, कच्छेषु द्वीपेषु च, नवाऽऽसादितराज्यं

भूतिश्च। दुष्फलम् = अशुभफलम्। हवनैः = होमैः, विप्राणां पूजनैः = सेवनैः। दानैः = वितरणैः।

अनुष्ठिते = कृते। सन्धातव्यम् = सन्धिः कर्तव्यः। स्थगिता = श्रान्तिं गता। सामुद्रकेषु = समुद्रान्तरालवर्तमानेषु। अनूपेषु = जलप्रायेषु। कच्छेषु - एकतो भूमिसम्पर्कवत्सु सर्वतश्च जलवत्सु। द्वीपेषु = उभयोर्दिशोर्जलयुतेषु, सर्वतो जलयुतेषु च। नवासादितराज्यम् = नूतन-

शुभ नहीं हो सकता है। अतः हवन, ब्राह्मण-पूजन तथा दान के द्वारा इस अशुभ की शान्ति करनी चाहिए।"

इस पर महाराज ने उसी समय मन्दिर के पुजारी को बुलाया और देवशर्मा के निर्देश के अनुसार हवन, ब्राह्मण पूजन आदि करने का आदेश दे दिया। तत्पश्चात् महाराज ने देवशर्मा से जयसिंह के साथ सम्भावित युद्ध के बारे में पूछा। उस पर देवशर्मा ने उत्तर दिया—"महाराज! जयसिंह के साथ युद्ध करने में मराठों की पराजय निश्चित है। अतः आप उनसे किसी प्रकार सन्धि ही करें।"

उस पर चिरकाल तक सोच विचार कर महाराष्ट्रराज ने भी कहा—"आपका कथन सत्य है। मेरी सेना चिरकाल से लड़ते-लड़ते थक चुकी है, और कुछ वीर सूरत में, कुछ कल्याण देश में, कुछ जल बहुल समुद्रीय प्रान्त के और कुछ कच्छ द्वीप के नव प्राप्त राज्य के प्रबन्ध में लगे

प्रबध्नन्ति, समायातश्च महत्या सेनया वीरराजः, कुशलाऽस्य सेना, दूरदर्शी च जयपुरेश्वरोऽस्ति, तत्सम्भाव्यते तादृशमेव। यथोच्यतेऽत्रभवता तथैव विधातु यतिष्ये"–इत्यवदत्।

देवशर्मा–विजयता महाराजः!

महाराष्ट्रराजः–[ प्रणम्योत्तिष्ठन् देवशर्माणं निपुणं निरीक्ष्य ] दैवज्ञशिरोमणे! सदैव भवानस्मच्छुभं चिन्तयति, आशिषो वदति, ग्रहनक्षत्रादि-गणनैः फलकथनैः सदुपदेशैः साहाय्यं च विदधाति, तत्कथ्यतां कथमस्माभिरानृण्यमासादनीयम्?

---

लब्धराष्ट्रम्। उपनिवेशमिति यावत्। प्रबध्नन्ति = प्रबन्धं कुर्वन्ति। कुशला = निपुणा, सुशिक्षितेति यावत्। दूरदर्शी = विशेषविचारकः, नतुश्मास्तिखानादिवन्मद्यादिनिरतः।

दैवज्ञशिरोमणे = मौहूर्तिकश्रेष्ठ! साहाय्यम् = सहायताम्। एतदेव ब्राह्मणकर्तृकं देशकार्यमिति वेदितव्यम्।

---

हुए हैं। इधर महान् वीर जयसिंह बहुत विशाल सेना लेकर आए हैं और उनकी सेना भी युद्ध करने में प्रवीण है, जयपुराधीश भी बहुत दूरदर्शी है। अतः सम्भावना तो पराजय की है ही। इस लिए आप का जो कथन है तदनुसार ही मैं काम करने की चेष्टा करूँगा"।

देवशर्मा—महाराज की विजय हो।

महाराज—[ प्रणाम करते हुए उठकर देवशर्मा की ओर अच्छी तरह देखकर ] "दैवज्ञ शिरोमणि! आप सर्वदा मेरे मङ्गल की चिन्ता किया करते हैं, मुझे आशीर्वाद दिया करते हैं और ग्रह-नक्षत्र आदि की गणना के आधार पर फल के निर्देश तथा सदुपदेश से मेरी सहायता किया करते हैं। आप बतलाएँ—हमें आप के ऋण से उद्धार कैसे मिलेगा?"

देवशर्मा—महाराज ! सर्वथा सुखी वर्ते । न किमपि याचनीयम् ।

महा०—तथाऽपि ।

देव०—वेत्ति महाराजोऽहं गौरसिंहस्य पुरोहित इति ।

महा०—सर्वं श्रुतवानस्मि भवतामितिवृत्तम् ।

देव०—गौरस्य भगिनी मयैव लालिता, पालिता, मयैव च साम्प्रतमपि रक्ष्यते ।

महा०—अवगतमस्ति ।

देव०—तस्या एव विवाहार्थं वयं सर्वेऽपि चिन्ताऽऽकुला इति कमिव निवेदयाम ऋते प्रभुवर्यात् ।

महा०—वरः कोऽपि स्थिरीकृतः ?

---

वर्ते = तिष्ठामि । याचनीयम् = भिक्षितव्यम् ।

अवगतम् = निज्ञातम् । निवेदयाम, लोडुत्तमपुरुषबहुवचनम् । "ऋतनः" इति प्रकृतिभावः ।

ऋते = विना । तत्र गे पञ्चमी ।

---

देवशर्मा—महाराज ! मैं सब प्रकार से सुखी हू । अभी मुझे कुछ भी नहीं चाहिए ।

महाराज—तथापि ।

देवशर्मा—महाराज तो जानते ही हैं कि मैं गौरसिंह का पुरोहित हू ।

महाराज—मैं आपका सारा इतिहास सुन चुका हूं ।

देवशर्मा—गौरसिंह की बहन का लालन-पालन मेरे ही हाथों हुआ है और अब भी मेरी ही देख रेख में वह है ।

महाराज—मैं जानता हू ।

देवशर्मा—उसकी शादी के लिये हम सब चिन्तानिमग्न हैं—यह बात आपको छोड़कर और किससे बताऊं ?

महाराज—क्या किसी वर का आपलोगों ने निश्चय किया है ?

देव०—[ सनिश्वासम् ] राजन्! पित्रा यस्मै दातुं प्रतिज्ञातमसीत्; स क्वास्तीति न ज्ञायते, किन्तु ज्यौतिष-गणितेनैतद्देश एव सम्प्रति तत्स्थितिरनुमीयते। तत्पिता च कलितमुनिवेषो वीरसिंहोऽपि प्रभुमेवोपजीवति।

महा०—आ! एवम्, स्मृतमखिलम्। गौर-द्वारा तदपि श्रुतवानस्मि।

देव०—तद् यथासम्भवं स एव प्रनष्टो वीरसिंह-पुत्रो रामसिंहोऽन्वेष्टव्य, यथा बहूनां स्याज्जीवनम्, अन्यथा तु यथोचितमाचरितुं प्रभव एव प्रमाणम्।

---

ज्यौतिषगणितेन = भगणचिन्तनेन। अनुमीयते = अनुमानेन निश्चीयते। कलितमुनिवेषः = धारितपरिव्राजकवेषः।

प्रनष्टः = लुप्तः गोपितात्मेति यावत्। यथोचितम् = उचितानिक्रमणपूर्वकम्।

---

देवशर्मा—( लम्बी साँस लेकर ) राजन्! उसके पिता ने जिस व्यक्ति को उसे समर्पित करने का निश्चय किया था वह व्यक्ति कहाँ है—इसका परिज्ञान नहीं है। किन्तु ज्योतिषशास्त्र की गणना से यह अनुमान किया जा रहा है कि उस व्यक्ति को इस समय इसी देश में होना चाहिए। उसके पिता ने तो मुनि का वेष धारण कर लिया है और उसका भाई गौरसिंह आपकी सेवा में ही लगा है।

महाराज—हाँ हाँ, मैं भी स्मरण कर रहा हू। गौरसिंह से ही मुझे इस बात का भी पता लग चुका है।

देवशर्मा—अतः वीरसिंह के अनुपलभ्यमान पुत्र रामसिंह की यथासम्भव खोज करनी चाहिये। ताकि अनेक व्यक्तियों के जीवन का संरक्षण हो सके। यदि वह नहीं मिला तो उसके बाद यथोचित कार्य करने के लिये श्रीमान् ही प्रमाण हैं।

महा०—देव ! तामहं निजामेव दुहितरं मन्ये । तद् जयसिंह-सेना-समुद्रम् सन्धिना वा विग्रहेण वा पारं गत्वा, पूर्णेंद्योगे वीरसिंहपुत्रं परिमार्गयिष्यामि । दैवादसफलोद्योगश्च कस्मैचिदन्यस्मै योग्याय वराय स्वहस्तेन वितरिष्यामि । मा स्म भूदत्र सन्देह आर्यस्य । आज्ञाप्यतामधुना प्राप्तकालं यते, प्रणमामि—

इत्युक्त्वा, आशिषो गृहीत्वा प्रचलितो महाराजः सिंहदुर्गमागत्य, स्वविश्वास-पात्रं स्तन्यजीवम् माल्यश्रीकम् स्वं वृद्धं पुरोहितं च सन्धिवार्त्ताः स्थिरयितुं नहुश एवमेवमिति कर्णे कथयित्वा, जयसिंहं साक्षात्कर्तुं विससर्ज । महाराजानुमतो भूषणकविरपि तत्साहचर्येण जयसिंहशिबिरमुद्दिश्य चलितः ।

---

दुहितरम् = तनयाम् । सन्धिना = मेलेन । विग्रहेण = सङ्ग्रामेण । परिमार्गयिष्यामि = अन्वेषयिष्यामि । वितरिष्यामि = दास्यामि । प्राप्तकालम् = अवसरोचितम् । यते = करोमि ।

स्तन्यजीवम् = 'तानाजी'-नाम्ना प्रसिद्धम् । स्वम् = आत्मीयम् । साक्षात्कर्तुम् = द्रष्टुम् । तत्साहचर्येण = महाराजसहगमनेन ।

---

महाराज—देव ! उसे तो मैं अपनी ही बेटी समझता हूँ । अतः जयसिंह के सेना समुद्र को सन्धिवार्ता अथवा युद्ध द्वारा पार करने के पश्चात् पूर्ण प्रयास के साथ वीरसिंह के पुत्र रामसिंह को ढूँढवाऊँगा । यदि दुर्भाग्य से हम लोगों का प्रयास सफल नहीं हो सका तो किसी अन्य योग्य वर को मैं अपने हाथ से ही उसे समर्पित कर दूँगा । इस विषय में आप सन्देह न करें । अच्छा तो इस समय आज्ञा दें, समय आने पर मैं इसके लिये प्रयत्न करूँगा, प्रणाम—यह कह कर देवशर्मा से आशीर्वाद लेकर महाराज ने सिंह दुर्ग के प्रवेश कर, अपने विश्वासपात्र तानाजी तथा अपने वृद्ध पुरोहित माल्यश्रीक के कानों में "जयसिंह के साथ सन्धिवार्त्ता का निर्णय करने के उद्देश्य से ऐसा ऐसा करना है" इस प्रकार कह कर, उन सबको जयसिंह से मिलने के लिए भेज दिया । महाराज की अनुमति पाकर भूषण कवि भी उन सबों के साथ जयसिंह के शिविर की ओर चल पड़े ।

तौ च महाराज-जयसिंहेनाऽऽलप्य, आगत्य च, महनीयमहोभिर्महितं महाराष्ट्र-मही-महेश्वरं समासाद्य, एकान्ते प्रावोचताम्— महाराज ! भूषणकविना सहितावावां द्वावपि पण्डित-वेषमाकल्प्य, महाराज-जयसिंहस्य शिविरं गतौ। सोऽस्मत्संवादं प्राप्यैवान्तः प्रवेष्टुमाजिज्ञपत्। अस्माभिस्तु प्रविश्यैव साशीराशि तन्निर्दिष्टस्थाने स्थितम्। भूषणकवेः पूर्वपरिचित इति प्रथमं तेनैव मुहूर्तमालपत्। भूषणकवि-मुखेन श्रीमत्प्रशंसामयीं व्रजभाषा-कवितां श्रुत्वा समधिकममोदिष्ट। युष्मद्दत्तं तत्पारितोषिक-वृत्तान्तमाकर्ण्य, भूषण-द्वारा तत्समभिव्याहारेणैव महाकवेः सप्तशती-कारस्य विहारिणः

---

महनीयमहोभिः = वन्दनीयतेजोभिः। प्रावोचताम् = उक्तवन्तौ। महितम् = पूजितम्। प्राप्यैव = लब्ध्वैव। न विलम्बितवानिति यावत्। अमोदिष्ट = प्रसन्नतामन्वभूत्। तत्समभिव्याहारेण = तत्कथनेन। सप्तानां शतानां समाहारः सप्तशती। "सतसई" इति प्रसिद्धा। गाथासप्तशत्या अनुवादभूता विहारिकवित्यमित्यालोचकशिरोमणयः। यदप्यनुवादे

---

महाराज जयसिंह के साथ वार्तालाप करने के बाद लौट कर महान् तेजस्वी महाराष्ट्रराज के पास आकर एकान्त में ताना जी तथा माल्यश्रीक ने कहा—महाराज ! भूषण कवि के साथ साथ हम दोनों पण्डित का वेष धारण करके महाराज जयसिंह के शिविर में पहुँचे। हम लोगों के वहां उपस्थित होने की सूचना पाते ही उन्होंने हम लोगों को भीतर प्रवेश करने की आज्ञा देदी। भीतर प्रवेश करते ही हम लोग आशीर्वाद पूर्वक उनके द्वारा निर्दिष्ट स्थान में बैठ गए। चूँकि भूषण कवि से उनका पहले से ही परिचय था इसलिए पहले तो उन्होंने थोड़ी देर तक भूषण कवि से ही बातचीत की। भूषण कवि के मुख से व्रजभाषा निबद्ध आपकी प्रशस्ति सुन कर महाराज जयसिंह अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। भूषण कवि से आपके द्वारा (उन्हें भूषण कवि को) दिए गए पारितोषिक का वृत्तान्त तथा उन्हीं के मुख से 'सतसई' कार महाकवि बिहारी की प्रशंसा

प्रशंसाविशेषं श्रुत्वा चाधिकं ह्रीण इवाभूत्। तत इतरान् भ्रूसंज्ञया स्थानं निर्मक्षिकयितुं सूचयित्वाऽस्मदभिमुखो बभूव। महाराज! किमिव कथयावः, व्यर्थ एवाभूत्तदग्र आवयोः पाण्डित्याऽऽडम्बरः!) स तु स्वयमेव शास्त्रज्ञः, ज्योतिषां निगूढं तत्त्वं वेवेत्ति। कानिचिदेव वर्षाणि व्यतीतानि, यत्तेन ज्योतिर्यन्त्रालया वाराणस्यादि-प्रसिद्ध-स्थानेषु व्यरचिषत। अथ क्षणानन्तरं स्वयमस्मानपृच्छद् युद्धविषये।

---

"हरिरनुहरति च्छायाम" ति नास्ति, तथाऽपि पर प्रामाण्य विहारिणस्त-न्निर्माण इति न 'ननु न च' समेतम्।

ह्रीणः = लज्जितः। महाराष्ट्राधिनायः कवितामेका भूषणकवेर्निशम्य सिन्धुराननेकान् ग्रामांश्च ददौ, जयपुराधीशश्च सतशती निपीयापि दीनाराणां सतशतीमेवार्पयदिति लज्जाकारणम्। निर्मक्षिकयितुम् = निर्जनयितुम्। ज्योतिषाम् = भानाम्, खेचराणाम्। निगूढम् = गुप्ततमम्। ज्योतिर्यन्त्रालयाः = भगणगत्यादिबोधनपराः शालाः। वाराणस्यादिषु = चतुर्षु स्थानेषु वाराणस्यां जयपुरे दिल्ल्यामुज्जयिन्यां च। जयपुरं स्वीयं नगरमिति कृत्वा, वाराणसी च सर्वतः श्रेष्ठं हिन्दूनां तीर्थमिति कृत्वा, दिल्ली च सम्राडिन्-वासभूमिरिति कृत्वा, उज्जयिनी च कृष्णकालभवविख्यातीर्थत्वात्सान्दीपनिजन्म-भूमित्वाद् भूमध्यरेखास्थितत्वाच्च स्वीकृतिविषयताङ्गतेति वेदितव्यम्। वारा-णस्यामिदं मानमन्दिरनाम्नाऽऽख्यातं दशाश्वमेधघट्टतो नातिदूरे। एतदनुसार-

---

सुन कर तो महाराज जयसिंह बहुत लज्जित-से हो गए। तत्पश्चात् अपने सेवकों को वहाँ से अन्य लोगों को हटाने का संकेत देकर हमलोगों के सम्मुख हो गए। महाराज! हमलोग क्या कहें। उनके समक्ष तो हमलोगों के पाण्डित्य का सारा आडम्बर व्यर्थ हो गया। महाराज जयसिंह तो स्वयम् शास्त्रों में निपुण तथा ज्योतिष शास्त्र के रहस्यों को अच्छी तरह जानते हैं। अभी कुछ ही वर्ष बीत गए हैं कि उन्होंने वाराणसी आदि प्रसिद्ध स्थानों में ज्योतिर्यन्त्रालयों का निर्माण किया है। थोड़ी देर के बाद उन्होंने स्वयम् हमलोगों से युद्ध के विषय में पूछा। इस विषय में अधिक

किमधिक कथ्येत ? चिरमालपितमस्माभिः, किन्तु दृष्टं यज्जयसिंहोऽयं नापजलखानः, न शास्तिखानः, न वा यशस्विसिंहः, यः कथमपि वशयितुं शक्येत। यद्देशीया गौरसिंह-सदृशा अल्पवयस्का अपि नीतिमर्मज्ञाः, किं नाम कथनाय स्यात् तद्देशीयमहाराजानां विषये ? स प्रबलया सेनया समायातोऽस्ति, शीघ्रमस्मद्दुर्गरोधं विधित्सति। एकैकशश्च दुर्गाण्याच्छिद्य साकल्येनास्मान् विजिगीषते।

महा०—अपि कथमपि सन्धातुमपि तेनाङ्गीकृतम् ?

माल्य०—भगवन् ! स्पष्टीकृत्य तेनोक्तम् यद्—"वृद्धोऽस्मि, क्षत्रियोऽस्मि, द्विर्भाषणं न जाने। यदि सन्धित्सते महाराष्ट्रराजः, तद् दिल्लीश्वरस्यापहृत-दुर्गेष्वधिकारस्त्याज्यः, करप्रदता चोरी-

---

तश्च शिवराजविजयकर्तुर्निवासस्थानमस्ति। वशयितुम् = स्वायत्तीकर्तुम्। नीतिमर्मज्ञाः = राजनीतिविशारदाः। विधित्सति = विधातुमिच्छति। आच्छिद्य = बलात्स्ववशीकृत्य। साकल्येन = सर्वेणो भावेन। विजिगीषते = विजेतुमिच्छति। "विपराभ्यां जेः" इत्यात्मनेपदम्।

द्विः = वारद्वयम्। भाषणम् = कथनम्। सत्यप्रतिज्ञ इति यावत्। अपहृतदुर्गेषु = बलात्स्वायत्तीकृतेषु दुर्गेषु। करप्रदता = राजस्वप्रदा-

---

क्या कहा जाय ! हम लोगों ने चिर काल तक उनसे बात-चीत की, किन्तु यह देखा कि जयसिंह अफजल खाँ या शाइस्ता खाँ या यशस्वी सिंह ( यशवन्त सिंह ) नहीं हैं जिन्हें किसी प्रकार वश में किया जा सके। जिस देश के गौरसिंह आदि नवयुवक भी नीति विद्या के मर्म को जानने वाले होते हैं उस देश के महाराज की नीतिनिपुणता के विषय में कहना ही क्या है ? प्रबल सेना के साथ जयसिंह यहाँ आ पहुँचे हैं और शीघ्र ही हमारे किले को घेरने वाले हैं और एक एक करके हमारे दुर्गों को स्वाधीन कर हम लोगों को पूरी तरह जीत लेना चाह रहे हैं।

महाराज—अच्छा, क्या उन्होंने सन्धि करने की बात भी कही है ?

माल्यश्रीक—भगवन् ! उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा—'मैं वृद्ध हूँ और क्षत्रिय हूँ। मैं दो बार बोलना नहीं जानता। यदि महाराष्ट्रराज सन्धि

धार्येति," उक्तांश्च यद् "नाऽस्मत्त उपधिराशङ्कनीयः। स्वच्छेन हृदा समागत्य महाराष्ट्रराजेन स्वयमेव मया सह स्थिरयितव्योऽयं विषय."—इति। तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्।

तदाकर्ण्य महाराष्ट्र-धरा-धनी किञ्चिन्निश्वस्य, "तथाऽस्तु, यथोचित श्वो रात्रौ विधास्यामः" इत्युक्त्वा स्वान्तरङ्ग-मित्र-मण्डल्या सह बहु सम्मन्त्र्य, सर्वेषामपि च विजिगृक्षायामसम्मतिं, सन्धित्सायामेव च सम्मतिमावलम्ब्य, माल्यश्रीकं पृष्ट्वान्, 'मया

---

नम्। अस्मत्तः = अस्मत्सकाशात्। उपधिः = छद्म। चौर्यमिति यावत्। स्वच्छेन = निष्कपटेन। स्थिरयितव्य = निश्चेतव्य।

महाराष्ट्रधराया धनी, ननु साम्प्रत महेश्वरो वाऽऽगच्छलो याऽधिनाथो वा। अधुना तु सन्धित्सायतत्वाद्धनी स्यास्यति, स एव न्यास्तीति कविमनसयेन्योऽर्थः। किञ्चित् = ईषत्। निश्वस्य = उच्छ्वस्य। एतेन न सोऽपि प्रेम्णा सन्धिमकरोत्, अपि तु परिस्थितिवशादिति व्यनक्ति। विधास्यामः = करिष्यामः, लुटो रूपम्।

विजिगृक्षायाम् = विग्रहीतुमिच्छायाम्, युद्धे। सन्धित्सायाम्=सन्धि

---

करना चाहते हैं तो उन्हें दिल्ली सम्राट के अपहृत दुर्गों पर से अपना अधिकार हटा लेना होगा और दिल्लीश्वर को कर देने की बात भी माननी होगी साथ ही यह भी कहा—"मुझ से किसी प्रकार के कपट की आशङ्का महाराष्ट्रराज को नहीं करनी चाहिए। निश्छल हृदय से महाराष्ट्रराज को स्वयम् यहाँ आकर मेरे साथ सन्धि का निश्चय करना चाहिए।" इस विषय के अब श्रीमान् ही प्रमाण हैं।

उक्त बात सुन कर महाराष्ट्र देश की पृथ्वी के स्वामी वीर शिवाजी ने कुछ नि श्वास लेकर "अस्तु, कल रात यथोचित कार्य करूँगा" यह कह कर, अपने अन्तरङ्ग, मित्रों के साथ बहुत प्रकार से मन्त्रणा कर, युद्ध करने में सबों की असम्मति एव सन्धि करने में सम्मति प्राप्त कर माल्यश्रीक

तेन सहाऽऽलपितुं कथं तत्सेना-व्यूहं विभिद्य प्रवेष्टव्यम्"—इति।
स उवाच—"भगवन्! जयपुराधीश्वर-मुद्राङ्कितं प्रवेशक-पत्रमानी-
तवानस्मि-इति न कोऽपि प्रविशन्तं श्रीमन्तं किमपि वक्ष्यति"।
ततस्तथा तथेत्युक्त्वा सर्वेऽप्युत्तस्थुः।

परेद्युर्होराद्वयमतीतायां रजन्यामकस्माच्छिबिरान्तरुपविष्टं महाराजमम्बराधीश्वरं प्रतीहारः प्रविश्य प्रायोचत्—"भगवन्! महाशयः कश्चन एकाकी द्वारदेशे वितिष्ठते पृष्टश्चाऽऽत्मनो नाम शिव इत्येव ब्रूते, तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्"—इति।

---

करेणच्छायाम्। तत्सेनाव्यूहम् = तद्वाहिनीरचनाम्। जयपुराधीश्वरस्य, मुद्रया = राजचिह्नेन, अङ्कितम् = चिह्नितम्। वक्ष्यति = कथयिष्यति। एतत्स्थलमेव मनसि कृत्वाऽस्माणि मनीषिणा मान्येन "कुटजे खलु तेनेहा तेने हा! मधुकरेण कथम् ?"

**वितिष्ठते**, "समवप्रविभ्यः स्थः" इत्यात्मनेपदम्।

---

से पूछा—"जयसिंह से सन्धिवार्त्ता करने के लिए उनकी सेनाओं के व्यूह को पार कर किस प्रकार मुझे वहाँ प्रवेश करना चाहिए ?"

माल्यश्रीक ने उत्तर दिया—"भगवन्! जयपुर महाराज की मुहर लगा हुआ एक प्रवेश पत्र मैं ले आया हूँ। अतः इसके साथ ले जाने पर आपको वहाँ जाते समय कोई कुछ नहीं पूछेगा।" तदनन्तर "अच्छा, अच्छा," यह कह कर सभी उठ गए।

दूसरे दिन रात के दो घण्टे के व्यतीत हो जाने के बाद अकस्मात् भीतर जाकर प्रतीहार ने शिविर में बैठे हुये महाराज अम्बर देशनायक से निवेदन किया—"भगवन्! एक महाशय अकेले ही दरवाजे पर खड़े हैं। पूछने पर उन्होंने अपना नाम 'शिव' बतलाया है। इस विषय में अब श्रीमान् ही प्रमाण हैं।"

महाराजस्तु, "आम् ! परिचिनोमि"—इत्युक्त्वा स्वयं द्वारदेशमागत्य बहुशश्चित्रेषु कारुवरैर्लिखितात्स्मृत्वाऽदर्शदिति दर्शनसमकालमेव महाराष्ट्रराज इति निश्चित्य, सादरमालिङ्गय, अन्तर्निनाय। स्वोपविष्टविष्टरे एव च समुपवेश्य, तेन सह स्वयमपि स्थित्वा, एवमालपत्—

जयपुरराजः—महाराष्ट्रराज ! भवान् एतेन साधारणेन वेषेण स्वयमागत्य मामधिकं सम्मानितवानस्ति इति स्वागतं श्रीमते। अत्र स्वगृहे इव व्यवहरणीयम्, न कोऽपि संशयावसरः।

---

परिचिनोमि = जानामि। चित्रेषु = आलेख्येषु। कारुवरैः = चतुरशिल्पिभिः। अदर्शत् = आलोकयत्। सादरम् = सबहुमानम्। आलिङ्गय = आश्लिष्य। स्वोपविष्टविष्टरे = स्वाधिष्ठितासने। आलपत् = अभाषत।
सम्मानितवान् = आदृतवान्। व्यवहरणीयम् = व्यवहर्तव्यम्। संशयावसरः = सन्देहस्थानम्।

---

इस पर जयपुर नरेश ने 'हाँ, मैं उन्हें पहचानता हूँ" यह कहकर स्वयम् दरवाजे के पास आकर अच्छे चित्रकारों द्वारा निर्मित शिवाजी के चित्रों को बहुत बार देखे होने के कारण 'ये सज्जन महाराष्ट्रराज शिवाजी ही हैं' ऐसा निश्चय कर, आदरपूर्वक शिवाजी का आलिङ्गन कर उन्हें अन्दर लिवा आए। अपने आसन पर ही उन्हें भी बैठाकर उनके साथ स्वयम् भी बैठ गये और निम्नलिखित रूप में बातचीत करने लग गये—

जयपुरमहाराज—महाराष्ट्रराज ! इस साधारण वेष में ही यहाँ आकर आपने जो मेरा इतना अधिक सम्मान किया है एतदर्थ मैं आपका स्वागत करता हूं। आप यहाँ अपने घर की तरह ही सारा व्यवहार करें, इसमें किसी तरह के सन्देह का कोई अवसर नहीं है।

महाराष्ट्रराजः—महाराजस्यामुना स्नेहेन सनाथितोऽस्मि। महामान्य! यद्यहं स्वगृह इव न व्यवाहरिष्यम्, समशेष्यम्, तर्हि कथमेकाकी सेना-व्यूह-प्रचण्ड-दुर्गान्तःस्थे शिविरे समागमिष्यम्? परन्तु क्षत्र-वंशावतंसानां भारतीय-महाराजानां युष्मादृशामुदार-हृदयानां दास एवायं जनः। गतदिवसे द्वौ पण्डितौ श्रीमच्चरणानां समीपमायातौ, यथा च तद्द्वाराऽऽज्ञां लब्धवानस्मि; तथैव चानुष्ठितवानस्मि।

जय०—सत्यम्, पण्डितवेषौ द्वौ मामकावायातौ भूषणकवि-सहितौ।

महा०—[ किञ्चिल्लज्जितवान् ]

---

सनाथितः = सभाजितः। व्यवाहरिष्यम् = व्यवहारमकरिष्यम्। समशेष्यम् = सन्देहमकरिष्यम्। सेनाव्यूहेन = वाहिनीरचनया, प्रचण्डे = भीतिप्रदे, दुर्गान्तःस्थे = दुर्गमाभ्यन्तरस्थे। क्षत्रवंशावतंसानाम् = क्षत्रियान्वयभूषणानाम्।

आज्ञां लब्धवान् = आदेशं प्राप्तवान्। अनुष्ठितवान् = कृतवान्।
मामकौ = मदीयौ।

---

महाराष्ट्रराज—आपके इस स्नेह-प्रदर्शन से मैं अपने को धन्य मान रहा हूँ। महामान्य! यदि मैं आपके निवास को अपना घर-सा नहीं समझा होता प्रत्युत यहाँ आने में किसी प्रकार का सन्देह किया होता तो इतनी बड़ी सेना के व्यूह से परिवेष्टित होने के कारण इस भयङ्कर किले के भीतर अवस्थित शिविर में मैं अकेले कैसे आ जाता? परन्तु क्षत्रिय वंशावतंस और जैसे उदार हृदयवाले भारतदेशीय महाराजों का मैं सेवक ही हूँ। कल दो पण्डित आपके पास आए थे, उन लोगों के माध्यम से आपकी जैसी आज्ञा मिली वैसा ही मैंने किया है।"

जय०—सत्य, कल पण्डित वेश में आपके दो व्यक्ति भूषण कवि के साथ यहाँ आये थे।

महा०—(कुछ लज्जित हो गये)।

जय०—अस्तु, वद्द्वारा यथा सन्देशं प्रहितवानस्मि, तत्स्मर्यते भवता ? यदि भवान् सन्दधीत, तद् भवतो विद्रोहाचरणं विस्मृत्य दिल्लीवल्लभो भवन्तं प्रेमपात्रं मन्यते। भवतो रक्षादि-विषये प्रतिज्ञातवानस्मि, स्वीक्रियेत चेत् तथा विदध्याम्। राजपुत्रदेशीयोऽयं वृद्धः एतदुक्तिर्वज्रलिपिरिवान्यथा न भवति।

ततस्तूर्णीयस्य कथयाऽपि रहिते तस्मिन्प्रदेशे तादृशमाकर्ण्य परितोऽवलोक्य किञ्चिद्विमनायमाने इव तूष्णीके महाराष्ट्र-महाराष्ट्रपतौ, पुनराहाम्बरेशः—

लज्जितवान्=शिवेन पण्डिताविरुक्तम्, जयसिंहश्च पण्डितनेपालित्यभिधाय गूढतेव परिचितवानिति लज्जा।

प्रहितवान् = प्रेषितवान्। सन्दधीत=सन्धिं कुर्यात्। विद्रोहाचरणम्=राजुताकरणम्। प्रेमपात्रम्=स्नेहाधारम्। विदध्याम्=कुर्याम्। वज्रलिपिरिव = वज्रोल्लिखितेव। अन्यथा = विपरीता। तदिदं वृद्धस्यास्य वृद्धमतेर्भ्रान्तिविलसितमनेतनेनोरगजिह्वकर्तव्येन स्फुटीभविष्यति।

कथयाऽपि=नाम्नाऽपि। विमनायमाने=उदास्ता गते। तूष्णीके = मौनिनि। महाराष्ट्रमेव, महद् राष्ट्रम्, ननु तनो परिभूत भारत नाम किञ्चित्, तत्पतौ = तद्रक्षके।

जय०—अस्तु, उनके द्वारा मैंने जो सन्देश भेजा था उसका स्मरण आप कर रहे हैं ? यदि आप सन्धि कर लेते हैं तो आपके विद्रोहात्मक कार्यों को भूलकर दिल्लीसम्राट् आपको अपना प्रेमपात्र मानने लग जाएँगे। आपकी सुरक्षा के विषय में भी मैंने प्रतिज्ञा कर ली है। यदि आप चाहें तो मैं इसके लिए यथोचित कार्य करूँ। मैं राजपुताने का निवासी एक वृद्ध क्षत्रिय हूँ, मेरी वाणी वज्रलिपि की तरह कभी बदलती नहीं।

तदनन्तर उस एकान्तस्थान में उनकी (जयसिंह की) बात सुनकर इधर उधर देखकर महाराष्ट्र यानी महान् राष्ट्र के अधिपति शिवाजी के विस्मित हुए की तरह मौन हो जाने पर जयपुराधीश्वर ने पुनः उनसे कहा—

जय०—वीर ! भवानेकाकी अत्र समायातः, आत्मानं च समर्पितवानिति ग्लानेन न भाव्यम्। यदेव रोचेत तदैव मदश्वशालात एकमुत्तममाजानेयमारुह्य मद्भटै रक्षित एव स्वालयपर्य्यन्तं यास्यति, परतश्च रणाजिरे जयो वा पराजयो भवेत्, किन्तु नास्मत्तो लेशोऽपि विश्वासघातस्य शङ्कनीयः।

महा०—[ तादृशीमुदारां वाचं निशम्य विस्मित इव ] महाराज! दृढं विश्वसिमि, तद्विषये नास्ति मम खेदः।

जय०—तत्किं ग्लानिमिव वमति मुखमण्डलं भवतः ?

महा०—ग्लानेरनल्पं कारणमस्ति।

---

ग्लानेन = खिन्नेन। मदश्वशालात = मामकमन्दुरातः। आजानेयम् = अश्वम्। उत्तमपदस्य पृथगभिधानात्, 'आजानेयाः कुलीनाः' इत्यमरः। रणाजिरे = सङ्ग्रामाङ्गणे। लेशोऽपि = मात्राऽपि।

वमति = उद्गिरति। प्रकटयतीति यावत्।

---

जयसिंह—वीर ! आप अकेले ही यहाँ आ गये और आत्म-समर्पण कर चुके—इस तरह की ग्लानि आप न करें। आप जब चाहें उसी क्षण मेरे घुड़साल से एक अच्छा सा घोड़ा लेकर मेरे योद्धाओं के संरक्षण में ही अपने घर लौट जा सकते हैं। पीछे युद्ध-प्राङ्गण में जय हो या पराजय, किन्तु इस समय तो आप मुझसे किसी तरह के विश्वासघात की जरा-सी भी शङ्का न करें।

महाराज—[ जयसिंह की उपर्युक्त उदार वाणी सुनकर कुछ विस्मित-से होकर ] महाराज ! मैं पूर्णतः इस विषय में विश्वस्त हूँ। इस प्रसङ्ग में मुझे किसी प्रकार की ग्लानि नहीं हो रही है।

जयसिंह—तो फिर आपका मुखमण्डल ग्लानि को क्यों प्रकट कर रहा है ?

महाराज—ग्लानि का बहुत बड़ा कारण है।

जय०—नात्र पञ्चमः कर्णोऽवधत्ते, तत् स्पष्टमुच्यताम्।

महा०—वीरवर! येषां राजपुत्र-देशीय क्षत्र कुल-च्छत्राणां प्रताप-गानैर्बाल्यं व्यतियापितवानस्मि, यै राजन्वतीयं भारतभूः, ये चैकमात्रमालम्बनं सनातनधर्मस्य भारत-गौरवस्य भारताभिजन-स्वातन्त्र्यस्य च, तेषामेव महाराजमद्य म्लेच्छानां सेनापतिमवलोकयतो विदीर्यते मे हृदयम्।

जय०—अपीदमेव कारणं खेदस्य भवतः? वीर! यदा तारुण्यमासीदस्मद्देशीय-क्षत्रिय-प्रताप-तपनस्य; तदा यवनराजानां

---

अनल्पम् = बहु।

पञ्चमः कर्णः = पञ्चानां सङ्ख्यानां पूरकं श्रोत्रम्। न कश्चिद् द्वाभ्यामतिरिक्तः शृणोतीति यावत्।

प्रतापगानैः = तेजस्वितावर्णनपरगाथाभिर्गीतिभिः। बाल्यम् = शैशवम्। व्यतियापितवान् = क्षपितवान्। राजन्वती = सुन्दरराजसमेता। आलम्बनम् = आधारस्तम्भभूतम्। भारताभिजनस्वातन्त्र्यस्य = भारतदेशस्वतन्त्रतायाः। विदीर्यते = भिद्यते।

तारुण्यम् = यौवनम्। अस्मद्देशीयक्षत्रियाणां प्रताप एव तपनः =

---

जयसिंह—यहाँ तो हम दोनों के अतिरिक्त तीसरा कोई भी व्यक्ति नहीं है। अतः आप स्पष्ट रूप में ग्लानि के कारण बतलाएँ।

महाराज—वीरवर! राजपुताने के जिन क्षत्रिय कुल रक्षकों के प्रताप-गान में अपने बाल्य-काल को मैंने बिताया है, जिनके सौराज्य से यह पृथिवी सौराज्यशालिनी रही है, जो इस भारत देश के गौरव, उसके स्वातन्त्र्य तथा इसमें प्रतिष्ठित सनातन धर्म के एकमात्र आधारस्तम्भ रहे हैं उन्हीं में से अन्यतम आपको आज म्लेच्छों के सेनापति के रूप में देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।

जयसिंह—अच्छा, आपके खेद का यही कारण है। वीर! जिस समय हमारे देश के क्षत्रियों के प्रताप-सूर्य की युवावस्था रही उस समय हम लोगों

वक्षःस्थलेषु च्छुरिका-लेखनीभिर्भारत-जयः क्रियासमभिहारेणा स्माभिरलेखि। किन्तु न सदा समानो व्यत्येति कालः। ग्रीष्मे शोषित-महानदोऽपि भास्करो हिमे हिमकणिकाभिस्तथाऽऽत्रियते; यत्तदवलोकनमपि दुःशकं भवति। तदधुना क्षत्रिय-प्रतापस्य वार्द्धक्य-समयः—इति दैवघटनयाऽस्माकं पारवश्यं सम्पन्नमस्ति। न जानीमहे कदा वा कल्पपरिवर्त्तनं भविता, यदा पुनः स्वातन्त्र्य-सुखमासादयेद् भारतं वर्षम्। न धिकमस्मिन् विषये वचनीयम्, यतः, सर्वमवगतं धीरस्य।

---

खेचरचक्रवर्त्ती, तस्य। छुरिकाः = असिधेनुका एव, लेखन्यः = लिपिसाधनानि, ताभिः। रूपकम्। क्रियासमभिहारेण = वार वारम्। समानः = एकविधः। शोषितमहानदः = शुष्कीकृतमहाजलाधारः। हिमे = शीतर्त्तौ। हिमकणिकाभिः = प्रालेयखण्डैः। आत्रियते = आच्छाद्यते। तदवलोकनम् = तद्दर्शनम्। वार्द्धक्यसमयः = वृद्धत्वकालः। दैवघटनया = भाग्यचक्रेण। पारवश्यम् = पारतन्त्र्यम्। यत एवेयं शिक्षा राजनीतौ कृतपदा तत एव भारतीयपारतन्त्र्यशृङ्खला वृद्धिमानमासादितवतीति न विस्मर्त्तव्यं वृद्धोक्तिपठनपरैः। कल्पपरिवर्त्तनम् = समयपरावृत्तिः। वचनीयम् = वक्तव्यम्।

---

ने अपनी छुरी रूपी लेखनियों से यवनराजों के वक्षःस्थल पर बारम्बार अपनी विजय का उल्लेख किया। किन्तु सब दिन एक सा काल-चक्र नहीं घूमता। ग्रीष्मऋतु में महानदों को शुष्क बना देने वाला सूर्य भी शीतकाल में हिमकणिकाओं से इस प्रकार आवृत हो जाता है कि उसके दर्शन भी दुर्लभ हो जाते हैं। आज क्षत्रियों के प्रताप की वृद्धावस्था आ चुकी है, इसलिए भाग्य के प्रतिकूल हो जाने से आज हम लोग परतन्त्र हो गए हैं। हम नहीं जानते कि यह कुसमय-चक्र कब पलटेगा जिस समय यह भारतदेश पुनः स्वतन्त्रता के सुख का अनुभव करेगा। इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, आप तो सब कुछ जानते हैं।

महाराष्ट्रः—आर्य ! अवगतमस्ति, अत एव च पृच्छामि-यद् यैः सहैवं चिरन्तनो वृद्धो द्वेषः, कथमद्य तदाज्ञा शिरसा धार्यते ?

जय—मन्ये, जानीते भवान्; यदस्माकं सत्य-प्रतिज्ञतायां महान् पक्षपातः।

महा०—आम्! जाने।

जय०—यदा वैरमासीत् तदा रणाङ्गणमासाद्य निष्कृप-कृपाण प्रहारैर्यवन-कूटकोटि-कन्धरा-कोष्ण - रक्तप्रवाहैस्तुन्दिलीकृता भगवती चण्डिका, यदा च कैरपि कारणैर्वशंवदताऽङ्गीकृता;

---

वृद्धः = वृद्धि गतः, द्वेषः = शत्रुता।

सत्यप्रतिज्ञतायाः = सत्यसन्धतायाः। बहुव्रीहेरनन्तर तल्।

वैरम् = शत्रुत्वम्। निष्कृपकृपाणप्रहारैः = निर्दयासिताडनैः यवनकूटकोटेः = म्लेच्छसमूहकोटेः, कन्धराभ्यः = ग्रीवाभ्यः, कोष्णस्य = ईषदुष्णस्य, रक्तस्य, प्रवाहैः = धाराभिः, तुन्दिलीकृता = स्थूलोदरीकृता,

---

महाराज—आर्य! मैं जानता हूं इसी लिए तो पूछ भी रहा हूँ कि जिन म्लेच्छों के साथ हम लोगों की पुरानी शत्रुता चली आ रही है उनकी आज्ञा आज शिरोधार्य कैसे हो रही है ?

जयसिंह—मैं समझता हूँ कि आप यह भी जानते हैं कि प्रतिज्ञा पालन में हम लोगों का कितना बड़ा पक्षपात है।

महाराज—जी हाँ, जानता हूं।

जयसिंह—जिस समय यवनों से शत्रुता थी उस समय रणाङ्गण में प्रस्तुत हो कर निर्मम खड्गों के प्रचण्डाघात से यवनों की असंख्य मण्डलियों के गले से बहते हुए ईषदुष्ण रक्त के प्रवाह से भगवती चण्डिका को प्रसन्न भी किया ( मोटी-ताजी बना दिया ) था, किन्तु जब आज किन्हीं कारणों से यवनों का आधिपत्य मान लिया है तब उनकी आज्ञा का भी

तदाज्ञा वहामि। राजपुत्रदेशीय क्षत्रियाश्छद्मना न कुर्वन्ति विद्रोहाचरणम्।

महा०—किं सदा सर्वैः सत्यं पालनीयम् ?

जय०—आः! किं कथ्यते ? अत्रापि सन्देहः ? किं महाभारते जरासन्धस्य, अर्जुनस्य, युधिष्ठिरस्य वा न श्रुतानि कथानकानि ? राजपुत्रदेशीय क्षत्रियाणां किं नाश्राविषतेतिहासो भवता ? अस्माकं कथनमेव पत्रम्, कथनमेव च मुद्रा।

महा०—सत्यम्, किन्तु मरुधराधीश्वरो महाराज श्रीयशस्विसिंहोऽपि सनातनधर्म-रक्षायां प्रधान एव यामिकः। स तु सनातन-

---

चण्डिका = महामाया। वशंवदता = अधीनता। छद्मना = कपटेन। विद्रोहाचरणम् = शत्रुताव्यवहारम्।

न श्रुतानि = न कर्णगोचरीकृतानि। कथानकानि = चरितानि। जयसिंहेन कथानकानि श्रुत्वापि दुरर्थतयैवाध्यवसितानीति विदुषां सम्मतिः। सर्वैरेवैभिर्महाभारतप्रख्यातैः कूटनीतिराश्रिता, किमपरं युधिष्ठिरोऽपि 'अश्वत्थामा हत' इत्यभिधाय तामेवाशिश्रयदिति न तिरोहितं विज्ञेषु। ईदृशा एव हि धर्ममापातत भुत्वाऽन्यथयन्ति खेदयन्ति च भारतभुवमिति किमधिकम्। अश्राविषत = श्रुतः। मुद्रा = 'मुहरचन्द' इति भाषा।

यामिकः = प्रहरी। अत्याक्षीत् = उदलङ्घत्।

---

पालन कर रहा हूं। राजपुताने के क्षत्रिय कपट-पूर्वक (छिप कर) विद्रोहात्मक कार्य नहीं करते।

महाराज—क्या लोगों को सर्वदा सत्य का ही पालन करना चाहिए ?

जय०—आः! क्या कह रहे हैं ? इसमें भी सन्देह है ? क्या आपने महाभारत में वर्णित जरासन्ध, अर्जुन या युधिष्ठिर के उपाख्यान नहीं सुने हैं ? क्या आपने राजपुताने के क्षत्रियों का इतिहास नहीं सुना है ? हम लोगों की वाणी ही (प्रमाण) पत्र है, वाणी ही मुद्रा है।

महाराज—आपका कथन सत्य है। किन्तु मरुप्रदेश के अधिपति महाराज यशवन्त सिंह जी भी तो सनातन धर्म की रक्षा करने वाले प्रधान

धर्म-रक्षायै यवन-वंशावतंस-ध्वंसं चिकीर्षन्नस्मत्सहयोगमकार्षीत्, तत्साहचर्यञ्चात्याक्षीत्।

जय०—श्रुतमस्माभिः, यदवधि मरराजः सिप्रातीरे दिल्लीश्वरेण विजितः, तदवधि बहिः सन्धिं दर्शयन्नन्तर्द्वेष्टीति। परं छलमिदं गर्हितमनुष्ठितं तेन।

महा०—अथ किं म्लेच्छानां भारत-विद्रोहिणामप्यपकारः स्वदेशीयानां च साहाय्यं गर्हितं कार्यम्?

जय०—मम तात्पर्यं न बोबोद्धि भवान्। ननु कथयामि छलं गर्हितम्। यदि स प्रत्यक्षतो विरोधमनाच्छादयन्, समयोत्स्यत;

---

अन्तः = अभ्यन्तरे। द्वेष्टि = शत्रुता करोति। छलम् = कपटम्। गर्हितम् = निन्दितम्।

अपकारः = अपकृतिः। गर्हितम् = निन्दितम्।

बोबोद्धि = अतितरां जानाति। अनाच्छादयन् = अगोपयन्।

---

हारियों में अन्यतम ही हैं। उन्होंने तो सनातन-धर्म की रक्षा के लिए यवनवंशावतंस के विध्वंस की कामना से हमारा साथ दिया है और यवनसम्राट् का साथ नहीं दिया है।

जय०—हमने भी सुना है कि जिस दिन मरुप्रदेश के अधिपति महाराज यशवन्त सिंह सिप्रा नदी के तट पर हुए युद्ध में दिल्ली सम्राट से जीत लिए गए उस दिन से वे बाहर से दिल्लीश्वर के साथ सन्धि दिखलाते हुए भी भीतर से उनसे द्वेष ही किया करते हैं। परन्तु उनका यह कपट-प्रबन्ध निन्दित कार्य है।

महाराज—तो क्या भारतद्रोही म्लेच्छों का अपकार एवम् स्वदेशीयों का उपकार करना भी निन्दित कार्य है?

जय०—आप मेरे अभिप्राय को ठीक ठीक नहीं समझ रहे हैं। मैं तो कपट-प्रबन्ध को निन्दित कह रहा हूं। यदि महाराज यशवन्त सिंह प्रत्यक्ष

दिल्लीश्वर विजित्य यौधिष्ठिरध्वजाधारे धरातले ध्वजमुद्धून यिष्यद्, भारत स्वातन्त्र्य-पोत कर्णधार धुरामवक्ष्यत्, समराङ्गणे प्राणानत्यक्ष्यत्, मार्तण्ड मण्डलमभेत्स्यत्, सकुसुमवृष्टि दिव चासनाथयिष्यत्, तत् तद्यशोगीति-गाने राजपुत्रदेशः समपूरयिष्यत। पर यदवधि स च्छलमकार्षीत्, तदवधि बाला अस्मद्देशीयास्त निन्दन्ति। वीर! यदि सत्येन स्वधर्म रक्षा न भवति, सत्किमसत्येन सम्भोभवीति? यदि च प्राण-दानैरपि स्वदेशो दुराचारान् त्रातु न शक्यते, अथ च्छलेन शक्यते? कुलीनाः

---

समयोत्स्यत = युद्ध व्यधास्यत्। यौधिष्ठिरस्य = युधिष्ठिरसम्बन्धिन, ध्वजस्य, आधारे = क्षितिभूमौ। उद्धूनयिष्यत् = उदस्थापयिष्यत्। भारत स्वातन्त्र्य-पोतकर्णधारधुराम्=हैन्दव स्वतन्त्रता-नौ नाविक भारम्। अवक्ष्यत् = अधारयिष्यत्। सकुसुमवृष्टि=सकुसुमवर्षणम्। दिवम् = स्वर्गम्। असनाथयिष्यत् = अभूपयिष्यत्। तद्यशोगीतिगाने = तत्कीर्तिगीतिकागीतिभिः। समपूरयिष्यत=परिपूर्णोऽकरिष्यत। कर्मवाच्यम्।

---

रूप में भी दिल्लीश्वर के साथ अपने विरोध को छिपाए बिना ही युद्ध करते, और दिल्लीश्वर को जीतकर युधिष्ठिर की विजयपताका के आधारभूत इस धरातल में अपनी विजय पताका फहराते, भारत देश की स्वातन्त्र्य-नौका के नाविक का भार वहन करते, युद्धभूमि में ही अपने प्राण छोड़ देते, सूर्य मण्डल को भी अपनी कीर्ति से सम्भिन्न कर दिए होते और पुष्प वर्षण पूर्वक स्वर्ग को भी सनाथित किये होते तो आज उनके यशोगीत के गान से राजपुताना गूँजता रहता। परन्तु जब से उन्होंने छल किया है तब से हमारे देश के बच्चे भी उनकी निन्दा किया करते हैं। वीर! यदि सत्य से अपने धर्म की रक्षा नहीं होगी तो असत्य से इसकी सम्भावना भी हो सकती है? यदि प्राणान्त करने के बाद भी अपने देश का दुराचारियों से संरक्षण नहीं हो सकता तो क्या छल से इसकी सम्भावना है। कुलीन

प्राणानगणयन्तो धर्मं रक्षन्ति, न तु कपटाचरणैर्धर्मं विघट्टयन्ति।

महा०—[ किञ्चित् कुपित इव ] वीरवर! वयमपि धर्मार्थमेव प्राणान् न गणयामः, महाराष्ट्रा अपि भीरवो न सन्ति, महाराष्ट्रा अपि स्वार्थं न कुर्वन्ति सङ्ग्रामम्, किन्तु काश्यादिस्थानेषु विहिता-नत्याचारान् श्रावं श्रावं कर्णौ स्फुट्येते, हृदयं च विदीर्यते—इति न शक्यते सोढुमिति यथासामर्थ्यं सम्मुखं परतश्च युक्तिभिरपि विजयामहे। धन्यं युष्माकं सत्यम्! यदवलम्ब्य काशीस्थ-विश्वनाथ-बिन्दुमाधवादि-मन्दिर-मूलच्छेद-कौतुकिनो व्यर्थ-हत्या-काण्ड-व्यसनिनो लम्पटाः प्रवलीक्रियन्ते। युष्मादृशैरेव वीरवरैर्गौराङ्ग

कुलीनाः = सत्कुलप्रसूताः। विघट्टयन्ति = मर्दयन्ति।

भीरवः = भयभीताः। स्वार्थम् = स्वीयप्रयोजनाय। स्फुट्येते = विदीर्येते। परतः = ततः परम्। युक्तिभिः = छद्मादिशब्दव्यपदेश्यैस्तन्त्रैः। लम्पटाः = परस्त्रीपातिव्रत्यध्वंसकाः। गौराङ्गेण = महाप्रभुणा, विहितेन =

लोग अपने प्राण की भी उपेक्षा कर धर्म की रक्षा करते हैं न कि कपट प्रबन्ध से धर्म की हानि।

महाराज—[ कुछ क्रुद्ध जैसी मुद्रा में ] वीरवर! हम लोग भी धर्म की रक्षा के निमित्त ही अपने प्राण की भी गणना नहीं करते हैं। हम मराठे भी डरपोक नहीं हैं और न केवल स्वार्थ की सिद्धि के लिए युद्ध ही किया करते हैं। किन्तु काशी आदि पवित्र स्थानों में म्लेच्छों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों को सुनते-सुनते हमारे कान फट गए हैं और हृदय विदीर्ण हो रहा है—अतः असह्य होने के कारण अपने सामर्थ्य के अनुसार सम्मुख हो कर युद्ध में तथा छल आदि युक्तियों के प्रयोग से भी शत्रुओं को जीतने की चेष्टा करते हैं। आप लोगों का यह सत्य भी धन्य है जिसके चलते काशी के विश्वनाथ तथा बिन्दुमाधव आदि के मन्दिरों के विध्वंस में ही आनन्द लूटने वाले तथा व्यर्थ की हत्या में तत्पर ये दुष्ट और भी प्रबल होते जा रहे हैं। आप जैसे वीरों द्वारा ही महाप्रभु

विहित-हरिकीर्तन-पूता वङ्गभूमिर्म्लेच्छ-घातकानां हस्ते समर्पिता। अधुना गवां ब्राह्मणानां च रक्तैः स्नाति। महाराज! दृश्यतां धर्मशास्त्रम्, हत्या साहाय्यमपि हत्या-विशेष एव।

जय०—वीर! विरमस्व। शास्त्र-श्रवणैरेव केशाः श्वेतिताः सन्ति; न त्वातपतापेन। तत्र न बहु वचनीयम्। किन्तु प्रवञ्चनं नाङ्गीचिकीर्षत्येष वृद्धः।

महा०—[क्षण तूष्णीं स्थित्वा] महाराज! तत्किं सदा यवन-पद-दलितयैव स्थास्यते हतभाग्यया भारतभूम्या? सन्दह्यमाने-

सम्पादितेन, हरिकीर्त्तनेन = भगवद्यशोगानेन, पूता = पवित्रा। हत्यायाः साहाय्यम् = साहायकम्। हत्याविशेषः = मारणभेदः। "अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी" इत्यादिना सहायकादीनामपि घातकस्य धर्मशास्त्रकारैर्विस्पष्टीकृतम्।

शास्त्रश्रवणैः = श्रुत्यादिश्रुतिव्याख्याने, केवल श्रवणेन कृत नार्थो दशायीति कवेरभिप्रायम्। आतपतापेन = घर्मतपनेन। तत्र = शास्त्र-विषये। न बहु वचनीयम् = नाधिक वक्तव्यम्। परास्तानामेव यथा योऽनुमतो वयसि देन विषयमनभिप्राय स्वबोधत्वापनाया। प्रवञ्चनम् = धौर्त्यम्। नाङ्गीचिकीर्षति = नोररीकर्तुमिच्छति।

यवनानां पदेन दलितया = मर्दितया। हतभाग्यया = भागधेयविरहि-

---

गौराङ्ग के हरिकीर्तन से पवित्र बङ्गदेश की पृथिवी इन हत्यारे यवनों के हाथ में समर्पित होकर आज गो-ब्राह्मण के रक्त से स्नान कर रही है। महाराज! धर्मशास्त्र देखा जाय, हत्या करने में सहायता देना भी तो एक प्रकार की हत्या ही है।

जय०—वीर! आप विराम दो। मेरे ये बाल धूप की गर्मी से नहीं प्रत्युत शास्त्र-श्रवण में ही पक चुके हैं। अतः शास्त्र की अधिक बातें अनावश्यक हैं। परन्तु यह वृद्ध कपट करने में सम्मति नहीं दे सकता।

महाराज—[क्षण भर मौन रह कर] महाराज! तो क्या इस

नैर वर्तिष्यते चातुर्वर्ण्येन ? वम्भज्यमानेनैव वा भविष्यते सनातनधर्मेण ? अहह ! अस्मदीये कोङ्कणदेशे कोटिशो जना सुखेन स्वधर्ममनुतिष्ठन्ति, भेरीराहत्य सनातनधर्मस्य जयमुद्घोषयन्ति, चन्द्र-चुम्बि-कलशाग्रेषु माधव-मन्दिरेषु च सशङ्खवादमारार्तिक-महोत्सवान् अनुभवन्ति, किन्तु निखिलमिदमद्य श्रीमता संशयमारोपितम्। यदि वशवदतामङ्गीकुर्याम्, तदधुनैव सुखेन यवनाः प्रविश्य प्रतिमन्दिरं पार्श्वतो मज्जितस्थानानि निर्माय कलहमारप्स्यन्ते। यदि भवताऽऽहवयुतमूरीकुर्य्याम्; तत् प्रथमं भगवती

---

सदा। भारतभूम्या = हैन्दवधरित्र्या। दन्दल्यमानेनैव = अतितरां दलनमधिगच्छतैव। चातुर्वर्ण्येन = चतुर्णां वर्णानां समाहारः चतुर्वर्णम्, तदेव चातुर्वर्ण्यम्, तेन। स्वार्थे ष्यञ्। वम्भज्यमानेनैव = अतितरां भुज्यमानेनैव। जयम् = विजयम्। उद्घोषयन्ति = प्रकटयन्ति। चन्द्रचुम्बिकलशाग्रेषु = शशिसंस्पर्शिशृङ्गेषु। सशङ्खवादम् = कम्बुवादनपुरस्सरम्। आरार्त्तिकमहोत्सवान् = आरार्तिक्यमहोत्सवान्। पार्श्वतः = समीपे।

---

भाग्यहीन भारत भूमि को सब दिन यवनों के लात खाने ही होंगे ? क्या यहाँ के चातुर्वर्ण्य को सब दिन भूयो भूयः विदलित हो कर हा रहना होगा ? क्या सनातन धर्म को दिनानुदिन क्षीण ही होना पड़ेगा ? हाय ! हमारे कोङ्कण देश (= सह्य नाम के पर्वत तथा समुद्र का मध्यवर्ती भूभाग) में करोड़ों व्यक्ति सुखपूर्वक प्रतिक्षण अपने अपने धर्म का अनुष्ठान किया करते हैं, डङ्का बजाकर सनातन धर्म की जयध्वनि किया करते हैं, चन्द्रमा को चूमनेवाले शिखरों से सम्पन्न भगवान् विष्णु के मन्दिरों में शङ्खवादनपूर्वक आरती प्रदानात्मक महोत्सव मनाया करते हैं, किन्तु आज आपने इन सारी चीजों को संशय में डाल दिया। यदि मैं यवनों का आधिपत्य मान लूँ तो आज ही ये यवन सुखपूर्वक प्रत्येक मन्दिर में प्रवेश कर जायेंगे और मन्दिरों के सटे मस्जिद बनवाकर झगड़ना शुरू कर देंगे। यदि आपके साथ युद्धरूपी जुआ प्रारम्भ कर दूँ तो प्रथमतः तो यह ऐश्वर्यशालिनी

भारतभूः ब्राह्मणानां क्षत्रियाणाञ्च मांस–रुधिर–कर्दमेन पङ्किला भविन्नी, परतश्च भवादृशेषु भारतरत्नेषु प्रजामण्डलं निष्कण्टकीकृत्य यवनराजहस्ते समर्पितवत्सु, पुनस्तदेव मन्दिर-मर्दनम्, तीर्थमन्थनम्, वेदच्छेदनम्, धेनुध्वसन च पदे पदे संवत्स्यते। अहह! प्राणानगणयित्वा रक्षितोऽपि मयाऽयं देशोऽद्य भवचन्द्र-हास–चन्द्रिका–चुम्बितोऽसाध्येन दुर्दशा–ज्वरेणोल्लीढः। किमिव करोमि? महाराज! पूर्वं जहि मां तीक्ष्णेन च्छुरिकाग्रेण, परतश्च देशमिमं यवनहस्तगतं विधास्यसि। [ इति कथयन् काश्चिदश्रुबिन्दूनपातयत् ]

---

आरप्स्यन्ते = उपक्रमिष्यन्ते। आहवद्यूतम् = युद्धपणम्। मांसरुधिरकर्दमेन = मांसरक्तपङ्केन। पङ्किला = कर्दमभरिता, निष्कण्टकीकृत्य = शत्रुशून्यं विधाय। मन्दिराणां मर्दनम् = पातनम्। वेदानां छेदनम् = भेदनम्। धेनूनाम् = पयस्विनीनाम्, ध्वंसनम् = हननम्। संवत्स्यते = सम्पत्स्यति। भवचन्द्रहासचन्द्रिकाचुम्बितः = भवदसिकौमुदीस्पृष्टः। दुर्दशैव ज्वरः तेन। उल्लीढः = आघ्रातः। तीक्ष्णेन = खरतरेण। जहि = मारय।

---

भारतभूमि ब्राह्मणों और क्षत्रियों के मांस शोणितमय कीचड से भर जायेगी और पीछे आप जैसे भारतरत्नों द्वारा यवनराजों के हाथ में निष्कण्टक बनाकर प्रजामण्डल के समर्पित कर दिये जाने पर पुनः पूर्ववत् मन्दिरों का विध्वंस, तीर्थों की पवित्रता का विनाश, वेदों का उच्छेद एवम् धेनुओं का वध प्रतिपल होने लग जायेंगे। हाय! अपने प्राण की उपेक्षा कर जिस देश का मैंने सरक्षण किया वह आज आपके चन्द्रहास (तलवार) की चन्द्रिका से चुम्बित होकर एक असाध्य दुर्दशारूपी ज्वर से आक्रान्त हो गया है। क्या करूँ? महाराज! आप अपने छुरे के तीखे नोक से पहले मुझे ही मार डालें और पीछे इस देश को यवनों के हाथ में समर्पित कर देंगे [ ऐसा कहते कहते शिवाजी कुछ अश्रुबिंदु गिराए ]।

जय०—[ तदाकर्ण्य, स्वयमपि ग्लान इव, मुखं परिवर्त्य चक्षुषी सम्मर्द्य ] महाराष्ट्रराज ! "भवितव्यं भवत्येव नारिकेलफलाम्बुवत्" । तदलं महता शोकेन । दृश्यताम्—किं किं न कृतं राजपुत्रदेशीयैः क्षत्रियैः ? किन्तु ये युद्धक्षेत्रे धारातीर्थे करप्रदताग्लानिं चिक्षालयिषन्तो जीवनमपि तृणाय मन्यमाना देहमपातयन् ; तेषां पुत्रपौत्रा अधुना करप्रदाः संवृत्ताः । प्रबलैः सह विरोधो न भवत्येव सुखकरः । यदि भवान्मामपि युद्धे हन्यात् ; तत् सम्राजा कश्चन परः सेनानीः प्रेषयिष्यते, तस्मिन्नपि च दैवाद्धते, अपरोऽपरः समायास्यति—इत्येवं न सम्भवत्यन्तो महाराष्ट्रदेशदुर्दशायाः ! यत्र च चिरं

ग्लान इव = गतहर्ष इव । नारिकेलफले यथाऽन्तराले, अम्बु = जलम्, तद्वत् । "गच्छति भुक्तक याति गजभुक्तकपित्थवत्" इत्युत्तरार्द्धम् । करप्रदता-ग्लानिम् = राजस्वविभाणनमालिन्यम् । चिक्षालयिषन्तः = क्षालयितुमभिलषन्तः । करप्रदाः = राजस्वदायिनः । सेनानीः = वाहिनीपतिः । महार्घ-

जय०—[ शिवाजी की बात सुनकर स्वयम् भी कुछ खिन्न होकर, मुँह फेर कर और आँखों को मसल कर ] महाराष्ट्रराज ! "जिस प्रकार नारिकेल के फल के भीतर भी जल घुस ही जाता है उसी प्रकार भवितव्य होकर ही रहता है" । अतः अधिक शोक करना निरर्थक है । देखिए—राजपुताने के क्षत्रियों ने क्या क्या नहीं किया ? किन्तु युद्धक्षेत्र धारातीर्थ में यवनों को कर देने की ग्लानि के प्रक्षालनार्थ अपने जीवन को भी तृणवत् समझ कर जिन क्षत्रियों ने अपने शरीर भी छोड़ दिए उन्हीं के पुत्र पौत्र आदि आज यवनों को कर दे रहे हैं। प्रबल व्यक्तियों के साथ विरोध अच्छा नहीं होता । यदि आप मुझे भी युद्ध में मार डालेंगे तो दिल्ली-सम्राट् किसी अन्य सेनापति को भेज देंगे, भाग्यवश उसके भी मार दिए जाने पर तीसरा-चौथा सेनापति आता ही रहेगा—इस प्रकार महाराष्ट्र देश

युद्धानि भवन्ति, तत्रैव प्रायशो रोगा आपतन्ति, तत्रैव दरिद्रता पदमादधाति, तत्रैव च क्रमशः सर्वं महार्घतामाप्नुवद् भयानकं दुर्भिक्षं जनयति-इति चिर-युद्ध हतोत्साहा प्रजा भटाश्च हतोत्साहा भवन्ति-एतोऽस्मिन्नेवावसरेषु सन्धी राजधर्मः।

महा०—[ क्षणं विमृश्य ] महाराज ! भवान् वृद्धो दीर्घदर्शी राजधर्म्म-मर्म्मज्ञश्चेति मामप्यनुशास्तु। नाहं यवनरुधिरतृषितं खड्गं राजपुत्रदेशीय क्षत्रियरक्तैरारक्तयितुमिच्छामि, न वा मम सहचराः स्वबान्धवाविशेषैर्भावत्कैर्योद्धमुत्सहन्ते। तद् यदाज्ञाप्यते, तदेव मे

---

ताम् = बहुमूल्यप्राप्यवस्तुताम्। दुर्भिक्षम् = अकालम्। चिरयुद्धहतोत्साहाः = दीर्घसङ्ग्रामविधुतसाहसा। सन्धि', मूले "रो रि" लोपे 'ढूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः" इति दीर्घे च दीर्घप्रयोग।

अनुशास्तु = अनुशां ददातु। यवनरुधिरतृषितम् = म्लेच्छरक्तपिपासितम्। आरक्तयितुम् = लोहितीकर्तुम्। स्वबान्धवाविशेषैः = निजभ्रातृकल्पैः। उत्सहन्ते = सन्नद्धा भवन्ति। शिरोधार्यम् = शीर्षग्राह्यम्।

---

की दुर्दशा का अन्त नहीं होने वाला है। जिस देश में चिरकाल तक युद्ध चलता है वहाँ तरह तरह के रोग फैल जाते हैं, वहाँ दरिद्रता भी आ जाती है, वहाँ सारी चीजें इतनी महँगी हो जाती हैं कि भयङ्कर अकाल उत्पन्न हो जाता है—इस प्रकार चिरकालीन युद्ध से प्रजा तथा वीरसेना भी हतोत्साह हो जाती है। इसलिए ऐसे विषम समय में सन्धि कर लेना ही राजधर्म है।

महा०—[ थोड़ी देर तक सोचकर ] महाराज ! आप वृद्ध दूरदर्शी तथा राजनीति के मर्मज्ञ हैं। अतः मुझे भी आप शिक्षा दें। मैं यवनों के रुधिर के प्यासे तलवार को राजपुताने के निवासी क्षत्रियों के रक्त से रंगना नहीं चाहता, और मेरे सहायक वीर भी अपने बान्धवों के सदृश आपके सहायक क्षत्रियों से लड़ना पसन्द नहीं करते। अतः आपकी जो आज्ञा होगी

शिरोधार्यम्! यथा श्रेयो भवति तथैवानुशास्योऽयमनुगतः।

जय०—वीर! सन्धिरेव श्रेयान्। कोङ्कणदेशे धर्मविप्लवोऽपि चैवं नाऽऽशङ्कनीयः। यतो भवान् केवलं करं दास्यति, स्वप्रजाश्च स्वयमेव पालयिष्यति।

महा०—यदि ते बलान्मम शासने हस्तं क्षिपेयुः?

जय—मा भैषीः। अहं प्रतिजाने न भविष्यति तथा। यथा राजपुत्रदेशीयभूपेषु करप्रदेष्वपि तत्र न हस्तक्षेप एषाम्; तथाऽत्रापि संवर्त्स्यति।

महा०—महाराज! बाल्येऽहं चिरं स्वप्नानपश्यम्—यद् दुराचारैर्म्लेच्छैः सह प्रतियोद्धुं स्वदेशस्य स्वातन्त्र्यं धर्मञ्च रक्षितुं मां स्वयं भगवती दुर्गाऽऽदिशतीति। तादृश-स्वप्नावलोकन-वर्द्धि-

श्रेयः = कल्याणम्। अनुशास्यः = उपदेश्यः। अनुगतः = अनुयायी।
प्रतिजाने = प्रतिज्ञां करोमि।

वह मेरे लिये शिरोधार्य है। जिस प्रकार कल्याण सम्भावित हो उसी प्रकार अपने अनुयायी मुझे आप उपदेश दें।

जय०—वीर! सन्धि कर लेना ही श्रेयस्कर होगा। इससे आपको अपने कोङ्कण देश में धर्म विप्लव की कोई आशङ्का नहीं करनी चाहिए, क्योंकि आपको तो केवल दिल्लीसम्राट् को कर देना होगा, अपनी प्रजा का पालन तो आप स्वयम् करेंगे।

महा०—परन्तु यदि ये यवन मेरे शासन में बलात् हस्तक्षेप करें!

जय०—आप डरें नहीं। मैं आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि वैसा नहीं होगा। जिस प्रकार कर देनेवाले राजपुताने के राजाओं के शासनकार्य में यवनसम्राट् का हस्तक्षेप नहीं होता उसी प्रकार आपके प्रसङ्ग में उनका हस्तक्षेप नहीं होगा।

महा०—महाराज! बाल्यावस्था में मैं कई बार ऐसे स्वप्न देखे थे कि अपने देश के स्वातन्त्र्य तथा धर्म के संरक्षण के लिये दुराचारी यवनों के साथ युद्ध करने के लिये भगवती दुर्गा मुझे स्वयम् आकर आदेश दिया

तोत्साहः क्रमेण यदकरवम्, तन्मन्ये तिरोहितं नास्ति श्रीमत्निकटे। तदधुना विमूढ इव पृच्छामि, कीदृशा मे स्वप्नाः? कीदृशं चानुष्ठितवानस्मीति?

जय०—वीर! अस्मद्देशे स्त्रियोऽपि तव गीतीर्गायन्ति, भारतस्य सुपुत्रोऽसि, भारतस्य रत्नमसि, आर्यवंशस्य ध्वजोऽसि। सत्यास्ते स्वप्नाः। अनुपमं तवोद्देश्यम्। भगवती सफलयतु तव मनोरथान्।

महा०—राजन्! प्रतिदिनं वर्द्धमाने यवनप्रतापे कथं स्युः सफला मनोरथाः?

जय०—वीर! क्वास्ति वर्द्धमानः प्रतापः? एष दुराचारकीटैरेवायं जर्जरितान्तःसारः सवर्त्तितोऽस्ति, तन्निश्चितामिमां वाचम्

तिरोहितम् = अज्ञातम्। विमूढ इव = गतमतीव इव। अनुष्ठितवान् = कृतवान्।

अनुपमम् = अतुलम्, उपमारहितम्।

वर्द्धमाने = एधमाने।

दुराचारा एव कीटाः = क्षुद्रजीवाः, कृमयः, तैः। अयम् = प्रतापः। जर्जरितान्तःसारः = विध्वस्ताभ्यन्तरिकबलः। सवर्त्तितः = कारितः। महा-

करती थीं। उस तरह स्वप्नों के देखने के कारण उत्साह के बढ़ जाने से क्रमशः मैंने जो जो कार्य किए हैं, मैं समझता हूँ कि वे आपसे छिपे नहीं हैं। परन्तु आज विमूढ-सा होकर मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि मेरे वे स्वप्न कैसे थे और मैंने किस तरह के कार्य किए थे?

जय०—वीर! हमारे देश की स्त्रियाँ भी आपका गुणगान किया करती हैं। आप भारतमाता के सपूत हैं, इस देश के रत्न हैं और आर्यकुल के विजय-ध्वज हैं। आपके स्वप्न सत्य हैं। आपका उद्देश्य भी अनुपम है। भगवती जगदम्बा आपके मनोरथ को सफल बनाएं।

महा०—महाराज! यवनों के प्रताप के इस प्रकार बढ़ते रहने पर मेरे मनोरथ कैसे सफल होंगे?

जय०—वीर! बढ़ता हुआ प्रताप कहाँ? अपने दुराचारस्वरूप कीड़ों

यगन्छ, मौद्गल-राज्यं न चिराय स्थास्यति। इदमधुनैव महापातकैः कृत्तमूलं सवृत्तमस्ति। परञ्च प्रतिदिनमेतस्य क्षयः—इति काशीस्थ - बिन्दुमाधव - विश्वनाथादि - मन्दिर-समीपस्थ महामस्जिदस्थानेषु घूंकारैर्घूका घोरं घोषं विधास्यन्ति, वरटाः सरटाः करटाश्च क्रीडिष्यन्ति, तैलपायिकाश्च विष्ठाभिर्मलिनयिष्यन्ति।

महा०—दानबन्धो! भवादृशेषु सहायेषु कथमेवं सम्भवति?

जय०—अहं वृद्धोऽस्मि। न चिरं जीवामि। यावतीनां प्रजानाञ्च हृदये जाज्वल्यते वैरवह्निः। एतदीया मण्डलशासका अनुचरा

पातकैः = अहिंस्यहिंसनादिभिः। कृत्तमूलम् = छिन्नाधारम्। क्षयः = विनाशः। घूङ्कारैः = घू शब्दैः। घूकाः = उलूकाः। घोरम् = अश्राव्यम्। घोषम् = रवम्। वरटा = हंसयोषितः। सरटाः = कृकलासाः। करटाः = काकाः। क्रीडिष्यन्ति = क्रीडा विधास्यन्ति। तैलपायिकाः = जतुकाः। "जतुका जिनपत्रा स्यात्तरोष्णी तैलपायिका" इत्यमरः। विष्ठाभिः = गूथैः। मलिनयिष्यन्ति = मलिनतामानेष्यन्ति। सप्तमीमयतादाशीरियं वृद्धस्य कवेश्चेति महामायामन्यर्थयामः।

यावतीनाम् = समस्तानाम्। मण्डलशासकाः = भूखण्डरक्षकाः,

से ही इनके प्रताप का अन्तस्तत्त्व जर्जरित हो चुका है। मेरे कथन को आप निश्चित समझें। मुगलों का राज्य चिरकाल तक नहीं रहने वाला है। महापातकों से इनका राज्य अब छिन्नमूल हो चुका है। आगे भी दिनानुदिन इनके राज्य का क्षय होने ही वाला है। इसलिए काशी के बिन्दुमाधव तथा विश्वनाथ आदि मन्दिरों के पास बने बडे-बडे मस्जिदों में उल्लू भयङ्कर घूङ्कारात्मक शब्द करेंगे, हंसिनियों, छिपकलियों तथा कौओं की क्रीडा होगी और चमगादड़ विष्ठा से उन मस्जिदों को गन्दे करेंगे।

महा०—दीनबन्धो! आप जैसे वीरों की सहायता मिलते रहने पर यवनों की यह दशा कैसे सम्भावित है?

जय०—मैं वृद्ध हूँ। अब अधिक दिनों तक मैं जीने वाला नहीं हूँ। दूसरी बात यह भी है कि समस्त प्रजाओं के हृदय में शत्रुता की ज्वाला

अपि गूढं विद्विषन्ति। कथं शासनमूरीकरणीयमिति बहुश एनं पत्रद्वारा बोधितवानस्मि। नैषोऽस्मदुपदेशाञ्शृणोति, प्रजाः पीडयति, बान्धवेष्वपि वैरायते, निज-धर्म-धुर्याणां मौलिवीनामपि च न कर्णे करोति वाचः। आसन्न-विनिपातानि भवन्तीदृश शासकाध्युषितानि सिंहासनानि।

महा०—शान्तं पापम्! प्रतिहतममङ्गलम्!! चिरं जीवतु महाराजः!! [ क्षण द्वावपि तूष्णीकौ स्थितौ, परतश्च पुनः किञ्चिद्विचार्य

"सूबेदार, नवाब" इत्यादिपदवाच्या। गूढम् = अप्रकटम्। विद्विषन्ति = शत्रुत्वमाचरन्ति। पत्रद्वारा, महाराजजयसिंहेन "अवरङ्गजीब" सम्बोध्य लिखितमेकं पत्रं तन्मुद्राङ्कितं काशीस्थाग्रवालश्रेष्ठिरामनारायणदासमहोदयानां निकट आसीत्। तद् यथास्थितं भारतेन्दुहरिश्चन्द्रमहाशयेन मुद्रितम्, तच्च शिवराजनिजप्रकारेण साक्षादवलोकितम्, भारतेन्दुना च निजे "बादशाह दर्पण"-नामधेये पुस्तके प्रकाशितमिति मूलकारानुमोदिता च टिप्पणी। बान्धवेषु = भ्रातृषु। अवरङ्गजीवकर्तृकं भ्रातृवधादि नातितिरोहितमितिवृत्तविदाम्। आसन्नविनिपातानि = अविकटविनाशानि।

धधक रही है। इनके सेवक जिलाधीश या प्रान्ताधिपति भी इनसे बहुत द्वेष कर रहे हैं। किस प्रकार का शासन चलाना हितकर होगा—इस विषय को मैं पत्रों द्वारा अनेक बार यवनसम्राट् को समझा चुका हूँ। परन्तु मेरे उपदेशों की उपेक्षा कर वे प्रजाओं को पीड़ित कर रहे हैं, मित्रों के साथ भी शत्रुवत् आचरण किया करते हैं, यवन धर्मशास्त्र में निपुण मौलवियों की बातें भी नहीं सुन रहे हैं। इस तरह के शासकों से अधिष्ठित राज्यसिंहासन का पतन निकटभावी होता है।

महा०—पाप की शान्ति हो चुकी। अमङ्गल का विनाश हो चुका। महाराज चिरायु हों।

[ थोड़ी देर तक दोनों ही चुप रहे, बाद में कुछ सोच-विचार कर महाराष्ट्रराज ने पुनः कहा—] मैंने तो चिरकाल तक दिल्लीसम्राट् से युद्ध

प्रोवाच महाराष्ट्रराज. ] अहं चिरमयुध्ये—इति दिल्लीश्वरः कथं मैत्र्या वर्तिष्यते—इति सशये।

जय०—भवन्तमतिमात्रमित्र मंस्यते दिल्लीश्वरः, यदि भवान् तस्य किमपि कार्यं साधयेत्।

महा०—किं तत्?

जय०—कार्यत्रयमुपस्थितमस्ति।

महा०—किं किम्?

जय०—प्रथमन्तु गोलखण्डनाथाते दिल्लीश्वरे तत्समीपमागच्छन्ती तद्दुहिता रोमवती रमनारी मार्ग एव कैश्चन लुण्ठकैरपहृता, साऽन्वेषणीया।

महा०—[ मनस्येव प्रसीदन् ] द्वितीयम्?

जय०—द्वितीयतो भवतैव सह योद्धुं प्रस्थितो राजकुमारो

---

अयुध्ये = समग्रामयम्, आत्मनेपदे लङुत्तमपुरुषे। मैत्र्या = मित्रतया। वर्तिष्यते = व्यवहरिष्यति। सशये = सन्दिग्धे। लङुत्तमैकवचनम्।

---

किया है—इसलिए मुझे सन्देह हो रहा है कि वे मेरे साथ मैत्री करने को तैयार हों।

जय०—यदि आप दिल्ली सम्राट् का कुछ काम सिद्ध कर देंगे तो वे आपको बहुत बड़ा मित्र मानने लग जायेंगे।

महा०—कौन सा काम?

जय०—सम्प्रति तीन काम प्रस्तुत हैं।

महा०—कौन कौन सा?

जय०—पहला काम तो यह है कि दिल्लीसम्राट् के गोलखण्ड आने पर उनके पास आती हुई उनकी लड़की रोशनआरा को कुछ लुटेरों ने गायब कर दिया है, अब उसे ढूँढ लाना है।

महा०—[ मन ही मन प्रसन्न होते हुये ] दूसरा काम क्या है?

जय०—दूसरा काम यह है कि आप ही के साथ युद्ध करने के लिये

मायाजिह्मः कुत्राप्यटवीष्वपभ्रष्टः, स तु नाद्यापि लब्धः—इति सोऽपि मार्गणीयः।

महा०—[ मनसि स्मयमान इव ] आम् ! तृतीयम् ?

जय०—तृतीयस्तु विजयपुरेश्वरेणाऽऽहवोऽनुष्ठेयः।

महा०—[ सहर्षम् ] एतत् त्रयमपि साधयिष्यामि।

जय०—इतोऽप्यधिकं किं नाम स्यात् कारणं तोषस्य ? परं विजयपुराधीशेन योत्स्यते भवानिति न सन्देहः, किन्तु शिष्टं कार्यद्वयं साधयिष्यत्येव—इति कथं विश्वस्याम् ?

ततः शनैः शनैरुभयोर्बहव आलापाः सञ्जाताः। परिशेषे च जयपुराधीशेनोक्तम्—सर्वमवगतवानस्मि। श्व एव मायाजिह्मं

अटवीषु = अरण्येषु। अपभ्रष्टः = मार्गच्युतः। मार्गणीयः = अन्वेषयितव्यः।

आहवः = सङ्ग्रामः।

विश्वस्याम् = विश्वासं कुर्याम्। दुष्करत्वादित्यविश्वासः।

---

प्रथित राजकुमार मुअज्जम किसी जङ्गल में पथभ्रष्ट हो चुके हैं, और आज तक भी वे उपलब्ध नहीं हो पाये हैं। अतः उन्हें भी खोजना है।

महा०—[ मन में कुछ हँसते से ] अच्छा ! तीसरा काम क्या है ?

जय०—तीसरा काम यह है कि बीजापुर के महाराज के साथ दिल्लीसम्राट् की ओर से युद्ध करना है।

महा०—[ हर्ष-पूर्वक ] ये तीनों ही काम मैं कर दूँगा।

जय०—बस ! तो इससे अधिक दिल्लीसम्राट् की प्रसन्नता का कारण क्या होगा ? विजय पुरेश्वर के साथ आप बादशाह की ओर से युद्ध करेंगे, यह तो असन्दिग्ध है, परन्तु अन्य दो काम कर ही लेंगे, यह विश्वास मैं कैसे करूँ ?

तदनन्तर उन दोनों के बीच शनैः शनैः बहुत बातचीत हुई। अन्त में जयपुराधीश ने कहा—मैं सब जान चुका। कल रोशनआरा तथा मुअज्जम

रसनारौ चात्र प्रेषयतु यथा स्वपत्रेण सह तौ दिल्लीं प्रेषयामि। अत्रभवति चात्यन्त दिल्लीश्वरस्य तोषं सम्पादयामि।

महा०—यदाज्ञाप्यते।

जय०—स्वीकृता भवताऽधुना सकरप्रदत्वा मैत्री ?

महा०—सर्वोऽपि भवदादेशः शिरोधार्यः।

ततो जयपुराधीश्वरः प्रतिष्ठासमानं महाराष्ट्रराजं सप्रेम सम्बोध्य प्रोक्तवान् अस्तु, साम्प्रतं निर्गमिष्यति भवान् चेदस्माकीना भटा भवन्तमनुगच्छन्त सिंहदुर्गपर्य्यन्तं कुशलेन प्रापयिष्यन्ति। स तु आर्य ! परमुपकृतोऽस्मि सकरुण-भाषणेनानेन। रात्रौ एकाकिभ्रमणमेवातितरां रोचते मह्यम्। त्वरितगामी आजानेयो बहिरस्ति, क्षणेन मां नेष्यति—इति सप्रश्रयमुक्तवान्।

---

अत्रभवति = माननीय भवति। तोषम् = प्रसन्नताम्।

सकरप्रदत्वा = करलिविभाणना।

प्रतिष्ठासमानम् = प्रस्थातुकामम्। सप्रेम = सानुरागम्। एकाकिभ्रमणम् = एकलचरणम्। त्वरितगामी = शीघ्रगति।

---

को आप यहाँ भेज दें ताकि मैं अपने पत्र के साथ उन्हें दिल्ली भेज सकूँ और आपके प्रसङ्ग में दिल्लीश्वर को अत्यन्त प्रसन्न भी कर सकूँ।

महा०—आपकी जैसी आज्ञा हो।

जय०—अच्छा तो अब आप कर देने के साथ-साथ बादशाह के साथ अपनी मैत्री को स्वीकृत कर चुके ?

महा०—आपका प्रत्येक आदेश शिरोधार्य है।

तत्पश्चात् जयसिंह ने वहाँ से प्रस्थान करने के इच्छुक महाराष्ट्रराज को प्रेमपूर्वक सम्बोधित करते हुये कहा—अस्तु, यदि आप इस समय यहाँ से जाना चाहते हैं तो मेरे भट आपको यहाँ से सिंहदुर्ग तक पहुँचा देंगे। उस पर महाराष्ट्रराज ने विनयपूर्वक कहा—आर्य ! आपकी इस करुणापूर्ण वाणी से मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। किन्तु रात में मुझे अकेला चलना ही अच्छा लगता है। साथ ही बाहर एक शीघ्रगामी अच्छा घोड़ा भी बँधा है जो क्षण भर में ही मुझे वहाँ पहुँचा देगा।

तत उत्थाय, ससादरसम्भाषणं प्रचलिते शिवराजे, अम्बरेश्वरोऽपि द्वारपर्य्यन्तमागत्य आश्लिष्य विसृज्य च स्वयमन्तः प्रविवेश।

महाराष्ट्रेश्वरोऽपि निजमाजानेयमारुह्य निवृत्तः, गूढवेषैरनेकैरात्मीयैरनुगम्यमानश्च, क्षणेन सिंहदुर्गमागत्य, जनन्या सह विविधैरालापैश्चिरं विहितजागरः, मन्थरैरङ्गैश्चिन्तासन्तानैकतान एव सुष्वाप।

अथान्येद्युः प्रातरेव तोरणदुर्गं प्रविश्य, रसनारामकथयद् यद्-भद्रे! कष्टमुपस्थितं महाराष्ट्रदेशे, यदेष जयपुराधीश्वरो भवत्याः पित्रा प्रेषितः कटकानां कोटिभिर्योद्धुमायातोऽस्ति। न

---

गूढवेषैः = गुप्तवेषैः। जनन्या = मात्रा। विहितजागरः = अलब्धनिद्रः। मन्थरैः = अलसैः। चिन्तासन्तानैकतान एव = चिन्ताविनिमग्नान्तरङ्ग एव। सुष्वाप = निद्रां चेके।

अन्येद्युः = परस्मिन् दिवसे।

कष्टम् = खेदः। कटकानाम् = सेनानाम्। कोटिभिः = अनेक-

---

तदनन्तर वहाँ से उठकर सादर सम्भाषण कर वहाँ से शिवराज के प्रस्थान करने के बाद अम्बर देशाधीश्वर भी उनके साथ दरवाजे तक आये और आलिङ्गनपूर्वक उन्हें विदाई देकर पुनः शिविर के भीतर लौट गये।

इधर महाराष्ट्रराज भी अपने तेज घोड़े पर सवार होकर गूढ वेषवाले अपने अनेक बन्धुओं के साथ शीघ्र ही सिंहदुर्ग में प्रवेश कर, अपनी माता के साथ वार्तालाप करने में चिरकाल तक जगने के कारण अङ्गों में आलस्य आ जाने से विविध चिन्ताओं में निमग्न होकर ही सो गए।

दूसरे दिन सवेरे ही तोरणदुर्ग में प्रवेश कर उन्होंने रोशनआरा से कहा—

भद्रे! महाराष्ट्र देश पर सङ्कट आ गया है, क्योंकि आपके पिता द्वारा भेजे गये महाराज जयसिंह बहुत बड़ी सेना के साथ युद्ध से लड़ने आ चुके हैं। मैं नहीं समझ पाता कि आपके पिताजी युद्ध करने के लिये इतने

जाने भवत्यास्तातचरणः किमित्येवं युद्धलोलुपोऽस्ति। वीराणां बहूनि सहस्राणि अस्मत्कोपकृशानुषु दग्धानि। इतोऽपि च न शाम्यति भवत्याः पितुर्युयुत्सा। मया निगृहीताऽपि भवती केवलं सत्कृता। मया वशे कृतोऽपि च भवत्या भ्राता केवलमादृतः। तातचरणश्च भवत्या एवं मैत्रीमपि दर्शयति मयि शत्रुतयैव च व्यवहरति, नेदं भद्रोचितं कार्यम्।

तदाकर्ण्य, सनिःश्वासं सचकितं च प्राह रसनारी—तत्किं भ्राता मे भवत्कारागारे निगडबद्धः?

महाराजः—भद्रे! नास्माभिरीदृशा निगडैः, किन्तु प्रेम्णा

---

कोटिमि। अत्र कोटिशब्दो बहुत्वपरः, समूहैरित्यर्थः। युद्धलोलुपः= युद्धाभिलाषी। अस्माकं कोप एव कृशानवस्तेषु। ज्वलनम्। दग्धानि= प्लुष्टानि। युयुत्सा=योद्धुमिच्छा। आदृतः=सत्कृतः। दर्शयति= प्रकटयति। म० एकवचन शत्रन्तम्। भद्रोचितम्=श्रेष्ठजनयोग्यम्।

भवत्कारागारे=भवद्बन्धके। निगडबद्धः=शृङ्खलायन्त्रितः।

---

उन्मुक्त क्यों हैं। आपके पिता के करोड़ों वीर हमारे कोपानल में दग्ध हो चुके हैं, फिर भी आपके पिता की लड़ने की इच्छा शान्त नहीं हो पा रही है। देखिये—आपको कैद करने के बाद भी मैंने आपका केवल सत्कार किया है। वशीभूत होने पर भी मैं आपके भाई का आदर ही करता रहा हूँ। किन्तु इस प्रकार मित्रता दिखलाने वाले मेरे साथ भी आपके पिता जी शत्रुता-पूर्वक व्यवहार ही किया करते हैं। यह कार्य भले आदमी जैसा नहीं है।

उक्त वचन सुन कर रोशन आरा ने निश्वास एवं आश्चर्य के साथ कहा—तो क्या मेरे भाई आपके कारागार में बेड़ी में बन्धे हैं?

महाराज—भद्रे! इस तरह के लोगों को हम लोग बेड़ियों में नहीं

बद्धयन्ते। मया स्वपुत्र इव सोऽपि महाप्रासादे स्थापितोऽस्ति।

रस०—कतमोऽसौ भ्राता ?

महा०—कुमार-माथाजिह्मः।

रस०—कथमत्राऽऽयातः ?

महा०—सोऽस्माभिर्योद्धुमायात आसीत्।

रस०—अथ किम् ?

महा०—अथ सुन्दरस्य यूनः कुमारस्य हत्यामनिच्छद्भिरस्माकीनैः कथमपि स्वहस्तगत एव कृतः।

रस०—अथ तस्य स्वच्छन्द प्रचारो रुद्धो वा ?

महा०—न किमपि। स्वच्छन्दं सोऽस्मासु विचरति।

---

ईदृशाः=महोदयाः। बद्धयन्ते=यन्त्र्यन्ते, स्वायत्तीक्रियन्त इति यावत्। स्वच्छन्दम्=स्वातन्त्र्यम्। प्रचारः=भ्रमणम्।

---

अपितु प्रेम के बन्धन म ही बान्धते है। मैंने अपने पुत्र के समान ही आपके भाइ को भी राजभवन में ही रक्खा है।

रोशनआरा—मेरे कौन से भाई हैं ?

महाराज—राजकुमार मुअज्जम।

रोशनआरा—वे यहां कैसे आए थे ?

महाराज—हम लोगों के साथ लड़ने के लिए ही वे यहाँ आए थे।

रोशनआरा—तो फिर क्या हुआ ?

महाराज—ऐसे सुन्दर युवक राजकुमार की हत्या नहीं करने की इच्छा वाले हम लोगों ने किसी प्रकार उन्हें पकड़ ही लिया।

रोशनआरा—तो क्या उन्हें घूमने फिरने में स्वच्छन्दता दी गई है या नहीं ?

महाराज—कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वे तो हम लोगों के साथ स्वच्छन्द हो कर घूमते फिरते हैं।

रस०—[ सास्रम् ] चिराय नापश्यमहं तातमायाजिह्मम्, तद् दर्शयतु भवान् सपदि मे भ्रातरम्।

महा०—मुहूर्त्तेन द्रक्ष्यति भवती। [ इत्युत्थाय दुर्गाध्यक्षं तमानाययितुमादिश्य, पुनरुपविश्य ] गतदिवसेऽहं जयपुराधीशस्य शिबिरं गत्वा बहुशः सन्धिवार्त्तां कृतवानस्मि, किन्तु—

रस०—किं सन्धिं नाङ्गीकरोति?

महा०—अङ्गीकरोति, किन्तु,—

रस०—आम्, कथ्यतां किमीहते सेनापतिः?

महा०—सेनापतिर्भवत्या एवाधीनं मनुते।

रस०—उच्यतामुच्यताम्। अद्यैवाऽहं गत्वा तं युद्धाद् वारयिष्यामि, प्रतिनिवर्तितुञ्च वक्ष्यामि। कथ्यतां किं तेनोक्तम्?

---

अधीनम् = आयत्तम्। मनुते = जानाति।

प्रतिनिवर्त्तितुम् = दिल्लीं गन्तुम्। वक्ष्यामि = कथयिष्यामि।

---

रोशनआरा—[ रोती हुई ] मैं अपने प्यारे भाई मुअज्जम को चिरकाल से नहीं देख पाई हूँ। अब आप अभी उनसे मेरी भेंट करा दें।

महाराज—थोड़ी ही देर में आप उनसे मिलने वाली हैं [ यह कह कर उठ गए और दुर्गाध्यक्ष को कुमार मुअज्जम को वहाँ बुलाने की आज्ञा देकर पुनः बैठ कर ] कल मैंने जयपुराधीश्वर के शिविर जाकर उनसे बहुत प्रकार से सन्धि की बातचीत की है, किन्तु

रोशनआरा——क्या सन्धि की बात वे नहीं मान रहे हैं।

महाराज—मान तो रहे हैं, किन्तु

रोशनआरा—अच्छा तो कहिए सेनापति जी क्या चाह रहे हैं?

महाराज—सेनापति महाशय तो ( इस कार्य को ) आपके वशम्वद ही मानते हैं।

रोशनआरा—कहिए कहिए। आज ही मैं जा कर उन्हें युद्ध करने से रोक दूँगी और यहाँ से लौट जाने को भी कहूँगी। कहिए—उन्होंने क्या कहा है!

महा०—राजकुमारि ! स वक्ति यद्—"महाराजाधिराजो दिल्लीश्वरः कुमार्याः कुमारस्य च पदवीमलभमानोऽत्यन्तं चेखिद्यते। यदवधि स भवतोः प्रनष्टतामश्रौषीत्; तदारभ्य मित्रैर्न हसति, राजसभां नाधितिष्ठति, कलाकौशलानि नावधत्ते, आलापमूर्च्छना न शृणोति, उद्यानेष्वपि च न पर्य्यटति, 'हा वत्स ! मायाजिह्म !! हा वत्से !! रसनारि !!'—इति समाक्रन्द-विलपितोद्भूतैर्बाष्पैरेव श्मश्रु कूर्चञ्च स्नपयति। तत्र भवती महिषी, अन्या भोगिन्यश्च हाहाकारैरेव समयं गमयन्ति।"

---

पदवीम् = पन्थानम्। चेखिद्यते=अतितरां क्लिश्नाति। प्रनष्टताम् = अदृश्यताम्। नाधितिष्ठति = नाश्रयति। "अधिशीङ्स्थासां कर्म"ति समाशब्दस्य कर्मसंज्ञा। नावधत्ते = न विवेचयति। समाक्रन्दात् = रोदनात्। विलपितात् = सशब्दरोदनाच्च, उद्भूतैः = सञ्जातैः। बाष्पैः = अस्रैः। श्मश्रु = उत्तरोष्ठोपरिस्थितां रोमराजिम्। कूर्चम् = चिबुकप्ररूढां रोमावलिम्। महिषी = पट्टराज्ञी। भोगिन्यः = इन्द्रियतृप्तिमात्रार्थमङ्गीकृताः। "कृताभिषेका महिषी भोगिन्योऽन्या नृपस्त्रियः।" इत्यमरः।

---

महाराज—राजकुमारी ! सेनापति महाशय कह रहे हैं कि महाराजाधिराज दिल्लीवल्लभ आप तथा राजकुमार मुअज्जम को नहीं पाने से अत्यन्त खिन्न हैं। जब से उन्होंने आप दोनों के खो जाने की बात सुनी है तब से वे अपने मित्रों के साथ हँसते भी नहीं, राजसभा में भी नहीं बैठते, कला कौशल की ओर भी ध्यान नहीं देते, सङ्गीत की मूर्च्छना को भी नहीं सुनते, उद्यान में भी नहीं घूमते और 'हाय बेटा ! मुअज्जम !, हाय बेटी ! रोशन आरा !' इस प्रकार क्रन्दन तथा विलाप करने से उत्पन्न अश्रुधारा से अपनी मूँछ-डाढ़ी को स्नान कराते रहते हैं। सम्मान्य महारानी तथा अन्यान्य रानियाँ भी 'हाय ! हाय !' करके ही किसी प्रकार समय बिता रही हैं।

रस०—[ साश्रुपातम् ] हा तात ! हा मातः !! [ इति रोदिति ]

महा०—समाश्वसितु समाश्वसितु भवती, शीघ्रं द्रक्ष्यति भवती पितरौ।

सतश्चिरं यावत् सान्त्वनामयं नीतिगर्भं दर्शित-पितृस्नेह-वर्षं-श्चाऽऽलपत् कुमार्या सह महाराष्ट्राध्यक्षः, तावत् प्रतीहार्य्या प्रविश्योक्तम्—भगवन् ! दिल्लीश्वरकुमारः समायाति—इति। स तु श्रुत्वैवोत्थाय बहिर्निर्गत्य तं प्रणमन्तमालिङ्ग्य, एकाकिनमन्तः प्रावेशयत्।

तत्र स भगिनीमवलोक्य कथं चमत्कार, कथं वा ताभ्यां परस्परं प्रेमभारा विभराम्बभूविरे, काभिर्वा कथाभिः कतिचन क्षणा अतिवा-

---

द्रक्ष्यति = अवलोकयिष्यति। माता च पिता च पितरौ। "पिता मात्रा" इत्यनेनैकशेषः।

सान्त्वनामयम् = सामप्रचुरम्।

प्रतीहार्य्या = दौवारिक्या। निर्गत्य = निःसृत्य। एकाकिनम्, स्वयमप्यप्रविश्येति चातुर्यस्य परा काष्ठा।

चमत्कार = चमत्कृतोऽभूत्। प्रेमभाराः = गाढस्नेहाः। विभरा-

---

रोशन आरा—[ आँसू बहाती हुई ] हाय बाबू जी ! हाय प्यारी माँ ! [ यह कहती हुई पुनः रोने लग गई ]।

महाराज—आप धैर्य-धारण करें, शीघ्र ही अपने माता पिता को आप देखेंगी।

तदनन्तर चिरकाल तक महाराष्ट्रराज राजकुमारी के साथ सान्त्वनापूर्ण, नीति गर्भित तथा माता-पिता के स्नेह प्रवाह को बहाने वाली वार्ता करते रहे। इसी बीच वहाँ आकर प्रतिहारी ने कहा—भगवन् ! दिल्ली सम्राट के सुपुत्र आ रहे हैं। यह सुनते ही शिवाजी ने उठकर बाहर निकल कर, प्रणाम करते हुए राजकुमार का आलिङ्गन कर उन्हें अकेले ही अन्दर भेज दिया।

अन्दर जाने पर वहाँ अपनी बहन रोशनआरा को देख राजकुमार

ह्याञ्चक्रिरे—इति नायं लेखनीविषयः।

क्रियत्क्षणानन्तरं स्वस्वागमन-गाथामुदीर्य तौ द्वावपि महाराष्ट्रराज-प्रशंसा-परवशौ बभूवतुः। उभाभ्यां निरचायि च यद्-गत्वैव दिल्लीनगरीं दृढं तातचरणोऽभ्यर्थनीयो महाराष्ट्रराजेन सह सन्धातुम्। कुमारेणोक्तम्—"भगिनि! तातः शत्रु-सम्बन्धिनो निगृह्य पशुमारं मारयति। महाराष्ट्रमेघवाहनश्चास्मादृशान् प्राप्यापि प्रेम-पूर-प्रवाहैरेव परिपोषयति—इति स्पष्टं कथयिष्यामि तातमेतेन युद्धं शमयितुम्"। तत उक्तं कुमार्य्या यद्—भद्र! श्रूयते

---

न्वभूविरे = ददृशिरे। अतिवाहयाञ्चक्रिरे = व्यतियापयाञ्चक्रिरे। लेखन्याविषयो न = वक्तुमनर्हं इति तत्त्वम् केवलानुभवैकमात्रवेदितव्य इति यावत्।

स्वस्वागमनस्य गाथाम् = कथाम्। उदीर्य = निगद्य। निरचायि = निश्चयः कृतः। सन्धातुम् = मैत्रीं विधातुम्। शत्रुसम्बन्धिनः = रिपुसम्पर्किणः। पशुमारं मारयति = यथा पशून् हन्ति तथेत्यर्थः। महाराष्ट्रमेघवाहनः = महाराष्ट्रेन्द्रः। "तुराषाण्मेघवाहनः" इत्यमरः। प्रेमपूरप्रवाहैः = अनुरागधाराभिः। एतेन = शिवराजेन, सह। शमयितुं

---

कितना चमत्कृत हुआ, उन दोनों का पारस्परिक गाढ़ प्रेम कितना प्रस्फुटित हो उठा और किस-किस प्रकार की बातों से उन दोनों के कुछ क्षण बीते—इसका उल्लेख नहीं किया जा सकता।

थोड़ी देर के बाद अपने-अपने यहाँ आ जाने की गाथा परस्पर सुना कर वे दोनों महाराष्ट्रराज की प्रशंसा करने में लीन हो गए। उन दोनों ने यह निश्चय कर लिया कि दिल्ली जाते ही वे दोनों अपने पिता से महाराष्ट्रराज के साथ सन्धि कर लेने के लिए दृढ़तापूर्वक अभ्यर्थना करेंगे। बाद में राजकुमार ने पुनः कहा—"प्यारी बहन! पिता जी तो शत्रु-पक्ष के व्यक्तियों को पकड़ कर पशुओं की तरह मार डालते हैं। परन्तु हम लोगों को प्राप्त करने के बावजूद भी महाराष्ट्रराज हम लोगों को अपने प्रेमप्रवाह से ही समृद्ध कर रहे हैं—इसलिए पिता जी से इनके साथ युद्ध न करने के लिए स्पष्ट शब्दों में निवेदन करूँगा।" इस पर

महत्या सेनया जयपुरेश्वरो महाराष्ट्राञ्छलभनाशं प्रणाशयितुं प्रेषितोऽस्ति।

माया०—आः! अधुनैव गत्वा निवारयामि जयपुरेश्वरम्।

रस०—भद्र! श्रूयते युद्धमधुनाऽपि नाऽऽरब्धवान्। सन्धिश्च प्रस्तूयते।

ततः पित्रोर्दुःखविषयेऽपि सास्रं कथितवती कुमारी। कुमारोऽपि सवाष्पमाकर्ण्य, बहिरागत्य महाराजं प्रणम्य, सगद्‌गदमुवाच—

महाराज! श्रीमतः स्नेहस्य चिराय ऋणी संवृत्तोऽस्मि, कुशलिनीं

---

प्रणाशयितुम्=शलभमिव नाशयितुम्। शलभानिवानायासेन नाशयितुम्। "उपमाने कर्मणि च" इति णमुल्।

प्रस्तूयते=प्रस्तावविषयता नीयते।

सगद्‌गदम्=अविस्पष्टस्वरम्।

---

राजकुमारी ने कहा—'भइया! मैंने सुना है कि बहुत बड़ी सेना के साथ जयपुर के महाराज को महाराष्ट्रियों को कीड़े की तरह मसल देने के लिए पिता जी ने यहाँ भेज दिया है।'

मुअज्जम—अच्छा, मैं अभी-अभी जाकर जयपुराधीश को रोक दे रहा हूँ।

रोशनआरा—भइया! सुना है कि अब तक युद्ध का प्रारम्भ नहीं हुआ है और सन्धि की बातचीत चल रही है।

तत्पश्चात् अपने पिता के दुःख के बारे में भी आँसू बहाती हुई राजकुमारी ने अपने भाई से कहा। आँसू बहाते हुए राजकुमार ने भी पिता की दुरवस्था को सुन कर, बाहर निकल कर महाराष्ट्रराज को प्रणाम कर गद्‌गदस्वर से कहा—

महाराज! आपके स्नेह प्रदर्शन के लिए मैं सब दिन के लिए आपका ऋणी हो चुका हूँ। साथ ही अपनी बहन को भी सकुशल देख कर

भगिनीमालोक्य चोपकारभाराक्रान्तः शिरोऽप्युन्नमयितुं न शक्नोमि। न जाने कैरुपहारैरानृण्यं प्राप्स्यामि ?

महा०—आयुष्मन्! कथं न कथयेः महता कुमारोऽसि। किन्तु साम्प्रतं जयपुरपुरन्दरो योद्धुमायातोऽस्ति। विहितसन्धिप्रस्तावे च मयि कथितवान्—यत् 'यदि कुमारी कुमारश्च सुखेन दिल्लीश्वरान्तिकं व्रजेताम्; तदवश्यं सन्धास्यति महाराजाधिराजः' इति। स च शिविरस्थः कुमारं प्रतीक्षते।

माया०—एष प्रतिष्ठे यदनुमन्यसे। अवश्यं सन्धानीयं तातेन। अन्यथा नाहं तस्य, न स मम।

---

उपकार भारेण = उपकारनिभरेण, आक्रान्तः = निम्नीकृतः। उन्नमयितुम् = उत्थापयितुम्। आनृण्यम् = ऋणराहित्यम्।

प्रतिष्ठे = प्रस्थानं करोमि। सन्धानीयम् = सन्धातव्यम्।

---

आपके उपकार के भार से मैं इतना दब चुका हूँ कि मैं अपना मस्तक भी आपके समक्ष उठाने में समर्थ नहीं हो पा रहा हूँ। मैं नहीं समझ पाता कि आपके ऋण से मैं किस प्रकार मुक्त हो सकूँगा।

महाराज—आयुष्मन्! आप ऐसी विनम्र बात क्यों नहीं कहेंगे, क्योंकि आप एक महान् व्यक्ति के सुपुत्र हैं। किन्तु इस समय जयपुर के महाराज मुझ से युद्ध करने यहाँ आ चुके हैं। जब मैंने उनके समक्ष सन्धि का प्रस्ताव रक्खा तो उन्होंने मुझ से यही कहा कि यदि राजकुमारी तथा राजकुमार सुख पूर्वक दिल्ली सम्राट् के पास पहुँच जाँय तो दिल्ली सम्राट् आपके साथ अवश्य ही सन्धि कर लें। सम्प्रति अपने शिविर में जयपुर नरेश आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मुअज्जम—यदि आपकी अनुमति हो तो मैं अभी वहाँ के लिए प्रस्थान कर दूँ। पिता जी को तो आपके साथ सन्धि करनी ही चाहिए। अन्यथा न मैं उनका पुत्र हूँ और न वे मेरे पिता हैं।

ततो महाराष्ट्रपतिस्तं प्रतिपूज्य, सादरं स्वकीयैः सह विसृज्य, रसनारीसमीपे पुनरगच्छत्। रसनारी तु अनुभविष्यमाणेन शिव-विरहेण ग्लाना, मुहुर्मुहुस्तातसेनाप्रेषणश्रवणेन कुपिता, माता-पितृ-स्नेह-स्मरणेन च विकला, प्रस्थातुं नोमिति, न वा नेति, वक्तुं पारितवती।

महाराष्ट्रेश्वरश्च तां चलप्रकृतिमगम्भीरस्वभावां चावगत्य, "भद्रे! अलं विषादैः! दिल्लीं गत्वा पित्रोर्दुःखं शमय, मां स्नेहेन सनाथयसीत्यपि कयाचन मुद्रया प्रकटय। तेनानुमन्यमाना च मामप्यनुगृहाण। अन्यथा तु युद्धे संवृत्ते स्वपितरं जिघांसति मयि;

अनुभविष्यमाणेन = किंयत्कालानन्तरमेव भविष्यता। ग्लाना = क्षीणहृया। विकला = खिन्ना। पारितवती = अशक्नुत्।

चलप्रकृतिम् = चञ्चलस्वभावाम्। शमय = शान्तिं नय। सनाथयसि = कृतार्थयसि। मुद्रया = भङ्ग्या। प्रकटय = विज्ञापय। अनुमन्यमाना = अनुमोद्यमाना। अनुगृहाण = अनुकम्पय। शिववीरस्य

तदनन्तर महाराष्ट्रराज राजकुमार का सम्मान कर अपने सेवकों के साथ उन्हें आदर पूर्वक जयपुराधीश के शिविर के लिए भेज कर स्वयम् पुनः रोशनआरा के पास पहुँच गए। किन्तु शिवजी के भावी विरह की चिन्ता से खिन्न, पिता जी के द्वारा महाराष्ट्रराज से युद्ध करने के लिए सेना भेजने की खबर बारम्बार सुन कर अत्यन्त कुपित और माता-पिता के स्नेह के स्मरण से विकल रोशनआरा तो दिल्ली जाने के विषय में अपनी सम्मति या विमति का प्रकाशन नहीं कर सकी।

महाराष्ट्रराज उसे चञ्चल प्रकृति तथा गम्भीरता रहित स्वभाव वाली समझ कर निम्न-लिखित शब्दों में उसे समझाने लगे:—

भद्रे! विषाद करना निरर्थक है। अभी दिल्ली जाकर अपने माता-पिता के दुःख को शान्त करो और उनके समक्ष किसी मुद्रा में तुम मेरे प्रति अपने प्रेम को भी प्रकट करना। यदि तुम्हारे पिताजी की अनुमति हो जाय तो मुझे भी पीछे अनुगृहीत करना। यदि सन्धि नहीं हुई तब तो

श्व एव वा, परश्व एव वा तव स्नेहः कार्श्यमासादयेत्। उत्तिष्ठ, वीरतनयाऽसि, राजकुमार्यसि, न शोभते त्वयि एतादृशश्चिन्ता-वितानः"—इति प्राबोधयत्।

सा च चलप्रकृतितया यथा बोधिता तथैव वर्द्धितोत्साहा सन्धिं विहितमिव, पित्रनुमतिमासादितामिव, पाणिग्रहण-विधिं प्रबध्यमानमिव, आत्मानं च महाराष्ट्रराजेन स्निह्यमानमिव मन्यमाना सपद्युत्थाय सप्रेम समालिङ्ग्य, तन्निर्दिष्टशिबिका-मारुह्य, बहुभिः सखीभिः परिवृता, अनेकैः सादिभिः पादातिकैश्चा-नुगम्यमाना श्रीजयसिंहाध्युषित-शिबिराभिमुखं प्रतस्थे।

दिल्लीगमने कारणमिदमेवेति कथनभङ्ग्याऽन्यथा विवेचयन्तु पण्डिताः। जिघांसति = हन्तुमिच्छति, शत्रन्तम्। कार्श्यम् = दौर्बल्यम्।

पित्रनुमतिम् = जनकानुज्ञाम्। आसादितामिव = लब्धामिव। पाणिग्रहणविधिम् = विवाहविधानम्, प्रबध्यमानम् = समारभ्यमाणम्। बहुभिः = बह्वीभिः। "वोतो गुणवचनात्" इत्यनेन ङीप्प्रत्ययस्य वैकल्पिकत्वम्। पादातिकैः = पदगैः सैनिकैः।

युद्ध छिड़ जाने पर तुम्हारे पिता की हत्या की इच्छा रखने वाले मेरे प्रति कल या परसों ही तुम्हारा स्नेह, शिथिल हो जाएगा। उठो, तुम एक वीर की सुपुत्री हो, राजकुमारी हो, इस प्रकार का चिन्ता-प्रवाह तुम्हें शोभा नहीं देता।

प्रकृति चञ्चल होने के कारण राजकुमारी शिवाजी के समझाने के अनुसार ही उत्साहित हो कर अपने पिता के साथ शिवाजी की सन्धि को सम्पन्न-सी, शिवाजी से प्रेम करने के लिए अपने पिता की अनुमति को सम्प्राप्त-सी, शिवाजी के साथ अपनी शादी को सम्बन्ध-सी और अपने को महाराष्ट्रराज का स्नेह-भाजन-सी मानती हुई शीघ्र ही उठकर, प्रेमपूर्वक शिवाजी का आलिङ्गन कर, शिवाजी द्वारा निर्दिष्ट पालकी में बैठ कर, बहुत सहेलियों से परिवृत हो कर, अनेक घुड़सवारों तथा पैदल अनुचरों के साथ श्रीमान् जयसिंह के शिविर की ओर चल पड़ी।

अथ कालान्तरे महाराष्ट्रराजोऽपि अम्बराधीश्वरस्य निकटे गतः। स चैनमवलोक्य, आलिङ्ग्य, अतिप्रेम्णाऽवादीत्—

वीर! कुमारी दिल्लीं प्रेषितवानस्मि। अनेनोपकारेणात्यन्तं मोदिष्यते दिल्लीवल्लभः। गृह्यतामिदं सन्धिपत्रम्, यानि दुर्गाणि भवता दिल्लीश्वरेण सह युद्ध्वा बलाद् गृहीतानि, तानि निवर्तनीयानि, यथाल्लेखञ्च किञ्चन प्रतिवर्षं देयम्।

महाराष्ट्रमुकुटस्तु, ओमित्युक्त्वा, सन्धिपत्रं गृहीत्वा, किञ्चित् मलिनमुख इव संवृत्तः।

जयपुरेश्वरस्तु—वीर! वर्द्धस्व, अलं शोकेन! समय एव ईदृश एव, साम्प्रतमुत्तिष्ठ, महाराजसाहाय्यं युद्धेषु विधेहि। विजयपुरेश्वर एव दिल्लीश्वरस्याऽऽज्ञां न पालयति—इत्येतेन सह बहूनि समराणि

---

कुमारी = रत्नारीमायाजिष्णौ। एकशेषः कुमारी च कुमारश्चेति।

मलिनमुखः = धूमिलाननः।

समराणि = युद्धानि। "अस्त्रियां समरानीकरणाः" इत्यमरः।

---

तत्पश्चात् कालान्तर में महाराष्ट्रराज भी जयपुराधीश्वर के शिविर में पहुँचे। शिवाजी को देखते ही जयपुराधीश आलिङ्गन कर अत्यन्त प्रेम से कहा—वीर! राजकुमारी तथा राजकुमार को मैंने दिल्ली भेज दिया है। अब आप यह सन्धि-पत्र लेलें और आपने दिल्ली सम्राट् के साथ युद्ध कर जिन दुर्गों को बल से आत्मसात् कर लिया है उन्हें लौटा दें और प्रतिवर्ष सन्धिपत्र के उल्लेख के अनुसार कर के रूप में दिल्लीश्वर को कुछ दिया करें।

स्वीकारात्मक शब्दोच्चारणपूर्वक सन्धि-पत्र के परिग्रहण से महाराष्ट्र-देशमुकुट शिवाजी का मुख कुछ मलिन हो गया।

तदनन्तर जयपुरेश्वर ने शिवाजी से कहा—वीर! आपकी समृद्धि हो। शोक करना व्यर्थ है! यह समय ऐसा ही है, सम्प्रति आप उठें और युद्ध में दिल्ली सम्राट् की सहायता करें। विजयपुर के महाराज दिल्लीश्वर की आज्ञा का पालन नहीं करते—इसलिये उनके साथ कई बार सम्राट् के युद्ध

भूतानि भवन्ति च। तदत्र कौशलं दर्शयित्वा दिल्लीश्वरस्य दक्षिणो बाहुः सवर्तस्व—इत्युवाच।

महाराष्ट्रराजस्तु, अनयाऽपि मुद्रया चिरन्तनसपत्नस्य विजयपुरेश्वरस्य दमनाऽऽदेशश्रवणेन स्फुरितबाहुः सेना आयोजयितुं तत्क्षणादादिदेश।

आसीदासन्नमेव विजयपुराधीशस्य गिरिशिखरस्थमेकं रुद्रमण्डलाभिधं महद् दुर्गम्। तदेव हस्तगतं विधातु कौशलमाचचार शिवराजः। एकान्ते गौरसिंहमाकार्य रात्रौ रुद्रमण्डलस्य पूर्वतः सेना आयोज्य, प्रस्थातुं परभटेषु सम्मुखमायातेषु च,

---

भूतानि = जातानि। कौशलम् = नैपुण्यम्। दक्षिणो बाहुः = वामेतरो भुजः। परमस्नेहभाजनमिति यावत्।

अनयाऽपि मुद्रया = अनेनापि प्रकारेण। चिरन्तन-सपत्नस्य = पुरातनशत्रोः। दमनादेशश्रवणेन = निग्रहाज्ञाश्रुत्या। स्फुरितबाहुः = चपलितभुजः। आयोजयितुम् = सन्नाहयितुम्।

आसन्नम् = समीपवर्त्ति। गिरिशिखरस्थम् = पर्वतकोटिस्थम्। हस्तगतम् = स्वायत्तम्। कौशलम् = नैपुण्यम्। आयोज्य = संघटय्य।

---

हो चुके हैं और हो भी रहे हैं। अतः विजयपुराधीश के साथ होनेवाले युद्ध में अपनी युद्ध-कुशलता का प्रदर्शन कर आप दिल्ली सम्राट् का दाँया हाथ बन जायें।

इस बहाने भी अपने चिरन्तन शत्रु विजयपुरेश्वर के दमन का आदेश सुनकर स्फुरित बाहुवाले महाराष्ट्रराज ने उसी क्षण सेना के आयोजन के लिये आदेश दे दिया।

पास में ही विजयपुरेश्वर का एक पर्वतशिखरवर्त्ती (=पर्वतीय प्रदेश में स्थित) रुद्र मण्डल नाम का दुर्ग था। प्रथमतः शिवाजी ने उसी को जीत लेने की चातुरी की। एकान्त में गौरसिंह को बुलाकर रात में ही रुद्रमण्डल की पूरब दिशा में अपनी सेना का आयोजन कर प्रस्थान करने

पृष्ठतः शनैः शनैरपसरणच्छलेन तान् पुरतो नेतुमादिशत्, स्वयञ्च महान्धतमसे, अन्यजीव-माल्यश्रीक-स्वन्यजीव-रघुवीरादि-सहितः सहस्रं वीरान् सह नीत्वा रुद्रमण्डलस्य पृष्ठतो निभृतं प्रचलितः।

महानेष उच्चो गिरिः, अन्धतमस व्याप्तम्, अविदितचरः पन्थाः, तथाऽपि क्वचिदुत्प्लुत्य, क्वचिच्छाखा आलम्ब्य, क्वचिदुपविश्य, क्वचिन्निर्झरजलान्तः प्रविश्य क्वचिल्लता-जालान्यपसार्य, क्वचिद्विद्धान् कण्टकानपनीय कथं कथमपि दुर्गस्य नेदीयस्याम-धित्यकायामायातः। तावदपश्यद्-यद् दुर्गप्राचीर एका महीयसी काच-मञ्जूषा, अपराऽपराऽपि च स्थापितेति। ततो 'वयमाशङ्किताः'

परभटेषु = शत्रुसैनिकेषु। अपसरणच्छलेन = पलायनव्याजेन। नेतुम् = प्रापयितुम्। महान्धतमसे = गाढेऽन्धकारे। निभृतम् = गूढम्।

उच्चः = उन्नतः। अविदितचरः = पूर्वमज्ञातः। लताजालानि = प्रतानसमूहान्। विद्धान् = चरणादिषु प्रविष्टान्। अपनीय = अपसार्य। नेदीयस्याम् = अन्तिकस्थायाम्। काचमञ्जूषा = रत्नवर्तिका। आशा·

के लिये और शत्रुपक्ष के योद्धाओं के सामने आ जाने पर पीछे से धीरे-धीरे भागने के बहाने उन्हें (= शत्रुपक्षीय योद्धाओं को) आगे कर लेने, अर्थात् पीछे से घेर लेने के लिये आदेश दे दिया और घने अन्धकार में अन्यजीव, माल्यश्रीक, स्वन्यजीव तथा रघुवीरसिंह आदि के साथ एक हजार वीरों को साथ लेकर स्वयम् भी शिवाजी रुद्रमण्डल के पीछे से छिपकर चल पड़े।

यद्यपि वह पर्वत बहुत ही ऊँचा था, घना अन्धकार छाया हुआ था, रास्ता भी पूर्व परिचित नहीं था, तथापि कहीं कूद कर, कहीं वृक्ष की शाखा के सहारे, कहीं बैठकर, कहीं झरने के प्रवाह के माध्यम से, कहीं लताओं के जाल को तितर-बितर कर और कहीं घने काँटों को हटा कर किसी किसी प्रकार उस दुर्ग के समीप की अधित्यका (पहाड़ के ऊपर की समतल भूमि) पर शिवाजी पहुँचे। तब तक उन्होंने देखा कि दुर्ग के घेरे के ऊपर

इति निश्चित्य सर्वे तरुच्छायासु विलीनाः। मुहूर्तानन्तरं पुनस्तूष्णीमुपगच्छन्तो ददृशुर्यत् पञ्चषा यवन-वीराः प्राचीरे पर्यटन्तः सतर्कमथो वीक्षन्ते-इति। पुनस्तेषु तरूणामधो विलीनेषु, घनतमस-वशादनीक्षमाणा मर्मरकारणमलभमाना दौर्गिकाः पुनर्निवृत्ताः। ततः किञ्चिज्जाते पादायानशब्दे, अकस्माद् दुर्ग-प्राचीरस्योपरि, एकः, द्वौ, दश, शत सहस्रञ्च सशस्त्राः पुरुषा दृष्टाः। तेऽपि नैदिष्ठ्यान् दृष्टवन्तः—इति वृक्षतलेषु लीयमानानपि प्रत्यर्थिनः शक्ति-शरासनैस्ताडयितुमारेभिरे।

ततः पुरः समागत्य, प्रत्यक्षं योद्धुमारब्धवता शिववीरेण

---

ङ्किताः = आशङ्काविषयीकृता, दौर्गिकैरिति शेषः। निलीनाः = लुकिताः। प्राचीरे = प्राकारे। सतर्कम् = सावधानम्। मर्मरकारणम् = पत्रध्वनि-हेतुम्। दौर्गिकाः = दुर्गरक्षाधिकृताः। सशस्त्राः = सायुधाः। नैदिष्ठ्यान् = अतिशयान्तिकत्वात्। प्रत्यर्थिनः = शत्रून्।

---

एक दीपक सहित शीशे की पेटी और उसके बाद अन्यान्य भी पेटियाँ पड़ी थीं। तदनन्तर "हम लोगों के यहाँ आजाने की आशङ्का दुर्गरक्षकों को हो चुकी है" यह निश्चय कर सब वृक्षों की छाया में छिप गए। थोड़ी देरके बाद जब ये पुनः चुपचाप आगे बढ़ने लगे तो उन सबोंने देखा कि पाँच छः यवन वीर घेरे के ऊपर घूमते हुए सावधानीपूर्वक देख रहे थे। इसलिये जब पुनः ये सब वृक्ष छाया में छिप गये तो घने अन्धकार में इन सबको नहीं देखते हुये मर्मर शब्द के कारण के परिज्ञान के बिना ही सब दुर्गरक्षक पुनः लौट गये। तत्पश्चात् पुनः पैरों के आगमन के शब्द होने पर अकस्मात् दुर्ग के घेरे के ऊपर एक, दो, तीन, दस, सौ, हजार सशस्त्र योद्धा दीख पड़े। उन दुर्ग रक्षकों ने भी नजदीक होने के कारण इन सब को देख लिया। अतः वृक्ष के नीचे छिपे होने पर भी उन दुर्गरक्षकों ने इन शत्रुओं के ऊपर शक्तियों और बाणों से प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया।

तदनन्तर आगे बढ़कर आमने-सामने युद्ध छेड़ देने वाले शिवाजी ने

निर्दिष्टा, 'दृष्टा वयमिति किं व्यर्थाघातसहनैरात्माच्छादनैश्च'—इति स्वयं बोबुध्यमाना सद्वेट सर्वे शिवसहचरा —"हर हर महादेव" इत्युदार्य, प्रत्यक्षीभूय च शाखि-शाखान्तरोदर-सुप्त-पत्रि-पटलान् न्युन्निद्रयन्त, चन्द्र-चन्द्रिका-साक्षिकं घोरं युद्धं विधातुमुपक्रान्तवन्त । यवनशरमल्लाहता बहवो महाराष्ट्रवीरा, चन्द्र-मरीचि-चाकचक्य-चमत्कृतामधित्यकां कोष्ण रुधिर-पातै स्नपयन्त, शिवविजय-कुङ्कुमेनेव चर्चयन्त, ससूर्यभेदं स्वर्गं प्रविष्टनाना शिर प्रणमन्त इव च पेतु । महाराष्ट्र शरासन-मुक्त शिला

व्यर्थाघातसहनै = निष्प्रयोजनताडनमरणै । आत्माच्छादनै = स्वगोपनै । अनुबुध्यमाना = अवितथ जानन्त । प्रत्यक्षीभूय = साक्षाद् देव पुरत आगत्य । शाखिशाखान्तरोदरसुप्तपक्षिपटलानि = द्रुमावयवमध्यप्रसुप्तानिद्रविहगसमूहान् । उन्निद्रयन्त = जागरयन्त । चन्द्रचन्द्रिका-साक्षिकम् = हिमदीधिति किरण-प्रत्यक्षदर्शकम् । चन्द्रस्य मरीचीनाम् = किरणानां चाकचक्येन चमत्कृताम् । कोष्णरुधिरपातै = कदुष्णरक्तपतनै । शिवविजयस्य कुङ्कुमेन = केशरेण । चर्चयन्त = लिम्पन्त । ससूर्यभेदम् = बिम्बदीधितिमण्डलभेदनपुरस्सरम् । महाराष्ट्राणाम्, शरास-

अपने अनुयायियों से कहा—"अब हम लोगों को इन सबों ने देख लिया ही तो अब इनके प्रहार को सहना और अपने को छिपाये रखना व्यर्थ है।' शिवाजी की उपर्युक्त वाणी सुन कर स्वयम् ही युद्धनिपुण के मर्मज्ञ उनके सहचर भी उत्साहित हुए "हर हर महादेव" शब्द का उच्चारण कर, प्रत्यक्ष होकर वृक्ष की शाखाओं पर सोये पक्षि-समूह को जगाते हुए चन्द्र की चन्द्रिका के साक्षित्व में घोर युद्ध करने लग गये। यवनों के बाणों तथा शस्त्रों से आहत महाराष्ट्र देश के बहुत से वीर चन्द्रमा की चन्द्रिका की चमक से चमत्कृत पर्वत की अधित्यका को अपने उष्ण रक्त के प्रवाह से स्नान कराते हुए, शिवाजी की विजय-क्रीड़ा के कुङ्कुम से अपने शरीर को लेपते हुए, स्वर्गारोहण के लिए सूर्यमण्डल का भी भेदन करते हुये और

मुखैराहता यवनवीरा अपि च बहुशः प्राचीरमुभयतः पेतुः।

अथ यावन्महाराष्ट्राधीशश्चिन्तयति यत्—"किमेतेनेदृशेन क्रीडनकेनेव युद्धेन? मध्ये मध्ये विहता वीरा उभयतः पतन्ति। अस्माकं चञ्चुप्रवेशश्च दुर्गेऽस्मिन्न भवति। होराद्वयानन्तरं मार्तण्ड-मण्डलमुदेष्यति। ततस्तु कथमपि न पारयिष्यामोऽधिकबलानेतान् विजेतुम्, तत् सपदि केनापि कौशलेन प्राचीरमारुह्य दुर्गस्यान्तः प्रवेष्टव्यम्"—इति—

तावद् दृष्टवान् यदेको नववयस्को महाराष्ट्र-वीरो घोरं युद्धमगणयन्, उपर्य्यधः कतिपयान् शिलाखण्डान् चित्वा भित्तिकार्पित-

नेभ्यः = धनुर्भ्यः, मुक्तैः = निःसृतैः। शिलीमुखैः = बाणैः। प्राचीरमुभयतः, तसिलन्तयोगे द्वितीया, "ततोऽन्यत्रापि दृश्यते" इति।

क्रीडनकेनेव = खेलनेनेव। चञ्चुप्रवेशः = लघुरपि प्रवेशः। होराद्वयानन्तरम् = "घण्टा"—द्वयस्य पश्चात्।

नववयस्कः = नूतनावस्थाकः, तरुणः। चित्वा = सकलय्य। भित्तिका-

शिवाजी को प्रणाम करते हुए से धराशायी हो गये। मराठों के धनुष से मुक्त बाणों के आघात से बहुत से यवन-वीर भी घेरे की दोनों ओर गिर गये।

तत्पश्चात् "इस तरह के क्रीड़ायुद्ध से कोई लाभ नहीं, क्योंकि इसके कारण ही बीच बीच में बहुत से वीर भी मारे जा रहे हैं, फिर भी हम लोगों का प्रवेश भी उस दुर्ग में नहीं हो पा रहा है। दो घण्टे के बाद सूर्योदय भी होने ही वाला है और दिन में तो इन प्रबलतर शत्रुओं पर विजय पाना असम्भव हो जाएगा। अतः शीघ्र ही किसी चातुरी से प्राचीर पर चढ़कर दुर्ग में घुस जाना चाहिये"—इस तरह की चिन्ता में महाराष्ट्रराज लगे ही थे कि तब तक उन्होंने देखा कि एक नववयस्क महाराष्ट्रदेशीय वीर ने घोर युद्ध की गणना (=परवाह) किये बिना ही कुछ पत्थल

भल्लसमाश्रयो लाघवेनोत्प्लुत्य, प्राचीरमारुह्य, "विजयते महाराष्ट्र-राजः"—इत्युच्चैरवदत्।

तं च तथाऽऽरूढमालोक्य यवनाः सदन्तघर्षं सन्दष्टदशनच्छदं निस्त्रिंशान् कोशादाकर्षन्तः शक्तिमुत्तोलयन्तः शरासनानि टङ्कुर्वन्तश्च परितः समापतिताः। तांश्च भूमिष्ठा अपि महाराष्ट्रवीराः शरघातै-रविध्यन्, प्राचीरारूढमात्मसहचरं च समरक्षन्। तदालोक्य गौरव-गरिष्ठोऽपि लाघवेनोत्पत्य, सहचरैरप्यवितर्कितोत्पतनो वीरशिवः स्वयमपि प्राचीरमारुह्य परितः समापतितान्प्रत्यर्थिनः

पितः = कुड्यसंस्थापितः, भल्लः = कुन्तः, समाश्रयः = आधारो यस्य सः।

सदन्तघर्षम् = सदशनघट्टनम्। सन्दष्टदशनच्छदम् = ओष्ठखण्डन-पुरस्सरम्। निस्त्रिंशान् = असीन्। टङ्कुर्वन्तः = टङ्कारशब्दभरितान् कुर्वन्तः। भूमिष्ठाः = भूतले तिष्ठन्तः। अविध्यन् = अताडयन्। आत्मसहचरम् = निजसहगामिनम्। गौरवेण गरिष्ठः = अतिशयगुरुः। लाघवेन = लघुशरीरतया। अवितर्कितोत्पतनः = असम्भावितोर्ध्वगमनः।

के टुकड़ों का उपर्युपरिक्रम से रख कर दीवाल पर आश्रित बरछे के सहारे बड़ी आसानी से उछल कर घेरा पर चढ़ कर "महाराष्ट्रराज की विजय हो"—इस प्रकार की उच्चध्वनि की।

उस नव युवक महाराष्ट्रीय वीर को प्राचीर पर आरूढ देख कर यवन प्रहरी दाँत किचकिचा कर, ओठ मसल कर अपने अपने खड्गकोश से खड्ग निकालते हुए, शक्तियों को सम्भालते हुए तथा धनुष की टङ्कार करते हुए सब तरफ से उस पर टूट पड़े। किन्तु जमीन पर खड़े होने पर भी अन्य महाराष्ट्रीय वीरों ने उन यवन सैनिकों को अपने शराघात से बेध दिया और प्राचीर पर आरूढ अपने साथी को बचा लिया। उस घटना को देख कर गौरव से गरिष्ठ होने पर भी वीर शिवाजी शरीर लाघव के कारण इस प्रकार उछल पड़े कि जिस प्रकार के उनके उछलने की सम्भावना उनके सहचरों के मन में भी न थी, और प्राचीर पर चढ़ कर उन्होंने चारो तरफ

कदर्थीकृत्योभयतः समपातयत् ।

ततः सक्ष्वेडम्—"आरुह्यतामारुह्यताम्"—इत्युक्त्वा धाविता महाराष्ट्राध्यक्षोत्साहिता बहवो महाराष्ट्रवीराः सोत्फालं प्राचीरमारोहन्, हस्तावलम्बेन चान्यान् बहून् क्षणेनोदतूतुलन्। क्षणं तत्र घोरं युद्धमभूत्। तावदकस्माद् दृष्टम्—यत् कश्चन "हर हर महादेव"—इति तारस्वरेणोच्चारयन् खड्गं चालयन् सोत्फालं दुर्गान्तः-पतितोऽस्ति। सोऽयं रघुवीरसिंहः, य सर्वेभ्यः प्रथममेव प्राचीरमारूढः, प्रथममेव च दुर्गान्तः प्रविश्य साहसमप्यकार्षीत्। तेन सहैव वीरराजशिवोऽपि शार्दूल इव जघन्य-वन्य-मण्डले समापप्तत्, तन्निरीक्ष्य शतशो महाराष्ट्रवीरास्तथैव सकूर्दनं दुर्गान्तः

---

कदर्थीकृत्य = विनाश्य। समपातयत् = समपोथयत्।

सक्ष्वेडम् = सगर्जनम्। महाराष्ट्राध्यक्षेण = शिववीरेण, उत्साहिताः=वर्धितसाहसाः। सोत्फालम् = सकूर्दनम्। हस्तावलम्बेन=कराश्रयेण। उदतूतुलन्=उन्नीतवन्तः। शार्दूलः=सिंहः,व्याघ्रो वा। जघन्यानाम्= क्षुद्राणाम्, वन्यानाम् = आरण्यकानां शृगालादीनाम्, मण्डले = समूहे।

---

से टूट पड़ने वाले शत्रुओं को मार कर प्राचीर के दोनों किनारे गिरा दिया।

तत्पश्चात्—चढ़िये चढ़िये—यह गर्जन पूर्वक कह कर आगे दौड़ने वाले बहुत से महाराष्ट्रीय वीर महाराष्ट्रराज द्वारा उत्साहित हो कर उछल कर प्राचीर पर चढ़ गये और अपने हाथों के सहारे नीचे खड़े बहुत से अपने सहचर वीरों को भी ऊपर तौल लिया। थोड़ी देर तक घमासान लड़ाई हुई। तदनन्तर एकाएक उन सबों ने देखा कि उच्च स्वर से "हर हर महादेव!" की ध्वनि करता हुआ एक वीर अपना खड्ग चमकाते हुए दुर्ग के अन्दर कूद पड़ा। सबसे पहले ही प्राचीर पर चढ़ने वाला और दुर्ग में प्रवेश करने का भी सर्वप्रथम साहस करने वाला वह वीर था रघुवीर सिंह। रघुवीर सिंह के साथ ही महान् वीर शिवाजी भी क्षुद्र जङ्गली जीव-जन्तुओं की मण्डली में सिंह के समान उस दुर्ग में कूद पड़े। उन्हें देख कर उनके पीछे सैकड़ों

प्रविष्टाः, तत्र च मुहूर्त्तं तुमुलं युद्धमभूत्।

दण्डद्वयेनैव शतशो यवना हताः, अपरे च जीवन्त एव निगृहीताः, शान्तमिव च युद्धम्। ततो महाराष्ट्र-वीराः स्थूल-दीपान् सञ्ज्वाल्य दुर्ग-मध्यस्थ-प्रासादाभिमुखं चलिताः, दृष्टवन्तश्च यत् दुर्गाध्यक्षो गृहान्तः प्रविष्टः, द्वारञ्च लौह-शृङ्खल-कीलैर्दृढतरैः कपाटैरमुद्रयदिति। निरीक्ष्यैतत् क्षणं विचार्य महाराष्ट्रराजः सगर्जनमुवाच—"दुर्गाध्यक्ष! स्वामिभक्तिं दर्शितवानसि, यथाशक्ति दुर्गं रक्षितवानसि, व्यर्थोऽधुना लज्जया गृहप्रवेशः, तत् स्वयं

समापप्तत् = निपतितवान्। सक्रन्दनम् = सोत्कालम्। तुमुलम् = भयानकम्।

दण्डद्वयेन = घटिकाद्वयेन। निगृहीताः = वशीकृताः। स्थूलदीपान् = "मशाल" इति ख्यातान्। दुर्गमध्यस्थस्य = दुर्गान्तरालविद्यमानस्य, प्रासादस्य = हर्म्यस्य अभिमुखम् = सम्मुखम्। लौहशृङ्खलकीलैः = आयसनिगडकण्टकैः। दृढतरैः = कठोरतरैः। कपाटैः=अररैः। अमुद्रयत् =

महाराष्ट्रीय वीर उसी प्रकार कूद कर दुर्ग के भीतर घुस गए और वहाँ कुछ समय के लिए घनघोर युद्ध हुआ।

दो घण्टे में ही सैकड़ों यवन सैनिक मार दिए गए, बहुत से तो जीते ही पकड़ लिए गए और युद्ध भी समाप्त प्राय हो गया। तदनन्तर महाराष्ट्रीय वीर मशाल बार कर दुर्ग के मध्य में प्रतिष्ठित प्रासाद की ओर बढ़े और आगे बढ़ने पर उन सब ने देखा कि दुर्गाध्यक्ष घर में प्रविष्ट हो कर लौह-निर्मित सिकड़ी तथा अगड़ी से सम्पन्न होने के कारण अत्यन्त सुदृढ़ किवाड़ी से दरवाजे को भीतर से बन्द कर दिया। उस घटना को देख कर थोड़ी देर विचार विमर्श करने के बाद महाराष्ट्रराज ने गरजते हुए कहा—दुर्गाध्यक्ष! तुम अपनी स्वामि भक्ति का प्रदर्शन कर चुके हो एवम् अपनी शक्ति के अनुसार दुर्ग को भी बचाने का प्रयास तुमने किया ही। सम्प्रति लज्जावश घर घुसना निरर्थक है। अतः यदि तुम स्वयम् बाहर निकल आते

बहिर्निर्गच्छसि चेद् जीवन्तं त्यक्ष्यामः, इतरथा तु प्रासादेन सह त्वां क्षणेन धक्ष्यामः"—इति।

दुर्गाध्यक्षो रहोमत्तखानस्तु क्रियासमभिहारेण शृण्वन्नपि न बहिर्निरगात्। अथ महाराष्ट्रराजस्याऽऽज्ञामवाप्य, तदीया इन्धनैरावृत्य प्रासादममुं ज्वलयितुमारेभिरे। ततः समन्ततो विहायसं लिहन्तीषु देदीप्यमानासु शिखासु, 'अवीरयोग्यं मृत्युं प्राप्तोऽहम्' इत्याशङ्क्य खड्गहस्तो गवाक्षिकात उत्प्लुत्य, भूमौ पतितो रहोमत्तखान उवाच—

किमिति ममैकस्य प्राणार्थं महामूल्यं महार्घ-वस्तुजात-पूरितं

---

प्यथात्। सगर्जनम् = सक्ष्वेडम्। धक्ष्यामः = ज्वालयिष्यामः।

रहोमत्तखानः = "रहमत खाँ" इति लोके प्रसिद्धः। निरगात् = निष्क्रान्तः। इन्धनैः = काष्ठैः, आवृत्य = आच्छाद्य। ज्वलयितुम् = दग्धुम्। आरेभिरे = आरब्धवन्तः। विहायसम् = गगनम्। लिहन्तीषु = स्पृशन्तीषु। देदीप्यमानासु = अतितरां ज्वलन्तीषु। अवीरयोग्यम् = कातरानुरूपम्। गवाक्षिकातः = वातायनिकातः। उत्प्लुत्य = सद्कूर्द्य।

---

हो तब तो हम लोग तुम्हें जीते ही छोड़ देंगे, अन्यथा प्रासाद के साथ-साथ तुम्हें भी जला कर भस्मसात् कर देंगे।

किन्तु बारम्बार शिवाजी के वचन को सुनकर भी दुर्गाध्यक्ष रहमत खाँ बाहर नहीं निकला। उसके बाद महाराष्ट्रराज की आज्ञा पाकर उनके सहचर वीर उस प्रासाद की सभी दिशाओं में लकड़ी इकट्ठे कर उसे (प्रासाद को) जलाने लग गए। तत्पश्चात् सब तरफ से अग्नि की देदीप्यमान ज्वाला जब आकाश को चूमने लग गई तब 'मुझे तो कायर की तरह मरना पड़ रहा है' इस आशङ्का से रहमत खाँ हाथ में खड्ग लिए खिड़की के माध्यम से बाहर उछल कर जमीन पर गिर गया और कह उठा—

केवल मेरे प्राण के सहार के लिए, तुम लोग बहुमूल्य पदार्थों से परि-

महाप्रासादं दहथ ? एषोऽस्मि । यथेच्छं प्रहरत । स्वाम्यर्थेऽहं प्राणानुत्सृजामि—

इत्याकर्ण्य परितः परिपतितेषु महाराष्ट्रवीरेषु, महाराष्ट्रपतिरवादीत्—

"वीरोऽसौ, वीरोऽसौ, न हन्तव्यः, न हन्तव्यः । किन्तु जीवन्नेव ग्रहीतव्यः"—इति ।

ततः एकाकिन्यपि सुसज्ज-निस्त्रिंशानां महाराष्ट्र-वीराणां मण्डले, सखड्गचालनं दक्षान् वामांश्च मार्गांश्चरति तस्मिन् यवनवीरे, अकस्माद् विद्युच्चमत्कार इव सोत्फालमापत्य रघुवीरः सत्सरुं तस्य मुष्टिं जग्राह । यावच्चैषको यवन आच्छेत्तुं स्वहस्तम्, तावद्

दहथ = ज्वालयथ । यथेच्छम् = यथाभिलाषम् । प्रहरत = मारयत । उत्सृजामि=त्यजामि । "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" इति लट् ।

एकाकिनि=असहाये । सुसज्जनिस्त्रिंशानाम्=सन्नद्धासीनाम् । सखड्गचालनम्=सचन्द्रहासस्पन्दनं । 'विद्युच्चलाचञ्चला अपि' इत्यमरः । विद्युच्चमत्कार इव = चञ्चलाचमत्कृतिरिव । सत्सरुम् = सखड्गमुष्टिम् । एष एव, एषकः । "अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक् टेः" । आच्छेत्तुम्=आकर्ष्टुम् । यवने-

र्ग इस महान् प्रासाद को क्यों जला रहे हो ? ये लो मैं आ गया । अपनी इच्छा के अनुसार तुम लोग मुझे मार डालो । मैं अपने स्वामी के लिए अपने प्राण छोड़ रहा हूं ।

रहमत खाँ की बात सुन कर जब महाराष्ट्र के वीर सब तरफ से उस पर टूट पड़े तब महाराष्ट्रराज ने कहा—

"यह एक वीर है, वीर है, इसे मारो नहीं, मारो नहीं, किन्तु जीते ही इसे पकड़ लेना है ।"

तत्पश्चात् सुसज्जित खड्गों वाले महाराष्ट्रीय वीरों की मण्डली में अकेला होकर भी तलवार चमका कर दायीं बायीं ओर परिभ्रमण करने वाले उस यवन वीर के खड्गयुक्त मूंठ को रघुवीर सिंह ने बिजली की चमक की तरह कूद कर पकड़ लिया । उस पर रहमत खाँ अपने हाथ को खींच लेना

वीरा दृढं गृहीत्वा, तस्कराचन्द्रहासमाच्छिद्य, उष्णीषिकापटेन बाह्वोः स्कन्धे च समबध्नन्। महाराजाऽऽज्ञया च अनेकशत-निगृहीत-जनाधिष्ठिते कोण-गृहे तमपि निक्षिप्य, कवाटे समसुमुद्रन्।

ततः प्रासाद-दाहं शमयित्वा, कथं कथमप्यन्तः प्रविश्य, अट्टालिकामारुह्य, महाराष्ट्रराजो दृष्टवान्—यत् पूर्वतः सञ्जात एवारुणोदयः। तत्प्रभया किञ्चित् किञ्चिद् भासमाने भूभागे सुदूरमवलोकितवान्—यत् परिपन्थि पदातिनां षट् सप्त वा शतानि स्वाभिमुखमेव धावमानानि समायान्तीति। अतर्कयच्च यदवश्यमेते गौरसिंह-सेना-कोलाहलाऽऽकृष्टाः सुदूर पूर्वतो गता

उद्युङ्क्ते। उष्णीषिकापटेन = शिरोवेष्टनवाससा। अनेकशतनिगृहीत-जनाधिष्ठिते = अत्यधिककारकीकृतमानवविराजिते। निक्षिप्य = बला-त्प्रवेश्य। कवाटे = "कवाटमररं तुल्ये" इत्यमरः। समसुमुद्रन् = अप्यधुः।

अरुणोदयः = भास्करोद्भूतिपूर्वकालिकलौहित्याविर्भावः। भासमाने = द्योतमाने। परिपन्थिपदातिनाम् = शत्रुपदगानाम्। धावमानानि =

चाहता ही था कि अन्य महाराष्ट्रीय वीरों ने उसे कस कर पकड़ लिया और उसके हाथ से खड्ग छीन कर पगड़ी से उसके हाथ तथा कन्धे को बान्ध पुनः महाराज की आज्ञा से सैकड़ों कैदियों से भरे कोण-गृह में रहमत खाँ को भी ढकेल कर उन वीरों ने किवाड़ियाँ बन्द कर दीं।

उसके बाद प्रासाद की आग बुझा कर, जिस किसी प्रकार प्रासाद के भीतर घुस कर, अट्टालिका पर चढ़ कर महाराष्ट्रराज ने देखा कि पूर्व दिशा में अरुणोदय हो चुका था। अरुण की लालिमा से अल्प-प्रकाशित भूभाग में बहुत दूर में उन्होंने देखा कि शत्रुदल के करीब-करीब छः सात सौ सैनिक उनकी ओर ही दौड़े आ रहे थे। उन शत्रु सैनिकों को सम्मुख आते देख कर महाराष्ट्रराज ने सोचा कि गौरसिंह के सैनिकों के कोलाहल से आकृष्ट होकर ही ये सैनिक सुदूर-पूर्व चले गये थे। किन्तु वहीं से यहाँ

आसन्। तत एव च प्रासाद-दाह-ज्वाला-माला अवलोक्यैते निवृत्ता कोप-कषायिता समायान्ति, तत् सपद्येवैतैः सह युद्धस्य कश्चन सकौशल प्रबन्धो विधेय, अन्यथा तु निःशेषमेवैतेऽस्मान् समुच्छेत्स्यन्ति।

अथ महाराष्ट्रराज क्षणं स्वमित्रैः सह सम्मन्त्र्य, दुर्ग-युद्धार्थमेवावातिष्ठत। क्षणं विमृश्य च, स्वप्रधानवीरानाहूय पुनरवाच-

मित्राणि! यद्यप्यायस्तमस्मन्मण्डलम्, मन्त्रणा बहवः पत्तयः, साम्मुख्यं द्विगुणैः परिपन्थिभिः तथाऽपि समाशमागच्छन्तीं शत्रु सेनामालोक्यतोऽपि तूष्णीं स्थातुं नोत्सहते मे चेतः। सदैव

---

स्वरया चलन्ति। गौरसिंहस्य सेनायाः कोलाहलेन = कलकलेन, आकृष्टाः = आहूता.। प्रासाददाहेन = हर्म्यज्वलनेन, ज्वालामाला। कोपकषायिता = क्रोधकलुषिता। सकौशलम्=सनैपुण्यम्। निःशेषम् = साकल्येन। समुच्छेत्स्यन्ति = समुन्मूलयिष्यन्ति।

समन्त्र्य = विचार्य।

आयस्तम् = श्रान्तम्। अस्मन्मण्डलम् = अस्मत्सैन्यम्। मन्त्रणा = आघाता। साम्मुख्यम् = आभिमुख्यम्। "सामना" इति हिन्दी।

---

प्रासाद में लगी अग्नि की ज्वालाओं को देख कर वे लौट गये हैं और कोपारुण नेत्र होकर इधर ही आ रहे हैं। अतः शीघ्र ही इनके साथ युद्ध करने का कोई चतुरतापूर्ण उपाय रचना चाहिये, नहीं तो ये हम लोगों को सर्वथा विनष्ट कर डालेंगे।

तत्पश्चात् क्षण भर महाराष्ट्रराज अपने मित्रों के साथ मन्त्रणा कर दुर्ग में ही युद्ध करने को तैयार हो गए। थोड़ी देर विचार करने के बाद अपने प्रधान वीरों को बुलाकर शिवाजी ने उनसे पुनः कहा—

मित्रों! यद्यपि हमारी सैनिक मण्डली थक चुकी है, बहुत से पैदल सैनिक घायल हो चुके हैं और सामना भी शत्रु की दूनी सेना से करना है तथापि समीप आती हुई शत्रु-सेना को देख कर मेरा मन शान्त रह जाने के

प्रसह्याऽऽक्रम्य युद्धवानस्मीति गृहे आत्मानमाच्छाद्य वर्तितुं नोररीकरोत्युरः। अप्यस्ति कश्चिद्वीरः यः शतद्वयं भटान्सह नीत्वा, अग्रत एव गत्वा शस्त्रक्रीडया वराकैरेतैः सपत्नैः क्रीडेत्? विश्वसिमि, एतेषां पृष्ठलग्न एव गौरसिंहोऽपि ससेन आयातीति, यावदिताऽस्मत्सेना होरार्द्धमिव समर-दुरोदरेण यापयिष्यति-तावद् गौरोऽपि तत आगत्य कृपाण-धाराभिरेतान् स्नपयिष्यति-इति कथ्यताम्, कः समुत्सहते द्वे शते वीराणां सह नीत्वाऽग्रत एव सपत्नान् शक्ति-पातैः सत्कर्तुम् ?—इति।

---

सकाशम् = समीपम् । प्रसह्य = बलात् । गृहे = दुर्गे । वर्तितुम् = स्थातुम् । नोररीकरोति = न स्वीकरोति । उरः = हृदयम् । वराकैः = क्षुद्रैः । सपत्नैः = शत्रुभिः । पृष्ठलग्नः = पश्चात्पदः । होरार्द्धम् = घण्टार्द्धम् । समर एव दुरोदरम् = द्यूतम्, तेन । कृपाणधाराभिः = चन्द्रहासप्रवाहैः । स्नपयिष्यति = स्नानं कारयिष्यति । मारयिष्यतीति यावत् । शक्तीनां पातैः = मारणैः । सत्कर्तुम् = आदर्तुम् । हन्तुमिति यावत् ।

---

लिये उद्यत नहीं हो पाता। यतः सर्वदा बलपूर्वक आक्रमण कर मैंने युद्ध किया है अतः आज अपने को घर में छिपा कर बैठ जाने के लिये मेरा हृदय स्वीकार नहीं कर रहा है। क्या हम लोगों में कोई ऐसा वीर है जो अभी दो सौ सैनिकों को साथ लेकर आगे जाकर इन क्षुद्र शत्रुओं के साथ शस्त्रक्रीड़ा कर सके ?

मुझे तो ऐसा विश्वास है कि इन सब के पीछे ही अपनी सेना के साथ गौर सिंह भी आता ही होगा, अतः जब तक हमारी सेना युद्धात्मक द्यूत क्रीड़ा में आधा घण्टा बिताएगी तब तक गौर सिंह भी पीछे से आ कर ससैनिक अपने कृपाणों के प्रवाह से इन दुष्टों को स्नान करा देगा। अब कहिए—दो सौ वीरों को साथ लेकर दूर में ही शत्रु सैनिकों का शक्ति प्रहार से सत्कार करने के लिए कौन सा वीर उत्साहित है।

तदाकर्ण्य "सज्जा वयं शिरसा वोढुमादेशम्"—इति सर्वे प्रोचुः। तत परितो विलोकयन् महाराष्ट्रराजो रघुवीरसिंहमपि बद्धाञ्जलि सम्मुखस्थमालोक्य व्याजहार—'रघुवीर! अद्य त्वमेव युद्धमारब्धवानसि, त्वमेव च मध्येऽपि पराक्रमं दर्शितवानसि, त्वमेव चाधुना युद्धं समापय, पूर्ण-पारितोषिक-भाक् च भव"।

तदवधार्य प्रणम्य 'ओम्' इत्युक्त्वा रघुवीरः शतद्वयं साहसिकान् पत्तीन् सह नीत्वा समापत्य उच्छलितकोपैर्यवनवीरैः सह युद्धमन्वतिष्ठत्। सत्स्वपेक्षया त्रिगुणितेष्वपि, विस्मितमानेषु च तेषु ससिंहनादं प्रासासि-रिष्टि-तोमर-क्षेप-तत्परेषु, अकस्मात् पृष्ठतो 'हर हर महादेव'"—इति व्याहरन्ती गौरसिंह-सेनाऽपि

सज्जाः = सन्नद्धाः। पूर्णस्य = समग्रस्य, पारितोषिकस्य = इष्टे कार्ये प्रसन्नतया दायमानस्य 'इनाम' इति ख्यातस्य, भाक् = ग्रहीता। —च पत्तीन् = पदातिसैनिकान्। उच्छलितकोपैः = विवृद्धकोपैः। प्रासासिरिष्टितोमराणां क्षेपे = पातने, तत्परेषु = निरतेषु। व्याहरन्ती =

महाराष्ट्रराज की वाणी सुन कर सब कह उठे—हम लोग श्रीमान् के आदेश को शिरोवहन के लिए तैयार हैं। उसके बाद चारों तरफ देखते हुए महाराष्ट्रराज ने अपने सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़े रघुवीर सिंह को देख कर कहा—रघुवीर! आज तुमने ही युद्ध का प्रारम्भ किया है, मध्य में भी तुमने ही अपनी वीरता दिखलाई है, और अब तुम्हीं युद्ध का अन्त भी करो और पूर्ण पारितोषिक का अधिकारी बनो।

शिवा जी की बात सुन कर उन्हें प्रणाम करके "जी हाँ, आज्ञा शिरोधार्य है" ऐसा कह कर रघुवीर सिंह ने दो सौ साहसिक सैनिकों को अपने साथ लेकर आगे बढ़ कर अत्यन्त क्रुद्ध यवन सैनिकों के साथ युद्ध छेड़ दिया। शत्रुदल (रघुवीर सिंह प्रभृति) से त्रिगुण होने पर भी उनकी युद्ध निपुणता से विस्मितप्राय हो कर यवन-सैनिक सिंह की तरह गर्जन करते हुए रघुवीर सिंह के सैनिकों पर फरसा, तलवार, रोङ्ग तथा तोमर

समापप्तत्। ततः क्षणेनैव बहुषु विनष्टेषु परेषु निगृहीतेषु च शत्रु-वर्गेषु, जयध्वनि प्रस्थापयन्तः सर्वेऽपि समागत्य महाराष्ट्रराजं प्रणम्य विजयदुर्ग-विजय-वैजयन्तीरुड्डाय्य भेरीराहत्य जय-नादैर्गगनं व्यलोडयन्।

तावत् अरुण-पीत-प्रकाशेन दरादृश्यमानासु सकल-भित्तिकासु, वनस्थलीषु, उपत्यकासु, अधित्यकासु, अट्टालिकासु च, महाराष्ट्र-राजः ससाधुवादमखिलान् सम्मान्य, नित्य-क्रियाभिरात्मानं सुख-यितुं विससर्ज, उक्तवांश्च गौरसिंह यत्—

---

कथयन्तो। प्रस्थापयन्तः = प्रस्टयन्तः। उड्डाय्य = उत्ताल्य, "उड़ाकर" इति हिन्दी। व्यलोडयन् = ममन्थुः। जयध्वनिभिरपूरयन्निति यावत्।

अरुणस्य = भुवनभास्करस्य, पीतेन प्रकाशेन। दरादृश्यमानासु = अवलुलोक्यमानासु।

---

से प्रहार करने में लगे ही थे कि पीछे से 'हर हर महादेव।' इस शब्द का उच्चारण करती हुई गौरसिंह की सेना भी उन पर (यवनों पर) टूट पड़ी। तदनन्तर क्षण भर में ही बहुत से शत्रुओं के मार दिए जाने और अवशिष्ट के कैद कर लिए जाने पर जयध्वनि करते हुए सभी महाराष्ट्रीय वीर महाराष्ट्रराज के पास आ गए और उन्हें प्रणाम कर विजयदुर्ग की विजय पताका फहरा कर डंका पीट कर जयध्वनि से आकाश को उन वीरों ने आन्दोलित कर दिया।

उस समय तक अरुण के पीत प्रकाश से दीवारों, वनस्थलियों, उपत्य-काओं, अधित्यकाओं और अट्टालिकाओं के पूर्णतः दृष्टिगोचर हो जाने पर महाराष्ट्रराज ने धन्यवाद प्रदान पूर्वक अपने सभी वीरों को सम्मानित कर सबों को अपनी अपनी नित्य क्रिया के सम्पादन द्वारा अपने अपने को प्रसन्न करने की आज्ञा दे दी और गौरसिंह से कहा—

'त्वय गत्वा महाराजमम्बरेश्वरं रुद्रमण्डल-विजय-वृत्तान्तम् अवगमय, ब्रूहि च यदपराह्णेऽद्य रुद्रमण्डल-प्रासादे, साधुवाद-पारितोषिकादि-वितरणे प्रदर्शित-युद्ध-कौशलान् भटानधिकमुत्साहयितुं सभा भविता, तत्रोपस्थाय महाराजेन द्विगुणं सनाथनीया समितिः'—इति।

तस्मिंस्तथा प्रस्थिते दुर्गप्राचार-द्वारादिस्थानेषु यथोचितं विश्वस्त-चिरन्तन-स्वामिभक्त-भटानायोज्य, सभा-स्थानं परिष्कर्तुं कांश्चिदादिश्य स्वमनसि स्वास्थ्यमाससाद।

अथ तथाऽनुष्ठितवत्स्वखिलेषु विहित-भोजनादि-क्रिये परत

---

अवगमय = बोधय। ब्रूहि = कथय। अपराह्णे = अह्नो द्वितीये भागे। द्वादशवादनादूर्ध्वमिति यावत्। उत्साहयितुम् = ससाहसयितुम्। उपस्थाय = समागत्य। सनाथनीया = कृतार्थनीया। समितिः = सभा।

विश्वस्तान् = जातविश्वासान्, चिरन्तनस्वामिभक्तान् = प्राचीनान् चिरतिमनस्कान्। आयोज्य = संलग्य। परिष्कर्तुम् = स्वच्छयितुम्। स्वास्थ्यम् = कृतकृत्यताऽऽनन्दम्। आससाद = प्राप।

अनुष्ठितवत्सु = कृतवत्सु। निद्रामुद्रया = स्वापमुद्रया। विद्राविते

---

तुम स्वयम् वहाँ जाकर अम्बरदेशाधिपति महाराज जयसिंह को रुद्रमण्डल पर विजय प्राप्त करने की खबर दो और उनसे निवेदन करना कि युद्ध में कौशल दिखलाने वाले महाराष्ट्रीय वीरों को साधुवाद तथा पारितोषिक आदि देकर अत्यधिक उत्साहित करने के लिए रुद्रमण्डल के प्रासाद में ही आज दुपहर के समय एक सभा होने वाली है, उस अवसर पर वे वहाँ आकर इस सभा को द्विगुण कृतार्थ करें।

महाराष्ट्रराज की आज्ञा से गौरसिंह के वहाँ से प्रस्थान कर देने के बाद दुर्गप्राचार तथा प्रवेशद्वार आदि स्थानों पर विश्वासपात्र, चिरपरिचित तथा स्वामिभक्त वीरों को नियुक्त कर एवम् सभाभवन की सफाई के लिए कुछ अनुचरों को आदेश देकर महाराष्ट्रराज ने निश्चिन्तता की साँस ली।

तदनन्तर महाराष्ट्रराज के आदेश के अनुसार सभी आदिष्ट अनुचरों

किञ्चिन्निद्रा-मुद्रयेव विद्रावित-मान्थर्ये जयपुराधीश्वरे, पश्चिमा-याममवनमति मार्तण्ड-मण्डले, चण्ड-मरीचिप्रचयेषत्प्रतप्त-वाताऽऽघात-प्रताप-शुष्यत्फलपत्र-शाखाप्रशाखेषु वृक्ष-क्षुप-व्रतती-व्रजेषु, होराद्वयात् परत एव सम्पत्स्यमाने सायङ्काले; रुद्रमण्डलस्थ-महाप्रासाद-सम्मुखे प्रविततभूभागे सुवर्ण-सूत्र-प्रचय-रचित-लता-कुसुम-चित्र-विचित्रितस्य, विविध-वर्ण-वर्णनीय-स्तम्भ-शतोच्छ्रितस्य, पुष्कल-दाम-शताकृष्ट-बद्धस्य, कौशेयोल्लोचस्या-

मान्थर्ये = दूरीकृतालस्ये। अवनमति=नम्रीभवति। चण्डमरीचीनाम्= भास्करदीधितीनाम्, प्रचयेन=समूहेन, ईषत्प्रतप्तस्य=उष्णप्रायस्य, वातस्य = वायोः, आघातप्रतापेन = ताडनतेजसा, शुष्यन्तः = शोषमुपगच्छन्तः, फलपत्रशाखाप्रशाखा येषां तेषु। वृक्षाः = अनोकहाः, क्षुपाः = ह्रस्वशाखाः, व्रतत्यः=लताः, एतासां व्रजेषु = समूहेषु। सम्पत्स्यमाने = भाविनि। प्रवितते = अतिविस्तीर्णे, भूभागे = भूप्रदेशे। सुवर्णसूत्र-प्रचयेन = हैरण्यतन्तुसमूहेन, रचितैः = निर्मितैः, लतानां कुसुमानाञ्च, चित्रैः = आलेख्यैः, विचित्रितस्य=विभूषितस्य। विविधैः = अनेकप्रकारैः, वर्णैः=रङ्गैः, वर्णनीयानि = रञ्जनीयानि, यानि स्तम्भशतानि = अनेकान्याधारभूतानि, तैः, उच्छ्रितस्य = उन्नतस्य। पुष्कलानाम् = पुष्टानाम्, दाम्नाम् = रज्जूनाम्, शतैः, आकृष्टस्य बद्धस्य च। कौशेयो-

द्वारा अपने अपने कृत्य के सम्पादित हो जाने पर, भोजनादि क्रिया सम्पन्न करने के बाद कुछ निद्रा के बहाने जयपुराधीश्वर द्वारा आगमन श्रान्तिजन्य अपने आलस्य को दूर कर दिए जाने पर, सूर्यमण्डल के पश्चिम दिशा की ओर अवनत हो जाने पर प्रचण्ड सूर्यकिरण के सम्पर्क के कारण अल्प-सन्तप्त वायु के आघात के प्रभाव से पेड़, पौधे और लताओं के शाखा-प्रशाखा-फल-पत्र के सूख जाने पर (मुरझा जाने पर) आगामी सन्ध्या समय से दो घण्टे पूर्व रुद्रमण्डल के महान् प्रासाद के सामने विशाल प्राङ्गण में सुवर्ण सूत्रों के समूह से निर्मित लताओं, फूलों तथा अनेकानेक चित्रों से विभूषित, रङ्ग-विरङ्गे खम्भों पर उत्तोलित, सैकड़ों मजबूत रस्सियों से आकृष्ट

धस्तात् आस्तीर्णेषु कौशेयाऽऽस्तरणेषु महासभा समतिष्ठत ।

तत्र हि कनकसूत्र-गुम्फित-प्रान्तासनाच्छादितायामेकस्यां वितस्त्युच्छ्राय-तूलिकायां महोपबर्ह-लग्न-पृष्ठो जयपुराधीश्वर उपविष्टः, तत्रैव च वामतो महाराष्ट्र-राष्ट्र-त्रिविष्टपेष्टोऽपि समवर्तिष्ट। परितो यथाधिकार क्रमतो द्वयोरपि गञ्जोः कृपा-पात्राण्युपविष्टानि । वितानं परितश्च बद्धपङ्क्तयो योद्धार सुसज्जाः समतिष्ठन्त । प्रभाकर-प्रभा-प्रचय-प्रपात प्रहतानाम्, दरदरिनद्ध-

---

उल्लोचस्य = पट्टपुञ्जीयवितानस्य । आस्तीर्णेषु = विस्तीर्णेषु । कौशेयास्तरणेषु = पट्टसूत्रनिर्मितासनेषु । महासभा = विशाला समितिः ।

कनकसूत्रै = हैरण्यतन्तुभिः, गुम्फितः = ग्रथितः, प्रान्तो यस्य तादृशेन, आसनेन = प्रावरणविशेषेण, आच्छादितायाम् = गोपितायाम् । वितस्त्युच्छ्रायायाम् = अर्धहस्तोन्नतायाम्, तूलिकायाम् = तूलतल्पाम् । महोपबर्हे = महोपधाने, लग्न पृष्ठ यस्य सः । महाराष्ट्रराष्ट्रमेव त्रिविष्टपम् = स्वर्गः, तस्य इष्टः = अभिमतः । समवर्तिष्ट = समस्थित । कृपापात्राणि = दयाभाजनानि । वितानं परित. = उल्लोचस्य चतुर्दिक्षु । "अभितः परितः" इत्यादिना द्वितीया । प्रभाकर-प्रभाप्रचयस्य = भास्करभासमूहस्य, प्रपातैः = प्रपतनै, प्रहतानाम् = ताडिता-

---

रेशमी शामियाने के नीचे बिछे रेशम के गद्दों पर वह विशाल सभा समायोजित हुई।

उस सभा में सुवर्णतारों से जड़ी किनारी वाली चादर से आच्छादित एक बित्ता ऊँचे गद्दे पर एक विशाल तकिये पर उठग कर जयपुर महाराज बैठ गये। उनकी बाँयी ओर महाराष्ट्रराष्ट्ररूपी स्वर्ग के इष्टदेव शिवाजी भी बैठ गये। उनके चतुर्दिक् उन दोनों के कृपापात्र अन्यान्य व्यक्ति भी अपने-अपने अधिकार के अनुसार बैठ गये। शामियाने की सब दिशाओं में सुसज्जित वीरों की मण्डली पङ्क्तिबद्ध होकर खड़ी थी। सूर्यकिरण के सम्पर्क से चमकने वाले उन वीरों के सोने तथा चाँदी के बने कमरबन्दों, कन्धों

महारजत-रजतादि-पट्टिकानाम्, स्कन्धोन्नमित-शक्ति-भल्लानाम्, कटि-विलम्बित-कृपाण-सौवर्ण-त्सरूणाम्, वेष्टित-गण्ड-युगल-चिबुकानाम्, राजत-लेप-लिप्त-लौह शृङ्खलोष्णीषिका-बन्धनानां च चाकचक्यम् अवलोचकलोचनमतीतडन। कलित-महाध्वजा परितः प्रसर्पिणो वीराश्च, सभेरीनादं श्रीशिवराजस्य महाराज-जयसिंहस्य च जयमजूघुषन्।

ततो महाराष्ट्रराजः सक्षेपेण रुद्रमण्डल विजय-वृत्तान्तमश्रावयत् जयसिंहम्। स च ससाधुवादमखिलानुत्साहयाम्बभूव। ततो महाराष्ट्रराजो गौरसिंह-श्यामसिंह-कूर्मसिंह-माल्यश्रीकादीन् प्रत्ये-

---

नाम्। भाषितानामिति यावत्। तत्कटिषु = वाराणां मध्यभागेषु, महारजतस्य = सुवर्णस्य, रजतस्य = दुर्वर्णस्य, आदिना रीत्यादेश्च, पट्टिकानाम्। स्कन्धेषु, उन्नमितानाम् = उन्नमय्य स्थापितानाम्, शक्तीनां भल्लानाञ्च। कटिविलम्बितानाम्, कृपाणानाम्, सौवर्णानां त्सरूणाञ्च। राजतलेपेन लिप्तानाम् लौहशृङ्खलाभिर्नानाम् उष्णीषिकाबन्धनानाम्। चाकचक्यम् = चमत्कृति। अवलोचकलोचनम् = द्रष्टृनयनम्। अतीतडत् = अजीघतत्, अभिभूत चकारेत्यर्थः। कलितमहाध्वजा = धारितविनयवैजयन्तीकाः। प्रसर्पिण = गच्छन्तः। अजूघुषन् = घोषितवन्तः।

---

पर रखे हुए शक्तियों तथा रीछों, कमर में लटकते कृपाणों तथा उनकी सुवर्ण की मूठों, वेष्टित कपोल युगल तथा दाढ़ी, रूपहली लौह शृखला की चमक दर्शकों की आँखों को चकाचौंध करती थी। विशाल ध्वजाओं को हाथों में लेकर चारों तरफ घूमने वाले वीर डङ्का बजाकर शिवाजी तथा महाराज जयसिंह की विजयध्वनि कर रहे थे।

बाद म महाराष्ट्रराज ने जयसिंह का रुद्रमण्डल पर विजय प्राप्त करने की घटना को सक्षिप्त रूप में सुनाया और महाराज जयसिंह ने भी साधुवाद देते हुए सबों को प्रोत्साहित किया। तत्पश्चात् शिवाजी ने गौरसिंह, श्यामसिंह, कूर्मसिंह तथा माल्यश्रीक आदि प्रत्येक वीरों का अङ्गुल्या निर्देश करते

कमङ्कुल्या निर्दिश्योक्तवान्—एत एव प्राधान्येन विहितसाहाय्या मम—इति। जयसिंहश्च तान् प्रशशंस, स्वहस्तेन चैकैकमसिधेनुकादानेन पर्यतोषयत।

अथ रघुवीरं निर्दिश्य शिवराजः कथितवान्—"महाराज! एष एव वीरबालो रुद्र-मण्डल-जयस्य प्रधान-कारणम्। अयमेव प्रथमं युद्धमारब्धवान्, अयमेव शर-प्रपातमगणयित्वा प्रथमं प्राचीरमारूढ, अयमेव रिपु-निकर-व्याप्ते दुर्गे प्रथमं सोत्फालमन्तः प्रविष्टः, अयमेव दुर्गाध्यक्षं निगृहीतवान्, अयमेव च परस्तात् समापतन्तीं यवनसेनां त्रिगुणामस्यल्पीयस्या सेनया पराजैष्ट"।

तदाकर्ण्य सर्वे प्रासीदन् ऋते दन्दह्यमानहृदयात् क्रूरसिंहात्।

अङ्कुल्या = करशालया। प्राधान्येन = वैशिष्ट्येन। एकैकम् = प्रत्येकम्। असिधेनुकायाः = छुरिकायाः, दानेन = समर्पणेन।

शराणाम् = इषूणाम्, प्रपातम् = सम्पतनम्। रिपुनिकरव्याप्ते = शत्रुसमूहाबृते। अस्यल्पीयस्या = अतितरां न्यूनया। पराजैष्ट = परास्तवान्।

प्रासीदन् = प्रसन्ना अभूवन्। समतुषत् = सन्तोषितवान्। प्राञ्च-

हुए कहा—ये ही वीर हैं जिन्होंने मुख्य रूप में मेरी सहायता की है। उस पर जयसिंह ने उन सबकी प्रशंसा की और अपने हाथ से प्रत्येक को पारितोषिक के रूप में एक-एक तलवार समर्पित किया।

तदनन्तर रघुवीरसिंह की ओर निर्देश कर शिवाजी ने कहा—महाराज! रुद्रमण्डल पर विजय पाने में प्रधान कारण यही वीर बालक है। प्रथमतः इसने ही युद्ध का प्रारम्भ किया था, बाणों की वर्षा का परवाह किए बिना ही प्राचीर पर सर्वप्रथम चढ़ने वाला भी यही है, शत्रुसमूह से व्याप्त दुर्ग के मध्य कूद कर प्रथम प्रवेश करने वाला भी यही है, दुर्गाध्यक्ष रहमत खाँ को पकड़ने वाला भी यही है और आगे से आती हुई (अपनी सेना से) त्रिगुण यवन सेना को अपनी छोटी सेना से पराजित करने वाला भी यही है।

महाराष्ट्रराजकृत रघुवीरसिंह की प्रशंसा सुनकर जलते हृदय वाले

सन्वरावीरादुत्थाय तस्मै स्वहस्तस्थं महासिमयच्छत्, साधुवादेन च समनूनुदत्। सोऽपि राजद्वयं प्रणम्य, असिं कटिदेशे सन्न-ह्यित्वा, निर्दिष्टस्थाने उपाविशत्। महाराष्ट्रेश्वरश्च "अयं पाञ्च-साहस्त्रिकता-योग्यः"–इति शनैर्जयसिंहकर्णे आजपत्, सोऽपि चा-न्वमूनुदत्। किञ्चित् किञ्चिदिदमन्यैरेव श्रुतम्। क्रूरसिंहस्तु हृदा-कलस्य शूलेनेव कर्णयोस्तुद्यमानो भ्रुवावाकुञ्च्य, मुखमवनम्य तथैवास्थात्।

ततो महाराष्ट्रेश्वराज्ञया सर्वेऽपि निगृहीता वीरा आनायिता-स्त्यक्ताश्च। ततो दुर्गाध्यक्षो रहोमतखानोऽपि तत्र समानीतो नि-र्मुक्तबन्धनस्तन्मुखमवनतशिराः स्थितः। तमालोक्य महाराष्ट्र-

पाञ्चसाहस्त्रिकता=पञ्चसहस्रसैनिकाध्यक्षता। योग्यः=अर्हः। अन्वमू-नुदत्=अनुमोदितवान्। तुद्यमानः=व्यथ्यमानः। आकुञ्च्य=वक्रीकृत्य।

निगृहीताः=चारकीकृताः। निर्मुक्तबन्धनः=विगलितनिगडः। अव-

क्रूरसिंह के अतिरिक्त सब प्रसन्न हो उठे। महाराज जयसिंह ने भी उठकर अपने हाथ का विशाल खड्ग ही रघुवीरसिंह को दे दिया और साधुवाद से भी प्रसन्न किया। रघुवीरसिंह भी दोनों महाराजों को प्रणाम कर जयसिंह द्वारा प्रदत्त खड्ग को कमर में लटका कर अपने स्थान पर जाकर बैठ गया। महाराष्ट्रराज ने धीरे से महाराज जयसिंह के कानों में कहा—'यह पाँच हजार सेना की अध्यक्षता करने योग्य है।' और जयसिंह ने भी उसका अनुमोदन किया। इस बात को और लोगों ने भी थोड़ा-बहुत सुन लिया। किन्तु उसे सुनकर अपने कानों में शूल के आघात का अनुभव करने वाले क्रूरसिंह भौंहों को आकुञ्चित कर, मुख को अवनत कर बैठा रहा।

तदनन्तर महाराष्ट्रराज की आज्ञा से पकड़ लिये गये सभी राजपूत वीर वहाँ लाये गये और मुक्त भी कर दिये गये। उसके बाद रहमत खाँ को भी वहाँ लाया गया और बन्धन से मुक्त कर दिये जाने पर वह उन

राज उवाच—

"वीर ! साधु दर्शितवानसि युद्ध-कौशलम्। उचितमाचरितवानसि स्वामि-पिण्डस्य। जयः पराजयश्च न स्वाधीनः। यदि विजितोऽसि, गृहीतोऽसि, बद्धोऽसि, ततो व्रीडा नोचिता। पलायनं वा रक्ष रक्षेति रोदनं वा व्रीडास्पदम्, न तु वीरता-पुरस्सरं बन्धो वा प्राणत्यागो वा। तदधुना मुक्तोऽसि। रोचते चेत् अस्माननुसर, अथ वा स्वच्छन्दं विजयपुरेश्वरमेवानुसर"।

स तु "वीरराज ! अत्यन्तमुपकृतोऽस्मि औदार्येणानेन, किन्तु यस्मिन् हस्ते विजयपुर-रक्षार्थं खड्गं वहन् जीवनं यापितवानस्मि,

नतशिराः = नम्रमस्तक।

स्वामिनः पिण्डस्य = अन्नादेः। व्रीडा = त्रपा। व्रीडायाः, आस्पदम् = स्थानम्। मुक्तः = परित्यक्तः। अनुसर = अनुगच्छ। स्वच्छन्दम् = स्वतन्त्रम्। क्रियाविशेषणम्।

(महाराष्ट्रराजप्रभृति) के सम्मुख मुँह झुकाकर खड़ा रहा। उसे देखकर महाराष्ट्रराज ने उससे कहा—

वीर ! तुमने अपनी युद्ध कुशलता का पूर्ण प्रदर्शन किया है। तुमने स्वामी के दिये अन्नपानादि के अनुरूप काम भी किया है। युद्ध में जय या पराजय अपने वश की बात नहीं है। यदि युद्धभूमि में तुम जीत भी लिये गये हो पकड़ भी लिये गये हो, और बाँध भी लिये गये हो तब भी तुम्हें लज्जित होना उचित नहीं है। युद्धक्षेत्र से भग जाने या शत्रुओं के समक्ष 'त्राहि त्राहि' करने में लज्जा है, वीरता का प्रदर्शन करते हुए बन्धन में आ जाना या प्राणत्याग लज्जास्पद नहीं है। अब तुम मुक्त कर दिये गये। मन चाहे तो हमारे साथ रहो और नहीं तो पुनः स्वच्छन्द होकर विजयपुरेश्वर के पास ही लौट जाओ।

शिवाजी की बात सुनकर रहमत खाँ ने कहा—वीरराज ! आपकी इस उदारता का मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँ। किन्तु जिस हाथ में विजयपुर

नास्मिन्नेव दग्धहस्ते विजयपुर-विरोधिनां साहाय्याय निस्त्रिंशं माकलयितुमुत्सहते मे चेत"—इत्युक्तवान्।

तत. शिवराजेन यथोचितं विधेहीत्युक्त, गच्छन् कतिभिश्चिदेव पदैः परावृत्य पुन प्रोक्तवान्—

"महाराज ! वृद्धोऽसौ बहुभिर्युद्धवान्, किन्तु न भवादृशो वीर राज एव दृष्ट, न वा भावत्का इव योद्धार एव दृष्टा.। तथाऽपि निविवेदयिषामि-यद् भवत्सेनासु न सर्वं एव राजभक्ता. सन्ति। केचन विद्रोहिणोऽपि कपटेन स्व राजभक्त प्रदर्श्य भवत्कृपा-पात्र तामपि वहन्तो गूढ विद्रोहमाचरन्ति। तादृशेनैव केनचित् प्रथममेव सतर्कीकृता वयम्, अन्यथा अल्पेनैवाऽऽयासेन जय्यमासीद् भवा

दग्धहस्ते = भागधेयरहितकरे। आकलयितुम् = धारयितुम्।
विधेहि = कुरु। पदै = चरणै। परावृत्य = निवृत्य।
निविवेदयिषामि = निवेदयितुमिच्छामि। विद्रोहिण = शत्रवः।
भवत्कृपापात्रताम् = भवदीयदयाभाजनताम्। सतर्कीकृता = सावधानी

की रक्षा के लिये खड्ग ढोकर मैंने अपना सारा जीवन व्यतीत किया है उसी अभागे हाथ में विजयपुराधीश्वर के विरोधियों की सहायता के लिये खड्ग उठाने में मेरा मन उत्साहित नहीं हो रहा है।

तदनन्तर—जैसा उचित मालूम पड़े वैसा ही करो—इस प्रकार शिवाजी द्वारा कह जाने पर रहमत खाँ वहाँ से विजयपुर के लिये चल पड़ा। कुछ ही पग चलने के बाद लौट कर शिवाजी से उसने कहा—

महाराज ! इस वृद्ध ने बहुतों के साथ युद्ध किया, परन्तु न तो आज तक इसने आप जैसे वीर को ही देखा था और न आपके योद्धाओं के समान योद्धाओं को ही। फिर भी मैं कुछ निवेदन कर देना चाहता हूँ—आपकी सेना में सभी राज भक्त नहीं हैं। कुछ राजद्रोही भी छल से अपने को राजभक्त दिखला कर आपके कृपापात्र भी बने हुये हैं और छिपकर आपका विद्रोह भी किया करते हैं। उन्हीं राजद्रोहियों में से किसी व्यक्ति

द्वारेण दुर्गमास्माकीनम्। तदनुसन्धानं शोधनीया स्वसेना, प्रयाम्यहम्"—इति उक्त्वा प्रचलितः।

महाराष्ट्रराजस्तु कोपारुणीकृतनयनः परितः पश्यन्, सर्वान् सेनापतीन् सम्मुखमेक-लेखायामुत्थाय स्थातुमाज्ञप्तवान्। सर्वेषु तथा कृतवत्सु प्रोक्तवान्—हन्त भो! महाराष्ट्र-मण्डलेऽपि स्वामि-विद्रोहः? अपि रोचते युष्मभ्यम्?

सर्वे—विद्रोहाचरणं महापापम्, न रोचतेऽस्मभ्यम्।

महा०—न रोचते चेद् यदि ज्ञायते तदा कथ्यतां को विद्रोहीति?

---

दूताः। सुविधा आक्रमणकरणस्य इति यावत्। आयासेन = श्रमेण। ग्राह्यम् = ग्रहीतुं शक्यम्। 'ग्रह ग्रहणार्थे'। तदनुसन्धानम् = तदन्वेषणम्। शोधनीया = परीक्षणीया।

कोपारुणीकृतनयनः = कोपेन लोहितीकृतनेत्रः। एकलेखायाम् = एकस्यां पङ्क्तौ।

---

द्वारा हम लोग भी पहले ही सतर्क कर दिये गये थे, नहीं तो हम लोगों का दुर्ग आपके लिये थोड़े ही आयास से जीतने योग्य था। अतः अनुसन्धान पूर्वक आप अपनी सेना की जाँच कर लें, मैं तो अब चल रहा हूँ—यह कह कर वह वहाँ से चल पड़ा।

उस पर कोपारुण नेत्र वाले महाराष्ट्रराज ने चारों तरफ देखकर सभी सेनापतियों को अपने सामने पङ्क्तिबद्ध होकर खड़े हो जाने की आज्ञा दे दी। जब उनकी आज्ञा पाकर सब सेनापति उनके समक्ष पङ्क्तिबद्ध होकर खड़े हो गये तब शिवाजी ने उन सबसे कहा—क्यों भाइयो! महाराष्ट्र मण्डल में भी स्वामिविद्रोह! क्या यह आप लोगों को अच्छा लग रहा है!

सब—जी नहीं, विद्रोह करना तो महापाप है, हम लोगों को यह अच्छा नहीं लगता।

महाराष्ट्रराज—यदि अच्छा नहीं लगता तो यदि आप लोगों को पता हो तो बतलाइये कि कौन विद्रोही है!

सर्वे—न जानीमहे। न जानीमहे।

ततः क्षणं सम्पूर्णा सभा निर्मक्षिकसञ्चारा संवृत्ता। सर्वेऽपि "कस्य प्राणा अवसन्नाः? कस्य जीवन समाप्तम्? को मृत्युना वीक्षित? को वा कृतान्तेन पाशितः?" इति चिन्तयन्तस्तूष्णीका जडीकृता इव चित्र-लिखिता इव चावर्तन्त।

अथ पुनरेव निर्णेतुमारब्धवान् महाराष्ट्रपति—

महा०—अथ ज्ञायते ह्यः कश्चिद् अनुपस्थितो वा, विलम्ब्य समायातो वा?

मूर्सिंहः—महाराज! कश्चन श्रीचरणानामनुग्रह-पात्रमेव विलम्ब्य समागतः, प्राणदान-प्रतिज्ञया सनाथ्येय चेत् कथयेयं नामापि।

---

*निर्मक्षिकसञ्चारा=मक्षिक सञ्चारेणापि शून्या। अवसन्नाः=* समाप्तप्राया। पाशितः-बद्ध। जडीकृता इव=स्तम्भीकृता इव।

प्राणदानप्रतिज्ञया=अमुरदशसन्यरा। सनाथ्येय=सनाथितः स्याम्।

---

सब—हम लोग नहीं जानते, नहीं जानते।

उसके बाद सारी सभा थोड़ी देर के लिए स्तब्ध हो गई। "किसके प्राण जाने वाले हैं? किसका जीवन-काल समाप्त हो चुका है? किसे यमराज ने देख लिया है? किसे यमराज ने अपने पाश में फँसा लिया?" इस तरह सोचते हुये जडवत् तथा चित्रवत् सभी मौन होकर खड़े रहे।

तत्पश्चात् महाराष्ट्रराज ने पुन निम्नलिखित रूप में निर्णय करना प्रारम्भ कर दिया।

महा०—अच्छा तो यह ज्ञात है कि कल कोई अनुपस्थित या विलम्ब से यहाँ आया था?

मूर्सिंह—महाराज! आपका कोई कृपापात्र व्यक्ति ही कल विलम्ब से आया था। यदि आप मुझे प्राणदान की प्रतिज्ञा करें तो मैं उस व्यक्ति का नाम भी बतला दूँ।

महा०—न भयं ते। कथय केन विलम्बितम्?

शूर०—रघुवीरसिंहोऽत्यन्तविलम्बेनाऽऽगतः।

[ ततः सर्वेषु क्षणं चकितेषु निभृतमवस्थितेषु ]

महा०—मूर्ख! सत्यं कथय। हृष्टवानस्मि रघुवीरस्य पौरुषं भक्तिं च, न तव मिथ्या-कलङ्केनाङ्कितं भवेद् रघोर्यशः। रघुवीरस्योन्नतिमाकलय्य खिद्यसे-इति प्रलपसि। तत्सत्यं वद, अन्यथाऽधुनैव न भवसि।

[ इति शक्तिमुदतूतुलत्।

रघुवीरः—[ सप्रञ्जलिं बद्ध्वा ] महाराज! मिथ्या नाभिधत्ते। सत्यमहं किञ्चिद् विलम्बेन समायातः। शूरो न हन्तव्यः।

---

पौरुषम् = पुरुषार्थम्। भक्तिम् = एकतानसेवाम्। प्रलपसि = अनर्गलप्रलापं करोषि। न भवसि = मृतो भवेः।

---

महा०—किसी प्रकार का भय मत करो। कहो–किसने यहाँ आने में विलम्ब किया था?

शूर०—रघुवीर सिंह बहुत विलम्ब से आया था। [ उसपर सबके कुछ देर तक चकित तथा मौन हो जाने पर ]

महा०—अरे मूर्ख! सच बतलाओ। मैं रघुवीर की वीरता तथा राजभक्ति देख चुका हूं। तुम्हारे मिथ्याकलङ्क से रघुवीर का यश मलिन नहीं होने वाला है। तुम इसी लिये प्रलाप कर रहे हो कि रघुवीरसिंह की उन्नति देखकर तुम्हारा हृदय जल रहा है। अतः ठीक ठीक बतलाओ, नहीं तो अभी अभी समाप्त हो जाओगे। [ यह कहकर महाराष्ट्रराज ने अपनी 'शक्ति' को उठा लिया ]

रघु०—[ तत्क्षण हाथ जोड़कर ] महाराज! शूरसिंह झूठ नहीं कह रहे हैं। मैं सचमुच कुछ विलम्ब से कल आया था। शूरसिंह को आप न मारें

तदाकर्ण्य, सकलाऽपि सभा जडीकृतेव मोहितेव समाहितेव च संवृत्ता। अथ पटान्तेन स्वेदमपहृत्य शिवराजः क्रूरेण चक्षुषा रघुवीरं दिधक्षन्निव समगादीत्।

शिव०—मूढ! तर्हि किमिति विलम्ब्य समायातोऽसि?

क्रूर०—[ रघुवीराभिमुखम् ] कथय, कारणं कथय।

शिव०—क्षिप्रं कथय! किं न वेत्सि मदाज्ञा समुल्लङ्घनस्योल्बणं फलम्? यद्विलम्बितवानसि।

[ ततो भुवमालोकयन्, बद्धकर–सम्पुटो रघुवीरः, किमपि न प्रावोचत्। तदाकर्ण्याधिकं शङ्कितो महाराष्ट्रराजः पुनरवादीत् ]

महा०—मूढ! विद्रोहिन्! मिथ्यैव स्वामिभक्तिं प्रकटयसि?

---

समाहिता = सावधाना। किमग्रे भावीति समवलोकयितुम्।

उल्बणम् = कठिनम्।

---

रघुवीर सिंह की बात सुनकर सारी सभा जड़पदार्थ-सी, मूर्च्छित-सी और समाधिमग्न-सी हो गई। तत्पश्चात् पसीना पोंछ कर शिवाजी ने अपनी क्रूर दृष्टि से रघुवीर सिंह को देखा मानो अपनी क्रोधाग्नि से वे उसको जलाना चाह रहे थे और कहा भी।

शिव०—मूढ! तो विलम्ब से क्यों आये थे?

क्रूर०—[ रघुवीर सिंह की ओर देखकर ] कहो कहो देर से आने का कारण बतलाओ।

शिव०—शीघ्र बतलाओ! क्या तुम मेरी आज्ञा के उल्लङ्घन के कठोर परिणाम को नहीं जानते थे कि यहाँ विलम्ब से आये थे!

[ तदनन्तर नीचे को ओर देखता हुआ हाथ जोड़ कर खड़ा रघुवीर कुछ नहीं बोला। यह देख कर और भी अधिक सन्दिग्ध महाराष्ट्रराज ने पुनः कहा ]

महा०—मूढ! विद्रोही! झूठी स्वामिभक्ति ही दिखला रहे हो?

रघु०—प्रभो ! विद्रोहो मिथ्याऽऽचारो वा नास्मत्कुल-धर्मः।

महा०—तत्किमिति विलम्बितवानसि ?

रघु०— मनसैव "सौवर्णि ! तव साक्षात्कार एव विलम्ब-कारणम्, तदत्र किं कथयामि !"—इति विभावयन् मुखमालोकयन् पद-नखेन धरा-तलमुल्लिखन् निःशब्द एव समस्थित ]

महा०—[ अत्यन्त खिन्नः, स्विन्नश्च पटान्तेन स्वेदं परिहृत्य ] आः ! कथं स्वप्नमिव पश्यामि। यस्यैवं मधुरा गीः, यस्यैवं पराक्रमः, स एव च्छली !!

रघु०—महाराज ! अनीहमानस्यापि मे विलम्बो जातः, किन्तु

मिथ्याचारः=असदाचरणम्। अस्माकं कुलधर्मः = अन्वयकर्त्तव्यम्।
निःशब्दः = मौनी।
स्विन्नः = घर्मबिन्दुव्याप्तः।
अनीहमानस्य = अनिच्छतः।

रघु०—प्रभो ! विद्रोह करना या मिथ्याचार करना मेरे कुल का धर्म नहीं है।

महा०—तो फिर विलम्ब तुमने क्यों किया ?

रघु०—[ प्यारी सौवर्णी ! तुम्हारा मिलना ही यहाँ मेरे विलम्ब से आने का कारण है–इस बात को मन ही मन सोचता हुआ, जमीन की ओर दृष्टि लगाये पैर के नख से पृथ्वीतल को खरोंचता हुआ चुप ही खड़ा रहा ]

महा०—[ अत्यन्त खिन्न तथा पसीने से तरबतर हो जाने के कारण कपड़े से पसीना पोंछ कर ] आः ! क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ! जिसकी इस तरह की मधुर वाणी, जिसका इस तरह का पराक्रम वही छल करने वाला भी है !

रघु०—महाराज ! नहीं चाहने पर भी मुझे यहाँ आने में विलम्ब तो

छल या स्वामि–विद्रोह वा न जानामि।

महा०—मूढ ! ईदृशैः कथनैः प्राण-रक्षा यत्नो व्यर्थः।

रघु०—प्रभो ! स्वामिनोऽन्नेन पुष्टमिदं शरीरम्, स्वामिन एव कृपाणेन विलीढं भवतु। यस्य तोषश्चिरमजीवयत्, तस्यैव रोषो व्यापादयतु। नाहं प्राणरक्षार्थं यते, न वाऽपराध-क्षमां याचे। किन्तु यत् सत्यं तद् ब्रवीमि, नाहं स्वामि विद्रोहापराधी, न वा छलं जाने, किन्तु न जाने केषां दुरदृष्टानां फल-स्वरूपो मे विलम्बः समभूत्। सत्यमिति कथयामि। विलम्बापराधस्य जीविकाच्छेदो वा शिरश्छेदो वा यथा रोचेत, तथा दण्डो विधेयः। विद्रोहाचरणन्तु न कृतवानस्मि।

विलीढम् = विनष्टम्। तोष = प्रसन्नता। व्यापादयतु = मारयतु। दुरदृष्टानाम् = दुर्भाग्याणाम्।

अवश्य हो गया था, परन्तु छल या राजविद्रोह का तो मैं नाम भी नहीं जानता।

महा०—मूढ ! इस प्रकार के कथनों से अपने प्राण की रक्षा के लिये तुम्हारा सारा प्रयास निरर्थ है।

रघु०—प्रभो ! आपके अन्न से यह शरीर पला है और आज आप के कृपाण से ही विनष्ट भी हो जाय ! जिसके सन्तोष ने मुझे इतने दिनों तक जिलाया है उसी का रोष आज मार भी डाले। मैं अपनी प्राणरक्षा की चेष्टा नहीं करता और अपने अपराध के लिये क्षमा भी नहीं चाहता। किन्तु जो सत्य है उसे मैं बतला रहा हूँ—मैं स्वामि विद्रोहात्मक अपराध करने वाला नहीं हूँ और छल करना भी नहीं जानता। किन्तु न जाने मेरे किस दुर्भाग्य का यह परिणाम है कि कल मुझे यहाँ आने में विलम्ब हो गया। मैं सच कह रहा हूँ—विलम्बात्मक अपराध के जिस प्रकार का दण्ड जीविकाच्छेद या शिरश्छेदन आप उचित समझें, मुझे दें, किन्तु मैंने विद्रोहात्मक कार्य तो नहीं किया है।

महा०—वाचाल ! कपटिन् ! तिष्ठ ! पश्यन्तु सर्वे विद्रोहिणो दण्डम् । [ इति शक्तिमुदतिष्ठिपत् ]

रघु०—महाराज ! अत्र भवतो भ्रमापनोदनाय तत्त्वं कथितवानस्मि । वाचालो नास्मि । अस्मत्कुलं कपटस्य कथामपि न जानाति । जननीमपि न स्मरामि । बाल्यस्यैव तातोऽपि सागरे मग्नः । प्रभुरेव जननी, जनकः, ईश्वरश्च । यदि मृतेऽपि वृद्धो गुरुर्वा नववयस्का एका अपरा व्यक्तिर्वा रोदिष्यति, नाऽन्यः । श्रीमच्चरणं ध्यायन् सुखेन प्राणांस्त्यक्ष्यामि । किन्तु यथा भवानेव पश्चात् दुःखेन न तप्येत, तथा विचार्य हन्तव्योऽयं बालः ।

---

वाचाल ! = मिथ्या बहुभाषिन् !
भ्रमापनोदाय = भ्रान्तिदूरीकरणाय ।
नववयस्का-एका अपरा-व्यक्तिः, एतेन गूढतया विलम्बकारणं प्रदर्शितम्, किन्तु दौर्भाग्यात्सौभाग्याद्वा तदानीं न शिवेनावधारितम् ।

---

महा०— वाचाल ! कपटी ! ठहरो ! विद्रोही को दिये जाने वाले दण्ड को सब लोग देखें । [ यह कहकर उन्होंने अपनी 'शक्ति' उठा ली ]

रघु०—महाराज ! श्रीमान् के भ्रम को दूर करने के लिये मैंने वस्तुस्थिति बतला दी है । मैं वाचाल नहीं । मेरा कुल कपट का नाम तक नहीं जानता । अपनी माँ का भी मुझे याद नहीं आ रही है । मेरी बाल्यावस्था में ही पिताजी भी समुद्र में डूब चुके हैं । आप ही मेरे लिये माता भी हैं, पिता भी तथा राजा भी । यदि मैं मर भी जाऊँगा तो एक वृद्ध गुरुजी और एक नववयस्का व्यक्ति ( सौवर्णी ) रोयेंगे, और कोई नहीं । श्रीमान् के चरणों का ध्यान करता हुआ मैं सुखपूर्वक अपने प्राण का परित्याग कर दूँगा । किन्तु इस बालक की हत्या आप सोच-विचार कर ही करें, ताकि पीछे आपको इसके लिये पश्चात्ताप न करना पड़े ।

महा०—नाहमधिकं शुश्रूषे तव व्यर्थप्रलपितम्।

[ इति कथयित्वा शक्तिं सज्जीकृतवान् ]

[ ततो जयपुराधीश्वरेण बहुशः सान्त्वितोऽपि, शक्तिं संस्थाप्यापि, क्रोधेनास्थिरः प्रोक्तवान् ] न त्वादृशानां निकटे जयपुराधीशानां खड्गः शोभते, तत् प्रतियच्छ।

रघु०—[ खड्गं सम्मुखेऽस्थापयत्। ]

महा०—दूरो भव, नाहं त्वादृशानां मुखमवलुलोकयिषामि।

रघु०—[ साष्टाङ्गं प्रणम्य निर्गतः ]

अथ मुहूर्त्तानन्तरं किञ्चित् प्रकृतिमापन्ने महाराष्ट्रेश्वरे महाराज-जयसिंहेन मन्दमुक्तम्—वीर! एकदा निर्दोषं बन्धुं वीरेन्द्रसिंहं कलङ्कितवानस्मि। स तु वैभवं त्यक्त्वा न जाने क्व गतः—

---

शुश्रूषे = श्रोतुमिच्छामि।

अवलुलोकयिषामि = अवलोकयितुमिच्छामि।

---

महा०—अब मैं तुम्हारा व्यर्थ का प्रलाप अधिक नहीं सुनना चाहता।

[ यह कहकर अपनी 'शक्ति' को शिवाजी ने सुसज्जित कर लिया ]

[ तदनन्तर जयपुर महाराज द्वारा बहुत प्रकार की सान्त्वना दिये जाने पर भी, शक्ति को रखकर भी, क्रोधकम्पमान शिवाजी ने कहा— ]

तुम्हारे जैसे नीच के पास जयपुराधीश्वर का खड्ग शोभित नहीं हो रहा है। अतः तुम इनका खड्ग इन्हें लौटा दो।

रघु०—[ खड्ग को सामने रख दिया ]

महा०—दूर हटो, तुम्हारे जैसे नीच का मैं मुँह तक देखना नहीं चाहता।

रघु०—[ साष्टाङ्ग प्रणाम कर वहाँ से चल पड़ा ]

तदनन्तर थोड़ी देर के बाद जब महाराष्ट्रराज शान्त हो गये तब जयपुरनरेश ने धीरे से उनसे कहा—वीर! एक बार निर्दोष बन्धु वीरेन्द्रसिंह को मैंने भी कलङ्कित किया है। वह सम्पत्ति को छोड़कर कहाँ चला

इत्यधापि स्मारं स्मारं खिद्ये । ततः कथयामि, दण्डे त्वरा न विधेया। मन्ये, अस्मिन् विषये बहु अवशिष्यते । तद् अङ्गीकरोषि चेत् प्रातरहमपि वास्तविक-विद्रोहिणं निश्चेतुं यते ।

महा०—नात्र मम विमतिः ।

जय०—उच्यतां प्रातः सर्वेऽप्येते मच्छिबिरमायान्त्विति ।

महा०—नरसिंह ! प्रिय माल्यश्रीक ! भवन्तः सर्वेऽपि प्रधानवीराः प्रातरेव महाराज-जयपुराधीश्वरस्य शिबिरं गच्छन्तु, पृष्टाश्च सत्यं वदन्तु ।

---

प्रकृतिम् = आवेशाविधुरावस्थाम् । आपन्ने = प्राप्ते । कलङ्कितवान् = मिथ्याक्षेपैराक्षिप्तवान् । वैभवम् = समर्थनम् । त्वरा = शीघ्रता ।

विमतिः = विभिन्ना मतिः । विपरीतः विचार इति यावत् ।

एवम्भूता क्षिप्रकारिताऽपि शिवराजपतनस्य कारणेष्वेकमित्यवधारणीयम् । या शैली पश्चादाभितैतद्विषयविवेचनाय जयसिंहेन स्वीकृता; सैव

---

गया—इसका पता भी नहीं है । आज बारम्बार उसकी याद कर खिन्न हो रहा हूं । इसलिए मैं कहता हूं—दण्ड देने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये । मैं समझता हूं कि इस विषय में अभी बहुत कुछ कर्त्तव्य अवशिष्ट ही है । अतः यदि आप चाहें तो सुबह मैं भी वास्तविक विद्रोही के निश्चय के लिये प्रयास करूं ।

महा०—इसमें मेरा वैमत्य नहीं है ।

जय०—अच्छा तो इन सबसे आप कह दें कि ये सब कल प्रातःकाल मेरे शिविर में आ जाएं ।

महा०—नरसिंह ! प्रिय माल्यश्रीक ! आप सब प्रधान वीर कल प्रातःकाल होते ही महाराज जयपुराधीश के शिविर में चले जायं और यदि आप कुछ पूछें तो आप लोग सत्य-सत्य बतलायें ।

जय०—सादिनः सत्वरं प्रेष्याः, ये रहोमत्तखानमपि सत्वरं परावर्त्त्य, अत्रैव स्थापयेयुः, रघुवीरं चाऽऽनयेयुः।

महा०—माल्य! तथा विधेहि।

माल्यश्रीकस्तथा विधातुं सादिनो धावितवान्। सायं समयमासन्नमवगत्य च सर्वे समुत्तस्थुः।

इति नवमो निश्वासः।

---

राजनीतिकयोग्यतापूर्णोऽति को नाङ्गीकुर्यात्! स्वाब्धतुल्यवीर्येण रहोमत्तखानेन कस्यचन सेनापतेर्व्यर्थहिंसायै कथितं भवेदित्यपि नावधारितं तदानीं यच्चदपि रुहराविलसितमित्यास्तां तावत्।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यां नवमनिश्वासविवरणम्।

---

जय०—घुड़सवारों को शीघ्र भेजवाये ताकि वे रहमत खाँ को भी शीघ्रता से लौटाकर यहीं रक्खें और रघुवीर को भी लौटा ले आवें।

महा०—माल्य! वैसा ही करो।

वैसा करने के लिये माल्यश्रीक ने घुड़सवारों को दौड़ाया एवम् सन्ध्या समय जानकर सब सभास्थान से उठ गये।

शिवराजविजय का नववाँ निश्वास समाप्त।

॥ श्री ॥

# दशमो निश्वासः

'मानो हि महतां धनम्।'
गङ्गा तीरमपि त्यजन्ति मलिनम्, ते राजहंसा वयम्।"

—मुक्तकम्

अथ प्रातरेव महाराज-जयसिंहो विसृज्य पर्य्यङ्कम् 'रघुवीरो निर्दोष.' इत्येव स्वप्नेषु पश्यन् प्रातर्विधेय-कर्मणो निवृत्य सभामधिष्ठाय चिरं निरणैषीत्। तेनाऽऽहूय, "सत्यं वद केन सूचितोऽसि, न ते भयम्, यथा निर्दोषो न भवेद्दण्डितस्तथा विधेहि"—

---

क्रूरेण क्रूरधिहन मिथ्याभियोग, क्रियत् क्षणस्य कृते स्वाभाविकत्वरयो स्वीकृतमपि च शिवबीर, स्वीय मान पालयितु तथा दूरीभूतो रघुवीरसिंहो यथा तदनिच्छयाऽन्वेषितोऽपि न लब्ध इत्युपगीयते "मानो हि महतां धनम्" इति "गङ्गातीरमि" ति च।

विसृज्य = परित्यज्य। पर्य्यङ्कम् = शोभनां खट्वाम्। प्रातर्विधेय-कर्मणः = उप कर्तव्यकार्यात्। निरणैषीत् = निरचैषीत्। आहूय = आकार्य। निर्दोषः = निरपराधः। विधेहि = कुरु।

---

"आत्मसम्मान ही महापुरुषों का सर्वस्व है।"

"हमलोग तो ऐसे राजहंस हैं जो दूषित हो जाने पर गङ्गा-तट का भी परित्याग कर देते।"

—मुक्तक

इसके बाद "रघुवीर निर्दोष है' इस प्रकार के स्वप्न दर्शन के पश्चात् प्रातःकाल में अपनी शय्या से उठकर महाराज जयसिंह अपने प्रातःकृत्य से निवृत्त हुये और तदनन्तर सभा में बैठकर चिरकाल तक उन्होंने विचार-विमर्श किया। उन्होंने रहमत खाँ को बुलाकर पूछा— 'सच सच बताओ—तुम्हें किसने सूचना दी है? तुम डरो मत। तुम ऐसा करो जिससे

इति पृष्टो रहोमत्तखान उवाच—'महाराज! अस्त्येकः क्रूरसिंहाख्यः सेनापतिः। तस्यैव साहाय्येन शास्तिखानेन पुण्यनगरं गृहीत-मासीत्। तेनैव वयमपि सूचिताः'।

ततः कोपकषायितेन महाराजेन क्रूरमानाययितुं सादिनः प्रेषिताः। स तु रात्रावेव गृहं त्यक्त्वा क्वापि पलायित इत्याकर्ण्य निश्चितस्तस्य दोष इति निरधारि। ततो रघुवीरमानाययितुं हयारोहान् विसृज्य संवादमाप्तवान्—यत् सभातो निर्वासितो रघुवीर आवासं गत्वा गुरुं गणेशशास्त्रिणं साष्टाङ्गं प्रणम्य, "अद्य निरागसोऽपि प्रभुणा विद्रोहीति कोपविषयीकृतोऽस्मि। धिङ् मे

कोपकषायितेन = रोषरक्तेन। आनाययितुम् = प्रापयितुम्। पलायित इत्याकर्ण्य, न केवलं रहोमत्तखानकथनेनैव दोषो निर्धारितो राजनीतिकुशलवशा जयसिंहेन, अपि तु पलायनरूपात्प्रत्यक्षाद्धेतोरिति बोधयति। आवासम् = निवासभूमिम्। दुरदृष्टम् = दुर्भाग्यम्। गुरुकण्ठम् =

कोई निर्दोष अपि दण्डित न हो।" इस प्रश्नपर रहेमत खाँ ने उत्तर दिया—'महाराज! एक क्रूरसिंह नाम का सेनापति है। उसी की सहायता से शाइस्ता खाँ ने पूना को घेर लिया था। हम लोगों को उसी से सूचना मिली थी।'

इसके बाद कोप से लाल लाल आँखों वाले महाराज ने क्रूरसिंह को बुलाने के लिये घुड़सवारों को दौड़ाया। परन्तु जब महाराज को यह खबर मिली कि क्रूरसिंह रात में ही अपना घर छोड़कर कहीं भाग गया तो उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि अपराध क्रूरसिंह का ही था। फिर रघुवीर को अपने पास लाने के लिए जब उन्होंने घुड़सवारों को भेजा तो लौट कर घुड़सवारों ने उन्हें सूचना दी कि सभा से बाहर निकाल दिये जाने पर रघुवीर सिंह अपने घर गये और अपने गुरुदेव श्रीगणेश शास्त्री जी को प्रणाम करते हुये उनसे "आज निर्दोष होने पर भी मुझे विद्रोही समझ कर महाराज मेरे ऊपर बिगड़ गये, मेरे इस दौर्भाग्य को धिक्कार है।' ऐसा

दुरदम्म्" इति मुक्तकण्ठं रुदित्वा, वृद्धं गणेशशास्त्रिणञ्च रोदयन्, गृहान्निर्गतो न परावर्त्तत— इति।

इत्याकर्ण्य मन्त्र सम यावत् खिद्यते महाराजस्तावदकस्मात् प्रविवेश दुःखेन कम्पन च विह्वलो गणेशशास्त्री। उक्तवांश्च—

महाराज! महाराज! अपि भवादृशानां सम्मुखे उचितोऽयम न्यायप्रचारः? किं रघुवीर-सदृशानि कुलीनानामपत्यानि विद्रोहं माचरन्ति? अहह! हा! हा! हा! मिथ्यैव कलङ्कितोऽस्मि'-इति भूमौ विलुठन् रुदतो बालस्य मूर्ति रचितेव मद्धृदये। महाकुलस्य मानधनो बालो न जाने क्व गतः? न च जाने असौ मान-हानि खिन्नः स्नानयत्न ना वाहिनी प्रवाहे वा पतिष्यति गरलं भक्ष

निदारितगलम्। मुक्तकण्ठमिति यावत्। रोदयन्=क्रन्दयन्।

अन्यायप्रचारः=अनातिव्यवहारः। कुलीनानाम्=सत्कुलप्रसूतानाम्।

रचिता=आलिखिता। मानधनः=अभिमानवित्तः। वाहिनी प्रवाहे=तरङ्गिणी-आवर्ते। गरलम्=विषम्।

कह कर चारों स रो पड़ और अपने पीछे वृद्ध गणेश शास्त्री जी को भी रुलाते हुए भी घर से निकले उसके बाद अब तक लौटे नहीं हैं।

उसकी बात सुन कर अपने चार सभासदों के साथ महाराज के चिन्तामग्न होने हो उधर से दुःख तथा क्रोध से विह्वल गणेश शास्त्री जी भी एकाएक वहाँ आ पहुँचे। आते ही शास्त्रीजी ने कहना शुरू किया—

महाराज! महाराज! क्या आप जैसे महान् व्यक्ति के समक्ष भी अन्याय का इतना-प्रचार उचित है! क्या रघुवीर जैसे सत्कुल प्रसूत लोग भी विद्रोह कर सकते हैं! "हाय! हाय! मैं मिथ्या-कलङ्क का भागी बन गया।" यह कह कर जमीन पर गिर कर रोने वाले उस बालक (रघुवीर) की प्रतिमा मेरे मन में गड़-सी गई है। पता नहीं, वह सत्कुलोत्पन्न एवम् सम्मान को ही अपना सर्वस्व समझने वाला बालक कहाँ चला गया। यह भी कहना कठिन है कि आत्मापमान से अत्यन्त खिन्न वह बालक स्नान के

थिष्यति, तपोभिर्वा शरीरं जर्जरयिष्यति! हन्त! हतोऽस्मि! को मां वृद्धं 'तात तातेति' मधुर-भाषण-पुरस्सरं सेविष्यते।

तदाकर्ण्य गणेशशास्त्रिणा सहैव सर्वेऽपि बाष्प-धाराभिः कपोलावस्नपयन्।

ततो रघुवीरान्वेषणाय बहूनश्वारोहान् विसृज्य गणेशशास्त्रिणं पुनरुवाच महाराजः—

वृद्ध! ह्यो रघुवीरोऽपि कुल-गौरवमशंसत, भवानपि चाऽऽम्रेड्य तत्कुलकथां संस्मरति। तस्य वीरताव्यवहारः, गम्भीरं भाषणम्, औदार्य-पूरितं हृदयम्, तेजस्विनी आकृतिश्च, कुलमेव परिचाययन्ति। किन्तु विशिष्य विज्ञातुमेतस्य भवतश्च वृत्तान्तं चपलं

---

अशंसत=अकथयत्। आम्रेड्य=द्विस्त्रिरुद्घुष्य। वीरताव्यवहारम्=शूरताकर्त्तव्यम्। औदार्यपूरितम्=उदारताभरितम्। तेजस्विनी=प्रतापमयी। आकृतिः=रूपम्। परिचाययन्ति=बोधयन्ति। चपलम्=

---

मुँह में जा पहुँचेगा, या नदी के प्रवाह में अपने शरीर को बहा डालेगा, या विष खाकर प्राणोत्सर्ग कर देगा, या कठिन तपस्या से ही अपने कोमल शरीर को जर्जर कर डालेगा। हाय! अब मर चुका। अब कौन सा व्यक्ति मुझे अपने मधुर बातचीत के साथ "तात! तात!" कहेगा और मुझ वृद्ध की सेवा करेगा।

शास्त्री जी का करुण क्रन्दन सुनते ही सब के मुँह आँसुओं से धुलने लग गये।

तत्पश्चात् रघुवीर को ढूँढने के लिये अनेक घुड़सवारों को भेजकर महाराज ने शास्त्री जी से कहा—वृद्ध शास्त्रीजी! कल रघुवीर ने स्वयम् अपने कुल का गुण-गान किया था और आप भी उसकी उच्च कुल स्थिति का वर्णन कर रहे हैं। इतना ही नहीं, उसके वीरतापूर्ण व्यवहार से, गम्भीरतापूर्ण वचनों से, उदारता भरे हृदय से तथा देदीप्यमान आकृति

मे चेतः। मन्ये भवन्तमपि कदाचन दृष्टवानस्मि, भवतो भाषण-भङ्गी चानुकरोत्यस्मद्देशीयानां परिपाटीम्। तद्विशकलय्य प्रोच्यताम्, कुतस्त्यो भवान्? किमितिहासश्च रघुवीरः?—इति।

तदाकर्ण्य वृद्ध उवाच—"महाराज! इतिहासमस्य श्रुत्वाऽधिकं खेदमावक्ष्यति भवान्, तदलं शोकसमुद्रमन्थनैः"। तत पुनः पुनराग्रहेण पृच्छ्यमानो वृद्धः शृण्वत्सु माल्यश्रीकगौरसिंहादिषु समवादीत्—

देव! किं न स्मर्यते भवता जितवार-भूस्वामी भवद्बन्धुः? यो

---

विशालवक्षसम्। भाषणभङ्गी = कथनशैली। परिपाटीम् = शैलीम्। क इतिहासो यस्य सः किमितिहासः = किमितिवृत्तः।

आवक्ष्यति = प्राप्स्यति। शोकसमुद्रस्य = खेदपारावारस्य, मन्थनैः = आलोडनैः।

जितवारनाम्नो ग्रामस्य भूस्वामी = ग्रामपतिः।

---

से भी उसके उच्चकुल का ही परिचय मिलता है। किन्तु उसके तथा आपके पूरे वृत्तान्त को स्पष्टरूप में समझने के लिये मेरे मन में उत्सुकता बनी हुई है। मैंने आपको भी प्रायशः पहले कभी देखा है और आपकी भाषणशैली भी मेरे देश के रहनेवालों जैसी ही लगती है। अतः आप मुझे विस्तारपूर्वक अपना परिचय दें और रघुवीर का भी सारा इतिहास बतलायें।

महाराज की वाणी सुनकर वृद्धशास्त्रीजी ने उत्तर दिया—महाराज! हम लोगों के इतिहास को सुनकर आप बहुत खिन्न हो उठेंगे। अतः इस शोक सागर का मथन करना व्यर्थ है। परन्तु बारम्बार महाराज द्वारा आग्रहपूर्वक पूछे जाने पर शास्त्रीजी सुनने के लिये दत्तचित्त माल्यश्रीक एवम् गौरसिंह आदि के बीच बैठे हुये महाराज से कहने लगे—

महाराज! क्या आप जितवार नामक गाँव के अधिपति अपने मित्र का स्मरण नहीं कर पा रहे हैं जिन्होंने निरपराध होने पर भी आपके

भवता विनैवापराधमवहेलितः सर्वस्वं त्यक्त्वा, राजपुत्र-देशमेव त्यक्तवान्।

जय०—कथं न स्मर्यते ? आजन्म स्मरिष्यामि, पश्चात्तापैश्च हृदयं धक्ष्यामि। [ पटान्तेन बाष्प परिमृजन् ] ततः—

गणेशशास्त्री—तस्यैवाहं पुरोहितोऽस्मि, तत्रैव मां भवान् बहुशोऽद्राक्षीत्।

जय०—आः ! स भवान् ! [ इत्युत्थाय प्रणनाम ]

गणेश०—[ आशिष उक्त्वा ] तेनैव सहाहमपि प्रचलितः।

जय०-किं तेनैव सह ? वीरेन्द्रेणैव सह ? किं वीरेन्द्रसिंहोऽधुनाऽपि भवदाश्रमे सहास्ति ? अपि तमालिङ्ग्य चिरताप-व्यथां

---

अवहेलितः = तिरस्कृतः। सर्वस्वम् = सर्वं धनम्।
पश्चात्तापैः = अनुतापैः। धक्ष्यामि = ज्वलयिष्यामि।
भवदाश्रमे = भवत्कुटीरे। चिरतापव्यथाम् = दीर्घविरहपीडाम्।

---

द्वारा अपमानित होकर अपनी सारी सम्पत्तियों के साथ-साथ आपके देश को भी छोड़ दिया था।

जय०—स्मरण कैसे नहीं करूँ ? मैं तो जीवनपर्यन्त उनका स्मरण करता रहूँगा और पश्चात्ताप से मेरा हृदय जलता रहेगा। [ तौलिये से आँसू पोंछते हुये ] अच्छा, इसके बाद·······

गणेशशास्त्री—मैं उन्हीं का पुरोहित हूँ। आपने मुझे वहीं कई बार देखा है।

जय०—अच्छा, आप उनके पुरोहित हैं। [ इतना कहते हुये उठकर महाराज ने उन्हें प्रणाम किया। ]

गणेश०—[ आशीर्वाद देते हुये ] उन्हीं के साथ मैं भी वहाँ से चल पड़ा था।

जय०—क्या उन्हीं के साथ ? उन्हीं वीरेन्द्रसिंह के साथ ? क्या वीरेन्द्रसिंह आज भी आपके साथ आपके आश्रम में रह रहे हैं ? क्या मैं

पर्यवसाययिष्यामि ?

गणेश०–महाराज ! अमुना वीरेन्द्रेणैव सह निर्यातोऽस्मि। वयं सर्वेऽपि प्रथमं द्वारकाधीशं द्रष्टुं प्रचलिता। ततो महता पोतेन मुम्बापुरीं निवर्तमाना अकस्माद् झञ्झावाताऽऽघातात् पोतपातमन्वभवाम। ततः सपदि मया वीरेन्द्रकुमारो रामसिंह उत्तरीयवाससा स्कन्धे बद्धः। दैवाद्वाऽऽवाभ्यामुभाभ्यां पुरोहितयजमानाभ्यां कार्पास-भार-द्वयं लब्धम्, तदवलम्ब्य यावत् पुरोऽवलोक्य सांयात्रिक-क्रन्दन-श्रवण-सञ्जातं रोमोत्कम्पमन्वभवाव, तावन्मन्दर-गण्ड-शैल इव पारावारतलमगात् पोतः।

---

पर्यवसाययिष्यामि = परितः समापयिष्यामि।

निर्यातः = निष्क्रान्तः। महता, पोतेन = जलयानेन। मुम्बापुरीम् = मोहमयीम् 'बंबे'। झञ्झावाताघातात् = वृष्टिकमहावायुताडनात्। पोतपातम् = जलयानपतनम्। सांयात्रिकाणाम्=पोतवणिजाम्। संयात्रा = समुदितयात्रा द्वीपान्तरयात्रा वा प्रयोजनमस्येति प्रयोजने ठञ्। क्रन्दनश्रवणेन = रोदनश्रुत्या, सञ्जातम् = सम्भूतम्। रोमोत्कम्पम् =

---

उनको आज गले लगाकर अपने पुराने पश्चात्ताप की व्यथा को समाप्त कर सकूँगा ?

गणेश०—जी हाँ, महाराज ! मैं तो ग्रामाधीश वीरेन्द्रसिंह के साथ ही वहाँ से चल पड़ा था। सब से पहले तो हम लोग द्वारकाधीश को ही देखने चले गये थे। बाद में जब वहाँ से हम लोग एक विशाल जलयान से बम्बई को लौट रहे थे उस समय एकाएक इतने जोरों से वर्षा तथा आँधी आयी कि हम लोगों का जलयान डूबने लग गया। तब झटके से मैंने अपने द्वितीय वस्त्र से वीरेन्द्रसिंह के सुपुत्र रामसिंह को अपने कन्धे पर बाँध लिया। सौभाग्यवश हम दोनों पुरोहित यजमान को समुद्र में तैरते हुये रूई के दो भार (गाँठ) मिल गये और उन दोनों का सहारा लेकर हम लोग जलयान की ओर देखते समय समुद्र-यात्रियों के करुणक्रन्दन को सुनकर रोमाञ्च का अनुभव कर ही रहे थे कि इतने में ही वह जलयान

क्षणं तरङ्गैरान्दोल्यमानो वीरेन्द्रसिंहो दृश्यमानोऽपि, ऊर्मि-राशिभिर्न जाने कुतो नीतः। अहञ्च रामसिंह-सहितो मूर्छितप्रायः समस्तां रात्रिं वीचि-प्रचयैर्दोदुल्यमानः, अरुणोदयसमये समपश्यम्—यत् केचन सांयात्रिका आवां स्वपोते उत्थाप्य, पयोधि-पय:क्षार-क्षरितप्रायां त्वचं तैलैर्मर्दयन्तीति। अथ कालेनोल्लाघौ आवामितः पुण्यनगरमायातौ। रामसिंहो दुरवस्थासमये स्वनामापि ख्यापयितुं लज्जमानो रघुवीरनाम्नाऽऽत्मानं परिचाययन् महाराष्ट्र-

---

पुलकम्। मन्दरस्य=तन्नामकोऽचलस्य। गण्डशैल इव=पर्वतच्युतस्थूलोपल इव। पारावारतलम्=समुद्रगर्भम्। अगात्=अगमत्।

आन्दोल्यमानः=हिल्लोल्यमानः। ऊर्मिराशिभिः=लहरिततिभिः। नीतः=प्रापितः। वीचिप्रचयैः=तरङ्गसङ्घैः। दोदुल्यमानः=उत्क्षिप्य-माणः। पयोधिपयसः=अम्भोधिवारिणः। क्षारेण=लवणभागेन। क्षरितप्रायाम्=जर्जरिताम्। उल्लाघौ=नीरोगौ। दुरवस्था-समये=

---

मन्दराचल की चोटी से गिरे हुये बड़े पत्थल के टुकड़े की तरह समुद्र में डूब गया।

यद्यपि थोड़ी देर तक समुद्र की तरङ्गों का आघात खाते हुये वीरेन्द्र सिंह भी दिखलाई पड़े तथापि उन तरङ्गों ने उन्हें कहाँ ले जा छोड़ा—इसका पता नहीं। इधर रामसिंह के साथ सारी रात उन तरङ्गों के बीच गोता खाता हुआ मृत-प्राय मैंने अरुणोदय के समय देखा कि कुछ यात्री लोग हम दोनों को अपनी नाव में रख कर समुद्र के खारे जल में चिर-काल तक तैरने के कारण रूखी पड़ गई हम लोगों की त्वचा पर तेल-मालिश कर रहे थे।

कुछ समय के बाद जब हम लोग स्वस्थ हो गये तब पूना आ गये। अपनी दुरवस्था की अवधि में अपने सच्चे नाम को बतलाने में लज्जा का अनुभव करते हुये रामसिंह भी अपने को रघुवीर नाम का एक साधारण व्यक्ति बतलाकर महाराष्ट्रराज शिवाजी के यहाँ दूत का काम करते हुये

राजस्य चरेषु प्राप्तजीविकः संवृत्तः। इतः परमवगत एव वृत्तान्त एतस्य भवताम्। हा! रामसिंहो मां वार्द्धक्ये विहाय न जाने क्व गतः? [ततः सर्व एव सर्वेऽपि सचिन्ताः समवर्तन्त। गौरसिंहादयोऽपि च परस्परमवलोक्य, किमपि व्याजिहीर्षव इव महाराज विवक्षुमाकलय्य, पुनस्तत्र एव दत्तकर्णाः समतिष्ठन्त]

जय०—[सजलनयनः समुच्छ्वस्य] शास्त्रिन्! रामसिंहो जीवति। मत्प्रेषिताः सादिनस्तमन्विष्य सपद्यानेष्यन्तीति विशिष्य सम्भावयामीति। अन्यथाऽपि स नाऽऽत्मानं व्यापादयिष्यति। यतो नास्मत्कुले जाता मूढयोषित इवाऽऽत्मानं घ्नन्ति। सोऽपि निश्चयेन गूढ-

अशोभनकाले। प्राप्तजीविकः = लब्धवृत्तिः। वार्द्धक्ये = वृद्धावस्थायाम्।
व्याजिहीर्षवः = व्याहर्तुमिच्छवः, आकलय्य = विज्ञाय। तत्र एव = तत्रैव। दत्तकर्णाः = अवहितश्रोत्राः।

विशिष्य = विशेषतः। सम्भावयामीति = अतितरां सम्भवति। अन्यथापि = अप्राप्तावपि। व्यापादयिष्यति = मारयिष्यति। मरिष्यतीति यावत्। मूढयोषित इव = मूर्खस्त्रिय इव। आत्मानं घ्नन्ति = आत्म-

अपना जीवन बिताने लग गया। उसके बाद का रघुवीर का इतिहास तो आपको ज्ञात ही है। हाय! पता नहीं—इस वृद्धावस्था में मुझे छोड़कर रामसिंह कहाँ चला गया! [इन बातों को सुनते ही सब चिन्तित हो पड़े। गौरसिंह आदि एक दूसरे की ओर देखकर कुछ बोलने को ही थे कि महाराज को ही बोलने की मुद्रा में देखकर उधर ही ध्यानस्थ हो गये]।

जय०—[आँखों में आँसू और लम्बी साँसें भर कर] शास्त्रीजी! यदि रामसिंह जीवित है तो इस बात की पूरी आशा है कि मेरे भेजे हुये घुड़सवार उसे खोजकर शीघ्र ही यहाँ ले आयेंगे। यदि ऐसा न भी हुआ तब भी वह आत्महत्या नहीं करेगा, क्योंकि हमारे वंशज किसी भी परिस्थिति में मूर्ख स्त्रियों की तरह आत्महत्या नहीं करते। मेरे मन में पूरा

पौरुषं प्रदर्श्य समये पुनरात्मानं परिचाययिष्यतीति विश्वसिति मे हृदयम् ।

गणेश०—महाराज ! तथाऽस्तु, चिरञ्जीवतु कुमार-रामसिंहः, स एव मेऽवलम्बः । न जाने तत्पिता प्रभुर्वीरेन्द्रो नक्रैर्भक्षितो वा, तरङ्गैरेव कथाऽवशेषीकृतो वा, तटं प्राप्यापि कृतान्तेन वीक्षितो वा, क्वापि पुत्रशोकाकुलो जीवति वेति ।

गौरसिंहः—शास्त्रिन् ! महाराज ! जीवति वीरेन्द्रसिंहो वीरवरः । नेदीयस्येव ब्रह्मचारि-कुटीरे जटिल-वेषेण वसति । स्वपुत्र रामसिंह-मेव प्राप्तुं देवमाराधयति । वयमपि चिरं कुमार-रामसिंहममार्गयाम,

---

हन्या कुर्वन्ति । गूढपौरुषम् = गुप्त पुरुषकारम् । विश्वसिति = विश्रम्भते ।

अवलम्बः = आधारस्तम्भः । नक्रैः = मकरै । यादोभिरिति यावत् ।
कथावशेषीकृतः = मृत्युं प्रापितः । कृतान्तेन = यमेन । वीक्षितः = दृष्टः ।

नेदीयसि = निकटस्थे । जटिलवेषेण = साधुवेषेण । आराधयति=

---

भरोसा है कि अवसर आने पर रामसिंह अपने लोकोत्तर पौरुष का प्रदर्शन करके अपने को स्वयम् प्रकट कर देगा ।

गणेश०—महाराज ! आपकी वाणी सत्य होवे । राजकुमार रामसिंह दीर्घजीवी हो । मेरा तो एकमात्र वही सहारा है । किन्तु मुझे इस बात का पता नहीं लग सका कि रामसिंह के पिता राना वीरेन्द्रसिंह ग्राहों के शिकार बन गये या तरङ्गों के आघात से ही मर गये या किनारे लगने के बाद ही उन पर यमराज की क्रूर दृष्टि आ पड़ी या आज भी अपने पुत्र के वियोग में विह्वल होते हुये कहीं जिन्दे ही हैं !

गौरसिंह—शास्त्रीजी ! महाराज ! वीरों में अग्रगण्य राजा वीरेन्द्रसिंह आज भी जीवित ही हैं । पास की ब्रह्मचारी की कुटिया में ही ब्रह्मचारी के वेष में वे रह रहे हैं । अपने प्रिय पुत्र रामसिंह को पाने के लिए ही ईश्वर की आराधना कर रहे हैं । हम लोग भी चिरकाल तक रामसिंह को ढूँढते रहे,

परन्तु रघुवीर एवायमिति परिचयो न लब्धः। हा दैव! विचित्रा ते घटना! यदर्थं ततो देवशर्म्मा वयञ्च चिराय रुदिमः; स एव कण्ठगतो मणिरिव न ज्ञातः।

ततः सर्वे चिरं बहुविधं वीरेन्द्रादि-विषये आलेपुः। परतः सर्वैः सह जयपुर-पुरन्दरः स्वयं कुटीरं गत्वा ब्रह्मचारि-वेषं वीरेन्द्रमालिलिङ्ग। उक्तवांश्च यद्-मयि क्षमां विधाय द्विगुण राज्यमङ्गीकृत्य सनाथ्यतां राजपुत्रदेशः - इति। सोऽवोचत्-महाराज! न भवतो दोषः, भवत्येव भाव्यम्। अहन्तु कुमार-रामसिंहस्य मुखं दृष्ट्वा काशीं गत्वा वयो निःशेषयिष्यामि। महा-राजेन रामसिंह एवान्विष्यताम्, तस्मै एव राज्यं दीयताम्।

सेवते। अमार्गयाम = अन्वेषयाम। रुदिमः = क्रन्दाम।

आलेपुः = आलाप चक्रुः। ब्रह्मचारिवेषम् = वर्णिलिङ्गिनम्। सनाथ्यताम् = स्वीक्रियताम्। भाव्यम् = भवितव्यम्। निःशेषयिष्यामि =

परन्तु इस बात की जानकारी नहीं मिल पाई थी कि रघुवीर ही रामसिंह है। हाय विधाता! तुम्हारी लीला भी अजीब है। जिसके लिए उसके प्रिय पिता, देवशर्मा तथा हम लोग भी चिरकाल से रो रहे हैं वह गले में लटके मणि की तरह पास में रहकर भी पहचान में न आ सका।

उसके पश्चात् सबों ने चिरकाल तक वीरेन्द्रसिंह आदि के प्रसङ्ग में आलाप विलाप किये। बाद में सबों के साथ ही जयपुराधीश ने स्वयम् उस कुटिया में जाकर ब्रह्मचारी के वेष में वर्तमान वीरेन्द्रसिंह को गले लगा लिया और उनसे कहा भी—मेरे अपराधों को क्षमा कर अब आप दूने राज्य का स्वीकार करें और राजस्थान को अपनी उपस्थिति से सनाथ करें।

वीरेन्द्रसिंह ने उत्तर दिया—महाराज! इसमें आपका कौन सा अपराध है! भवितव्यता टलती नहीं। किन्तु अब मैं रामसिंह का मुख देखकर काशी में ही अपना जीवन बिताऊँगा। अतः अब श्रीमान् रामसिंह की ही खोज करें और उसी को यह राज्य दें। हाय! मैं कितना बड़ा अन्धा हो गया कि

अन्धोऽहं यत् प्रत्यहं पश्यन्नपि नाज्ञासिषं-यद् रघुवीरो मे रामसिंहः—इति।

अथ गणेशशास्त्रिणाऽपि वीरेन्द्रः समालिङ्गितः। परतश्च खेदमया बहवः आलापा अभूवन्।

परम्परया वृत्तान्तमिमं शृण्वन्नेव महाराष्ट्रराजोऽपि कुटीरमायातो वाष्पैः कपोलौ क्षालयन्, "ममैवाविचार्यकारितायाः फलमेतत्"-इत्यसकृदुवाच। तावत्प्रविश्य भृत्येनैकेन कथितं "जयतु जयतु जयपुराधीश्वरः! तत्रभवतः सम्राजः पत्रमादाय दिल्लीतः सादिन आयाताः, शिबिरद्वारि च तिष्ठन्ति। अत्र प्रभवः प्रमाणम्"।

ततो वीरेन्द्रं गणेशं च बहुशः सान्त्वयित्वा सर्वेऽपि समुत्थाय स्वहयानारूढा वायुवेगेन निर्दिष्ट-शिबिरमायाताः। अन्तः प्रविश्य

---

समापयिष्यामि। नाज्ञासिषम् = नावेदिषम्।

अविचार्यकारितायाः = अनवधार्य करणस्य। असकृत् = अनेकवारम्।

---

प्रतिदिन देखने के बावजूद भी यह नहीं समझ सका कि वह रघुवीर तो मेरा ही बेटा रामसिंह था।

इसके बाद गणेश शास्त्री ने भी वीरेन्द्रसिंह का आलिङ्गन किया। तत्पश्चात् अनेक प्रकार के करुणापूर्ण वार्तालाप हुए।

जन परम्परा से इस वृत्तान्त को सुनते ही महाराष्ट्रराज शिवाजी भी वहाँ पहुँच गए और आँसुओं से अपने गालों को नहाते हुए बारम्बार कहने लगे—मेरे ही अविवेक पूर्ण व्यवहार का यह परिणाम है। इतने में ही एक दूत ने वहाँ आकर कहा—जयपुर-महाराज की जय हो, जय हो। दिल्ली-सम्राट् का एक पत्र लेकर उनके अश्वारोही दूत यहाँ आकर शिविर के दरवाजे पर खड़े हैं। ऐसी स्थिति में श्रीमान् ही प्रमाण हैं।

उसके बाद वीरेन्द्रसिंह तथा गणेश शास्त्री को अनेक तरह की सान्त्वना देकर सब उठ गये और अपने-अपने घोड़े पर सवार होकर बहुत तेजी से

पत्रं पठित्वा जयपुरेश्वरः सर्वान् विसृष्टवान्, रहसि च महाराष्ट्रेश्वरेण समालपत्।

जय०—राजन्, पत्रमिदं दिल्लीश्वरस्य।

महा०—आम्! अवगच्छामि।

जय०—भवतो मेलनेन प्रसीदति सम्राड् इति प्रकटयति।

महा०—प्रसादोऽयमत्रभवतः।

जय०—भवन्तं साक्षात्कर्तुं महाराजस्य महानभिलापः।

महा०—[ क्षणं तूष्णीं स्थित्वा ] तत्किं सम्राडित आजिगमिषति?

जय०—नहि नहि। तत्रैव भवन्तं सत्चिकीर्षति।

महा०—महाराज! भवद्वचने सर्वथा विहितविश्वासोऽस्मि,

---

मेलनेन = सन्धिना।

सत्चिकीर्षति = सत्कर्तुमिच्छति।

---

उस शिविर में आ पहुँचे जहाँ दिल्ली सम्राट् के दूत उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। शिविर में घुसने के बाद जब जयपुर-नरेश ने पत्र पढ़ा तब वे सबको बाहर हटाकर शिवाजी से एकान्त में बात करने लगे।

जय०—महाराज! यह पत्र दिल्लीसम्राट् का है।

महा०—हाँ, मैं जानता हूँ।

जय०—यह पत्र ऐसा बतला रहा है कि आपसे मिलने से दिल्ली-सम्राट् को बड़ी प्रसन्नता होगी।

महा०—यह तो उनकी (या आपकी) कृपा है।

जय०—आपको देखने की उत्कट अभिलाषा सम्राट् के मनमें है।

महा०—[ कुछ देर तक चुप रहने के बाद ] तो क्या सम्राट् यहाँ आना चाहते हैं?

जय०—नहीं नहीं। दिल्ली में ही आपका सत्कार करना चाहते हैं।

महा०—महाराज! आपकी बातों पर तो मुझे पूरा विश्वास है ही,

किन्तु न भवति मे प्रत्ययलेशोऽपि यवनेषु। यत् स्वगृहमागतं चिरविरोधिनं चेन्निगृह्णीयात्"

जय०—मैवम्, मैवम्, अहं तस्य पितुरसमीपे चिरं युद्धकार्यम-करवम्। तन्मामत्यन्तं सम्मानयत्येषोऽपि—इति निश्चिनोमि। अस्मासु मध्यस्थेषु न प्रतीपमाचरिष्यति सम्राट्।

महा०—[ चिरं चिन्तयित्वा ] महाराज! चिरं यवनैर्युद्धवानस्मि इति स्मरन् मे शत्रुता निश्चितं निग्रहीष्यति मां सम्राड्-इति न जाने कः कथयतीव मम कर्णे, लिखतीव च हृदये।

जय०—शत्रुरपि संहितो मित्रं भवति। ततोऽपि भवान् कुशलिनं त्यक्तवान् कुमारं मायाजिह्मम्, समर्य्यादा यापितवान् कुमारीं

---

प्रत्ययलेशः = मात्रयाऽपि विश्वासः।

प्रतीपम् = विरुद्धम्, शत्रुकृत्यम्।

निग्रहीष्यति = बद्ध्वा कारागारे निवासयति। कथयतीव=श्रावयतीव।

संहितः = सम्मिलितः। कुशलिनम् = अक्षतम्। समर्य्यादाम् =

---

परन्तु यवनों के ऊपर तो मैं जरा भी विश्वास नहीं रखता। यदि चिर-विरोधी होने के कारण वे अपने घर में पहुंचने पर पकड़ लें तो !!

जय०—नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता। मैंने चिरकाल तक दिल्ली नरेश के पिता के पास युद्ध कार्य किया है और इसलिये दिल्ली सम्राट् भी मेरा बहुत ही सम्मान किया करते हैं—यह मैं निश्चित रूप में जानता हूँ। फिर हमारे मध्यस्थ रहते ऐसा प्रतिकूल काम सम्राट् कथमपि नहीं करेंगे।

महा०—[ बहुत देर तक सोच कर ] महाराज मैंने तो बहुत दिनों तक यवनों से लड़ाई की है। इसलिये सम्राट् मेरी शत्रुता की याद करते हुए मुझे अवश्य ही पकड़ रखेंगे। ऐसी बात कौन सा व्यक्ति मेरे कानों में कह सा रहा है और हृदय में लिख-सा रहा है। इसका पता नहीं लग रहा है।

जय०—मिलने के पश्चात् शत्रु भी मित्र बन जाता है। और भी, आपने जो सकुशल कुमार मुअज्जम को छोड़ दिया है, इज्जत के साथ

रसनारीम्, सपराक्रमं विजितवान् रुद्रमण्डलमहादुर्गम्—इति किं तेन न स्मरिष्यते ?

महा०—आर्य ! ये काशी-मथुरादि-तीर्थस्थानानि निरर्थं भ्रंशयन्ति, मन्दिराणि निपातयन्ति, प्रतिमाश्च चूर्णयन्ति, तेषां न सम्भाव्यते सौजन्य-लेशोऽपि। तत् क्षम्यताम्, युद्धे मर्तुमुपदिशति, न च मेऽन्तरात्माऽङ्गीकरोति दिल्ली-यात्राम्।

जय०—[ क्षण विचिन्त्य ] अथ मन्यताम्—मया लिखितं भवद्स्वीकारं श्रुत्वा पुनर्भवता सह युद्धमारभेत ?

महा०—तद् योत्स्ये !

---

धर्मरत्नपुरस्कृताम्। यापितवान् = प्रापितवान्। सपराक्रमम् = सबलप्रदर्शनम्।

निरर्थम् = निष्प्रयोजनम्। चूर्णयन्ति = पेषयन्ति। ध्वंसयन्तीर्थ्यावत्। उपदिशति = कथयति। अन्तरात्मा = अन्तःकरणम्। तदुक्तम्महाकविना—

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः"

---

रोशनआरा को लौटा दिया है और पराक्रमपूर्वक रुद्रमण्डल नाम की विशाल किला को जीत लिया है—इन बातों को क्या वे भूल जायेंगे ?

महा०—आर्य ! जो काशी, मथुरा आदि तीर्थ-स्थान को बिना किसी प्रयोजन के ही बरबाद करने वाले हैं मन्दिरों को व्यर्थ गिरा देने वाले हैं और देवमूर्तियों को चूर-चूर कर देने वाले हैं उनमें सज्जनता की तो गन्ध भी सम्भावित नहीं है। अतः आप क्षमा करें, मेरी अन्तरात्मा मुझे युद्ध में मर जाने की अनुमति दे रही है किन्तु दिल्ली जाने की नहीं।

जय०—[क्षण भर सोच कर] अच्छा तो मैं अब आपके दिल्ली न जाने की बात उन्हें लिखूँगा और उसे जान कर वे आपके साथ पुनः युद्ध करने को तैयार हो जायेंगे तब ?

महा०—तब युद्ध करूँगा।

जय०—एतस्मिन् विषये सत्वरता नोचिता। निरीक्ष्यताम्, ससेनोऽहमेव समीपे निवसामि। यदि भवता सह योद्धुमहमेवाऽऽदिश्ये ?

महा०—[ विचिन्त्य ] महाराज! मम कृपाणः स्वदेशीयानां शोणितं न पिपासति—इति पूर्वमेवोक्तवानस्मि। परं दिल्लीगमने निग्रहमाशङ्कते मे हृदयम्।

जय०—निग्रहो नाऽऽशङ्कनीयः, कुशलेन भवन्तं पुनरत्र परावर्तयितुमहं प्रतिजानामि। मम पुत्रो रामसिंहः स्वसहकारेण भवन्तं सभायां नेष्यति, सत्करिष्यति च। कुमार-मायाजिह्ममपि पत्रं लिखामि। सोऽपि ससम्मानं प्रतियापयिष्यति।

---

सत्वरता = शैघ्र्यम्। ससेनः = सवाहिनीकः। आदिश्ये = समाज्ञप्तः स्याम्। निग्रहम् = बन्धनम्। कुशलेन = क्षेमेण। परावर्तयितुम् = महाराष्ट्रदेश प्रापयितुम्। प्रतिजानामि = प्रतिज्ञा करोमि। स्वसहकारेण = निजसहायकत्वेन। सत्करिष्यति = आदरिष्यते। प्रतियापयिष्यति = प्रत्यावर्त्तयिष्यति।

---

जय०—इस विषय में हठात् निर्णय कर लेना आपके लिये उचित नहीं होगा। देखिये, मैं तो सेनाओं के साथ आपके यहाँ रहता ही हूँ। यदि सम्राट् मुझे ही आपसे लड़ने की आज्ञा दे देंगे तो ?

महा०—[ सोच कर ] महाराज! मेरी तलवार अपने देश के लोगों का खून पीना नहीं चाहती—यह बात तो मैंने पहले ही आपसे कह दी है। परन्तु दिल्ली जाने से तो मेरा मन पकड़ लिये जानेकी आशङ्का करता ही है।

जय०—पकड़ लिये जाने की कोई आशङ्का नहीं है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप सकुशल दिल्ली से यहाँ लौट आयेंगे। मेरा लड़का रामसिंह अपने साथ आपको सम्राट् की सभा में ले जायेगा और आपका सत्कार भी करेगा। मैं कुमार मुअज्जम को भी एक पत्र लिख दे रहा हूँ। वे भी आपको सम्मान के साथ वहाँ से भेज देंगे।

महा०—श्रुतं श्रीमता गोवधप्रतीकारविषये सम्राट्-समीपे पत्रमेकं प्रेषितमासीत, किन्तु तन्नाङ्गीकृतं तेन। एवमेव पुनर्भवदीय-मन्त्रणा-श्रवणे बधिरीभूय, यदि इतोऽपि स मयि पापमाचरेत् ?

जय०—तर्हि अहमपि स्वदेह-त्यागेन प्रायश्चित्तमाचरिष्यामि।

महा०—शान्तं पापम्, शान्तं पापम्। यथाऽऽज्ञाप्यते तथा करिष्यामि।

जय०—अथाधुना मध्याह्न-क्रिया निर्वर्तनीयाः। सपद्येव च दिल्ली यात्रा विधेया। तद्विषयेऽपरसमये आलपिष्यामः।

ततो महाराष्ट्रपतिः स्वालयमायातः। जयपुरेश्वरश्च स्वशिबिर

---

गोवधप्रतीकारविषये = गोहिंसानिवारणार्थम्। भवदीयायाः, मन्त्रणायाः = विचारणायाः, श्रवणे = श्रोत्रगोचरीकरणे। बधिरीभूय = अदत्तकर्णो भूत्वा। पापम् = निग्रहादिकम्।

प्रायश्चित्तम् = पापशोधनम्।

मध्याह्नक्रियाः = सन्ध्यादिकाः। निर्वर्तनीयाः = समापयितव्याः। अपरसमये = अन्यस्मिन् काले। आलपिष्यामः = सभाषणं करिष्यामः।

स्वालयम् = स्वसदनम्। निरवर्तयत् = समापितवान्। पर्यटनादिना=

---

महा०—मैंने सुना है कि आपने कभी दिल्ली सम्राट् के पास गोहत्या-निवारण के लिये एक पत्र लिखा था, पर उन्होंने आपकी बात नहीं मानी थी। यदि इस समय भी वे पूर्ववत् आपकी सलाह की उपेक्षा करके मेरे साथ अन्याय कर बैठें तब··· ?

जय०—तब मैं भी अपने शरीर को छोड़ कर ही इस पाप का प्रायश्चित्त कर लूँगा।

महा०—राम राम ! इस तरह मत कहिये। लीजिये, अब आप जैसी आज्ञा देंगे उसी के अनुसार मैं काम करूँगा।

जय०—अच्छा, अब पहले तो मध्याह्न-कृत्य सम्पन्न हो जाँय। शीघ्र ही दिल्ली की यात्रा करनी होगी। यात्रा के विषय में फिर बातें करेंगे।

उसके बाद शिवाजी अपने घर लौट आये। उधर जयपुर के महाराज

एव भोजनादि-क्रिया निरवर्तयत्। ततः किञ्चिच्छयनेन किञ्चित् पर्य्यटनादिना च दिनमयापयत्।

अथास्तङ्गते मरीचिमालिनि सर्वतो व्याप्ते महान्धकारे चपलित-चञ्चु-पुटासु प्राचीमवलोकमानासु चकोरीषु शनैरुदगान्निशानाथः।

समयोऽयं शरदन्तस्य, ऋतुरेष हिम, शीतल· समीरः सरति, द्विगुणीकृत वस्त्रं रोचते चिरमरुणा सन्ध्या रात्रीभूता। ईदृशे समये तोरण-दुर्ग-समीपे हनुमन्मन्दिरात् पूर्वतः पुष्पवाटिकायामासन्दीषु उपविष्टास्तिस्रो बालाः परस्परमेवमालपन्ति स्म।

---

भ्रमणादिना। अयापयत् = अक्षपयत्।

चपलितचञ्चुपुटासु = चञ्चलितत्रोटिषु। प्राचीम् = ऐन्द्रीम्। अवलोकमानासु = पश्यन्तीषु। शशिन उदयमानस्य निरीक्षणार्थम्। उदगात् = ऊर्ध्वमायात्, उदित इति यावत्।

शरदः अन्तः, तस्य। हिमः = हेमन्त। शीतलः = हिममिश्रः। चिरमरुणा = अतिलोहिता। रात्रीभूता = रात्रिताङ्गता। सन्ध्याकाल एव रात्रिमासनमिति यावत्। आसन्दीषु = वेत्रासनिकासु।

---

ने भी अपने शिविर में ही भोजन-पान आदि कर लिये। तत्पश्चात् कुछ देर सो कर और कुछ देर घूम-घाम कर उन्होंने वह दिन बिताया।

उसके बाद सूर्यास्त हो जाने के कारण जब सर्वत्र घना अन्धकरा छा जाने से चञ्चल चोंचवाली चकोरी पूरब दिशा की ओर देख रही थी उसी समय चन्द्रमा उदित हो उठा।

शरत् ऋतु का अन्त हो चुका था, हेमन्त ऋतु आ चुकी थी, ठण्ढी हवा बह रही थी, दुशाले लोगों को प्रिय लग रहे थे और चिरकाल तक लालिमा से सम्पन्न सन्ध्या रात्रि के रूप मे परिवर्त्तित हो चुकी थी। उस समय सिंहद्वार के पास हनूमान् जी के मन्दिर से पूर्व दिशा में बनी फुलवारी मे कुर्सियों पर बैठी हुई तीन बालिकाएँ आपस में निम्नलिखित वार्त्तालाप कर रही थीं—

प्रथमा—सौवर्णि ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि, कदाचिदलीको भवेदेष वृत्तान्तः। चारुहासिनि ! सान्त्वय सान्त्वय सहचरीम्।

चारुहासिनी-प्रियसखि ! सत्यं वदति विलासिनी। यावन्निश्चित्य न ज्ञायते; यावन्न प्रामाणिकैर्न कथ्यते; तावन्मुधा शोकेनात्मनो म्लपनं व्यर्थम्।

सौवर्णी—[ अञ्चलेन बाष्पमपहृत्य ] विलासिनि ! चारुहासिनि ! गतदिवसमारभ्यैव विमनायमानं मे चेतः। रात्रौ निद्रामपि न लब्धवती, किञ्चिल्लग्ननिमेषा च भयङ्करान् स्वप्नान् दृष्टवत्यस्मि, मध्याह्ने च भोजनशालायाः पृष्ठतो गच्छतोर्न जाने कयोरालापमिमं भयानकमश्रौषम्। सत्यतां चैतस्य विह्वलीभवद् हृदयमेव मे प्रमाणी-

---

अलीकः = असत्यः। 'अलीकं त्वप्रियेऽनृते' इत्यमरः।

प्रामाणिकैः = सत्यवाग्भिः। मुधा = वृथा। व्यर्थम् = अनावश्यकम्

विमनायमानम् = उन्मनायमानम्, खिन्नमिति यावत्। किञ्चिल्लग्न-निमेषा = ईषन्मुद्रितनयना। भयङ्करान् = भीतिजनकान्। भोजनशालायाः = पाकशालायाः। विह्वलीभवत् = खेदमिश्रमौत्सुक्यमाभजत्।

---

पहली बालिका—अरी सौवर्णी ! धीरज बान्धो, धीरज बान्धो। शायद यह बात झूठी हो ! चारुहासिनी ! अपनी सखी को सान्त्वना दो।

चारु०—प्यारी सखी ! विलासिनी का कहना ठीक है। जबतक इस बात के विषय में ठीक ठीक जानकारी न मिल जाय और जबतक प्रामाणिक लोग न कहें तबतक इस विषय में निराधार शोक करके अपने मन को खिन्न बनाना व्यर्थ है।

सौवर्णी—[ आँचल से आँसू पोछकर ] विलासिनी ! चारुहासिनी ! कल से ही मेरा मन खिन्न हो गया है। रात में मुझे नींद भी न आई, जब किसी तरह झपकी आई तो मैंने बहुत ही भयङ्कर स्वप्न देखे। पता नहीं, दोपहर की वेला में भोजनशाला के पीछे से गुजरने वाले किन दो व्यक्तियों की बातचीत मैंने सुनी ! किन्तु मेरा यह व्याकुल हृदय उस बातचीत की

करोति। भगिन्यौ! क्षत्रियकन्याऽहम्, दृढा मे प्रतिज्ञा, तमेव वरयिष्यामि ब्रह्मचर्येणैव वा शरीरहतकं शोषयिष्यामि।

चारु०-प्रियसखि! सिद्ध्यन्तु ते मनोरथा। तमेव प्राप्स्यसि, तमेव वरयिष्यसि। अञ्जनीसूनुस्साधयतु ते कार्यम्।

सौ०-[निःश्वस्य] आ! किं तादृशा आकृतिविशेषा अपि विद्रुह्यन्ति? कथमेष मिथ्या-कलङ्कः स्थान लब्धवान्?

विला०-प्रिये! यदि मिथ्यैष कलङ्कः, तदचिरादेव स्वय महाराष्ट्रराजः पश्चात्तापेऽतप्यमान पुनस्तमन्विश्य, अभ्यर्हिततरे पदे

---

प्रमाणीकरोति = निश्चाययति। वरयिष्यामि = विवाहयिष्यामि। शरीरहतकम् = व्यर्थीभूत देहम्।

अञ्जनीसूनुः = वायुतनयो हनूमान्।

आकृतिविशेषाः = विशिष्टस्वरूपाः। स्थानम् = पदम्।

अचिरात् = शीघ्रम्। तप्यमानः = क्लिश्यमानः। अभ्यर्हिततरे=अतिपूजनीये। नियोक्ष्यति = नियोजयिष्यति।

---

सत्यता को प्रामाणित कर रहा है। बहनो! मैं क्षत्रिय की लड़की हूँ। मेरी तो यही अटल प्रतिज्ञा है कि मैं उसी व्यक्ति से विवाह करूँगी, अन्यथा विवाह किए बिना ही इस निरर्थक शरीर को क्षीण कर डालूँगी (शरीर का अन्त कर डालूँगी)।

चारु०—प्यारी सखी! तुम्हारी कामनाएँ पूरी हों। तुम्हें वह व्यक्ति मिलेगा ही और तुम उसी के साथ विवाह भी करोगी। अञ्जनीपुत्र हनूमान् जी तुम्हारे कार्य को सम्पन्न करें।

सौव०—[लम्बी साँसें भरकर] अहा! क्या उस तरह के मनोहर आकार भी विद्रोही हो सकते हैं? यह झूठा कलङ्क कैसे फैल गया?

विला०—प्यारी सखी! यदि यह कलङ्क झूठा ही है तब तो पश्चात्ताप से व्याकुल महाराष्ट्रराज ही स्वयम् शीघ्रता से उसे ढूँढकर किसी अच्छे पद

नियोक्ष्यति । दैवघटनायामलं शोकेन ।

सौ०—शोको हि कलङ्क-विषये ! यद्यहं युद्धे तस्य क्षत्रियधर्मेण प्राणत्यागमप्यश्रोष्यम् ; तत् सुखेन तन्नाम संस्मृत्य स्वयमपि प्राणान् व्यसर्क्ष्यम् । परं कलङ्को न सह्यते क्षत्रियैः ।

तावद् दूरतः—"अत्तिके ! अत्तिके !" इति समश्रावि बालस्येव सम्बोधनम् । ततः सपदि समुत्थाय चारुहासिनी स्वरोऽभिमुखीभूय "गोपाल ! एते समागच्छावः"—इत्युच्चैरुच्चार्य सौवर्णीं बहुशः सान्त्वयित्वा, "भ्रातृजाये ! उत्तिष्ठ, यावः"—इति विलासिनीमपि सह नीत्वा मन्दिराभिमुखं प्रययौ ।

दैवघटनायाम् = अदृष्टव्यापारे ।

क्षत्रियधर्मेण = "युद्धे चाप्यपलायनम्" इत्येवंरूपेण । व्यसर्क्ष्यम् = अत्यक्ष्यम् ।

समश्रावि = आकर्णितम् । यावः = गच्छावः ।

पर उसकी नियुक्ति कर डालेंगे । इस भाग्यचक्र के लिये शोक करना व्यर्थ है ।

सौव०—भाग्यचक्र के लिये नहीं, शोक तो झूठमूठ के कलङ्क के लिये हो रहा है । यदि मैं यह भी सुन लूँगी कि उन्होंने युद्ध में अपने क्षात्रधर्म का पालन करते ही अपने प्राण छोड़ दिये तो मैं प्रसन्नतापूर्वक उनके नाम का स्मरण करती हुई अपने प्राण को भी छोड़ दूंगी । परन्तु क्षत्रियों के लिये कलङ्क असह्य होता है ।

इतने में ही दूर से "बहन ! बहन !" यह आवाज, किसी बालक के द्वारा किये गये सम्बोधन की तरह, सुनाई पड़ी । सुनते ही चारुहासिनी झट से उठ गई और जिस तरफ से आवाज सुनाई पड़ी थी उस तरफ मुँह फेर कर—"गोपाल ! बस, अभी आई"—इतना उत्तर तारस्वर से देती हुई सौवर्णी को उसने सान्त्वना दी । बाद में "अरी भाभी ! उठो, अब हम लोग चलें" इतना विलासिनी से कहकर उसके साथ ही मन्दिर की ओर चल पड़ी ।

सौवर्णा तु व्यामूढेवोत्थाय क्षुपात् क्षुपं कुटात् कुटं प्रति पर्य्यटन्ती कदली-दल-खण्डमाच्छिद्य, तेनैवाऽऽत्मानं वीजयन्ती, आत्मानमपि विस्मरन्ती, पूर्वतो बहुदूरं निर्गता तडाग पर्यन्तमायाता विकचानां भ्रमद् भ्रमर-झङ्कृतानां कैरवाणां शोभामवलोकयन्ती, सोपानैरवतर्तुमारब्धवती च अकस्माच्छुश्राव निःश्रेणि प्रान्तर्थ-शिला वेदिकास्थस्य कस्यापि "उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलम्" इति हनूम-

व्यामूढेव = विक्षिप्तेव । क्षुपात् = ह्रस्वशाखिनः । "ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः" इत्यमरः । कुटात् = वृक्षात् । "अनोकहः कुटः शालः" इत्यमरः । पर्य्यटन्ती = भ्रमन्ती । कदलीदलखण्डम् = रम्भापत्रभागम् । वीजयन्ती = व्यजनयन्ती । भ्रमद्भिः = चलद्भिः, भ्रमरैः = द्विरेफैः झङ्कृतानाम् = सशब्दानाम् । कैरवाणाम् = अम्भोजानाम् । सोपानैः = निःश्रेणीभिः । निःश्रेणिप्रान्तरथायाम् = अधिरोहिणीकोणस्थायाम्, शिलावेदिकायाम् = प्रस्तरवितर्दिकायाम्, स्थस्य = स्थितः । सलिलमिति—

... .. सलीलम्
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्काम्
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥

इधर सौवर्णी भी विक्षिप्त की तरह एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी की ओर, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की ओर चक्कर लगाती हुई, केले के पत्ते को तोड़कर उसे पंखे की तरह झलती हुई पूर्व दिशा की ओर काफी दूर तक चलते चलते जब तालाब के पास जा पहुँची और वहाँ भिनभिनाते चञ्चल भौंरों से आक्रान्त विकसित कमल कुल के सौन्दर्य को देखती हुई सीढ़ियों के माध्यम से नीचे उतरने को ही थी कि एकाएक उसने सुना कि सीढ़ियों के पास के पत्थर के चबूतरे पर वर्तमान कोई व्यक्ति "उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलम्" (समुद्र के दुस्तर जल का उल्लङ्घन करके) इत्यादि हनूमान्‌जी के स्तोत्र

सौ०—[ चकितेव ] भगवन् ! धन्यं भवतस्तपोबलम् ! न किमप्य ज्ञातं स्वामिनः । परतः कथ्यताम् ।

स्वा०—स तु प्रभुणा विद्रोहीत्यवहेलितः !

सौ०—अपि सत्यमेतत् ? हा कष्टम् !

स्वा०—[ पुनर्विचिन्त्य ] तथ्योऽयं वृत्तान्तः ।

सौ०—ततः ?

स्वा० ततः स नाहमपराधीति प्रभुमसकृत्तदुक्त्वा प्रणम्य गृहादिकमखिलं विसृज्य क्वापि निर्गतः ।

सौ०—धिक् ! नाहं तादृशमुदारस्वभावं कुलीनं युवानं विद्रोहीति विश्वसिमि । सूर्यो यदि प्रत्यगुदियात्, गगनतलं वा प्रफुल्लकमल-

अवहेलित = तिरस्कृतः ।

तथ्यः = सत्यः ।

प्रत्यक् = पश्चिमायाम् । अव्ययमिदम् । उदियात् = उदयं प्राप्नुयात् । प्रफुल्लकमलमण्डलमण्डितम् = विकसितपद्मनिचयनिचितम् । तदीयस्य,

सौव०—[ चकित-सी होकर ] भगवन् ! आपका तपोबल धन्य है । आपके लिए तो कुछ भी अज्ञात नहीं हो सकता । कृपया इसके आगे की बातें भी बतलायें ।

स्वामी—महाराज ने विद्रोही समझ कर उस क्षत्रिय युवक का अपमान किया ।

सौव०—क्या यह सत्य है ? हाय ! यह तो बहुत ही दुःखद बात है ।

स्वामी—[ फिर कुछ सोचकर ] हाँ, यह सत्य ही है ।

सौव०—अच्छा तो उसके बाद ... ?

स्वामी—इसके बाद वह युवक "मैं अपराधी नहीं हूँ" यह बात बार-बार महाराज से कहकर उन्हें प्रणाम किया और पीछे अपने घर बार को छोड़कर कहीं निकल गया ।

सौव०—हाय ! धिक्कार है ! मुझे तो विश्वास नहीं होता कि उस तरह का उदार स्वभाव वाला कुलीन युवक भी विद्रोही हो सकता है । भले ही

मण्डल मण्डितमवलोक्येत, ततोऽपि न भवेन्मे विश्वासस्तदीयकपटस्य।

स्वा०—[ मुखमन्यत कृत्वा, मन्द मन्दम् ] भाग्यमिद तस्य यद् भवत्येव दृढ = धार्मिक प्रत्येषि।

सौ०—स्वामिन्! भक्तिबलेन परोक्षमपि प्रत्यक्षं भवतः। कथयतु भवानेव किं सत्य वीरोऽसौ प्रभु द्रुग्ध व्यरुणत्?

स्वा०—तस्य वंशे प्रभुद्रोही कोऽपि नाभूत्, सोऽपि विनैव दोष मात्सर्य्य-पूरितेनेर्ष्या परवशेन पिशुनेन निन्दितः, विनैव विचार प्रभुणा कोपविषयीकृतः।

कपटस्य = प्रवञ्चनस्य।

प्रत्येषि = विश्वसिषि।

भक्तिबलेन = देवसेवाबलेन। परोक्षमपि = इन्द्रियागोचरमपि। प्रत्यक्षम् = साक्षात्। व्यरुणत् = व्यद्रुह्यत्।

मात्सर्यपूरितेन = परोत्कर्षासहिष्णुत्वभरितेन। ईर्ष्यापरवशेन = विद्वेषपरतन्त्रेण। पिशुनेन = सूचकेन खलेन वा।

भगवान् सूर्य भी पश्चिम दिशा में उदित होने लग जाँय और शून्य आकाश-मण्डल भी विकसित कमल कुल से मण्डित दीखने लग जाँय परन्तु मुझे इस बात में विश्वास नहीं हो सकता है कि उस युवक ने राजा के साथ छल किया होगा।

स्वामी—[ मुँह फेरकर धीरे धीरे ] यह तो उस युवक का सौभाग्य है कि आप भी उसे इतना कट्टर धार्मिक मान रही हैं।

सौव०—स्वामी जी! तपस्या के प्रभाव से परोक्ष भी आपके लिए प्रत्यक्ष है। आप ही बतलाएँ कि उस वीर ने क्या वस्तुत राजद्रोह किया था?

स्वामी—उसकी वंशपरम्परा मे आजतक कोई भी राजद्रोही व्यक्ति नहीं हुआ है। वह भी निरपराध था किन्तु दूसरों की उन्नति को देखने में असमर्थ विद्वेष-पूर्ण किसी चुगलखोर ने महाराज के समक्ष उसकी झूठी शिकायत कर दी और महाराज भी बिना सोचे विचारे ही उसपर बिगड़ गये।

यावदेष समाप्नोत्यालापम्, तावदकस्मात्सोपाने वल्कलस्थ-वट कुट कुटीरादश्रावि— "तिष्ठ रे तिष्ठ सौवर्णि! चिरादारभ्य त्वं रघुवीराभिमानिन्यासीः। इदानीं त्वां बलाद् वशंवदां करोमि"— इति कोऽपि नेदीयसि धरः शब्दः। तदाकर्ण्यैव सौवर्णी कुल मर्यादा भङ्ग भीरुः, झटिति "रक्ष रक्षेति" व्याहरन्ती स्वामिनमाश्लिष्यत्। सोऽपि "वत्से! मा भैषीः" इत्याश्वास्य ससम्भ्रममुत्थाप्य तां स्वासनादन्यतः संस्थाप्य, सम्मुखं सोपान-परम्परातोऽवतरन्तं खडखडायित-पादत्राणं कृष्ण-वसनं कुञ्चित-श्मश्रु-कूर्चं करकलित-च्छुरिकमरुणाक्षं कञ्चन युवानमपश्यत्। तथा दृष्ट्वैव स्वामी

वशंवदाम् = स्वाधीनाम्। कुलमर्यादाभङ्गभीरुः=वाटिकान्तरस्थ... वंशानाम्, भङ्गात् = परिहणात्, भीरुः = भीता। आश्लिष्यत् = आलिङ्गत्। स्वासनात् = स्वविष्टरतः। खडखडायिते = खडखडशब्दकारिणी, पादत्राणे = उपानहौ यस्य तम्। कृष्णवसनम् = कालवस्त्रम्। करे कलिता = धारिता, छुरिका = कर्तिका, येन तम्। बद्धपरिकरः = सन्नद्धकक्षः। समाकुञ्चितवदः = बद्धकेशः। स्वतुम्बीनाथान् = निजालाबुभाजनात्। तरलत्व = गजा। सत्तः = शब्दः। स्वामी = सन्यासी, द्वितीयः =

ब्रह्मचारी तथा सौवर्णी का यह वार्तालाप समाप्त होने को ही था कि अचानक सीढ़ियों के ऊपर में वर्तमान वटवृक्षों की कुटिया से यह भयंकर शब्द सुनाई दिया—"अरी री सौवर्णी! जरा रुक तो जा! चिरकाल से तेरे मनमें रघुवीर का वीरता का दम्भ था। लेकिन आज मैं बरबस तुझे अपने वश में कर ले रहा हूँ"। इस बात को सुनते ही अपने कुल की मर्यादा के नष्ट हो जाने से डरनेवाली सौवर्णी तत्काल ही "बचाइए बचाइए" यह कहती हुई स्वामी जी के शरीर में लिपट गई। "बत्से! डरो मत" यह कहते हुए स्वामीजी ने भी उसे उठाकर अपने आसन के दूसरी बैठा दिया और सामने देखा कि एक अपरिचित स्वरूप वाला युवक— जिसके वस्त्र काले थे, दाढ़ी-मूँछें मुड़ी हुई थीं और हाथ में एक छूरा था— जूता खटखटाते हुए सीढ़ियों से उतर रहा है। उस मुद्रा में उस युवक को

बद्धपरिकरः समाकुञ्चितजटः स्वतुम्बीपात्रादेकां छुरिकामादाय, हस्ते धृत्वा, किञ्चिदग्रत उपसृत्य. योद्धुं सज्जः समतिष्ठत। स त्वागत्य स्वामिद्वितीयां सौवर्णीमाकलय्य, कोपस्फुरिताधर उवाच-"कुलटे! रघुवीरं चुम्बसि, भिक्षुकांश्चेतादृशान रहसि भाषसे। न च मया बहुशः प्रार्थ्यमानाऽपि पूर्णतया वीक्षसे। तदद्य त्वां बलादश्वस्य पृष्ठे बद्ध्वा नेष्यामि"।

स्वामी—कस्त्वं रे! सतीं कुमारीं कुलटां वदसि! कस्य सामर्थ्यमस्मिन् हनूमत उद्यानप्रान्ते एवं बलात्कारं मनसाऽपि चिन्तयितुम्?

---

सहायः, यस्याः सा, पक्षे वस्तुतश्च प्रकृते स्वामी=पतिरेव द्वितीयो यस्याः सा। कोपस्फुरिताधरः=क्रोधचञ्चलोष्ठः। भिक्षुकान्=याचकान्। रहसि=एकान्ते।

सतीम्=सच्चरिताम्। कुमारीम्=अविवाहिताम्। कुलटाम्=व्यभिचारिणीम्। सामर्थ्यम्=शक्तिः। उद्यानप्रान्ते=वाटिकैकदेशे। बलात्कारम्=साहसकर्म।

---

उतरते देखते ही स्वामी जी ने भी कमर कसकर अपनी जटाओं को बाँधकर अपने तुम्बे से एक छूरा निकाला और थोड़ा-सा आगे बढ़कर उसके साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो गये। उधर उस युवक ने आते ही जब देखा कि सौवर्णी के साथ एक ब्रह्मचारी भी है तो उसका अधरोष्ठ क्रोध से काँपने लग गया और फिर सौवर्णी से उसने कहा—"अरी कुलटा! एक ओर तो तूँ रघुवीर को चूमती है और दूसरी ओर इस तरह के कपटी भिक्षुकों से भी एकान्त में बातें किया करती है। मैं इतनी प्रार्थना तेरी करता पर मेरी ओर तो तू पूरी-पूरी दृष्टि भी नहीं डालती। ये लो, आज मैं तुझे बरबश बाँधकर घोड़े के पीठ पर अपने साथ ले चल रहा हूँ"।

स्वामी—अरे! तुम कौन हो? इस सती कन्या को कुलटा कह रहे हो? हनूमान् जी की इस वाटिका में किसी अबला के साथ बलात्कार करने के लिये सोचने की भी हिम्मत किसकी हो सकती है?

ततः स आह—भिक्षुक ! त्वमपि च्छुरिकां वहसि। (विहस्य) त्वयि भिक्षापात्रं शोभते, न तु शस्त्रम्।

स्वा०—मूढ ! ब्रह्मचर्य-व्रत-रक्षायै भिक्षापात्रं वहामः, किन्तु क्रूरस्य तव हत्यायै शस्त्रमपि धारयामः।

सः-[ निश्चिन्त स्तब्धीभूय ] किं कथयसि ? क्रूरसिंहं परिचितवानसि ? ततोऽपि किम् ? तवोपवीतं पश्यन् ब्रह्महत्याया बिभेमि।

स्वा०—नास्मि ब्राह्मणः। अहं क्षत्रिय ब्रह्मचारी। जाने त्वाम्, त्वमेव क्रूरसिंहोऽसि ! त्वमेव रघुवीर-निर्वासन-पिशुनोऽसि, त्वमेव च कुलकन्या बलात्कार-पातक-पतयालुरसि। पश्यत्वेपाऽपि

ब्रह्मचर्यव्रतस्य, रक्षायै = पालनाय। भिक्षापात्रम् = याच्ञाभाजनम्। क्रूरस्य = क्रूरनाम्नः, कठोरकृत्यनिरतस्य च हत्यायै = मारणाय।

स्तब्धीभूय = स्थगितीभूय नामश्रवणतः। परिचितवान् = विज्ञातवान्।

रघुवीरस्य निर्यासने = निष्कासने। पिशुनः = "चुगुलखोर" इति हिन्दी। कुलकन्यायाः = कुलीनबालिकायाः, बलात्काररूपे पातके = अघे,

उस पर उस युवक ने कहा—अरे भिक्षुक ! तुम भी छूरा रखते ! [ हँसकर ] यह भिक्षापात्र तुम्हें शोभा देता, यह छूरा नहीं।

स्वामी—मूर्ख ! अपने ब्रह्मचर्य व्रत के निर्वाह के लिये मैं भिक्षापात्र भी रखता हूं और तुम जैसे 'क्रूर' की हत्या के लिये यह छूरा भी।

वह युवक—[ कुछ स्तब्ध-सा होकर ] क्या कह रहे हो ? तुम 'क्रूर सिंह' को पहचानते हो क्या ? और यदि पहचानते हो हो तो इससे क्या होनेवाला है ? केवल तुम्हारे यज्ञोपवीत को देखकर मुझे ब्रह्महत्या का भय हो रहा है।

स्वामी—नहीं नहीं, मैं ब्राह्मण नहीं हूं। मैं तो क्षत्रिय-कुल का एक ब्रह्मचारी हूं। मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ, तू ही क्रूरसिंह है ना ? रघुवीर को निकलवाने वाला चुगलखोर भी तू ही है, इस कुलीन कन्या के साथ बलात्कार जैसे महापाप से अपने को नीचे गिराने वाला भी तू ही है। लो,

क्षत्रिय-कुमारी रघुवीर-प्रत्यर्थिनः प्राणदण्डम् ।

तत सक्ष्वेडमुभौ दत्तान् वामाश्च मार्गाश्चरन्तौ विकोश च्छुरिका-हस्तौ परस्पर जिघांसया समवर्तिपाताम् । तावदकस्मात् क्रूरसिंहः स्वामिनो वाम भुज-मूल लक्ष्यीकृत्य छुरिकां प्रहिणवान । स्वामी तु बाहु-स्पृष्टाग्रच्छुरिकमेव हस्त वामहस्तेन दृढ गृहीत्वा, दक्ष-हस्तेन तस्य वक्षसि च्छुरिकया दृढ प्राहरत्, अपातयच्च । स तु पतितमात्रः समुवाच—"रे ! रघुवारस्यैव छुरिकया निहतोऽस्मि" स्वाम्युवाच—"मूढ ! न जानासि रघुवीर एव राघवः ! माञ्च राघवाचार्य इति वदन्ति जनाः । व्यर्थमेव रघुवीर कलङ्कितमा-नसि-इति भुङ्क्ष्व खलता लताया॰ फलम् ।" क्रूरस्तु तत्क्षणादेवोर्ध्व-

पतयालु = पतनशील । रघुवीरस्य, प्रत्यर्थिनः = शत्रो ।

सक्ष्वेडम्=ससिंहनादम् । चरन्तौ=भ्रमन्तौ । विकोशच्छुरिकाहस्तौ= नग्नासिधेनुकाकरौ । जिघांसया = मारणेच्छया । समवर्तिपाताम्= समस्थिपाताम् । बाहौ स्पृष्टा=ससक्ता, अग्रच्छुरिका=असिधेनुकाग्र यस्मिन्ने वम्भूतम् । वक्षसि = उरसि । प्राहरत्=अताडयत् । अपातयत्=अनीनयत् । निहत॰ = ताडित । खलताल्लताया = दुष्टताव्रतते । ऊर्ध्वश्वासप्रश्वासयाः=

आज यह क्षत्रिय-कुमारी भी रघुवीर के शत्रु को दिये जानेवाले प्राणदण्ड को अपनी आँखों देख ले ।

उसके बाद सिंहनाद के साथ ताल ठोंकते हुए म्यान से बाहर निकाले गये अपने अपने छुरे को हाथ में लेकर एक दूसरे को मारने की इच्छा से दोनों व्यक्ति आमने सामने खडे हो गये । उस झट से क्रूरसिंह ने ब्रह्मचारी जी की बायीं भुजा के मूल को लक्ष्य करके छुरा चलाया । इधर स्वामीजी ने भी—बाँयें हाथ से उसके छुरा लिये हाथ को कस के पकड कर दाँये हाथ से क्रूरसिंह के हृदय पर अपने छूरे से ऐसा भयङ्कर प्रहार किया जिससे क्रूरसिंह जमीन पर गिर गया। गिरते ही वह चिल्ला उठा—"अरे ! मैं तो समझ रहा हूँ कि मुझे रघुवीर का ही छूरा लगा है !" स्वामीजी ने कहा—"अरे मूर्ख ! क्या तुम नहीं जानते कि रघुवीर ही 'राघव' है ! मुझे ही लोग 'राघवाचार्य' कहा करते हैं । ये लो,

श्वास-प्रश्वास-पराधीनः समुत्तम्भितनयनः प्रस्खलद्रुधिर-धारा-स्नपित-सोपानः "हा रघुवीर ! हा राघव ! कृतस्य फलमासादितवानस्मि । निर्दये सौवर्णि ! त्वदर्थं नङ्क्ष्यामि" —इति घुरघुरायितेन कण्ठेनाप्येतत् मुहुराम्रेडयन् प्राणानत्याक्षीत् ।

राघवाचार्यस्वामी च क्रूर-कवोष्ण-रक्ताक्तां छुरिकां दक्ष-कराङ्गुलि-पृष्ठं करभं मणिबन्धं कूर्परं च तडागजलेन प्रक्षाल्य, छुरिकां कोशेनाऽऽच्छाद्य, तुम्बी-पात्रे निधाय, जटाजूटं पुनः प्रसार्य, उत्तरीयं स्कन्धे सन्धार्य, मृगचर्मासनमाकुञ्च्य कक्षे धृत्वा,

---

मरणकालिकश्वासप्रश्वासयोः, पराधीनः = वशगः । समुत्तम्भितनयनः = समुत्तानमाननेत्रः । प्रस्खलन्त्या = पतन्त्या, रुधिरधारया = लोहितप्रवाहेण, स्नपितानि=निर्णिक्तानि, सोपानानि = निःश्रेणयो येन सः । त्वदर्थम्=त्वत्कृते । नंक्ष्यामि = म्रिये । प्राणान् = असून् ।

क्रूरस्य कवोष्णेन रक्तेन, अक्ताम् आर्द्रां छुरिकाम् । करभम्=कराद्बहिः । "मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः" इत्यमरः । मणिबन्धम्=हस्ताग्निकरधनस्थितस्थानम् । कूर्परम् = कफोणिम् । "केहुनी" इति हिन्दी । तुम्बीपात्रे = अलाबुभाजने । उत्तरीयम् = उत्तरासङ्गम् । आकुञ्च्य =

---

तुमने जो रघुवीर के ऊपर मिथ्या आरोप लगाया था उसके बदले अपनी दुष्टतास्वरूप लता के विषम फल का उपभोग करो ।" छूरा लगते ही क्रूरसिंह ऊर्ध्वश्वास का शिकार बन गया, उसकी आँखों में चक्कर आ गया, उसके हृदय से बहती हुई खून की धारा से सीढ़ियाँ धुल गईं और खुर्राटे भरे कण्ठ से—"हा रघुवीर ! हा राघव ! मुझे अपने कुकृत्य का फल मिल गया । दयाशून्य सौवर्णी ! तेरे ही लिये मैं मर रहा हूँ"—यह कहते-कहते उसने प्राण छोड़ दिये ।

उसके पश्चात् राघव स्वामी ने भी क्रूरसिंह के गरम खून से भीगे छूरे, अपने दाँये हाथ के अङ्गुलिपृष्ठ, करभ ( कलाई से लेकर नाखून तक का हिस्सा ), कलाई तथा केहुनी को उस तालाब के पानी से धोकर—छुरे को कोष ( म्यान ) में बन्द करके अपने तुम्बे में रख लिया और अपने

र्णीमुवाच-सुन्दरि ! मा स्म भैषीः। उत्तिष्ठ त्वदालय-पर्यन्तं
मनुसरिष्यामि। कुशलेन तातभवन-पर्यन्तं यापयित्वा स्वच्छन्दं
चरिष्यामि।

सौवर्णी तु दृष्ट्वेमां रोमहर्षिणीं घटनाम्, प्रत्यक्षीकृत्य च
ामिनो विलक्षणं वीर्यम्, कोऽयम्? कुतोऽयम्? इति विभावयन्ती,
ूष्णीका तेन सह स्वावासाभिमुखमुपससार। स्वालयस्य निकटे
न विसृज्यमाना च प्रणम्य "स्वामिन्! पुनः कदा दर्शनं भवेद्-
ाधारण-बन्धोः, जीवन-दीक्षा-गुरोः श्रीचरणस्य?" इति पृष्टवती।
स्वच्छन्दा वयम्, यदा कदैव पुनरायास्यामः" इत्युक्तीर्णा, "नैषा

---

ह्लोप्य। कक्षे=बाहुमूले। अनुसरिष्यामि=अनुव्रजिष्यामि।

रोमहर्षिणीम्=पुलककारिणीम्, भीषणामिति यावत्। विभावयन्ती=
वेवेचयन्ती। तूष्णीका=वाग्यता। स्वावासाभिमुखम्=स्वनिवाससमु-
खम्। असाधारणबन्धोः=निष्कारणमित्रस्य। जीवनदीक्षा-गुरोः=

---

मृगचर्म को लिपट कर कांख में दबाते हुये सौवर्णी से कहा—"सुन्दरी
सौवर्णी! डरो मत। चलो तेरे घर तक मैं भी तेरे साथ चलूँगा और
कुशलपूर्वक तुझे तेरे पिता के घर तक पहुँचाने के बाद फिर स्वच्छन्दता-
पूर्वक वहाँ से चल दूँगा।"

वह सौवर्णी उस रोमाञ्चकारी घटना को तथा स्वामीजी की अद्भुत
वीरता को देखकर उनके विषय में—"ये कौन हैं? कहाँ से आये हैं?"—
इस प्रकार तर्क वितर्क करती हुई चुपचाप स्वामीजी के साथ अपने घर की
ओर चल पड़ी। जब घर के पास ले जाकर स्वामीजी उसे छोड़ने लगे तब
उसने उन्हें प्रणाम करके पूछा—"स्वामीजी! श्रीमान् जैसे असाधारण
बन्धु और जीवनदीक्षा के गुरु के दर्शन फिर कब होंगे?" इस पर
स्वामीजी ने उत्तर दिया—"हम लोग स्वच्छन्द हैं। कभी फिर आ
जायेंगे।" उसके बाद बारबार इस दासी को आप भूलेंगे नहीं, बराबर

श्वास प्रश्वास-पराधीन समुत्तम्भितनय-
स्नपित-सोपानः 'हा रघुवीर ! हा राघव
यानस्मि । निर्दये तीर्याणि ! त्वदर्थं नश्यथा
कण्ठेनास्पष्ट मुहुराक्रन्दन् प्राणानत्याक्षीत् ।

राघवाचार्यस्वामी च क्रूर-कवोष्ण-
कराङ्गुलि पृष्ठ करभ मणिबन्ध कूर्पर
छुरिका कोशेनाऽऽच्छाद्य, तुम्बी-पात्रे
प्रसार्य उत्तरीय स्कन्धे सन्धार्य, मृगवत्

---

मरएकालिकश्वासप्रश्वासयोः, पराधीन.=व
समुत्तनमानेन । प्रस्खलन्त्या=प्र
प्रवाहेण स्नपितानि-निर्णिक्तानि, सा।
त्वदर्थम्-त्वत्कृते । नश्यामि=म्रिये ।

क्रूरम् कवोष्णन रक्तन, अत्ताम् भ
"मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहि
निकरस्थनस्थितस्य । कूर्परम्=कफो
तुम्बीपात्र=तुम्बाभाजने । उत्तरीयम्

---

तुमने जो रघुवीर के प्यार भिय्या आशा
दुष्टतास्वरूप स्त्री के विघन पत्र का उप
मर्श्वस्वाश का शिकार बन गया, उसक
हृदय से बहता हुई खून की धारा से स
कण्ठ से—"हा रघुवार ! हा राघव !
गया। दयाशून्य सौवर्णी ! तेरे ही लिय
प्राण छोड़ दिये।

पश्चात् राघव स्वामी ने
हाथ के अङ्गुलिपृष्ठ, कर
कलाई तथा केहुनी को
(म्यान) में बन्द करके

एकदा तु रात्रौ भटवेषेण स्वप्रजा अवलोकयितुं पर्य्यटन् महाराष्ट्रराजोऽकस्मात् द्रुम–निचय–च्छायातो द्रुतमागच्छन्तं कञ्चन महात्मानमिवादर्शत्। स तु पीत–रेणु–रूषित–सर्वाङ्गः, रामनामाङ्कितोत्तरीयः, "जय जयेति" वदन् प्रणमन्त गुप्ताकारमेन शनैरुवाच–

"वीर! राजपुत्र-देशीया राजानोऽप्येते कन्यादानैर्यवनैरात्मानं सम्बध्नन्तोऽर्द्धयवना एव, ये स्वतन्त्रानार्यदेशान् विजित्य यवन-हस्ते समर्पयन्तो वीरम्मन्यतया श्मश्रु परिमृशन्ति। इयं धन्यता वा जघन्यता वा प्रमाणमत्र श्रीमद्हृदयमेव। कोऽयमा-

---

भटवेषेण = राजपुरुषनेपथ्येन। द्रुमनिचयच्छायातः = वृक्षप्रकरच्छायायाः। महात्मानम् = साधुम्। पीतरेणुरूषितसर्वाङ्गः = रामरजस्फुरितसकलशरीरः। गुप्ताकारम् = गूढाकृतिम्।

कन्यादानैः = बालिकार्पणैः। यवनैः, सहयोगे तृतीया। आत्मानम् = स्वम्। सम्बध्नन्तः = सम्मेलयन्तः। अर्धयवनाः = नेमम्लेच्छाः। स्वतन्त्रान् = स्वाधीनस्वदेशीयनरपतिरक्षितान्। वीरम्मन्यतया = भटम्मन्यतया। श्मश्रु = मुखलोम। परिमृशन्ति = स्पृशन्ति। "मूछों पर ताव देते हैं" इति भाषायाम्। धन्यता = श्रेष्ठता। जघन्यता = नीचता। सकल-

---

एक रात अपनी प्रजा की स्थिति को जानने के उद्देश्य से वीरवेष में परिभ्रमण करते हुये महाराष्ट्रराज ने वृक्षों की छाया से एक महात्मा जैसे व्यक्ति को शीघ्रता से अपनी ओर आते हुये देखा। सम्पूर्ण शरीर में रामरज लगाये हुये, राम नाम से अङ्कित द्वितीय वस्त्रवाले उस महात्मा ने गुप्तवेष में घूमनेवाले महाराष्ट्रराज को जयध्वनिपूर्वक प्रणाम करके धीरे से कहा—

"वीर! स्वतन्त्र हिन्दूराज्यों को जीतकर यवनों के हाथों में समर्पित करने में भी अपनी वीरता का अभिमान करते हुये मूँछ पर ताव देनेवाले और अपनी-अपनी कन्या के अर्पण द्वारा यवनों के साथ सम्बन्ध स्थापित करनेवाले ये राजपुताने के राजा लोग भी वस्तुतः अर्ध यवन ही हैं। इनकी यह महत्ता है या नीचता—इसके निर्णय के लिये आपका हृदय ही प्रमाण

सीन्मानसिंहस्य मानः; यद् यवनार्थमुदयपुराधीश्वरं सकल-भारताभिजन-मान्यं मेदःपाट-परिवृढमत्यन्तमचिक्लिशत् ? तस्यैवाद्ध्वन्येषोऽद्धवन्यो ढुण्ढारवन्यवन्यध्यक्षो जयसिंहः। मा श्रीमानस्य मायामयीमुररीकरोतु मन्त्रणाम्। यत्येत चेद्, महाराष्ट्रैः सह विजयपुरेश्वरः गोलकुण्डेश्वरः उदयपुरेश्वरः, योधपुरेश्वरः, अपरे च बहवो वीरवरा महाराजा दिल्ली-दलन-पक्षमवलम्बेरन्। तदलं वृद्धेन जयसिंहेन ज्यौतिष-पण्डितेन! अथवैष जर्जरो निर्जरसां राजा,

भारताभिजनमान्यम् = समस्तहैन्दवनिवासिमाननीयम्। मेदःपाटपरिवृढम्=मेवाराधीश्वरम्। "मेवाड" इत्यधुना प्रसिद्धः शब्दो 'मेदःपाट' शब्दापभ्रंश इति व्यासादीनामभिप्रायः। तर्करत्नमहोदयास्तु स्वीयेऽमरमङ्गले संयुक्तत्विक मेवारशब्दमेव तद्वाचकत्वेन स्थिरयन्ति। उभयोरपि शक्तत्वं साधुत्वञ्चेति विवेचनापटवः। अचिक्लिशत् = क्लेशितवान्। अध्वनि = मार्गे। अध्वन्यः = पथिकः। ढुण्ढारवन्याः=ढुण्ढारारण्यस्य, राजपुत्रदेशे जयपुरप्रान्तो 'ढुण्ढार' इत्युच्यते, या, अवनी = पृथ्वी, तस्याः, अध्यक्षः=स्वामी। ढुण्ढारशब्देन वनीशब्द समोन्ततद्वाचिना तदध्यक्षस्य चारण्यकत्वमुद्घोषितम्। मायामयीम्=प्रवञ्चनायुक्ताम्। मन्त्रणाम्=परामर्शम्। यत्येत=यत्न क्रियेत। जर्जरः=वृद्धः। निर्जरसाम्=देवानाम्। राजा=अधिपतिः।

है। मानसिंह के लिये यह कौन-सी मानास्पद बात हुई जो उन्होंने समस्त भारतवासियों के सम्मान्य 'उदयपुर' सम्राट् 'मेवाड़' के अधिपति को यवनों के पक्ष से इतना क्लेश दिया है। ये 'ढुण्ढार'-वन-प्रदेशाधिपति जयसिंह भी मानसिंह के ही पथ के पथिक हैं। इस की कपटपूर्ण मन्त्रणा का स्वीकार श्रीमान् कदापि न करें। यदि आप प्रयत्न करें तो मराठों के साथ-साथ विजयपुर के महाराज, गोलकुण्डेश्वर, उदयपुराधीश, योधपुर के राजा तथा अन्यान्य बहुत से महाराज भी दिल्ली पर चढ़ाई में आपका साथ दे सकते हैं। इसलिये इस वृद्ध भविष्यवक्ता जयसिंह की चिन्ता आप न करें। इस बूढ़े को देवराज इन्द्र बनने

भर्जयतु च भवान् स्वगर्जन तर्जन ज्वलनेन वर्ज्यानेतान् भारतद्रुहः।"

तदाकर्ण्य यावद् वीरशिवराजः किमपि विवक्षति, तावद् घनच्छाय-पलाशि-पटल एवालीयत स्वामी। महाराष्ट्रेश्वरश्च सचिन्तो निवृत्य तादृक्षानेव स्वप्नान् पश्यन् रात्रिं निनाय। पुनश्च यथासमयं मित्रैर्दिल्लीयात्रामेव निर्णीय, स्वात्मीयस्य स्वर्णदेवस्य हस्ते निखिलं महाराष्ट्र-देश-राज्य-भारं समर्प्य, अश्वारोहिणां पञ्चशतीं सहस्रञ्च पदातीनां सह नीत्वा, मातरं प्रणम्य, जयपुराधीश्वरादेशानुसारेण तदीयैरपि शतसङ्ख्यैः सादिवीरैर्वृतो

---

मृतः स्वर्गसिंहासनमलङ्करोतिति यावत्। भर्जयतु = दाहयतु। स्वगर्जनतर्जनाभिन्नेन, ज्वलनेन = दहनेन। रूपकम्। वर्ज्यान् = वर्जनीयान्, अस्पृश्यान्।

घनच्छायपलाशिपटले = सान्द्रच्छायवृक्षसमूहे। अलीयत = अदृश्यतां गतः।

स्वात्मीयस्य = स्वीयस्य। स्वपद सार्थम्। जयपुराधीश्वरस्य, आदेशस्य = आज्ञायाः, अनुसारेण। तदीयैः = जयसिंहीयैः। सादिवीरैः =

---

दें, किन्तु आप अपने सिंहनाद तथा कोपानल से इन भारतद्रोही पतित यवनों को जला दें।

साधु की बात सुनकर वीर शिवाजी कुछ कहने को चाहते ही थे कि सहसा वे साधु घनी छाया वाले वृक्षों के समूह में ही अन्तर्हित हो गये। तब महाराष्ट्रराज चिन्तित अवस्था में ही अपनी राजधानी लौट आये और उसी प्रकार के स्वप्न देखते हुये उन्होंने उस रात को बिताया। पुनः उचित समय पर अपने मित्रों से दिल्ली जाने का निश्चय करने के बाद आत्मीय 'स्वर्णदेव' के हाथों महाराष्ट्र राज्य का सारा भार सौंप दिया और ५०० घुड़सवारों एवम् १००० पैदल सेनाओं को साथ लेकर अपनी आराधनीया माता को प्रणाम करके जयपुर नरेश जयसिंह के आदेशानुसार उनके

गौरेण, स्तन्यजीवेन, माल्यश्रीकेण, कविवर-भूषणशर्म्मणा च सहितोऽनिच्छन्नपि दिल्लीं प्रतस्थे। प्रथमेनैव दिनेन क्रोश-दशक-मतिवाह्य, शैलतटेषु उपकारिका आयोज्य, सायं समये पर्वतस्यै-कस्य शोभा-वीक्षण-व्याजेन मित्रैरेव सहाधित्यकामारूढः, तत्रैव शिलासु स्थित्वा विमनायमानः पुनरात्मीयैरेवमालपत्।

महा०—न जाने किमिति ग्लायतीव मे हृदयम्।

माल्य०—महाराज! शत्रु-गृह-प्रवेश एव ग्लानि-कारणम्।

भूषण०—महाराज! ग्लानिर्नाऽऽवहनीया, न रोचते चेदद्यापि प्रतिनिवृत्य जयसिंह सेनैवासनीया। प्रस्थीयते चेद् दिल्लीं गत्वा,

---

अश्वारोहिभटैः। अनिच्छन्नपि = अनभिलषन्नपि। उपकारिका = पटमण्डपानि। शोभावीक्षणव्याजेन = छटावलोकनच्छद्मना।

ग्लायति = क्षीणहर्षतामापद्यते।

शत्रुगृहप्रवेश = रिपुसदनगमनम्।

असनीया = क्षेप्तव्या, जेतव्येति यावत्। प्रस्थीयते = गम्यते। हरिद्रा-

---

भी १०० घुड़सवारों के साथ गौरसिंह, स्तन्यजीव, माल्यश्रीक एवं कविवर भूषण शर्मा सहित अनिच्छा से भी दिल्ली को चल पड़े। पहले दिन ही १० कोशों की दूरी को तय करके पर्वतीय प्रदेश में डेरा डाला और सन्ध्या के समय पर्वत की शोभा को देखने के छल से केवल अपने मित्रों को ही साथ लेकर एक पर्वत की अधित्यका ( ऊपर का समतल भूमि ) पर गये। वहीं पत्थर पर बैठ कर खिन्न चित्त से अपने मित्रों के साथ फिर विचार करने लग गए।

महा०—पता नहीं, मेरा मन इतना खिन्न क्यों हो रहा है।

माल्य०—महाराज! शत्रु के घर में जाने के कारण ही मन इतना खिन्न हो रहा है।

भूषण—महाराज! खिन्नता नहीं रखनी चाहिये। यदि अब भी मन न रहा है तो हम लोग लौट चलें और जयसिंह की सेना को ही पहले

अवरङ्ग जं.बोऽपि वीक्षणीयः। न भवतस्तथा ग्लानिः, यथा स ग्लायति भवत्स्मरणेन। दृष्ट्वैव भवन्तं हरिद्रा-द्रव स्नापित कपोल इव निःशोणितवदनः, विस्मृततुरङ्गः, पारिप्लवकुरङ्ग इव कुरङ्गः, पर्यन्वेपितसुरङ्गः, सवेपथु-दुरङ्गः सवत्स्यति समासादित-भयानक-नवरङ्गोऽवरङ्गः। येन भवानी-नामक खड्गेन भवानीकिनीविजयलाभवता भवता विविधा आपद उत्तीर्णाः, हस्ते एवास्ति स खड्गो भवतः।

---

द्रवेण = महारजनरसेन, स्नापितौ = धौतौ, कपोलौ = गण्डस्थले यस्य सः। निःशोणितवदनः = निर्लोहिताननः। विस्मृततुरङ्गः=अनवधृताश्वः। पारिप्लवकुरङ्ग इव = चञ्चलहरिण इव। कुत्सितो रङ्गः=वर्णः यस्य सः। पर्यन्वेपितसुरङ्गः = गवेषितपलायनमार्गः। सवेपथूनि = सकम्पानि, दुरङ्गानि = दुरवयवाः, यस्य सः। समासादितः=लब्धः, भयानकः, नवः रङ्गो येन सः। भवानीकिन्याः=ससारस्थितनिखिलशत्रुवाहिन्याः, विजयलाभवता = जय प्राप्तवता। आपदः = आपत्तयः।

---

जीत लें। यदि दिल्ली ही चलना है तो चलें, चलकर औरङ्गजेब को भी देख ही लें। आपको याद करते ही जितनी खिन्नता औरङ्गजेब के मन में आ जाती होगी उतनी खिन्नता आपके मनमें नहीं हो सकती है। आपको देखते ही उस औरङ्गजेब का वदन इतना पीला हो जायेगा जिससे ऐसा प्रतीत होने लग जायेगा कि उसके दोनों गाल हल्दी के रस से धुल गये हैं, उसे अपने घोड़े की याद नहीं रह जायेगी, चञ्चल हरिण की कालिमा की तरह उसके शरीर पर भी कालिमा छा जायेगी, अपने को छिपाने या भागने के लिये वह सुरङ्ग खोजने लग जायेगा, भय-कम्पन से उसके शरीर के सारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग विकृत हो जायेंगे और उसके चेहरे पर क्षण-प्रति-क्षण रूप परिवर्तन दीख पड़ने लग जायेगा। जिस 'भवानी' नाम के खड्ग से समस्त ससार की सेना को जीतने वाले आपने इतनी विपत्तियों को झेला है वह 'भवानी' तो आपके हाथ में ही है।

तावदकस्मादेकतः समश्रावि—"महाराज ! विरम, इतोऽपि प्रतिनिवर्तस्व, मा विश्वसिहि दिल्ली कलङ्कम्, खड्गमाश्रय" इति गम्भीरः शब्दः । सर्वैस्ततः पातितदृष्टिभिश्च स एव घृत-तुम्बी-पात्रः, काञ्चन-चूर्ण-प्रचय-रुचिर-मृत्स्ना-मर्दित-सर्वाङ्गः,कृत-कुङ्कुम-तिलकः,तुलसी-माला-लसद्विशाल-वक्ष स्थलः, त्रिदण्डो स्वामी राघवाचार्यो दृष्टः । स त्वागतमात्र एव दक्षिण-हस्तमुत्थाप्य गम्भीरस्वरेण पुनरगादीत्—

समश्रावि = श्रुत । प्रतिनिवर्तस्व = परावृत्ति स्वीकुरु । मा विश्वसिहि, दिल्लीकलङ्कमिति शेषः, मा विश्वास विधेहि, अवरङ्गे । अत्र माशब्दो ननु माङ्, अत एव न लुङ् । खड्गमाश्रय = खड्गमाश्रय । घृततुम्बीपात्रः = गृहीतालाबुभाजन । काञ्चनचूर्णप्रचयवत् = हिरण्यक्षोदव्रातवत्, रुचिरया मृत्स्नया = प्रशस्तमृदा, मर्दित सर्वाङ्गं यस्य स । त्रिदण्डी = दण्डत्रयवान् । अर्जुनेनापि त्रिदण्डधारणमेव कृत सुभद्राहरण-प्रकरणे । ब्राह्मणसन्यासिना सदा दण्डत्रयधारणमेवोचितमिति स्पष्ट निरूपित विहितकल्पनकश्चरिमलक्ष्यइने पण्डितस्वामिरामभिश्रशास्त्रिभिर्महामहोपाध्यैरिति मूलकृदनुमोदिता तच्छिष्यकृता टिप्पणी । सोऽयं सम्प्रदायवाद इति न विस्मर्तव्यम् । वैष्णवा हि त्रिदण्डिनः । वैष्णवपुराणेषु त्रिदण्डधारणमनुनादं, शैवेषु चैकदण्डधारण दरीदृश्यत इति नेद किमपि । शिवाणा स्वपदनव बालबुद्धिप्रतारणातिरिक्त न किमपीति पुराणमतदीपिकायां विस्पष्ट प्रतिपादितमिति तत एवावेक्षणीय सादरविज्ञै । सिद्धान्तन्तु नीलसरस्वती जानातु ।

उसी समय कहीं से यही गम्भीर शब्द सुनाई दिया—"महाराज ! रुक जाँय । यहाँ से भी आप लौट जाँय । दिल्लीकलङ्क यवन का विश्वास न करें, अपनी तलवार उठावें" । उस शब्द सुनकर सबों ने उधर दृष्टि डाली तो वे ही त्रिदण्डी स्वामी राघवाचार्य दीख पड़े जिनके हाथ में कमण्डलु था, सुवर्ण के चूर्ण की तरह रमणीय रामरज से जिनका सारा शरीर लिप्त था, जिनके ललाट में कुंकुम का तिलक सुशोभित हो रहा था और जिनका विशाल वक्ष स्थल तुलसी की माला से विकसित हो रहा था । आते ही स्वामी जी ने अपनी दायीं भुजा उठाकर गम्भीर स्वर से पुनः कहा—

"वीर ! इतोऽपि विरम । चिर-प्रवृद्धं वैरम् । अविश्वास्योऽवरङ्गजीवः । दिल्लीतो दूरं महाराष्ट्र-सेना । स्फुरति च मे वामं नयनम् , तदितोऽपि निवृत्यताम् । यदि दिल्ली-वल्लभस्याऽऽज्ञया जयपुरेश्वरो युध्यते, तद् योत्स्यामहे [ विचार्य ] युध्यन्ताम् । राजपुत्रदेशीया युद्धकुशलाश्चेन्महाराष्ट्रा अपि दुर्बलेन करेण न वहन्ति चन्द्रहासम् । युद्धे प्राणांस्त्यदयथ, ततोऽपि मार्तण्ड-मण्डलं भित्त्वा स्वर्गमार्गमाकुलयिष्यथ । यदि विजेष्यध्वे, ततोऽपि लोकद्वये कीर्त्यां कीर्तिं धर्मरक्षा-पुण्यञ्च लप्स्यध्वे । अलं कुक्कुट-मेदो-मेदस्वि-तुन्द-तुन्दिलस्य,

---

इतोऽपि = अस्मादपि स्थानात् । चिरप्रवृद्धम् = दीर्घकालवर्धमानम् । वामम्=दक्षिणेतरम् । पुंसाम् अशकुनमिदमिति लोकप्रसिद्धम् । योत्स्यामहे= सङ्ग्रामयिष्यामः । त्वयापि कर्तृकोटौ निक्षेप इति शिवराजभृत्येष्वन्यतम इति विचाल स्यात् , साधुनाकरत्वं प्रकटितं स्यादिति विचार्य आह युद्धयन्ताम् , भवद्भिरिति कर्तृपदम् । दुर्बलेन = बलशून्येन । आकुलयिष्यथ = क्षोभयिष्यथ । लोकद्वये = इहामुत्र च । कीर्त्याम् = कीर्तनीयाम् , गेयामिति यावत् । कीर्तिम् = यशः । धर्मरक्षायाः = वैदिकधर्मपा-

---

"वीर ! अब भी आप लौट जाँय । यवनों के साथ आपकी पुरानी शत्रुता है । औरङ्गजेब का विश्वास नहीं करना चाहिये । मराठे सैनिक दिल्ली से बहुत दूर हैं । साथ ही, मेरी बायीं आँख भी फरक रही है । अतः यहाँ से भी आप अपनी राजधानी को लौट चलें । यदि दिल्लीधसम्राट् औरङ्गजेब की आज्ञा पाकर जयपुर-नरेश युद्ध करने को उद्यत होते हैं तो युद्ध करेंगे । [ सोचकर ] युद्ध करें । यदि राजपुताने के निवासी युद्ध कुशल होते हैं तो मराठे भी कमजोर हाथों से अपने खड्ग नहीं पकड़ने वाले हैं । यदि युद्ध में आप लोग मर भी जाते हैं तब भी सूर्यमण्डल का भेदन करके आप लोग स्वर्ग-मार्ग में ही उथल पुथल मचायेंगे (नरक में नहीं) । यदि विजय हुई तो इहलोक तथा परलोक में गान करने योग्य यश एवम् धर्मरक्षणजन्य पुण्य की प्राप्ति होगी । मुर्ग-मुसल्लम खाने से मोटी तोन्दवाले और मदिरापान के

वारुण्या व्याघूर्णित-नयनस्य, अवरङ्गजीवस्य गृहावग्रहणी-घर्षणेन । आः ! नावलोकयितुं शक्नोमि !! यो महाराष्ट्र-मण्डल-चक्रवर्ती; स एवाद्य दिल्लीकलङ्कस्य करप्रदः संवृत्तः !! धर्म-धारि धौरेयः पातकपुञ्ज-पतयालुं प्रेक्षितुं पथिकः ! कर-कलित-भवानी-करवालोऽपि जाल्मस्य पाटच्चर-परिपन्थिनोऽग्रे विनयं दर्शयिष्यति !! हा दैव ! विचित्रा ते गतिः !"

तदाकर्ण्य क्षणं सर्वे चित्र-लिखिता इव नीरवाः संवृत्ताः । ततो महाराष्ट्रपतिरवादीत्—

---

लनस्य, पुण्यम् = धर्मम् । कुक्कुटमेदोभिः = चरणायुधमांसादिभिः, मेदस्विना = चिक्कणेनोन्नतेन च, तुन्देन, तुन्दिलस्य = वृहत्कुक्षेः । वारुण्या = मदिरया, व्याघूर्णिते = चाञ्चल्यमुपयाते, नयने, यस्य तस्य । गृहावग्रहण्याः = देहल्याः, घर्षणेन = घट्टनेन । करप्रदः = राजस्वसमर्पकः । पातकपुञ्ज-पतयालुम् = अघौघपतनशीलम् । प्रेक्षितुम् = द्रष्टुम् । पथिकः = पान्थः । जाल्मस्य = धूर्तस्य । पाटच्चरपरिपन्थिनः = लुण्ठकस्य शत्रोः । विनयम् = नम्रताम् ।

नीरवाः=निःशब्दाः ।

---

कारण चक्कर काटती हुई आँखों वाले औरङ्गजेब के डेहरी पर माथा रगड़ने का क्या फल होगा ! अहा हा ! अब देखा नहीं जाता ! जो महाराष्ट्रदेश के सम्राट् हैं वे आज दिल्लीकलङ्क औरङ्गजेब को कर देनेवाले हैं ! जो धर्मात्माओं में श्रेष्ठ हैं वे आज पापपुञ्ज से पतित यवन को देखनेवाले पथिक हैं ! 'भवानी' जैसे खड्ग को हाथ में लेकर भी उस धूर्त, गुण्डों के सरदार के आगे झुकने जा रहे हैं । हा विधाता ! आपकी कैसी विचित्र विधि है !"

स्वामी जी की बातें सुनकर थोड़ी देर के लिये तो सब चित्रवत् स्तब्ध हो गये । किन्तु बाद में महाराष्ट्रराज ने कहा—

नवीन-संन्यासिन् ! हृदयग्राहि ब्रूषे। परन्तु कथय, यदि भारतीयानां वैदिक-धर्मावलम्बिनामेव मांसैर्मांसलीक्रियेत भारत-वसुमती, तत् किं न भवति पापम् ?

राघवाचार्यः—पापं कस्य ? यो विरोधिनां पक्षमवलम्ब्य स्वबन्धूञ्जिघांसति, यत्कुलजा यवनानां श्यालत्वे श्वशुरत्वे च प्रतिष्ठां मन्यते; तस्य। न त्वेतस्य, यः स्वधर्मं रक्षितुं द्विषतो रुणद्धि। [ततः सर्वेषु क्षणं नीरवेषु पुनः] वीर ! गत-दिवसेऽपि भवन्तं कथितवानस्मि, तदेव चाद्याप्याम्रेडितवानस्मि। गच्छाम्यहमधुना तीर्थान्यटितुम्, स्वस्ति भवते, यथा रोचेत तथा विधेयम्—

---

नवीनसंन्यासिन् ! =अचिरगृहीतसन्यास ! चिरात्र धर्मो विचारित इत्येव ब्रूषे इति हार्दम्। हृदयग्राहि = मनोहारि, क्रियाविशेषणम्। मांसलीक्रियेत=पुष्टा क्रियेत। भारतवसुमती = हैन्दववसुन्धरा। जिघांसति=हन्तुमिच्छति। श्यालत्वे=पत्नीभ्रातृत्वे। श्वशुरत्वे= पत्नीपितृत्वे। द्विषतः = शत्रून्। आम्रेडितवान्=द्विस्त्रिः कथितवान्। तीर्थानि = पुण्यस्थानानि। अटितुम् = भ्रमितुम्। शालजाले = वृक्षसमूहे।

---

"युवक सन्यासी जी ! आप तो जँचनेवाली बातें कर रहे हैं। परन्तु आप ही बतलायें कि यदि वैदिक धर्मावलम्बी भारतवासियों के मांसों से ही यह भारत भूमि भर जायेगी तो क्या इसमें पाप नहीं ?"

राघवाचार्य—पाप किसको लगनेवाला है ? जो शत्रुपक्ष का अवलम्बन करके अपने बन्धुओं को भी मारना चाहता है, जिसके कुल के लोग पतित यवनों के साले और श्वशुर बनने में ही अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं उसको पाप लगेगा, अपने धर्म की रक्षा करने के लिये शत्रु से लड़ने वालों को नहीं। [ उसके बाद सबके मौन हो जाने पर पुनः ] वीर ! मैं कल भी आपसे कह चुका हू और आज भी मैंने उसी बात को दुहराया है। लीजिये, मैं तो अब तीर्थयात्रा में चल रहा हूँ, आपका कल्याण हो ! अब आपको

[ इत्युक्त्वा सपदि शाल-जाले निलिल्ये ]

महा०—( उच्चैर्निश्वस्य ) गगन-गिरेवाऽऽलपितमिदम् । किं कुर्याम् ? स्मार स्मारमिमां गिरं स्व बाल्य-स्वप्नानिव पुनश्चक्षुषोरग्र इव पश्यामि-यद् यवनदुर्गाणि वशीकृतवानस्मि, सुदूर पर्यन्त देवमन्दिरेषु ध्वजा उड्डीयन्ते, मथुरा-वृन्दावन-वाराणस्यादि-तीर्थेषु निर्भयं श्रीमद्भागवत-रामायणादि-कथा घोष्यन्ते, वयं दिल्लीमपि आवृतवन्तः कम्बोज-पर्य्यन्त यवनाः पराजिताः—भवानी च स्वयमिव प्रकटीभूय यवनहतकैर्योद्धुं मामुत्साहयते। तत् किं व्यर्था एवैते स्वप्नाः ? व्यर्थ एव भवानी-समुत्साहः? किमद्य

"वनोकह कुटः शाल" इत्यमरः। निलिल्ये = निलीनः।

गगनगिरा=नभोवाण्या। उड्डीयन्ते=दोधूयन्ते। घोष्यन्ते = उच्चैः कथ्यन्ते। आवृतवन्तः = अवरुद्धवन्तः। व्यर्थाः = निष्प्रयोजनाः।

जैसा अच्छा लगे वैसा करें [ यह कहकर तत्क्षण ही स्वामी जी वृक्षों के पुञ्ज में अन्तर्हित हो गये ]

महा०—[ लम्बी सांसें भर कर ] यह तो आकाशवाणी जैसी लगती है। क्या करूं ? इस बात की याद करने पर तो मेरे बाल्यकाल के स्वप्न—मैंने यवनों को किलाओं को जीत लिया है, मन्दिरों पर काफी दूर तक पताकाएँ फहरा रही हैं मथुरा, वृन्दावन तथा वाराणसी आदि तीर्थों में निर्भयभाव से श्रीमद्भागवत, महाभारत आदि की कथाएँ सुनाई जा रही हैं, हम लोगों ने दिल्ली को भी घेर लिया है, कम्बोज ( हिन्दुकुश के उत्तरी प्रदेश ) तक यवनों की पराजय हो चुकी है—पुनः मेरी आँखों के सामने प्रस्तुत जैसे हो चुके हैं और इधर यह 'भवानी' खड्ग भी स्वयम् प्रकट सा होकर इन दुष्ट यवनों के साथ लड़ने के लिये मुझे उत्साहित कर रहा है। क्या मेरे ये सारे स्वप्न व्यर्थ ही हो जायेंगे ? क्या 'भवानी' का यह उत्साह भी निरर्थक ही होने वाला है ? क्या आज दिल्ली का कलङ्क औरङ्गजेब मुझे

दिल्ली-कलङ्को मां निग्रहीष्यति ? न जाने किं भावि ! दिल्लीं प्रस्थितोऽस्मि। स सन्यासी च निवारयति। अकारण-बन्धुरेष तथ्यं ब्रूते—इति निश्चिनोति मे हृदयम् !

(क्षण सर्वेषु नीरवेषु) भूषण०—महाराष्ट्रराज ! यस्य भवतो नामापि श्रुत्वा यवन-रमणीनां गर्भाः पतन्ति, अवरङ्गजीवं च ज्वर इवाऽऽविशति, कस्तं निग्रहीष्यति ? यदि गगन-विहारी विहङ्गराजः पिञ्जरे निगृह्येत; यदि शार्दूलो वशे क्रियेत, यदि वा नागनाथोऽनन्तो घटे मुद्र्येत, ततोऽपि को जानीते सम्भाव्येत भवतो निग्रह-कथा न वा ? तच्चिन्ता-चक्रेणालम् ! यदि कोपकषा-

निग्रहीष्यति = स्वायत्तीकरिष्यति, दण्डयिष्यति। अकारणबन्धुः = निष्प्रयोजनमित्रम्। तथ्यम् = सत्यम्।

गर्भाः = औदरिका बालाः। ज्वरः = शरीरताप.। गगनविहारी = आकाशचारी। विहङ्गराजः = गरुड़। पिञ्जरे = पक्षिस्थित्यर्थं निर्मिते लोहादियन्त्रे। शार्दूल = मृगाधीशः। नागनाथः = सर्पराजः। अनन्तः = तन्नामा, शेष इति यावत्। घटे = गगरे। मुद्र्येत = नियन्त्र्येत। निग्रहकथा = नियन्त्रणवार्ता। चिन्ताचक्रेण = चिन्तनव्रातेन। कोपक-

पकड़ लेगा ? क्या होने वाला है उसका पता नहीं लग रहा है ! मैं दिल्ली के लिए चल चुका हूँ, पर ये सन्यासी जी वहां जाने से मुझे रोक रहे हैं। स्वार्थ हीन बन्धु होने से ये सत्य ही कहते होंगे—ऐसा मन कह रहा है।

[ क्षणभर सबके स्तब्ध हो जाने के बाद ]

भूषण—महाराष्ट्रराज ! आपका नाम भी सुनकर यवनियों के गर्भ गिर जाते हैं, औरङ्गजेब को ज्वर जैसा हो जाता है, फिर आपका कौन पकड़ सकता ? भले ही आकाश में विचरण करने वाले पक्षिराज गरुड़ का पिंजड़े में बन्द कर लिया जाय सिंह को भी वश में कर लिया जाय, और शेषनाग को भी एक छोटे घड़े में मूँद दिया जाय फिर भी आपके पकड़ जाने की

यितो रणाङ्गणे बलेन जयसिंहस्यापि शिरस्यसिमसिष्यसि; तन्मन्ये तस्योष्णीषं लौह-शिरस्त्रं सकवचमङ्गं महोपवेशनं दन्तावलञ्च द्विकृत्वा वसुधां विदार्य कमठ-पृष्ठे रेखां विधास्यसि। यदि च अवरङ्गजीवमरुणेनापाङ्गेनापि निरीक्षिष्यसे; तत्तं मूर्छयिष्यसि। दिल्लीं गच्छ वा, परावर्तस्व वा, न भवति ते आशङ्कास्थानं किमपि। दिल्लीं प्रयात आपत्सु पतितोऽपि कौशलेन प्राणोद्धार कुशलेन स्वदेशमायास्यसीति निश्चितं वदामि, मा स्म शङ्किष्ठा

---

पायितः=रोपक्षेप । असिम् = चन्द्रहासम् । असिष्यसि=क्षेप्स्यसि। उष्णीषम् = शिरोवेष्टनम्। लौहम् = आयसम्, शिरस्त्रम् = शीर्षत्राणम्। सकवचम्=सतनुत्राणम्, महोपवेशनम्=विशालासनम् । दन्तावलम्=करिणम् । वसुधाम् = धरित्रीम् । विदार्य=विभिद्य । कमठपृष्ठे = कच्छपपृष्ठे । रेखाम् = चिह्नम् । अरुणेन= क्रोधरक्तेन । अपाङ्गेन= नेत्रप्रान्तेन । मूर्च्छयिष्यसि = मूर्छितं विधास्यसि । आपत्सु = विपत्सु । कौशलेन = नैपुण्येन । प्राणोद्धार = लब्धनिष्क्रमणः । कुशलेन=शिवेन । मा स्म शङ्किष्ठा = शङ्का मा कृथा ।

---

युद्ध होकर युद्धक्षेत्र में जयसिंह के मस्तक पर भी बलपूर्वक अपना खड्ग चलावें तो मैं समझता हूँ कि आपका खड्ग उसकी पगड़ी, उसके लोहे के टोप (Helmet), कवच सहित उसके शरीर, उसके हाथी के पीठ पर के गद्दे और उसके हाथी को भी दो टूक और पृथ्वी को विदीर्ण करता हुआ पृथिवी के भार को ढोने वाले 'कच्छपराज' की पीठ पर भी अपना चिह्न बना डालेगा। यदि औरङ्गजेब के ऊपर आप अपनी कोपारुण दृष्टि भी डाल देंगे तो वह मूर्छित हो जाएगा। चाहे आप दिल्ली जाँय या लौट जाँय, पर मुझे किसी प्रकार की आशङ्का का आधार नहीं दीखता। यदि दिल्ली जाने पर आप कथञ्चित् आपत्ति मग्न भी हो जाएँगे तब भी मैं निश्चयपूर्वक यह कहता हूँ कि आप अपने कौशल से अपने को उस आपत्ति से बाहर निकाल कर कुशलपूर्वक अपने देश लौट आएँगे ही। मुझ ब्राह्मण की वाणी

ब्राह्मण-वचने। यथा रोचेत तथा विधेहि।

[ मुहूर्तं सर्वेषु स्तब्धेषु ] माल्य०—भगवन् ! चिर-विचारेण निश्चिते विषयेऽलं चिन्तया ! जयपुरेश्वरेण सन्धिर्विहितः। भवतो दिल्लीतः कुशल-निवर्तनं वृद्धेन महाराजेन प्रतिज्ञातम्, सन्ति च रामसिंह-मायाजिह्म-प्रभृतयस्तत्रापि भवत पक्षावलम्बिनः। सशस्त्रा वयमपि। स भवतो विरुद्धमाचरिष्यति चेत्, सर्वोऽप्येष देशो विद्रोहस्य ज्वालाभिरिव ज्वलिष्यतीति दिल्लीश्वरोऽपि वेवेत्ति। जयसिंहेन सह युद्धे पराजय इति स्पष्टमुक्त दैवज्ञवर्येण देवशर्मणा। दिल्लीत आपदोऽप्युल्लङ्घ्य, हनूमानिव लङ्कात कुशलेन निवर्तिष्यते—

स्तब्धेषु = मौनिप्रायेषु। कुशलनिवर्त्तनम् = क्षेमेण परावृत्तिम्। सशस्त्राः = सायुधाः। वेवेत्ति = अतितरां जानाति। दैवज्ञवर्येण = मौहूर्तिकशिरोमणिना। क्रियासमभिहारेण = वार वारम्। दैवज्ञैः = अदृष्टज्ञै., ज्यौतिषिकैः। प्रतिष्ठामहे=गच्छामः। ताश्च ता आपदश्च तदापदः=भाविवि-

में आप सन्देह न करें। तथापि आपको जैसा अच्छा लगे वैसा करें।

[ थोड़ी देर तक सबके चुप हो जाने के बाद ]

माल्य०—भगवन्! जिस विषय में पहले ही पर्याप्त विचार के बाद निश्चय हो चुका है उस विषय में पुनः सोचना व्यर्थ है। जयपुर-नरेश ने तो सन्धि कर ली है और भी, वृद्ध जयपुरेश्वर ने दिल्ली से कुशलपूर्वक आपके लौट आने की प्रतिज्ञा भी की है। दिल्ली में भी रामसिंह, कुमार सुभङ्ग आदि बहुत से लोग आपके समर्थक हैं और हमलोग भी सशस्त्र हैं। यह बात औरङ्गजेब भी अच्छी तरह जानता है कि यदि वह आपके प्रतिकूल आचरण करेगा तो यह सारा देश विद्रोह की ज्वाला में जलकर भस्म हो जाएगा। महान् ज्यौतिषी देवशर्मा ने तो साफ-साफ यह भी कह ही दिया है कि जयसिंह के साथ युद्ध करने में हम लोगों की पराजय अवश्यम्भावी है। आपत्तियों के आने पर भी उनसे छुटकारा पाकर लङ्का से हनूमान् की तरह दिल्ली से आप सकुशल लौट आएँगे—यह बात

इति च नियासममिहारेण कथ्यते देवचैर्ब्राह्मणैः। तद् यदि दिल्लीं प्रतिष्ठामहे, तदा तदापदोऽपि समुत्तीर्य परावर्तिष्यामहे—इतीष्टदेवं स्मृत्वाऽऽरब्धस्यैवान्तगमनं विधेयम्।

एवमालपतामेव तेषां सगर्जनमेको व्याघ्रः सम्मुखं समापप्तत्। शिववीरश्च सपदि समुत्थाय, दक्ष-कर-धृत-विकोश-च्छुरिको वामे चर्म च धृत्वा तमभिपतितः। यावत्स व्याघ्रः पूर्वकराभ्यां तमाच्छन्दति, तावत्स चर्मणि तदग्रकरौ प्रतिरुध्य, अन्तः प्रविश्य,

---

पत्ती। समुत्तीर्य = उल्लङ्घ्य। परावर्तिष्यामहे = प्रत्यागमिष्याम। स्वदेशं प्रतीति शेषः। इष्टदेवम् = महाकालिकादिम्। आरब्धस्य = अनुष्ठितस्य। 'अनारम्भो मनुष्याणां प्रथमं बुद्धिलक्षणम्। आरब्धस्यान्तगमनं द्वितीयं बुद्धिलक्षणम्॥'

इति हि प्रामाणिकाः।

सगर्जनम् = सक्ष्वेडम्। व्याघ्रः = शार्दूलः। समापप्तत् = आगतः। दक्षे करे धृता विकोशा = नग्ना, छुरिका येन सः। चर्म = असिरक्षणीम्। पूर्वकराभ्याम् = अग्रिमचरणाभ्याम्। पशूनामग्रिमौ द्वौ हस्तौ, पाश्चात्यौ च चरणाविति विवेकः। आच्छन्दति = आवृणोति। अन्तः = उदरान्तिके।

---

भविष्यवेत्ता ब्राह्मण लोग बारम्बार कह रहे हैं। इसलिये यदि हम लोग दिल्ली चलें भी तो भी वहाँ आई हुई सारी आपत्तियों से मुक्त होकर अपने देश लौट आयेंगे ही—यह सोच कर अपने इष्टदेव का ध्यान करते हुये प्रारब्ध यात्राकार्य का विधिवत् समापन ही करना उचित है।

इस प्रकार सबों की बात चीत चल ही रही थी कि इतने में एक गुर्राता हुआ बाघ सामने से दौड़ पड़ा। वीर शिवाजी झट से उठ कर दायें हाथ में अपने नङ्गे छूरे और बायें में ढाल लेकर उस पर टूट पड़े। ज्योंही उस बाघ ने अपने दोनों आगे के पैरों से शिवाजी के ऊपर आक्रमण किया त्योंही वीर शिवाजी ढाल से उसके दोनों पैरों को रोक कर आगे बढ़े और

छुरिकयोदरं विददार। तत्क्षणमेव च शिवसहचरा अपि स्वस्व खड्गैस्तमोतप्रोतं चक्रुः। अथ सर्वैस्तमालिङ्ग्य 'विजयस्व विजयस्व, शुभसूचकमिदम्' इति व्याजह्रे। दिल्लीगमनं च पुनः स्थिरयित्वा स्वोपकार्यां विविशे।

× × ×

समयोऽयं महामहिम-हिमाच्छन्न-शिशिरस्य। ऋतुनैतेन दिनानां परिणाहः, तमीनां तनुता, पयोजानां प्रसन्नता, सलिलानां सुखावगाह्यता च लुण्ठिता। भगवान् भास्करो दक्षिणस्थः। निर्वा-

विददार = द्विधा चकार। ओतप्रोत = छिद्रानुविद्धम्। व्याजह्रे = कथितम्। स्वोपकार्यां = स्वशिविरम्। विविशे = प्रविष्टा। सर्वैरिति शेषः।

× × ×

महामहिम्ना = प्रचुरप्रभावेण। हिमेन = प्रालेयेन, आच्छन्नस्य = आवृतस्य, शिशिरस्य। परिणाहः = विशालता। लुण्ठितः = इति लिङ्ग-विपरिणामेनान्वीयते यथायथम्। तमीनाम् = रात्रीणाम्। तनुता-लघुता। पयोजानाम् = कमलानाम्। प्रसन्नता = विकासशीलता। सुखेन = आनन्देन, अवगाह्यता = स्नानयोग्यता। सहोक्तिरलंकारः। लुण्ठिता = चोरिता।

उसके पेट को छूरे से उन्होंने फाड़ दिया। उसी समय शिवाजी के साथियों ने भी उस बाघ को अपनी अपनी तलवार से खण्ड-खण्ड कर दिया। इसके बाद सबों ने शिवाजी को गले लगाकर उनकी विजयध्वनि की। पुनः दिल्ली यात्रा के विषय में निर्णय करके सब अपने-अपने शिविर में चले गये।

× × × ×

भयङ्कर हिमपात से आच्छन्न शिशिरऋतु का समय था। वह ऋतु दिनों की लम्बी अवधि को, रात के छोटेपन को, कमलों की प्रसन्नता को और जल की अनुकूल स्नान करने की क्षमता को समाप्त कर चुकी थी। भगवान् सूर्य दक्षिणायन हो चुके थे। हिमपात के कारण (कुहासे के कारण)

सितः। गगनतलं च प्रायिक प्रालेय पातैर्धूम-धूसरितमिव विहितम्। साम्प्रतं तैल-ताप-तूलिका-तरुणी-ताम्बूलादिष्वेव कृतादरा जनाः। जगत्प्राणो जगति प्राणिनो जडीकुर्वन् जवेन वहति। आखण्डल-दिक्कुण्डलतामात्रमुपेयुषः, शुकतुण्ड-च्छवेः, मार्त्तण्ड-मण्डलस्य, अचण्डानां मरीचीनां कोमलमुत्तापं सिषेवयिषूणां शाद्वलेन पथा प्रयातानां वन्यजन्तूनां पाद-क्षेप-विहृता नैशीय-

निर्वासितः = निरस्तः। प्रायिकैः = प्रायोभवैः, प्रालेयपातैः = हिमानीपतनैः। धूमधूसरितमिव = धूममलिनमिव। तैलम् = स्नेहः, तापः = अग्न्यातपादिजन्मा, तूलिका = तूलवती, तरुणी = युवती, ताम्बूलम् = नागवल्ली, इत्येतेषु। कृतादराः = विहितमर्यादाः। जगत्प्राणः = समीरणः। प्राणिनः = जनान्। जडीकुर्वन् = स्तब्धीकुर्वन्। जवेन = वेगेन। आखण्डलदिशः = ऐन्द्रया हरितः, कुण्डलतामात्रम् = कर्णभूषणतामात्रम्। उपेयुषः = प्राप्तवतः। शुकतुण्डच्छवेः = कीराननकान्तेः। मार्त्तण्डमण्डलस्य = सूर्यमण्डलस्य। अचण्डानाम् = अकठोराणाम्। मरीचीनाम् = दीधितीनाम्। उत्तापम् = औष्ण्यम्। सिषेवयिषूणाम् = सेवितुमिच्छूनाम्। शाद्वलेन = घासमयेन। प्रयातानाम् = गतानाम्। वन्यजन्तूनाम् = आरण्यकजीवानाम्। पादक्षेपविहृताः = चरणपातदलिताः। नैशीयानाम् =

आकाश धुँधला सा दीख रहा था। तेल, आग, रजाई, तरुणी तथा ताम्बूल आदि में ही लोगों की आसक्ति बढ़ रही थी। उधर संसार को अनुप्राणित करने वाली हवा भी इतनी तेजी से बह रही थी कि इस जगत् के सभी जीव-जन्तु जाड़े से शिथिल हो रहे थे। पूर्वदिशा के कुण्डलमात्र के रूप में में वर्तमान तथा सुग्गे के मुख की जैसी लाली से सम्पन्न सूर्यमण्डल की मन्द किरण की अनुकूल गर्मी के अनुभव करने की इच्छा रखने वाले और घास से भरे रास्ते से गुजरने वाले जङ्गली जीव जन्तुओं के पादाघात से जो रात के गिरे पाले कहीं-कहीं फट पड़े थे उन्हीं से शिकारियों को पशुओं के जाने के मार्ग का संकेत मिल रहा था। सुन्दरियों के साथ न रहने पर

मिहिका-प्रचय-भङ्गा एव, आखेटक्रीडा-कौतुकिनां पन्थानमुपदिशन्ति। सुन्दरी-संसर्ग-रहितमपि वीरमण्डलमिदं प्रायिकसीत्कारं प्रणिताधरं सरोमाञ्चं सवेपथु चास्ति। दिने सवेग-घोटक-धावनेन न लक्षितो हिम-पात-व्रात-घातः, निशीथिन्यान्तु वरूथिनीय मन्थरिता।

तदेवं स्थिरप्रतिज्ञास्ते प्रस्थिताः पथिषु प्रायो गोधूम-यवाऽऽढकी-मसूराऽतसी - सर्षप - हरिमन्थक - हरितानि परिपक्व-

---

रात्रिपतितानाम्, मिहिकाप्रचयानाम् = हिमनिकराणाम्, भङ्गाः=छेदाः। आखेटक्रीडाकौतुकिनाम् = मृगयाव्यसनिनाम्। पन्थानम् = मार्गम्। उपदिशन्ति = प्रकटयन्ति। पथि पतितहिमानीषु चरणचङ्क्रमणचिह्नेन मृगयवः पशुगमनमार्गं निशीथे निश्चिन्वन्तीति तात्पर्यम्। सुन्दरीणाम् = वनितानाम्, संसर्गेण = सम्पर्केण, रहितम् = शून्यम्। वीरमण्डलम् = वीरकदम्बकम्। प्रायिकः = प्रायोभवः, सीत्कारः = अधरखण्डनादिकालिकः शब्दविशेषः यस्मिन्। प्रणिताधरम् = व्रणोष्ठम्। सरोमाञ्चम् = सपुलकम्। सवेपथु = सकम्पम्। स्त्रीसंसर्गे भावि सर्वमिदं हिमानीसम्पर्कतोऽभेदीति विवेचनीयम्। सवेगघोटकधावनेन = सजवाश्वशीघ्रगत्या। हिमपातव्रातघातः = हिमानीताडनम्। निशीथिन्याम् = तमस्विन्याम्। वरूथिनी = सेना। मन्थरिता = शीथ्यजवा।

स्थिरप्रतिज्ञाः = निश्चितसन्धाः। गोधूमः = "गेहूँ", यवः = "जौ", आढकी = "अरहर", मसूरः = "मसूर", अतसी = "तीसी", सर्षपः = "सरसों", हरिमन्थकः = "चना", एभिः, हरितानि = हरिद्वर्णवन्ति।

---

भी वीरों का समूह सीत्कार, अधरोष्ठ के घाव (शीत के समय ओठों का फट जाना स्वाभाविक है), रोमाञ्च तथा कम्पन से युक्त हो रहा था। दिन में तो तेजी से घोड़े के दौड़ने से हिमपात का अधिक असर सेना पर नहीं पड़ पाता था पर रात में तो सेना की गति धीमी पड़ ही जाती थी।

इस प्रकार भी सत्यप्रतिज्ञता के कारण वे लोग आगे बढ़े। रास्ते में कहीं तो गेहूँ, जौ, अरहर, मसूर, तीसी, सरसों और चने के पौधों से हरे-भरे, कहीं

धान्य-कपिशानि निबिडेक्षु-दुर्गमाणि छिद्यमान-मुद्ग-माष-वल्लाणि क्षेत्राणि निरीक्षमाणाः, तत्क्षणच्योतितेक्षुरसं रसयन्तः, नवीनान् सतीनान् खादमाना, कृत्त-कलम-पुष्कल-पटलेषु वृष-भावली-चालनेन धान्य-पवन-कार्यं सम्पादयतां खट्वाः परित्यज्य सकौतुकं महाराष्ट्र-वीर-मण्डलमवलोकयतां खेट-खर्वट-वासिनां निरीक्षण-कौतुकमावहन्तः, सूच्यग्रैरहिफेन-फलानि निर्यासार्थं

परिपक्वैः धान्यैः, कपिशानि = कपिशवर्णानि । "श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते" इत्यमरः। निबिडेक्षुदुर्गमाणि = सान्द्रेक्षुदुर्गमानि । इक्षु', "ऊख" इति हिन्द्याम् । छिद्यमानानि = कर्त्यमानानि मुद्गमाषवल्लाणि येषु तानि । "मूँग, उरदी, बाजरा" इति लौकिकाः शब्दाः । तत्क्षणच्योतितेक्षुरसम् = तत्कालनिस्सारितेक्षुद्रवम् । रसयन्तः = आस्वादयन्तः, पिबन्त इति यावत् । नवीनान् = नूतनान् । सतीनान् = निष्पावान् । "केराव" इति हिन्दी । खादमानाः = खादन्तः, कृत्तानाम् = खण्डितानाम्, कलमानाम् = धान्यानाम्, पुष्कलपटलेषु = पूलव्रजेषु । वृषभावलीनाम् = बलीवर्दपङ्क्तीनाम्, चालनेन = भ्रामणेन । धान्यपवनकार्यम् = धान्यपूतीकरणकर्त्तव्यम् । "दँवरी" इति लोके । सम्पादयताम् = कुर्वताम् । खट्वाः = पर्यङ्किकाः । सकौतुकम् = सकुतूहलम् । अवलोकयताम् = पश्यताम् । खेटखर्वटवासिनाम् = क्षेत्रान्तरालस्थरिक्तभूमिनिवासिनाम् । निरीक्षणकौतुकम् = अवलोकनकुतुकम् । आवहन्तः = धारयन्तः । सूच्यग्रैः = स्यूतिकरणाग्रैः अहिफेनफलानि = "पोस्ता" इति ख्यातानि फलानि । निर्यासार्थम् =

पके धान की पीतिमा से मनोहर, कहीं घनी ऊख के कारण दुर्गम और कहीं मूँग और उरदी की लताओं के उत्पाटन तथा बाजरे की कटनी से सुशोभित खेतों के सौंदर्य को देखते हुए, ऊख के ताजे रस का पान करते हुए, नये नये मटर के दानें (छीमी) खाते हुए, खेतों में बनाई गई झोपड़ियों में रहकर काटे गये धान की पुल्लियों के ऊपर बैलों के परिभ्रामण के द्वारा (धान की) दबनी (कण मर्दन) करते हुए भी महाराष्ट्र देश के

घर्षयन्तीनां कलमान् कृन्ततीनामारण्यक-शुष्क-गोमयराशीश्चिन्वतीनां ग्राम्य-चेटीनां शिवराज-यशोमयानि गीतानि शृण्वन्तश्च कतिपयैरेव सप्ताहैरहोमदनगरम्, विराट-देशम्, इन्द्रपुरम्, उज्जयिनीम्, गोपालपुरम्, मथुरां च समुल्लङ्घ्य, अङ्गर्तुरसेन्दु-मित-वैक्रमाब्दस्य [ १६६६ ] वसन्तारम्भे दिल्लीनिकटं प्रापुः।

---

तन्निःसृतदुग्धप्रायविपार्थम्। निर्यासः = "गोंद, लासा" इति लोके। अहिफेनम् = "अफीम" इति हिन्दी। घर्षयन्तीनाम् = घट्टयन्तीनाम्। कलमान् = धान्यानि। कृन्ततीनाम् = खण्डयन्तीनाम्, आरण्यकानाम् = वन्यानाम्, शुष्कगोमयानाम् = "गोइठा" इति ख्यातानाम्, राशीन् = समूहान्। चिन्वतीनाम् = सकलयन्तीनाम्। ग्राम्यचेटीनाम् = ग्रामीणभृत्यानाम्। गीतानि = गीतीः। अहोमदनगरम् = "अहमदनगर" इति ख्यातम्। विराटदेशम् = विदर्भप्रान्तम्, "बरार" इति ख्यातम्। इन्द्रपुरम् = "इन्दौर" इति ख्यातम्, "इन्द्रावती"ति तद्वाचकोऽपरः संस्कृतशब्दस्तत्रत्यैर्बहुधाऽङ्गीकृतः। उज्जयिनीम् = अवन्तीम्। गोपालपुरम् = वृन्दावनम्। अङ्गानि षड् वेदस्य, ऋतवः षट्, रसाः षट्, इन्दुः-एकः "अङ्कानां वामतो गतिरि"ति-१६६६-सङ्ख्यया, मितस्य = परिमितस्य, वैक्रमाब्दस्य = विक्रमराज्यादतीतहायनस्य। वसन्तारम्भे = मधुप्रारम्भे। प्रापुः = प्राप्तवन्तः।

---

उन वीरों को मण्डली को कुतूहल पूर्वक देखने वाले कृषकों के दर्शन-कौतुक का मजा लूटते हुए और सूई की नोक से अफीम के फल को उसके रस निकालने के लिए बींधने वाली, धान की फसल काटने वाली और जंगल में सूखी गौहरी चुनने वाली गाव की दासियों द्वारा गाये जाने वाले शिवाजी के यशोगीत को सुनते हुए कुछ ही सप्ताहों में अहमद नगर विदर्भ देश (बरार), इन्दौर, उज्जयनी, वृन्दावन एवं मथुरा होते हुए १६६६ विक्रमाब्द की बसन्त ऋतु के आरम्भ में दिल्ली के पास पहुँचे।

दिल्लीतः कियद्दूरे यमनातटे शिबिर-सन्निवेशो गिरिग्राम समीपे विहित, जयसिंह-प्रेषिता' सादिनश्च महाराष्ट्राधीश-समागम-सवाद-कथनाय यमुनामुत्तीर्य दिल्लीं प्रविविशु ।

रात्रौ सर्वेषु सुप्तेषु, एकाकी महाराष्ट्र-महनीयो माल्यश्रीकसहायो बहिर्निर्गत्य यमुनातटे प्रालेयस्नाते पाषाण-खण्डे समुपविष्ट । कदाचित् श्याम-श्यामैस्तरङ्ग-पटलैर्वहन्तीं यमुनाम्, कदाचन गगन-महासागर-फेन पटलायित तारका-पटल, पश्यन्, क्वचिच्च दीप-प्रचय-सूचित-प्रासाद-मण्डलां यवनराजधानीं

गिरिग्रामस्य = "गुडगाव" इति ख्यातस्य, समीपे = अन्तिके। उत्तीर्य = नावा सन्तीर्य, परतट गत्वा ।

महाराष्ट्रमहनीयः = महाराष्ट्रपूजनीय । माल्यश्रीक सहाय' = सहचरो यस्य स । एतत्रैकाक्तितायां नाद्वितीयताया तात्पर्यम्, अपि तु, समानद्वितीयशून्यतायामिति वेदितव्यम्। प्रालेयस्नाते = हिमभूषिते । श्यामश्यामै. = अतिश्यामै, तरङ्गपटलै. = लहरिव्रातै, वहन्तीम् = चलन्तीम् । गगनमहासागरस्य = नभोनीरनिधे, फेनपटलै =डिण्डारचयैरिवाऽऽचरितम्। रूपकम्। तारकापटलम् = उडुगणम्। दीपप्रचयेन सूचितानि प्रासादमण्डलानि = हर्म्यसमूहाः, यस्या ताम्। निभाल

दिल्ली से कुछ दूर ही यमुना के तट पर स्थित गुड़गाँव के पास उन सबों ने अपना शिविर रक्खा और जयसिंह द्वारा उनके साथ भेजे गये घुड़सवारों ने महाराष्ट्र राज शिवाजी के (दिल्ली) आगमन की सूचना देने के लिए यमुना को पार करके दिल्ली पहुँचे ।

इधर जब रात में सब सो गए तब महाराष्ट्रसम्राट् शिवाजी ने माल्यश्रीक को साथ कर लिया और शिविरसे बाहर निकल कर पाले से भीगी शिला पर जाकर बैठ गए। कुछ देर तक तो कभी यमुना की सावली तरङ्गों की छवि को, कभी आकाश स्वरूप महासमुद्र में फेन के टुकड़ों की तरह शोभायमान तारों की मण्डली की चमक को देखते हुए और कभी दीपक समूह से जिसके

निभालयन्, मुहूर्तं निभृतमेवावतस्थे। परतः समवोचत्—"मित्र! इयमेव राजधानी युधिष्ठिरादीनां क्षत्रिय-कुल-भूषणानाम्। अत्रैव पृथ्वीराजोऽपि चरमवीर उवास। एतस्या एव नाम श्रावं श्रावं हीरात-काम्बोज-गान्धार-समरकन्द-प्रभृति-देशवास्तव्याः स्वप्नेऽपि "पलायध्वं! भोः पलायध्वम्"—इति विलेपुः; सैवेयमधुना तद्देश-वासिभिरेव कदर्य्यैर्भुज्यते। अहह! तत्रैव सनातनधर्मस्य तिरस्कारः। अत्रैव मया प्रवेष्टव्यम्। भगवान् भव्यं विदधातु!"

---

यन् = पश्यन्। क्षत्रियकुलभूषणानाम् = क्षात्रान्वयालङ्काराणाम्। चरमवीरः = अन्तिमः शूरः। एतस्या एव = दिल्ल्या एव। हीरातः="ईरान" इति ख्यातः, काम्बोजः = "काबुल" इति प्रसिद्धः, गान्धारः = 'कन्धार' इत्यपभ्रंशीभूताभिधेयः, समरकन्दः = एवमेव प्रसिद्धः, एव प्रभृतिदेशाना वास्तव्याः = निवासिनः। द्वन्द्वबहुव्रीहि-समासानन्तरं षष्ठी तत्पुरुषः। "वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्।" तद्देशवासिभिः=हीरातादिदेशीयैः। कदर्य्यैः = नीचैः। भुज्यते = शास्यते। भव्यम् = कल्याणम्।

---

राजमहल दूर से ही दिखाई पड़ रहे थे ऐसी औरङ्गजेब की राजधानी दिल्ली की छटा को देखने में थोड़ी देर चुप ही बैठे रहे। पर बाद में शिवाजी ने माल्यश्रीक से कहा—"मित्र! क्षत्रिय कुलालङ्कार महाराज युधिष्ठिर आदि की यही राजधानी थी। महान् शूर पृथ्वीराज भी यहीं रहते थे। इसी राजधानी का नाम सुनकर ईरान, काबुल, गान्धार तथा समरकन्द आदि देश के लोग (राजा) स्वप्न में भी यही सोचा करते थे—"अरे! भागो, भागो!" किन्तु आज उन्हीं ईरान आदि देशों के नीच लोग इसमें मजा लूट रहे हैं! हाय! आज उसी दिल्ली में सनातन धर्म की ऐसी दुर्दशा हो रही है! आज मुझे उसी दिल्ली में प्रवेश करना है! भगवान् हम लोगों का कल्याण करें!"

माल्य०—विदधातु भव्यं भगवान् !

तावदकस्माद् यमुनातटादुद्भूता समश्रावि कस्यापि उदार-गम्भीरा वाणी—"सर्वथा भव्यं विदधातु भगवान्"—इति ।

तत 'कुतोऽयम् ? कोऽयम् ?' इति विजिज्ञासमानैः सावधानतया तत एव निपुणं निरीक्षमाणैरदर्शि यत् कश्चन हस्ते पुष्पं गृहीत्वा स्वाभिमुखमायातीति । समीपमागते च तस्मिन्नुभाभ्यां दृष्टं यत्स एव स्वामी पूर्वावलोकितः—इति ।

राघवाचार्यः—सर्वथा भव्यं विदधातु भगवान् ! गृह्यतां मथुराधीशस्य प्रसादकुसुममेतद् ।

महाराष्ट्रराजः—स्वामिन् ! कथमेवं वेगेन समायातो महाराष्ट्रदेशाद् दिल्लीं भवान् ?

---

उद्भूता = उत्थिता । समश्रावि = श्रुता ।

विजिज्ञासमानैः = विज्ञातुमिच्छद्भिः । सावधानतया = मनोयोगपूर्वकम् । 'अवधानं समाधानं प्रणिधानम्' इत्यमरः ।

---

माल्य०—भगवान् कल्याण करें ! ऐसा कहिए ।

इतने में ही एकाएक यमुनातट की ओर से किसी की उदार गम्भीर वाणी सुनाई पड़ी—"भगवान् सब प्रकार से कल्याण करें !"

तदनन्तर ' यह कहाँ से आ रहा है ? कौन है ?" इस तरह की जिज्ञासा से जिधर से शब्द सुनाई पड़ा था उस दिशा की ओर सावधान होकर दोनों व्यक्तियों ने हाथ में फूल लिए उन्हीं की ओर आते हुए एक व्यक्ति को देखा । तब शिव जी और माल्यश्रीक दोनों ने देखा कि वह व्यक्ति था वही स्वामी जिसे उन लोगों ने पहले भी देखा था ।

राघवाचार्य—भगवान् सब प्रकार से (आपका) कल्याण करें ! महाराज ! मथुराधीश (भगवान् श्रीकृष्ण) का प्रसादरूपी यह पुष्प लें ।

महाराष्ट्रराज—स्वामी जी ! इतनी तेजी से महाराष्ट्र देश से आप दिल्ली कैसे आ गए ?

राव०—राजन्! सन्यासिनो वयमलौकिकाभ्यास-परायणाः, तदस्मिन् विषये भवता किमपि न प्रष्टव्यम्।

महा०—[ कराभ्यामाशी कुसुम गृहीत्वा शिरसा सयोज्य ] महानयमनुग्रहः!

माल्य०—[ प्रणम्य ] अलौकिक एषोऽनुग्रहः श्रीमत्कः।

राव०—न बहु वचनीयम्। सम्राजा सह सतर्कैर्व्यवहर्तव्यमित्येव कथयामि। यवनराजेन भवदागमन-वृत्तान्त उपलब्धः। श्व एव साक्षात्कारो भविष्यति। इतोऽपि वदामि—साक्षात्कारानन्तरं बहु न स्थेयम्। नि शस्त्रेण कदाऽपि न भाव्यम्। न कोऽपि तदीयो विश्वसनीयः। शिविरं प्रविशत। शेध्वम्। गच्छाम्यहम्। केवलमाशीःसम्भावनायैवाऽऽयातः। [ इत्युक्त्वाऽन्धतमसे विलीनः ]

अलौकिकाभ्यासे = आकाशगमनादिरूपे, परायणाः = सलग्नाः।
अनुग्रहः = कृपा। श्रीमतामय श्रीमत्कः = मावत्कः।
भवदागमनवृत्तान्तः = भवत्प्राप्तिसमाचारः। उपलब्धः = प्राप्तः।

राव०—राजन्! हम सन्यासियों की अलौकिक कार्य करने की प्रवृत्ति है। अतः आप इस विषय में कुछ न पूछें।

महा०—[ दोनों हाथों से आशीर्वाद पुष्प को लेकर माथे लगाते हुए ] यह श्रीमान् की बहुत बड़ी कृपा है!

माल्य०—[ प्रणामपूर्वक ] यह तो श्रीमान् का हम लोगों पर एक अलौकिक अनुग्रह है!

राव०—मुझे आप से बहुत नहीं कहना है। केवल इतना कहता हूँ कि यवन सम्राट् के साथ आप सावधान व्यवहार करेंगे। यवनराज औरङ्गजेब को आपके आने की खबर मिल चुकी है। कल ही भेंट होने वाली है। यह भी कह देता हूँ कि मिलने के बाद अधिक देर तक वहाँ रुकेंगे नहीं, कभी शस्त्रहीन होकर नहीं रहेंगे। यवन-राज के किसी भी व्यक्ति पर आप विश्वास न करेंगे। जाइए, अपने शिविर में जाकर सो जाइए। अब मैं भी चलता हूँ। यहाँ तो केवल आशीर्वाद देने के लिए ही मैं आया था [ यह कहकर स्वामी जी घनान्धकार में विलीन हो गए ]।

महा०—माल्य ! दिल्ली-प्रस्थान-वार्तारम्भ समयमारभ्यैवैतेन सह परिचयो जात । कोऽयम् ? किमित्यकारणमस्मान् स्निह्यति ? न जाने ।

माल्य०—दिनेष्वय नावलोक्यते, रात्रावेव मिलति ।

महा०—रात्रावपि च चिर नावतिष्ठते । पञ्चषा एव वार्ता आलप्य सपदि प्रयाति ।

माल्य०—ईदृशो गम्भीरः स्वर उदारा च वाक् न श्रुता कस्यापि ।

महा०—न कस्यापि ! [ निःश्वस्य ] ऋते एकस्मात् क्षत्रिय-युवकात् । [ ततो द्वावपि क्षण तूष्णीकौ दीर्घमुष्ण निःश्वस्य, पटान्तेन चक्षुषी अमार्ष्टाम् । ]

स्थेयम् = स्थातव्यम् । शेध्वम् = शयन कुरुत ।
स्निह्यति = प्रीणाति ।
अमार्ष्टाम्–प्रोञ्छताम् । 'चक्षुषी' इत्यस्य ईदन्तद्विवचनत्वेन प्रगृह्यता ।

महा०—माल्यश्रीक ! दिल्ली आने की बातचीत के प्रारम्भ के समय से ही इनके साथ हम लोगों का परिचय हो चुका है । ये कौन हैं ? मैं नहीं समझ पाता कि ये हम लोगों के प्रति अकारण इतना स्नेह क्यों दिखलाते !

माल्य०—दिन में तो इन्हें कभी नहीं देखा । जब भी आते हैं तो रात में ही ।

महा०—रात में भी तो ज्यादे देर तक टिकते नहीं । केवल दो-चार बातें करके ही शीघ्रातिशीघ्र चले जाते हैं ।

माल्य०—महाराज ! किसी का इस तरह का गम्भीर स्वर तथा उदार वचन तो आज तक सुनाई ही नहीं पड़ा था !

महा०—[ लम्बी साँस लेकर ] हाँ, एक क्षत्रिय युवक को छोड़कर और किसी का तो नहीं सुनाई पड़ा था ! [ इतना कहने के बाद दोनों व्यक्ति थोड़ी देर मौन रहे और बाद में लम्बी एवम् गरम साँसें भरकर अंगोछे से अपनी आँखों को दोनों ने पोंछा ]

अथ उभौ शिविराभिमुखं चलितौ पथः पार्श्वे परिवर्तमान-स्यैकस्य पर्कटी-वृक्षस्य भिन्नाञ्जन-श्यामल-च्छायात "महाराष्ट्र-राज! क्षणमित आयाहि, किमपि कस्याश्चिद् दुःखिन्या वचनं निवेदयामि"-इति कस्या अपि योषित इव वचनं श्रुतवन्तौ।

महा०—माल्य! केयम्?

माल्य०—पुनः शृणुवः!

अन्धकारात् पुनः—दयस्व, दयस्व महाराज! केवल वक्तुं किमपि एतावत् कष्टं सोढ्वा आयाताऽस्मि। तत्रैव क्षणमपेक्षस्व, आगत्य निवेदयामि।

महा०—आगच्छ, तिष्ठावः।

तावदुभाभ्यां दृष्टम्-यदेका नील-वसन-परिधानोत्तरीय कञ्चु-

---

पर्कटीवृक्षस्य=प्लक्षद्रुमस्य। भिन्नाञ्जनश्यामलच्छायातः=स्फुटिताञ्जनकृष्णच्छायायाः। दुःखिन्याः=खिन्नाया।

सोढ्वा = क्षान्त्वा। अपेक्षस्व = अपेक्षा कुरु, तिष्ठेति यावत्।

नीलानि = कृष्णवर्णानि, वसनपरिधानोत्तरीयकञ्चुकानि यस्याः सा।

---

उसके पश्चात् जब दोनों शिविर की ओर चले तो रास्ते के पास ( सड़क के किनारे ) लगे पाकड़ के पेड़ की फूटी अञ्जन की तरह साँवली छाया से किसी स्त्री की जैसी आवाज सुनाई पड़ी—"महाराष्ट्रराज! जरा यहाँ तो आइए, एक दुःखिया अबला का एक सवाद मुझे कहना है।"

महा०—माल्य! वह कौन हैं?

माल्य०—जरा एक बार फिर सुन लें।

पुन. छाया से आवाज आई—दया करें महाराज! दया करें। आप से कुछ कहने के लिए ही इतना कष्ट उठाकर मैं यहाँ आयी हूँ। यदि आप यहाँ नहीं आना चाहते तो वहीं जरा सा रुक जायँ, मैं वहीं आकर कहती हूँ।

महा०—आओ! हम लोग रुके हुए हैं।

इतने ही में उन दोनों ने देखा कि एक पवन सुन्दरी वहाँ आई, उसके

किका विरहित-पादभूषणा, अन्धतमसवशादस्पष्टदृष्टरूपा यवन-सुन्दरी समागत्य, एकेन हस्तेन सपूर्वकायनमनं प्रणम्य समुपस्थिता। तां तथाभूतामालोक्य महाराष्ट्रपतिः समार्दवमगादीत्।

महा०—सुन्दरि! कथय, का त्वम्? कुत आयाता? किमिच्छसि? किं कथयसि? आः! न ते भयं सर्पेभ्यो भूतेभ्यः पिशाचेभ्यो वा? केन प्रहिताऽसि? कथमस्मान् अत्रत्यान् ज्ञातवत्यसि? कथं कृत-हिम-कण-पातं कालिन्दी-कूलाऽऽघातं वातं सहसे? कथं वा घोरेऽन्धतमसे कलिन्दतनयोत्तुङ्ग-तरङ्ग-भङ्ग-भयङ्कर-तटे सर्ज-खर्जूर-पर्कटी-गहने प्रदेशे समागच्छन्ती न भीताऽसि?

विरहितपादभूषणा = नूपुरादिशून्या, प्रच्छन्नतारक्षार्थम्। अस्पष्टदृष्टरूपा = अपूर्णावलोकितवेषा। एकेन हस्तेन = अद्वितीयेन करेण। प्रणतिरीतिरिव यवनेषु प्रसिद्धः "सलाम" इति शब्देन। सपूर्वकायनमनम् = कायपूर्वभागशिरोनमनपुरस्सरम्। समार्दवम् = सकोमलत्वम्।

प्रहिता = प्रेषिता। अत्रत्यान् = इह स्थितान्। कृतहिमकणपातम् = विहितप्रालेयखण्डपतनम्। कालिन्दीकूलाघातम् = यमुनातटताडनम्। वातम् = पवनम्। कलिन्दतनयाया उत्तुङ्गैः = अत्युन्नतैः, तरङ्गभङ्गैः, भयङ्करे = भीतिदायिनि, तटे = कूले। सर्जैः खर्जूरैः पर्कटीभिश्च गहने = दुरवगाहे।

पूरे कपड़े नीले रङ्ग के थे, पैरों में कोई आभूषण नहीं था और घने अन्धकार के कारण उसका स्वरूप भी पूर्ण व्यक्त नहीं हो रहा था। आते ही उसने झुक कर सलाम किया और सामने खड़ी हो गई। उसे उस दशा में खड़ी देखकर महाराष्ट्रराज शिवाजी ने कोमल शब्दों में उससे पूछा—

महा०—सुन्दरी! बतलाओ तुम कौन हो? कहाँ से आ रही हो? क्या चाहती हो? क्या कहना है? अरी! तुम्हें साँप, भूत या पिशाच से भी डर नहीं होता? यहाँ तुम्हें किसने भेज दिया? तुमने हम लोगों को यहाँ कैसे देख लिया? हिमकण से सम्पृक्त यमुनातट की ठण्डी हवा को तुम कैसे सह पाती हो? इस घने अन्धकार में भी प्रचण्ड तरङ्ग ध्वनि से भयङ्कर और साल, खजूर एवम् पाकड़ के वृक्षों से भरे इस यमुना के तट पर आते समय तुम्हें डर नहीं लगा?

यवनी—[ अञ्जलिं बद्ध्वा ] महाराज ! दिल्लीश्वर-दुहितुस्तत्र-भवत्या रसनार्य्या अन्तरङ्ग-सखीं मामवगच्छ ।

महा०—अहो ! अपि प्रसीदति तत्र भवती ? अपि वा नन्दति आयुष्मान् कुमार-मायाजिह्मः ?

यवनी—महाराज ! सर्वे कुशलिन इति कथनं व्यवहारः । तथाऽपि भगवती कुमारी रसनारी तु कथं कुशलिनी, यदि सदा हरिद्रा-द्रव-क्षालित-ताली-दल-प्रख्यां कपोल-पालीं वहति ।

महा०—स्फुटं वद, का चिन्ता ? किं वा दुरवापं दिल्ली-वल्लभ-क्रोड-क्रीडाऽतिवाहित-बाल्यानां महाराज-कुमारीणाम् ? मादृश-जनाधीनं वा किमस्ति, यन्निशीथेऽपि त्वां प्रेषितवती ।

---

व्यवहारः = आचारपालनम् । हरिद्राद्रवेण = महारजनरसेन, क्षालितस्य = धौतस्य, तालीदलस्य, प्रख्याम् = समाम् । विरहखेदात् पीतता ।

दुरवापम् = दुःखेन प्राप्तुं योग्यम् । दिल्लीवल्लभक्रोडक्रीडया = दिल्लीशाङ्कलीलया, अतिवाहितम् = यापितम्, बाल्यं याभिस्तासाम् । निशीथे = अर्धरात्रे । 'अर्धरात्रनिशीथौ' इत्यमरः ।

---

यवनी—[ हाथ जोड़कर ] महाराज ! आप मुझे दिल्लीसम्राट् की बेटी 'रोशनआरा' की अन्तरङ्ग सखी समझें ।

महा०—वाह ! वाह ! अच्छा, राजकुमारी प्रसन्न तो हैं ? क्या चिरायु राजकुमार 'मुअज्जम' भी सानन्द हैं ?

यवनी—महाराज ! व्यवहारतः तो यही कहना पड़ता है कि सभी सानन्द हैं । किन्तु जब राजकुमारी रोशनआरा के गाल हल्दी के रंग से रंगे तलफल के समान पीले पड़े हैं और फिर वास्तविकता के आधार पर भी उन्हें ( रोशनआरा को ) सानन्द कैसे कह सकती ?

महा०—ठीक ठीक बताओ—राजकुमारी को किस चीज की चिन्ता पड़ी है ? दिल्लीनायक की गोद में खेलती हुई अपनी बाल्यावस्था को बिताने वाली राजकुमारी के लिए कौनसी चीज दुष्प्राप्य हो सकती है ? यहाँ—मैं उनके लिये क्या कर सकता हूं जिसके लिये उन्होंने अर्धरात्रि में तुम्हें मेरे पास भेजा है ?

यवनी—महाराज ! महाराज-कुमार्य एव महाराजेषु रज्यन्ते। यस्मिन्नुराग, तदलाभ एव खेदस्य कारणम्।

महा०—ओ. ! अवगच्छामि। माल्यश्रीक! सम्राट्-कुमारी भामनुरागेणानुगृह्णाति।

माल्य०—सत्यमौदार्यमिदं कुमारीहृदयस्य!

महा०—सुन्दरि ! मद्वचनेन ब्रूहि तत्रभवतीं यद्-"महाभागे ! निवेदितवानस्मि तत्र भवत्याः परावर्तन-समये। तदद्यापि भवत्याः पिता चेदनुमन्येत, तत्प्रस्तुतोऽस्मि स्वहस्तेन श्रीमत्याः स्वेदानपनेतुम, बाल-व्यजनेन च वीजयितुम्। दिल्लीवल्लभस्याननुमत तु को नाम शक्तो मनसाऽपि चिन्तयितुम् ?" इति। सुन्दरि ! सद्यो यथागतं निवर्तस्व। अहमपि स्वप्नेष्वपि राजकुमारीं पश्यामि, जागरितोऽपि

महाभागे ! = श्रेष्ठभागधेये ! परावर्तनसमये = परावृत्तिवेलायाम्। अनुमन्येत = स्वीकुर्यात्। स्वेदान् = रतिश्रमोद्भूतघर्मबिन्दून्। अपनेतुम् = दूरयितुम्। विवाहयितुमिति यावत्। अननुमतम् = अस्वीकृतम्। यथागतम् = यथा आयात तथा। पुरोगताम् = अग्रे स्थिताम्।

यवनी—महाराज ! महाराजकुमारियाँ महाराजों में ही अनुरक्त होती हैं। जिसमें उनका मन अनुरक्त है उस व्यक्ति का न मिलना ही उनकी चिन्ता का कारण है।

महा०—अच्छा, मैं समझ गया। माल्यश्रीक ! देखो—राजकुमारी मुझसे प्रेम करती है।

माल्य०—राजकुमारी के हृदय की यह उदारता तो यथार्थ ही है।

महा०—सुन्दरी ! तुम जाकर मेरी ओर से राजकुमारी से कह दो—'महाभागे ! आपको लौटाते समय मैं निवेदन कर चुका हूं। अतः यदि आपके पिता की सम्मति होगी तो मैं अपने हाथों से आपके पसीने को पोंछने तथा आपके लिए पंखा झेलने के लिये प्रस्तुत हूँ। क्या दिल्ली-सम्राट् के प्रतिकूल कुछ करने की कल्पना भी कोई कर सकता है ?' सुन्दरी ! जैसे तुम यहाँ आई वैसे ही अभी लौट जाओ। राजकुमारी

च तद्गतचित्ततां पुरोगतामिव विलोकयामि। किन्तु किं करोमि? दुर्घटो हि संयोगः। त्वमात्मानमाच्छाद्य गूढसञ्चारा कृष्णाभिसारिकेव समायाताऽसि। यदि केनापि वीक्ष्येथा, तत्सम्भाव्यते पक्षद्वयेऽपि विपत्तिरिति। वयमद्यैव समायाताः राजसाक्षात्कारोऽपि न कृतः। कियत्कालं च स्थास्यामः। ब्रूहि तत्र भवतीं धैर्यमवलम्बितुम्। प्रयाहि, प्रयाहि—

इत्युक्ता सा पुनः क्षणं मन्दस्वरेण किमपि समालप्य, साभिवादनं निवृत्ता। इमौ च शिविरं प्रविश्य सुषुपतुः।

× × ×

---

गूढसञ्चारा = गुप्तगतिः। कृष्णाभिसारिका = कृष्णवसनाद्युपहिता याऽभिसारिकाऽभिसरति सा कृष्णाभिसारिकेत्युच्यते। अभिसारिका च "कान्तार्थिनी तु या याति सङ्केतं साऽभिसारिका" इति कुवलक्षणा वेदितव्या। वीक्ष्येथाः=दृष्टा स्याः। कर्मवाच्यम्। पक्षद्वये=स्वनारीपक्षे मराठपक्षे च। अवलम्बितुम् = धारयितुम्। साभिवादनम् = सनमस्कृति, क्रियाविशेषणम्।

× × ×

---

मैं मैं भी इतना आसक्त हूँ कि स्वप्न में भी राजकुमारी को ही देखता हूँ और जगते समय तो मुझे ऐसा लगता है कि राजकुमारी मेरी आँखों के सामने हैं। किन्तु मैं करूँ क्या? हम दोनों का मिलन घट नहीं पा रहा है। देखो, तुम भी अपने को छिपाकर ही गुप्त रीति से काले वेश-भूषा वाली अभिसारिका की तरह यहाँ आई हो। यदि किसी ने तुम्हें देख लिया तब तो समझो कि दोनों के लिए ही विपत्ति है। हम लोग आज ही आए हैं, अभी राजा से भेंट भी नहीं हो पाई है। अभी कुछ दिन यहाँ रहना है। जाओ, राजकुमारी से धैर्य-धारण के लिए कहो। जाओ, जाओ।

महाराज द्वारा इतना कहे जाने पर वह यवनी मन्दस्वर से पुनः कुछ कहकर महाराज को सलाम करती हुई लौट गई। इधर महाराज शिवाजी तथा माल्यश्रीक अपने शिविर में घुसकर सो गये।

परेद्युर्विहित-स्नान-भोजनादि-क्रियैर्मित्रगणैः सह समुल्लोचतले समुपविष्टे महाराष्ट्रराजे प्रतीहारेण प्रविश्य प्रणम्य कथितम्—

"महाराज! अम्बर-राजकुमारः समायाति"—इति। तदाकर्ण्य स्वयमुत्थाय प्रविशन्तमम्बर-पुरन्दर-पुत्रं रामसिंहं समालिङ्ग्य समानीय स्वपार्श्वे उपवेश्य स्वयमुपविष्टः। महाराष्ट्रराजो वीरोचितां तेजस्विनीमुदारां तदाकृतिं पश्यन्नतितरां मुमुदे। रामसिंहश्च चिरात् तस्य नाम यशः प्रतापं च श्रायं श्रायं बाल्यमयापयदिति विस्फारित-नयनं मुहूर्तं तमपश्यत्, परतश्च महाराष्ट्रराजेन आपृष्ट-कुशलः, साञ्जलि सादरवचनं यथाचारमुक्त्वा कथितवान् यद्—

---

समुल्लोचस्य = शोभनस्य वितानस्य, तले=निम्नस्थाने। प्रतीहारेण= दौवारिकेण।

अम्बरराजस्य = जयपुरेशस्य, कुमारः = तनयः। तेजस्विनीम् = प्रतापप्रदर्शिकाम्। विस्फारितनयनम्=सुविकासितनेत्रम्, क्रियाविशेषणम्। आपृष्ट कुशल यस्य सः।

---

दूसरे दिन जब स्नान-भोजन आदि करने के बाद अपने मित्रों के साथ महाराष्ट्रराज शिवाजी शामियाने के तले बैठे हुए थे तब द्वारपाल ने आकर उनसे कहा—

"महाराज! जयपुर के राजकुमार आ रहे हैं" यह सुनते ही शिवाजी स्वयं उठकर आते हुये जयपुर के राजकुमार रामसिंह को गले लगाकर अपने पास ले आये और वहाँ उन्हें बैठाकर स्वयम् भी बैठ गये। राजकुमार रामसिंह की वीरोचित तेजःसम्पन्न उदार आकृति को देखकर महाराष्ट्रराज शिवाजी बहुत ही प्रसन्न हुये। इधर शिवाजी के नाम, यश तथा प्रताप को सुनते-सुनते अपनी बाल्यावस्था को बिताने वाले रामसिंह भी कुछ देर तक तो शिवाजी को भरी आँखों देखते ही रह गये। फिर बाद में जब महाराष्ट्रराज ने उनसे कुशल आदि पूछा तब हाथ जोड़कर आचारानुकूल आदरपूर्ण उत्तर देकर रामसिंह ने उनसे कहा—

आर्य ! तातचरणानां पत्रं प्राप्तवानस्मि । यथा स मम मान्यस्तथैव भवान् इति भवद्योग्येनाऽऽदेशेन सर्वथाऽनुकम्पनीयोऽहम् ।

महा०—एषा परमदया क्षत्रिय-कुलावतंसस्याम्बरेश्वरस्य । भवन्तञ्च बन्धुं प्राप्य अतितरां प्रसीदामि ।

तदनन्तरं चिरमुभयोर्जात आलापः । परस्तान्मन्दमालपन्म-हाराष्ट्रराजो यद् दिल्लीश्वर-दर्शन-विषये भवतः का सम्मतिः ? इति ।

स आह—सम्प्रति चण्डश्चण्डमरीचिरिति मुहूर्त्तं विलम्ब्य गन्तव्यम् । दिल्लीश्वरो भवन्तमागतं ज्ञातवानस्ति ।

तदाकर्ण्य किञ्चित् स्मयमाने महाराष्ट्रराजे पुनर्विचार्येव प्रावोचत्—

---

भवद्योग्येन = मदर्हेण । अनुकम्पनीयः = दयनीयः ।

चण्डः = प्रचण्डः । चण्डमरीचिः = भास्करः ।

स्मयमाने = ईषद्धसति । "दिल्लीश्वरसाक्षात्कारो विधेयो न वेति

---

'आर्य ! मुझे पिताजी का पत्र मिला है । मेरे लिये वे जितने पूज्य हैं उतने ही पूज्य आप भी हैं । इसलिये योग्य सेवा करने की आज्ञा देकर मुझे आप अनुगृहीत करें ।"

महा०—यह तो क्षत्रियकुलालङ्कार जयपुर सम्राट् की मेरे ऊपर बहुत बड़ी कृपा है । आप जैसे बन्धु को पाकर तो मुझे बड़ी ही प्रसन्नता है ।

उसके बाद दोनों के बीच चिरकाल तक बातचीत चलती रही । पश्चात् महाराष्ट्रराज ने धीरे से उनसे पूछा—"दिल्लीश्वर के दर्शन के प्रसङ्ग में आपकी सम्मति क्या है ?"

राजकुमार रामसिंह ने उत्तर दिया—अभी तो धूप बहुत ही तीखी है । अतः थोड़ी देर रुककर चलना ही अच्छा होगा । दिल्लीश्वर को आपके यहाँ आने की खबर मिल चुकी है ।

इस बात को सुनकर जब शिवाजी ने मुस्करा दिया तब रामसिंह ने पुनः उनसे कहा—

भगवन् ! भवान् कुशलेन निवर्तनीयः—इति पित्रा लिखितमस्ति। तदत्र प्रतीपं नाऽऽशङ्कनीयम्। द्रष्टव्यः सम्राट्।

ततो माल्यश्रीक आह—प्रतीपे आचरिते महाराष्ट्र-देशे तथा समर-ज्वलन-ज्वालाः प्रसरिष्यन्ति, यथा भारते यवनसम्राड्वंश एव भस्मसाद् भविष्यति।

रामसिंहस्तु सान्त्वयन्नब्रवीत्—मैवम्, मम तातचरणमत्यन्तमाद्रियते सम्राट् इति तल्लेखं नान्यथा करिष्यतीति निश्चिनोमि।

---

शिवराजस्य तात्पर्यमासीत्, तच्च नावगतं रामसिंहेनेति स्मितवानिति" मूलकृच्छिष्यकृता टिप्पणी। दिल्लयैव समागतस्य तदर्थमेव स्थितस्य प्रतीक्षमाणस्य च निगूढमिममाभ्यन्तरिकमभिप्रायं कथं वेत्तु रामसिंह इति नावधारयितुं पारयामः।

प्रतीपम् = विरुद्धम्।

समर एव ज्वलनः = दहनः, तज्ज्वालाः।

---

"भगवन्! पिताजी ने मुझे लिखा है कि आपको यहाँ से कुशलपूर्वक लौटाना है। अतः आप किसी तरह का सन्देह न करें। दिल्लीसम्राट् से अवश्य मिलें"।

उसके बाद माल्यश्रीक ने कहा—"यदि यहाँ किसी प्रकार का प्रतिकूल व्यवहार हुआ तो महाराष्ट्र देश में इस तरह की युद्धाग्निज्वालाएँ फैल जायेंगी कि उन्हीं ज्वालाओं में इस भारतवर्ष के यवन सम्राट् का समूचा कुल भस्मसात् हो जाएगा।"

माल्यश्रीक की बात सुनकर रामसिंह ने माल्यश्रीक को सान्त्वना देते हुए कहा—ऐसा नहीं। सम्राट (औरङ्गजेब) मेरे पिताजी का बहुत आदर करते हैं। मुझे इस बात का निश्चय है कि मेरे पिता के पत्र के प्रतिकूल नहीं करेंगे।

ततो बहुभिर्वार्त्ताभिरेव प्रतियापिते मुहूर्त्ते, "राज-साक्षात्कार-समयः संवृत्तः" इत्युक्तवति रामसिंहे, नववस्त्राणि धारयन्, चन्द्रहासं समास्रंसयन्, सम्मुखमुकुरे दत्तदृष्टिरुष्णीष-बन्धनानि विन्यस्यन्, महाराष्ट्रपतिरगादीत्—प्रबलप्रवाहा यमुनेति कथं प्रवेक्ष्यामो दिल्लीम् ? स आह—आर्य ! नौका-परम्पराभिरायोजितो महान् सेतुरस्ति, तत एव निःशङ्कं घोटकाः, उष्ट्राः, वृषाः, शकटाः, रथाश्च, यातायात कुर्वन्ति। तत एव यास्यामः।

महा०—अथ कति अश्वारोहा अनुसरन्त्वस्मान् ?

कुमाररामसिंहः—राजद्वार-पर्यन्तं शतं शक्नुवन्ति गन्तुम्, अन्तस्तु वयमेव यास्यामः।

---

बहुभिः, "वोतो गुणवचनात्" इत्यनेन स्त्रीप्रत्ययविकल्पः। समास्रंसयन् = अवलम्बयन्। सम्मुखमुकुरे = पुरःस्थितादर्शे। दत्तदृष्टिः = प्रहितनयनः। प्रबलप्रवाहा = विशालधारा। यातायातम् = गयागमम्। अनुसरन्तु = अनुयान्तु।

---

उसके बाद अनेक प्रकार की वार्ताओं के क्रम में कुछ समय बीत जाने पर जब रामसिंह ने कहा कि अब दिल्लीराज से मिलने का समय हो गया, तब नवीन वस्त्र पहनते हुए, अपनी तलवार को हाथ में लेते हुए समक्ष प्रस्तुत दर्पण में मुख देखकर अपनी पगड़ी को सम्भालते हुए महाराष्ट्रराज ने पूछा—"बीच में तो विशाल प्रवाह वाली यमुना है। फिर हम लोग दिल्ली नगर में कैसे प्रवेश करेंगे ?" रामसिंह ने उत्तर दिया—आर्य। नावों की श्रेणी से बहुत बड़ा पुल बनाया हुआ है। उसी के माध्यम से निःशङ्क होकर घोड़े, ऊँट, बैल, गाड़ियाँ और रथ आया-जाया करते हैं। हम लोग भी उसी पुल से चलेंगे।

महा०—अच्छा, यह तो बतलाइए कि हमारे साथ कितने घुड़सवार चलें ?

रामसिंह—सिंह दरवाजे तक तो सौ घुड़सवार चल सकते हैं। परन्तु उससे आगे तो केवल हम लोग ही चलेंगे।

महा०—अस्माभिः केन यानेन गन्तव्यम ?

कुमार०—पुष्परथमानीतवानस्मि।

महाराष्ट्रराजस्तु "दिल्लीकलङ्केनैतेन स्वपुत्रो न प्रेषित आनेतुम्, अपमान एष"—इति मनसि चिन्वयन्, माल्यश्रीक-गौरसिंहादिभिः सज्जो भूत्वा, रामेण सहोत्थाय शिविरात् बहिरागत्य पुष्परथमारूढः। तस्मिन्नेव तत्सम्मुखे कुमार-रामसिंह उपविष्टः। गौरसिंह माल्यश्रीकादयोऽपि भूषण - भूषितान् सौवर्णवल्गानश्वानारूढाः।

---

पुष्परथम् = चक्रयानम्, असामरिक रथम्।

स्वपुत्रः = मायाजिह्मायान्यतमः। तनयानुरागिणे हि तनयमेपणमावश्य कम्। एतादृशीमेव काश्चिद् घटनामक्षिलक्ष्यीकृत्य पण्डितराजोऽभाणीत्—

न वारयामो भवतीं विशन्तीं वर्षानदीस्रोतसि जह्नुजायें।

न युक्तमेतत्तु पुरा यदस्यास्तरङ्गभङ्गान् प्रकटीकरोपि॥

तस्मिन्नेव = पुष्परथ एव। भूषणैः = हिरण्याभरणैः, भूषितान् = अलङ्कृतान्। अत्र शिवराजवृत्त्येऽस्मिन् भूषणोऽश्वभूषणताङ्कत इति समानशब्दैर्ध्वनयति। सौवर्णवल्गान् = हैरण्यकविकान् बहुव्रीहिः।

---

महा०—हम लोगों को कौन सी सवारी लेनी चाहिए ?

कुमार—मैं घूमने के काम में आने वाला रथ ले आया हूँ।

तत्पश्चात् "इस दुष्ट दिल्लीकलङ्क यवनाधम ने मुझे अपने पास ले जाने के लिए अपने लड़के को न भेजकर मेरा अपमान किया है" यह सोचते हुए शिवाजी माल्यश्रीक तथा गौरसिंह आदि के साथ सुसज्जित होकर रामसिंह के साथ उठ गये और शिविर से बाहर निकलकर पुष्परथ में बैठ गए। उसी में कुमार रामसिंह भी शिवाजी के सम्मुख बैठ गए। गौरसिंह तथा माल्यश्रीक आदि अनेक सहचर भी अलङ्कार मण्डित, सोने की लगाम वाले घोड़ों पर सवार हो गए। कुछ तो रामसिंह के अनुयायी और सौ शिवाजी के अनुयायी सुसज्जित घुड़सवारों ने भी इधर उधर दौड़ने के महोत्साह में कूदने वाले, जिस किसी प्रकार नियन्त्रित होने वाले, फूलों की तरह अपने फेन के गिराने से पृथ्वी की पूजा करने वाले, दौड़ने में धुरन्धर

कतिपये रामसिंह-सादिनोऽपरे च शतं महाराष्ट्र – सादिनाऽपि सज्जा इतश्चेतश्च धावन - सवेग - महोत्साह - खुरखुरायित–*खुराणां कथं कथमपि संयम्यमानानां कुसुमैरिव फेन-प्रपातैः परिपूजित-वसुन्धराणां धावन धुरन्धराणां सैन्धवानां हेषाभिरध्वनीनाम् बधिरानकार्षुः। तावत् सपदि भूषणकविरागत्य, प्रलम्ब-कवितयाऽऽशीराशीनुदीर्य राजहस्ते साक्षतानि कुसुमानि दत्त्वा, तदनुमत्या स्वयमपि मौक्तिक- माला–कलित–कण्ठ सौवर्ण–किरण–कलित–वर्णद्वय–मध्य राजत–कुसुमावलि–शोभित–लाङ्गूल श्याममेकं प्रकाण्डं वाजिनमारूढवान्। समङ्गलशब्दं च सर्वेऽपि प्रस्थिताः, क्षणेनैव च सर्वे सेतुं प्राप्ताः। ततो दृष्टवान् महाराष्ट्र-पतिर्यद्भास्वान् मृदुलमयूखः समुत्त्य भुवनमभिपतति। अभ्रंलिहानां

---

*धावनसवेगेन यो महः त्साह तेन खुरखुरायिताः, खुरा =शफाः, येषा तेषाम्। संयम्यमानानाम् = अवरुध्यमानानाम्। कुसुमैरिव = प्रसूनैरिवेत्युत्प्रेक्षा। परिपूजितवसुन्धराणाम्=समर्चितवसुमतीकानाम्। धावनधुरन्धराणाम् शीघ्रगतिपटूनाम्। अध्वनीनान्=पथिकान्। मौक्तिकमालया = मणिस्रजा, कलितः = भूषितः, कण्ठः = गलो यस्य तम्। सौवर्णकिरणै = हैरण्यमयूखैः कलित वर्णद्वय मध्ये यस्य तम्। राजतकुसुमावलिभिः, शोभितम्, लाङ्गूलम् = पुच्छ यस्य तम्। प्रकाण्डम् -- विशालम्। भास्वान् = दीधितिपतिः। मृदुलमयूख. = कोमलकिरणः। समुत्त्य=भूत्वा। भुवम् = धरणीम्। अभिपतति = समुपयाति। अभ्रं-

---

* सिन्धु-देशीय घोड़ों की हिनहिनाहट से पथिकों के कान भर दिए। इसी बीच भूषण कवि भी आये और उन्होंने अपनी लम्बी कविता से आशीर्वाद देकर, महाराज के हाथ में फूल-अक्षत दिए। पश्चात् महाराज की अनुमति पाकर स्वयम् भूषण कवि भी उस मोतियों की माला से विभूषित कण्ठ वाले सुवर्ण की किरण से चमकते वर्णद्वय से युक्त मध्यभाग वाले एवम् चान्दी की बनी कुसुमावली से सुशोभित पूँछ वाले एक साँवले रंग के विशाल घोड़े पर सवार हो गए। तत्पश्चात् मंगल ध्वनि पूर्वक सब आगे बढ़े और

कलितापर-मेघाडम्बराणां समुद्धूतध्वजानां दिल्ली-हर्म्याणां छाया कलिन्द-नन्दिन्या श्यामतां द्विगुणयति। अभितः सेतु तनव', महत्य, सपटला, अपटला', साट्टा, निरट्टा, हंस-मयूर-वर्त्तक-सारस-कारण्डवादि-विविधाकाराः, चित्र-विचित्रिता समञ्जीर-क्षेपण-क्षणत्काराकुलीकृत कमठा सहस्रशो नौका इव-अतश्च ससरन्ति। तटस्था, तरणिस्था, सेतावपि च यातायात-परा,

लिहानाम् = मेघस्पर्शिनाम्। कलितापरमेघाडम्बराणाम् = धारितद्वितीयावारिवाहानुकृतीनाम्। श्यामताम् = कार्ष्ण्यम्। द्विगुणयति = वर्द्धयति। तनव = लघव। महत्य = श्रेष्ठाः। सपटला = सच्छदिका। "पटल छदिरि" त्यमरः। "छप्पर" इति हिन्दी। अपटला = अच्छदिका। साट्टाः = साट्टालिका। सचन्द्रशालाका इति यावत्। निरट्टाः = निरट्टालिका। हंसादिविविधाकाराः = हंसाद्यनेकाकृतय, मयूरपुच्छी-प्रभृतिशब्दै ख्याता अधिरामनगर दृश्यिस्यगाः। चित्रैः=आलेख्यै, विचित्रिता = विस्मयजनिका लिखिता वा। समञ्जीराणाम् = सघुङ्घरुदिका नाम्, क्षेपणानाम् = नौकादण्डानाम्, क्षणत्कारेण, आकुलीकृता कमठा याभिस्ता। यमुनाया कच्छपप्राचुर्यं प्रसिद्धम्। शोभार्थं मञ्जीरा सञ्जन कुर्वन्तीति वेदितव्यम्। ससरन्ति = प्रचलन्ति। तरणिस्था =

शीघ्र ही पुल के पास पहुँचे। इसके बाद महाराष्ट्रराज ने देखा कि अस्तमुन्ग सूर्य की किरणें धीमी पड़ गई थीं।

दिल्ली की गगन चुम्बी और इसलिए बादल की दूसरी प्रतिकृति जैसी दीखने वाली, फहराती पताकों से सुशोभित अट्टालिकाओं की छाया यमुना की कालिमा को दूनी कर रहा थी। पुल की चारों तरफ छोटी-बड़ी, छत वाली और बिना छत की अटारियों वाली एवम् बिना अटारियों का हंसाकृति, सारसाकृति, बत्तकाकृति, चित्र विचित्र नावों की भीड़ जमी थी और उन नावों के मञ्जीरयुक्त खेवए दण्ड की झनकार से कछुये व्याकुल हो रहे थे। यमुना तट पर खड़े, नावों पर बैठे, पुल से गुजरने वाले तथा दिल्ली के सभ्य नागरिक भी गर्दन को परिवर्तित कर, आँखें खोल कर

सहस्रशो नागराश्च कन्धरं परिवर्त्य चक्षुषी विस्फार्य आत्मानं पश्यन्ति, माङ्गुलिनिर्देशं च स्वमित्राणि "सोऽयं सोऽयम्" इति दर्शयन्ति।

ततः स यमुनां प्रणम्य, मनस्येव कथितवान् यद्—

"भगवति! कृष्णप्रिये! यथा कालियसदनं प्रविश्यापि भगवान् कृष्णः काकोदरं निर्मथ्य निरगात्, यथा च नन्दो ग्राहेण गृहीतस्त्वज्जले निमग्नोऽपि बकविद्वेषिणोऽनुग्रहेण सकुशलं परावृत्तः; तथैव चेदहमपि दिल्लीतः कुशलेन स्वपुण्यपुरीं परावर्ते; तद् दुग्ध-धारा-सहस्रैः कमलानां लक्षेण, लक्षेण च घृतदीपानां त्वामभ्यर्चयिष्ये"—इति।

तावत्ते सेतुमुल्लङ्घ्य, परं तटमायाता दिल्लीं प्रविविशुः। तत्र च

---

नौकास्थितः। नागराः = ऐन्द्रप्रस्थाः प्रकृते।

कालियस्य=तन्नाम्नो नागस्य, सदनम्=ह्रदम्। काकोदरम्=सर्पम्। निर्मथ्य=निर्मदीकृत्य। नन्दः=कृष्णपितृतया ख्यातः। ग्राहेण = नक्रेण। बकविद्वेषिणः = बकासुरमारकस्य। अनुग्रहेण = दयया। स्वपुण्यपुरीम्= स्वीया पत्तिना 'पूना' नगरीम्। अभ्यर्चयिष्ये = पूजयिष्ये।

---

अपने को भी देख रहे थे और शिवाजी की ओर अङ्गुल्या निर्देश करते हुए अपने मित्रों से भी कहा करते थे—"वही हैं, शिवाजी वही हैं।"

इसके बाद शिवाजी ने यमुना को प्रणाम कर उनसे मनही मन प्रार्थना की—"भगवति यमुने! जिस प्रकार कालिय नाग के ह्रद में प्रवेश करके भी भगवान श्री कृष्ण उस नाग को अभिमान शून्य बनाकर लौट आये थे, जिस प्रकार ग्राह से गृहीत होकर तुम्हारी जलधारा में डूबते डूबते नन्द बका सुरसंहारी ( कृष्ण ) की कृपा से बच गये थे इसी प्रकार यदि मैं भी दिल्ली से कुशल पूर्वक अपनी राजधानी पूना लौट आया तो एक हजार दूध के घड़ों एक लाख कमल पुष्पों तथा एक लाख घृतदीपों से तुम्हारी आराधना करूँगा"।

इतने में वे पुल को पार कर यमुना के दूसरे तट पर पहुँच चुके और

प्रघाणस्थैः परिवर्त्तित-ग्रीवैः लोलोष्णीष-बन्धै भटैः, आपणोपविष्टैः स्लथ-शङ्कुलैः स्वर्णकारैः, कर्णार्पित-लेखनीकैश्चित्रकारैः, समुपेक्षित-तुला-दण्डैर्वणिग्भिः, विशिथिल-स्खलित-मानदण्डैः पट-विक्रयिभिः, स्थगित-सीवनैः स्यूतिकारैः, विस्मृतहार-ग्रथनैर्मालाकारैः, घण्टापथे विचरद्भिः समाकृष्टवल्गैः सादिभिः, आसादित-प्रान्तै-

प्रघाणस्थैः = बहिर्द्वारप्रकोष्ठस्थैः । "प्रघाण-प्रघणालिन्दा बहिर्द्वार प्रकोष्ठके" इत्यमरः । परिवर्त्तितग्रीवैः = वक्रीकृतकन्धरैः । लोलोष्णीषबन्धैः = चञ्चलशिरोवेष्टनैः । भटैः = गजपुरुषैः । आपणोपविष्टैः = विपणिसमुपस्थितैः । स्लथशङ्कुलैः = स्थगितकर्त्तिकैः । स्वर्णकारैः = पश्यतोहरैः । कर्णार्पिता = श्रोत्रस्थापिता, लेखनी = कलमः, यैस्तादृशैः । चित्रकारैः = आलेख्यकारैः । समुपेक्षितवुलादण्डैः = परित्यक्तमापिकादण्डैः । वणिग्भिः = व्यापारिभिः । विशिथिलाः = विशृङ्खलाः, स्खलिताः = पतिताः, मानदण्डाः = "गज" इति ख्याताः, यैस्तैः । पटविक्रयिभिः = वस्त्रविक्रेतृभिः । स्थगितसीवनैः = परित्यक्तसूचीकर्मैः । स्यूतिकारैः = सूचीकृद्भिः । विस्मृतहारग्रथनैः = अनवधृतमाल्यनिष्पादनैः । मालाकारैः = मालिभिः, घण्टापथे = राजमार्गविशेषे । विचरद्भिः = गच्छद्भिः । समाकृष्टवल्गैः = समाकुञ्चितकविकैः । सादिभिः = अश्वारोहैः । आसादितप्रान्तैः = गृहीतमार्गपार्श्वैः । पर्यटकैः = वायुसेवनार्थं भ्रमद्भिः । आरा-

फिर वहाँ से उन लोगों ने दिल्ली में प्रवेश किया । दिल्ली प्रवेश करते हुए द्वार के पास बना ड्योढ़ी में रहने वाले और फट फराती पगड़ियों वाले योद्धाओं द्वारा गर्दन घुमाकर, बाजार में बैठे स्वर्णकारों द्वारा अपनी-अपनी कतरनी ( नश्तर ) छोड़कर, चित्रकारों द्वारा लेखनी को कानों पर रखकर, बनियों द्वारा तराजू की डण्डी छोड़कर, कपड़े के व्यापारियों द्वारा अपने अपने 'गज' रखकर, दर्जियों द्वारा सिलाई रोककर, मालाकारों द्वारा माला गूँथना भूल कर, राजमार्ग पर परिभ्रमण करने वाले घुड़सवारों द्वारा अपने-अपने घोड़े की लगाम खींच कर, पर्यटकों द्वारा सड़क के किनारे खड़े होकर,

पर्य्यटकैः, आशीर्वचन-स्फुरितोष्ठैर्ब्राह्मणैः, परिवर्जित-क्रीडैर्बालकैः, गवाक्षस्थैः शिथिलितव्रीडैरङ्गुल्यग्रापसारित-तिरस्करिणी-विच्छेद-प्रहित-कटाक्षावलोकनैः कुल-युवति-जनैश्च, सकौतुकं निरीक्ष्यमाण;

"कोऽयम्?, कुतोऽयम्?, सोऽयम्, स एवायम्, वीरोऽयम्, वीरवरोऽयम्, महाराष्ट्रराजोऽयम्, दुर्धर्षोऽयम्, चिरश्रुतोऽयम्, शास्तिखान-शास्ति-शास्त्रज्ञोऽयम्, विजयपुर-विजय दीक्षितोऽयम्, गोलखण्ड-खण्डन-पण्डितोऽयम्, सुरत-वशीकरण-मन्त्र-मान्त्रि-

र्वचनेभ्यः = आशीः कथनेभ्यः, स्फुरितौ=चलितौ, ओष्ठौ येषां तैः। 'ओत्वोष्ठयोः समासे वा" इति वृद्धिविकल्पः। परिवर्जितक्रीडैः = परित्यक्तखेलैः। बालकैः = अर्भकैः। गवाक्षस्थैः = वातायनस्थैः। शिथिलितव्रीडैः = अल्पीकृतलज्जैः। अङ्गुल्यग्रापसारितायाः = करजमात्रदूरीकृतायाः, तिरस्करिण्याः = यवनिकायाः, विच्छेदेन = भङ्गेन, प्रहितानि = प्रेरितानि, कटाक्षावलोकनानि यैस्तैः। कुलयुवतिजनैः = सद्वंशतरुणीलोकैः। सकौतुकम् = सकुतुकम्। निरीक्ष्यमाणः = अवलोक्यमानः।

शास्तिखानस्य, शास्तेः = शासनस्य, दण्डनस्य, शास्त्रम् = शासनविधानम्, जानातीति तथाभूतः। विजयपुरविजये दीक्षा सञ्जाताऽस्येति दीक्षितः तारकादित्वादितच्। गोलखण्डस्य, खण्डने = ध्वसने, पण्डितः = सञ्जातपण्डः, बुद्धिमान्। 'सूरत' नगरवशीकरणमन्त्रस्य, मान्त्रिकः=मन्त्रशास्त्रज्ञः।

आशीर्वाद देने वाले ब्राह्मणों द्वारा ओंठ हिलाते हुए, बच्चों द्वारा खेल बन्द कर और लज्जा का कुछ परित्याग करके खिड़कियों के पास आकर अङ्गुलियों से पर्दे हटा कर अपने अपने कटाक्षों का निक्षेप करती हुई कुलाङ्गनाओं द्वारा देखे जाते हुए,"यह कौन है?कहाँ से आए हैं?यह वह है,यह वही है, यह वही वीर है, यह वही वीरवर हैं, यह महाराष्ट्रराज हैं; यह अजेय हैं, इनके बारे में चिर काल से सुना जा रहा था, यही शाइस्ता खाँ को दण्ड देने की पद्धति को जाननें वाले हैं, बीजापुर के ऊपर विजय पाने की दीक्षा इन्हें ही

कोऽयम्, अम्बर-पुरन्दर-प्रीति-परवशोऽयं, सम्राजमुपसर्पति, अम्बर-राजकुमारेण सह नीयते। कीदृशमेतस्योष्णीष-बन्धनम्! कीदृशा अस्य सादिनः! स भूषणकविरप्यश्वारूढः सहचरः' —इति परितः परिवर्तिनां बहूनां विविधालापान् मन्दमन्द्रोदीरितान् किञ्चित् किञ्चित् कर्णे कुर्वाणः;

कैश्चित् कुक्कुटाण्ड-गणनासक्तैः, अपरैर्वर्तिका-निचय-वशीकार-व्याकुल-मुष्टिभिः, इतरैर्मञ्चारूढैर्धूम-पान-परायणैः, अपरैरक्षक्रीडाऽऽसक्तैः यवनैश्च "सोऽयं समागतोऽयं समामा

अम्बरपुरन्दरप्रीते = जयपुराधीशप्रेम्णः, परवशः = अधीनः। उपसर्पति = गच्छति। परिवर्तिनाम् = समन्तात् विद्यमानानाम्। अद्धोदीरितान् = नैमकथितान्। कर्णे कुर्वाण = श्रृण्वन्।

कुक्कुटाण्डगणनायाम् = चरणयुधाण्डसङ्ख्याने, आसक्तैः = निरतैः। वर्तिकानिचयस्य, वशीकारे, व्याकुलाः, मुष्टयः = बद्धाङ्गुलिकाः, येषां तैः। मञ्चारूढैः = खट्वारूढैः, धूमपाने परायणैः = निरतैः। अक्षक्रीडासक्तैः = द्यूतलीलानिरतैः। समासादितः = प्राप्तः। आचक्षते = कथयन्ति।

मिली है, गोलकुण्डा के विध्वंस में ये ही निपुण हैं, ये ही सूरत देश का वशीकरण के मन्त्र को जानने वाले हैं, जयपुर नरेश के प्रेम में बँधे हैं, आज दिल्ली सम्राट के पास ये मिलने जा रहे हैं, जयपुर के राजकुमार इन्हें साथ ले जा रहे हैं, देखो इनकी पगड़ी कितनी अच्छी बन्धी है! इनके पीछे चलने वाले घुड़सवार किस तरह के हैं! वे भूषण कवि भी घोड़े पर सवार होकर इनके साथ हैं, "इस प्रकार आस पास के लोगों द्वारा की जाने वाली बातों को कुछ कुछ सुनते हुए मुर्गी के अण्डे गिनने में लगे, बटेरों को पकड़ने में व्याकुल मुट्ठियों वाले, खटिया पर बैठकर बीड़ी सिगरेट पीने वाले मुसलमानों की क्रूरता तथा आक्षेप से भरी परस्पर की बातचीत—"ये लो, यह आ गया, आ गया, इसी को सम्राट औरंगजेब पहाड़ी चूहा कहा करते हैं! अब देखें, क्या होता है, सम्राट इसके साथ किस तरह का व्यवहार करते हैं"—का विषय बनते हुए, अपनी दूकान में रखी सुवर्ण

द्वितोऽयम्, पर्वतोन्दुरुमेनमेवाऽऽचक्षते सम्राजः। दृश्यतां किं भवति, सम्राजः कथमेतेन व्यवहरन्ति ?'—इति सक्रूर-कटाक्षं कथाविपर्योक्रियमाणः;

उभयतः कांश्चित् सक्षणत्कारं स्वापणे समुज्झितानां दीनाराणां गणनाऽऽसक्तान्, अपरान् रत्ननिचय परीक्षण प्रहित सूक्ष्मेक्षणान्, इतरान् अलङ्कार-क्रय-विक्रय-व्यवहार संसक्तान्, अन्यांश्च गवाक्षस्थ-गणिका-गण-भ्रूभङ्ग-निहित-दृष्टीन् वीक्षमाणः सपरिजनो महाराष्ट्रराजो मार्गान्तरं प्राप।

---

कथाविपर्यीक्रियमाणः = कथ्यमानः।

समुज्झितानाम् = त्यक्तानाम्। दीनाराणाम् = सुवर्णमुद्राणाम्। गणनायाम् = सङ्ख्याने, आसक्तान्। रत्ननिचयस्य = हीरकादिव्रातस्य. परीक्षणे = युक्तायुक्तत्वविवेचने, प्रहितानि, सूक्ष्माणि = सूक्ष्मदर्शीनि, ईक्षणानि = नयनानि यैस्तान्। अलङ्काराणाम् = आभरणानाम्, क्रय विक्रयव्यवहारे, संसक्तान् = निरतान्। गवाक्षस्थस्य, गणिकागणस्य= वारस्त्रीव्रजस्य, भ्रूभङ्गे, निहिता., दृष्टयः = नेत्राणि, यैस्तान्। सपरिजनः = सपरिकरः। मार्गान्तरम् = द्वितीय पन्थानम्।

---

मुद्राओं की झनझनाहट भरी गणना में आसक्त सूक्ष्म दृष्टि से रत्न समूह के परीक्षण में संलग्न, आभूषणों की खरीद बिक्री में निमग्न तथा खिड़कियों के पास बैठी गणिकाओं के भ्रूभंग में बद्धदृष्टि यवनों को देखते हुए वीर शिवाजी दूसरे रास्ते पर पहुँचे (आगे बढ़े)।

वहाँ एक गगन चुम्बी भवन को देखकर उन्होंने पूछा—यह क्या है ? राजकुमार राजसिंह ने उत्तर दिया—महाराज ! यही है 'जुमा मस्जिद' जहाँ प्रति शुक्रवार को आकर यवन लोग अपने इष्ट (देव) की आराधना किया करते हैं।

उसके बाद थोड़ा रास्ता तय करके आगे बढ़ने पर शिवाजी की दृष्टि दूर में खड़ी एक कैलास शिखर जैसी उत्तुङ्ग अट्टालिका पर पड़ी।

तत्र प्रोच्चं पस्त्यमेकमासाद्य पृष्टवान्–किमिदमिति। कुमाररामसिंह उवाच—आर्य! महामज्जिदमिदम्, यत्र प्रतिशुक्रवारं यवना आगत्य इष्टमाराधयन्ति।

परतश्च कियन्तमध्वानमतिक्रम्य सुदूरस्थं कैलासशिखरखण्डाऽऽभं महाहर्म्यमेकं दृष्ट्वा यावत् पृच्छति महाराष्ट्रराज, तावत् स्वयमेव कुमार उवाच यद्—महाराज! ज्यौतिषालयोऽयं मत्पित्रा प्रतिष्ठापितः। अस्मिन् बहूनि शास्त्रोक्तरीत्या निर्मितानि यन्त्राणि सन्ति, यैर्ग्रहाणां गतयोऽनायासेन निर्धार्यन्ते। अथ स उवाच—"कथं न स्यादीदृश एव ज्यौतिष-शास्त्र-पारङ्गतो भारतभूषणं तत्रभवान् जयपुराधीशः?"

ततः पुरतो गच्छन्तः क्षणेन राजद्वारं प्राप्ताः। तत्र कोऽयमिति रोद्धुमुत्सुकाः प्रतीहाराः कुमाररामसिंहेन किमप्युक्त्वा एकेन हस्तेन

प्रोच्चम् = प्रोन्नतम्। पस्त्यम् = सद्मम्। महामज्जिनम् = "जुमा मस्जिद" इति ख्यातम्। आराधयन्ति = सेवन्ते।

कैलासशिखरखण्डस्य, आभेव, आभा यस्य तम्। महाहर्म्यम् = महाप्रासादम्। प्रतिष्ठापितः = निर्मापितः। ग्रहाणाम् = खेचराणाम्। निर्धार्यन्ते = निर्णीयन्ते।

उत्सुकाः = उत्काः। अतिप्रशस्तम् = नितान्तशोभनम्। उन्मुच्य =

उसके विषय में वे रामसिंह से पूछना ही चाहते थे कि रामसिंह ने स्वयम् उनसे कहा—महाराज! इस ज्योतिषालय की स्थापना मेरे पिताजी ने की है। इसमें ज्योतिःशास्त्रोक्त रीति से निर्मित बहुत से ऐसे यन्त्र हैं, जिनके माध्यम से ग्रहों की गति का अनायास परिज्ञान हो जाता है। यह सुनकर शिवाजी ने कहा—भारत भूषण जयपुर महाराज ज्योतिषशास्त्र में इस प्रकार पारङ्गत क्यों न हों!

इस प्रकार से आगे बढ़ते बढ़ते वे राजदरवाजे के पास पहुँच गए। वहाँ "यह कौन है" ऐसा कहकर द्वारपाल लोग उन्हें रोकने ही वाले थे कि तबतक रामसिंह ने उनसे कुछ कहा और उनकी बात सुनकर वे द्वारपाल

प्रणम्य बद्धपङ्क्तय एकतः स्थिताः। एते चान्तः प्रविश्यातिप्रशस्तं स्थानमेकं प्राप्ताः। कुमार-सम्मत्या तत्रैव यानमुन्मुच्य प्रचलिताः। गौरसिंहः, माल्यश्रीकः, भूषणश्च स्वस्वसैन्धवास्त्यक्त्वाऽनुसृताः, तदवलोक्य कुमाररामसिंहेनोक्तम्—

किं भवन्तोऽपि? अथवा, अस्तु, सुवर्णदण्ड-धारिणां निकटे स्थास्यते भवद्भिः।

एवं तस्यां कक्षायां बहून् पुष्परथान् वाजिनो गजान् क्रमेलकांश्चावलोकयन्तो विविध-मण्डलेश्वर-यातायात सङ्कुलं मार्गमाश्रित्य द्वितीयं द्वारमायाताः। तत्प्रतीहारा अपि कुमारेण किमपि दत्तेङ्गिता मार्गं ददुः। तदन्तः प्रविश्य, पुनरेकं प्रशस्तं प्राङ्गणं प्राप्य,

परित्यज्य। अनुसृताः = पश्चाच्चलिताः।

सुवर्णदण्डधारिणाम् = हैरण्यदण्डग्राहिणाम्। न केवल दण्डधारिणामपितु सुवर्णदण्डधारिणामिति कथयता स्मारितं लौकिकं कथानकम्—"ताडितुम्, पर लोहितोपनहा"।

कक्षायाम् = प्रकोष्ठे। पुष्परथान् = चक्रयानानि। क्रमेलकान् = उष्ट्रान्। विविधानाम् = अनेकेषाम्, मण्डलेश्वराणां यातायातैः, सङ्कुलम् = व्याप्तम्। दत्तेङ्गिताः = प्रहितचेष्टिताः। प्राङ्गणम् = अजिरम्।

शिवाजी को सलाम करके एक कतार में खड़े हो गये। भीतर घुसने के बाद वे लोग एक बड़े ही अच्छे स्थान पर पहुँचे। कुमार रामसिंह की सम्मति से वहीं अपनी सवारी छोड़कर आगे बढ़े। इधर गौरसिंह, माल्यश्रीक तथा भूषण कवि भी अपने अपने घोड़े छोड़कर उनके पीछे चले। यह देखकर राजकुमार रामसिंह ने कहा—क्या आप लोग भी चलेंगे? अथवा चलिये, कोई बात नहीं। सोने के दण्ड को धारण करने वालों के पास आप लोग रुक जायेंगे।

इस प्रकार पहले कक्ष में अनेक पुष्परथों, घोड़ों, हाथियों और ऊँटों को देखते हुये वे लोग अनेक मण्डलेश्वरों के यातायात से व्याप्त मार्ग से द्वितीय द्वार पर पहुँचे। दूसरे द्वार के प्रतीहार भी रामसिंह का इशारा पाकर उन

महाराष्ट्रराजोऽवालोकयद्—

मध्ये विशालमजिरम्, परितश्च सार्द्ध-हस्त-द्वयोच्छ्राया वेदिका, ततश्च परं सकाच-पट्टिक-हरित-कपिश-श्यामलादि-रञ्जित कपाटानि कोष्ठानि सन्ति। वेदिकाया उपरि क्वचित् सौवर्ण्यो दन्तावल-ग्रैवेयक-घण्टा निर्मीयन्ते, परतः पाटीर स्कन्ध-निर्मितेषु कवाटेषु रत्नकुसुमानि विरच्यन्ते, अन्यतः सैन्धव-शृङ्गाराय स्थूलमौक्तिकाना हारा गुम्फ्यन्ते, इतरत कौशेयास्तरणानां प्रान्तेषु सौवर्ण-

विशालम् =सुविस्तृतम्। सार्धहस्तद्वयस्य, उच्छ्रायः = औन्नत्यं यस्याः सा। वेदिका = वितर्दिका। सकाचपट्टिकाः = काचपट्टिकासहिताः, हरितकपिशश्यामलादिभिः = वर्णैः रञ्जिताः कपाटा येषु तानि। सौवर्ण्य = चामीकरनिर्मिता। दन्तावलानाम् = करिणाम्, ग्रैवेयकघण्टाः = ग्रीवाभूषणभूताः घण्टाः। निर्मीयन्ते = विरच्यन्ते। पाटीरस्य = चान्दनस्य, स्कन्धैः=शाखाधिभागैः। "अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधिस्तरो" इत्यमरः। निर्मितेषु। कवाटेषु=अररेषु। रत्नानाम्= हीरकादीनाम्, कुसुमानि = पुष्पप्रतिमाः। सैन्धवानाम् = घोटकानाम्, शृङ्गाराय - भूषणाय। स्थूलानाम् = महताम्, मौक्तिकानाम् = मणीनाम्। हाराः = कण्ठाभरणानि। गुम्फ्यन्ते = ग्रथ्यन्ते। कौशेयास्तरणानाम् = पट्टसूत्रनिर्मितविष्टराणाम्। प्रान्तेषु = कोणेषु, चरमांशेषु च।

सर का मार्ग खाली कर दिया। उस दूसरे द्वार में घुसकर पुनः महाराष्ट्रराज जब एक अन्य सुन्दर प्राङ्गण में पहुँचे तो उन्होंने देखा बीच में एक बहुत बड़ा प्राङ्गण था, उसकी चारों तरफ ढाई हाथ ऊँची वेदी बनी हुई थी, उसके बाद (भीतर) कई कमरे बने हुये थे जिनकी रङ्ग बिरङ्गी किवाड़ियों में शीसे लगे हुये थे। वेदी के ऊपर कहीं तो हाथियों के गले में लटकाये जाने वाले सोने के घण्टे बनाये जा रहे थे, कहीं चन्दन की लकड़ी की बनी किवाड़ियों पर रत्नों से फूल बनाये जा रहे थे, कहीं घोड़ों को सजाने के लिए बड़े-बड़े मोतियों के हार गूँथे जा रहे थे, कहीं रेशमी कपड़ों की किना

सूत्र-ततयः सीव्यन्ते, ततो राजतच्छत्राणां परिधिषु हीरकजालानि योज्यन्ते, इतश्च हाटकमञ्चानां दण्डेषु मरकत कुसुमानि निर्मीयन्ते।

एवं विचित्रं वैभवं विलोकयन्तः सर्वे तृतीयं राजद्वारमागताः। तत्प्रवेश-समये कुमारेण कथितम्—"कक्षायामस्यां सर्वैर्मौनेन गन्तव्यम्। पाद-क्षेपोऽपि निःशब्द एव विधेयः"। ततस्तथैव तदपि द्वारं प्रविश्यावलोकितं यत् पन्थानमुभयतः पदे पदे सौवर्णपात्राधाराः सकुसुमाः क्षुपानन्तरं क्षुपाः, मध्ये मध्ये च सौवर्ण राजतादि-पञ्जरस्थाः पुंस्कोकिलाः, कीराः, सारिकाः, कल-विङ्काः, लावाः, चकोराः, चातकाः, अन्ये च बहवो विविधवर्णाश्चपलित-

---

सौवर्णसूत्रततयः = हैरण्यतन्तुलताः। सीव्यन्ते = सूच्या स्यूयन्ते। राजतच्छत्राणाम् = रजतनिर्मितातपत्राणाम्। परिधिषु = प्रान्तभागेषु। हीरकाणां जालानि = समूहाः। योज्यन्ते = सम्मेल्यन्ते। हाटकमञ्चा-नाम् = चामीकरमञ्चानाम्। मरकतकुसुमानि = मरकतमणिकुसुमानि।

वैभवम् = सम्पत्तिम्, पादक्षेपः = चरणपातः, सौवर्णपात्राधाराः = हैरण्यभाजनाश्रयाः, सकुसुमाः = सप्रसूनाः, क्षुपाः = अदीर्घशाखावृक्ष-मूलाः, "ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः" इत्यमरः। पुंस्कोकिलाः = पिकाः। कल-विङ्काः = चटकविशेषः। लावाः = वर्तिकाभेदाः। चकोराः = चन्द्रिकाप्रियाः,

---

रियों पर सोने की जड़ी लगाई जा रही थी, कहीं चाँदी के बने छातों की परिधियों में हीरे लटकाये जा रहे थे और कहीं सुवर्ण निर्मित लट्वादण्ड में मरकत मणि के फूल बनाये जा रहे थे।

इस प्रकार राजधानी के विचित्र वैभव को देखते हुए वे तीसरे द्वार पर पहुँचे। उस कक्षा में प्रवेश करते समय राजकुमार रामसिंह ने कहा—इस कक्षा में चलते समय कुछ आवाज नहीं होनी चाहिये। पैर भी बहुत धीरे-धीरे रखना है। उसके बाद राजकुमार कथित रीति से ही शनैः-शनैः जब सब आगे बढ़े तो उन लोगों ने देखा कि उस कक्षा में मार्ग की दोनों तरफ सोने के गमलों में फूलों से लदी झाड़ियाँ लगी थीं और बीच बीच में स्वर्ण चोंचोंवाली, स्वर के सुनाने से प्रेक्षकों के मन के आकर्षक, पूँछ के सकोच-

चञ्चवः पक्षति-कण्डूयन-मनोहराः, पुच्छ-प्रसारण-सङ्कोचन-चञ्चलाः, वीणा-रणन-स्पर्द्धि-कूजिताः, दाडिम-द्राक्षाखण्ड-त्रोटन-तत्पर-त्रोटयः, आरोहमारोहं शलाकोपवेशनिका आन्दोलमान्दोलं च पुनरधः प्रपतन्तः पक्षिणः समुल्लसन्तीति । पार्श्वद्वयेऽपि सौरभ पटल-व्याप्त-दिगन्तरमुद्यानम् ; तदन्तस्थ-कुञ्जेषु च क्वचित् क्वचिद् वीणावादः । सम्मुखमेव सुदूरं महान् प्रासादः, तत्संलग्नैव महती हस्त-त्रयोच्छ्राया वेदिका, तदुपरि तादृशमेव वेदिकान्तरम् , तस्यापि

---

व्याताः । चपलितचञ्चवः = चञ्चलितत्रोटयः । पक्षतिकण्डूयनेन = पक्षमूलतर्जनेन, मनोहराः = चेतोहराः । पुच्छाना प्रसारणे = विस्तारणे, सङ्कोचने = आकुञ्चने, चञ्चलाः = चपलाः । वीणारणनस्य = वीणाध्वनेः, स्पर्धि कूजित येषा ते । दाडिमद्राक्षाखण्डाना त्रोटने = खण्डने, तत्पराः = निरताः, त्रोटयः = चञ्चवो येषा ते । आरोहमारोहम् = आरुह्याऽऽरुह्य । शलाकोपवेशनिकाः = शलाकादण्डनिर्मितानि उपवेशस्थानानि । आन्दोलमान्दोलम् = हिल्लोलयित्वा हिल्लोलयित्वा । समुल्लसन्ति = शोभन्ते । पार्श्वद्वये = दक्षे वामे च भागे । सौरभपटलेन = सौगन्ध्यसमूहेन, व्याप्तम् , दिगन्तरम् = हरिदन्तराल येन तत् । उद्यानम् = गृहवाटिका । तदन्तस्थेषु = तदन्तरालवर्त्तमानेषु, कुञ्जेषु = लतादिविहितोद-

---

विकास में चञ्चल, वीणा की मधुर ध्वनि के प्रतिस्पर्धी कलरव करनेवाली, दाड़िम तथा दाख के फल को काटने में आसक्त और अपने-अपने ( पिंजड़े में ) बैठने के लिये लगाये हुए तार पर कभी बैठने और कभी उपर से नीचे कूद आनेवाली विभिन्न प्रकार की पक्षियाँ—कोयल, सुग्गा, मैना, कलविङ्क, ( वर्त्तक ) बटेर, चकोर, चातक आदि—सोने, चाँदी के बने पिंजड़ो में सुशोभित हो रही थीं । दोनों तरफ दिग्दिगन्त को सुरभित करने वाले उद्यान लगे हुये थे और उनमें बने कुञ्जों में कहीं-कहीं वीणा बज रही थी । सामने ही बहुत दूर में एक विशाल प्रासाद था, उससे सटी हुई एक तीन हाथ ऊँची बहुत बड़ी वेदी बनी हुई थी, उसके ऊपर भी उसी तरह

चोपरि सौवर्णं महासिंहासनम्, तदेवाध्युषितो भारतसम्राड् दृष्टः।

कुमारेङ्गितेन निपुणं निरीक्ष्य चावगतम्—यत् प्रथम-महावेदिकायां बहवः कलित-कनक दण्डा करवालाऽऽकलित-कटिप्रदेशा अनुचरा बद्धाञ्जलयो बद्धपङ्क्तय उत्थिवास्तिष्ठन्ति।

द्वितीय-वेदिकायां च सौवर्ण-दण्ड-भित्तिका-दत्त-हस्ताः मण्डलेश्वराः सेनापतयश्च उत्थिता एव तिष्ठन्ति। महाराष्ट्रपतिना शनैः पृष्टम्—"किं सभायां केनापि नोपविश्यते ?"

कुमार उक्तवान्—राजकार्यसम्बन्धिनीषु सभासु न केनाप्युप-

---

वेषु। तदेव महासिंहासनमेव। अध्युषितः = अध्यारूढः।

निपुणम् = सावधानम्। कलितकनकदण्डाः = गृहीतसुवर्णदण्डाः। करवालैः = चन्द्रहासैः, आकलितः = सबद्धः, कटिप्रदेशो येषां ते। उत्थिताः = उत्तिष्ठन्तः।

सौवर्णदण्डभित्तिकासु = तिर्यग्भूतैः सौवर्णदण्डैरेव रचितेषु कुड्येषु दत्तहस्ताः = स्थापितकराः। मण्डलेश्वराः = मण्डभूपतयः। उत्थिता एव, न तूपविष्टा।

राजकार्यसम्बन्धिनीषु=राजनीतिकविचारार्थमाकारितासु। कृपापा-

---

की दूसरी वेदी थी और उसके ऊपर सुवर्णनिर्मित महान् सिंहासन था, उसी पर दिल्लीसम्राट् औरङ्गजेब बैठे थे।

राजकुमार के इङ्गित से अवधानपूर्वक उधर देखने पर सबों ने देखा कि पहली विशाल वेदी पर सुवर्ण दण्डों से सम्पन्न कमर में तलवार बान्धे हुये बहुत से अनुचर हाथ जोड़कर पङ्क्तिबद्ध होकर खड़े हैं, दूसरी वेदी पर भी सुवर्णदण्डों के समूह पर हाथ रखकर मण्डलेश्वर तथा सेनापति लोग भी खड़े ही हैं। महाराष्ट्रराज ने धीरे से रामसिंह से पूछा—क्या सभा में कोई बैठते नहीं ?

राजकुमार ने उत्तर दिया—राजकार्य सम्बद्ध सभा में सम्राट् के

प्रविश्यते ऋते सम्राजः। गान-वाद्यादि समितिषु च कृपापात्राण्युपविशन्त्यपि।

एवं मन्दमालपन्त एव ते वेदिसमीपमायाताः, राङ्कवास्तरणाच्छन्नानि सोपानान्याक्रम्य प्रथमवेदिकामारूढा, तत्रैव कुमारेङ्गितो माल्यश्रीको गौरसिंहो भूषणश्च बद्धाञ्जलीनामन्येषां पङ्क्तिं भेजिरे। महाराष्ट्रेश्वरस्तु कुमारेण सह द्वितीयां वेदिमारूढ एव दक्षहस्तेन सम्राजं प्रणनाम, कुमारदर्शितेन पथा च समीपमागत्य महामूल्यां मुद्रिकामेकां निजाञ्जलौ संस्थाप्य, हस्तौ प्रसारितवान्। ततोऽन्यतः क्षिप्तेक्षणे सम्राजि, समीपवर्तिषु कश्चन समचकथत्—

---

श्राणि = दयामाजनानि, विटाः, गणिकाः, तादृशाश्चान्ये।

मन्दम् = शनैः। राङ्कवास्तरणैः=रङ्कुमृगचर्मनिर्मितविष्टरैः, आच्छन्नानि = गोपितानि। बद्धाञ्जलीनाम् = कृतकरसम्पुटानाम्। पङ्क्तिम् = श्रेणीम्। भेजिरे = शिश्रियिरे। महामूल्याम् = महार्घाम्। मुद्रिकाम् = अङ्गुलीयकम्। निजाञ्जलौ = स्वीयकरसम्पुटे। क्षिप्तेक्षणे = प्रेरितनयने। समीपवर्तिषु=आसन्नेषु। शिवराजः 'रिक्तहस्तेन नोपेयात्' इति सोपायन।

---

अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति बैठता नहीं। हाँ, गीत-वाद्य आदि की सभाओं में जो सम्राट् के कृपापात्र हैं वे बैठ भी जाते हैं।

इस प्रकार धीरे-धीरे बातचीत करते करते वे वेदी के पास पहुँच गये। रङ्कु मृगों के चर्म से आवृत सोपान के माध्यम से वे प्रथम वेदिका पर चढ़े और वहीं राजकुमार के इङ्गित से माल्यश्रीक, गौरसिंह तथा भूषण कवि भी हाथ जोड़कर पङ्क्तिबद्ध होकर खड़े अनुचरों के साथ खड़े हो गये। महाराष्ट्रराज शिवाजी ने राजकुमार रामसिंह के साथ दूसरी वेदी पर चढ़ते ही दायें हाथ से सम्राट् का अभिवादन किया और कुमार द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से सम्राट् के पास जाकर अपनी अञ्जलि में एक बहुमूल्य अङ्गूठी रख कर हाथ फैला कर खड़े हो गए। उसके बाद दूसरी ओर देखते हुए सम्राट्

"जगत्पालकानां करुणाऽवलोकनं सभाजयति महाराष्ट्र-देशीयः कश्चित् शिववीरः"—इति ।

* अथ दृष्टिं परिवर्त्य वाचंयम एव, स्वहस्तेन मुद्रिकां जग्राह दिल्लीश्वरः, पाञ्चसाहस्रिकैश्च सेनापतिभिः सह उपस्थातुं मन्दमुक्तवान्।

तदाकर्ण्य किरात-रसमिव पिबन् महाराष्ट्रराजः, सकष्टं ततो बभ्राम, कुमाराननदृशाटष्टिश्च मन्दमुक्तवान्—किं शिवः पाञ्चसाहस्रिकः ? यदि सम्राट् कदाचन महाराष्ट्र-देशं यास्यति; तदा द्रक्ष्यति कति पाञ्चसाहस्रिकाः शिवं चामरैर्वीजयन्ति ?—इति । तेन चक्षुषैव वारितोऽरुणमुखस्तूष्णीमस्थात्। कियत्क्षणानन्तरमेव सभाभङ्गो

जगत्पालकानाम्=ससाररक्षकाणाम् । "जहाँ-पनाह" इति तत्रत्यः शब्दः । करुणया=दयया, अवलोकनम् = दर्शनम् । सभाजयति=प्रार्थयते ।
* परिवर्त्य = मोटयित्वा । वाचयम एव = मौनी एव । पाञ्चसाहस्रिकैः = पञ्चसहस्रसेनारक्षकैः ।
किरातरसमिव = तिक्तरसमिव । तेन = रामसिंहेन । चक्षुषैव = नेत्रेणैव । वारितः = निषिद्धः । अरुणमुखः = रक्काननः । सभाभङ्गः =

से किसी समीपवर्ती व्यक्ति ने निवेदन किया—महाराष्ट्र देश के एक शिवाजी नाम के वीर जगत्पालक श्रीमान् की करुणादृष्टि के लिये प्रार्थी हैं ।

उसके बाद अपनी दृष्टि फेरकर बिना कुछ कहे ही दिल्लीश्वर ने अपने हाथ से शिवाजी की अञ्जलि में पड़ी अङ्गूठी उठा ली और पाँच हजार सेनाओं के अधिपतियों के साथ स्थित रहने के लिये रामसिंह से धीरे से कह दिया ।

इस बात को सुनते ही शिवाजी वहाँ से इस प्रकार दुःखी हो कर लौट गये जैसे वहाँ उन्हें तीता ( किरात ) रस पीने को मिला हो, और कुमार रामसिंह के मुख की ओर देखते हुए धीरे से कहा—क्या शिव पाँच ही हजार सेनाओं का स्वामी है ? यदि सम्राट् कभी महाराष्ट्र देश जाएंगे तो देखेंगे कि कितने पाञ्चसाहस्रिक शिव के लिए चामर झल रहे हैं । लेकिन राजकुमार

जात । दिल्लीश्वरः सिंहासनादुत्तीर्य, पृष्ठत एवावरोधं प्रविष्टः, जनसमूहश्च क्रमशो बहिर्निरगात् ।

दिल्लीनगरस्य मध्य एव महाहर्म्यमेकं महाराष्ट्र-पतेर्निवासाय स्थिरीकृतमासीदिति तत्रैव स कुमारेण प्रापितः । प्रात्यहिकावश्यक वस्तुजातेन कैश्चिन्मात्यश्रीकादिभिर्वीरैश्च सह स तत्र स्थितः । पत्त योऽश्वारोहाश्च तत्रैव शिविरे स्थापिताः ।

महाराष्ट्रराजावहेलनावलोकनेनेव ग्लानः, यवनाऽऽखण्डलस्य दुरभिसंधिं जानान इव पाण्डु-मुख-मण्डलः, राघवाचार्य-कथि-

समितिविसर्जनम् । अवरोधम् = अन्तःपुरम् । निरगात् = निष्क्रान्तः ।

प्रात्यहिकावश्यकानाम् = प्रतिदिनापेक्षितानाम्, वस्तूनाम्, जातेन समूहेन ।

महाराष्ट्रराजस्य, अवहेलनस्य = तिरस्करणस्य, अवलोकनेन = दर्शनेन । ग्लान इव = क्षीणहर्ष इव । यवनाखण्डलस्य = म्लेच्छेन्द्रस्य । दुरभिसन्धिम् = दुर्विचारम् । जानान इव = विदन्निव । पाण्डुमुख

द्वारा आँख के इशारे से रोके जाने पर क्रोधारुण मुख शिवाजी चुप हो गये । कुछ ही देर में सभा समाप्त हुई । दिल्लीश्वर अपने सिंहासन से उठकर पीछे से ही अपने अन्तःपुर चले गए और अन्य लोग भी क्रमशः वहाँ से बाहर चले आए ।

दिल्ली के बीच ही महाराष्ट्रपति शिवाजी के लिये पहले से ही एक विशाल प्रासाद निश्चित था और राजकुमार रामसिंह उन्हें वहाँ ले गये । दैनिक सामग्रियों तथा माल्यश्रीक आदि अपने वीर बन्धुओं के साथ शिवाजी वहीं ठहरे । उनकी सेना तथा घुड़सवार भी वहीं एक शिविर में रख दिये गये ।

उतने में ही प्रायः महाराष्ट्रराज के अपमान से ही हर्षहीन, यवनाधिपति औरङ्गजेब के कपट प्रबन्ध के परिज्ञान से ही शायद पीले पड़ गये मुख वाले और राघवाचार्य की बातों को शिवाजी द्वारा की गई उपेक्षा

तं नाङ्गीचकार महाराष्ट्रराजः-इति च कोपेनेव शोणो भास्वानस्तं जगाम।

कुमाररामसिंहोऽपि पुनर्द्रक्ष्याम्यार्यमित्युक्त्वा निवृत्तः। महाराष्ट्रराजोऽपि च तदागारस्यान्तः प्रविवेश।

इति दशमो निश्वासः।

---

मण्डलः = पीतासवखण्ड । कोपेनेव = क्रोधेनेव। शोण = रक्त । अस्त जगाम = अस्ताचल भेजे।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यां दशमनिश्वासविवरणम्।

---

के कारण महाराष्ट्रराज के ऊपर हुए कोप से ही प्राय लालवर्ण वाले भगवान् सूर्य भी अस्तमित हो गये।

कुमार रामसिंह भी 'फिर श्रीमान् से मिलेंगे' ऐसा कह कर अपने निवास गृह को लौट गये और महाराष्ट्रराज भी उस प्रासाद के भीतर चले गये।

शिवराजविजय का दसवाँ निश्वास समाप्त।

॥ श्रीः ॥

# एकादशो निश्वासः

"शेते करी मशक पाद-विपादिकायाम्"

—स्फुटम्

"उपकारिणि विस्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम् ।
तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे ! कथं वहसि ?"

—हितोपदेशः ।

---

एकादशे शिववीरस्यावरङ्गजीव-कारागृहे बन्धनं विवर्णयिषुरिति तदुपक्षेपकं प्रतीकपद्यमुद्धरति । तत्राऽऽद्यम्—शेते करी मशकपादविपादिकायामिति । मशकस्य=अतिक्षुद्रतरस्य तथाऽन्नैव ख्यातस्य जीवस्य, पादे=चरणे, या विपादिका=स्फोट, तस्याम् । यद्यपि "पादस्फोटो विपादिका" कथ्यते कोषकारैस्तथापि समस्यायितेऽत्र पद्ये पादपदस्य पृथगुच्चारणेन स्फोटमात्रार्थकत्वमेव विशिष्टवाचकपदन्यायादित्यवधारणीयम् । मशकचरणे ताहशलघुतमे, यत्र विपादिकोद्भूतेश्चर्चाया अप्यसम्भव, किन्तु दैवाद्वाऽन्यस्माद्वा कस्माच्चिदैवप्रभूतात्कारणव्रातात् सम्भूता विपादिका, तस्यां करिवरो महान् जीव सुखेन निद्रातीत्यसम्भवपरम्परा यथा, तथा शिववीरस्य कारावासोऽपि दैवदुर्विपाकघटित एवेति हार्दम् ।

---

"कहीं विशाल गजराज को भी एक मच्छर के पैर की बिवाई में सोता है ?"

—स्फुटक

"भगवति वसुधे ! उस नीच तथा असत्यप्रतिज्ञ मनुष्य का भार तूँ कैसे सह पाती है जो विश्वस्त, निष्कपट और उपकारी व्यक्ति के साथ भी दुर्व्यवहार करता है !"

—हितोपदेश

"पुरा सरसि मानसे विकच-सारसालि स्खलत्-
परागसुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः।
स पल्वल-जलेऽधुना मिलदनेक भेकाऽऽकुले
मराल-कुल नायकः कथय रे! कथं वर्त्तताम्?"॥

—भामिनीविलासे पण्डितराजः।

स चाथ शिववीरः स एव; य कियदेव पूर्वं दिल्लीकलङ्कस्य तनया तनयञ्च समार्पयत् प्रादर्शयच्च महतीं वीरता गोलखण्डीयदुर्गविजये। अयञ्चोपकार शिववीरकृतस्तादृशमुपकार शिववीरादन्यस्तात्कालिक: कोऽपि कर्तुं न समर्थ आसीत्, किंतु सर्वमिदमेकपदे व्यस्मार्षीदवरङ्ग इति हितोपदेशीयेन पद्येनोपक्षिपति उपकारिणीति। उपकारिणि = कृतमहोपकृतौ। विसब्धे = विश्वस्ते। शुद्धमतौ = अकपटबुद्धौ। यः = दुर्विनीतामेसर', निर्विवेक.। साधुसमाजगर्हितः। पापम् = घृणितमाचारम्। समाचरति=विदधाति। वसुधे! = वसुन्धरे!। असत्यसन्धम् = असत्यप्रतिज्ञम्, तम् = पूर्वोक्त पापिनम्। जनम् = मनुष्यमेव, नतु राक्षसम्।। कथम् = केन प्रकारेण। वहसि = धारयसि। न हि गिरिनदनदीशादिभि पृथिव्यास्तथा भारो यथा मानवाकारैः परवञ्चनमाननिपुणैर्विश्वासघातिभिरिति स्मरन्ति धर्मशास्त्रकारा नीतिकाराश्च।

अथ दैवतन्त्रमित्यवधार्य जयसिंहादिभिः साकं सोढव्यः शिववीरेणापि दुर्वारविपद्व्रात इति वेदन पण्डितराजीयया हंसान्योक्त्या कर्त्तव्यमुपक्षिपति-पुरेति। पुरा = कियदेव पूर्वम्। मानसे सरसि = प्रालेयाद्रेरुत्तरस्या कैलासाद्रेरन्तिके कौवेरैर्यक्षैमिरधिष्ठिते पौराणिकैरनेकधा समुद्गीतगुणगणे मानसाख्ये सरोवरे। विकचानाम् = विकसितानाम्, सारसानाम् =

"अरे देव! यह तो बतला कि जिस राजहंस ने आज तक अपना जीवन विकसित कमल-पुष्पों से गिरते हुए पराग से सुरभित जल वाले मानसरोवर में बिताया वह अब मेढकों की जमघट से व्याकुल इस छोटे तालाब में कैसे रह सकता है!"

—भामिनीविलास में पण्डितराज

निशीथप्राया रजनी, उष्णः कालः, समीरो न सरति, गृहे गृहे बालानां रोदनस्याऽऽर्त्तनादा व्यजन-चालनस्य च सणत्कारो निद्रा

---

सरसीरुहाणाम् , आले = राजेः, स्खलद्भिः = पतद्भिः, परागैः = धूलिभिः, सुरभीकृते = सुगन्धीकृते । पयसि = वारिणि । यस्य = भाग्यशालिनः । वयः = अवस्था । न दिनानि, मासा , वर्षाणि वा-अपि तु वयः । यातम् = व्यतीतम् । स = एष । मरालकुलस्य = हंसान्वयस्य, नायके = श्रेष्ठ । अधुना = साम्प्रतम् । मिलद्भिः = घटमानैः । अनेकैः = असङ्ख्यातैः , भेकैः = मण्डूकैः । आकुले = व्याप्ते । पल्वलस्य = अल्पोदकसरस , जले = नीरे । कथम् = केन प्रकारेण । वर्त्तताम् = विद्यताम् । रे ! = नीचसम्बोधनम् । कथय = प्रतिपादय । अप्रस्तुतस्य मरालस्य प्रशंसया प्रस्तुतस्य कस्यचन महाशयस्य पूर्वं समुन्नतावस्थितस्य पश्चात् कैश्चित्कारणैः स्वस्थानमपहाय गच्छतोऽन्यत्र स्थातुं कैश्चिन्नीचैरभिहितस्योदात्तभावप्रदर्शनप्रतिपादनादप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः । अयं ग्रन्थकर्त्ता कविः शाहजहाननृपतेश्छाया- याम् "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" इति स्वशर्थनिर्वाहार्थं भणत पश्चात्ततो विराग सञ्जातः पण्डितराजस्येति स्वीयमेवात्र घटनाचक्रं निबध्नातीति मर्मविदः । भवति चैतत्प्रमाणीकृत तेन स्वयं वर्णिते स्वजीवनवृत्तान्ते—

"सम्प्रत्युज्झितवासना मधुपुरीमध्ये हरिः सेव्यते" इति पद्यखण्डे ।

अन्यच्च—

यस्मिन् खेलति सर्वतः परिचलत्कल्लोलकोलाहलै-<br>
र्मन्थाद्रिभ्रमणभ्रमं हृदि हरिद्दन्तावला पेदिरे ।<br>
सोऽयं तुङ्गतिमिङ्गिलाङ्गकवलीकारक्रियाकोविद<br>
क्रोडे क्रीडतु कस्य केलिकलहत्यक्तार्णवो राघव. ॥

इत्यास्ता तावत् । प्राचीनेतिवृत्तान्वेषणपराणा ध्यानाकृष्ट्यै तु यत्किञ्चि- दिदमालपितमिति शम् ।

निशीथप्राया = प्रायोऽर्धरात्रिरूपा । उष्णः कालः = ग्रीष्मसमय । समीर = वायु । न सरति = न चलति । व्यजनचालनस्य = वृन्त-

---

मध्यरात्रि का समय था, गर्मी की ऋतु थी, हवा भी नहीं बह रही

मन्थरानपि व्याकुलयति। जल जलम्, हिम हिमम्, वातो वातः, दाडिम्बरसो दाडिम्बरस, उशीरमुशीरम्, पाटलोदकं पाटलोदकम्, चन्दन चूर्णं चन्दन चूर्णम्—इति, मशका मशकाः, मत्कुणा मत्कुणाः, कण्डूः कण्डूः, स्वेद॰ स्वेदः, इति च श्रूयते अट्टेभ्यो ध्वनिः। तावद् भेरी-नाद-सहचरितेन वशी-नादेन समारब्धो मध्य निशीथ-सूचको विहागरागाऽऽलाप। कचिचाश्रूयत नवोढाना मञ्जीर किङ्किणी-नूपुर वलय शिञ्जितम्। एतद्रस भञ्जकश्चाऽऽकर्णि प्रहरिणा "जागृहि भो! जागृहि, गाढोऽयमन्धकारः"—

---

वीजनस्य। निद्रया मन्थरान् = आलस्यान्। उशीरम् = नलदम्। "खस" इति हिन्दी। पाटलोदकम् = 'गुलाबजल" इति हिन्दी। मत्कुणा = रक्तबीजा। कण्डू = खर्जू। अट्टेभ्य = अट्टालिकाभ्य। भेरीनादेन, सहचरितेन = मिलितेन। मध्यनिशीथसूचक = अर्धरात्रबोधक। विहागराग = एतन्नामको रागविशेष। नवोढानाम् = नूतनपरिणीतानाम्। एतस्य रसस्य = शृङ्गारात्मन, भञ्जक = मर्दक।

---

थी, घर घर में बच्चों के क्रन्दन का आर्तनाद और पखे झलने की सनसनाहट नीन्द से अलसाते लोगों को भी व्याकुल कर रही थी। "अरे! पानी लाओ, पानी, अरे! थोड़ा बर्फ भी ले आओ जरा पखा डुलाओ, अनार का रस चाहिए, अनार का रस, अरे भाई! खस की टट्टी"; अरे! थोड़ा गुलाबजल तो ले आओ, गुलाबजल, थोड़ा चन्दन का चूर्ण चाहिए, चन्दन का चूर्ण"", ओह! बहुत मच्छर हैं!, अरे रे! खटमल काट रहा है, खटमल, शरीर में खुजलाहट बहुत है, ओह! बहुत पसीना निकल रहा है"—इसी तरह की आवाज महल्लों से आ रही थी। इतने में ही मध्यरात्रि की सूचना देने वाले विहागराग में भेरीनाद के साथ साथ वशी की तान सुनाई पड़ी। कहीं से नवविवाहिता युवतियों के मञ्जीर, करधनी तथा नूपुरों की झङ्कार भी सुनाई दी और बीच में ही

इति कर्णकषायो नादः।

महाराष्ट्रराजस्तु चिन्ता-सन्तापेनापि तप्यमानो नालभत निद्राम्। अथ उशीर-व्यजनिकामादायाऽऽन्दोलयन्, पर्य्यङ्कं विहाय दाडिम्ब-रस-सितोपल मिश्रितं शीतं सलिलमास्वाद्य, स्वमातुः स्वदेशस्य स्वपुत्रस्य स्वपत्न्याश्च सस्मरन्, बहिरलिन्दमागत्य निर्वाणप्रायं दीपं पुनः सञ्ज्वल्य, तत्रैवाऽऽसन्दीमेकामध्युवास। मनस्येव च चिन्तयितुमारब्धवान्, यद्—

अहह! किं करोमि? क्व गच्छामि? कथं पुनः पुण्यनगरं

---

कर्णकषायः = श्रोत्रकटुः। प्रहरिणाम् = यामिकानाम्।

चिन्तासन्तापेनापि = चिन्तनज्वालेनापि। उशीरव्यजनिकाम् = नल्दवातकरीम्। आन्दोलयन् = सञ्चालयन्। दाडिम्बरसेन = दाडिमद्रवेण, सितोपलेन = शर्करया, मिश्रितम् = मेलितम्। शीतम् = शिशिरम्। स्वमातुः संस्मरन्, "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति कर्मणि षष्ठी। एवमग्रेऽपि। बहिरलिन्दम् = प्रघाणम्। निर्वाणप्रायम् = समाप्तिं गच्छन्तम्। आसन्दीम् = वेत्रासनिकाम्, "उपान्वध्याङ्वसः" इति कर्मता।

---

उस शृङ्गाररस का विरोधी पहरेदारों का अप्रिय शब्द—जागो, जागो, बहुत अन्धेरी रात है—भी सुनाई पड़ा।

चूँकि महाराष्ट्रराज चिन्तारूपी सन्ताप से भी व्याकुल थे, इसलिये उन्हें नींद नहीं आई थी। उसके बाद महाराष्ट्रराज ने अपना पलङ्ग छोड़ दिया और खस के बने पंखे को झलते हुये; अनार के रस और बर्फ से मिले शीतल जल पीकर, अपनी माता, अपने देश, अपने पुत्र तथा अपनी पत्नी की याद करते हुए बरामदे पर निकल आये और वहाँ बुझती हुई दीपक की बत्ती को थोड़ा उसका कर वहीं एक कुर्सी पर बैठ गए। बैठकर मन ही मन सोचने लग गए—

"अहो! क्या करूँ! कहाँ जाऊँ! फिर पूना को कैसे लौटूँगा! स्वाग

प्राप्नोमि? कथं पुनः प्रतापदुर्ग-शिखरमारुह्य सस्यश्यामलां महाराष्ट्र-भूमिमवलोकयामि? कथं पुनस्तोरणदुर्ग-सम्मुखीनां मारुति-मूर्तिं प्रणमामि? कथं पुना राजदुर्गस्य-राजसिंहासन-मधिरोहामि? कथं पुनर्दैवज्ञ-वर्यस्य देवशर्मणश्चरणौ स्पृशामि? हन्त! तदाश्रमस्थाया गौरसिंह-भगिन्या विवाह-साहाय्यं वरमन्वेष्टुञ्च प्रतिज्ञातवानस्मि। हा! श्रूयते तदर्थमभिमतो बालसिंह एव रघुवीर-नाम्ना मदनुचर आसीत्! अहह!! योऽस्मै-द्भृत्यः स एव मया सतर्जनं निःसारितः। हा! कथं त्वत्पुत्र-वियोग-दुःखित ब्रह्मचारि-वेष महाराज-जयसिंहस्यान्यतमं मित्रं वीरेन्द्रसिंहं सान्त्वयिष्यामि? नूनं निर्दोष-रघुवीर-निर्वासन-पाप-

---

सस्यैः=धान्यतृणादैः, श्यामाम्=हरिताम्। तोरणदुर्गस्य सम्मुखीनाम्=पुरो भवाम्। मारुतिमूर्तिम्=अञ्जनेयप्रतिमाम्। वरम्=विवाह्यम्। तदर्थम्=तस्यै वरीकर्तुं। अभिमतः=इष्टः। सतर्जनम्=सतर्जनपूर्वकम्, सन्यक्कारम्। निर्दोषरघुवीरस्य, निर्वासनम्=निष्कासनम्, एव

---

दुर्ग के शिखर पर चढ़कर महाराष्ट्र देश की सस्य-श्यामला धरती को कैसे देखूँगा? तोरण दुर्ग के सामने प्रतिष्ठित हनुमान् जी की मूर्ति को कैसे प्रणाम करूँ? राजकिला में प्रतिष्ठित अपने राजसिंहासन पर फिर किस प्रकार बैठ पाऊँगा? दैवज्ञ-शिरोमणि श्रीमान् देवशर्मा जी के चरणों का स्पर्श कैसे कर सकूँगा? हन्त! उस आश्रम में रहने वाली गौरसिंह की बहन के विवाह में सहायता देने तथा उनके लिए योग्य वर ढूँढने की मैंने प्रतिज्ञा की है! हा! मैंने सुना है कि उसके जो मनोनीत वर बालसिंह थे वे ही रघुवीर नाम से मेरे यहाँ सेवक का काम कर रहे थे। हाय! जिसे अब खोजना पड़ेगा। उसी व्यक्ति को मैंने अपमान पूर्वक अपने घर से निकाल दिया। हा! प्रियपुत्र के वियोग से सन्तप्त, ब्रह्मचारी के वेष में वर्तमान महाराज जयसिंह के अन्यतम मित्र वीरेन्द्रसिंह को मैं किस प्रकार सान्त्वना दे सकूँगा? निश्चय ही निर्दोष रघुवीर के निकालने से हुये

स्यैव फलमेतत् यत्—स्वयमागत्य प्रत्यर्थिनां क्रोडे पतितोऽस्मि। प्रथम-साक्षात्कार एव अनादरं समनुभूतवानस्मि, परं ह्य एव च सन्देशं प्राप्तवानस्मि यद्—भूपति समायां यदुक्तं तत् सम्राजः कर्णशष्कुलिमस्पृशत; तस्यायमेव दण्डो यत्र पुना राजसभायामागन्तव्यमिति। अल्पीयस्यपि मे सेना नगराद्बहिरेव शिविरेऽस्ति। पञ्चषैरात्मीयैः कतिपयैरेव च भृत्यैः सहात्र निवसामि। अत्रत्यं वायुजलमननुकूलमिति छलेन महाराष्ट्रदेश-निवर्तनादेशाय प्रेषितेऽप्यावेदनपत्रे दिल्ली-कलङ्केन विषयान्तरे बहु लिखितमप्याज्ञासम्बन्धे किमपि नालेखि। विनैवाऽऽज्ञां यदि पलायेय; अथ गृह्येय चेद्यवन-हस्तेन

पापम्, तस्य। प्रत्यर्थिनाम् = शत्रूणाम्। प्रथमसाक्षात्कारे = आदिमदर्शने। अल्पीयसी = अतिन्यूना। विषयान्तरे = अन्यसम्बन्धे। पलायेय=गुप्त गच्छेयम्। गृह्येय=गृहीतो भवेयम्, यवनैरिति शेषः॥

पाप का ही यह परिणाम है कि आज मैं स्वयम् अपने शत्रु के पञ्जे में फँस गया हूँ। पहली भेंट में ही अपमान तो सहना ही पड़ा है, साथ ही यह सूचना भी कल मिल चुकी है कि मैंने राज-सभा में जो कुछ बातें रामसिंह से कहीं वे बातें सम्राट् औरंगजेब के कानों तक पहुँच चुकी था और इसलिए दिल्ली सम्राट् ने मुझे यही दण्ड दिया है कि मैं पुनः राज-सभा में नहीं आ सकता। जो कुछ थोड़ी सी सेना भी साथ थी वह भी नगर के बाहर ही शिविर में है। दो चार बन्धुओं तथा कुछ ही सेवकों के साथ यहाँ निवास कर रहा हूँ। यहाँ का हवा-पानी अनुकूल नहीं है—इस छल से यद्यपि मैंने दिल्ली सम्राट् के पास अपने महाराष्ट्र देश लौटने की अनुमति के लिए आवेदनपत्र भी भेजा, परन्तु इस दिल्ली कलङ्क ने अपने उत्तर पत्र में अन्य विषयों में बहुत कुछ लिख कर भी मेरे लौटने के बारे में तो कुछ भी नहीं लिखा है। यदि उसकी आज्ञा पाये बिना ही यहाँ से भाग चलूँगा तो पकड़े जाने पर दुष्ट यवन के हाथों से मृत्यु ही हो जाएगी। अहो!

ध्रुवो मृत्युः ! अहो ! दुरदृष्टम् !" यद् राघवाचार्य्य-संन्यासिनोऽपि न स्वीकृतं वचनम्—इति विचारयन्नेव निष्कुटककुटान्तरालेऽथे अस्पष्टाकृतिं कञ्चन पुरुषमद्राक्षीत्।

"चौरोऽयं लुण्ठकोऽयं सपत्नोऽयम्" इति विचारयन्, सपदि विकोशां छुरिकां हस्ते गृहीत्वोदस्थात्। तस्मिन् किञ्चित् समीपमायाते च ददर्श—यदेको भस्मोद्धूलित-शरीरो विश्लथत्-कच-कुल-समाच्छन्न-पृष्ठ-वक्षःस्थलो लम्बकूर्चो नीलरस-रञ्जित-वसनो वामकर-गृहीत-मृत्तिका-मालो यवन-भिक्षुरायात इति। अथोच्चैः सप्रौढि समपृच्छत्—कस्त्वं रे ! निशीथे ?—इति। स

निष्कुटकेषु=गृहारामेषु, ये कुटाः=वृक्षाः, तेषामन्तरालेषु। अस्पष्टाकृतिम्=अपूर्णावलोक्याकारम्।

सपत्नः=शत्रुः। विकोशाम्=नग्नाम्। भस्मोद्धूलितशरीरः=भूतिच्छुरितगात्रः। विश्लथत्कचकुलेन=विगलत्केशसमूहेन, समाच्छन्नम्=व्याप्तम्, पृष्ठवक्षःस्थलं यस्य सः। लम्बकूर्चः=दीर्घदाढिकः। नीलरसेन=नीलीद्रवेण, रञ्जितं वसनं यस्य स। वामकरगृहीतमृत्तिकामाल=दक्षेतरहस्तधारितमृत्स्नाक्षक। सप्रौढि = सगर्वम्। शुभ-

कितना बड़ा दौर्भाग्य है कि मैंने सन्यासी राघवाचार्य की बात भी नहीं मानी।" इस प्रकार वे विचार कर ही रहे थे कि वाटिका के वृक्षों की आड़ में एक पुरुष की झलक आई। उसे देख कर—

"यह चोर है, लुटेरा है, मेरा शत्रु है—" इस प्रकार सोचते हुए हाथ में खुला छूरा लेकर शिवाजी उठ खड़े हो गए। जब वह पुरुष थोड़ा सा नजदीक आया तो शिवाजी ने देखा कि वह एक फकीर आ पहुँचा था, उसके सम्पूर्ण शरीर में भस्म लिपा हुआ था, लटकती जटाओं से कन्धे, पीठ तथा वक्षःस्थल ढके हुए थे, उसकी दाढ़ी बहुत लम्बी थी, उसका वस्त्र नीले रङ्ग में रंगा था और बायें हाथ में मिट्टी की माला थी। इसके बाद जोरों से उसे डाँटते हुए शिवा जी ने उससे पूछा—

तु मन्दमाह—जनोऽयं कश्चित् शुभ चिन्तको भवतः, शनैरालपनी यमेतेन। तत स कश्चित् श्रुत पूर्व स्वरं कर्णे कुर्वन्नपि परिचेतुम क्षमः पुनरपृच्छत् नावगतं को भवान् ?—इति। स आह— "शुभ चिन्तकोऽय राघवाचार्य्यः संन्यासी"। तदाकर्ण्य महारा ष्ट्रपतिः प्रकाश प्रबलीकृत्य निपुणं निरीक्ष्य, कृत्रिमां जटां कूर्च श्मश्रुपुञ्जञ्च विलोकयन्, मन्द स्मित्वा, उवाच—अवधूत! धन्योऽसि, य एवमपि दयसे। किन्तु पिहितेषु द्वारेषु कुत आया तोऽसि ? स उवाच—प्राचीरमुल्लङ्घ्य, कष्टेनाऽऽयातोऽस्मि। एष उवाच—कथमद्य रूपान्तरम् ? स उवाच—नगरेऽस्मिन्

---

चिन्तकः = कल्याणाभिलाषी। परिचेतुम् = सस्तोतुम्। कृत्रिमाम् = प्रयत्नसम्पादिताम्। अवधूत ! = सन्यासिन् ! पिहितेषु = आवृतेषु। रूपान्तरम् = वेषान्तरम्। वैष्णवेषु=विष्णुभक्तेषु, ऊर्ध्वपुण्ड्रारामनामिभि

---

"अरे ! तुम कौन हो इस मध्यरात्रि में···?" उस फकीर ने मन्द स्वर म उत्तर दिया—'यह व्यक्ति आपके शुभचिन्तकों में ही अन्यतम है। आप धीरे से बात करें।" उसकी आवाज सुनने के बाद यद्यपि शिवाजी को यह आभासित हो चुका कि उसकी आवाज श्रुत पूर्व थी परन्तु वे उसे पूरी तरह नहीं पहचान सके और इसलिए उन्होंने उससे पूछा— "आप कौन हैं ? मैं आपको नहीं पहचान पाया।" उसने उत्तर दिया— "यह आपका शुभचिन्तक राघवाचार्य सन्यासी है।" यह बात सुनते ही शिवाजी ने दीपक की बत्ती उकसा कर अधिक प्रकाश में उन्हें पहचान लिया और उनकी बनावटी जटाओं, दाढ़ी तथा मूँछ देख कर मुस्कराते हुए उनसे कहा—"अवधूत ! आप धन्य हैं, क्योंकि इस रूप में भी आप मेरे ऊपर दया दिखला रहे हैं। किन्तु यह तो बतलाइए कि जब दरवाजे का फाटक बन्द है तो आप यहाँ आए कैसे ?" सन्यासी ने उत्तर दिया— "दीवार का उल्लङ्घन करके बहुत कष्ट से मैं यहाँ आ सका हूँ।" शिवा जी ने पुनः पूछा—"आज आपने वेश क्यों बदल लिया है ?"

वैष्णवेषु प्रपतति सर्वेषां दृष्टिः, न च म्लेच्छावधूतेषु—इति तद्वेषमेवावलम्बितवानस्मि।

तत उपविष्टयोरुभयोर्मुहूर्त्तानन्तरमेवमभूवन्नालापाः—

महाराष्ट्रराजः—कुतः समागच्छत्यार्य्यः ?

राघवाचार्य्यः—व्रत-साधनाय परितो भ्रमामि।

महा०—अपि जानाति कमपि कुशलवृत्तान्तं महाराष्ट्रदेशस्य भवान् ? अपि कुशलिनी मे जननी ? कुशलिनो वा जानपदाः ? अपि वा कुशली शम्भु-कुमारः ?

---

दण्डादिभिः परिचीयमानेषु। म्लेच्छावधूतेषु = यवनसाधुषु। तद्वेषम् = यवनसाधुनेपथ्यम्।

व्रतसाधनाय = अङ्गीकृतनियमनिर्वाहाय।

जानपदाः = देशवासिनः। शम्भुकुमारः = "सुम्भाजी"ति ख्यातो राजकुमारः। इतिवृत्तेषु लिखितम्—"सोऽपि सहैव पित्रा कारागारे बद्धः" इति। अत्र तु वैपरीत्येनोल्लिखित कथावैशिष्ट्यरक्षणायेति वेदितव्यम्।

---

संन्यासी ने उत्तर दिया—"इस नगर में वैष्णवों की ओर सबकी नजर दौड़ जाती है, किन्तु यवन-सन्यासी की ओर नहीं। इसलिए यवन-सन्यासी के वेष में ही मैं यहाँ आया हूँ।"

उसके पश्चात् दोनों बैठ गए और थोड़ी देर के बाद दोनों के बीच निम्न-लिखित रूप में वार्त्तालाप हुआ—

महाराष्ट्रराज—आप अभी कहाँ से आ रहे हैं ?

राघवाचार्य—अपने व्रत की सिद्धि के लिए इधर-उधर घूम रहा हूँ।

महाराष्ट्रराज—क्या आप महाराष्ट्र देश का कुशल-समाचार जानते हैं ? क्या मेरी माता जी सकुशल हैं ? क्या मेरे देश के निवासी सानन्द हैं ? क्या राजकुमार सुम्भा जी सकुशल हैं ?

राघ०— दीनबन्धो ! यादृशस्य महाशयस्य हस्ते महाराष्ट्रभूमि भरण-भार निक्षिप्तवानसि, तादृशस्य शासने न सम्भवत्यकुशल-वार्ताऽपि । जननी च कुशलिनी, श्रीमत एव कुशलाय व्रतमाचरन्ती, क्षामदेहा स्थण्डिलशायिनी हविष्याऽऽहारा च वर्वर्ति ।

महा०—हा मातः ! [ इति मुखं परावर्त्य कांश्चिदश्रु निर्दून्मुमुचत् ]

राघ०—महाराज ! न चिन्तनीयं किमपि ! कुशली कुमार शम्भुवीरः, तुरगं चालयन् स्वदर्शनेन प्रजा रञ्जयति । ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे मन्दिरे मन्दिरे च परमात्मा समाराध्यते ।

महा०—अपि मम कुशलाय परमेश्वर आराध्यते ?

---

महाराष्ट्रभूमेः, भरणभारम् = रक्षणधुराम् । अकुशलवार्त्ताऽपि = अमङ्गलकथाऽपि । क्षामदेहा = कृशकाया । स्थण्डिलशायिनी = भूमिस्वापिनी । हविष्याहारा = पायसभोजना ।

---

राघ०—दीनबन्धो ! जिस सज्जन के हाथों में आपने महाराष्ट्रदेश के संरक्षण का भार दिया है उस व्यक्ति के शासनकाल में अकुशलता की तो कोई बात ही नहीं हो सकती । आपकी माताजी भी सकुशल हैं और आपके कुशल की कामना से जमीन पर सोती हुई तथा हविष्याद्य भोजन करती हुई जो व्रत कर रही हैं उससे उनका शरीर दुर्बल हो गया है ।

महा०— हा मात !

[ यह कहकर मुँह फेरकर शिवाजी ने कुछ आँसू बहाए ]

राघ०—महाराज ! चिन्ता की कोई बात नहीं है । सकुशल राजकुमार शम्भाजी घोड़ा फेरते समय अपने दर्शन से प्रजा को आनन्दित कर रहे हैं । गाँव-गाँव में, घर घर में और मन्दिर-मन्दिर में ( आपके कुशल की कामना से ) परमात्मा की आराधना की जा रही है ।

महा०—क्या मेरे कुशल के लिये लोग परमेश्वर की आराधना भी कर रहे हैं ?

राघ०—वीरवर! भवत्प्रजासु के न भवन्तं प्राणाधिकं मन्यन्ते? सम्प्रति क्वचन महारुद्र-मुद्रया रुद्रोऽभिषिच्यते, क्वचन सहस्रैर्गृहीत-ब्रह्मचर्य्याणां ब्राह्मणानां समन्त्र–सम्पुट–चण्डीपाठैर्भगवती दुर्गाऽऽद्रियते, क्वचिच्च ग्रह-मातृकादि-मण्डल-मण्डितस्य मण्डपस्याधस्ताद् वेदमन्त्रैर्भगवान् बृहद्भानुर्हविषा हूयते। किं ब्रवीमि? यदि अल्पमपि भवदमङ्गलं श्रूयेत महाराष्ट्रैः तन्मन्ये कोपकृशानु हेतिभिरखिल भूमण्डलं भस्मसात् क्रियेत।

महारुद्रमुद्रया = महारुद्रयागेन। गृहीतब्रह्मचर्याणाम् = धारिताष्टविधमैथुनत्यागनियमानाम्। समन्त्रसम्पुटं यथा स्यात्तथा चण्डीपाठैः = सप्तशतीमन्त्रजपैः। प्रतिसप्तशतीमन्त्रमाद्यन्तयोर्मन्त्रविशेषोच्चारणपूर्वकं सप्तशतीपाठः सम्पुटपाठः। दुर्गा = दुर्गतितारिणी महामाया। ग्रहाणाम् = सूर्यादीनाम्, मातृकाणाम् = गौर्यादिषोडशसङ्ख्याकानाम्, घृतमातृका चतुष्षष्टियोगिनी-वशोर्धाराणाम्, आदिना, पञ्चलोकपालदशदिक्पाल क्षेत्रपालादीनाञ्च, मण्डले = स्थाने, मण्डितस्य = भूषितस्य। मण्डपस्य = तृणादिनिर्मित परिमित, सद्वारादिसङ्ख्यासवलितस्यान्तर्गृहस्य। बृहद्भानुः = दहनः। हविषा = हवनीयेन वस्तुना। हूयते = तर्प्यते। कोप एव कृशानुः = वह्निः, तस्य, हेतिभिः = ज्वालाभिः। भस्मसात् = दग्धम्।

राघ०—वीरवर! आपकी प्रजा में कौन ऐसा व्यक्ति है जो आपको अपने प्राणों से भी बढ़कर नहीं मानता? कहीं महारुद्र-मुद्रा से रुद्राभिषेक किया जा रहा है, कहीं असंख्य ब्राह्मण ब्रह्मचारियों द्वारा मन्त्रसम्पुटित सप्तशती पाठ से भगवती दुर्गाजी की आराधना की जा रही है और कहीं ग्रह तथा षोडश मातृकाओं के मण्डलों से मण्डित मण्डप के भीतर वेदमन्त्रों के उच्चारण से भगवान् अग्निदेव को हव्य पदार्थ की आहुति दी जा रही है। मैं तो कहता हूँ कि यदि महाराष्ट्र देशवासी आपके कुछ भी अमङ्गल की सूचना पायेंगे तो उनकी क्रोधाग्नि की धधकती ज्वाला से यह समस्त भूमण्डल भस्मसात् कर दिया जाएगा।

महा०—[ किञ्चिदानन्दित इवाङ्गान्यान्दोल्य ] भगवन् ! का क्षमता वराकस्यैतस्य ममामङ्गलमाचरितुम् ? परं भवतो वचनमनङ्गीकृत्य समायातोऽस्मीति तत्फलमेव भुञ्जे।

राघ०—तत्किं दिल्लीश्वरेण तु कृतसन्धिः श्रीमान् ?

महा०—किमिव लज्जयते मां स्वामी ? सर्वं विदितमार्य्याणाम्।

राघ०—अत्रावस्थानं न रोचेत चेदद्यैव प्रतिष्ठताम्। को नाम वागुरया समीरणमिव भवन्तं रोत्स्यति ?

महा०—मन्ये कोऽप्युपाय उद्भावित. पलायनस्य !

---

आन्दोल्य = सञ्चाल्य। क्षमता = शक्तिः। भुञ्जे = अनुभवामि। लज्जयते = लज्जित कुरुते।

प्रतिष्ठताम् = प्रस्थानं क्रियताम्, भवानिति शेषः। वागुरया = मृगबन्धन्या। समीरणमिव = वायुमिव। उपमाविशेषः।

---

महा०—[ कुछ प्रसन्न जैसी मुद्रा में अपने अङ्गों को हिलाकर ] भगवन् ! इस दुष्ट यवन में कहाँ से इतनी शक्ति आयेगी कि यह मेरा अमङ्गल कर सकेगा। फिर भी आपकी बात न मानकर जो मैं यहाँ आ गया उसी का यह फल भोगना पड़ रहा है।

राघ०—अब क्या ! आप ने तो दिल्लीसम्राट् से सन्धि कर ही ली है।

महा०—आप मुझे इतना लज्जित क्यों कर रहे हैं ? आप तो सब कुछ जानते ही हैं।

राघ०—यदि यहाँ रहने का मन न करे तो आज ही आप चल दें। जिस प्रकार वागुरा ( जालविशेष ) से वायु को कोई नहीं रोक सकता उसी प्रकार आपको कौन रोक सकता है ?

महा०—मैं समझता हूँ कि आपने भगने का कोई उपाय सोच लिया है ?

राघ०—किमज्ञातमार्य्याणाम् ?

महा०—किमिति ?

राघ०—भगवन् ! अनायासेनायान्धतमसे गृहीत-यवन-भिक्षु-वेषो मया सह निःसरतु श्रीमान् !

महा०—ततः ।

राघ०—यद्यपि नगरस्यास्य परित उच्चा भित्तिरस्ति, तथाऽपि पूर्वत एकत्र महान् सशङ्कुग्रन्थि-वंश एकः स्थापितोऽस्ति, तदवलम्ब्य कुड्योल्लङ्घनमनायाससिद्धं महाराष्ट्रवीराणाम् । परतश्च शृङ्खलैका संलम्बते, तदालम्ब्य त्रुटिमात्रेण भूमिं स्प्रक्ष्यति। तत्र वृक्षच्छायायां निलीन एकोऽश्वः । तेन क्षणेन किञ्चिद् गत्वैव

उच्चा = उन्नता । भित्तिः = कुड्यम् । शङ्कुग्रन्थिभिः सहितो वंशः सशङ्कुग्रन्थिवंशः = अवमीकृतो वेणु । स्थापितः = रक्षितः । कुड्यस्य, उल्लङ्घनम् = उत्प्लवनम् । शृङ्खला = दाम लौहम् । त्रुटिमात्रेण = निमेष-

राघ०—क्या आप इस चीज को जानते नहीं ?

महा०—जी नहीं, जरा बतलाएँ तो

राघ०—भगवन् ! आज ही इस घने अन्धकार में यवन भिक्षु का वेष धारण कर अनायास ही आप मेरे साथ यहाँ से निकल पड़ें ।

महा०—उसके बाद ?

राघ०—यद्यपि इस नगर की चारों तरफ बड़ी ऊँची दीवार खड़ी है तथापि पूरब दिशा मे एक खूँटीदार बाँस सुरक्षित है और उसी के सहारे आप अनायास ही दीवार को लाँघ सकते हैं । दीवार की दूसरी तरफ एक लोहे की जञ्जीर लटक रही है, उसके सहारे आप क्षणभर में ही नीचे उतर जाएँगे । वहीं पेड़ की छाँह में एक घोड़ा छिपाया हुआ है । उस घोड़े पर सवार होकर थोड़ी दूर चलने के बाद ही आप देखेंगे कि यमुना में एक

द्रक्ष्यते यत्--कलिन्द-तनयायामेकाऽल्पीयसी नौकाऽस्ति, तस्यां क्षेपणीहस्ता दश वाहका· प्रभुमपेक्षन्ते। ते च त्वरया मथुरां प्रापयिष्यन्ति। ततस्तु येन केनापि पथा सुखेन भवान् महाराष्ट्र-देशं प्रयास्यति-इति।

महा० अत्यन्त प्रशंसामि भवदुद्योगम्, किन्तु मन्यतां यदि कश्चन मार्गे प्रहरिषु परिचिनुयात्?

राघ०—एतस्मिन् पथि पञ्चषा आस्माकीना महाराष्ट्रा एव कलित-यवन-वेषा प्रहरितां प्राप्ताः सन्ति। ते च श्रीमत शुभं चिन्तयन्ति।

महा० अथ कोऽपि प्राचीरोल्लङ्घन-समये परिचिनुयात्, अन्तरायञ्च विदध्यात्?

राघ०--महाराज! तस्मिन्नेव स्थाने अन्धकारे द्वादश महाराष्ट्-

---

पतनद्वयमानेण समयेन। कलिन्दतनयायाम् = यमुनायाम्। क्षेपणीहस्ता·= नौकादण्डकराः। वाहका = कर्णधाराः। प्रहरिषु = यामिकेषु। पञ्च वा षड् वा पञ्चषा। परिचिनुयात्=विजानीयात्। अन्तरायं=विघ्नम्।

---

डोंगी लगी है और उसपर पतवार लेकर दस मल्लाह आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे लोग आपको शीघ्र ही मथुरा पहुंचा देंगे। उसके बाद आप किसी भी रास्ते से सुखपूर्वक महाराष्ट्रदेश जा सकेंगे।

महा०—आपके द्वारा उपर्युक्त उपाय की तो मैं बहुत ही प्रशंसा करता हूँ। परन्तु मान लें कि रास्ते में किसी रक्षक ने मुझे पहचान लिया, तब क्या होगा?

राघ०—रास्ते में तो यवनों के वेष में हम लोगों के पाँच-छः मराठे ही प्रहरी का काम कर रहे हैं और वे आपके शुभचिन्तक ही हैं।

महा०—अच्छा, यदि दीवार लाँघते (लाँघते) समय कोई मुझे पहचान ले और फिर विघ्न करने लग जाय?

राघ०—महाराज! वहाँ भी कपटवेष में बारह खड्गधारी मराठे वीर

भटा खड्गहस्तारछद्मवेषिणोऽन्धतमसाऽऽच्छन्नाश्च सन्ति। यदि कश्चिद् विघ्नमाचरेत्, तस्य ध्रुवं मरणम्।

महा०—अथ परतो यमुना मार्गे चेदाक्रम्ये कैश्चित् ?

राघ०—न भयम्, न भयम्! अस्माभिः शास्तिखान युद्धे बहूनां यवन-भटानां पट्टिकाः खड्गा वीरता वस्त्राणि शिरोवेष्टनानि अधोवसनानि उपानह कटिबन्धनानि च बलाद् गृहीतानि, तैरेव कलित यवन वेषाणां स्वाध्यक्ष-तदध्यक्षादि सहितानां गुप्तसेनैकाऽस्ति। तस्या एव शतशो भटा पथि परितो गूढं भ्रमन्ति। सर्वे ते श्रीमद्रक्षकाः।

महा०—नौकाऽऽरोहसमये चेदापत्तिः ?

---

छद्मवेषिण = परिवर्तितनेपथ्या । ध्रुवम् = अवश्यम् । मरणम् = मृत्यु । आक्रम्ये = आक्रान्तो भवेयम्। कर्मवाच्यम्।

कलितयवनवेषाणाम् = धारितम्लेच्छनेपथ्यानाम्। गुप्ता = प्रच्छन्ना।

---

घने अन्धकार मे छिपे हैं। यदि कोई उपद्रव करने लगेगा तो उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है।

महा०—अच्छा यदि उसके बाद यमुना जाते समय किसी ने आक्रमण कर दिया तो ?

राघ०—भय का कोई प्रश्न नहीं। शाइस्ता खाँ के साथ हुए युद्ध में हम लोगों ने जो बहुत से यवन योद्धाओं के युद्धोपकरण पट्टियाँ, खड्ग, कवच, पगड़ियाँ, कछनियाँ, जूते और कमरबन्द—छीन लिये थे उन्हीं से सुसज्जित यवन वेश भूषा में अपने सेनापति तथा शाइस्ता खाँ के वशीकृत सेनापति आदि से सम्पन्न एक गुप्त सेना है। उस सेना के बहुत से वीर गुप्तरूप में रास्ते में इधर-उधर घूम रहे हैं। वे सब तो आपके ही रक्षक हैं।

महा०—किन्तु यदि नाव पर चढ़ते समय किसी तरह की परेशानी आई तो ?

राघ०—वाहका अपि योद्धारः, शस्त्रपूर्णा च नौका। यमुनातटेऽपि कपटभिक्षुका भावका सजृम्भारम्भं स्वापमिवानुकुर्वन्ति।

महा०—केचनाभिज्ञाय चेत् पथि तरणिगतिं रुन्ध्युः ?

राघ०—तरणि-तनूजामभितस्तटेऽपि भावकाः पत्तयः सादिनश्च सतर्काः सन्ति। तरणिरोधं कोऽपि विधातुं पारयेच्चेत्, तरणि-रोधमपि विधातुं पारयेत्।

महा०—मथुरायाञ्चेदापत्तिः ?

---

शस्त्रपूर्णा = आयुधभरिता। कपटभिक्षुका = छद्मगृहीतयाचकवेषाः। सजृम्भारम्भम् = सगात्रविनामप्रारम्भम्। स्वापमिव = शयनमिव। अनुकुर्वन्ति = विडम्बयन्ति। यवनैः साकं यादृशं सम्बन्धा इति भाव।

अभिज्ञाय = परिचीय, तरणिगतिम् = नौकामार्गम्। रुन्ध्युः = प्रतिबध्नीयुः।

तरणितनूजाम् = सूर्यतनयाम्, यमुनाम्। भावका = भवदीयाः। पत्तयः = पदातयः। तरणिरोधम् = नौकाया प्रतिबन्धम्। तरणिरोधम् = सूर्यप्रतिरोधम्। मिथ्याध्यवसितिरलङ्कार।

---

राघ०—मल्लाहों के रूप में उस नाव पर रहनेवाले भी तो वीर ही हैं। साथ ही नाव भी शस्त्रास्त्रों से परिपूर्ण है। यमुना के किनारे भी भिक्षुकों के कपट भेष में आपके ही वीर जम्भाई लेते हुए निद्रा का आवाहन सा कर रहे हैं।

महा०—परन्तु यदि हम लोगों को पहचान कर कुछ यवन वीर मझधार में नाव को रोकें तो ?

राघ०—यमुना के दूसरे तट पर भी आपकी सेना तथा आपके घुड़सवार सतर्क हैं। यदि आपके नाव को कोई रोक सकेगा तो वह सूर्य की गति को भी रोक ले सकता है (अर्थात् जिस प्रकार सूर्य की गति को कोई नहीं रोक सकता उसी प्रकार आपके नाव की गति को भी कोई नहीं रोक सकता)।

महा०—अच्छा यदि मथुरा जाने पर वहाँ कोई आपत्ति आ पड़ी तो क्या होगा ?

राघ०—नैवम्, मथुरायां सहस्रशो भावत्का वैष्णव-वेषेण सञ्चरन्ति।

महा०—[ क्षणं विचार्य ] अथ मामकानां शिबिरस्थानां दिल्ली-नगरे चेतस्ततोऽधिवासितानां का दशा भवेत्?

राघ०—महाराज! भवन्तमलभमानो दिल्लीश्वरस्तान् गृहीत्वाऽपि त्यजेत्!

महा०—नैवं सम्भाव्यते क्रूरतमेऽस्मिन्, यो भ्रातॄनप्यवधीत्, पितरञ्च न्यग्रहीत्।

राघ०—महाराज! किमप्यस्तु, परन्तु यदि नाद्य पलायते भवान्, तदा श्वो गृहाद् बहिर्गमनमपि भवतो निषिद्धं भवेत्।

---

मामकानाम् = मत्सम्बन्धिनाम्। इतस्ततः = यत्र तत्र। अधिवासितानाम् = कारितनिवासानाम्।

भ्रातॄन् = सहोदरान्। अवधीत् = अमारयत्। पितरम् = उत्पादयितारम्। न्यग्रहीत् = कारासदने स्थापितवान्।

---

राघ०—नहीं नहीं, मथुरा में भी आपके हजारों वीर वैष्णवों की वेश-भूषा में घूम रहे हैं।

महा०—[ क्षण भर सोचने के बाद ] किन्तु ऐसा करने पर शिविर में तथा यत्र तत्र दिल्ली में रहने वाले मेरे साथियों की क्या दशा होगी?

राघ०—महाराज! आप जब नहीं मिलेंगे तब तो दिल्ली सम्राट् औरङ्गजेब पकड़ने के बाद भी उन सबको छोड़ ही देगा।

महा०—अपने भाई को भी मार डालने वाले और अपने पिता को भी कैद में रखनेवाले इस क्रूर यवनाधम से ऐसी आशा नहीं की जा सकती है।

राघ०—महाराज! जो कुछ भी हो, किन्तु यदि आप आज यहाँ से नहीं भाग निकलेंगे तो कल तो इस घर से भी बाहर निकलने में प्रतिबन्ध लग जाएगा।

महा०—अपि सत्यमिदम् ?

राघ०—अतिसत्यम् !

महा०—आः ! केनेव योगबलेन ज्ञातवानसि ? [ क्षण विचिन्त्य ] आचार्य्य ! भवादृशे शुभचिन्तके साहाय्यं विदधति; कारागारस्थोऽपि स्वातन्त्र्यमासादयिष्यामि । किन्तु आश्रितान् मृत्युकपोले कवलवन्निपात्य नहि जिजीविषामि । किञ्च, अधुनैवापसृतेष्वस्मासु कदाचन अस्मद्दोषमेव दिल्लीश्वर-जयसिंहादयः प्रकटयेरन्—यत् "सम्मानयितुमुत्सुकमपि त्यक्त्वा, धार्ष्ट्येनैव पलायितः" इति तद्भवतु नाम कश्चन प्रकटोऽपराधो दिल्लीश्वरस्य, ततो यास्यामः । न हि महाराष्ट्रवीरा वराकैरेतैः सिंहा इव शशकैर्निग्रहीतुं शक्यन्ते । तावद्यदि क्लेशो न स्यात्; तत् सूच्यन्तामस्म-

शुभचिन्तके = कल्याणानुध्यायके । विदधति=कुर्वति । मृत्युकपोले = यममुखे । कवलवत् = ग्रासवत् । जिजीविषामि = प्राणितुमिच्छामि ।

अपसृतेषु = पलायितेषु । सम्मानयितुम् = सत्कर्तुम् । उत्सुकम् = उत्कम् । धार्ष्ट्येन = धृष्टतया । सिंहा इव शशकैरित्युपमा । निग्रहीतुम् = रोद्धुम् । सूच्यन्ताम् = बोध्यन्ताम् ।

महा०—क्या यह सत्य है ?

राघ०—सत्य क्या, अत्यन्त सत्य है ।

महा०—आः ! यह बात आप ने किस योगशक्ति से जान ली है ? [ थोड़ी देर सोचकर ] आचार्य ! आप जैसे शुभचिन्तक की सहायता यदि मिलती रहेगी तो कैद किये जाने पर भी मैं छुटकारा पा लूँगा । किन्तु अपने आश्रित व्यक्तियों को मौत के मुँह में कौर की तरह सहसा फेंककर मैं जीने की इच्छा नहीं रखता । और भी, यदि अभी मैं भग जाता हूँ तो मौका आने पर औरङ्गजेब तथा जयसिंह आदि भी मुझे ही दोषी ठहरायेंगे और कहेंगे—"दिल्लीसम्राट् तो सम्मान करना चाहते थे पर स्वयम् वहाँ से भग आए । अतः पहले दिल्लीसम्राट् का कोई प्रकट अपराध हो जाय, पीछे हम लोग यहाँ से चल पड़ेंगे । जिस प्रकार खरहे सिंहों को नहीं पकड़ सकते

त्पूजक-पाचक-लेखक-पाठकादयः सपदि महाराष्ट्रदेशाभिमुखं प्रस्थातुम्।

राघवा०—[ उच्छ्वस्य ] धन्यो महाराजः ! य एवं प्राणानप्यगणयन् करुणया आत्मीयानां कुशलं चिन्तयति। एवमेव धर्मो राज्ञां यत् स्वीयानां प्रतिपालनं सम्माननं सदा कुशलचिन्तनञ्च। भृत्या हि, रोदं रोदं वक्षो घ्नतीं मातरम्, विलुलितैः केशैर्भूमि-विलुण्ठनैश्च रोदसी रोदयन्ती पत्नीम्, तावा-तातेति कलरवैर्मूर्च्छयतः पटान्तमाकर्षतः पृथुकांश्च तृणवद्विहाय स्वामिकार्य्यं साधयितुं स्वदेहमर्प-

अगणयन् = अचिन्तयन्। आत्मीयानाम्=स्वेषाम्। सम्माननम् = सत्करणम्। कुशलचिन्तनम् = शिवानुध्यानम्। रोदं रोदम् = रुदित्वा रुदित्वा। वक्षः = उरः। घ्नतीम् = ताडयन्तीम्। विलुलितैः = विशृङ्खलितैः। भूमिविलुण्ठनैः = धरणीपरिवर्त्तनैः। रोदसी = द्यावापृथिव्यौ। कलरवैः = मधुरभाषणैः। मूर्च्छयतः = मोहयतः। पटान्तम् = वसन-

उसी प्रकार महाराष्ट्र के वीरों को ये नीच यवन नहीं पकड़ रख सकते। हाँ, यदि कोई कठिनाई न हो तो पहले मेरे पूजक, पाचक, लेखक तथा पाठक आदि को यहाँ से शीघ्र महाराष्ट्र देश की यात्रा करने की सूचना दे दें।

राघ०—[ लम्बी साँसें भरकर ] आप अपने प्राण की उपेक्षा करके अपने आश्रितों के कुशल की इस प्रकार जो चिन्ता रखते हैं इसके लिए आपको धन्यवाद है महाराज! राजाओं का यही धर्म है कि वे अपने आश्रितों के पालन-पोषण, सम्मान तथा उनके कुशल की चिन्ता इसी प्रकार रखें। यह सेवक रो रोकर छाती पीटती हुई अपनी माता को, बिखरे बालों वाली तथा जमीन पर लोटने से जमीन से आसमान तक को रुलानेवाली अपनी प्रियतमा को और अपनी तुतली बोली से मोहित करनेवाले तथा धोती पकड़कर अपनी ओर खींचनेवाले अपने बच्चों की तृणवत् उपेक्षा करके राजाओं के कार्य-साधन के लिये अपने शरीर को भी अर्पित कर देता है। अतः ऐसे नि:स्वार्थ सेवक की कृतज्ञता का स्वीकार करना राजाओं का

यन्ति। तत्कृतज्ञता-स्वीकारो हि राज्ञां प्रथमो धर्मः—इति धन्यो भवान् राजधर्म-परतन्त्रो दयानिधिः !!

महा०—[ निःश्वस्य पटान्तेनाश्रूणीवापसार्य्य ] आचार्य्य ! वहू-कम् ! मा स्म स्वयं खिन्नमधिकं खेदय, मादृशः कृतघ्नो दुरवापः।

राघवा०—किमिति ? किं कदाऽपि कोऽपि निष्कपट-दास-स्तिरस्कृतो वा ?

महा०—धिङ् माम् ! तथा तिरस्कृतवानस्मि प्राणरक्षकमेकम्; यत् श्रूयते स मम तिरस्कारग्लानः प्राणांस्त्यक्तवान्—इति। आधिरयं ममापि प्राणैः सहैव शान्तिमेष्यति।

---

प्रान्तम्। पृथुकान् = बालान्, राजधर्मस्य, परतन्त्रः = अस्वाधीनः।
कृतघ्नः = कृतविस्मर्ता। दुरवापः = दुर्लभः।
निष्कपटदासः = निश्छलभृत्यः।
तिरस्कारेण, ग्लानः = क्षीणहर्षः। आधिः = मानसिकव्यथा।
शान्तिम् = शमम्। प्राणैः सह = जीवनेन साकम्।

---

प्रथम धर्म है। हे दयानिधे ! इस राजधर्म पारतन्त्र्य के लिये आप धन्यवाद के पात्र हैं।

महा०—[ लम्बी साँसें भरकर अपनी धोती से आँसू पोंछते हुए ] आचार्य ! अब बस कीजिये। मेरे खिन्न हृदय को अब अधिक खिन्न न कीजिये। मुझ सा कृतघ्न और कोई नहीं मिलेगा।

राघ०—ऐसा क्यों कह रहे हैं ? क्या आप ने किसी निश्छल सेवक का भी कभी तिरस्कार किया है ?

महा०—मुझे धिक्कार है ! अपने प्राणरक्षक व्यक्ति का भी मैंने इस तरह तिरस्कार किया है कि सुना जाता है कि उसने तिरस्कार की ग्लानि से ही आत्महत्या कर ली। यह व्यथा मेरे मन से भी प्राणों के साथ ही जा सकती है।

राघ०—[ग्रीवां परिवर्त्य कानिचिदश्रूण्युन्मुच्य] अपि महाराजस्तस्य नाम कथयिष्यति ? यथा योगबलेन चिन्तयेयं स जीवति न वेति।

महा०—रघुवीरसिंहः।

राघ०—[आत्मना रोमाञ्चं गद्गदस्वरञ्च गोपयन्, ध्यानच्छलेन क्षणं तूर्ष्णीं स्थित्वा धैर्यमाधाय] दीनबन्धो ! जीवति रघुवीरसिंहः।

महा०—जीवतु जीवतु चिरं जीवतु अथ किं करोति ? क्वास्ति ? स्मारं स्मारं मम तिरस्कारं मामपवदति वा ?

राघ०—[कर्णौ पिधाय] शान्तं पापम् ! नहि तादृशानि कुलीनानामपत्यानि प्रभुमपवदन्ति। तानि हि देहं पातयन्ति; न तु

रोमाञ्चम् = पुलकम्। ध्यानच्छलेन=चिन्तनव्याजेन। सधृत्य = भूत्वा।

अपवदति=गर्हयति। निन्दा करोति वा इति प्रश्नः।

राघ०—[मुँह मोड़कर थोड़ा आँसू बहाकर] क्या श्रीमान् उस सेवक का नाम मुझे बतलायेंगे ताकि मैं योग-बल से यह जान सकूँ कि वह जीवित है या नहीं।

महा०—उसका नाम रघुवीर सिंह था।

राघ०—[अपने रोमाञ्च तथा गद्गद स्वर को छिपाते हुए ध्यान के छल से कुछ देर तक मौन रह कर पुनः धैर्य धारण करके] दीनबन्धो ! रघुवीर सिंह अभी जीवित ही हैं।

महा०—हाय ! वह चिरकाल तक जीवित रहे ! अच्छा, यह तो आप बतलाएँ कि वह इस समय क्या कर रहा है, कहाँ है, और मेरे द्वारा किए गए अपने अपमान का बार बार स्मरण करके मेरी निन्दा भी कर रहा है क्या ?

राघ०—[कान मूँद कर] राम, राम ! इस तरह के उच्चकुल में सन्तान कभी अपने स्वामी की निन्दा नहीं करते। इस तरह के कुलीन

प्रभुभक्तिम्। प्राणांस्त्यजन्ति, न च स्वामि चरणे अनुरागम्। स एव तिरस्कृतोऽपि निर्वासितोऽपि प्रभूणां कुशलायैव व्रतमाचरति। [इति कथयत एव राघवाचार्यस्य स्वरभङ्गो भाव विकारश्च प्रकटो बभूव]।

[महाराष्ट्रराज सतर्कं तन्मुखमैक्षिष्ट]

राघ०—[सधैर्यम्] महाराज! अस्मिन्ननुरक्तायाः कस्याश्चन वीर-बालाया अवस्थां संस्मृत्य खिन्नं मे चेतः।

महा०—का सा?

राघ०—प्रभो सहचरस्य गौरसिंहस्य भगिनी।

महा०—अहह! स्मरामि। किमवस्था सा बाला सौवर्णी?

---

पातयन्ति = नाशयन्ति। अनुरागम्=प्रेम। स्वरभङ्ग -कण्ठे बाष्पावरोधेन वैस्वर्यम्।

अनुरक्तायाः = कृतप्रणयायाः। का अवस्था यस्याः सा किमवस्था।

---

सेवक अपने शरीर को छोड़ दे सकते हैं किन्तु अपनी राजभक्ति को नहीं। अपने प्राण छोड़ सकते हैं पर आपके चरणों में अपने अनुराग को नहीं। आपके द्वारा तिरस्कृत तथा निष्कासित होने के बावजूद भी आपके कुशल के लिए ही वह व्रत कर रहा है।

[इतना कहते कहते ही राघवाचार्य का स्वरभङ्ग तथा भाव विकार प्रकट हो गया।]

[उसके बाद महाराष्ट्रराज ने सावधान होकर उसके मुँह पर अपनी दृष्टि डाली]

राघ०—[धैर्य के साथ] महाराज! उस रघुवीर सिंह में अनुरक्त किसी वीर युवती की स्थिति का स्मरण कर मेरा मन बहुत खिन्न हो रहा है।

महा०—कौन सी वह युवती है?

राघ०—आपके सहचर गौरसिंह की बहन।

महा०—अहा हा! मुझे भी उसकी याद आ रही है। अभी उस बच्ची सौवर्णी की कैसी स्थिति है?

राघ०—आर्य ! आकर्ण्य रघुवीरं नष्टम् ; सा रहस्तडागतटमासाद्य, मुक्तकण्ठं चिरं रुदित्वा, शुष्ककाष्ठान्यादाय, चितां ज्वलयित्वा, आत्मानं भस्मसात् कर्तुं प्रवृत्ता ।

महा०—आः किमुच्यते ? ततः ।

राघ०—ततो मन्दिर-पूजकस्य पुत्री पुत्रवधूश्चाकस्मात्तत आगते ता तथाभूतामालोक्य दृढं गृहीत्वा सारस्वरेण "धावत भोः धावत ! सौवर्णी स्वात्मानं दहति"—इति करुण-कोलाहलमकुरुताम् ।

महा०—ततः ?

राघ०—ततो झटिति मन्दिर-पूजको देवशर्मा, अपरे च स्खलन्तो निपतन्त श्लथद्वसनास्त्वरित-निश्वासास्तत्र समागताः ।

---

रहः = एकान्ते । आसाद्य = प्राप्य । मुक्तकण्ठम् = उच्चैः ।
स्खलन्तः = पतितुं प्रवृत्ताः । श्लथद्वसनाः = गलद्वस्त्राः । त्वरितनिश्वासाः = द्रुतश्वासाः ।

---

राघ०—आर्य ! जब उसने यह सुना कि रघुवीर सिंह ने आत्महत्या कर ली तब वह एकान्त रूप में तालाब के किनारे आकर, मुक्तकण्ठ से चिर काल तक करुण क्रन्दन करने के बाद सूखी लकड़ियों की चिता बनाकर, उसमें आग लगा कर जलने को तैयार हो गई थी ।

महा०—हाय ! ऐसी स्थिति आ गई थी क्या ? अच्छा तो बाद में क्या हुआ ?

राघ०—उसी बीच मन्दिर के पुजारी की बेटी तथा उसकी बहू अकस्मात् वहाँ आ गई और धधकती चिता में जलने के लिये उद्यत सौवर्णी को जोरों से पकड़ कर चिल्लाने लगीं—"दौड़िए दौड़िए ! सौवर्णी तो आत्मदाह कर रही है ।"

महा०—उसके बाद ?

राघ०—उसके बाद मन्दिर के पुजारी देवशर्मा जी तथा अन्यान्य लोग भी शीघ्र ही दौड़कर वहाँ पहुँच गए ।

महा०—ततः ?

राघ०—ततः समालिङ्ग्य, क्षणं रुदित्वा, देवशर्मणा कथितम्—धत्से ! वेद्मि—यत् त्वं शून्यं जगत् पश्यसि। आत्मानञ्च भुवो भारभूतमाकलय्य विमानमिव भासमानं बृहद्भानुमारुह्य पत्या समं वैकुण्ठं जिगमिषसि। कथं न स्याः ? कन्यारत्नं हि भवती क्षत्रियाणाम्। परमत्र ते भ्रमः। सम्यग् ग्रहदशामवलोक्य रात्रावेव गणितवानस्मि। यं सुरलोकेष्वन्वेष्टव्यं मन्यसे, स वसुधामेवालङ्करोति। अचिरेण स आत्मानं प्रकटयिष्यति। तदा स त्वां कथा-

---

शून्यम् = रिक्तम्। भारभूतम् = भारायमाणम्। विमानमिव= आकाशयानमिव। भासमानम्=प्रज्वलन्तम्। बृहद्भानुम्=वह्निम्। आरुह्य = उपरि स्थित्वा। वैकुण्ठम् = वैष्णवं धाम। जिगमिषसि = गन्तुमिच्छसि। भ्रमः = भ्रान्तिः। ग्रहदशाम् = खेचरस्थितिम्। सुरलोकेषु = स्वर्गादिषु। अन्वेष्टव्यम् = अन्वेषणीयम्। अलङ्करोति= भूषयति।

---

महा०—उसके पश्चात् ?

राघ०—उसके पश्चात् गले लगा कर क्षण भर रोने के बाद देवशर्मा जी ने सौवर्णी से कहा—बेटी ! मैं समझ रहा हूँ कि तुझे यह सारा संसार सूना सा दिखाई पड़ रहा है और इसलिये तुम अपने को इस पृथ्वी पर भार सा समझ कर प्रज्वलित अग्नि रूपी विमान में प्रवेश कर अपने (मनोनीत) पति देव के साथ स्वर्ग जाना चाह रही हो। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न कन्यारत्न होने के कारण तुम्हारे लिये ऐसा करना स्वाभाविक ही है। परन्तु तुम्हें भ्रम है। रात ही मैंने ग्रहदशा की गणना की है। तुम जिसे स्वर्गलोक में ढूँढना चाह रही हो वह तो अभी इस भूमण्डल को ही अलङ्कृत कर रहा है। निकट भविष्य में ही वह प्रकट हो जायेगा। इसलिये यदि तुम अभी जल जाती हो तो प्रकट होने के बाद तुम्हारी इस घटना से, वायु से आहत कदली स्तम्भ की तरह, आहत हो कर क्षणभर में ही वह

स्वेवावलोक्य वाताऽऽहतो रम्भास्तम्भ इव निपत्य क्षणेन अचिन्तनीयमाचरिष्यति। तद् विश्वसिहि, धारय देहम्, प्राप्स्यसि प्रेयांसम्—इति।

महा०—[ आकाशमवलोक्य, निश्वस्य ] भद्रे! तवापि कष्टस्यायमेव कारणं निर्विचारः [ सम्मुखम् ] आचार्य्य! ततः?

राघ०—देव! एवं बहुधा बहुभिः सान्त्व्यमाना, उन्मत्तेव गृहीत-सुदृढ-मौनव्रता मुक्त-केशी धूलि-धूसरित-देहा रुद्राक्ष माला-कलित-वक्षाः स्थण्डिल-शायिनी तडाग-कोणे एव शियालयमे-

जीवतीति यावत्। कथासु = कथानकेषु। वाताहतः = वायुताडितः। रम्भास्तम्भ इव = कदलीस्तम्भ इव। अचिन्तनीयम् = अविचारणीयम्। मरणमिति यावत्। प्रेयांसम् = प्रियतरम्।

अयमेव - शिव एव। निर्विचारः = निर्विवेकः।

सान्त्व्यमाना = शान्तिं नीयमाना। गृहीतसुदृढमौनव्रता = धारितातिकठोरवाचयमनियमा। धूलिधूसरितदेहा = रजोरूषितगात्री। शिवालयम् = शिवमन्दिरम्। अध्युष्य = अधिष्ठाय। "उपान्वध्याङ्वसः" इति शिवालयस्य कर्मत्वम्। बिल्वपत्रैः = श्रीफलदलैः। धूर्त्तकुसुमैः =

व्यक्ति ऐसा कर बैठेगा जिसके विषय में सोचना भी कठिन है, अतः तुम मेरी बातों पर विश्वास करो बेटी! अपने शरीर को सुरक्षित रखो निकट भविष्य में तुम्हें अपने प्रियतम मिलने वाले हैं।

महा०—[ ऊपर की ओर देखते हुये लम्बी सासें भर कर ] भद्रे-औवर्यि! तुम्हारे कष्ट का भी यही विचारशून्य व्यक्ति कारण है।

[ राघवाचार्य की ओर देखते हुये ] अच्छा, उसके बाद?

राघ०—देव! उसके बाद जब अनेक व्यक्तियों ने अनेक प्रकार से सान्त्वनाएँ दीं तब उसने मान लिया और उसी समय से एक पगली की तरह कठोर मौनव्रत का पालन करती हुई, बाल खोलकर, सम्पूर्ण शरीर में भस्म लेप कर, गले में रुद्राक्ष की माला पहन कर, जमीन

कमभ्युप्य बिल्वपत्रैर्जलधाराभिर्धूर्तकुसुमैरक्षतैश्चानवरतं दिवं पूजयन्ती समयं यापयति।

महा०—हा! रघुवीर! कदा त्वां समालिङ्ग्य क्षमायिष्यामि?

तावदकस्माद् दीपो मन्दप्रकाशः संवृत्तः। महाराष्ट्र-राजस्तमुद्दीप्य, परिवृत्त्याद्राक्षीत्-तत्र तत्र राघवाचार्य्यः। अथ द्विस्त्रिश्चाऽऽकार्य्य, अवतीर्य्य, उद्याने भ्रान्त्वाऽपि, क्वापि तत्पदवीं न लेभे। तत इदमखिलं स्वप्नमिव, इन्द्रजालमिव, मायादर्शनमिव च चिरं चिन्तयन्, प्रघणे एव पर्य्यङ्कमाकृष्य, तादृशानेव स्वप्नान् पश्यन् सुष्वाप।

---

धत्तूरैः। "उन्मत्त कितवो धूर्तो धत्तूर" इत्यमरः। अक्षतैः = तण्डुलकणैः। उद्दीप्य = विपुलप्रकाशीकृत्य। आकार्य=आहूय। तत्पदवीम्=तन्मार्गम्। द्विस्त्रिः = द्विवार त्रिवार वा। प्रघणे, 'प्रघाणप्रघणालिन्दा' इत्यमरः।

---

पर ही सोती है और उसी तालाब के कोने पर निर्मित एक शिव-मन्दिर में प्रतिष्ठित भगवान् शङ्कर की बिल्वपत्र, जल धतूरे के फूल तथा अक्षत आदि सामग्रियों से आराधना करती हुई अपना समय बिता रही है।

महा०—हाय! रघुवीर! मैं किस क्षण तुम्हें गले लगा कर अपने अपराध के लिए तुम से क्षमा-याचना करूँगा!

इसी बीच अकस्मात् दीपक का प्रकाश कुछ मन्द हो गया। महाराष्ट्र-ने उसकी बत्ती उसका कर जब पुनः मुँह फेर कर देखा तो उन्हें वहाँ राघवाचार्य नहीं दिखाई पड़े। उसके बाद दो-तीन बार राघवाचार्य को उन्होंने पुकारा, किन्तु जब राघवाचार्य का उत्तर नहीं मिला तो बाहर आकर उद्यान में उन्हें खोजने लगे, परन्तु कहीं भी राघवाचार्य के पैरों का चिह्न भी नहीं मिला। उसके बाद—"यह तो स्वप्न सदृश स्थिति हुई, यह तो इन्द्रजाल-सी घटना घटी, यह केवल मायाजाल था"—इस प्रकार चिरकाल तक सोचकर दरवाजे के सामने बनी जगह में ही शिवाजी ने अपना पलङ्ग खींच लिया और उसी तरह के स्वप्न देखते-देखते सो गए।

प्रातः किञ्चिदुदञ्चिते चण्डमरीचौ, द्वारदेशात् कोलाहलमिश्र शृण्वन् गौरसिंहो गवाक्षादवलोक्य व्यजिज्ञपत्—"पश्यतु पश्यतु देवो दुष्टतां दिल्लो-दर्प-दर्पितस्य"।

अथ सर्वे 'किमिति किमिति'—ससम्भ्रमास्तत्र आगत्य ददृशुर्यत् परितः सशस्त्रा द्वारपाला भ्रमन्ति, अन्तराजिगमिषतश्च जनान् निरुन्धन्ति–इति।

अथ महाराष्ट्रराजो दृष्ट्वैवैतत् लोहितवदनः कोपस्फुरदधरो जाज्वल्यमान-नयन-द्वयो जिघत्सन्निव ब्रह्माण्डमण्डलम्, भ्रुवो-राकुञ्चनेन स्फोटयन्निव गगन-तलम्, रक्तजीव माल्यश्रीकच्छाया-

उदञ्चिते = ऊर्ध्वमायाते, उदिते। चण्डमरीचौ = भास्करे। दिल्ली-दर्पेण, दर्पितस्य = साभिमानस्य।

ससम्भ्रमाः = व्याकुला। अन्तः= मध्ये। आजिगमिषतः = आगन्तुमिच्छतः। शसो रूपम्।

लोहितवदनः = अरुणमुखः। कोपस्फुरदधरः = कोपचलदोष्ठः। जाज्वल्यमाननयनद्वयः = दन्दह्यमानचक्षुर्द्वितयः। जिघत्सन् = अत्तुमि-

प्रातःकाल में सूर्योदय के कुछ ही क्षण पश्चात् दरवाजे की ओर से कोलाहल सुनकर गौरसिंह ने खिड़की से झाँकते हुए शिवाजी से निवेदन किया—"देखें-देखें महाराज! दिल्ली के साम्राज्य के दर्प से उन्मत्त इस यवनाधम की अधमता को देखें"।

इतना सुनते ही "क्या है, क्या है!" ऐसा कहते हुए जब सम्भ्रान्त होकर सब आए तो सबने देखा कि उस भवन की चारों तरफ सशस्त्र द्वारपाल गस्ती लगा रहे थे और भीतर आने वालों को आने नहीं देते थे।

इतना देखते ही शिवाजी का मुँह क्रोध से लाल हो गया, उनका अधरोष्ठ क्रोध से फरकने लग गया, उनकी आँखें लाल-लाल हो गई जिससे लग रहा था कि वे समस्त ब्रह्माण्ड का ही संहार करने को उद्यत हों, उनकी भौंहें उस प्रकार चढ़ गई जिससे आकाश मण्डल भी विदीर्ण-सा

दीत्-पश्य पश्य, यवनराजस्य हृदयम्! नासौ जानीते यद्--महाराष्ट्रा अन्यानपि चातुरीं शिक्षयन्ति। अहो! राघवाचार्यस्य कथां नाऽऽदृतवानस्मि। रात्रावपि स स्पष्टमवादीदेतद्घटना-विषये। पलायितुश्च सम्यगवसरं प्राप्यापि, आत्मीयांस्त्यक्त्वा निवर्त्तनमनुचितमिति मन्यमानो नास्मि पलायितः। इच्छामि चेदधुनैव एषां कदर्य्याणां चक्षुष्षु रेणुकाराशिं प्रक्षिप्य, अनवरुद्धगतिर्महाराष्ट्रदेशं गच्छेयम्। किन्तु, नोत्सहते मे मनस्त्यक्त्वा स्वाश्रितान् आत्मानं त्रातुम्।

ततः आह माल्यश्रीकः—महाराज! अस्माकं महाराष्ट्रदेशगमनं सम्राजा नानुमतम्; तर्हि स्वाश्रितानां महाराष्ट्रदेशगमनानुमत्यै

च्छन्। स्फोटयन् = विदारयन्। अन्यान् = इतरान्। चातुरीम् = पाटिदयम्। निवर्त्तनम् = परावृत्तिः। कदर्य्याणाम् = नीचानाम्। रेणुकाराशिम् = धूलिनिकरम्। अनवरुद्धगतिः = अवारितगमनः। स्वाश्रितान् = स्वप्रयागान् भृत्यान्।

हो रहा था। उन्होंने रत्नजीव और माल्यश्रीक से कहा—"देखो, इस यवनराज का हृदय कैसा है! यह नीच इस बात को नहीं जानता कि मराठे दूसरों को भी चतुरता सिखलाने वाले हैं। अहा! मैंने राघवाचार्य का कहना नहीं माना, रात में भी उन्होंने इस घटना के विषय में स्पष्ट रूप से कहा था। यहाँ से भाग निकलने के सुअवसर पाने बावजूद भी मैं यह सोच कर भगा नहीं कि अपने सहचरों की उपेक्षा कर यहाँ से भग जाना उचित नहीं है। यदि मैं चाहूँ तो अभी-अभी इन क्षुद्रों की दृष्टि में धूल भरकर अप्रतिहत रूप में महाराष्ट्रदेश के लिए प्रस्थान कर सकता हूँ। किन्तु अपने आश्रितों की उपेक्षा कर अपनी रक्षा करने के लिए मेरा मन प्रवृत्त नहीं हो रहा है।"

उसके बाद माल्यश्रीक ने कहा—"महाराज! हम लोगों को महाराष्ट्र देश लौट जाने की अनुमति तो सम्राट् से नहीं मिली। अतः अपने

अपरमावेदनपत्रं प्रेषणीयम् । निश्चिनोमि यदसहायस्य देवस्य स्थितिरत्र रोचिष्यतेतरां यवनकुलनन्दनाय । समासादिताऽऽदेश-पत्राश्च सुखेन निर्भयाः प्रयास्यन्त्यास्माकीना महाराष्ट्र-देशमिति ।

ततः 'साधु साधु'-इति सर्वैरुक्तम् । सपदि आवेदनपत्रस्य लेखोऽपि प्रस्तुतः । निर्गन्तॄणां संख्याऽपि समुल्लिखिता । पत्रमिदं कुमार-रामसिंह-द्वारा प्रेषितं सम्राजा सप्रसादमङ्गीकृतम् । कतिपयैरेव दिवसैर्यथावाञ्छितं दिल्ली-निर्गमनपत्रिकाश्च लब्धाः ।

अथ पत्रिका इमाः प्राप्य, महाराष्ट्रराजेन गगने दृष्टिं बद्ध्वा प्रोक्तम्—'अरे रे दिल्ली-कलङ्क ! कियांस्ते चातुरी-गर्वः ? यद्यैव

असहायस्य = एकाकिनः । देवस्य = भवतः । यवनकुलस्य नन्दनाय = हर्षवर्द्धनाय । निर्भयाः = भीतिशून्याः ।

निर्गन्तॄणाम् = निर्गच्छताम् । सप्रसादम् = प्रसन्नतया । यथावाञ्छितम् = यथाभिलषितम् ।

चातुरीगर्वः = कौशलाभिमानः । आत्मीयानाम् = स्वीयानाम् ।

आश्रितों के महाराष्ट्र लौट जाने की अनुमति प्राप्त करने के लिए एक दूसरा आवेदन-पत्र भेजना चाहिए । मेरा तो ऐसा निश्चय है कि यवनकुल-नन्दन सम्राट् के लिए यहाँ आपका अकेला रहना ही अधिक रुचिकर होगा । अनुमति-पत्र प्राप्त करने के बाद हमारे अनुचर निर्भय होकर सुखपूर्वक यहाँ से महाराष्ट्र देश की यात्रा कर सकेंगे ।

उसके बाद सबों ने "ठीक है, ठीक है" ऐसा कहा । तत्क्षण आवेदन पत्र भी लिखा गया । महाराष्ट्र लौटने वालों की संख्या का भी उसमे उल्लेख किया गया । यह आवेदन कुमार रामसिंह द्वारा महाराज औरंगजेब के पास भेजा गया और सम्राट् ने उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृत कर लिया । कुछ ही दिनों में दिल्ली से महाराष्ट्र लौट जाने के लिए अनुमति-पत्र भी मिल गये ।

अनुमति-पत्रों को पाकर आकाश की ओर देखकर महाराष्ट्रराज ने कहा—"अरे दिल्ली कुलकलङ्क यवनाधम ! तूँ भी अपनी चातुरी का

स्वानुचर-वेषमाकलय्य, पत्रमेकं हस्ते गृहीत्वा निर्गच्छेयम्, तत् प्रपितामहोऽपि ते न शक्तः प्रतिरोद्धुम्। परं न शिवो मार्गेऽप्यात्मीयानामशिव-सम्भावना-पथमङ्गीचिकीर्षति"।

ततो महाराष्ट्रेश्वर-समत्या सर्वेऽपि तदीया अनिच्छन्तोऽपि दिल्ली-नगरान्महाराष्ट्र-देशं प्रति निवृत्ताः।

× × ×

अथ स्नानपूर्वाः क्रियाः समाप्य यावन्महाराष्ट्रराजः सिष्णासति; तावत्प्राङ्गणे समुपातिष्ठत्सैका अनवरोद्धव्येति प्रतीहारैरनवरुद्धा, "पूजार्थं कुसुमानि माल्याः हारान् कलिकाव्यजनानि

अशिवसम्भावनापथम् = अमङ्गलाशङ्कामार्गम्। अङ्गीचिकीर्षति = अङ्गीकर्तुमिच्छति।

अनिच्छन्तोऽपि = अनभिलषन्तोऽपि। प्रतिनिवृत्ता = परावृत्ताः।

× × ×

स्नानात्पूर्वाः = दन्तधावनाचमनाद्याः। सिष्णासति = स्नातुमिच्छति। प्राङ्गणे = अजिरे। अनवरोद्धव्या = वारयितुमनर्हा। माल्याः = स्रजः। साधारणतया गुम्फिताः। हारान् = विशिष्टाः स्रजः। कलिकानाम् =

रखता है? यदि अभी मैं अपने एक सेवक का वेष बनाकर एक अनुमति पत्र के साथ यहाँ से निकल जाऊँ तो तेरा प्रपितामह भी मुझे नहीं रोक सकेगा। किन्तु शिव ऐसे मार्ग का अनुसरण कथमपि नहीं करना चाहता जिसमें अपने अनुचरों के अमङ्गल की सम्भावना भी हो।"

उसके बाद महाराष्ट्रराज की सम्मति से उनके अनुचर, दिल्ली में उनको छोड़ कर महाराष्ट्र लौटने के लिए अनिच्छुक होने पर भी, वहाँ से महाराष्ट्र देश को लौट गए।

× × ×

तत्पश्चात् स्नान के पूर्वकाल की सारी क्रियाओं को समाप्त कर शिवाजी स्नान करना ही चाहते थे कि इसी बीच अनावश्यक होने के कारण

स्तवक-कुन्दुकानि च क्रीणीध्वं भोः! क्रीणीध्वम्"—इति वदन्ती, वामस्कन्ध-स्थापित-कुसुम-पूर्णपिटकिका, दक्ष-कराऽऽकलितानि-मुक्त-कलिका रचितानेक-विक्रेय-व्यजना, नील-सूत्र-वल्ली-स्यूति-स्यूत-प्रान्त-धवल-वसना, कर्णान्त-लम्बमान-राजत-ताटङ्क चोचुम्ब्यमान-गण्ड-युगला, आरक्त-कञ्चुकिकाऽऽच्छन्न-तालफलस्तनी, काच - खण्ड - मण्डिताम-राजत-लवङ्गिकाऽऽभरण-भूषित - नासा, ताम्बूल-राग-रञ्जिताधरा, यौवन-भर-मन्थरा, मन्दस्मितेन मालती-

कोरकाणाम्, व्यजनानि। स्तवककुन्दुकानि=गुच्छकगेन्दुकानि। वामस्कन्धे स्थापितः, कुसुमपूर्णः, पिटकः = पेटा यया सा। बहुव्रीहि कपि 'प्रत्ययस्था-' इति। दक्षकरेण आकलितानि = धारितानि,अतिमुक्तकलिकारचितानि = माधवीकोरकनिर्मितानि, अनेकानि विक्रेयाणि व्यजनानि यया सा। नील सूत्रैः, या वल्लीस्यूतिः = व्रततिसीवनम्, तया स्यूतः प्रान्तो यस्य तादृश धवलम् = स्वच्छम्, वसनम् = वस्त्र यस्याः सा। कर्णान्तयोः, लम्बमानेन राजतेन = रजतनिर्मितेन, ताटंकेन = आभरणविशेषेण, चोचुम्ब्यमानम्= भृश स्पृश्यमानम्, गण्डयुगल यस्याः सा। आरक्तया=ईषल्लोहितया, कञ्चुकिकया, आच्छन्नौ = गुप्तौ, तालफलवत् स्तनौ यस्या सा। काचखण्डमण्डिता ग्रेण, लवङ्गिकाभरणेन = देवकुसुमसमाननासाभूषणेन, भूषिता नासा यस्याः सा। ताम्बूलरागरञ्जिताधरा = नागवल्लीदललौहित्यभूषितोष्ठा। मन्थरा =

प्रतिहारों द्वारा नहीं रोकी गई एक साँवली सी फूल बेचने वाली युवती "पूजा के लिए फूल, मालाएँ, हार, कलियों के पङ्खे, गुलदस्ता आदि खरीदें" ऐसा कहती हुई वहाँ आ पहुँची। उसके बायें कन्धे पर फूल भरी टोकरी थी, दायें हाथ में माधवी की कलियों के बने कई पङ्खे थे, उसकी साड़ी उजली थी और उसके छोर पर नीले धागे से कढ़ाई की हुई थी, उसके कानों में लटकती हुई चान्दी की बालियाँ उसके दोनों गालों का मानो चुम्बन कर रही थीं, उसके तालफल जैसे मनोहर स्तन लाल चोली से ढके हुए थे, उसके नाक में रजत निर्मित लवङ्ग का फूल—जिसके ऊपर काच का टुकड़ा जड़ा हुआ था—सुशोभित हो रहा था,

मुकुलानीव वमन्ती, अपाङ्ग-वीक्षणैर्नीलोत्पलैरिव ताडयन्ती, विलुलितैर्लोलालकैः रोलम्ब-कदम्बानिव वशयन्ती, क्षुद्रघण्टिका शिञ्जिताऽऽकृष्ट निर्दिष्ट जनदृष्टिः, एका कस्तूरिकोद्वर्तनोद्वर्त्तितेव शृङ्गार-रसस्नातेव च श्यामा कुसुम-विक्रेत्री।

महाराष्ट्रराजस्तु पराङ्गना-प्रतारणेषु न पटीयानिति भृत्यमेक शिव-पूजायै कुसुमानि क्रतुमिङ्गितवान्। सा तु तेन सह कुसुम-

---

हास्यया। मन्दस्मितेन = ईषद्धास्येन। मालतीमुकुलानि = माधवी कोरकान्। वमन्तीव = उद्गिरन्तीव। अपाङ्गवीक्षणैः = सकटाक्षनिरीक्षणैः। नीलोत्पलैः = कृष्णवर्णोत्पलैः। ताडयन्तीव = घ्नतीव। रोलम्बकदम्बान् = भ्रमरौघान्। वशयन्ती = स्वायत्तीकुर्वन्ती। क्षुद्रघण्टिकाशिञ्जितेन-आकृष्ट निर्दिष्टजनानां दृष्टिर्यया सा। कस्तूरिकोद्वर्त्तनेन = मृगमदमिश्रानुलेपनेन, उद्वर्त्तितेव = कृताङ्गरागेव। श्यामा = कृष्णा षोडशी च। कुसुमविक्रेत्री = पुष्पविक्रयिणी।

पराङ्गनाप्रतारणेषु = परस्त्रीवञ्चनेषु, पटीयान् = अतिशयेन पटुः। इङ्गितवान् = चेष्टया बोधितवान्। कुसुममूल्यविषये = पुष्पार्थसम्बन्धे।

---

उसका अधरोष्ठ पान से रङ्गा हुआ था, यौवन के भार से उसकी गति मन्द पड़ गई थी, अपनी मधुर मुस्कान के द्वारा मानो वह मालती की कलियाँ उगल रही थी, अपने कटाक्ष से लोगों को इस प्रकार आहत कर रही थी जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि नील कमल से वह आहत कर रही हो, अपने लटकते घुँघराले बाल से मानों भौंरों को भी वश में कर रही थी, अपनी घुँघरू वाली करधनी की झङ्कार से लोगों की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी, ऐसा लग रहा था कि उसके शरीर पर कस्तूरी का उबटन लगा हो तथा शृङ्गार रस से उसने स्नान ही कर लिया हो।

परन्तु यतः महाराष्ट्रराज परस्त्री के प्रतारण में पटु नहीं थे अत उन्होंने अपने सेवक को ही शिवपूजार्थ फूल खरीद लेने का सकेत किया। वह

मूल्य-विषये आलपन्त्येवाकस्मात्—"आः ! कथं मां क्ष्वेलयसि ? इदमेव किं सौशील्यं महाराष्ट्रराजस्य समीपवर्तिनाम् ? कीदृशीयं चञ्चलता चित्तस्य; यद् युवतिदर्शन-समकालमेव द्रवति मनः ? नाहं वारवधूरिव विश्वेषां नर्मपात्रम् , किमिति मामेवं ब्रूपे ?" इत्युच्चैः सरोपमिवावदत्। ततः 'किमिति किमिति ?'–इत्त आगतेषु गौरसिंहादिषु महाराष्ट्रराजे च, कर्णौ स्पृष्ट्वा भृत्योऽवोचत्–"न मया तादृशं किमप्युक्तम्'। त्वमेव कथय—किमेतेनोक्तमिति महाराष्ट्रराजेनोक्ता–"महाराज ! रहसि कथयिष्यामि–यदुक्तमेतेन, त्रायस्व त्रायस्व"—इत्यश्रूणीव पातयन्ती स्वरभङ्गमवोचत्। महाराष्ट्रराजस्तु स्वदासेरस्य दुर्वृत्तमसहमानः सपदि तया सहोद्या-

आलपन्त्येव = वार्त्ताः कुर्वन्त्येव। क्ष्वेलयसि = नर्मभाषणं करोषि। 'छेड़ते हो' इति हिन्दी। सौशील्यम् = सुजनता। द्रवति = द्रुतं भवति। वारवधूरिव = वेश्येव। विश्वेषाम् = समेषाम्। नर्मपात्रम् = हासभाजनम्। सरोषमिव = सक्रोधमिव। रहसि = एकान्ते। स्वदासेरस्य = स्वभृत्यस्य। दुर्वृत्तम् = दुराचारम्। उद्यानम्=उद्यारामम्। स्मितवती=ईषद्धसितवती।

फूल बेचने वाली उस सेवक के साथ फूल की कीमत के विषय में बात चीत करती हुई अकस्मात् जोरों से चिल्ला उठी—"अरे ! तुम मुझे छेड़ते क्यों हो ? क्या महाराष्ट्र राज के सेवकों का ऐसा ही शील स्वभाव है ? अहो ! इतनी बड़ी चञ्चलता कि युवती पर दृष्टि पड़ते ही मन पिघल गया ! मैं किसी वेश्या की तरह सबके हँसी-दिल्लगी के लिए नहीं हूँ,फिर तूँ इस प्रकार की बात मुझ से क्यों कर रहा है !" उसके बाद "क्या हुआ, क्या हुआ !" ऐसा कहते हुए जब गौरसिंह आदि एवं स्वयम् शिवाजी भी वहाँ दौड़े आए तो उस सेवक ने कान छूकर कहा—"मैंने तो इसके साथ इस तरह कोई बात ही नहीं की है।" उसके पश्चात् महाराष्ट्र नायक ने उस फूल बेचने वाली से कहा—"तूँ ही बता कि इसने तुमसे क्या कहा है ?" फूलवाली ने उत्तर दिया—"महाराज ! इसने जो कहा है वह मैं एकान्त में आपसे बताऊँगी !" इतना कहते ही उसकी आँखों में आँसू भर

नमविशत्। सा तु किञ्चिदन्तः प्रविश्याभिमुखी स्थिता स्मितवती। यावच्चैष क्षणं रुरुदिषन्तीं क्षणञ्च स्मयमानामवलोक्य विस्मयते; तावत्सा प्रावोचत्-'महाराज! यदि क्षम्येत तत्कथयामि' स उवाच-'मा भैषीः, कथय'—

ततः सा वृक्षस्यैकस्य तले कुसुम-पिटकिकां संस्थाप्य, तदुपरि कलिकाव्यजनानि च धृत्वा, करौ सम्पुटीकृत्य प्रोवाच—

महाराज! किमिदम्? धर्म-ध्वजोद्धूनन-धुरीणेष्वपि न शोभन्ते इमे आचाराः। श्रूयते राज-कन्यामपहृत्य भवाँश्चिरं स्वावरोधेऽवस्थापयत्, तत्सहचरीभिरपि च मिष्टमालपम् उपवनेषु

---

रुरुदिषन्तीम् = रोदितुमिच्छन्तीम्। स्मयमानाम् = हसन्तीम्। विस्मयते= आश्चर्यं कुरुते।

पिटकिकाम् = क्षुद्रा "दौरी" पदवाच्याम्।

धर्मध्वजस्य, उद्धूनने = उच्चालने, धुरीणेषु=अग्रेसरेषु। स्वावरोधेषु = स्वान्त पुरेषु। मिष्टम् = मधुरम्। उपवनेषु = उद्यानेषु। पर्य्या

---

श्र ए और "रक्षा करें महाराज! रक्षा करें" कहते कहते उसकी आवाज शिथिल हो गई। अपने भृत्य के उस प्रकार के अनाचार का सहन नहीं करने वाले महाराष्ट्रराज उसी समय उस फूलवाली के साथ उद्यान में घुस गए। उद्यान में प्रवेश करते ही उसने महाराष्ट्र राज के सम्मुख खड़ी होकर मुस्करा दिया। तुरत रोते और तुरत हँसते देख कर शिवाजी कुछ विस्मित जैसे हो ही रहे थे कि वह उनसे कहने लग गई—"महाराज! यदि आप क्षमा करें तो मैं कहूँ।" महाराष्ट्रराज ने कहा—"डरो मत, कहो, कहो!"

उसके बाद एक वृक्ष के नीचे अपनी फूल की टोकरी रख कर उसके ऊपर उसने कलियों के बने पखे भी रख दिए और फिर महाराष्ट्र राज से हाथ जोड़ कर कहने लगी—

"महाराज! यह क्या? धर्म की ध्वजा फहराने वालों में अग्रसर आप लोगों के लिए इस तरह का आचरण शोभा नहीं देता। सुना जाता है

पर्य्यटयत्। दिल्लीं समागतस्य च प्रथमे एवाह्नि निशीथे भवतः शिविरान्निःसरन्ती काचन यवन-सुन्दरी कतिभिश्चिद्दर्शकैर्दृष्टा। साम्प्रतमपि च मां भवतो भृत्याः क्ष्वेलयन्ति, भवानपि चैकान्ते मामनीतवानस्ति, केन किं सम्भावयिष्यते—इति को जानीते।

तदाकर्ण्य क्षणं जडीभूत इव महाराज उवाच—

सुन्दरि! स्फुटं कथय, का त्वम्? किमीहसे? कुत आगता? कथमेवं सुगूढं वृत्तं वेत्सि? किमिव मां मोहयसि? स्वयमेव स्वकीयमुद्देश्यं विशकलय्य कथय।

---

टयत्=अभ्रामयत्। क्ष्वेलयन्ति=हासयन्ति। एकान्ते=रहसि। सम्भावयिष्यते=कथयिष्यते, उत्प्रेक्षयिष्यते।

जडीभूत इव=स्तब्धीभूत इव। क्रियाश्चरित्र मिश्रभाव विभाव्येत्यर्थः।

सुगूढम्=अतिगुप्तम्। विशकलय्य=स्पष्टीकृत्य।

---

कि राजकुमारी का अपहरण करके आपने उन्हें चिर काल तक अपने अन्तःपुर में रखा और उनकी सहेलियों के साथ भी मीठ मीठी बातें करते हुए अपने उपवन में भी आपने राजकुमारी (रोशनआरा) को खूब घुमाया। इधर जिस दिन आप दिल्ली आए उसी दिन मध्य-रात्रि में आपके शिविर से बाहर जाती हुई एक यवन-सुन्दरी को भी कई लोगों ने देखा है। आज आपके सेवक भी मेरे साथ छेड़खानी कर रहे हैं और आप भी मुझे एकान्त स्थान में ले आए हैं। पता नहीं लोग क्या क्या सोचेंगे।

उसकी आक्षेप-पूर्ण बातें सुन कर महाराष्ट्रराज थोड़ी देर के लिए तो स्तब्ध ही गए, परन्तु बाद में उन्होंने पुनः उससे पूछा—

"सुन्दरी! ठीक-ठीक बताओ—तुम कौन हो, क्या चाहती हो और कहाँ से आ रही हो? इस तरह की रहस्यपूर्ण घटनाओं की तुम्हें कैसे जानकारी मिली? क्या तुम मुझे ठगना क्यों चाह रही हो? अपने उद्देश्य को साफ साफ बतलाओ।"

अथ सा महाराजं विक्षुब्धमेवाऽऽकलय्य, सप्रणाममुवाच—क्षम्यतां महाराजेन। न श्रीमतो भृत्येन किमप्युक्तम्, न किमपि वचनीयोऽसौ निर्दोषः। अहं श्रीमत्या दिल्लीश्वरकुमार्य्याः सहचरी। केवलं रहसि समानेतुमाय्यं प्रपञ्चनमकार्षम्।

ततः स उवाच—आः! कठिनमाचरितमिदं त्वया, विनाऽपराधं वयमत्र निगृहीताः स्म। त्वादृशीनां यातायातं केनचन ज्ञायेत तत्सङ्घटेत महाननर्थः!

सा उवाच—महाराज! राजकुमारी अभिनव-चन्द्रकलेव तनुगात्री, मृद्वीकेव शुष्का, प्रभातप्राया रजनीव मन्दतारका,

---

वचनीयः=निन्दनीय। प्रपञ्चनम्=धौर्त्यपूर्णचातुर्यम्।

विनाऽपराधम्=निर्दोषम्। त्वादृशीनाम्=राजकुमारीभृत्यसदृशीनाम्। सङ्घटेत=सम्भवेत्।

अभिनवचन्द्रलेखेव=नूतनशशिकलेव। तनुगात्री=मृदङ्गी। शुष्का=नीरसा। मृद्वीकेव=द्राक्षेव। मन्दाः, तारका=उडव, यस्या सेति रजनीपक्षे, रसनारीपक्षे च मन्दे=अल्पावलोकनके, तारके=कनीनिके,

---

उसके पश्चात् शिवाजी को विक्षुब्ध जैसा ही देख कर उस युवती ने प्रणाम करती हुई कहा—

"महाराज! क्षमा करें। आपके सेवक ने मुझे कुछ भी नहीं कहा है। यह सर्वथा निर्दोष है और इस लिए वह कथमपि निन्दा पात्र नहीं हो सकता। मैं तो दिल्लीश्वर औरङ्गजेब की कन्या की सहेली हूँ। आपसे मैं एकान्त में बातें करना चाहती थी, इसी लिए मैंने इतना प्रपञ्च खड़ा किया था।"

तदनन्तर महाराष्ट्र राज ने कहा—"आः! तूने बहुत बड़ा अन्याय किया है। एक तो हमलोग निरपराध ही यहाँ कैद कर लिए गए हैं और और यदि किसी को तेरे यहाँ आने जाने की खबर लगी तब तो और भी भयङ्कर अनर्थ आ पड़ेगा।

फूलवाली ने कहा—"महाराज! राजकुमारी तो अब नवीन चन्द्रकला

योगिनीव विगताशनाया-पिपासा, अवधूतेव चोन्मत्ता संवृत्ताऽस्ति—इति यदि भवतः प्रतिवचन-जीवातुं न गृह्णाति; तत एव महाननर्थः सङ्घटेत। दीनबन्धो! प्रणम्य ब्रूते राजकुमारी यद्—नूनं वधू-वध-बुधो भवान्। नाहं किञ्चन बहु वचनीयं मन्ये, यतो निर्दयानां भवादृशानां हृदये मुक्तकण्ठ-रोदन-पुरस्सरं सहस्रशो विनयै रोदनेनापि च दया न प्रचरति, किमरण्यरोदनेन? अथ वा काननेष्वपि अनन्य-श्राव्यमपि रुद्यतेऽरं दुःखितैः, यतो रोदनं

यस्याः सेत्यर्थः। योगिनीव = योगसाधनरतेव। विगते = दूरीभूते, अशनायापिपासे = बुभुक्षापानेच्छे, यस्या सा। अवधूतेव = ब्रह्मज्ञानिनीव। उन्मत्ता = उन्मादाख्यस्मरदशां प्राप्ता। अवधूताऽपि कृत्याकृत्यविवेकविधुरतामुपगता लोकैरुन्मत्तेव बुध्यते। संवृत्ता = सञ्जाता। प्रतिवचनजीवातुम् = प्रत्युत्तररूप जीवनौषधम्। अनर्थः = दशमावस्थाप्राप्तिरूपः। वधूवधबुधः = नारीहननपण्डितः। निर्दयानाम् = कृपाकृपणानाम्। विनयैः = नम्रतादर्शनैः। अरण्यरोदनेन = काननक्रन्दनेन। अरण्ये श्रोत्रभावेन रोदनं निष्फलमिति, यत्र तु श्रुत्वाऽपि श्रोतारोऽनुरूपं कार्यं न कुर्वन्ति तत्रैव प्रयोग इति ध्येयम्। अनन्यश्राव्यम् = अनितरश्रोतव्यम्।

की तरह खिन्न हो गई हैं, दाख (किसमिस) की तरह सूख गई हैं, जिस प्रकार प्रभात काल के समीप आने पर रजनी के तारे मन्द-ज्योति हो जाते हैं उसी प्रकार राजकुमारी की आँखों के तारे भी मन्द ज्योति हो गए हैं, योग करने वालों के समान उनकी भूख-प्यास समाप्त हो गई है और अवधूता की तरह उन्मत्त हो गई हैं। अतः यदि आप से उत्तररूपी औषधि नहीं मिलेगी तो राजकुमारी के लिए ही महान् अनर्थ सम्भावित है। दीनबन्धो! प्रणाम के साथ राजकुमारी ने आपसे यही कहा है—'आप निश्चित रूप से वधू वध में निपुण हैं। मुझे बहुत कुछ नहीं कहना है, क्योंकि जब आप जैसे निर्दय व्यक्तियों के हृदय में मुक्त कण्ठ रोदन पूर्वक नाना प्रकार के विनयों से भी दया नहीं आती तो फिर अरण्य रोदन करने से क्या होगा? अथवा दुःख आने पर जङ्गल में भी लोग

स्वभावत एवातिकठिनमपि दुःखं किञ्चिन्मृदूकरोति। तथैवमधापि रोरुद्यते। जीवयतु वा, नाशयतु वा, तदत्र महाराजः प्रमाणमिति।

स उवाच—भद्रे! सर्वदा इदमेव प्रावोचं—यद् जनकेन चेदङ्गीक्रियेत कुमारी ममार्पयितुम्, तन्नास्ति मे नेति प्रतिद्वन्द्विनी वाक्। अन्यथा तु निवेदय कुमारीं कुमारञ्च ममावस्थाम्, वेदय च यद् एवं सम्राजा निरर्थकोप-विपयीकृतश्चेत् कुमारी-प्रणय मलीमसोऽपि ज्ञायेय, तदवश्यं मम कुमार्य्याश्च प्राण-संशयः। भद्रे! स्मारं स्मारं कुमार्य्या मुख-मण्डलं निष्कपटमसाधारणञ्च प्रेमाणं खिद्येतमाम्। किं करोमि? दैवं नानुकूलम्! एवमाल-

स्वभावतः = प्रकृत्या। मृदूकरोति = लघुतां नयति। रोरुद्यते = भृशं क्रन्द्यते। जीवयतु = प्राणयतु।

अर्पयितुम् = दातुम्। प्रतिद्वन्द्विनी = विरुद्धा। अवस्थाम् = स्थितिम्। वेदय = बोधय। निरर्थकोपविषयीकृतः = निष्कारणकोधा-स्पदीकृतः। कुमारीप्रणयमलीमसः = स्वनारीप्रेममलिनः। ज्ञायेय = चेयेय, कर्मणि लिङुत्तमपुरुषैकवचनम्। प्राणसंशयः = जीवनसन्देहः। निष्कपटम् = निर्व्याजम्। असाधारणम् = अनितरलभ्यम्। प्रेमाणम् = प्रणयम्।"प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम" इत्यमरः। खिद्येतमाम्=भृशं विषीदामि।

अपने आप रोते ही हैं, क्योंकि क्रन्दन का यह स्वभाव है कि वह कठिन से कठिन विपत्ति को भी कुछ शिथिल कर देता है। अतः मैं आज भी रो रही हूँ। आपकी इच्छा है चाहे आप मुझे जिलायें या मारें।"

महाराष्ट्रराज ने उत्तर दिया—"भद्रे! मैं तो सब दिन यही कहता आ रहा हूँ कि यदि उसके पिता मुझे उसे समर्पित करना चाहें तो मेरी ओर से प्रतिषेध कदापि नहीं होगा। उसके पिता की अनुमति के बिना मेरी विवशता के विषय में तुम राजकुमारी तथा राजकुमार (मुअज्जम) से कह देना। साथ ही उन्हें यह भी समझा देना कि यदि दिल्ली सम्राट् मुझे राजकुमारी से प्रेम करने वाला समझ कर कदाचित् मेरे ऊपर अनर्थक क्रोध कर बैठेंगे तब तो हम दोनों के ही प्राण संशयास्पद हो

पत्येव महाराजे गौरेणोच्चैराकार्य्य कथितम्—"कुमारमायाजिह्मः समुपस्थितोऽस्ति, अपेक्षते च महाराजम्"—इति। ततस्तां सपदि निवर्त्य, इत आयातो महाराजः। कुमारेण चाऽऽदरोचिताचारं विधाय कथितम्–महाराष्ट्र-चक्रवर्तिन्! यो मां मम स्वसारञ्च तथा रक्षितवान्; तं तातो मे न सत्करोतीति किमत्र कारणं नावैमि! आः! प्रहरिणोऽप्यद्य पश्यामि। नूनं मिथ्याभिशंसिभिश्चाटुकारैरेवोपपादितं किमपि भवद्विषये। शास्तिखानादीनां वराकाणां सम्बन्धिनो द्रुह्यन्त्येव भवन्तम्। अधुनैव गत्वा तातं भवतो महाराष्ट्र-देशं प्रति कुशलेन निवृत्त्यै निवेदयिष्यामि। मा स्म गृह्णीथा दोषमत्राऽऽस्मा-

आदरोचिताचारम् = सत्कारानुकूलव्यवहारम्। सत्करोति = आद्रियते। नावैमि = न जानामि। मिथ्याभिशंसिभिः = असत्यकथयितृभिः। उपपादितम् = विशिष्य कथितम्। द्रुह्यन्ति = द्विषन्ति। निवृत्त्यै =

जाएंगे। भद्रे! राजकुमारी के मुखमण्डल तथा निश्छल एवम् अनन्य प्रेम की याद कर मैं अतिशय दुःखी हो रहा हूँ। परन्तु मैं क्या करूँ! हम लोगों का भाग्य ही अनुकूल नहीं है।" उस युवती के साथ इस प्रकार शिवाजी बातचीत कर ही रहे थे कि गौर सिंह ने उच्चस्वर में उनसे निवेदन किया—"महाराज! कुमार मुअज्जम आपसे मिलने आए हैं।" सुनते ही उस युवती को शीघ्र विदा कर महाराष्ट्रराज इधर चले आए। उनके आते ही राजकुमार मुअज्जम ने यथोचित सम्मान आदि के साथ उनसे कहा—"महाराष्ट्र देश के सम्राट्! मेरी तथा मेरी बहन की उस तरह रक्षा करने वाले आपका भी मेरे पिता जी सत्कार क्यों नहीं कर रहे हैं—यह बात मेरे समझ में नहीं आ रही है। आः! आज आपके साथ उनके प्रहरियों को भी देख रहा हूँ। बहुत सम्भव है कि झूठ बोलने वाले चाटुकारों ने ही आपके विषय में मेरे पिता जी से कुछ उलटा सीधा कह दिया है। शाइस्ता खाँ आदि नीचों के कुटुम्ब तो आप से द्रोह कर ही रहे हैं। मैं अभी चल कर पिता जी से निवेदन करता हूँ कि वे आपको सकुशल महाराष्ट्र देश लौट जाने की अनुमति दे दें। इसमें

कीनम्। क्षमस्व एतैरेव पदैः पितरं गत्वा भवतो माहात्म्यं बोधयिष्यामि—इति कथयन् परावृत्तः। महाराष्ट्रराजस्तु "अस्य विपरीत फलं न स्यात्" इति कथयन् तं विससर्ज।

समयेऽस्मिन् यवनराजः कुसुम-वाटिका-मध्यस्थे मालतीकुञ्जे मारकत-दण्डायामासन्द्यामुपविष्टः। परितः सजलमणिमय-पात्रेषु विविध-कुसुम गुच्छा आयोजिताः। पार्श्वपरिवर्तिन्येकस्मिन् जाल-भवने बहवः शुकाः, पिकाः, सारसाः, कलविङ्काः, लावाः, जीवञ्जीवाः, चातकाः, कुरराः, केकिनः, क्रौञ्चाः, कोयष्टिकाश्च कूजनैः, उत्फालनैः, उड्डीयनैः, लूमदोलनैः, पत्त्रस्फुरणैः, चञ्चुकोटिभिः पत्त्रति-कण्डूयनैः, प्रणयकलहैः, समञ्जीर-शिञ्जित नर्तनैः, कपट-

परावृत्ते। मारम गृहीथा = मा विद्धि। माहात्म्यम् = गौरवम्।

मालतीकुञ्जे = माधवीमण्डपे। मारकतदण्डायाम् = मरकतमणि-निर्मितहस्तचरणायाम्। आसन्द्याम्='कुर्सी' पदाभिधेयायाम्। सजल-मणिमयपात्रेषु = सवारिरत्नखचितभाजनेषु। विविधकुसुमगुच्छाः = अनेकविधसुमस्तबकाः। जीवञ्जीवाः = चकोराः। कोयष्टिकाः = टिट्टिभाः। लूमदोलनैः=लाङ्गूलचालनैः। 'पुच्छोऽस्त्री लूमलाङ्गूले" इत्यमरः। समञ्जीर-

आप हम लोगों का दोष न समझें। क्षमा करें, मैं इन्हीं शब्दों में अपने पिता जी से आपकी महत्ता बतलाऊँगा—' यह कह कर राजकुमार मुअज्जम वहाँ से लौट गया। इधर महाराष्ट्रराज ने भी "इसका परिणाम विपरीत न हो जाय" यह कहते हुए राजकुमार को विदा कर दिया।

उस समय यवन सम्राट् औरङ्गजेब फूलवारी के बीच में मालती कुञ्ज के पास मरकत मणि की बनी कुर्सी पर बैठा हुआ था। दोनों तरफ जल पूर्ण मणिमय पात्रों में अनेक प्रकार के फूलों के गुच्छे सुशोभित हो रहे थे। पास में ही बने हुए जालीदार घर में बहुत से शुग्गे, कोयल, सारस, कलविङ्क, बटेर, चकोर, समुद्री उकाब, मोर, क्रौञ्च एवम् टिट्टिभ आदि पक्षियाँ खेलने के क्रम में कभी कूजती थीं, कभी कूदती थीं, कभी उड़ती थीं, कभी पूँछ डुलाती थीं, कभी पाँखें फरफराती थीं, कभी चोंच से पाँखें खुजलाती थीं,

कलहः, मृद्वीकादि रसने, प्रेयसी प्राप्त्यहम्पूर्विका युद्धेश्च विजह्रिरे। साम्मुखीनायां ताम्बूल दलाकारायामेकस्यां पुष्करिण्यां कारण्डवाकारा पञ्चषा परिष्कृतास्तरयः सर्पन्ति स्म। तत्प्रान्ते च बहवो हंसा कारण्डवा बका सारसाश्च मोदन्ते स्म। तावदेकत एकस्मात् कपोत-भवनान्नि सत्य महान्तः कपोता प्रडीनोड्डीन-सण्डीनैरुड्डायमाना गगन-तलं स्पृशन्त तारका इव समवृतिर।

अस्मिन समये साम्मुखीन आस्तरणे, एक आरव्य-भाषाया-कविर्वृद्धो मौलिवि सम्राज परम-कृपा-पात्रमुपविष्ट आसीत्।

शिञ्जितनर्तने = नूपुरघण्टिकाशब्दारम्भे। मृद्वीकादीनाम् = द्राक्षादीनाम्, रसने = आस्वादने। प्रेयसीप्राप्ती = प्रियप्राप्त्यै, या अहम्पूर्विका = अहम्पूर्वमितीच्छा, तया युद्धे = कलहे। साम्मुखीनायाम् = पुरो विद्यमानायाम्। ताम्बूलदलाकारायाम् = नागवल्लीपत्राकृतिकायाम्। पुष्करिण्याम् = दीर्घिकायाम्। कारण्डवाकारा = कारण्डवाकृतय। तरय = नौका। सर्पन्ति स्म = प्लवन्ते स्म। एकत = एकस्यां दिशि, उड्डीयमाना = उत्पतन्त। तारका इव = उडव इव। समवृतिरे = जाता।

आस्तरणे = विष्टरे। आरव्यभाषाया = अरबदेशीयभाषाया, 'अरबी' इति ख्याताया। परमकृपापात्रम् = अतिशयस्नेहभाजनम्।

कभी आपस में प्रणय कलह करती थीं, कभी नूपुर की जैसी झङ्कारों के साथ नाचती थीं, कभी दाख आदि फलों का रस चूसती थीं और कभी अपनी प्रेयसी का प्रथम प्राप्ति की अभिलाषा के कारण परस्पर कलह करती थीं। आगे वर्तमान पान के पत्ते के आकार के एक पोखरे में बतक की आकृति के पाँच-छः नाव तैर रहे थे। उस पोखरे की चारों तरफ बहुत से हंस, बतक, बक तथा सारस मजा ले रहे थे। तब तक एक ओर से किसी कबूतरों की छतरी से बहुत से कबूतर निकले और उन सब ने विभिन्न विधियों—प्रडीन, सडीन तथा उड्डीन—से उड़ कर तारों की तरह आकाश का आलिङ्गन कर लिया।

उस समय आगे बिछावन (अथवा दरी) पर एक अरबी भाषा

स बहुशः कथा आलपन् कविताः पठन् यवनराजं तोषयन् प्रसङ्गतः समगादीत्—

महाराज! रात्रौ दिने च समप्रकाशः शुक्ले कृष्णेऽपि च पक्षे पूर्णः कन्दरिणां कन्दर-मन्दिरेष्वपि किरण-किरणो निर्गत-कलङ्क-पङ्कातङ्को भवतो यशश्चन्द्रश्चमत्करोति! तस्मिन् कलङ्कलेशस्यापि पङ्कमाशङ्क्य क्षुभ्यति नो हृदयम्।

दिल्लीश्वरः—तात्पर्यं न बुद्धम्!

आरब्यकविः—वीरवर! न मम क्षमता विशिष्य वक्तुम्,

---

प्रसङ्गतः=अवसरतः। समगादीत् = समभाणीत्।

समप्रकाशः = तुल्यालोकः। पूर्णः = अखण्डः। कन्दरिणाम् = गिरीणाम्। कन्दरमन्दिरेषु = दरीसदनेषु। किरणकिरणः = दीधितिक्षेपकः। निर्गतकलङ्कपङ्कातङ्कः = दूरीभूतदुर्यशःकर्दमाशङ्कः। यशश्चन्द्रः = कीर्तिराकेशः। चमत्करोति = प्रकाशते। कलङ्कलेशस्यापि = दुर्यशोमात्राया अपि। पङ्कम् = मालिन्यम्। आशङ्क्य = सम्भाव्य। क्षुभ्यति = खिद्यते।

क्षमता = शक्तिः। विशिष्य = विविच्य। परतः = पश्चात्।

---

का कवि बूढ़ा मौलवी सम्राट के अत्यन्त कृपापात्र बैठा हुआ था। विभिन्न प्रकार की कहानियों तथा कविताओं से यवन-सम्राट् को प्रसन्न करते हुए मौल्वी साहब ने सम्राट् से कहा—

महाराज! रात एवं दिन में समान रूप से प्रकाशमान शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष में भी सर्वाङ्गपूर्ण, पर्वत की गुफाओं में किरण फैलाने वाला सर्वथा निष्कलङ्क आपका यशश्चन्द्र प्रकाशित हो रहा है। किन्तु इस यशश्चन्द्र के कलङ्क-लेश की भी कीचड़ लगने की आशङ्का से मेरे हृदय में कुछ क्षोभ हो रहा है।

दिल्लीश्वर—तुम्हारे कहने का तात्पर्य मैं नहीं समझ रहा हूँ।

अरबी कवि—वीरवर! स्पष्ट रूप में कहने का साहस तो मुझे नहीं

किन्तु यदि कश्चन चिरं भवता सह विहितसमरोऽपि पश्चात् करप्रदताम्, स्वमपि भवत्प्रजास्वेवान्यतमं मन्यमानः शिरो नमयन् समागच्छेत्; तत् तस्मिन् महाराजस्यातिदयादर्शनमतिमहत्ता सूचकम्।

दिल्लीश्वरः—मन्ये शिवमधिकरोति गीरियम्।

आरब्यकविः [ हस्तौ बद्ध्वा ] किमज्ञातं जगतीपतेः!

दिल्लीश्वरः—महामूर्खः शिव। मया आदर्तुमाकारितोऽपि प्रथम एव दिने राजसभायां किमपि प्राजल्पत्। ततोऽपि सुहर्म्ये स्थापितोऽपि सत्क्रियमाणोऽपि दिल्लीनगरवीथिकासु परितः पर्यटितुमारेभे। परस्सहस्रांश्च दिल्ली-वास्तव्यान् स्ववासगृहे आगन्तुमन्य-

---

करप्रदताम् = राजदेयदातृताम्। अतिदयादर्शनम् = अतिशयकृपाप्रकटनम्। अतिमहत्तासूचकम् = अत्युदारताबोधकम्।

गीः = वाणी। "गीर्वाग् वाणी सरस्वती" इत्यमरः।

आदर्तुम् = सत्कर्तुम्। आकारितः = आहूतः। सुहर्म्ये = शोभने प्रासादे। आगन्तुम् = आयातुम्। अन्वमन्यत = अनुमोदितवान्। महतः,

---

हो रहा है। किन्तु मेरा इतना ही निवेदन है कि यदि कोई व्यक्ति चिरकाल तक आपके साथ युद्ध करने के बाद भी पीछे चलकर आपको कर देने के लिए राजी होकर अपने को भी आपकी प्रजाओं में ही अन्यतम मानता हुआ आपके समक्ष शिर झुकाकर प्रस्तुत हो जाय तो उस शरणागत व्यक्ति के प्रति श्रीमान् का दया प्रदर्शन ही श्रीमान् के महत्त्व का सूचक होगा।

दिल्लीश्वर—मुझे लग रहा कि तुम शिव के बारे में कह रहे हो।

अरबी कवि—[ हाथ जोड़कर ] महाराज से क्या छिपा रह सकता है!

दिल्लीश्वर—देखो, शिव बहुत बड़ा मूर्ख है। मैंने तो उसे सम्मान करने की दृष्टि से ही बुलाया था प्रथम दिन ही वह राजसभा में बकने लग गया। उसके बावजूद भी मैंने उसे सुन्दर अट्टालिका में ठहरने को दिया और उसके सत्कार की भी व्यवस्था कर दी, फिर भी वह मूर्ख दिल्ली को

मन्यत । ततो महाकलकल–रोधनाय कोटपाल–सूचनानुरूपं प्रहरिणः स्थापिताः । वन्या एते न विदन्ति राज–सभा–व्यवहारम् ।

आरव्यकविः—महाराज ! उचितमेव शासनं वन्यानाम् । परं साम्प्रतं दिल्लीनगरे गृहे गृहे विपणौ विपणौ च सर्वैः शिवस्यैव कथा प्रस्तूयते—इति भविष्यति किं व्यवसितं महाराजैः ?

दिल्लीश्वरः—यदि स मर्य्यादां प्रतिपालयेत्, तर्हितोऽपि सत्कृत्य निवर्त्तयितुमेव सन्नोऽस्मि ।

आर०—विजयतां महाराजः !

---

कलकलस्य = कोलाहलस्य, रोधनाय = वारणाय । कोटपालस्य = नगरशान्तिरक्षकस्य, "कोतवाल" इति ख्यातस्य, सूचनानुरूपम् = रोधनानुकूलम् । वन्याः = आरण्यकाः ।

शासनम् = दण्डनम् । भविष्यति = आगामिनि काले । व्यवसितम् = निश्चितम् ।

मर्य्यादाम् = राजसभाप्रतिष्ठाम् ।

---

गलियों में घूमने लग गया और हजारों दिल्लीवासियों को अपने वास-गृह में आने जाने की अनुमति देदी । ऐसी स्थिति में जब कोतवाल की सूचना मिली तब मैंने कोलाहल को रोकने के लिये प्रहरियों को वहाँ नियुक्त कर दिया है । ये जङ्गली हैं न ! इन्हें इस बात का ज्ञान ही नहीं है कि राजसभा में किस तरह व्यवहार करना चाहिये ।

अरबी कवि—महाराज ! जङ्गलियों का शासन करना तो उचित ही है । परन्तु आज-कल दिल्ली नगर के घर-घर में दूकान-दूकान में सब के मुँह से शिव की ही चर्चा सुनाई दे रही है । इसलिए भविष्य में महाराज ने क्या करने का निश्चय किया है ?

दिल्लीश्वर—यदि वह मर्यादा का पालन करे तो अब भी मैं उसे सत्कारपूर्वक महाराष्ट्र लौट जाने देने के लिये तैयार हूँ ।

अरबी कवि—महाराज की विजय हो !

अथ कुमाररामसिंहं त्वरया समागच्छन्तमालोक्य, ऐकान्तिकं कार्य्यमाशङ्कमान आरव्य-कविरुदस्थात्, प्रणम्य च निवृत्तः। रामसिंहस्त्वागत्य हस्तमेकमुत्थाप्य प्रवणीभूय सादरमुवाच—महाराज! सम्प्रत्येव तातस्य पत्रं प्राप्तवानस्मि, त्रायतां त्रायतां महाराजः!

दिल्लीश्वरः—उपविश, उपविश, किमिव क्षुब्धोऽसि?

रामसिंहः—भारतराज! महान् क्षोभस्य विषयः।

दिल्लीश्वरः—विशकलय्य कथय।

रामसिंहः—[ उपविश्य, अञ्जलिं बद्ध्वा ] दिल्लीश्वर! तातो महाराष्ट्रराजं वशमानीय दिल्लीं प्रेष्य, स्वयं विजयपुराधीशेन युद्धमारभत।

दिल्लीश्वरः—[ आसन्दी-दण्डासक्त कूर्परे वाम-हस्त-तले कपोलं

---

ऐकान्तिकम् = एकान्ते भवम्, रहस्यम्। उदस्थात् = उत्थितः।
प्रवणीभूय = नम्रीभूय। तातस्य = पितुः।
आसन्दीदण्डे, आसक्तः कूर्परः = कफोणिः, बाहुमध्यभागः यस्य तस्मिन्।

---

उसके बाद कुमार रामसिंह को तेजी से महाराज के पास आते देखकर कवि ने सोचा कि कोई एकान्त वार्ता होगी और इसलिये वहाँ से उठ गया और महाराज को प्रणाम कर वहाँ से चल दिया। उधर रामसिंह ने आते ही महाराज को सलाम किया और नम्रता एवं आदर के साथ महाराज से निवेदन किया—"महाराज! अभी-अभी पिता जी का पत्र मिला है। अब रक्षा करें महाराज! रक्षा करें।"

दिल्लीश्वर—बैठो, बैठो, इतना घबराए क्यों हो?

रामसिंह—भारतराज! घबराने की तो बात ही आ पड़ी है।

दिल्लीश्वर—साफ साफ बतलाओ, क्या बात है?

रामसिंह—[ बैठने के बाद हाथ जोड़कर ] दिल्लीश्वर! महाराष्ट्रराज को किसी तरह वश में लाकर दिल्ली भेज देने के बाद पिता जी ने स्वयम् बीजापुर के साथ युद्ध छेड़ दिया है।

दिल्लीश्वर—[ कुर्सी की बाँह पर केहुनी रख कर बाँयीं हथेली पर

सस्याप्य भ्रुवौ किञ्चिदाकुञ्च्य विस्फारिताभ्यां नयनाभ्यां निपुणमीक्षमाणः ]

आम् ! ज्ञातम् ।

रामसिंहः—तत्र च द्विगुणैस्त्रिगुणैश्च शत्रुभिराक्रान्तः–इति तस्य महासङ्कटमुपस्थितम् ।

दिल्लीश्वरः–[ स्वगतम् ] अस्तु, जयसिंहः शिवश्च द्वावेव भारते दुर्दमनीयौ वीरौ, तदेकः कारागारे बद्धः, अपरश्च तत्र विनश्येच्चेत् साधु भवेत् । [ प्रकटम् ] ततः ?

रामसिंहः—राजाधिराज ! तातः सविनयं सेनासाहाय्यं वाञ्छति ।

दिल्लीश्वरः—किमिति ? तव पिता तस्मिंस्तु समये साभिमानं तावत्यैव सेनया प्रस्थितः, अधुना च सेनान्तरमपि वाञ्छति ।

---

वामहस्ततले = दक्षेतरकरनिम्नभागे । आकुञ्च्य = सङ्कोच्य ।

दुर्दमनीयौ = दुःखेन दमयितुं शक्यौ । अवशीकरणीयाविति यावत् । विनश्येत् = म्रियेत । साधु = शोभनम् ।

---

गाल रख कर भौंहें टेढ़ी कर रामसिंह की ओर कड़ी नजर से देखता हुआ ] अच्छा समझ गया ।

रामसिंह—उस युद्ध में मेरे पिता जी के ऊपर शत्रु की दूनी-तिगुनी सेना ने आक्रमण कर दिया है जिससे उनके लिये बहुत बड़ा संकट उपस्थित हो गया है ।

दिल्लीश्वर—[ मन ही मन ] ठीक तो है, भारतवर्ष में दुर्दमनीय वीर तो दो ही हैं—जयसिंह और 'शिव' । इन दोनों में एक 'शिव' तो कैद में ही है और दूसरा जयसिंह भी यदि मर जाय तो अच्छा ही होगा । [ प्रकट रूप में ] तो क्या ?

रामसिंह—राजाधिराज ! पिताजी विनयपूर्वक आपसे सैनिक सहायता चाहते हैं ।

दिल्लीश्वर—क्यों ? उस समय तो तुम्हारे पिता अभिमान से चूर होकर थोड़ी ही सेना लेकर यहाँ से चले थे, फिर आज अधिक सेना क्यों चाह रहे हैं ?

रामसिंहः—राजाधिराज ! अवितर्कितमिदं सम्पन्नम्, त्रायतां महाराज ! [ इति चक्षुषोर्नीरं बभार ]

अव०—कुमार ! पत्रं लिख—यत् सम्प्रति सेना प्रेषयितुं न शक्यते।

राम०—विश्वम्भराधीश्वर ! तात सदा प्राणानगणयन् श्रीमन्तमन्ववर्तत। दैवादद्य प्राप्तसङ्कटश्चेद्रक्षणीयो महामान्यैः !

अव०—मम किं करणीयं तदहं वेद्मि !

राम० [ अधोमुखस्तूष्णीमवर्तत ]

अव०—अप्यन्यदपि किञ्चित् तव पित्रा लिखितम् ?

राम०—[ अञ्जलिं बद्ध्वा ] अस्ति किञ्चित् ?

अव०—सपदि कथय, न मेऽवसरो बहु श्रोतुम् !

---

अवितर्कितम्=अविचारितम्। बभार=दधार।

---

रामसिंह—राजाधिराज ! यह घटना तो अचिन्तितपूर्व आ पड़ी। ऐसी परिस्थिति में महाराज कृपा कर बचाएँ [ इतना कहते-कहते रामसिंह की आँखों में आँसू भर आए ]

औरङ्गजेब—कुमार ! तुम उन्हें पत्र का उत्तर दे दो कि अभी तो और सेना भेजने में मैं असमर्थ हूँ।

राम०—महाराज ! अपने प्राण की भी उपेक्षा करके पिता जी श्रीमान् का अनुसरण करते रहे हैं। आज यदि दौर्भाग्यवश उनके ऊपर विपत्ति आ पड़ी है तो श्रीमान् को उनकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए।

और०—मुझे क्या करना चाहिये—यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

राम०—[ सिर झुकाके चुपचाप बैठे रहे ]

और०—तुम्हारे पिता ने और भी कुछ लिखा है ?

राम०—[ हाथ जोड़कर ] जी हाँ, एक बात और भी उन्होंने लिखी है।

और०—जल्दी बतलाओ, बहुत सुनने का समय मेरे पास नहीं है।

राम०—[ अमुया भङ्गयैव हताशो मन्दमाह ] आर्य्य ! तातः शिवं प्रत्यजानात्-यद् "दिल्लीं गतस्य भवतो न काऽपि विपद् भविष्यति, कुशलेन च निवर्त्तयिष्यते"-इति ।

दिल्लीश्वरः—तत् ?

राम०—वीरवर ! राजपुत्राणां प्रतिज्ञा मिथ्या न भवति-इति पालनमेतस्याः श्रीचरणानामधीनम् ।

अव०—मूढा राजपुत्राः, यत् पराधीनेऽपि विषये एवं प्रतिजानन्ति ।

राम०—[ कटु वचनमिदं विषमिव पीत्वाऽधोमुखः ]

अव०—चेदेव न भवेत् ?

राम०—तत आत्मविसर्ज्जनमपि पित्रा प्रतिज्ञातम् ।

---

प्रत्यजानात् = प्रतिज्ञातवान् ।

आत्मविसर्जनम् = जीवनसमर्पणम् ।

---

राम०—[ उसकी बातचीत के ढङ्ग से ही हताश होकर मन्द स्वर से बोले ] आर्य ! पिताजी ने शिवाजी से प्रतिज्ञा की थी—"दिल्ली जाने पर आपके ऊपर किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आयेगी और आप कुशलपूर्वक वहाँ से महाराष्ट्र लौट आयेंगे" ।

औरं०—तो क्या ?

राम०—वीरवर ! राजपूतों की प्रतिज्ञा झूठी नहीं होती है । अतः अब पिताजी की प्रतिज्ञा का पालन श्रीमान् के ही अधीन है ।

औरं०—राजपूत तो मूर्ख हुआ करते हैं, तभी तो पराधीन विषय में भी प्रतिज्ञा कर बैठते हैं ।

राम०—[ यवन सम्राट् के इस कटु वचन को जहर की भाँति पानकर (सुनकर ) शिर झुकाये बैठे रहे ]

औरं०—यदि तुम्हारे पिता की प्रतिज्ञा पूरी न हुई तो ?

राम०—तो पिताजी ने प्राण त्याग की भी प्रतिज्ञा कर ली है ।

अव०—अहो ! प्रतिज्ञा ! अहो बलम् ! [ विचार्य ] कुमार ! तव पित्रा सेनापति कार्यं सम्पादितम्, साम्राज्य-कार्यञ्च मया सम्पादयिष्यते। नात्र वचनीयं किमपि बालेन भवता। गम्यताम्, वय कार्य्यान्तरे सक्ता !

तदाकर्ण्य हतोत्साहो विवर्णः कुमार-रामसिंह सादराऽऽचार प्रतस्थे।

तावदुपातिष्ठत तुरग नर्त्तयन् दूरादेवाङ्गीकृत पादचारः कृत-प्रणाम कुमार मायाजिह्मः।

मायाजिह्मः—तात ! यो मा मम भगिनी च अपहृत्यापि स्ववन्धु-मिव रक्षितवान्, सादरञ्च प्रतियापितवान्, स एव शिवराजः प्रहरि-सवृतोऽस्ति—इति क्षुभ्यता हृदयेन स्वयमायातोऽस्मि, दयनीय एय।

---

सम्पादयिष्यते = विधास्यते। विवर्णः = म्लानः।

अङ्गीकृतपादचार = स्वीकृतपादगमनः, विनयप्रदर्शनार्थम्।

अपहृत्य = चौर्येण वधमानीय। प्रतियापितवान् = प्रत्याव-र्तितवान्। प्रहरिसवृत = यामिकरक्षितः। क्षुभ्यता = व्याकुलेन।

---

और०—अहो ! कैसी प्रतिज्ञा ! कैसी शक्ति ! [ सोचकर ] कुमार ! तुम्हारे पिता ने सेनापति का काम कर लिया है, राजा का जो काम है वह मैं करूँगा। तुम अभी लड़के हो, तुम्हें इस विषय में कुछ नहीं बोलना है। जाओ, मुझे बहुत से अन्यान्य काम हैं।

यह सुनकर हतोत्साह एवं विवर्ण रामसिंह सम्राट् के प्रति आदर व्यवहार ( सलाम ) करते हुए वहाँ से उठ गये।

तबतक अपने घोड़े को नचाते हुए दूर से ही घोडे से उतर कर पैदल आनेवाला कुमार मुअज्जम प्रणामपूर्वक वहाँ आ पहुँचा।

माया०—पिताजी ! जिन शिवराज ने अपहरण करने के बाद भी मुझे तथा मेरी बहन की रक्षा अपने बन्धुओं की तरह की और पश्चात् आदर के साथ हम लोगों को यहाँ भेज दिया उन्हें आज प्रहरियों की देख रेख में वर्तमान देखकर मेरे हृदय में बहुत चोट आई है, इसी लिये मैं स्वयम् आया हूँ। आपको शिवराज के ऊपर दया करनी चाहिये।

अव०—[ विहस्य ] स वां गृहीत्वाऽपि भयेन सत्कृतवान्, न तु सौहार्देन, जयसिंहेन चाऽऽक्रान्तः भवन्तौ भयेन दिल्लीं प्रेषितवान्, न तु सौहार्देन। अहञ्च तस्मिन् सदैव दये, किन्तु मूढोऽयं वन्यः, 'केन किमालपेत्'इति संवृतोऽस्ति। मर्यादां न भङ्क्ष्यति चेद् महाराष्ट्र देशं कुशलेन यास्यति।

माया०—तात ! एतद्देशीय-वायु-जलादिकं नानुकूलमेतस्य-इति प्रत्यहं शीर्य्यति, वैवर्ण्यञ्चाऽऽसादयति। तदेतस्मै स्वदेशे-प्रतिनिर्वर्त्तितुमेव आज्ञा-दानेन दयनीयम्।

अव०—तदपि जाने। आसन्नोऽयमाषाढमासः, नव-जलद-जल-पूर-पूरिताः सहस्रशो नद्योऽजगरा इव सर्प्पिष्यन्ति। एते

---

दयनीयः = कृपार्हः। सौहार्देन = मैत्र्या। आक्रान्तः = आक्रमणोद्देश्यीकृतः। दये = कृपां करोमि। संवृतः = गुप्तः, प्रहरिभिरिति शेषः। भङ्क्ष्यति = विनाशयिष्यति। कुशलेन = कल्याणेन।

शीर्य्यति = क्षीयते। वैवर्ण्यम् = विकृत शरीररागम्।

आसन्नः = समीपवर्ती। नवजलदानाम् = नूतनवारिधराणाम्, जल-

---

और०—[ हंसकर ] पकड़ने के बाद तुम दोनों का जो उसने सम्मान किया था वह प्रेम से नहीं किन्तु मेरे भय से और जब जयसिंह के आक्रमण का उसे डर हुआ तब उसने तुम दोनों को दिल्ली भेज दिया है न कि प्रेम से उसने ऐसा किया है। मैं भी उसपर सर्वदा दया करता हूँ, परन्तु यह जङ्गली मूर्ख है, पता नहीं कब किससे किस तरह की बातें कर बैठेगा, इसी लिये मैंने उसे प्रहरियों के बीच रखने की व्यवस्था की है। यदि वह मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करेगा तो अवश्य ही सकुशल महाराष्ट्र लौट जायेगा।

माया०—पिताजी ! शिवराज के स्वास्थ्य के लिये यहाँ का जलवायु अनुकूल नहीं है, इसलिये दिन-प्रतिदिन उनका स्वास्थ्य क्षीण हो रहा है और सारा शरीर पीला पड़ गया है। अतः आप उनके ऊपर अभी यही कृपा करें कि उन्हें अपने देश लौट जाने की अनुमति दे दें।

और०—मैं यह भी जानता हूँ। किन्तु आषाढ का महीना आने ही

चाश्वयानाः। इमे दिल्लीतः प्रस्थिता नदीप्रवाहे पतिताः स्रोतोभिर्नीताश्चेन्नङ्क्ष्यन्ति, तीरेषूषिताश्चेज्जल-पात-पीडिता ज्वरग्रस्ताः शोचनीयां दशां यास्यन्ति। मार्गेषु वैद्यमलभमानाः पश्चात्ताप-तप्ताः को जानाति कां दशामापद्येरन्! अत्र च मासेन वायु-जलमनुकूलमिव ज्ञास्यते, ज्वरादि-सम्भवे च राजवैद्याश्चिकित्सां विधास्यन्ति, चातुर्मास्यानन्तरं च सुखेन स्वदेशं यास्यन्ति।

माया०—तात! अथ किमित्येष प्रहरि-बन्धः?

---

पूरैः = वारिप्रवाहैः, पूरिताः = भरिताः, अजगरा इव = विशालकायाः सर्पा इव, सर्पिष्यन्ति = गमिष्यन्ति। अश्वयानाः = घोटकवाहनाः। स्रोतोभिः = धाराभिः। नङ्क्ष्यन्ति = विनाशं यास्यन्ति। तीरेषु = तटेषु। उषिताः = कृतवासाः। पश्चात्तापतप्ताः = अनुतापखिन्नाः। आपद्येरन् = प्राप्नुवीरन्।

प्रहरिबन्धः = यामिकावरोधः।

---

वाला है, इसलिये नये बादलों की नवीन वर्षा से भरी हुई हजारों नदियाँ अजगरों की तरह बहती रहेंगी। ये मराठे घोड़े पर यात्रा करनेवाले हैं। अतः इस समय दिल्ली से प्रस्थान करने पर यदि रास्ते में कहीं नदी प्रवाह में आ पड़े तब तो उसकी धारा मे प्रवाहित होकर विनष्ट ही हो जायेंगे और यदि नदियों के तट पर बीच-बीच में रुकना पड़ा तो वर्षा से पीड़ित होकर ज्वरग्रस्त हो जायेंगे और इस प्रकार इनकी दशा बहुत बुरी हो जायेगी। और भी, रास्ते में वैद्य के न मिलने पर जो इनके मनमे असमय मे दिल्ली से प्रस्थान करने का पश्चात्ताप होगा उससे तो इनकी कैसी दशा हो जायेगी—इसको कौन जानता है! किन्तु यहाँ महीने भर में ही यहाँ की जलवायु इनके लिये अनुकूल हो जायेगी, और यदि ज्वर-ताप आदि की सम्भावना होगी तो राजवैद्य इनकी चिकित्सा भी करेंगे और फिर चातुर्मास्य के बाद ( कार्तिक महीने मे ) अपने देश लौट जायेंगे।

माया०—पिताजी! अच्छा तो इन्हें प्रहरियों के बीच क्यों रखा गया है?

अव०—वत्स ! जानीषे-एष धूर्तो मूर्खश्च । मूर्खतया राजसभायां किमपि जजल्प; यथा तस्य राजदर्शनं निषिद्धम् । धूर्त्ततया चैष कैश्चित् कपट-संन्यासिभिरालपतीति श्रूयते । तत एष प्रहरिबन्धः । त्वं मम बाह्यं जीवनमपि नीति-विरुद्धमाचरेः; तन् त्वां राजधर्ममासाद्यावश्यं दण्डयेयम् , कस्तत्र वराकः पार्वतोन्दुरुः ? योऽहं राजधर्म्मं पालयितुं सहोदरान् कथावशेषानकरवम् ; याम् स्मारं स्मारं रोदिमि; यश्चाहं लालक-पालकं पितरमपि राजधर्म्ममेवाङ्गीकृत्य निगड-बद्धमकार्षम् ; यत्संवाद-श्रवणेन विदीर्य्यति हृदयम् ; स एवाहं जघन्यस्य वन्यस्य शिवस्यार्थे राजधर्मञ्च

बाह्यम् = बहिर्भवम् । जीवनम् = प्राणनम् । द्वितीय आत्मेत्यर्थः । परमस्नेहीति यावत् । नीतिविरुद्धम्=राजनियमाननुकूलम् । आचरेः=कुर्याः । सहोदरान् = भ्रातॄन् । कथावशेषम् = कथामात्रेणावशिष्टान् । लालकम् = प्रेमव्यवहारकम् , पालकम् = रक्षितारम् । निगडबद्धम् = शृङ्खलायन्त्रितम् । जघन्यस्य = नीचस्य ।

और०—बेटा ! तुम जानते हो—यह 'शिव' धूर्त भी है और मूर्ख भी । अपनी मूर्खता के कारण ही राजसभा में भी यह बातचीत करने लग गया था जिसके चलते इसे मेरे दर्शन से भी वञ्चित होना पड़ा और इसकी धूर्तता में यही प्रमाण है कि हम ने सुना है कि यह कुछ कपटी सन्यासियों के साथ बातचीत किया करता है । इसी लिये इसे प्रहरियों के संरक्षण में रखा गया है । देखो बेटा ! तुम मेरी आत्मा हो, परन्तु तुम भी यदि नीति के प्रतिकूल आचरण करोगे तो तुम्हें भी राजधर्म के अनुसार मैं अवश्य ही दण्ड दूँगा, फिर यह नीच पहाड़ी चूहा कौन है ? जो मैंने राजधर्म के पालन के लिये उन सगे भाइयों की भी हत्या कर दी जिनकी याद कर मैं आज भी रो रहा हूँ, जो मैंने राजधर्म के स्वीकार के कारण ही लालन-पालन करनेवाले पिताजी को भी कैद कर रखा था जिनकी दयनीय दशा को सुनते ही मेरा हृदय विदीर्ण होने लग जाता है वही मैं इस नीच जङ्गली 'शिव' के लिये

त्यक्ष्यामि। नैतेषु राजकार्य्येषु तव हस्तक्षेपाधिकारः।

एवं कथयन्नेव मेष-महिषादि-युद्ध प्रस्तुतमिति संवादं प्राप्य, सजयध्वनि समुत्थाय, सौवर्ण-कौशेय-पटावृतं रत्ननिचय-चञ्चचाक-चक्यं नरयानमारुह्य, सत्वर-सत्वरं धावद्भिश्छत्र-चामरकनक-दण्डादि-मण्डित-करैराश्रियमाणस्ततः प्रतस्थे।

इतो महाराष्ट्रराजोऽपि सर्वमेतदाकर्ण्य चिन्तया शोकेन तापेन कोपेन च वीचिभङ्गैरिव विविध-भाव-भङ्गैः पारावार इव क्षुभितः, भूषणेन बहुशः संवर्द्धितोत्साहः, गौरेण माल्यश्रीकेण च गुप्तं सम्मन्त्र्य, पूर्वप्राप्तानामादेश-पत्राणामेकं दत्त्वा, "एवमिदमेवमिदमिति" बहूक्त्वा मथुरां प्रति भूषणकविमपि प्रास्थापयत्।

---

संवादम् = समाचारम्। सौवर्णकौशेयपटावृतम् = सुवर्णतन्तुपट्टसूत्र-निर्मितवसनाच्छन्नम्। प्रतस्थे = प्रस्थितः।

वीचिभङ्गैरिव = लहरिभङ्गैरिव। विविधैः = अनेकप्रकारैः, भाव-भङ्गैः = विचारच्छेदैः, पारावार इवेत्युपमा। प्रास्थापयत् = प्रेषितवान्।

---

अपने राजधर्म को कदापि नहीं छोड़ सकता। ये राजकार्य हैं, इनमें तुम्हें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है।

इस तरह औरङ्गजेब अपने लड़के को समझा ही रहा था कि उसे खबर मिली कि भेंड़-भैंसों की लड़ाई शुरू हो गई है। खबर पाते ही जयध्वनि-पूर्वक वहाँ से उठ गया और सोने के तारों से सहित रेशमी वस्त्र से आवृत तथा जड़े हुए रत्नों के समूह से चमकते हुए नरयान (= मनुष्य के द्वारा खींचा जानेवाला रथ) पर चढ़कर बड़ी शीघ्रता से पीछे दौड़नेवाले छत्र-धारी, चामरधारी एवम् दण्डधारियों के साथ वहाँ से चल दिया।

उधर इन सारी घटनाओं को सुन कर चिन्ता, शोक, ताप तथा कोप आदि विविध भाव भङ्गिमाओं से प्रचण्ड तरङ्गों से महासमुद्र के समान क्षुब्ध, तथा भूषण कवि द्वारा अनेक प्रकार से प्रोत्साहित महाराष्ट्रराज ने भी गौरसिंह तथा माल्यश्रीक के साथ गुप्त मन्त्रणा करने के पश्चात् पूर्व-प्राप्त अनुमति-पत्रों में से ही एक अनुमतिपत्र देकर, बहुत कुछ समझा बुझा कर भूषण कवि को भी मथुरा के लिए रवाना कर दिया।

दिल्ली-नगर-वास्तव्याः सर्वेऽपि सज्जना गृहे गृहे चत्वरे चत्वरे सरणौ सरणौ विपणौ विपणौ कर्णे कर्णे प्रतिकथं प्रतिप्रस्तावं प्रतिकिंवदन्ति प्रत्याभाणकञ्च महाराष्ट्रेश्वरदिल्लीश्वरयोराचारमेवाऽऽलोचन्ते स्म ।

तत्र हि केचन—'आः ! कदर्यमाचरितं दिल्लीवल्लभेन' इति; कतिचन 'कष्टं भोः ! कष्टं यन्नामश्रवणेनापि गर्भानपीपतन् यवनसीमन्तिन्यः, सोऽयं मुद्रा-पञ्चक-वेतनैः प्रहरि-हतकै रुद्ध' इति; इतरे 'जातोऽत्र नीति-निष्णातस्यापि भ्रमो यदेष ईदृशं प्रत्यगात्'

---

सरणौ = मार्गे । विपणौ = आपणमार्गे । प्रतिकथम् = कथां कथां प्रति । प्रतिकिंवदन्ति = प्रतिजनश्रुति । "किंवदन्ती जनश्रुतिः" इत्यमरः । प्रत्याभाणकम् = प्रतिदृष्टान्तलघुवचनम् । आलोचन्ते स्म = विचारयन्ति स्म ।

कदर्य्यम् = नीचतापूर्णम् । अपीपतन् = न्यपातयन् । यवनसीमन्तिन्यः = म्लेच्छरमण्यः । अत्र = अस्मिन् विषये । नीतिनिष्णातस्यापि =

---

उस समय दिल्ली के निवासी सभी सज्जन घर में, चौराहे पर, सड़क पर, गली में अपनी सभी कहानियों में, सभी प्रस्तावों में, सभी किंवदन्तियों की चर्चा करते समय, सभी लोकोक्तियों की व्याख्या के प्रसङ्ग में महाराष्ट्र राज तथा दिल्ली सम्राट् के व्यवहारों की ही आलोचना किया करते थे ।

उन सज्जनों के बीच कुछ लोग कहते थे—"ओह ! दिल्लीपति ने बहुत ही निन्द्य कार्य किया है ।" कुछ लोगों का कहना था—"कितनी दुःखद स्थिति है कि जिन महाराष्ट्र राज शिवा जी के नाम सुनने पर भी यवन-युवतियों का गर्भ-पात हो जाया करता था वही वीर शिवाजी आज पाँच रुपये मासिक वेतन पर सेवा करने वाले क्षुद्र प्रहरियों द्वारा प्रतिरुद्ध हो गए हैं !", अन्य लोग सोच रहे थे—"नीति निपुण होने भी पर शिवा जी ने इतनी भूल अवश्य कर दी कि वे इस क्षुद्र से मिलने आ गए";

इति; अपरे 'इयमपि काचन ग्रह-दशा भुज्यते शिवराजेन, कथमन्यथा शार्दूल-पराक्रमोऽपि निगृहीतः स्यात् शशकायितैः'–इति; अन्ये च 'सत्यं ग्रहदशा, क्षयते रुग्णोऽपि महाराष्ट्रराजः'–इति प्रोचुः।

महाराष्ट्रराजाध्युषित-हर्म्यस्य द्वारे राजकीयाः प्रहरिणः, तदन्त-र्द्वितीय-द्वारे महाराष्ट्र-प्रहरिणः। प्रथम-द्वारं प्रविष्टा अपि द्वितीय-द्वारे रुद्ध्यन्ते, ततोऽपि सूचित-स्वाभिप्राया प्राप्तवदाज्ञा पारयन्ति प्रवेष्टुम्।

नगरेऽद्य महान् कलकलः, मार्गे मार्गे शृङ्गाटके शृङ्गाटके भेरीनादः। गृहे गृहे शृङ्गारः। पथिषु यानानां पादचारिणां च

---

राजनीतिरपहितस्यापि। प्रत्यगात् = प्रत्यगच्छत्। शार्दूलपराक्रमः = सिंहबलः। शशकायितैः = शशकतुल्यैः। क्षयते = क्षीणो भवति। रुग्ण = रोगाक्रान्तः।

शृङ्गाटके शृङ्गाटके = प्रतिचतुष्पथम्। महाप्रसाधः = महान्

---

कुछ लोग इस तरह भी कहा करते थे—"शिवा जी किसी ग्रह दशा को ही भोग रहे हैं, नहीं तो सिंह सदृश पराक्रम वाले व्यक्ति का खरहे की तरह अगद व्यक्ति के द्वारा कैद कर लिया जाना कैसे सम्भव हो सकता है!"; और कुछ अन्य सज्जन भी इसका समर्थन करते थे—'अवश्य ही यह इनकी ग्रह-दशा है, इसी लिए तो रुग्ण हो कर दिनानुदिन दुर्बल भी होते जा रहे हैं!"

महाराष्ट्रराज जिस अट्टालिका में निवास कर रहे थे उसके प्रथम द्वार पर यवन सम्राट् के और दूसरे द्वार पर महाराष्ट्र के प्रहरी थे। यदि किसी प्रकार लोग प्रथम द्वार को पार भी कर लेते थे तब भी दूसरे द्वार पर उन्हें रोक दिया जाता था और फिर जब वे भीतर जाने का कारण बतला कर दूसरे द्वार के मराठे प्रहरियों से भीतर प्रवेश करने की आज्ञा पा लेते थे तभी भीतर जा पाते थे।

उस दिन दिल्ली नगर में बहुत कोलाहल मचा हुआ था। सड़कों तथा चौराहों पर बाजे बज रहे थे। घर-घर में सजावट हो रही थी। सड़कों

महासम्बाधः। किमिदं किमिदमिति निश्चित्य ज्ञातं यद्—यवनानां कश्चन वार्षिकः पर्वसमयः। स्थाने स्थाने कदलीस्तम्भ-रचना, स्थाने स्थाने च पिपासितेभ्यो हिमोपल-शीतलं सितोपल-जलं पाय्यते। महाराष्ट्रराजस्य हर्म्य-द्वारि प्रतिसायं बहवो भिक्षुकाः, सन्यासिनः, पङ्गवः, खञ्जाः, एडाः, कुब्जाः, अन्धाश्च एकत्र भवन्ति; येभ्यः प्रत्यहमन्नं वितीर्य्यते महाराष्ट्रपतिना। किन्तु समयोऽयं दिल्ली-नगरे यवनानां महामहोत्सवस्येति न शक्यते निरवकाशे तस्मिन् घण्टापथे भिक्षुक मण्डली-निवेशः—इति कोटपालेन सूचितं यत्-'षड् दिनानि यावन्मार्गोपरोधो न विधेयः, भिक्षुकेभ्यः किमपि

सम्मर्दः। "सङ्कट ना तु सम्बाधः" इत्यमरः। पर्वसमयः=उत्सवसमयः। हिमोपलशीतलम्=दृढीभूतजलशीतलम्। हिमोपलः = "बर्फ" इति लोके। सितोपलजलम्=शर्करामिश्रं वारि। पङ्गवः=जङ्घाहीनाः। "श्रोणः पङ्गावि" इत्यमरः। खञ्जाः=खोडाः। एडाः =बधिराः। कुब्जाः= 'कुबडा' इति ख्याताः। अन्धाः=नेत्रशून्याः। प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्। निरवकाशे = जनसम्मर्दपूरिते। भिक्षुकमण्डलीनिवेशः = याचक-समूहस्थितिः। मार्गोपरोधः=सरणिप्रतिबन्धः। वितरणीयम्=देयम्।

पर रथ आदि यान तथा पैदल चलने वालों की बहुत भीड़ लगी थी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उस दिन यवनों का कोई वार्षिक पर्व था। जगह जगह पर केले के स्तम्भ खड़े किये हुये थे, कहीं-कहीं प्यासे पथिकों को बर्फमिश्रित शरबत पिलाया जा रहा था। महाराष्ट्रराज की अट्टालिका के द्वार पर प्रतिसन्ध्या बहुत से भिक्षुकों, संन्यासियों, लङ्गड़ों, खोड़ों, बहरों, कुबड़ों और अन्धों की जमघट होती थी और महाराष्ट्रराज उन्हें खाने पीने को दिया करते थे। किन्तु उस दिन दिल्ली नगर में यवनों के महामहोत्सव के कारण राजमार्ग पर इतनी भीड़ थी कि भिक्षुकों की मण्डली का वहाँ आना (उस दिन) सम्भव नहीं था। अतः कोतवाल ने आकर सूचना दी कि उस दिन से लेकर छः दिनों तक रास्ते में भिक्षुक मण्डली के यातायात से विघ्न-बाधा नहीं प्रस्तुत करना है, यदि उन्हें भिक्षुकों को कुछ देनी

भोज्यादि देयञ्चेद नगराद् वहिर्यमुनातटे भृत्यद्वारा प्रेष्यम्, तत्रैव च वितरणीयम्।"

आज्ञानेतामाप्यातितरां प्रासीदन् महाराष्ट्र–वीरा। महाराष्ट्रराजो रोगग्रस्त इत्याकलय्य च सुमुदिरे द्विषः भिक्षुकाश्च प्रत्यहं यमुनातटे एव शष्कुलीः, अपूपान्, मोदकान्, पेटाः, इण्डरिकाश्च प्राप्य परस्सहस्रेराशीराशिभिः समवर्द्धयन्।

एकदा भृत्य-वेषेण गौरसिंहः स्वयमपि मध्यभागावलम्बि–मिष्टान्न–पेटावलम्ब–दण्डाग्रमेकतः स्कन्धे कृत्वा, अपर–प्रान्त–लग्न–स्कन्धेन भृत्येन सह कालिन्दी–तटमागत्य, पञ्जराद्बहिर्निर्गतः कीर इव निःश्वस्य भिक्षुकेभ्यो भोज्यमर्पयितुमारब्धवान्। तस्मिन्नन्धकार–मिश्रिते

---

आप्य = लब्ध्वा। आङ्प्रश्लेषोऽत्र। प्रासीदन् = प्रसन्ना जाताः।

शष्कुली = पूरिकाः। अपूपान् = पुवान्। "पूपोऽपूपः स्यादि" त्यमरः। मोदकान् = लड्डुकान्। पेटाः = "पेडा" इति ख्याताः। इण्डरिकाः = "वड़ी" इति ख्याताः।

मध्यभागावलम्बिन्याः, मिष्टान्नपेटानाः, अवलम्बस्य = आधारस्य,

---

है तो नगर के बाहर यमुना के तट पर सारा देय पदार्थ सेवकों द्वारा भेजवाकर बँटवा दें।

इस तरह की आज्ञा पाकर महाराष्ट्र-वीर बहुत ही प्रसन्न हो उठे। शिवाजी को रोगग्रस्त जानकर उधर शत्रुमण्डली के हृदय में भी प्रसन्नता हो रही थी। इधर भिक्षुक लोग भी प्रतिदिन महाराष्ट्रराज की कृपा से यमुनातट पर ही पूरियाँ, पूए, मिठाइयाँ, पेडे तथा बड़ियाँ पा पाकर शिवाजी को असंख्य आशीर्वाद दे रहे थे।

एक दिन सेवक के वेष में ही स्वयम् गौर सिंह भी मध्य भाग में लटकती हुई मिठाई की पेटी से युक्त भार वाहक दण्ड के एक किनारे को अपने कन्धे पर और दूसरे को एक भृत्य के कन्धे पर रख कर यमुना-तट निकल आए और पिञ्जड़े से छुटे सुग्गे के समान चैन की साँस लेकर

वारुणी-चुम्बनेन मत्तस्येव मार्त्तण्डस्य, कोमले प्रकाशे केनापि "राघवाचार्य्यस्य आशीर्य्यन्त्र-वेष्टनमिदं पठित्वा राज्ञे देयम्"—इत्युक्त्वा हस्ते समर्पितं चतुःपञ्चकृत्वश्च भुग्नितं रक्त-सूत्र-वेष्टितं भूर्जत्वक्-पत्रकं दृष्टम्। केन दत्तमिति विचिन्वन्नपि तमपरिचिन्वन् तूष्णीं सन् कक्षगुटिकायां संस्थाप्य परावृत्तः। स्ववासस्थानमागत्य, अतिरहस्यम्, ऊर्द्ध्वतन-गृहमाश्रित्य, महाराजमाहूय, अनन्यश्राव्यं पत्रमेवमपठत्—

---

दण्डस्य, अग्रम्। अपरप्रान्ते = द्वितीयभागे, लग्नः रन्ध्रो यस्य तेन। अर्पयितुम् = दातुम्। वारुणीचुम्बनेन = मदिरापानेन, सूर्यपक्षे पश्चिमाशासम्पर्केण। मत्तस्य = मदाघूर्णितस्य। कोमले = मृदुनि। भुग्नितम् = न्युब्जीकृतम्। भूर्जत्वक्-पत्रकम् = भूर्जत्वचि लिखित पत्रकम्। विचिन्वन्नपि = अन्वेषयन्नपि। अपरिचिन्वन् = अनध्यवस्यन्। अतिरहस्यम् = नितान्त गुप्तम्। अनन्यश्राव्यम् = अनितरश्रवणार्हम्।

---

भिक्षुकों में खाद्य पदार्थ बाटने लग गए। बाँटते समय ही मदिरा-सेवन से उन्मत्त व्यक्ति के व्यामोह निमित्त अत्यल्प ज्ञान के समान पश्चिम दिशा के चुम्बन करने से उन्मत्त (अस्त प्राय) सूर्य के अन्धकार निमित्त मन्द प्रकाश में किसी ने "राघवाचार्य द्वारा प्रेषित यह आशीर्वाद यन्त्र का गाँठ है, इसे पढ़ कर आप महाराज को दे देंगे" यह कह कर चार-पाँच बार (परत) लपेटा हुआ, लाल धागे में बन्धा भोजपत्र पर लिखा हुआ पत्र उनके हाथ में दे दिया। किसने दिया इसकी खोज करने पर भी जब उस व्यक्ति का पता नहीं लग पाया तब गौर सिंह अपने कच्छे में उसे छिपा कर वहाँ से अपने शिविर को लौट गए। अपने शिविर पहुंच कर अत्यन्त गुप्त रूप में महाराज को ऊपर के कमरे में बुला कर गौरसिंह उस पत्र को पढ़ने लगे—

"विजयोऽस्तु महाराजस्य। महाराष्ट्र-देशाद् दिल्ली-पर्य्यन्तं सहस्रशो भावत्का वीरा विविध-वेषैः सञ्चरन्ति। दिल्ली-नगरमपि सहस्रशः प्रविष्टाः सन्ति, यमुनायां शतशो नावो युष्मदीयैर्गुप्त-भटैः पूरिता मथुरातो दिल्लीपर्य्यन्तं प्रत्यहं सर्पन्ति। चत्वारि दिनानि यावत् सुभगो दिल्ली-त्यागावसरः"।

सवमेतदाकर्ण्य राघवाचार्य्यं कञ्चन निजं परमहितैषिणं मन्यमानौ तौ माल्यश्रीकमप्याकार्य एवमेवमिति बहुशः समालपितवन्तौ। परतो महाराष्ट्रराजेनोक्तम्—"परश्वस्तर्हि"! ताभ्यामप्युक्तम्–'आम! परश्व, भगवति भास्करे पश्चिमसमुद्रं स्पृशति" एवं ते स्थिरयित्वा सोपान-परम्परयाऽवरुह्य भोजनादि-व्यापार

---

सञ्चरन्ति = भ्रमन्ति। युष्माकमेभिः युष्मदीयैः। सर्पन्ति = गच्छन्ति। सुभगः = शोभनः।

परश्वः = "परसों" इति लोकेऽपभ्रंशीभूतम् अव्ययम्। पश्चिमसमुद्रम् = वारुणवारिधिम्। स्पृशति = चुम्बति, सप्तम्या रूप, सूर्यास्तमनवेलायामिति यावत्। स्थिरयित्वा = निश्चित्य। अवरुह्य = नीचैरागत्य। पर्य्यङ्कमा·

---

"महाराज की विजय हो। महाराष्ट्र देश से लेकर दिल्ली तक आपके हजारों वीर विभिन्न वेश-भूषाओं में घूम रहे हैं। दिल्ली नगर में आपके बहुत से वीर घुस चुके हैं। यमुना में भी आपके गुप्त वेष योद्धाओं से परिपूर्ण सैकड़ों नाव प्रतिदिन मथुरा से दिल्ली तक आ रहे हैं। और चार दिनों तक दिल्ली से बाहर निकल आने का बड़ा ही सुअवसर है।"

पत्र में लिखी बातें सुन कर राघवाचार्य को अपना अत्यन्त हितैषी समझने वाले महाराष्ट्र राज तथा गौर सिंह ने माल्यश्रीक को भी वहाँ बुलाया और उनसे भी सारी बातें बतलाईं। बाद में महाराष्ट्र राज ने कहा—"अच्छा तो परसों···!" इसमें उन दोनों ने भी सम्मति प्रकट की—"जी हाँ, परसों सूर्यास्त के समय ···।" इस प्रकार निर्णय करने के

परिसभाप्य पर्य्यङ्कमारूढाः।

यातयामा यामिनी, अस्मिन्नपि समये नगरे महानेव वादित्र-ध्वनि। तावदकस्मादेकेन महाराष्ट्र-भृत्येन त्वरितैः पदैः सोपानमारुह्य, अस्मिन् गृहे प्रविश्य, अञ्जलिं बद्ध्वा कथितम्—महाराज! प्रतिष्ठित इव कश्चन पञ्चाशद्वर्षदेशीयो यवन शिबिकामारुह्य समायातोऽस्ति। भवनेऽस्मिन् प्रविशन्नस्माभि पृष्टश्च "सम्राट् प्रेषितोऽस्मि चिकित्सितु महाराष्ट्रराजम्, वैद्योऽहम्" इति वदन् समौढि प्रविशति। तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्। तदाकर्ण्य यावदुत्तर चिन्तयति महाराष्ट्र-वसुधाधवस्तावदप्राप्तोत्तर एव पादत्राण-पटापटाभिः सोपानपङ्क्तौ

रूढा. = चढ़ाया गुप्ताः।

यातयामा = अतीतैकप्रहरा, यामिनी = रात्रि। वादित्रध्वनि = नृत्यवाद्यकोलाहलः। प्रतिष्ठित = मर्य्यादाशाली। प्रविशन् = आगच्छन्। चिकित्सितुम् = नीरोग कर्तुम्। समौढि = सगर्वम्। महाराष्ट्रवसुधाया, धव. = पति.। अप्राप्तोत्तरः = अलब्धप्रतिवचन। पादत्राणपटापटाभिः=

पश्चात् वे पुन सीढ़ियों के माध्यम से नीचे आ गए और भोजनादि कृत्यों के सम्पादन के बाद सोने चले गये।

रात का एक पहर बीत चुका था, परन्तु इस समय भी दिल्ली नगर में नाच गान चल ही रहे थे। उसी बीच एक महाराष्ट्रदेशी सेवक ने शीघ्रता से ऊपर आकर उस कमरे में घुसकर हाथ जोड़ कर कहने लगा—"महाराज! लगभग ५० वर्षों की उम्र का एक प्रतिष्ठित सा व्यक्ति यवन पाल्की पर चढ़कर यहाँ आया है। जब इस घर में घुसते समय हम लोगों ने उसे रोका और यहाँ आने का कारण पूछा तो "मैं राजवैद्य हूँ, दिल्लीसम्राट् ने महाराष्ट्रराज की चिकित्सा के लिए मुझे यहाँ भेजा है" यह कहकर जबरदस्ती इस कमरे में घुसना चाह रहा है। अब श्रीमान् की जैसी आज्ञा हो"। महाराष्ट्रराज उसका उत्तर सोच ही रहे थे कि महाराष्ट्रराज

ध्वनयन् प्रविवेश यवन-चिकित्सकः।

ततः सर्वेऽपि तदभिमुखा ददृशुः-यदेकः पिचण्डिलः, दृढस्नायुः, ज्वलन्नयन-युगारोपित-राजत-शलाकाऽधिक-चाकचक्य-चमत्कृतोपनेत्रः, हरित-कौशेयोष्णीष-शिरस्कः, आनाभिविलम्बमान-सित-कृष्ण-सान्द्र-कूर्चः कर्णान्त-दीर्घ-श्मश्रु-द्वयः, हरितकञ्चुकः, सुदीर्घ-पाण्डुराधोवसनः, कर-कलित-पुष्ट-यष्टिकः, "कुत्र महाराष्ट्रराजः? को रोगः?" इत्याम्रेडयन् यवनचिकित्सकः प्रविष्टः। तत्पृष्ठलग्न एव

उपानत्पटपटाशब्दैः। ध्वनयन् = शब्दयन्।

पिचण्डिलः = दीर्घोदरः। दृढस्नायुः = पुष्टवरत्नसः। ज्वलन्नयनयुगे= प्रदीप्तनेत्रद्वये, आरोपितम्, राजतशलाकायाः = रजतोपनेत्रदण्डस्य, अधिकचाकचक्येन, चमत्कृतम्, उपनेत्रम् = "चश्मा" इति ख्यातम्, यस्य सः। हरितम्, कौशेयम्, उष्णीषम्, शिरसि यस्य सः। "शेषाद्विभाषा" इति वैकल्पिकः कप्। आनाभि विलम्बमानम्, सितकृष्णम्, सान्द्रम्, कूर्चं यस्य सः। मध्यमे वयसि वर्तमान इति श्मश्रु न पूर्णतया श्वैत्यमभजत। कर्णान्तदीर्घम्, श्मश्रुद्वय यस्य सः। सुदीर्घम् पाण्डुरम्, अधोवसनम् = "लुंगी" इति ख्यातं यस्य सः। करे कलिता पुष्टा यष्टिका =

का उत्तर (अनुमति) पाए बिना ही वह यवन-वैद्य अपने जूतों से सीढ़ियों को खटखटाते हुये उस कमरे में घुस गया।

उसके आते ही सबों ने जब उसकी ओर दृष्टि डाली तो देखा कि "कहाँ हैं महाराष्ट्रराज, कहाँ हैं? कौनसा रोग है?" यह कहता हुआ एक खूब मोटा-ताजा यवन वैद्य वहाँ आ पहुँचा। उसकी चमकती आँखों पर चान्दी के बने फ्रेम के चाकचिक्य से चमत्कृत चश्मा लगा था, जिसके माथे पर हरे रेशमी वस्त्र की टोपी लगी थी, उसकी अधपकी घनी दाढ़ी नाभि तक लटक रही थी, उसका मूँछ दोनों कानों तक बढ़ा हुआ था, उसका कुर्त्ता हरे रङ्ग का था, उसकी लुङ्गी पीले रङ्ग की थी और उसके हाथ में एक छोटी सी मजबूत छड़ी भी थी। उसके पीछे ही एक और बीस-बाइस वर्षों की

चैको द्वाविंशति-वर्षकल्पो यवन-युवकोऽपि कक्ष-स्थापित-श्याम-मञ्जूष प्रविष्ट इति।

अथोत्थाय माल्यश्रीक गौरसिंहाभ्यां स चिकित्सको राजपल्यङ्क-समीप उपवेशितो राज्ञो मस्तक स्पृशन् पृष्टवान् 'को रोगः ?'—इति। ततस्तेषामेवमभून्नालापा।

महाराष्ट्रराज.—चिकित्सक! प्रत्यक्षतो न ज्ञायते को रोगः—किन्तु क्षुधा ह्रसते, अङ्गानि च निर्बलानि भवन्ति।

चिकित्सकः—[ चक्षुषी सम्मील्य द्वयोरपि करयोर्नाडीश्चतसृभिरङ्गुलिभि परीक्ष्य ] नाड्यः शुद्धाः। मन्ये स्वसञ्जतामपहाय परवान्

---

लघुदण्डः, येन सः। कक्षे स्थापिता श्यामा मञ्जूषा=पटा, येन स।

राज पल्यङ्कस्य = पर्यङ्कस्य, समीपे।

क्षुधा = बुभुक्षा, "आप चैव हलन्तानामि"ति भागुरिमतेनेदम्।

द्वयोरपि करयो, यवनचिकित्साशास्त्रे द्वयोरपि करयोर्नाडीपरीक्षा भवति, वातपित्तकफरक्ताशयाश्रयाश्च धानवश्च सन्ति, तदर्थे चतसृभिरङ्गुलिभि परीक्ष्यन्ते रोगिण इति वेदितव्यम्।

---

उस का यवन-युवक भी काँख में एक काली पेटी दबाया हुआ उस कमरे में घुसा।

उसके बाद जब उठकर माल्यश्रीक तथा गौरसिंह ने उस चिकित्सक को महाराज की शय्या के पास ले जाकर बैठाया तब महाराष्ट्रराज का माथा छूता हुआ वैद्यराज ने पूछा—'कौन सा रोग है ?" इस प्रश्न पर उन सबों में निम्नलिखित वार्तालाप हुआ .—

महाराष्ट्रराज—वैद्य महाशय! प्रत्यक्ष रूप में तो कोई भी रोग मेरे समझ में नहीं आ रहा है। किन्तु मेरी भूख कम होती जा रही है और सारा शरीर दुर्बल होता आ रहा है।

चिकित्सक—[ आँखें मून्दकर शिवाजी के दोनों हाथों की नाड़ियों की ४ उगलियों से परीक्षा करने के पश्चात् ] नाड़ियाँ तो स्वच्छ हैं। मुझे ऐसा

संवृत्तः—इति चिन्तारोगोऽयम्।

महाराष्ट्रराज—[ तस्य तेजस्विमुखमण्डल निपुण निरीक्षमाणः ] सत्यमन्येऽपि चिकित्सका एवमेव वदन्ति। किन्तु न जाने कीदृशोऽयं रोगो यज्ज्वलयत्यङ्गानि।

चिकित्सक—औषधं ददामि।

महा०—अलं क्लेशेन ! न वयं यवनस्पृष्टमगदमङ्गीकुर्मः, भवानेव कष्टमूरीकृत्य श्रान्तवानिति गृह्यतामेष स्वल्प उपहार', [ इत्यङ्गुलीयकमार्पयत ]

माल्यश्रीकः—राजचिकित्सक ! तथ्यं ब्रूते महाराष्ट्रराजः, नैतस्य कुले केनापि यवनौषधं गृहीतम्। एतस्य समीपमायाताः सर्वेऽपि गुणिनो यथोचितैरुपहारैः सत्क्रियन्ते, तद् गृह्यतामेतत्समयानुरूपमुपायनम्।

• अगदम् = औषधम्। उपहारः = उपायनम्। आर्पयत् = दत्तवान्।

लग रहा है कि आपको चिन्तारोग हो गया है कि आप पहले स्वतन्त्र थे पर आज परतन्त्र हो गये हैं।

महाराष्ट्रराज—[ वैद्यराज के देदीप्यमान मुखमण्डल को पैनी दृष्टि से देखते हुए ] आपका कहना सत्य है, अन्य वैद्य भी यही कहा करते हैं। किन्तु मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि किस तरह का यह रोग है जो मेरे अङ्गों को जला रहा है।

चिकित्सक—कोई बात नहीं, मैं दवा दे रहा हूँ।

महा०—आप क्यों कष्ट कर रहे हैं ! यवनों के द्वारा स्पृष्ट औषधि का परिग्रहण हम लोग नहीं किया करते हैं। आप ने यहाँ आने में जो कष्ट तथा श्रम किया है तदर्थ आप यह छोटा सा उपहार ले लें। [ यह कहकर शिवाजी ने वैद्य को अपनी अँगूठी दे दी ]

माल्य०—राजवैद्य जी ! महाराष्ट्रराज सत्य कह रहे हैं। इनके वंश में आजतक किसी ने भी यवन से औषधि नहीं ली है। किन्तु इनके पास आनेवाले सभी गुणियों का यथोचित उपहार से सत्कार किया जाता है। अतः आप भी समयानुरूप यह उपहार ले लें।

चिकित्सकः—[ अङ्गुलीयकं हस्तेन स्पृश्य ] धन्या वदान्यता तत्रभवतः! न वयं दिल्ली-वल्लभ-पाणि-पल्लव-वल्लज-लालिताः परदत्तं कारु-कोषमपीहामहे। न वा चिकित्सा-विषयेषु रोगिणः सम्मतिमपेक्षामहे। तत्रापि भवतश्चिकित्सनाय प्रबला राज्ञामाज्ञा, तत्क्षम्यताम्, [ इति वक्षः समस्पृशत् ] [ महाराजोऽन्तरेव कोपेन जाज्वल्यमानः स्वभावविकारं गोपयन् समतिष्ठत ]

गौर०—किं निर्णीतं भवता ?

चिकित्सकः—यन्निर्णीतं तस्य प्रतीकारं विदधामि। आविद ! आविद !! मञ्जूषामुद्घाटय! औषधं पाययित्वा क्षणेन नीरोगं विधास्यामि महाराजम्। [ तदनुचरः पेटीपिधानमुदतूतुलत्, चिकित्सक

वदान्यता=दानप्रवणता। कारुकोषम्=कारुनिधिम्। कारुनामा कश्चन महाधनिको यवनदेशे जातो यन्नाम्ना "कारू का खजाना" इति प्रसिद्धं तेषु।
प्रतीकारम्=निवारणोपायम्। आविद!, सहचरं नाम्ना सम्बोधयति। पेटायाः पिधानम्=मुखम्। "ढिक्कन" इति हिन्दी। द्रवकम्=रसम्।

चिकित्सक—[ हाथ में अंगूठी लेकर ] आपकी उदारता धन्य है। किन्तु दिल्लीसम्राट् के उदार करपल्लवों से लालित-पालित होनेवाले हम लोग कारूँ के खजाने की भी इच्छा नहीं रखते। साथ ही चिकित्सा के प्रसङ्ग में भी हम लोग रोगी की सम्मति की अपेक्षा नहीं रखते हैं। उसमें भी आपकी चिकित्सा के लिये तो सम्राट् की प्रबल आज्ञा है। अतः क्षमा करें [ यह कहकर शिवाजी की छाती पर वैद्यराज ने हाथ रक्खा ]।

[ महाराष्ट्रराज भीतर-भीतर क्रोध से जलते हुये भी अपने मनोविकार को छिपाकर पड़े रहे ]

गौर०—वैद्य महाशय ! आप ने किस रोग का निर्णय किया ?

चिकित्सक—जिस रोग का निर्णय किया उसका प्रतीकार कर रहा हूँ। 'आविद, आविद ! जरा दवा की पेटी तो खोलो। दवा पिलाकर मैं अभी क्षण भर में ही महाराज को नीरोग बना देता हूँ।' [ वैद्यराज के भृत्य ने पेटी का ढक्कन उठा दिया और वैद्यराज ग्लास में निर्मल जल के समान

अकस्मिन् काच-पात्रे निर्म्मल-जलमिव कश्चन द्रवकमापूर्य्य तस्मिन् श्वेतं चूर्णमेक मेलयितुमारेभे ]

महाराजः—किमिदमौषधम् ?

चिकित्सक—आम्, पीयूष-हालाहलं नामौषधम्।

माल्यश्रीक—पीयूष-हालाहलम् ?

चिकित्सक—आम्! पीयूष-हालाहलम्, कफ-वात-पित्त-प्रकोपजो रोगश्चेदिदं पीयूषं क्षणेनोल्लाघं विदधाति। पलायितुकामानां प्रवञ्चनामात्रं चेद् 'हालाहलम्' क्षणेन विनाशयति।

ततो निश्चितं विषमिदमिति मन्यमानाः सर्वे परस्परमवालूलुकन्। तावदेषोऽङ्गुल्यग्रेण तोयमावर्त्य, चूर्णं मेलयित्वा समीपमानयत्। महाराजस्तु तस्य तादृश-वचन-भङ्गी-श्रवणे क्रमतो विवृद्ध-

पीयूषहालाहलम् = अमृतविषम्। ननु विषामृतम्।

उल्लाघम् = नीरोगम्। प्रवञ्चनामात्रम् = प्रतारणामात्रम्।

एक प्रकार का तरल पदार्थ भरकर उसमें थोड़ा उजला सा चूर्ण मिलाने लग गये ]

महा०—यह क्या औषधि है ?

चिकि०—जी हाँ, यह 'पीयूष-हालाहल' नाम की औषधि है।

माल्य०—'पीयूष हालाहल !'

चिकित्सक—जी हाँ, यह 'पीयूष-हालाहल' है। यदि कफ, वात या पित्त के प्रकोप से कोई रोग हुआ हो तब तो यह 'पीयूष' ( अमृत ) क्षण भर में नीरोग बना देता है। किन्तु यदि भागने के लिये रोग की वञ्चना कोई करता है तो उसे यह 'हालाहल' ( विष ) क्षण भर में ही विनष्ट भी कर देता है।

उसके बाद "यह तो विष ही है" यह समझ कर सब परस्पर देखने लगे। तबतक अपनी अङ्गुली के अग्रभाग से पानी का आवर्त्तन(मिश्रण)कर वैद्यराज ने उसमें श्वेत चूर्ण को मिलाया और शिवाजी के मुख के पास वह ग्लास पिलाने के लिये ले आया। वैद्यराज की टेढ़ी-मेढ़ी बातें सुनने से अधिका-

मन्यु साम्प्रत यवन-स्पृष्ट-पानीय-पानमचिकीर्षुं प्रत्यक्षं गरल-जलं पाययति-इति ज्वालयेव ज्वलितो मुख-समीपमानीयमानं सपात्रं चिकित्सक-हस्तं तथा समताडयत्; यथा तत् काचपात्रं समुच्छलितं कुड्याहत शतधा समभूत्। तदाहृति-विस्मितप्रायस्य च चिकित्सकस्य शिरसि दृढं चपेटमेकमाहत्य "शास्तिरियं रोगिभि सह क्ष्वेलायाः"-इति कथयन् कूर्चं गृहीत्वा बलेन चकर्ष। ततश्च गौरसिंहोऽपि पृष्ठतो बाहुमूलं धृत्वा त सुदूरं जघर्ष।

अथ महाराजस्तस्य कृत्रिम-कूर्चं स्वहस्तेनोत्पाटितम्, तञ्च कृष्यमाणमपि खिलखिला-शब्दं हसन्त दृष्ट्वा किमिदमिति

---

विवृद्धमन्युः = प्ररूढकोपः। यवनस्पृष्टस्य, पानीयस्य = वारिणः, पानम्। गरलजलम् = विषमिश्रवारि। समुच्छलितम् = समुत्पतितम्। तदाहृत्या = तत्ताडनेन, विस्मितप्रायस्य = साश्चर्यस्य। चपेटः = प्रसृतं करतलम्। लक्षणया तत्प्रहारोऽपि। शास्तिः = दण्डनम्। क्ष्वेलायाः = उपहासस्य। चकर्ष = कृष्टवान्। जघर्ष = घृष्टवान्।

---

धिक क्रुद्ध तथा यवनों द्वारा स्पृष्ट जल तक पीने में भी अनिच्छुक महाराष्ट्र-राज ने "अब तो यह विष ही पिला रहा है" यह सोचकर आगबबूले होकर मुँह के पास लाये जानेवाले ग्लास से युक्त वैद्यराज के हाथ में ऐसा चपेटा लगाया कि वह ग्लास वैद्यराज के हाथ से छलककर दीवार में टकराकर चूर चूर हो गया। चोट लगने से वह वैद्यराज कुछ विस्मित सा हो ही रहा था कि शिवाजी ने उसके सिर में भी एक मजे का चपेटा लगाया और "रोगियों के साथ मजाक करने का यही दण्ड है" यह कह कर उसकी लम्बी दाढ़ी को भी जोरों से खींच लिया। फिर गौरसिंह भी पीछे से उसकी बाँह पकड़कर दूरों तक उसे घसीट ले गये।

किन्तु गौर सिंह द्वारा निर्मम रूप में घसीटे जाने पर भी खिलखिला कर हँसते हुए उस वैद्य तथा अपने हाथ से उखाड़ी गई उसकी बनावटी

सावधानतया समालुलोके ददर्श च यत्—स्वस्य बाल्य-मित्रं प्रसिद्धो योद्धा श्रीमान् सुरेश्वरोऽस्तीति।

ततो महाराज उत्थाय तं गाढमालिलिङ्ग। ततस्तथैव माल्यश्रीकः, गौरसिंहश्च परिषस्वजे। ततो महाराजाऽऽदेशेन सर्वे उपविष्टाः।

ततो विहस्य सुरेश्वरेण कथितम्—प्रभो! शिर शिरासु महती वेदना, सर्किं विश्वेभ्योऽपि चिकित्सकेभ्य ईदृश्येव चपेट-दक्षिणा दीयते? माल्यश्रीक आह—'फलमिदं सिंहे सह क्रीडायाः'। महाराष्ट्राजोऽपि मन्दं विहस्य किमपि नावोचत्। ततः सञ्जाते पारस्परिक-कुशल-प्रश्नादि-कलापे सुरेश्वरः समवादीत्।

---

आलुलोके = ददर्श। ददर्श इत्यस्य ज्ञानमर्थः। बाल्यमित्रम् = शैशव-सहचरम्।

परिषस्वजे = आलिलिङ्ग। महाराजादेशेन = महाराजाज्ञया।

शिर शिरासु = मस्तकनाडीषु। वेदना = पीडा। विश्वेभ्यः = समस्तेभ्यः। चपेटदक्षिणा = करतलप्रहारदक्षिणा। पारस्परिकाणाम् = आन्योन्यानाम्, कुशलप्रश्नादीनाम्, कलापे = समूहे।

---

दाढ़ी की ओर जब महाराष्ट्राज ने सावधान होकर अपनी दृष्टि डाली तो उन्होंने देखा कि वे तो उनके बाल्यावस्था के मित्र प्रसिद्ध योद्धा श्रीमान् सुरेश्वर जी थे।

यह देखते ही उठकर महाराज ने उन्हें गले लगाया। उसके बाद माल्यश्रीक तथा गौरसिंह ने भी उनका आलिङ्गन किया। तत्पश्चात् महाराज की अनुमति पाकर सब बैठ गए।

बैठने के बाद सुरेश्वर जी ने हँस कर कहा—"प्रभो! आपकी चपेट खाने से तो मेरे माथे में बहुत वेदना हो उठी है। क्या सभी वैद्यों को आप दक्षिणा के रूप में अपनी चपेट ही देते हैं?" माल्यश्रीक ने उत्तर दिया—"सिंह के साथ मजाक करने का तो यही फल होगा।" इस पर महाराष्ट्र राज ने भी मुस्करा दिया किन्तु कुछ जवाब नहीं दिया। तदनन्तर परस्पर कुशलादि प्रश्न के समाप्त हो जाने पर सुरेश्वर जी ने कहा—

महाराज! विद्मो वयं निखिलामत्रत्यां घटनाम्, न सा पुनर्वर्णनीया। महाराष्ट्र-देशाद् दिल्ली-पर्य्यन्तं प्रतिक्रोशान्तरालस्थाऽस्माकीना निवसन्ति। धावित्वा परस्परं क्रमतः संवादं वदन्तः पत्रं वाऽर्पयन्तः सत्वरं महाराष्ट्र-देशं भवद्विषये विदितवन्तं कुर्वन्ति। आकर्ण्य भट्टारकस्य निग्रह-वृत्तान्तम्; पारावार इव वाडवेन, कोप-कृपीटयोनिना क्षुभितो महाराष्ट्रदेशः। सर्वोऽपि दिल्लीं दिधक्षन्निव चिचर्वयिषन्निव चुचूर्णयिषन्निव लुलुण्ठयिषन्निव च कोप-जरा-जर्जरीभूतो भावत्कः। न जाने-किमिति भवतः स्वदेशं प्रति-

अत्रत्याम् = इह भवाम्। प्रतिक्रोशान्तरालम् = एकैकक्रोशमध्ये। धावित्वा = त्वरया गत्वा। विदितवन्तम् = अवगतार्थम्। भट्टारकस्य = स्वामिनः, भवतः। "राजा भट्टारको देवः" इत्यमरः। पारावार इव = सागर इव। वाडवेन = वडवानुन्मोत्थेनानलेन। कोप एव कृपीटयोनिः = ज्वलनः, तेन दिधक्षन्निव = दग्धुमिच्छन्निव। चिचर्वयिषन् = चर्वयितुमिच्छन्। चुचूर्णयिषन् = चूर्णयितुमभिलषन्। लुलुण्ठयिषन् = लुण्ठितुमिच्छन्। कोप एव जरा = वृद्धता, तया

"महाराज! यहाँ की सारी घटनाओं को हम लोग जानते हैं उनकी पुनः चर्चा अनावश्यक है। महाराष्ट्र देश से लेकर दिल्ली तक एक एक कोश की दूरी पर हमारे वीर योद्धा निवास कर रहे हैं। एक जगह से दूसरी जगह तक दौड़-दौड़ कर हमारे सैनिक मौखिक सवाद या पत्र द्वारा शीघ्र ही आपके बारे में महाराष्ट्र देश को सूचित कर रहे हैं। श्रीमान् के कैद कर लिए जाने की खबर से उत्पन्न कोपानल से सारा महाराष्ट्र देश उसी प्रकार क्षुब्ध हो उठा है जिस प्रकार बड़वानल से समुद्र क्षुब्ध हो उठता है। वहाँ की जनता इस प्रकार कोधात्मक वृद्धावस्था से जर्जर हो चुकी है जिससे ऐसा लगता है कि वह (जनता) दिल्ली को जला देना चाहती, चबा जाना चाहती, चूर-चूर कर देना चाहती और लूट लेना चाहती हो। फिर भी न जाने आप के मन में महाराष्ट्र लौट जाने की इच्छा क्यों नहीं हो रही है। यदि आप चाहें तो गरुड़, वायु

निवर्त्तितुमिच्छैव न भवति ? अन्यथा गरुडस्येव समीरणस्येव मनस इव च को नाम शक्तः श्रीमतो गतिमवरोद्धुम् ? तत्साम्प्रतं यवनानां कञ्चनोत्सवसमयः—इत्यवसरोऽयं प्रस्थानस्य। यद्यपि दिल्लीश्वरः शून्यमतावलम्बीति न तादृशोऽत्राऽऽडम्बरो मोहरमोत्सवस्य, तथाऽपि पर्य्याप्तोऽस्मत्कार्य्य-सम्पादनायेति न विलम्ब्यताम्।

ततो महाराजेन यत् स्थिरीकृतमासीत्, तदखिल कर्णे प्रोक्तम्। तेनापि बहुशः कथयित्वा श्रुत्वा च किञ्चिद् विचार्य्यैव कथितम्—

वरम्, यमुनाया अनुतीरं गच्छत एव पथः पार्श्वे पर्कटिपलाशिनस्तले सत्वरगामिनः पञ्चषा हया द्रक्ष्यन्ते। तेषां नियन्ता

जर्जरीभूत = व्याकुलः। गरुडस्येव = वैनतेयस्येव। समीरणस्येव = वायोरिव। मनस इव = चेतस इव। शून्यमतावलम्बी = "सुन्नी" इति ख्यात। बौद्धीय शून्यमतमेव यावनशब्देषु "सुन्न" इति ख्यातमिति हार्दम्। मोहरमोत्सवस्य = "मुहर्रम" इति ख्यातस्योत्सवस्य।

अनुतीरम्=अनुतटम्। पर्कटिपलाशिनः = प्लक्षवृक्षस्य। सत्वरगामिनः = शीघ्रगतय। नियन्ता=सारथि, सूत, प्रकृते रक्षक। स्वार्थम् =

राथा मन की गति के समान आपकी गति ( = स्वदेश प्रस्थान ) में कौन बाधा डाल सकता है ! अभी यवनों के 'मुहर्रम' त्यौहार का समय है—अत यहाँ से स्वदेश परावर्तन का यह बड़ा ही सुअवसर है। यद्यपि दिल्ली सम्राट् के 'सुन्नी' होने के कारण यहाँ 'मुहर्रम' बहुत धूमधाम से नहीं मनाया जा रहा है, तथापि हम लोगों की इष्ट सिद्धि के लिए तो इतना आडम्बर भी पर्याप्त है। अत अब विलम्ब न करें।"

इन बातों को सुन कर धीरे से महाराज ने अपनी सारी मन्त्रणाएँ उनके कान में बतला दी। भुरेश्वर जी ने भी बहुत कुछ कहने-सुनने के बाद कुछ विचार सा कर महाराज से पुन कहा—

"अच्छी बात है ! यमुना तट के पास जाते ही आप सड़क के किनारे एक पाकड़ के पेड़ के तले खूब तेज चलने वाले ५-६ घोड़े देखेंगे। यदि

पृष्टो दक्ष कर्णं संस्पृश्य, किमपि वदेच्चेत्स्वार्थं ते घोद्धव्या आरो-ढव्याश्च, मथुरां प्रति धावयितव्याः। मार्गेऽपि च सदक्षकर्णस्पर्शं श्रीमत्साम्मुखीना भवेयुः, तेऽपि स्वकीया एव निश्चेतव्याः। घोटकानां कशाश्च प्रायो दण्डरूपा एव लक्ष्यन्ते। तेषामग्रं सञ्चाल्याकृष्येत चेच्छुरिका बहिर्भवेयुः परिवर्त्य ता एव पुनर्दण्डाग्रेषु योज्येरश्चेद् भल्ला: सम्पद्येरन्-इति। को जानीते कीदृशी घटना घटेत पथि ?

तदाकर्णयन्तो मध्य एव सर्वे "साधु साधु"-इति प्रोचुः। गुप्तं किमपि सम्मन्त्र्य च, "परश्वः सायम्, परश्व:"-इति सहर्षं जगदुः।

अथोद्घाटितं कूर्चं च पुनः संयोज्य, उपनेत्रमासज्य, चिकित्स-कोनोक्तम्-महाराज ! ममौषधमङ्गीक्रियताम्। क्षणेन शान्तिर्भविता,

---

स्वस्मै प्रयोजनाय। घोद्धव्याः = ज्ञातव्याः। श्रीमत्साम्मुखीनाः = भवत्पुरः स्थिताः। निश्चेतव्याः = निर्णेतव्याः। कशाः = अश्वताडन्य। अग्रम् = प्रान्तम्। सञ्चाल्य = भ्रामयित्वा, "घुमा कर" इति हिन्दी। योज्येरन् = मेल्येरन्। घटेत = सम्भवेत्।

---

उनके साहस पूछे जाने पर अपने दायें कान छूकर उत्तर दें तो आप उन घोड़ों को अपने घोड़े समझेंगे और उन पर सवार होकर मथुरा के लिए घोड़े दौड़ा देंगे। रास्ते में भी दायें कान छूकर आपके जो लोग आवेंगे उन्हें आप अपने ही समझेंगे। घोड़े के कोड़े प्रायशः डण्डे की तरह ही दीखेंगे। उनके अग्र भाग को घुमाकर जब आप बाहर खींचेंगे तो उनसे छुरियाँ निकल आएँगी। यदि उलट कर छुरियों को आप डण्डों के आगे लगा देंगे तो भल्लम बन जाएँगे। कौन जानता है कि रास्ते में कहाँ कैसी परिस्थिति आ पड़ेगी।"

इन बातों को सुनते हुए सबों ने बीच में ही कहा—"ठीक है, ठीक है।" उसके बाद गुप्त रूप में कुछ मन्त्रणा करने के पश्चात् "परसों शाम को, परसों" इस प्रकार की बात सबों ने हर्ष पूर्वक कही।

तत्पश्चात् खुली हुई दाढ़ी को पुनः लगा कर, चश्मा पहन कर चिकित्सक ने कहा—"महाराज ! मेरी औषधि तो आप कृपया लेलें। क्षण

चिकित्सा-प्रकरणे तु आर्य्यशास्त्रेऽपि स्पर्शदोषो नास्त्यूरीकृतः। पुनः पेयं रचयामि, किञ्चित् पीयताम्।

शिव०—प्राप्तोदयो महाराष्ट्रराजः! चिकित्सक! सत्यं सुधाकरोऽसि, तव कर-स्पर्शेन हीयते मे व्याधिः प्रस्तूयताम्, अवश्यं पास्यामि।

तेन विहस्य मन्दमुक्तम्-"कथं न सुधाकरः, चन्द्रकान्तस्पर्शेऽपि रसं रचयेत्?" तदनन्तरं च पुनर्मन्द मोदप्रासेन गदितम्-'सुदुर्लभमिदमौषधम्। जलमिव कलिन्द-गिरि-निर्झरस्य, चूर्णमिव

आर्यशास्त्रे = हिन्दुधर्मग्रन्थे। ऊरीकृतः=अङ्गीकृतः। पेयम्=पानीयम्।

सुधाकरः=पीयूषपाणिः, पक्षे चन्द्रः। करस्पर्शेन = हस्तस्पर्शेन, किरणसंसर्गेण च। हीयते = क्षीयते। प्रस्तूयताम् = साध्यताम्।

सुधाकरः = शशी। चन्द्रकान्तस्य = शशितुल्यकान्तेः, स्पर्शे = संसर्गे, चन्द्रकान्तमणेः संसर्गे च। पक्षे चन्द्रकस्य=चान्द्रमानस्य, अन्तः = नाश, यस्मात् स शिवराजः। रसम् =द्रवात्मकमौषधम् वारि च। कलिन्दगिरिनिर्झरस्य=कलिन्दोद्भूतप्रवाहस्य, यमुनायाः इति वाच्योऽर्थः।

भर में ही आपका रोग दूर हो जाएगा। चिकित्सा के प्रकरण में हिन्दू-धर्म शास्त्र में स्पर्श दोष नहीं माना गया है, मैं फिर दवा बना रहा हूँ, आप थोड़ी सी दवा पीलें।"

शिव०—अब महाराष्ट्र राज नीरोग हो चुके वैद्य जी! आप तो सचमुच सुधाकर हैं, क्योंकि आपके हाथ से छूने से ही मेरा रोग समाप्त हो चुका। अब आप तैयार करें, अवश्य पीलेंगे।

वैद्य जी ने हँसते हुए कहा—"चन्द्रकान्त मणि (अर्थान्तर-चन्द्रमान का अन्त करने वाले शिवा जी) के स्पर्श होने के बाद भी सुधाकर (चन्द्रमा अर्थान्तर—शरबत बनाने वाला) रस (जल, अर्थान्तर—शरबत) क्यों नहीं बनाए!" क्षण भर में ही पुनः प्रसन्न मुद्रा में उन्होंने

शोषितस्य मधु-वंश-निर्य्यासस्य' ।

ततः स्मित्वा माल्यश्रीकेणोक्तम्, "स्पष्टं किन्नोच्यते यदिदं यमुना-जलम्, इयं च सिता"-इति ।

ततः सर्वे मन्दं जहसुः ।

महाराष्ट्रराजस्तु सिता-मधुरं कलिन्द-नन्दिनी-नीरं पीत्वा मुमुदेतमाम् ।

अथोत्थाय चिकित्सकः प्रोवाच-"गच्छाम्यहम्, पर्य्याप्तं ममौषध वारमेकमेव सेवनेन गदनदमपि शोषयितुम् । तदल्ला-कृपया परश्व एव भवांस्तथा प्रबलो नीरोगश्च संवर्त्स्यति; यथा शक्ष्यति

---

शोषितस्य=शुष्कतां नीतस्य । मधुवंशनिर्यासस्य, मधुवंशः=इक्षुदण्डः, तन्निर्यासस्य=तद्रसस्य । मधुनः वशानिर्यासस्य=वंशलोचनस्येति चार्थः ।

मुमुदेतमाम् = अतितरां जहर्ष ।

गदनदम्=रोगनदीम् । अल्लायाः = महामायायाः कृपया । यवना ईश्वरं मन्यन्ते तत्तदार्थमिति प्रागेव विनिवेदितम् । क्रोशान्, बहुसङ्ख्या-

---

कहा—"यह औषधि दुर्लभ है । यह जल कलिन्द पर्वत के झरने का है और यह चूर्ण सुखाये मीठे बाँस के निर्यास का है ।"

उस पर हँस कर माल्यश्रीक ने कहा—तो साफ-साफ क्यों नहीं बतला रहे हैं कि यह यमुना का जल है और यह चीनी है ।

उसके बाद सभी मुस्कराने लगे । और महाराष्ट्र राज भी चीनी से मिश्रित यमुना-जल पीकर बहुत ही प्रसन्न हो उठे ।

उसके बाद उठ कर वैद्यजी ने कहा—"मैं तो अब चल रहा हूँ और मेरी यह दवा रोगों के महासमुद्र को भी एक बार सेवन करने से ही सोख लेने वाली है । अतः अल्ला की कृपा से परसों आते-आते ही आप इतने प्रबल तथा नीरोग हो जाएँगे कि आप क्षण भर में ही कई

क्षणेन क्रोशानाजानेयेन धावितुम्" । तत. सर्वे—'तथाऽस्तु तथाऽस्तु'-इति स्वीचक्रुः ।

महाराजः स्वकीय हीरक-हार तस्य कण्ठे प्राक्षिपत् । सोऽपि प्रणमन् सोपानमुत्तीर्णं शिबिकामारोहन् प्रहरिभि. दृष्ट.—"का दशा महाराजस्य ?" स उक्तवान्—"रोग कठिन आसीत्, किन्तु तथा प्रतिकृतवानस्मि, यथा परश्व एव न लप्स्यते भवता रुग्णो महाराज." ।

ततो जन-प्रवाहे मिलिते तस्मिन्, प्रहरिणः परस्परमेव-मालपन्—

कान् । धावितुम्=त्वरित गन्तुम् । लोकप्रसिद्धेन वैद्याना कथनप्रकारेणानेन गूढेङ्गितमकाषात् ।

हीरकहारम्=मौक्तिकमालाम् । प्रतिकृतवान्=चिकित्सितवान् । रुग्णो न लप्स्यते=सरोगो न प्राप्स्यते-न मिलिष्यति, पलायितत्वादिति यावत् ।

कोशों तक तेज घोड़ा दौड़ाने में समर्थ हो जाएँगे !" यह सुन कर सबों ने "ठीक है, ठीक है" ऐसा कहा ।

पश्चात् महाराष्ट्रराज ने अपना हीरे का हार भी वैद्य जी के गले में डाल दिया । वैद्यराज भी शिवा जी को प्रणाम करते हुए सीढ़ियों से नीचे उतर कर जब अपनी पालकी में बैठने लगे तब प्रहरियों ने उनसे पूछा—"महाराज की हालत कैसी है ?" वैद्य जी ने उत्तर दिया—रोग तो बहुत ही भयङ्कर था, परन्तु मैंने इस तरह की अच्छी चिकित्सा की है कि आप परसों रुग्ण महाराज को नहीं देखेंगे ।

जब प्रहरी लोग एकत्र हुए तब वे आपस में निम्न-लिखित रूप से बातचीत करने लगे—

एकः—गहनो रोग आसीत्, कथं क्षणेन शिथिलीकृत एतेन ?

द्वितीयः—अरे ! न जानीषे, सम्राजा चिकित्सकोऽयम्।

तृतीयः—मन्ये, एतच्चिकित्सा तुष्टेन महाराजेनैव हीरकहारोऽयमर्पितः, यः कन्धरेऽस्य लोल-लोलोऽवलोकितः।

चतुर्थः—वेत्सि रे ! महाराष्ट्रराजस्यौदार्य्यम्, यः प्रतिमज्जिदस्थानं प्रत्यहं पक्वान्नानि प्रेषयति, यश्च अस्माद्दृशानप्यनुसेवकानपि कूर्चिका स्निग्ध-कूर्चान् इण्डिरिका-पिचण्डिलांश्च विदधाति।

गहनः = कठिनः। शिथिलीकृतः = दुर्बलीकृतः। रोग इत्यनुरजनीयम्। प्रतिमज्जिदस्थानम् = सर्वेषु "मस्जीद" इति प्रथितस्थलेषु। लोललोलः = अतिचञ्चलः।

पक्वान्नानि = पूरिकापूपादीनि। "पक्वान" इति हिन्दीप्रसिद्धोऽपभ्रष्टतया। कूर्चिकया = क्षीरविकृत्या,

"दध्ना सह पयः पक्वं यत्तत्स्याद्दधिकूर्चिका।
तक्रेण पक्वं यत्क्षीरं तद्भवेत्तक्रकूर्चिका॥"

स्निग्धाः = चिक्कणीकृताः, कूर्चा येषां तान्। इण्डिरिकाभिः वटिकाभिः, मिष्टान्नविशेषैर्वा। पिचण्डिलान् = तुन्दिलान्।

एक प्रहरी—रोग तो बड़ा ही भयङ्कर था, फिर इतनी शीघ्रता से कैसे उन्होंने आराम कर दिया ?

दूसरा प्रहरी—अरे ! तुम नहीं जानते, ये सम्राट् के चिकित्सक हैं न ?

तीसरा प्रहरी—मुझे तो ऐसा लग रहा है कि इनकी अद्भुत चिकित्सा से ही सन्तुष्ट होकर महाराष्ट्रराज ने उन्हें हीरे का हार भी दे दिया है जो इनके कन्धे पर लटक रहा था।

चौथा प्रहरी—जानते हो रे ! महाराष्ट्र राज कितने उदार हैं जो प्रतिदिन प्रत्येक मस्जिदमें पक्वान भेजा करते हैं और हम लोग यद्यपि उनके शत्रु के सेवक हैं, फिर भी खोवा खिलाते-खिलाते हम लोगों को चिकने मूंछ वाले बना रहे हैं और इण्डिरिका (मिष्टान्नविशेष)ओं से हमारी तोंद फुला रहे हैं ?

किमाश्चर्यं यदि स उपकारिणे चिकित्सकाय हारं दद्यात्?

सर्वे—[ शनैः ] वर्द्धतां वर्द्धतां महाराजः!

परेऽहनि महाराष्ट्रराजस्योल्लाघतामाकलय्य, ऋते केभ्यश्चित् सर्वेऽपि प्रसादमेवाऽऽकलयन्। महाराष्ट्रराजेन चाऽऽपणस्थानि सर्वाण्यपि पक्वान्नानि द्विगुण-मूल्यैः क्रीतानि, स्वाऽऽवसथमानाय्य च महत्सु पेटास्वायोज्य, दिल्लीनगर वास्तव्यानां भद्राणां गृहेषु प्रेषितानि। अद्य महाराष्ट्रराजस्योल्लाघतासूचिकेयं वृष्टिरिव पक्वान्नानां सञ्जाता। मज्जिद-स्थानेषु च दधिकूर्चिका-नवनीत-सितापाक-प्रपातैः पङ्किलानि समभूवन् भूतलानि। यमुना तटे चैकम-

उल्लाघताम् = नीरोगताम्। केभ्यश्चित् = दावहृदयेभ्यः। आपणस्थानि = विपणौ विक्रयाणि। स्वावसथम = स्वसदनम्। भद्राणाम् = श्रेष्ठानाम्। उल्लाघतासूचिका = रोगमुक्तताद्योतिका। दधिकूर्चिकानाम्, नवनीतानाम् = हैयङ्गवीनानाम्, सितापाकानाम् = शर्करापाचितानाम्, कूष्माण्डादीनाञ्च प्रपातैः = अत्यधिकपतनैः। पङ्किलानि = पिच्छिलानि।

यदि अपने उपकारक चिकित्सक को उन्होंने हार ही दे दिया तो उनके लिए यह कौन सी बड़ी बात है?

सब प्रहरी—( मन्द स्वर में ) महाराष्ट्र राज की विजय हो! विजय हो!

दूसरे दिन महाराष्ट्रराज की नीरोगता देख कर कुछ दुष्टों को छोड़ कर सब के मन में प्रसन्नता ही हुई। और उस दिन महाराष्ट्रराज ने बाजार में जितना भी पकवान उपलब्ध था उसे दूनी कीमत पर खरीद लिया और अपने निवास स्थान में मँगवा कर बड़ी बड़ी पेटियों में भर कर दिल्ली नगर में रहने वाले भद्र व्यक्तियों के घर भेजवा दिया। उस दिन तो महाराष्ट्र राज की नीरोगता की सूचना देने वाले पकवानों की वर्षा सी हो रही थी। मस्जिदों में दधिकूर्चिका (जमे हुए तथा उबले हुए दूध का मिश्रित रूप), मक्खन, मुरब्बे आदि के (ढोते समय) रास्ते में गिरने

त्पीयो यवसोटज निर्मापितम्। तत्रैव शतशः पक्वान्न-पेटा संस्थाप्य सहस्रशो भिक्षुभ्यो मोदक शष्कुल्यपूप यवागू-पिटकाऽऽमिक्षे-ण्डरिकादीनि वितीर्णानि। तेषु यथाशक्ति पक्वान्नभारानुत्थाप्य नीतवत्सु परेषु पङ्ग्वन्धादिषु तत्रैवोपविश्यानायासं भुक्तवत्सु, परिशिष्ट यमुनाजले मत्स्य कच्छपादिभ्योऽपि वितीर्णम्। उद्घोषितञ्च यत् यमुनातटे श्वोऽपि सायङ्काले भिक्षुभिरागन्तव्यम्, यथेष्ट दास्यते, उपवेश्य च भोजयिष्यते—इति। अवलोक्येमामुदारतां महाराष्ट्रराजस्य सर्वेऽपि—यवना अयवनाश्च मित्राणि शत्रवश्च तं प्रशशंसिरे।

यवसोटजम् = यवसकुटीरम्। तृणविशेषच्छन्न लघुगृहम्। "पर्णशालोट-जोऽस्त्रियाम्" इत्यमर। यवागू = पिष्टमिष्ट जले पकम् "लपसी" इति हिन्दी। पिटकम् = "पेड़ा" इति ख्यातम्। आमिक्षा = तप्ते पयसि दध्यादिसंसर्गेण यद्विदीर्णं दुग्ध तत्। "आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद्-धियोगत" इत्यमरः। लोके "छेना" इति कथ्यते, वङ्गीयमिष्टान्नमूलभू-तम्। इतरत्पूर्वव्याख्यातम्।

के कारण मार्ग की भूमि पङ्किल हो गई था। यमुना के तट पर भी एक छोटी सी घास की कुटिया बनवाई गई थी। उसी में सैकड़ों पकवान भरी पेटियाँ रख कर हजारों भिक्षुकों को मिठाइयाँ, कचौड़ियाँ, पूये, लपसी, पेड़े, छेना इण्डरिका आदि अच्छे-अच्छे भक्ष्य पदार्थ दिये जा रहे थे। जब ताकत के अनुसार भिक्षुक पकवान लेकर अपने अपने स्थान लौट गए थे और लँगड़े लूँजे वहीं बैठ कर निश्चिन्तता से सब कुछ खा चुके थे तब जो अवशिष्ट रह गया था उसे यमुना जल में मछली, कछुवे आदि जलचरों के भोजन के लिए प्रवाहित कर दिया गया था। और महाराष्ट्रराज की ओर से घोषणा करवा दी गई थी कि यमुना के तट पर कल शाम को भी भिक्षुक लोग आ जाँय, उन्हें पर्याप्त भोजन-सामग्री भी दी जाएगी और वहाँ बैठ कर भी खिलाया जाएगा। महाराष्ट्रराज की इस उदारता को देखकर सभी हिन्दू मुसल्मान, शत्रु मित्र उनकी प्रशंसा कर रहे थे।

अद्य रात्रौ दिल्ली-वास्तव्य पक्वान्न पाचकाः परेऽह्न्यधिक पक्तुमादिष्टाः। ते च महति विक्रये महाँल्लाभः-इति समस्तां रजनीं पक्वान्नानि प्रस्तुवन्त, चुल्लीं ज्वलयन्त, कटाहेषु पौन पुन्येन घृतमाश्यन्त, पिष्टातक-द्रवैरपूपानि पाचयन्त, दर्वीश्चालयन्त, हस्ताभ्यां मोदकान् वर्तुलीकुर्वन्त, रामठ-शृङ्गवेर लवङ्गैला-लवण-मरिचाऽऽमोदित सुस्वादु चूर्ण गर्भान् शृङ्गाटकान् सम्पादयन्तः, शष्कुलीनां घृत च्योतयन्तः, यवागूश्चालयन्त, हिङ्गु-जीरक लवण-राजिकामोदित तक्रे वटकान् मज्जयन्तः, कूर्चिकासु शर्करा-

प्रस्तुवन्तः = साधितवन्तः। कटाहेषु = पूरिकानिर्माणभाजनेषु। घृतम् = सर्पिः। आश्यन्तः = क्षिपन्तः। पिष्टातकद्रवै = अपूपनिर्माणार्थं पूर्वत एव रक्षितैः-मिश्रपिष्टमिश्रणैः। दर्वीः = पूरिकानिष्कासनभाजनानि। प्रकृते "छमौटा" इति हिन्दी। वर्तुलीकुर्वन्तः = गोलतां नयन्तः। रामठशृङ्गवेरलवङ्गैला-लवणमरिचै, आमोदितम् = सुगन्धि कृतम्, सुस्वादु चूर्णम्, गर्भे येषा तान्। रामठादयः पूर्वं व्याख्याता। शृङ्गाटकान् = "समोसा" इति लोके ख्यातान्। च्योतयन्त = निस्सारयन्तः। हिङ्गुजीरकलवणराजिकाभि आमोदिते = सुरभिते, तक्रे = उदश्विति, "तक्र ह्युदश्विन्मथित" इत्यमर। राजिका = "राई" इति लोके ख्याता।

उस रात को दिल्ली निवासी हलवाइयों को अगले दिन अधिक से अधिक मिठाइयाँ आदि बनाने का आदेश दे दिया गया था। अधिक बिक्री होगी तो बचत भी अधिक होगी, इस भावना से सारी रात पक्वान बनाने के लिए चूल्हे जलाते हुए, कड़ाहों में बारम्बार घी डालते हुए, आँटा आदि घोल-घोल कर पूए बनाते हुए, छमौटा चलाते हुये, हाथों से मिठाइयों को गोलाकार बनाते हुए, हींग, अदरक, लवङ्ग इलायची तथा मरिच आदि मसालों से भरे हुए समोसे बनाते हुए, पूरी कचौड़ियों से घी चुआते हुए, सूजी चलाते हुए, हीङ्ग, जीरा, नमक और राई के चूर्ण से सुगन्धित तक्र में बड़ा बना कर डुबोते हुये (दही बड़ा बनाते हुये),

सितोपल-मृद्वीका आलोडयन्तः, प्रातरेव पर्वतानिव पक्वान्नानां प्रस्तुतवन्तः। महासम्भारममुं स्वच्छानां भोजन-सामग्रीणामालोक्य मोहरमोत्सवानन्दिताः सहस्रशो नागरा अपि यथेष्टं चिक्रीयिरे। परिशिष्टञ्चाखिलं सामग्री-जातं महाराजाऽध्युषितप्रासादस्य चतसृष्वपि शालासु व्यापृतम्। पक्वान्न-समारोहममुमालोक्य प्रहरिणः परस्परमेवमालापमकार्षुः।

एकः—महामद! उद्विग्नोऽस्मि आलोकमालोकं प्रत्यहमेतमाडम्बरम्, कदाऽयं समाप्स्यति वितरण कोलाहलः?

महामदः-हसन! विक्षिप्तोऽसि, एतस्यैव कोलाहलस्य प्रसा·

---

वटकान्="बड़ा, बारा" इति हिन्दी। मज्जयन्तः = बुडयन्तः। कूर्चिकासु = क्षीरविकृतिषु। आलोडयन्तः = संगात्य मथ्नन्तः। पर्वतानिव = गिरीनिव। उच्चतायामुपमितोऽपि। महासम्भारम् = विपुलसञ्चयम्। चिक्रीयिरे = क्रीतवन्त। सामग्रीजातम् = वस्तुजातम्। व्यापृतम् = विस्तारितम्।

आडम्बरम् = सम्भर्दम्। वितरणकोलाहलः = दानकलकलः।

विक्षिप्तोऽसि = उन्मत्तोऽसि।

---

खोआ में खाड, मिश्री तथा शिशमिश आदि मिलाते हुए सुबह होते होते हलवाइयों ने पहाड़ों की तरह पकवानों की ढेर लगा दी थी। अच्छी अच्छी भोजन सामग्रियों की ढेर देख कर मुहर्रम मनाने वालों ने भी काफी पकवान खरीदे थे। और सब सामान महाराष्ट्रराज के निवास भवन को चारों तरफ दूकानों में फैला हुआ था। पकवान की उस विशाल ढेर को देख कर सभी प्रहरी आपस में निम्न-लिखित प्रकार से बातचीत कर रहे थे—

एक प्रहरी—मुहम्मद! प्रतिदिन इस आडम्बर को देखते-देखते अब मन ऊब गया है। यह कोलाहल कब समाप्त होने वाला है?

मुहम्मद—हुसेन! क्या तुम पागल हो गए हो? इसी कोलाहल के

दात् वयमपि यवागू सर्पिः-सिक्त करतलं श्मश्रुषु प्रोञ्छामः, तत्कोऽयं हर्ष-समये उद्वेगः ! कसीम ! किं चिन्तयसि ?

कसीमः—अद्य चरमं दिनं वितरणस्येति श्रूयते ।

महा० आः ! कष्टम् !! तन्मधुर-भाषणैस्तोषणीयो महाराजः, निर्गमन प्रवेशेषु प्रयश्च नावरोद्धव्यो जनः, यथा तुष्टोऽन्नभवान-धिकं प्रयच्छेत ।

हसनः—अहो ! कोष्णानां कचौरीणां गन्धोऽसौ चपलयति मे रसनाम् ।

---

प्रसादात् = कृपायाः यवागूर्लपिथा, सिक्तम् = आर्द्रम् । एवम्भू-तप्रयोगेण यवागूशब्दस्य "हलुवा, मोहनभोग" इति प्रसिद्धेऽपि प्रवृत्तिनि-मित्त दर्शयति । उद्वेगः = विरागात्मक शोकम् । 'महामद-हसन-कसीमाः' नामानि यवनभृत्यानाम् ।

तोषणीयः = प्रसादयितव्यः । निर्गमनप्रवेशेषु = गमनागमनेषु । प्रयच्छेत् = दद्यात् ।

कचौरीणाम् = घृतचोरिणाम् । प्रयोगोऽस्यान्यत्रापि मिलति । तद् यथा—

"माषोदरी सुभगहिङ्गुसुवासयुक्ता धान्याब्दशुण्ठिमरिचादिभिरर्चिता च । कोष्णाऽमृतोपमरसा रसनाभिरामा हे हे कचौरि ! घृतचौरि ! नमो नमस्ते ॥"

---

प्रसाद से तो हम लोग भी हलवा खा-खाकर मूँछ पर हाथ फेरा करते हैं। इस हर्ष के अवसर पर उद्वेग कैसा ? कसीम ! तुम क्या सोच रहे हो ?

कसीम—सुना जाता है कि आज पकवान बाँटने का अन्तिम दिन है।

मुहम्मद—आः ! तब तो बड़ी ही दुःखद बात है । अच्छा, महाराष्ट्र-राज को मीठी बातों से प्रसन्न करना चाहिये और भीतर जाने-आने में किसी पर रोक-टोक नहीं लगाना चाहिये ताकि महाराष्ट्रराज प्रसन्न होकर अधिकाधिक भोज्य पदार्थ हम लोगों को दे सकें ।

हुसेन—ओह ! गरम-गरम कचौरियों की गमक तो मेरी जिह्वा को चञ्चल बना रही है ।

कसीमः—महामद! हसन! सतर्कौ भव, कोटपालोऽसौ समायाति।

अथ सर्वे भल्लमुधम्य स्तब्धग्रीवा इतश्चेतश्च पर्य्यटितुमारब्धवन्तः, यावद्रेचितकेनाश्वं चालयन् कोटपालो निवृत्तः।

दिनमिदं प्रधानं मोहरमोत्सवस्य, गृहे गृहे शोक-समाजः, स्थाने स्थाने विलाप-गीति-गानम्, न कस्याप्यवसरोऽद्य विषयान्तरं सन्धातुम्। मोहरमोत्सवानुषङ्गिणां हरितैर्वस्त्रैर्दिल्ली हरितेवाभूत्।

---

इति मूलकारानुमोदिता टिप्पणी। घृतचौरीशब्दापभ्रंश एव लोके "कचौरि" इति प्रसिद्धः, प्रदर्शित पद्यन्तु हास्यरसाभ्यन्तरच्छन्दोमात्रापूर्णविचारमविधायैव निर्मितम्। अत एव कचौरि! इति, घृतचौरि! इति चोभयसम्बोध्यमानं दृश्यत इति वेदितव्यम्। वस्तुतस्तु हिन्दीप्रभृतिषु प्रसिद्धा ये केचनापि शब्दा व्याकरणप्रक्रियया शुद्धाः सन्तः प्रयोज्याः। एवमेव सर्वासु भाषासु भवति। तथा च कचौरीशब्दस्य प्राक्रियिकस्य प्रयोज्यत्वे साधुत्वे च न लेशतोऽपि संशयः।

रेचितकेन = अश्वगतिविशेषेण। कोटपालः="कोतवाल"इति प्रसिद्धः।

शोकसमाजः=शोकप्रदर्शनार्थं सम्मिलिता गोष्ठी। तद्दिने मोहमद-नामा यवनधर्मप्रवर्तको मारित इति शोकाभिनयमद्यापि कुर्वन्ति। विलापगीतेः = 'मर्सिया' इति उर्दूप्रसिद्धायाः, गानम् = गीतिः। विषयान्तरम् = कार्यान्तरम्, सन्धातुम् = विचारयितुम्। मोहरमोत्सवस्य, अनुषङ्गिणाम् = सङ्गिणाम्। हरिता = हरिद्वर्णवती। ज्वलयन्निव =

---

कसीम—मुहम्मद! हुसेन! सावधान हो जाओगे, कोतवाल आ रहा है!

उसके बाद घोड़ा नचाते हुये कोतवाल के वहाँ से गुजर जाने तक वे बल्लम सम्हाल कर गर्दन स्तब्ध करके सावधानी से इधर उधर घूमते रहे!

उस दिन मुहर्रम का सबसे प्रधान उत्सव था। घर-घर में शोक सभा का आयोजन किया जा रहा था, जगह-जगह पर लोग मर्सिया गा रहे थे, किसी को अन्य विषय में सोचने की फुरसत नहीं थी। मुहर्रम मनानेवालों

ज्वलयन्निवाखिलं भूवलयं स्व-स्वस्तिकमाससाद भगवान् भास्वान्। होरा-चतुष्टयेन च गेहान् भ्राष्ट्रानिव सन्ताप्य, दिल्लीनगर-वास्तव्यांश्च तलगृहेषु प्रवेश्य स्वयमपि ग्रीष्मोत्तापितः सिस्नासुरिव "नास्य मम तेजसा शोष्यते किमपीति" सरस्वन्तं शुशोषयिषुरिव, स्वतेजसा वाडवं विजिगीषुरिव, शेष-फणावली-ज्वाला-जाल प्रचण्डतामालोकयितु पाताल प्रविविक्षुरिव, पाश्चात्यगगन पार-

---

दाहयन्निव। स्वस्तिकम् = ज्यौतिषसिद्धं स्थानविशेषम्। 'स्वान्त न सन्ध्या कुलभवा' इति मन्यन्ते ज्योतिर्विदः। बृहस्पति—इति चत्वारो देवाः श्रुताः। एतेषां प्रत्येक मण्डलनामभिन्न रेखानु कृतनु स्वस्तिकचिह्न निष्पद्यते, यस्मिंश्च माङ्गलिककृत्येषु बहीं कालादानैर्यत्र दिव्यते। ग्रामेषु जगद्दिम्वकानो दिल्लरोऽपि स्वतपञ्चाशदानदर्शनार्थ स्वस्तिक ध्वजदानि स्म। आससाद = प्राप। भ्राष्ट्रानिव = अम्बरीषाणीव 'भाड'। सन्ताप्य = सन्ताप्य। तलगृहेषु = अन्तरालयदनेषु। सिस्नासुरिव = स्नातुमिच्छुरिव। तेजसा = प्रतापेन। शोष्यते = यावत्। सरस्वन्तम् = सागरम्। "सरस्वान् सागरोऽर्णवः" इत्यमरः। शुशोषयिषुरिव = शोषयितुमिच्छुरिव। वाडवम् = समुद्र दहनम्। विजिगीषुरिव = विजेतुमिच्छुरिव। शेषफणावलीनाम् = अनन्तस्य फणानामनीनाम्, ज्वालाजालस्य, प्रचण्डताम् = तीक्ष्णताम्। प्रविविक्षुरिव = प्रवेष्टुमिच्छुरिव।

---

की तरह छप्पनों से दिल्ली नगर भी हवा सा लग रहा था। समस्त भूमण्डल को जलाते हुये भगवान् भास्कर 'स्वस्तिक' स्थान में पहुँच चुके थे। चार घण्टे में भाड़ों की तरह सभी घरों को सन्तप्त कर, दिल्ली नगर की जनता को नीचे के कमरे में घुसने के लिये बाध्य कर, स्वयम् भी ग्रीष्म से सन्तप्त व्यक्ति के समान मानो स्नान की इच्छा करता हुआ, "मेरे तेज से तो इसका कुछ नहीं बिगड़ रहा है" यह सोच कर मानो समुद्र को भी सोखने की, अपने तेज से मानो बड़वानल को भी जीतने की, शेषनाग की फणाओं की प्रचण्ड ज्वाला को देखने की इच्छा से मानो पाताल घुस जाने की, पश्चिमी दिशा

स्यारब्यादि म्लेच्छदशान् दिधक्षुरिव अस्ताचल-निर्झर-शावल जलानि पिपासुरिव वरुणदिशो नेदीयान् सवृत्त ।

अथ शनै शनैरभूवन् छत्रमया दिल्लीमार्गा । सहस्रश सेचका पृष्ठाऽऽरोपितैर्भस्त्रा-पूरितैर्जलभारै 'अपसरापसर' इति पान्थानपसारमपसार पथ सेक्तुमारब्धवन्त । क्षणेनाऽऽपणिवैरा पणा सज्जीकृता विपणयश्च जन-प्रवाह-पूरिता सञ्जाता । महाराष्ट्रराजस्य गृहात् क्षण क्षण पक्वान्न पूर पूरितानि विशालानि वश-पात्राणि बहिर्नीयन्त स्म । तावद् गौरसिंहोऽऽगत्य प्रहरिभ्य प्रत्येक मधुरान्नानां महासम्भार प्रदत्त । साम्मुखीना पार्श्व-परिवर्तिन

---

पाश्चात्यान् = पश्चिमभवान् । दिधक्षुरिव = दग्धुमिच्छुरिव । अस्ताचल निर्झराणाम् चरमगिरिवारिप्रवाहाणाम्, शीतलजलानि शिशिरवारीणि । पिपासुरिव — पातुमिच्छुरिव । सवृत्तोऽभवत् । वरुणदिश पश्चिमाया । नेदीयान् — निकटस्थ ।

छत्रमया = आतपत्रमया । छत्रिजनसञ्चारात् । सेचका = दार्तिका । 'भिस्ती' इति ख्याता । भस्त्रापूरितै = दृतिभरितै । भस्त्रा चर्मप्रसेविका इत्यमर । अपसारमपसारम् = अपसार्यापसार्य अपनुदन्तम् ।

---

अरब आदि पश्चिमी म्लेच्छ देशों को मानो जला कर भस्मसात् कर देने की और अस्ताचल के झरने के शीतल जल को मानो पीने की इच्छा रखते हुये भगवान् सूर्य पश्चिम दिशा के निकट पहुँच गए थे ।

तदनन्तर धीरे धीरे दिल्ली के मार्ग छातों से भरने लग गये । हजारों पानी सींचने वाले अपने अपने पीठ पर पानी से भरी चमड़े की डालचा लाद कर हटो हटो कहकर रास्ते से पथिकों को हटाते हुए पानी छिड़कने लग गये । क्षणभर में ही व्यापारियों ने अपनी-अपनी दूकानें सजा ली थीं और बाजार की गलियाँ लोगों की भीड़ से भर गई थीं । महाराष्ट्रराज के घर से मिनट मिनट पर पकवानों से भरे बड़े-बड़े बाँस के टोकरे बाहर निकाले जा रहे थे । तब तक गौरसिंह आये और प्रत्येक प्रहरी को मिठाइयाँ

आपणिकाश्च मोदकादि-राशि-दानैरतितरां तोषिताः। पेटानां परत पेटाः, विहङ्गिकानां परतो विहङ्गिकाः, सर्वा एव पक्वान्नानां महासम्भारैः पूरिताः सर्वा एव चोपरितः पटैरावृताः, बह्वयश्च तत्र द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिश्च वाहकैर्वाह्या आसन्। सर्वोऽयं पक्वान्न-पात्र-समुदायः कालिन्दी-कूल कुटीरमाप्तः। सहस्रशस्तत्र भिक्षुकाः पक्वान्न-वितरणैस्तोषिताः, अपरे उपवेश्य भोजिताः, सर्वे च परितृप्ता निवर्त्तितुमारेभिरे।

अथ संवृत्तोऽन्धकारः। कुटीरान्तरे चैकस्याः पेटायाः पक्वान्न-निचयमपसार्य्य तन्मध्यान्नि:सृत एकस्तेजस्वी संन्यासी। एष

सेक्तुम् = आर्द्रीकर्तुम्। आपणिकैः = आपणाध्यक्षैः। वंशपात्राणि = वेणुनिर्मिताः पेटकाः। सांमुखीनाः = पुरःस्थिताः। विहङ्गिकानाम् = वीवधानाम्, भारयष्टीनाम्। "बहगी" इति हिन्दी। उपरितः = उपरिष्टात्। आवृताः = आच्छन्नाः। वाहकैः=भारकैः = वैहङ्गिकैः। वाह्याः = प्रापयितव्याः। कालिन्दीकूलकुटीरम् = यमुनातटस्थलघुकुटीम्। आप्त = गतः। परितृप्ताः = अतितरां भोजनेन तुष्टाः।

संवृत्तः=समभूत्। पक्वान्ननिचयम् = पूरिकादिसन्दोहम्। अपसार्य = दूरीकृत्वा। निःसृतः = बहिर्भूतः। धूलिविमर्दधूसरितगात्रः=रजोव्यूह-

का एक एक टोकरा उन्होंने दे दिया। सामने आए हुए, पास [redacted] खड़े तथा दूकानदारों को भी मिठाइयाँ आदि देकर सन्तुष्ट किया गया। पेटियों पर पेटियाँ, बहंगियों के बाद बहंगियाँ निकल रही थीं और सब पकवानों से लदी थीं, कपड़े से ढकी थीं बहुत पेटियाँ और बहंगियाँ तो ऐसी थीं कि एक से नहीं अपितु अनेक व्यक्तियों से ढोने योग्य थीं। पकवानों से भरे सब पात्र क्रमशः यमुना के तट पर लाये गये। वहाँ पकवानों के बाटने से हजारों भिक्षुक सन्तुष्ट किये गये, कुछ लोगों को बैठा कर भी खिलाया गया और पश्चात् तृप्त होकर सब वहाँ से चलने लग गए।

तब तक सन्ध्या हो चुकी थी। कुटी के भीतर पड़ी पेटियों के बीच एक में से सारा पकवान हटाकर उसमें से एक तेजस्वी सन्यासी बाहर निकले।

धूलि-विमर्द-धूसरित-देहः काषाय-वसन-वेष्टित-कच-कलापः, काषाय-वस्त्र-परिधानोत्तरीयः, वक्र दण्डहस्तः, भस्मोल्लिखित-ललाटः, कुटीरान्तःस्थान् द्वित्रान् आलिङ्ग्य, "को विलम्बः" इत्यवोचत्।

एष महाराष्ट्रराजः, ते च गौरसिंहादयो वीराः, तेऽपि पक्वान्न-वाहक-वेषं परित्यज्य, संन्यासि-वेषमाकलय्य, मनसैव भगवतीं भवानीं प्रणम्य, पृष्ठतः कुटीरात् निःसृत्य, अनुकालिन्दीतीरमेव प्रचलिताः। समयेऽस्मिन् लोह-पञ्जरान्निःसृतः पञ्चास्य इव, जाल-बन्धन-विमुक्तो विहङ्ग इव, कुवेणीतो नद्यां परिभ्रष्टो मत्स्य इव,

च्छुरितदेहः। काषायवसनेन = गैरिकवस्त्रेण, वेष्टितः= वलयितः, कचकलापो येन सः। काषाय वसन परिधान, उत्तरीयञ्च यस्य सः। वक्रः=कुटिलः, दण्डः, हस्ते यस्य सः। भस्मोल्लिखितललाटः=विभूतिच्छुरितालिकः।

पक्वान्नवाहकानाम्=मिष्टान्नप्रापकाणाम्, वेशम् = नेपथ्यम्। भवानीम् = शिवसहचरीम्। अनुकालिन्दीतीरम् = यमुनातटसमीपतः। लोह-पञ्जरात् = आयससिंहबन्धनागारात्। पञ्चास्य इव = केसरीव। जाल-बन्धनात्-विमुक्तः = अपसृतः। विहङ्ग इव = पक्षीव। कुवेणीतः= मत्स्याधानीतः। परिभ्रष्टः = चलितः। अहितुण्डिकस्य = सर्पग्राहिणः,

समस्त शरीर पर धूलियों का लेप लगाये हुए, गेरुआ वस्त्र से अपने बाल को लपेटे हुए, गेरुआ वस्त्रधारी, टेढ़ी लाठी हाथ में लिये, ललाट पर भस्म रमाए सन्यासी ने कुटिया में वर्तमान दो-चार व्यक्तियों का आलिङ्गन कर पूछा—"अब विलम्ब क्यों ?"

यह महाराष्ट्रराज और वे गौरसिंह आदि पकवान ढोनेवालों का वेश छोड़कर सन्यासियों का वेश धारण कर, मन ही मन भगवती भवानी को प्रणाम करते हुए कुटी के पीछे से बाहर निकल कर यमुना-तट की ओर चल पड़े। उस समय लोहे के पिंजड़े से मुक्त सिंह के समान, जाल के बन्धन से उन्मुक्त पक्षी के समान, (मछलियाँ रखने की) टोकरी से किसी तरह निकलकर नदी में गिरी हुई मछली के समान, सँपेरे की पेटी से विमुक्त सर्प

अहितुण्डिक-पिटकापसृतः पन्नग इव, चिरानुभूतं स्वातन्त्र्यसुख-मनुभवन् महाराष्ट्रराजः परितोऽवलोक्य सुदीर्घमश्वसत् । अवालोकयच्च-यद् गगनतलं किञ्चित् किञ्चित् श्याममतो धत्ते । अस्पष्टाकृतिरपि सम्मुख दक्षिण-दिशि सुदूर वितनः, विनिवर्तमान परश्शत भिक्षुक-व्रात-व्याप्त', यातायात परैरनेकैः पान्थैश्च परिपूरितो घण्टापथ. । वामत चाल्यमानाभिः, मयूर-कारण्डवादि-विविधाऽऽकाराभि , दीर्घाभि , आयताभिः, अल्पाभि', महतीभिः साट्टाभिः, निरट्टाभिः, सोल्लोचाभि', अनुल्लोचाभि', सनूपुर-क्षेपणी-क्षेपण-झणत्कार-विस्मायित-मीनाभिः, पथिकै , व्यापार-वस्तुजातैः, क्रीडा-

---

पिटकात् = पेटकात , अपसृतः = पलायितः । पन्नग इव = नाग इव । चिराननुभूतम् = दीर्घकालाल्लब्धम् । अश्वसत् = निश्वासमग्रहात् । दु ख भुत्ताना स्वभावोऽयम् ।

धत्ते = दधाति । अस्पष्टाकृति = अविभाव्यमानाकारः । वितत: = विस्तीर्णः । विनिवर्त्तमानानाम् = परावृत्ति लभमानानाम् , परश्शतानाम् , भिक्षुकाणाम् , व्रातेन, व्याप्तः । घण्टापथ =राजमार्ग. । चाल्यमानाभि = सार्यमाणाभि । दीर्घाभि = लम्बमानाभि । आयताभि = विशालाभि । अल्पाभि =लघ्वीभि । साट्टाभिः=सक्षौमाभि । 'स्यादट्ट क्षौमम्'-इत्यमरः । सोल्लोचाभि =सच्छदिभि । सनूपुरक्षेपणीनाम्=क्षुद्रघण्टिकाभि सहिताना

---

के समान का आनन्द पानेवाले महाराष्ट्रराज ने इधर उधर देखकर चैन की साँस ली और देखा कि आकाशमण्डल कुछ कुछ काला सा हो रहा था। अस्पष्ट रूप में दीखनेवाला और दक्षिण दिशा की ओर काफी दूर तक जाने वाला राजमार्ग लौटनेवाले असंख्य भिक्षुकों के समूह से व्याप्त और आने जानेवाले पथिकों से परिपूर्ण था। बायें भाग में मयूर, बत्तक आदि के विविध आकार के, लम्बे चौड़े, छोटे बड़े, अटारीयुक्त तथा अटारीरहित, चन्दवावाले तथा बिना चन्दवावाले, घूँघरूदार चप्पू के चलाने से होने वाली घुँघरू की झङ्कार से मछलियों को विस्मित कर देनेवाले, पथिक,

मात्रव्यसनिभिर्नागरैश्च परिपूरिताभिः, परस्सहस्राभिः तरणिभिः, विलोडित नील-नीरा, परश्शत – कमठ-पृष्ठ-बिम्ब – प्रतिबिम्बैरिव, प्रतिसायं निविशमानावगाह्मान – नीलगिरि – गण्डशैलायमान-सिन्धुर-घटा क्षालनैरिव, सकल कलङ्काङ्कित दिल्ली-वल्लभ-सम्पर्कैरिव च श्याम – श्यामा, सन्तरणाऽऽसक्तैर्जैवनयुवकैर्विक्षोभ्यमाणा, क्वचित्सन्ध्योपासन-परायणैर्जल-युद्धाऽऽसक्त-यवन – बालक – वर-

नौकाद्यशनाम्, क्षेपणहस्तत्कारैः=गतनसणदिति शब्दैः, विस्मापितमीनाभिः=साश्चर्यीकृतमत्स्याभिः। तरणिविशेषणम्। क्रीडामात्रव्यसनिभिः=खेलनमात्रनिरतैः। नागरैः=पौरैः। तरणिभिः=नौकाभिः। विलोडितम् = हिल्लोलितम्, नील नीर यस्याः सा। परश्शतानाम् = अगणितानाम्, कमठानाम् = कूर्मानाम्, पृष्ठस्य, बिम्बप्रतिबिम्बैरिव = मण्डलप्रतिच्छायाभिरिव। निविशमानानाम्=प्रविशताम्, अवगाहमानानाम्= निमज्जताम्, नीलगिरिगण्डशैलायमानानाम् = नीलाचलच्युतस्थूलोरलायमानानाम्। सिन्धुराणाम् = गजानाम्, घटानाम् = मण्डलानाम्, क्षालनैरिव = धावनैरिव। सकलकलङ्कै = सर्वविषापैः, दुर्यशोभिश्च, अङ्कितस्य = लाञ्छितस्य, दिल्लीवल्लभस्य, सम्पर्कैरिव = सान्निध्यैरिव। श्यामश्यामा = अतिकृष्णा। सन्तरणासक्तै = प्लवननिरतैः। विक्षोभ्यमाणा = आकुलीक्रियमाणा। सन्ध्योपासनपरायणैः = सन्ध्यार्चननिरतैः, जलयुद्धासक्तानाम् = वारिक्रीडासक्तानाम्, यवनबालकानाम्,

व्यापार के सामान और नौका विहार करनेवाले नागरिकों से परिपूर्ण हजारों नाव की खेवाई से आलोडित नील जलवाली, असंख्य कछुओं के पीठों के बिम्बन प्रतिबिम्बन से, नीलगिरि से च्युत विशाल प्रस्तर-खण्डों के समान दीखनेवाले और प्रतिदिन सन्ध्या समय में प्रवेश कर निमज्जन करनेवाले गजराजों द्वारा किये गए स्नान के कारण और सकल कलङ्कों से अङ्कित दिल्लीवल्लभ के सम्पर्क से और भी अधिक काली दीखनेवाली; तैरने में लगे यवन युवकों से विक्षुब्ध होनेवाली; यत्र-तत्र सन्ध्योपासन में सक्त होने के

यन्त्र-च्युताम्बु-बिन्दु-स्पर्श-भीतैरपसारमपसारमुपविशद्भिर्ब्राह्मणैः सेव्यमाना, क्वचित्प्रक्षिप्त-मांसाग्र-बडिश-बद्ध-रज्जु-हस्तैर्जलचर-तालु-वेधं प्रतीक्षमाणैर्यवनैर्नान्तिकेष्वमोक्ष्यमाणा, तरङ्गभङ्गैर्हस्तैरिव स्वं वक्षो घ्नती सकज्जलाश्रु-प्रवाहमर्यादेव, स्वभ्रातरं यमं दिल्लीकलङ्क-वृत्तान्तं निर्विवेदयिषन्तीव ततः प्रवहन्ती यमुना। इतस्ततः समस्तं दिनमितस्ततोऽनिवाह्य सायं स्वावासमायातैर्विहङ्ग-कुलैर्व्याप्तान्युद्यानानि।

करसन्तैः, च्युतानाम् = पतितानाम्, अम्बुबिन्दूनाम् = जलपृषताम्, स्पर्शात्, भीतैः = भयत्रस्तैः। ब्राह्मणैः = विप्रैः। सेव्यमाना = आश्रीयमाणा। प्रक्षिप्ते = प्रेरिते, मांसाग्रे, बडिशे = मत्स्यवेधिन्याम्, बद्धा = ग्रन्थिता, रज्जुः = दाम, करे येषां तैः जलचराणाम् = मीनादीनाम्, तालुवेधम् = काकुदच्छेदम्। अन्तिकेषु = समीपेषु। नामोक्ष्यमाणा = न अवलोक्यमाना। तरङ्गभङ्गैः = लहरिच्छेदैः। वक्षः = उरः। घ्नती = ताडयन्ती। सकज्जलाश्रुप्रवाहमर्यादा = साञ्जनाश्रुप्रवाहेन। यमम् = यमराजम्। निर्विवेदयिषन्तीव = निवेदयितुमिच्छन्तीव। यमुना = यमस्वसा। वामतः = सव्येतरभागे। दूरतः = दक्षिणस्यां दिशि। इतस्ततः = यत्र तत्र। अनिवाह्य = समाप्य। स्वावासम् = स्वसदनम्। विहङ्गकुलैः = पक्षिनिवहैः। व्याप्तानि = आवृतानि।

कहीं जलक्रीडा में निरत यवन-बालकों के हाथों से जलबिन्दुओं के सम्पर्क की आशङ्का से इधर-उधर जाकर बैठनेवाले ब्राह्मणों से सेवित होनेवाली, कहीं कहीं मांस से युक्त अग्रभागवाली बंसी के डोरे को हाथों में लेकर मछलियाँ फँसाने की प्रतीक्षा में पर्यमाण यवन बालकों की पंक्ति से आवृत तटवाली यमुना मानो अपने तरङ्गात्मक हाथों से छाती पीटती हुए नील-प्रवाहात्मक कज्जलाश्रु बहाती हुई अपने भाई यमराज से दिल्लीकलङ्क औरङ्ग-जेब के दुराचार को कहने की इच्छा करती सी बह रही थी। और दायीं ओर वे उद्यान शोभित हो रहे थे, जिनमें इधर-उधर घूमकर समस्त दिन को बिताने के बाद सन्ध्या के समय अपने-अपने नीड आदि आराम स्थान में आकर पक्षियाँ कलरव कर रही थीं।

सर्वे शनैः शनैस्तेनैव पथा दक्षिणाभुखं प्रचलिताः। क्रमशोऽयं मार्गो यमुना-प्रवाहाद् दूरत्वं संवृत्तः। बहवो भिक्षुकाश्च महाराष्ट्रराजस्यौदार्यं प्रशंसन्तो ग्रामटिकानां पथा अन्वसरन्।

तावत्कश्चिदभिमुखमागच्छन् भव्यमिमं वीरसंन्यासिनं पश्यन्नपृच्छत्–'को भवान् ?'

एष आह—नारायण ! नारायण ! संन्यासिनो वयम् !

स आह—कुत्र गम्यते ?

एष आह—नारायणस्य करुणया वृन्दावनमुद्दिश्य गम्यते।

स आह—कियद्दूरं दिल्ली ?

एष आह—इयमासन्ना दिल्ली, सपदि गम्यतामन्यथा गोपुराव-

---

यमुनाप्रवाहात् = कालिन्दीपूरात्। ग्रामटिकानाम्=क्षुद्रग्रामाणाम्। पथा = मार्गान्। अन्वसरन् = अनुसृतवन्त। भव्यम् = सुन्दरम्। गोपुरावरोधः = प्रधानद्वारपिधानम्।

---

धीरे-धीरे उसी रास्ते से सब दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े। क्रमशः यमुना प्रवाह से उनके रास्ते की दूरी बढ़ती गई। बहुत से भिक्षुक महाराष्ट्र-राज की उदारता की प्रशंसा करते हुए उस मुख्य मार्ग को छोड़कर टोलियों जानेवाले मार्गों पर चले गये।

तब एक कोई सामने से आता हुआ इस भव्य तथा वीर सन्यासी को देखकर पूछा—"आप कौन हैं ?"

संन्यासी ने उत्तर दिया—"नारायण ! नारायण ! हम सन्यासी हैं।"

उसने पुन पूछा—कहाँ जा रहे हैं ?

सन्यासी ने उत्तर दिया—भगवान् की कृपा से हम वृन्दावन की ओर जा रहे हैं।

उसने पूछा—यहाँ से दिल्ली कितनी दूरी पर है ?

संन्यासी ने उत्तर दिया—यहाँ से तो बहुत नजदीक है। आप शीघ्र

रोध स्यान्। गोविन्द ! गोविन्द ! हरे कृष्ण ! विष्णो !

एवमालप्य तस्मिन् नगराभिमुखं त्वरित प्रचलिते, पुनरेते किञ्चिदग्रतो गत्वा द्विमुखं पन्थानमवालुलुकन्।

अथ केन पथा गन्तव्यम् ? कुतो यातव्यम् ? इति विचार-यन्त्रेव माल्यश्रीकोऽग्रवामोद्वामे पथि किञ्चिदेव दूरे विशालमेकं प्लक्ष-वृक्षम्, तदधस्ताच्च पञ्चपान् शाखास्वद्धान् खुराग्रोन्मथित-भूभागा-नश्वान्! 'इत आगम्यताम्, मन्ये त एतेऽश्वा"-इत्युक्त्वा चाखि-लांस्तत एव नीतवान्।

अथ महाराष्ट्रराजोऽपि तान् खलीन-लेहन-लीला-लीनान्

द्विमुखम् = उभयतो गच्छन्तम्।

लक्षवृक्षम् = पर्कटद्रुमम्। शाखासु = द्रुमावयवेषु, बद्धान् = यन्त्रितान्। खुराग्रै = शफप्रान्तैः, उन्मथिता भूभागा यैस्तान्। अखि-लान् = सकलान्। तत एव = तत्रैव।

खलीनस्य = कविकायाः, लेहनलीलायाम् = चर्वणक्रीडायाम्, लीनान् =

जाइए, नहीं तो प्रवेशद्वार बन्द हो जायेगा। गोविन्द! गोविन्द! हरे! कृष्ण! कृष्ण!

उपर्युक्त वार्तालाप करने के पश्चात् जब वह व्यक्ति दिल्ली की ओर शीघ्रता से बढ़ गया तब ये सब पुनः थोड़ा आगे बढ़े और वहाँ एक दोमुहानी दिखाई पड़ी।

तत्पश्चात् "किस रास्ते से हम लोगों को चलना चाहिये ? किधर से चलना चाहिये ?" इस तरह के तर्क-वितर्क में सब संलग्न ही थे कि माल्यश्रीक ने बायीं ओर जानेवाले मार्ग पर कुछ दूर में स्थित एक बहुत विशाल पाकड के वृक्ष के नीचे उसकी शाखाओं में बँधे पाँच-छः घोड़े देखे जो अपने खुर से जमीन को खुरखुरा रहे थे। घोड़े देखते ही माल्यश्रीक "इधर आइये, मैं समझता हूँ कि ये वे अपने ही घोड़े हैं।" यह कह कर सबको उधर ही ले गये।

उसके बाद महाराष्ट्रराज ने भी लगाम चबाने के खेल में लीन, मायवी

अतिमुक्त-कुसुम-स्तबकैरिव फेन-निचयैः परिपूजित-वसुन्धरान् सज्जोपवेशनिकान् उभयतो लम्बित-लौह-पादाधारान् स्वागमन-पादाहति-श्रवणैनैवोर्ध्वकर्णान, श्यामान् रक्तांश्च हयान् आलोक्य पार्श्वस्थमेकं हयनियामकञ्च वीक्ष्य मन्दमगादीत्–"कस्यैते हया ?" स च दक्ष कर्णं सस्पृशन्नुदतीतरत्—दिल्लीनिवासिनः कस्यचिन्म-हाभाग्यस्य।

अथ 'इमे एव, इमे एव, तेऽश्वा'—इति सर्वैरुक्तम्। ततो विशालमेकमाजानेयं महाराष्ट्रराज आरूढः अपरं गौरसिंहः, अन्यञ्च माल्यश्रीकः। त्रयोऽपि च नियामक-हस्तादादाय कशा दण्डान् गृहीत्वा त्वरितं दक्षिणाऽभिमुखं धाविताः।

---

लम्बान्। अतिमुक्तकुसुमस्तबकैरिव=माधवीकुसुमगुच्छैरिव। फेननिचयैः = डिण्डीरव्रातैः। परिपूजितवसुन्धरान्=समर्चितधरणीन्। अश्वा परिश्रमजैः फेनैः पृथिवीमार्द्रयन्ति स्मेति भावः। सज्जोपवेशनिकान्=सन्नद्धाश्वपृष्ठा-सनान्। उपवेशनिका-"काठी" इति हिन्दी। लम्बित =दोलायितः, लौह = आयसः, पादाधार = "रिकाब" इति प्रसिद्धः, येषां तान्। हय

---

के फूलों के स्तबक के समान फनों के समूह से वसुन्धरा की पूजा करनेवाले, पालान से सुसज्जित, दोनों तरफ लटकती हुई लोहे की पाद धारणी (रिकाब) से सम्पन्न, अपने (=महाराष्ट्रराज के) आगमन के समय होनेवाले पादाघात के सुनने से खड़े कानोंवाले काले और लाल घोड़ों को देखा और घोड़ों के पास में खड़े एक साइस को देखकर मन्द स्वर में पूछा—'ये घोड़े किसके हैं ?' साइस ने अपने दायें कान पर हाथ रखकर उत्तर दिया—"दिल्ली निवासी किसी भाग्यवान व्यक्ति के।"

तत्पश्चात् "ये ही हैं, ये घोड़े ये ही हैं' ऐसा सबों ने कहा। तदनन्तर एक विशाल घोड़े पर महाराष्ट्रराज सवार हो गये और दूसरे पर गौरसिंह तथा तीसरे पर माल्यश्रीक। साइसों द्वारा दिये गये चाबुक लेकर तीनों ही व्यक्तियों ने दक्षिण दिशा की ओर अपने घोड़े दौड़ाये।

अथ गव्यूतिं यावन्निर्विघ्नं धावद्भिरकस्मात् पुरतः समागच्छन्तः सप्त सादिनो दृष्टाः। ते च समागतमात्राः 'तिष्ठत' इत्येतेषां गतिं रुरुधुः, अचकथंश्च यत्-कुत आगच्छथ ?—इति।

एतैरुक्तम्-संन्यासिनो वयम्, दिल्लीत आगच्छामः।

तैरुदितम्—वरम्! वयमपि दिल्लीमेव गच्छामः, किन्तु विस्मृतमार्गाः स्मः, तत्परावृत्य दिल्ली-पर्य्यन्तमस्माभिः सह गच्छत।

ततो गौरेणोक्तम्—दयध्वं संन्यासिनाम्, सरलोऽयं मार्गः, सम्मुखमेव दिल्ली, उत्तराऽभिमुखा इव प्रयात, सपदि प्राप्स्यथ राजधानीम्-इति।

---

नियामकम् = अश्वरक्षकम्। उदतीतरत् = उत्तरमदात्। कशादण्डान् = अश्वताडनयष्टीः। धाविताः = जवाचलिताः।

● गव्यूतिम् = क्रोशद्वयम्। सादिनः = अश्वारोहाः। रुरुधुः = वारितवन्तः। उदितम् = कथितम्। विस्मृतमार्गाः=अनवधारितपदवीकाः। दयध्वम्=दया कुरुत। संन्यासिनामित्यत्र "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति षष्ठी। प्रयात=गच्छत।

---

इस भय से दो कोशों तक निर्विघ्न घोड़े दौड़ाने के बाद एकाएक उन लोगों ने सामने आते हुए सात घुड़सवारों को देखा। आते ही उन घुड़सवारों ने "ठहरो" यह कह उन सबों का रास्ता रोक लिया और पूछा—कहाँ से आप लोग आ रहे हैं। संन्यासियों ने उत्तर दिया—हम लोग दिल्ली से आ रहे हैं। पुनः उन घुड़सवारों ने कहा—अच्छा, हम लोगों को भी दिल्ली ही जाना है, परन्तु रास्ता भूल गए हैं। अतः आप लोग दिल्ली तक हम लोगों के साथ लौट चलें। उसपर गौर सिंह ने कहा—हम संन्यासियों पर कृपा कीजिए। यहाँ से दिल्ली जाने का रास्ता एकदम सीधा है, दिल्ली सामने ही बसी हुई है, आप लोग उत्तर मुख प्रस्थान करें और शीघ्र ही राजधानी दिल्ली पहुँच जायँगे।

अथ तेषां प्रधान इवैकः प्रांशुर्निपुणं निरीक्षमाण उवाच—इयमुदारा वाग्, एषा भव्या मूर्तिः, एते राजयोग्या आजानेयाश्च न पुष्णन्ति युष्माकं साधारण सन्यासि-भिक्षुताम्। तत् स्पष्टं कथ्यताम्, के यूयम्? ततो माल्यश्रीक उवाच—'सत्यम्! कुलमास्माकीनमुत्तमम्, किन्तु गृहीत-सन्यासा वयं सदा पर्यटनकौतुकिनो भाग्यवतां केषाञ्चिदौदार्य्येण लब्ध-सुन्दर-घोटका साम्प्रतं मधुरां यामः।'

ते तु सप्तापि निपुणं निरीक्षमाणास्तूष्णीमतिष्ठन्।

ततस्तेष्वेकेन मन्दमुक्तम्—अहं शास्तिखानेन सह चिरं महाराष्ट्र-युद्धे आसमिति परिचिनोमि शिवम्। तादृश एवास्य

---

प्रधान इव = श्रेष्ठ इव। प्रांशु = उन्नत। पुष्णन्ति = समर्थयन्ते।

उत्तमम् = श्रेष्ठम्। गृहीतसन्यासा = धारितभिक्षुकव्रता। पर्यटनकौतुकिनः = भ्रमणकौतूहला। भाग्यवताम् = सम्पन्नानाम्। लब्धसुन्दरघोटका = प्राप्ताजानेया।

---

उसके बाद उन सात घुड़सवारों के नेता जैसे एक लम्बे से घुड़सवार ने पैनी दृष्टि से देखता हुआ कहा—यह उदार वाणी ये भव्य स्वरूप तथा राजयोग्य ये अच्छे घोड़े आप लोगों के साधारण सन्यासी होने की बात के पोषक नहीं है। अतः सच-सच बतलायें कि आप लोग कौन हैं?

उस पर माल्यश्रीक ने उत्तर दिया—आपका कथन सत्य है। हम लोग उच्चकुल के हैं। किन्तु हम लोग सन्यास-ग्रहण कर लेने के कारण सर्वदा पर्यटन के लिए उत्सुक हैं और किन्हीं महापुरुषों की उदारता से हम लोगों को सुन्दर घोड़े उपलब्ध हो चुके हैं। अब हम लोग मथुरा जा रहे हैं। ५

उस पर वे सातों घुड़सवार पैनी दृष्टि से उन सबकी ओर देखते हुए थोड़ी देर तक तो मौन रहे।

पश्चात् उनमें से एक ने धीरे से कहा—मैं शाइस्ता खाँ के साथ युद्ध में चिरकाल तक रहने के कारण शिवाजी को

स्वर सन्नाहश्च। अपरेणोदितम्—भाषणभङ्गी च स्पृशति महाराष्ट्र-भाषाम्। अन्येन शनैरालपितम्—शान्तं पापम्! स तु दिल्लीनगरे निगृहीतोऽस्ति। अपरेणोट्टङ्कितम्—धूर्ता महाराष्ट्राः, तथा निगृहीतानामप्येषां पलायनं नाऽऽश्चर्यप्रदम्।

अथ महाराष्ट्रराजेन मनस्येव 'महतीयमापदेति' चिन्ता-निमग्नेन कथितम्—सरलोऽयं मार्गः, गम्यताम्। ततस्तेषां प्रधानेन गदितम्—नैवम्, भवतामेकेनापि गन्तव्यं सहास्माभिः।

ततो यावदेते परस्परमालोक्य किमपि विमृशन्ति, तावत्तेषामेकेन सन्दिहानेन शनैः पृष्ठतोऽश्वं सञ्चाल्य महाराजस्य निकटे आगत्य, अकस्माद् भल्लाग्रेण शिरो-वेष्टनमुत्तोलितम्, दृष्टश्च

स्वर. = स्वनः। भाषणमिति यावत्। सन्नाह = शरीरबन्ध।
भाषणभङ्गी = कथनशैली। निगृहीतानाम् = कारागृहे स्थापितानाम्।
आपदा = आपत्ति। भागुरीयमतेनाबन्तता।
विमृशन्ति = विचारयन्ति। सन्दिहानेन = सदेह कुर्वता।
भल्लाग्रेण = कुन्तप्रान्तेन। शिरोवेष्टनम् = उष्णीषम्। उत्तोलितम् =

अच्छी तरह पहचानता हूँ। इनकी भी बोलचाल तथा शरीरसङ्घटना तो वैसी ही लग रही है। दूसरे ने कहा—हाँ, इनके बोलने की शैली भी तो मराठे की तरह ही लग रही है। तीसरे ने मन्द स्वर से कहा—झूठमूठ की बात नहीं करनी चाहिए। शिवाजी तो दिल्ली नगर में कैद कर लिए गए हैं। चौथे ने कहा—मराठे बड़े चालाक होते हैं। कैद कर लिए जाने के बाद भी उनका भग आना आश्चर्य-जनक नहीं है।

उसके पश्चात् "यह तो बड़ी विपत्ति है" यह मन में ही महाराष्ट्रराज ने कहा—रास्ता बहुत सीधा है, आप लोग जायँ। उस पर मुखियाने कहा—नहीं, ऐसा नहीं होगा, आप में से एक व्यक्ति को भी तो हम लोगों के साथ दिल्ली तक चलना ही होगा।

जब तक ये लोग परस्पर देख कर कुछ सोचते हैं तब तक उन सात घुड़सवारों में से एक घुड़ सवार सन्देह के कारण धीरे से

सर्वैर्दृष्टमस्य शिरसि लौहं शिरस्त्रमस्तीति। महाराष्ट्रराजः सचकितमुत्फालितवाहः एकतः स्थितवान्, माल्यश्रीकगौरसिंहाभ्यां च झटिति कशादण्डाग्रं सञ्चाल्य, छुरिकामाकृष्य, परिवर्त्य, पुनस्तथैव संयोज्य भल्ला विहिताः। महाराष्ट्रराजस्तु यावत्तथा करोति तावत्—"सोऽयम्, सोऽयम्, चोरोऽयम्, पलायितकोऽयम्, कश्योऽयम्, मुसल्योऽयम्, घात्योऽयम्, पात्योऽयम्"—इति सकोलाहलं ते—"छिन्धि-छिन्धि, भिन्धि-भिन्धि" इत्यपतन्।

योऽयं महाराष्ट्रराजं प्रथमं परिचिकाय, सोऽकस्मात् क्रूरं

---

उत्क्षिपन्। लौहम्=आयसम्। शिरस्त्रम्=शीर्षत्राणम्। उत्फालितवाहः=उत्प्लावितास्वः। एकतः = एकस्यां दिशि। सञ्चाल्य = सभ्राम्य। पलायितकः = अपसृतः। कश्यः = कशाभिस्ताडनीयः। मुसल्यः = मुसलेन हन्तुं योग्यः। घात्यः = मारयितव्यः। पात्यः = पातनीयः।

परिचिकाय = परिचितवान्। क्रूरम् = कठोरम्। उदतूतुलत्=उद-

---

अपने घोड़े को पीछे से उचका कर महाराष्ट्रराज के पास आ गया और झटके से अपने बल्लम के अग्र भाग से उसने उनकी पगड़ी को ऊपर उठा दिया। सबों ने देखा कि उनके मस्तक पर तो लोहे की टोपी लगी हुई थी। महाराष्ट्रराज तो आश्चर्य से अपना घोड़ा कुदा कर एक ओर हट गये, और माल्यश्रीक तथा गौर सिंह ने झट से चाबुक के अग्र भाग को हिला डुला कर छूरे निकाल लिये और छूरों को उलट कर चाबुक के आगे लगा कर बल्लम तैयार कर लिये। महाराष्ट्रराज भी वैसा करना ही चाहते थे कि कुछ सवार 'यही है, यही है, यही चोर है, यह भागने वाला है, चाबुक से इसकी मरम्मत होनी चाहिये मुसल से इसे मारना चाहिये, यह तो मार देने योग्य है, समाप्त करने लायक है" इस प्रकार कोलाहल करते हुये 'काटो काटो, मारो, मारो' कह कर टूट पड़े।

जिसने सर्वप्रथम शिवाजी को पहचाना था उसने शिवाजी के माथे पर

खड्गमस्योपर्य्युदस्तुलत, अन्ये चान्यौ व्यमावकार्षुः। महाराजस्तु सज्जभल्लो नासीदिति किङ्कर्त्तव्यविमूढोऽभूत्, अपश्यच्च हृदये प्रबलबाणेनाऽऽहतोऽसौ प्रहर्त्ता सचीत्कारं हयपृष्ठाद् भूमौ पतितः–इति।

अथ द्वितीयोऽपि सक्ष्वेडं खड्गं कोशादाकृष्य तस्मिन्नापतिवस्तथैव बाणविद्धो भूमौ पतितः। तृतीयोऽप्युत्पतित एवमेव भूमौ समशयिष्ट। तावन्महाराजोऽपि मल्लतल्लजं करपल्लवेन दृढं गृहीत्वा सिंह इव बस्तानेतानाचक्राम। ते चत्वारोऽपि त्रिभिरेतैराक्रान्ताः कौशल-युद्धेनैषां चकिता बभूवुः। तेषामेकः शिवेनाऽऽहत, द्वितीन

क्षिपत्। व्यमौ = उद्विग्नौ। अकार्षु = चक्रु, सज्जभल्लः = सज्जकुन्तः। किङ्कर्त्तव्ये = किं विधेयमिति विचारणे निमूढः = विन्निः। प्रबलेन = दुर्धर्षेण, बाणेन = शरेण। प्रहर्त्ता = मारयिता। सचीत्कारम् = सशब्द-क्रन्दनम्।

सक्ष्वेडम् = सगर्जनम्। तस्मिन् = शिवे। समशयिष्ट = अस्वाप्सीत्। मल्लतल्लजम् = प्रशस्त कुन्तम्। करपल्लवेन = करकिसलयेन। अत्रपल्लवशब्दोऽनुप्रासार्थमेव। सिंह इव = पञ्चास्य इवेत्युपमा। बस्तान् = अजान्, बर्बरान्। कौशलयुद्धेन = निपुणसंग्रामेण। चकिताः = भीता।

अपना क्रूर खड्ग फेंका और अन्य घुड़सवारों ने माल्यभीक तथा गौरसिंह पर आक्रमण कर उन्हें व्यग्र कर दिया। किन्तु महाराज शिवाजी, अपने वल्लम के तैयार न रहने के कारण, किङ्कर्त्तव्यविमूढ हो गये। इतने में ही उन्होंने देखा कि उनके ऊपर आक्रमण करने वाला वह दुष्ट किसी के प्रबल बाण से आहत होकर चीत्कारपूर्वक घोड़े पर से नीचे गिर गया।

तदनन्तर म्यान से तलवार निकाल कर गर्जन के साथ उन पर आक्रमण करने वाला दूसरा दुष्ट भी उसी प्रकार बाणाहत होकर जमीन पर गिर गया। तीसरा आक्रमण करने को उद्यत ही था कि वह भी धराशायी हो गया। तब तक महाराज ने भी अपने वल्लम को तैयार कर उन बकरों पर सिंह के समान आक्रमण कर दिया। इन तीन वीरों द्वारा आक्रान्त

योऽपि, तृतीयश्च गौरेण मल्लेनाऽऽहतः, चतुर्थश्च माल्यश्रीकेणाऽऽहतवाहः सहयं तेनापथेनैव नीयमानो गर्त्ते पातितः। एवमाषाढ-घन-घटामिव क्षणेनापसृतामालोक्य सर्वेऽप्यक्षतविग्रहा सपदि सैन्धवेभ्य उत्तीर्य्य, गतप्राणानामेषां केषाञ्चन खड्गान् चन्द्रहासान् गृहीत्वा, यावत्पुनरश्वानारुह्य जिगमिषन्ति, तावन्महाराष्ट्रराजेनोक्तम्—'स्थीयताम्, न भयम्। दृश्यतां कोऽस्मत्प्राण-रक्षक, यो बाणैः प्रत्यर्थिनः प्राहरत्। नाहं कथमप्यानृण्यमुपयास्यामि यो मत्कण्ठे खड्गमप्येवं प्राहरत्; स शिताग्रेण शरेण

---

आहतवाहः = मारिताश्वः। सहयम् = सघोटकम्। अपथेन = अमार्गेण। गर्त्ते = श्वभ्रे। आषाढघनघटामिव = वर्षारम्भमेघमालामिव। अपसृताम् = दूरीभूताम्। अक्षतविग्रहाः = अनाहतदेहाः। गतप्राणानाम् = गतासूनाम्। जिगमिषन्ति = गन्तुमिच्छन्ति। दृश्यताम् = ज्ञायताम्। अस्मत्प्राणरक्षक = अस्मज्जीवनदाता। प्रत्यर्थिनः = शत्रून्। एवम् = अमुना प्रकारेण। प्राहरत् = प्राताडयत्। शिताग्रेण = तीक्ष्णप्रान्तेन।

---

अवशिष्ट चार दुष्ट भी इनकी युद्ध-कुशलता से चकित हो गये। उन चार में से दो को तो शिवाजी ने मार गिराया, तीसरे को गौरसिंह ने अपने भल्लम से समाप्त कर दिया और चौथे के घोड़े पर माल्यश्रीक ने इस प्रकार प्रहार किया कि कुमार्गगामी के समान वह भी घोड़े के साथ गड्ढे में जा गिरा। इस प्रकार वर्षाऋतु के प्रारम्भ में घिरी हुई घन-घटा के समान आई हुई विपत्ति को क्षण भर में ही विनष्ट हुई देखकर अक्षतशरीर सम्पद से तीनों ही वीर अपने अपने घोड़े से उतर गये और मरे हुए उन दुष्टों के खड्ग लेकर घोड़े पर सवार होकर प्रस्थान करना ही चाहते थे कि महाराष्ट्रराज ने कहा—"ठहरो, डरो नहीं, पहले यह तो देखो कि हम लोगों का यह कौन प्राण-रक्षक है जिसने अपने तीखे बाणों से इन शत्रुओं को मार गिराया है! उस व्यक्ति के ऋण से मैं कभी मुक्त नहीं हो पाऊँगा जिसके

यथा झञ्झावात पात-घाताहतः शुष्कच्छद इव परतः पपात।"

ततः सर्वेऽपि पृष्ठतो विचिन्वन्तस्तमेवाश्व-नियामकमल्पीयांसमेक-मश्वमारूढमिष्वासपाणिं कटि-बद्ध-तूणीरमायान्तमपश्यन्।

अथ तमवलोक्य विहित-बहुल-साधुवादे समासादितप्रसादे महाराष्ट्रराजे, सोऽपि वाहादुत्तीर्णः। ततः समीपमागतं तं कलित हय-नियामक-वेषोऽसौ राघवाचार्य्यगोस्वामी—इतिपरिचिच्ये महाराजः।

अहो! दया स्वामिनः! इति सगद्गदस्वरं साष्टाङ्गं प्रणन्तुकामं महाराजमालोक्य, अञ्जलिं बद्ध्वा स उवाच-महाराज महाराज!

---

झञ्झावात-पात-घाताहतः=झञ्झिकवायुपतनताडितः। शुष्कच्छद इव=नीरसपत्रमिव।

विचिन्वन्तः=अन्विष्यन्तः। अल्पीयांसम्=अतिलघुम्। इष्वा-सपाणिम्=धनुर्हस्तम्। कटिबद्धतूणीरम्=मध्यलग्नितेषुधिम्। आया-न्तम्=आगच्छन्तम्।

विहित-बहुल-साधुवादे=कथितानेकधन्यवादे। समासादितप्रसादे=लब्धप्रसन्नताके। परिचिच्ये=परिचितवान्।

प्रणन्तुकामम्=नमस्कर्तुमिच्छन्तम्। अञ्जलिम्=करसम्पुटम्।

---

वाणाघात से मेरे गले पर तलवार चलाने वाला यह दुष्ट आन्धी के आघात से सूखे पत्ते की तरह दूसरे तरफ गिर गया है।"

उसके बाद जब सबों ने पीछे की ओर दृष्टि डाली तो देखा कि एक साधारण घोड़े पर चढ़कर कोई साइस जैसा व्यक्ति कमर में तरकस बाँधे हुए और हाथ में धनुष लिये उधर ही आ रहा था।

उसे देखकर महाराष्ट्रराज द्वारा शतशः धन्यवाद देने तथा स्वयम् प्रमुदित हो जाने के बाद वह व्यक्ति भी घोड़े से उतर गया। तत्पश्चात् जब वह व्यक्ति शिवाजी के समीप आया तब महाराज ने पहचान लिया कि वे तो साइस के कल्पित वेष में राघवाचार्य स्वामी ही थे।

"अहा! स्वामीजी की बड़ी दया है।" ऐसा कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम

दासोऽयं श्रैमत्कः। अस्य गोस्वामिता इव-नियामकता च व्याज-मात्रम्, जनोऽयं तोप-रोष-भाजनं महाराजस्य। तदाकर्ण्य चकितः क्षणं तूष्णीको महाराजोऽवादीत्-किमिव मोहयसि ? स्पष्टं कथय, कस्त्वमस्माकमसाधारणो बन्धुः ?

स तु जानुभ्यामवनीं गत्वा, अञ्जलिं बद्ध्वा, शिरो नमयित्वा, सप्रश्रयमगादीत्—

देव ! दासोऽयं श्रीमच्चरणैर्लालितोऽपि पालितोऽपि वासितोऽपि निर्वासितोऽपि रघुवीरसिंहः !

तदाकर्ण्य चकितो महाराजः, रघुवीर-प्राप्तेः स्वप्नमिव, इन्द्र-जालमिव, गन्धर्वपुरमिव च पश्यन्; विस्मृतात्मा, कण्टकित,

---

श्रैमत्कः = भावत्कः। तोपस्य = प्रसन्नतायाः। रोपस्य = क्रोधस्य च। भाजनम् = पात्रम्। असाधारणः = अनन्यादृशः। बन्धुः = मित्रम्।
वासितः = दत्तस्थानः। निर्वासितः = परदेशे निष्कासितः।
गन्धर्वपुरमिव = मायानगरमिव। कालनिरस्तात्। कण्टकित =

---

करने के लिये उत्सुक महाराष्ट्रराज को देखकर रघुवार्यजी ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज! महाराज! यह आपका सेवक है। इसका सन्यासी का रूप धारण करना तथा धारस बन जाना कार्य-मात्र है। यह व्यक्ति श्रीमान् के सन्तोष तथा कोप का भागी है"। यह सुनकर आश्चर्यान्वित होने के कारण क्षणभर मौनावलम्बन के बाद महाराज ने पूछा—"मुझे व्यामोह में क्यों डाल रहे हो, ठीक-ठीक बतलाओ कि हम लोगों के असाधारण बन्धु तुम कौन हो"। तदनन्तर वह घुटने टेककर, हाथ जोड़कर और नतमस्तक होकर कहने लगा—"देव! यह आपका सेवक वही रघुवीरसिंह है जिसका श्रीमान् से लालन, पालन, वासन और निर्वासन भी हुआ है"।

यह सुनकर महाराज चकित हो गये और रघुवीर के मिलन को स्वप्न की तरह, इन्द्रजाल की तरह तथा गन्धर्वनगर की तरह समझते हुए अपनी भी सुध भूल गये, उनके शरीर में रोमाञ्च, पसीना तथा कम्पन आ गये,

खिन्नः, वेगिरश्च तमुत्थाप्य, गाढमालिङ्ग्य, स्मारं स्मारं स्वकृत्यं तत्कृत्यञ्च मुग्धमाणवक इव मुक्तकण्ठं रुरोद।

चिरात्तस्मिन्नुपशान्ते गौरोऽपि भगिनीजीवजीवनं बाष्पस्नातं रघुवीरं तथैवाऽऽलिलिङ्ग, अश्रूणि च मुमोच। परतः प्रेमबाष्पपूर-पूरितो माल्यश्रीकोऽप्याशिश्लेष। ततो महाराज उवाच—

रघुवीर! क्षमस्व, यद्विनाऽपराधमुपकार्य्यपि मयाऽनादृतोऽसि; त्वत्पिता जटिलवेषो वीरेन्द्रसिंहः, त्वां विना कण्ठेन प्राणान् धारयति, तव पुरोहितो गणेशशास्त्री अस्थिचर्मावशेषः। श्रूयते त्वां प्राणनाथं मन्यमाना सौवर्णी आशामात्रेण जीवति, आगच्छ,

पुलकितः। आलिङ्ग्य = आश्लिष्य। मुग्धमाणवक इव = मूढबाल इव। तस्मिन्=रोदने। भगिनीजीवजीवनम् = सहोदरीप्राणरक्षकम्। आशिश्लेष=आलिङ्गितवान्।

अनादृतः = तिरस्कृतः। कण्ठेन=गलेन। न सर्वेण शरीरेण। गतप्राणाना हि प्राणाः कियन्ति दिनानि प्रायः कण्ठे तिष्ठन्ति इति तथा

रघुवीरसिंह को उठाकर उन्होंने गले लगाकर लगा लिया और अपने अविचारित निर्वासन कार्य तथा रघुवीर की स्वामिभक्ति की याद कर छोटे बच्चे की तरह फूट-फूटकर रोने लग गये।

चिरकाल के बाद महाराज के क्रन्दन के समाप्त हो जाने पर गौरसिंह ने अपनी बहन के प्राणाधार आँसुओं से स्नान किये हुए रघुवीरसिंह को गले लगाकर आँसू बहाये। पश्चात् प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रवाले माल्यश्रीक ने भी उसी प्रकार रघुवीरसिंह का गाढालिङ्गन किया। तदनन्तर महाराज ने कहा—

"रघुवीर! उपकारी तथा निरपराध होने पर भी तुम्हारा जो मैंने अनादर किया था उसके लिये क्षमा करो, तुम्हारे पिता वीरेन्द्रसिंह भी तुम्हारे वियोग में संन्यासी के वेश में किसी प्रकार जी रहे हैं ( मरणासन्न हैं ) और तुम्हारे कुलपुरोहित गणेशशास्त्री का शरीर भी केवल अस्थिचर्मावशेष है। सुना जाता है कि तुम्हें अपना प्राणनाथ माननेवाली सौवर्णी भी केवल

सपदि महाराष्ट्र देशं गत्वा सर्वानुज्जीवय !

इति कथयित्वा महाराष्ट्र-पतिर्निजमश्वमारुढः, माल्यश्रीरो गौरश्च निजाश्वमारूढौ, भूमौ पतितानामेवैषामेकं प्रांशुमश्वं रघुवीरोऽप्यारूढः। यावदेते दक्षिणाभिमुखाः पुनः पथः कश्चिदंशमतिवाहयन्ति, तावदकस्मादेव प्रतीचीतः कदम्ब कदम्ब सवलितेन पथा खटखटा शब्दं समागच्छतो दिल्लीश सङ्केताङ्कित पट्टिका कलित-कटिबन्धान् श्याम-वसनान् रक्तशिरोवेष्टनान् भुशुण्डी मण्डित बाहु-दण्डान् शतमिवाश्वारोहानपश्यन्।

कथनेन गतासुप्रायता त्वया। उज्जीवय=उत्थापय।

प्रतीचीत=पश्चिमतः। कदम्बानाम्=नीपानाम्, कदम्बेन=समूहेन, सवलितेन=वलयितेन। युक्तेनेत्यर्थः। दिल्लीशसङ्केतेन=अवरङ्गजीवनाम्ना अङ्किताभि=चिह्निताभिः, पट्टिकाभिः, कलिता=युता, कटिबन्धा, येषां तान्।

---

तुम्हारे मिलन की आशा से ही किसी प्रकार जी रही है। अतः अब चलो, शीघ्र ही महाराष्ट्र देश पहुँचकर सभी को उज्जीवित करो"।

यह कह महाराष्ट्रराज अपने घोड़े पर चढ़ गये और गौरसिंह एवम् माल्यश्रीक अपने अपने घोड़े पर सवार हो गये और जमीन पर गिरे उन खल दुष्टों में से ही किसी एक के ऊँचे घोड़े पर रघुवीरसिंह भी आरूढ हो गये। घोड़े पर चढ़ कर दक्षिण दिशा की ओर वहाँ से कुछ ही आगे बढ़ पाए थे कि उन सबने देखा कि पश्चिम दिशा से कदम्ब के वृक्षों के समूह से परिपूर्ण मार्ग से खड़-खड़ाते हुये, दिल्ली सम्राट् के सङ्केत से युक्त पट्टिका से कसे कमर वाले, नीले वस्त्र पहने हुए, लाल पगड़ी वाले सैकड़ों बन्दूक धारी घोड़े पर आ रहे थे।

ते च 'सोऽयं सोऽयमिति' सपदि सपरिकरं शिवं पर्य्यवेष्टयन्। किमिति ? किमिति ?—इति पृष्टाश्च सकर्ण-स्पर्शं मन्दं किमपि प्रोचुः। अथ सर्वेऽपि हृष्टा मथुराऽभिमुखमन्धकारमये पथि विलीनाः।

इत्येकादशो निश्वासः

---

इमे सर्वे कलितयवनवेषा महाराष्ट्रवीरा इति राघवोक्तौ गुप्तसेनावर्णनादिभ्यः सुरेश्वरोक्तेश्च स्पष्टीकृतपूर्वमिति शम्।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यामेकादशनिश्वासविवरणम्।

---

"वही है, वही है" यह कहते हुये उन बन्दूक धारियों ने झट से आकर सानुचर शिवा जी को घेर लिया। जब उन सबों से पूछा गया कि क्या बात है, तब आपने अपने कान छूकर मन्द स्वर से उन सबों ने कुछ कहा। तत्पश्चात् सभी प्रसन्नता पूर्वक मथुरा की ओर जाने वाले अन्धकारमय मार्ग में विलीन हो गए।

शिवराजविजय के हिन्दी का एकादश निश्वास समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

# द्वादशो निश्वासः

"तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः ॥"

—भागवते ।

---

द्वादशे शिवराजस्य दिल्लीयात्राकालमारभ्यैव समुत्सुकाना तदर्थं महान्तं यत्नमनुष्ठानादिकञ्चानुतिष्ठता महाराष्ट्राणा पुरत पुनरागमन शिवस्येत्येका कथा, रघुवीरसमागमनमिति द्वितीया, अनयोरेव प्रधानभूतयोः परिपूर्त्यर्थं ग्रन्थसमाप्तौ सम्मङ्गलायमानमानसत्वञ्च प्रचारयितु श्रोतृप्रभृतिषु सौवर्णी परिएर्यादिलक्षणा अपि कथाभागाः प्रदर्शयितव्या । तदेतस्य कथाव्रातस्य समुपक्षेपक भागवतीय रासपञ्चाध्यायी-गृहीत पद्यमुपस्थापयति । वंशीनिनादेन समाहूय व्रजबालाः कालिन्दीतटे रममाणास्तासा साभिमानत्वं निरीक्ष्य अन्तर्हितो भगवान् श्रीकृष्णः । पश्चात्ताभि कृतगोपीगीतादिरूपाक्रन्दाभिश्चिराभिलपितभिरप्रार्थितश्च प्रकटीभूतः । तदेतत्कामविजयप्रदर्शनं रासपञ्चाध्याय्या कृत वेदविदा व्यासेन । तदुपपादकश्चाय श्लोकः ।

शूरस्य = शूरसेनस्यापत्य पुमान् शौरि । तासाम् = चिरहरिविरहखिन्नचेतस्कानाम्, गोपीनाम् । सम्बन्धमात्रविवक्षया षष्ठी । आविरभूत् = प्रकटीभूतः । शौरि विशिनष्टि स्मयमानम् = ईषद्धास्यमयम्, मुखाम्बुजम् = आननपद्म यस्य सः । भगवतः स्मयश्च मायेति न विस्मर्तव्यम् । तथा च—

---

"उन विरहिणी गोपियों के समक्ष विकसित मुखकमल, पीताम्बर तथा वनमाला से विभूषित एवम् कामदेव के भी कामदेव भगवान् कृष्ण प्रकट हो गए।"

—श्रीमद्भागवत ।

"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिः ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥"

श्रीमद्भगवद्गीतायाम् ।

---

"हासो जनोन्मादकरी च माया, दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्षः" इति तत्रैव। **पीताम्बरधरः** = पीतकौशेयवासाः। **स्रग्वी** = मालाधारः। **साक्षात्** = प्रत्यक्षीभूतः। **मन्मथस्य** = कामस्य, **मन्मथः** = मथनः। पदैरेभिः स्पष्टतां नीतो रासाभिधेयभाव इति नाविदितं पण्डितेषु। रासपञ्चाध्याया विकृततमर्थं विकृतमनीषया समुपस्थाप्य कृष्णचरित्रे कलङ्कव्रातमालोकयत। प्रतारणायापि व्यासेनाय श्लोक उपरचितः, उपनिबद्धश्चाय स्वग्रन्थे व्यासेनेति बहुतरं विवित्सुभिः पुराणमतदीपिका निभालयितव्या।

उपक्रमे विष्णोर्माया भगवतीत्यभिधाय सकलजगन्मोहयित्र्यास्तस्याः प्राबल्यं दर्शितम्, उपसंहारे तस्या विजयकरणोपायं भगवदेकतानत्वं प्रदिदर्शयिषुः, शिववीरस्य दिल्लीकलङ्ककरतलगतस्य ततो निःसृत्य पुनरपि स्वराज्यपरिप्राप्तेः कारणञ्च भगवच्छरणीकरणमेवेति विवेदयिषुः, "श्रीकृष्णः शरणं मम" इति महामन्त्रमुपदिदिक्षु, गीताश्लोकमुपक्षिपति यत्र योगेश्वर इति।

योगानां योगिनाञ्चेश्वरः। महामायापतिरिति यावत्। इदमपि पदं भगवच्चरित्रशुद्धतायाः प्रबलं प्रमाणमिति वेदितव्यम्। **धनुर्धरः** = सर्वश्रेष्ठधनुर्धारी। पृथाया अपत्यं पुमान् पार्थः। **तत्र** = तत्रैव। **श्रीः** = शोभा, लक्ष्मीः। **विजयः** = उत्कर्षः। **भूतिः** = सम्पत्तिः। **नीतिः** = नयः। **ध्रुवा** = अवश्यम्भाविनी। इति मम मतिः = सम्मतिः, मनीषा च। इति धृतराष्ट्रं प्रति गीतावसाने सञ्जयनिष्कर्षकथनम्।

---

"जिस पक्ष में योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण तथा धनुर्धर अर्जुन हैं उसी पक्ष में श्री, विजय, भूति तथा नीति का होना निश्चित है—ऐसी मेरी बुद्धि है।"

—श्रीमद्भगवद्गीता।

जातोऽयमरुणोदयः, कलविङ्कैरारब्धः कलरवः, तनूभूतं तमः, धीरः समीरः, इरंमदो मदयति मयूरान्, मतङ्ग-मोहनं गन्धमुद्गिरति नव-वारिद-वारि-सरसिता रसा, बलाहका मन्दं गर्जन्ति। समयेऽस्मिन् तोरणदुर्ग-समीपस्थ-सरोवर-प्रान्ते शिवमन्दिरे चारुहासिनी सौवर्ण्याऽऽलपति स्म—

चारुहासिनी—भद्रे! दिष्ट्या वर्द्धसे, फलितं तव मनोरथैः, गुप्तवेषो रघुवीरसिंहस्त्वमथवो दिल्लीं गतस्य महाराजस्य रक्षाम-करणेन-इति सन्तुष्टेन महाराजेन सादरमानीयते। अद्येव सर्वे

---

अरुणोदयवर्णनपूर्वकं ग्रन्थारम्भ इत्युपक्रमोपसंहारयोरैक्यं दिदर्शयिषुरुणोदयवर्णनं प्रारभते—जातोऽयमिति। कलविङ्कैः = चटकैः। कलरवः = मधुरालापः। तनूभूतम् = क्षीणतां गतम्। इरंमदः = मेघज्योतिः। मूल-पर्याययोर्वैपरीत्येनोक्तममरः। मदयति = हर्षयति। मतङ्गमोहनम् = करिवशीकरणम्। उद्गिरति = उद्वमति। नववारिदवारिभिः = नूतनजलधरजलैः, सरसिता = सरसतामापादिता। रसा = विश्वम्भरा। बलाहकाः = मेघाः। तोरणदुर्गसमीपस्थस्य, सरोवरस्य = जलाशयस्य, प्रान्ते=तटे। सौवर्ण्या, सहार्थकत्वभावनात्तृतीया।

दिष्ट्या=भागधेयेन। फलितम् = पूर्णताङ्गतम्। ह्यः = पूर्वदिने।

---

अरुणोदय हो चुका था, कलविङ्कों ने अपना कलरव प्रारम्भ कर दिया था, अन्धकार क्षीण हो चुका था, धीर समीर बह रहा था, बिजली की कौंध मयूरों को प्रमुदित कर रही थी, नूतन जलधर से निपतित वृष्टिजल से सरस वसुधा गजराजों को मुग्ध करने वाली गन्ध उगल रही थी। उसी समय तोरण दुर्ग के समीपस्थ सरोवर के तट पर शिवमन्दिर में चारुहासिनी सौवर्णी के साथ वार्तालाप कर रही थी :—

चारुहासिनी—भद्रे! तुम्हारा भाग्योदय हो चुका है, तुम्हारे मनोरथ पूरे हो चुके, दिल्ली गये हुये सम्मान्य महाराष्ट्रराज की गुप्तवेष में रक्षा करने के कारण महाराज सन्तुष्ट हो कर रघुवीर सिंह को सादर यहाँ लिवा

आयास्यन्ति, यो गव्यूति-चतुष्टयान्तराले कृताधिवासाः सन्ति आनन्दमयः समयोऽसौ महाराष्ट्र-देशस्य। त्यज विषादम्! समनुभव महादेव-सेवाया नमस्यायास्तपस्यायाश्च अपूर्वं परिणामम्! समाप्ता सा ग्रह-दशा। अवसन्नानि दुरदृष्टानि। सम्पूर्णो दुष्कृतविपाकः। सम्प्रति उत्तिष्ठ। सन्ताप तप्त-श्वास-शुष्कमधरं हासरसैः रञ्जय। चिर-विहित न्यासं वाग्विलास पुनरासादय। अञ्जन रञ्जन-रहिते क्रन्दन-वारि-बिन्दु-व्रज-दुर्दिन-दुःस्थे नयने आमोदामृतासारैः स्नपय।

कृताधिवासाः = विहितवसतयः। आनन्दमयः = सुखमयः। महादेवस्य = भगवतः शम्भोः, सेवायाः = सपर्यायाः। नमस्यायाः = नमस्कृतेः। तपस्यायाः = शरीरतापनरूपतपसः। परिणामम् = फलम्। अवसन्नानि = समाप्तानि। दुरदृष्टानि = दुर्भाग्याणि। दुष्कृतानाम् = पापानाम्, विपाकः = परिणामः। सन्तापेन, तप्तैः श्वासैः, शुष्कम् = नीरसम्। रञ्जय = मोदय। हासेन हि स्वाभाविकं सौन्दर्यमपि विशेषितं रक्तीकरणार्थकत्वं नातीव मनोहारि। चिरं विहितः, न्यासः = त्यागः यस्य तादृशम्। आसादय = प्राप्नुहि। अञ्जनरञ्जनरहिते = कज्जलकृताशून्ये। क्रन्दनवारिबिन्दुव्रजैः = रोदनाश्रुसमूहैः, यद् दुर्दिनम् = मेघाच्छन्नदिनम्, तदेव दुःस्थम्, तस्मिन्। आमोदामृतासारैः = प्रसादपीयूषवर्षैः। स्नपय = प्लावय।

आ रहे हैं। आज ही सब यहाँ आने वाले हैं, क्योंकि कल रात से सब यहाँ से आठ कोसों की दूरी के भीतर ही ठहरे हुये थे। महाराष्ट्र देश के लिये यह बहुत आनन्द का समय है। अतः अपने मनस्ताप का परित्याग करो! अपनी शिवाराधना शिवपूजा तथा तपस्या के अद्भुत फल का अनुभव करो! तुम्हारी प्रतिकूल ग्रह-दशा अब समाप्त हो चुकी। तुम्हारे दुरदृष्ट भी समाप्त हो चुके। तुम्हारे दुष्कर्मों के दुष्परिणाम का अन्त हो चुका। अब उठो, सन्ताप से तप्त श्वास के स्पर्श से शुष्क अपने अधरोष्ठ को अब हास रस से रङ्गो। चिरकाल से परित्यक्त (उपेक्षित) वाग्विलास को पुनः प्राप्त करो। अञ्जन की कालिमा से रहित तथा निरन्तर अश्रुपात से

दिष्ट्या वर्द्धसे !

सौवर्णी—किं कथयसि ? अपि सत्यमिदम् ?

चारुहासिनी—[ सहर्षम् ] भगिनि ! कथमसत्यं वच्मि ? तत् पश्य तोरणदुर्गेषु सतोरणा ध्वजा आरोप्यन्ते। अधुनैव दुर्गाध्यक्षो मन्दिरमागत्य मारुतिमूर्तिं प्रणम्य वृत्तान्तमिमं सर्वान् संश्राव्य गतः

सौवर्णी महादेवं परिक्रम्य, प्रणम्य, पुलकावरुद्धकण्ठा गाढं चारुहासिनीमालिलिङ्ग। ततश्चिरं चारुहासिनी सौवर्णी चोपविश्य व्यतीत-दुर्घटनानां स्मारं स्मारं रोदं रोदं मङ्गल-वृत्तान्तं चामुमवधारमवधारं मोदं मोदं बहुभिः समालापैर्घटिकार्द्धं यापितवत्यौ।

---

सतोरणा =सबहिर्द्वारा। "तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्" इत्यमरः।

पुलकावरुद्धकण्ठा = रोमाञ्चविस्खलद्गला। दुर्घटनानामित्यत्र "अधीगर्थे" त्यादिना षष्ठी। अवधारमवधारम् = निश्चित्य निश्चित्य। आभीक्ष्ण्ये णमुल्।

---

दुर्दिनस्वरूप दुःख में चिरकाल से अब तक निमग्न अपने नेत्रों को आज प्रसन्नतारूप अमृत की वर्षा में स्नान कराओ ! तुम्हारे सौभाग्य का उदय हो चुका !

सौवर्णी—क्या कह रही हो ? क्या यह बात सत्य है ?

चारुहासिनी—[ हर्ष के साथ ] प्यारी बहन ! झूठ क्यों कहूँ ? देखो—तोरणदुर्ग के ऊपर भी महराब के साथ साथ उत्सवध्वजों का आरोपण किया जा रहा है। अभी अभी दुर्गाध्यक्ष मन्दिर आये थे और यहाँ हनुमान् जी को प्रणाम करने के पश्चात् सारा वृत्तान्त कह गये हैं।

सौवर्णी—तदनन्तर भगवान् शङ्कर का प्रदक्षिण कर, उन्हें प्रणाम कर रोमाञ्च के कारण अवरुद्ध कण्ठ वाली उस सौवर्णी ने चारुहासिनी का गाढालिङ्गन किया। तत्पश्चात् चारुहासिनी और सौवर्णी वहीं बैठ गई और बीती हुई घटनाओं का बारम्बार स्मरण कर, रो रो कर ( रघुवीर सिंह के परावर्त्तन की ) मङ्गलमय घटना का निश्चय कर आनन्द लूटती हुई विभिन्न प्रकार के वार्त्तालाप से उन दोनों ने अपना आधा घण्टा बिताया।

चारु०—भद्रे ! समूलतपस्या संवृत्ताऽसि, तत् त्यज सांप्रतं तपस्विनी-वेषम् ।

सौवर्णी—भगिनि ! मैवम्, पत्युः कुशलेनाऽऽत्मप्रकटनवृत्तान्तमवाप्याऽऽलपिष्यामि, तं दृष्ट्वा च तपस्विनीवेषं त्यक्ष्यामीति सुदृढे मम प्रतिज्ञे । तत्रैका पूर्णा, परस्यामपि गङ्गाधरस्यानुग्रहेण पूर्णायामूरीकरिष्यामि ते वचनम् ।

तत—"अहो ! कुसुमानि चेयानि, मुहूर्त्तेन पुनस्त्वा द्रक्ष्यामि"—इत्युक्त्वा तामालिङ्गय वाटिकां प्रविष्टायां तस्याम्, परमानन्द-सन्दोह-मद-मन्थरा सौवर्णी पौनःपुन्येन महादेवमूर्तिं परिक्रम्य, विल्वपत्रैः सम्पूज्य, बं बं बं, हर हर हर, इति व्याहृत्य, आन-

समूला तपस्या यस्याः सा । परिपूर्णतपश्चरणेति यावत् । तपस्विनी-वेषम् = योगिनीनेपथ्यम् ।

सुदृढे = निश्चितप्राये । गङ्गाधरस्य = भूतेशस्य ।

चेयानि = सकलनीयानि ।

परमानन्दसन्दोहस्य=प्रगाढहर्षसमूहस्य, मदेन, मन्थरा=सालस्या । परिक्रम्य=प्रदक्षिणीकृत्य । व्याहृत्य=निगद्य । आनन्दाश्रुकलाभि =हर्षास्क-

चारु०—भद्रे ! तुम्हारी तपस्या सफल हो चुकी । अतः अब तपस्विनी का वेश छोड़ दो ।

सौवर्णी—बहन ! अभी ऐसा करने के लिये मत कहो । कुशलपूर्वक अपने पतिदेव के प्रकट होने का शुभ सवाद सुनकर ही मैं बातें भी करूँगी और उनके दर्शन के बाद ही अपने तपस्विनी वेष को भी छोड़ूँगी—ये दो प्रतिज्ञाएँ मैंने की थीं । इन में एक प्रतिज्ञा तो पूरी हो चुकी और जब भगवान् शङ्कर की कृपा से मेरी दूसरी प्रतिज्ञा भी पूरी हो जाएगी तब तुम्हारी भी बात मैं मान लूँगी ।

उसके बाद "अच्छा, मुझे फूल भी चुनने हैं; अतः थोड़े समय के बाद मैं पुनः तुमसे मिलूँगी" यह कह कर उसका आलिङ्गन कर जब चारुहासिनी पुष्पवाटिका में प्रविष्ट हो गई तब बारम्बार महादेव की मूर्त्ति का परिक्रमण

न्दाश्रु-कलाऽऽकुलित-कपोला चिरमस्तोष्ट। ततो महादेवं ध्यायन्ती, निमीलित-चक्षुरेव मनोरथमये जगति समपश्यत्—यन्महादेवः स्वयं प्रकटीभूय, "मा स्म भैः" इत्यसकृदाभाष्य, वाटिका कुट-जाला-न्तर्निविश्य भस्मोद्धूलितेन वलित-व्यालबाल-वलयेन करेण रघु-वीर-बाहु मूले गृहीत्वा समानाय्य "एष ते पतिर्गृह्यताम्" इति कथ-यित्वा, तत्परिपूजित-मूर्त्तावेव निलीनः। स्वयं च बद्ध-सौवर्णोष्णी-षम्, महार्ह-कञ्चुकम्, लोलचन्द्रहासम्, पुलकाश्रु-परिपूर्ण-लोल-लोचनम्, दृशा लिहन्तमिव, आलिङ्गन्तमिव, परिपिबन्तमिव च

णिकाभिः, आकुलितकपोला=विच्छुरितगण्डस्थला। अस्तोष्ट=स्तुतिमकार्षीत्। **निमीलितचक्षुरेव** = अनुन्मिषितनयनैव। **मनोरथमये** = कल्पनिके। **मास्म भैः** = भयं मा कार्षीः। "स्मोत्तरे लङ् च"। यत्तु 'मा भैरिति' पाठं स्वीकृत्य पण्डितानामाह्वानं विचारकरणार्थम्; तत्तु बुद्धिवैशद्यवैभवविलसितमिति सन्तोष्टव्यम्। **वाटिकाकुटजालान्तः** = उद्यानानोकहसमूहान्तराले। **भस्मोद्धूलितेन** = भूतिच्छुरितेन। **वलितः**=वेष्टितः, व्यालबाल इव वलयो यस्मिन् तेन। पूर्वनिपातप्रकरणानित्यताप्रदर्शनार्थमेव पाठः। षष्ठीतत्पुरुषो वा। बालव्याल इति मीतद्युदयः।

**परिपूजितमूर्त्तौ** = सेवितप्रतिमायाम्। **बद्धसौवर्णोष्णीषम्** = धारित-महारजतशिरोवेष्टनम्। **महार्हकञ्चुकम्**=महामूल्यवारबाणम्। **लोलचन्द्रहा-सम्** = चलदसिम्। पुलकाश्रुभिः परिपूर्णे लोले लोचने यस्य तम्। लिहन्त-

कर, बिल्वपत्र से अपनी पूजा कर 'बम् बम् बम्,' 'हर हर हर' इस शब्द का उच्चारण कर आनन्दाश्रुप्रवाह से प्रक्षालित कपोलों से सम्पन्न और परमानन्द सन्दोह के प्रभाव से भन्वर सौवर्णी ने चिरकाल तक महादेव की स्तुति की। तत्पश्चात् आँखें मूँद कर महादेव का ध्यान करते समय ही उसने अपने मनोरथमय संसार में देखा कि महादेव उसके समक्ष प्रकट हो गये और सौवर्णी को "डरो मत" यह बात बारम्बार कह कर; वाटिका के वृक्षों के पुञ्ज में प्रविष्ट होकर भस्म से विभूषित एवम् बालसर्परूप वलय (कङ्कन) से सम्पन्न हाथ से रघुवीर का बाहुमूल पकड़कर उस सौवर्णी के

वीक्षमाणा आत्मानं विस्मृत्य चित्रार्पितेव जडीकृतेव पुत्तलिकायितेव गतचेतनेव मोहन-मन्त्र-मोहितेव च स्विन्ना कण्टकिता पुलकिता वेपिता च तथैव समस्थित।

किञ्चित्क्षणानन्तरञ्च—"भद्रे! क्षमस्व वारमेकमवलोकयैतं त्वदर्पित-जीवनम्"—इति मधुर-मधुरं कर्ण-रसायनं वचनमाकर्ण्य नयने उन्मील्य, तमेव जीवनाऽऽधारम्, ध्यान-विहित-साक्षात्कारम्, विलुलिताश्रु-धारम्, संसार-सारम्, प्रापित-परम-पीडा-पाराधारम्,

मिव = आस्वादयन्तमिवेत्युत्प्रेक्षा। एवमग्रेऽपि। चित्रार्पितेव = आलेख्यलिखितेव। पुत्तलिकायितेव = कृत्रिमकाष्ठस्त्रीत्वमापादितेव। मोहनमन्त्रमोहितेव = वशीकरणमन्त्रायत्तीकृतेव।

कर्णरसायनम् = श्रोत्रानन्दजनकम्। ध्यानविहितसाक्षात्कारम् = चिन्तनानुभूतप्रत्यक्षम्। विलुलिताश्रुधारम् = प्रचलितास्रतरङ्गकम्। प्रापितपरमपीडापारावारम् = लम्भितविपुलयन्त्रणासागरम्। अभिहित-

समक्ष ले आये और "ये लो, अपने पतिदेव का परिग्रहण करो" यह बात सौवर्णी से कह कर वे (महादेव जी) सौवर्णी द्वारा आराधित स्वमूर्ति में ही विलीन हो गये। उधर सौवर्णी भी सुवर्णमय उष्णीष (पगड़ी) को धारण किये, बहुमूल्य कञ्चुक से विभूषित, चमकते चन्द्रहास से चमत्कृत, हर्षाश्रु-परिपूर्ण चञ्चल लोचन-युगलवाले, अपनी दृष्टि से उसका (सौवर्णी का) आस्वादन, आलिङ्गन तथा परिपान-सा करते हुए अपने पतिदेव को देखती हुई अपनी भी सुध भूलकर चित्रलिखित-सी, जड़ीभूत-सी, काष्ठमय प्रतिमा-सी, चेतना-शून्य-सी एवम् मोहक मंत्रों द्वारा मोहित सी होने के कारण पसीने, रोमाञ्च और कम्पन से युक्त होकर वैसे ही खड़ी रही।

कुछ क्षणों के पश्चात् "भद्रे! क्षमा करो। तेरे लिये अपने जीवन को समर्पित कर देनेवाले इस व्यक्ति के ऊपर एक बार अपनी दृष्टि तो डाल" इस प्रकार की अत्यन्त मधुर श्रवणसुखद वाणी सुनकर जब सौवर्णी ने अपनी आँखें खोलीं तो उसने अपने समक्ष अपने जीवनाधार, ध्यान करते समय साक्षात्कृत, आँखों से अश्रुधारा बहाते हुए, संसारसार, दौर्भाग्य के कारण

अभिहितवचनपीयूषाऽऽसारं रघुवीरसिंहमदर्शत्।

दृष्ट्वैव चोत्थाय तस्य पादयोः पतित्वा अनपेक्षित-व्रीडा, समनुभूत चिर विरह पीडा-कलित विक्षिप्त क्रीडा, मुक्तकण्ठं रुरोद। सोऽपि च समानोद्गारोऽपि कथं कथमपि धैर्य्यमाधाय, भज्यमानेन स्वरेण सान्त्वयन्, कम्पमानैरङ्गैरुत्थाप्य, आलिङ्ग्य, कण्टकित-कराकलित पटखण्डेन कपोल-तल गलदश्रु-धारां प्रोञ्छितवान्। उपवेश्योपविश्य च कथितवान्—प्रिये! मामुद्दिश्य बहु कष्टं सोढवत्यसीति स्मारं स्मारं विदीर्यते हृदयम्। अहह!! कतिवारं नाहं निवेदितवान्—यद् सुभ्रूव मादृशो अकिञ्चित्करे अन्यवस्थे

वचनपीयूषासारम् = कथितवचोऽमृतधारासम्पातम्।

अनपेक्षितव्रीडा = अगृहीतलज्जा। समनुभूतया चिरविरहपीडया, कलिता। विक्षिप्तक्रीडा = उन्मत्तलीला यया सा। मुक्तकण्ठम् = स्फोटित गलम्। अतितारमिति यावत्। समानः, उद्गारः = दुःखोद्गमः यस्य सः। भज्यमानेन = त्रुट्यता। विशृङ्खलितेनेति यावत्। कण्टकिते = सरोमाञ्चे करे, आकलितेन, पटखण्डेन = मुखशोषकवस्त्रशकलेन। कपोलतलाद्, गलन्तीम् = पतन्तीम्, अश्रुधाराम्। उपवेश्य = सौवर्णीं प्रतिष्ठाप्य। उपविश्य = स्वयमासित्वा। विदीर्यते = द्विधा भवति। अकिञ्चित्करे=

विशाल दुःखसागर को सम्प्राप्त एवम् वचनामृत प्रवाह को प्रवाहित करने वाले रघुवीरसिंह को देखा।

देखते ही उठकर उसके चरणों पर गिरकर, लज्जा की उपेक्षा कर चिर-विरह की वेदना की अनुभूति से उन्माद क्रीडा को प्राप्त करनेवाली वह सौवर्णी मुक्तकण्ठ रोने लग गई। दुःखोद्गार में सौवर्णी सदृश होने पर भी रघुवीरसिंह ने जिस किसी प्रकार धैर्य धारण कर, अवरुद्ध स्वर से सौवर्णी को सान्त्वना देता हुआ, अपने कम्पन युक्त अङ्गों से चरणपतित सौवर्णी को उठाकर, उसका प्रेमालिङ्गन कर रोमाञ्चयुक्त हाथ में वर्तमान रूमाल से सौवर्णी के कपोलों से बहती हुई अश्रुधारा को पोंछ दिया और उसे बैठाकर तथा स्वयम् भी बैठकर सौवर्णी से कहने लगा—"प्रिये! मेरे निमित्त तुमने बहुत कष्ट उठाया है—यह स्मरण कर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।

अनुरक्ताऽसि। अस्तु, व्यतीता सा दुरदृष्ट-दशा, तवैव पुण्यैरहमपि जीवामि, दुष्कीर्ति-वेदनां विधूय महाराजस्य परम-पुरस्कार-भाजनं च संवृत्तोऽस्मि। महाराजः स्वयमधुना तव पाणिं मां ग्राहयिष्यति, अधुना त्यजेमं संन्यासि-वेषम्, यदवलोकनेनापि खिद्यते चेतः।

अहह ! क्व ते नवनीत-कोमलान्यङ्गानि ? क्व चैतद् ब्रह्मचर्यम् ? न तव प्रकृति-कुञ्चिताः कचा जटाजूटतामर्हन्ति, नेयं त्वग् भसितसङ्घर्षमर्हति, नायं मौक्तिक माला-गौरवमपि सग्लानि सहमानः कन्धरो रुद्राक्ष-राशि-भार-कष्टमर्हति, न वेयं

कार्यासाधके, कर्तुमशक्ते। अव्यवस्थे = स्थित्यादिव्यवस्थारहिते। दुष्कीर्तिवेदनाम्=दुर्यशोयन्त्रणाम्। विधूय = तिरस्कृत्य।

नवनीतवत् = हैयङ्गवीनवत्, कोमलानि = मृदूनि। क्व चैतद् ब्रह्मचर्यमिति विषमालङ्कारः। प्रकृतिकुञ्चिताः = स्वभाववक्राः। जटाजूटताम् = जटात्मना बन्धनम्। इयम् = ईदृशी। विशिष्टेति यावत्। भसितसङ्घर्षम् = भूतिमर्दनम्। मौक्तिकमालागौरवम् = मणिस्रग्गुरुताम्।

हाय !! क्या मैं तुमसे कई बार नहीं कह चुका था कि तुम मेरे जैसे तुच्छ तथा अव्यवस्थित व्यक्ति से व्यर्थ प्रेम कर रही हो ! अस्तु, अब वह दुरदृष्ट की दुर्दशा बीत चुकी, तुम्हारे ही पुण्य के प्रभाव से मैं भी जीवित हूँ एवम् अपने दुर्यश के कारण हुई व्यथा की उपेक्षा कर सम्प्रति महाराज का परम-पुरस्कार-पात्र भी बन चुका हू। अब स्वयम् महाराज मेरे द्वारा तुम्हारा पाणिग्रहण करानेवाले हैं। अतः अब इस तपस्विनी-वेषको छोड़ दो जिसके अवलोकनमात्र से भी मन खिन्न हो रहा है।

हाय ! नवनीत की तरह कोमल ये तुम्हारे अङ्ग कहाँ और यह कठोर ब्रह्मचर्य कहाँ ! तुम्हारे ये स्वभावतः घुंघराले बाल जटा बनाने योग्य नहीं हैं, तुम्हारी यह कोमल त्वचा भस्म की रगड़ खाने योग्य नहीं है, मोतियों की माला के भार को ढोने में भी कष्ट का अनुभव करनेवाला तुम्हारा यह कन्धा रुद्राक्ष माला के भार के ढोने से उत्पन्न होनेवाले कष्ट का सहन करने

कुसुम शयन-सनाथन प्रार्थना-भाजनं गात्र यष्टिः स्थण्डिल शय्यामर्हति । तदुत्तिष्ठ, सनाथय स्व-वास-भवनम्, समुज्जीवय वृद्ध देवशर्माणं पुरोहितम्, समासादय च चिरत्यक्त-प्रकृति-सिद्ध निज वेषम् । गच्छाम्यहमधुना, मदर्थमेव चिराङ्गीकृत ब्रह्मचर्यं स्वपितर प्रशमयितुम् । ततश्च राजमाताऽपि कुशलमावेदनीया, क्षम्यतां क्षम्यताम्, साम्प्रत नास्ति मेऽवकाश । कदाचिद् वेत्सि भवती यद् अद्यैवापराह्णे महाराष्ट्रराजस्य प्रताप-दुर्ग प्रवेश इति । नास्त्यथास्माकमवसर क्षणमप्यन्यथाऽतिवाहयितुम्--इत्यनुमन्यसे चेत्साधयामि ।

---

सग्लानि = सखेदानुभवम् । रुद्राक्षराशीनां भार एव कष्टम् । कुसुमशयनसनाथनस्य = पुष्पशय्यास्वीकरणस्य, प्रार्थनायाः, भाजनम् = आधारीभूतम् । स्थण्डिलशय्याम् = अपरिष्कृतभूशयनम् । सनाथय = शोभय । चिराङ्गीकृतब्रह्मचर्यम् = दीर्घकालगृहीतव्रतविशेषम् । आवेदनीया = बोधनीया । अवकाशः = अवसर । अतिवाहयितुम् = समापयितुम् । साधयामि = गच्छामि । नाटकीयमप्येतमिति साहित्यदर्पणादिषु स्फुटीकृतम् ।

---

योग्य नहीं है और पुष्पों की शय्या पर सोने के लिये प्रार्थना करने योग्य तुम्हारा यह शरीर भी जमीन पर सोने योग्य नहीं है । अतः अब उठो, अपने वासस्थान को सनाथित करो, अपने वृद्ध कुल-पुरोहित देवशर्माजी को उज्जीवित करो और अपने चिरत्यक्त प्राकृतिक वेष का भी धारण करो । मेरे ही निमित्त चिरकाल से सन्यासव्रत धारण करनेवाले पिताजी से मिलने मैं अभी जा रहा हूं । तत्पश्चात् राजमाता को भी अपने कुशल की सूचना देनी है, अत अभी क्षमा करो । मुझे बहुत अवकाश इस समय नहीं है । तुम तो प्रायः जानती होगी कि आज ही अपराह्न काल में महाराष्ट्रराज अपने प्रताप दुर्ग में प्रवेश करनेवाले हैं । आज हम लोगों को एक क्षण भी अन्यान्य कार्य में व्यतीत करने का अवसर नहीं है । अतः यदि तुम्हारी अनुमति हो तो मैं इस समय यहाँ से चलूँ ।

सा तु आनन्द-परवशा जडीकृतेव चित्रार्पितेव मन्त्र-कीलितेव मायामोहितेव विक्रीतचित्तेव हारित-हृदयेव मथित-मानसेव च त्रिविध-भाव भङ्ग तरङ्गिताभ्यां नयनाभ्यां निपुण-मीक्षमाणा, अविरल गलन्नयन जल-धारया भसित-सम्मर्दमिव क्षालयन्ती, मन्दं मन्दं मुहूर्त्तमालप्य तं विससर्ज्ज । स च ततः प्रचलितो बहुभिः साश्चर्य्यं सानन्दं च दरीदृश्यमानो मोमोद्यमानः सत्कारीक्रियमाणश्च यथोचित तांस्तान्प्रणमन्, आलिङ्गंश्च, मारुति-मन्दिरमासाद्य सरोमाञ्चं सगद्गदं सानन्दञ्च, हनूमन्मूर्तिं दर्शं दर्शं स्तावं स्तावं पातं पातं नामं नामञ्च परमं मोद सन्दोमवाप ।

आनन्दपरवशा = हर्षाधीना । मन्त्रैः, कीलितेव = यन्त्रितेव । मायामोहितेव = इन्द्रजालमूढेव । हारितहृदयेव = चोरितमानसेव । मथितमानसेव = विलोडितस्वान्तेव । अविरलम् = सततम्, गलन्त्या नयनजलधारया । भसितसम्मर्दम् = भूतिसम्मिश्रणम् । क्षालयन्ती = धावयन्ती । विससर्ज = तत्याज । गन्तुमनुमोदितवतीति यावत् । मोमोद्यमानः = प्रशस्यमानः । सत्कारीक्रियमाणः = सत्कारगोचरतामानीयमानः । दर्शं दर्शम् = दृष्ट्वा दृष्ट्वा । स्तावं स्तावम् = स्तुत्वा स्तुत्वा । पातं पातम् = पतित्वा पतित्वा । नामं नामम् = नमस्कृत्य नमस्कृत्य । णमुल् सर्वत्र । मोद-

तदनन्तर आनन्द परवश होने के कारण जड़ीभूत सी, चित्रार्पित सी, मन्त्र स्तब्ध सी, मायामोहित सी, अपने चित्त को बेच देनेवाली सी, चुरा लिये गये हृदयवाली-सी एवम् उन्मथित मानसवाली-सी उस सौवर्णी ने सतत बहनेवाली अश्रुधारा से मानो अपने शरीर के भस्म लेप को ही धुलाती हुई थोड़ी देर तक रघुवीरसिंह के साथ वार्तालाप कर उसे विदा कर दिया। वहां से प्रस्थित रघुवीरसिंह ने अपने बहुत से चकित एवम् आनन्दित प्रेक्षकों, आनन्दकों तथा सत्कारकों का यथोचित अभिवादन तथा आलिङ्गन करता हुआ हनुमानजी के मन्दिर को प्राप्त कर रोमाञ्च, गद्गद तथा आनन्द से सम्पन्न होकर हनूमान्जी की मूर्त्ति के बारम्बार दर्शन, स्तवन, चरण-निपतन तथा प्रणमन से परमानन्द सन्दोह का अनुभव किया। मन्दिर में

वत्पूजकेन साशीराशि समाश्लिष्टः, प्राप्त प्रसाद-मालः, सम्पादित-सिन्दूर-तिलक भालः, क्रियासमभिहारेण प्रणम्य, किञ्चित् समालप्य च देवशर्म्मणो मठं च प्रविश्य, 'दासोऽयं रघुवीरसिंहः प्रणमति' इति साष्टाङ्गं प्रणनाम।

देवशर्म्मा तु चिर समयानन्तरं तादृशं स्वर वचनञ्चाऽऽकर्ण्य, पादयोः पतितां तादृशीं मूर्तिञ्चावलोक्य चकित, क्षणं जड इव स्तब्ध. परस्तादोत्थाय, उपनेत्रं श्मश्रुकूर्चं च प्रक्षाल्य, पवन्तीभिर्वाष्प धारा-भिस्तमासिच्य, आनन्दाश्रुतेरिव वात्सल्य-रजताङ्कुरैरिव प्रेम-पीयूष-

सन्दोहम्=प्रसन्नताधमूहम्। साशीराशि=सानेकाशीर्वादम्। समाश्लिष्टः = समालिङ्गित.। प्राप्तप्रसादमालः = लब्धहनूमदर्पितस्रक्कः। सम्पादितसिन्दूरतिलकभालः = मुदितनागकेशरतिलकमस्तकः। मठम् = छात्रादिनिलयम्। प्रथमान्त एवम्भूतोऽमरः। साष्टाङ्गम् = समस्तशरीर-पातम्। प्रणामस्यैमान्यष्टावङ्गानि। "उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥"

स्तब्धः = निश्चेष्टः। वाष्पधाराभिः = अश्रप्रवाहैः। तम् = रघुवी-रम्। श्वेतरोमाण्युत्प्रेक्षते-आनन्दाश्रुतेरिव = हर्षवाष्पकुलक्यैरिव। वात्स-

हनूमान्जी के पूजक द्वारा आशीर्वाददानपूर्वक आलिङ्गन एवम् प्रसाद के रूप में हनूमान्जी के चरणों पर अर्पित माला के प्रदान के पश्चात् ललाट में सिन्दूर की टीका लगा दिये जाने पर रघुवीरसिंह भूयोभूय हनूमान्जी तथा उनके पुजारी को प्रणाम तथा पुजारीजी से कुछ बातचीत कर देवशर्माजी के मठ में प्रविष्ट हो गया और "आपका सेवक रघुवीरसिंह आपको प्रणाम कर रहा है" यह कहकर देवशर्माजी को उसने साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

चिरकाल के पश्चात् उस प्रकार के स्वर तथा वचन के श्रवण एवम् अपने चरणों पर पड़ी उस मूर्ति के अवलोकन से चकित देवशर्माजी तो क्षण भर के लिये जड़पदार्थ की तरह स्तब्ध ही रहे। बाद में खड़े होकर प्रवाहित होनेवाली अश्रुधारा से अपने चश्मे तथा दाढ़ी-मूँछ का प्रक्षालन करते हुए स्वचरणपतित रघुवीरसिंह को भी स्नान कराकर वात्सल्य के

धारोद्गारैरिव निःसरद्भिः कष्टकण्टकैरिव च समुदश्चितैः श्वेत-रोमभिर्व्याप्त, कलित-द्विगुण-कम्पाभ्यां कराभ्यां कथमपि तमुत्थाप्य, वलित-वली पलितेऽस्थि-चर्ममात्रे वक्षसि गाढमालिलिङ्ग। सोऽपि च देवशर्म्म-प्रेम-पूर-द्विगुणोद्दश्चित-बाष्पो निःशब्दमेव क्षणं रुदित्वा, शनैः शनैर्भग्नेन स्वरेण स्वीयमितिवृत्तं सूचयित्वा, ततस्ततः 'सपदि गन्तव्यमिति, महाराष्ट्र-चक्रवर्त्ती अद्यैवाऽऽयास्यति' इति च निवेद्य, तदनुमतिमासाद्य, नत्वा, निवृत्य, तुरग-निगालमास्फाल्य, सोत्काल-

ल्यम् = लघौ स्नेह, एव रजत तदङ्कुरैरिव = तत्प्ररोहैरिव। प्रेमपीयूषधारोद्गारैरिव = अनुरागामृतप्रवाहोद्भूतिभिरिव। नि सरद्भिः=बहिर्भवद्भिः। कष्टानि = दु खानि, एव कण्टकाः, तै। समुदश्चितैः = समुत्थितैः। व्याप्त = वलयित। कलित. = धारित, द्विगुणः, कम्प = वेपन याभ्या ताभ्याम्। वलितवलीपलिते = प्राप्तवार्धक्यश्वेतकेशे। अस्थिचर्ममात्रे = कीकसत्वङ्मात्रावशिष्टे। वक्षसि = उरसि। देवशर्मप्रेमपूरेण, द्विगुणोद्वेञ्चितम् = द्विगुणोच्छलितम्, बाष्प यस्य सः। भग्नेन = त्रुटितेन। इतिवृत्तम् = पूर्वतनमितिहासम्। अनुमतिम् = आदेशम्। तुरगनिगालम् =

रजतमय अङ्कुर एवम् प्रेम-पीयूष के धारा-प्रवाह के समान अभ्युदित तथा कष्टात्मक काँटों की तरह खड़े उजले रोएँ से व्याप्त शरीरवाले देवशर्माजी ने उस अवसर पर द्विगुण कम्पित होनेवाले अपने हाथों से जिस किसी प्रकार रघुवीरसिंह को उठाकर वृद्धावस्था के आगमन के कारण पके बाल से युक्त अपनी केवल अस्थिचर्मावशेष छातीसे आलिङ्गित किया। देवशर्माजी के प्रेम-प्रवाह से द्विगुण अश्रुप्रवाह करता हुआ रघुवीरसिंह भी क्षणभर मौन होकर ही रोता रहा। तत्पश्चात् शनैः शनैः अवरुद्ध स्वर से देवशर्माजी को अपनी सारी कहानी सुनाकर "महाराष्ट्रराज आज ही आनेवाले हैं, अतः शीघ्र वहाँ चलना चाहिये" इस प्रकार शर्माजी से निवेदन करने के पश्चात् उनकी अनुमति प्राप्त कर, उन्हें प्रणाम कर रघुवीरसिंह वहाँ से लौट गया और

मारुह्य, अभीषूनाक्षिप्य रेचितकेनाश्वं चालयन्, पलाशिनां मण्डलेषु निलीनः।

तत्र कुटीरे ब्रह्मचारि-गुरु-रूपो जटिलो वीरेन्द्रसिंहस्तु अद्य रजन्यां स्वप्ने 'कस्मिंश्चिद् युद्धे रघुवीरसिंहो वीरगतिं गतः'—इत्य पश्यदिति सचीत्कारमुत्थितः पार्श्वस्थदृष्टो रुदन् यथावृत्तमकथयत्। 'यः स्वापेष्वेवं दृश्यते, स दीर्घायुर्भवति पुरुषायुषं जीवति' इति क्रियासमभिहारेण तैः सान्त्वयमानोऽपि शोकविमोकं नाकार्षीद्।

अथ वीरक्षत्रियोऽपि वृद्धः—इति चिरानुभूत-सुत-वियोग-दुःखः इति च लिखतेऽमौ वीरेन्द्रसिंहः—इति सर्वथा सान्त्वयितव्यः सुखयि-

---

अश्वगलोद्देशम्। सोत्फालम् = सकूर्दनम्। अभीषून् = रश्मीन्। अश्वा-कर्षणरज्जुमिति यावत्। पलाशिनाम्=द्रुमाणाम्। निलीनः=अदृश्यतांगतः।

जटिल = जटावान्, ब्रह्मचारी। वीरगतिम् = सम्मुखमरणम्। यथावृत्तम् = यथाजातम्। स्वापेषु = शयनेषु। पुरुषायुषम् = शत वर्षाणि, पञ्चविंशत्युत्तराणीति चापरे। शोकस्य विमोकम् = त्यागम्।

चिरानुभूतसुतवियोगदुःखः=दीर्घकालाभ्यस्तपुत्रविरहखेदः। सान्त्व-

---

अपने घोड़े का गरदन थपथपाकर, कूदकर उसपर चढ़ गया और लगाम खींचकर दुलकी चाल में घोड़े को हाँकता हुआ वृक्षपुञ्ज में विलीन हो गया।

किन्तु अपने कुटीर में ब्रह्मचारिगुरु के स्वरूप में निवास करनेवाले वीरेन्द्रसिंह पूर्वरात्रि में "किसी युद्ध में रघुवीर सिंह ने वीरगति प्राप्त कर ली" इस प्रकार का स्वप्न देखने के कारण चीत्कारपूर्वक उठकर अपने समीप में वर्त्तमान व्यक्तियों को रो-रोकर सारा वृत्तान्त सुना चुके थे। "जिसके विषय में इस प्रकार के स्वप्न देखे जाते हैं वह दीर्घायु होता है और सौ-सवासौ वर्षोंतक अवश्य जीता है" इस प्रकार से अपने मित्रों द्वारा बारम्बार सान्त्वना दिये जाने पर भी वीरेन्द्रसिंह शोकमुक्त नहीं हो रहे थे।

तत्पश्चात् "वीर क्षत्रिय होने पर भी ये अब वृद्ध हो चुके हैं और पुत्र वियोग की असह्य वेदना की कटु अनुभूति भी इन्हें चिरकाल से करनी पड़ी

तव्यश्चायमिति, सर्वे ऊर्जस्वलैरुदारैर्वागासारैस्तच्छोकाग्निं मन्दं चक्रुः।

तावत्प्रविश्यैकेन ब्रह्मचारि-बटुना स्वसमान-वयसमपरमेकं बटुमिङ्गितेनाऽऽहूय बहिर्नीत्वा निर्दिश्य कथितम्—"पश्य पश्य, कृष्ण कर्णम्, चञ्चच्चन्द्र-वर्चसम्, उन्नत-ग्रीवम्, मेचक-कच-प्रचय-वीजित-निगालम्, धूम्र-लाङ्गूलोद्धूनन-विहित-चामर-चालन-चातुर्यम्, चर्वणावशिष्टैः प्रत्यर्थि-यशोभिरिव फेनैरा-

---

यितव्यः=शाम लम्भयितव्यः। ऊर्जस्वलैः = बलशालिभिः। वागासारैः = वाणीधारासम्पातैः, तस्य शोक एवाग्निस्तम्। रूपकम्। मन्दम् = क्षीणम्।

स्वसमानवयसम् = स्वतुल्यावस्थाकम्। इङ्गितेन = चेष्टया। निर्दिश्य = प्रदर्श्य। चञ्चच्चन्द्रवर्चसम् = चमत्कुर्वद्द्विजपतितेजस्कम्। उन्नतग्रीवम् = उत्कन्धरम्। मेचकेन = कृष्णवर्णेन, कचप्रचयेन = केशव्रातेन, वीजितः, निगालः = गलोद्देशो यस्य तम्। धूम्रलाङ्गूलस्य = कृष्णपुच्छस्य, उद्धूननेन=सञ्चालनेन। विहितम्=प्रकटीकृतम्, चामरचालनचातुर्यं येन तम्। चर्वणावशिष्टैः=निगरणशेषभूतैः। प्रत्यर्थिय-

---

है; अतः इन्हें किसी प्रकार सान्त्वना देनी चाहिये तथा प्रसन्न करना चाहिये" इस भावना से उनके मित्रों ने अपने ओजस्वी तथा उदार वचनों से किसी तरह वीरेन्द्रसिंह की शोकाग्नि को कुछ शान्त किया।

उसी समय वहाँ प्रवेश कर एक बटुक ब्रह्मचारी ने अपने समवयस्क अन्य ब्रह्मचारी को बाहर बुलाकर (उधर आते हुये रघुवीरसिंह की ओर) सङ्केत करता हुआ कहा—"देखो देखो, काले कानोंवाले, चन्द्रमा की चन्द्रिका का अनुकरण करनेवाले, उन्नत गरदन से सम्पन्न, साँवले बालों के समूह से अपने गरदन में हवा लगानेवाले, अपनी श्यामवर्ण की पूँछ के डुलाने में चामर डुलाने की चातुरी को प्रकट करनेवाले और चबाने से अवशिष्ट शत्रुकीर्तिकल्प फेन-से अपने मुँह के अधोभाग को व्याप्त करनेवाले

लिप्त-सृक्किणीकम्, तुरगममुं चालयन्, कोऽसौ धन्यः कुटीरमिवोद्दिश्योपत्यकां परिक्रम्य इव आयाति? अनुकरोत्येतस्य आकृती रघुवीरसिंहम्, हयाऽऽरोह-भङ्गी चैषा नान्यस्य सम्भोभवीति"।

अथ सोऽपि गाढं निरीक्ष्य प्रावोचत्—यद्यपि चिरात् प्रनष्टो रघुवीरः कथमकस्मादेवामुना वेषेण समागच्छेदिति संशेते हृदयम्; तथाऽपि चक्षुषी कथं न विश्वसेयम्? ध्रुवं रघुवीर एवासौ। अथान्यमपि दर्शयामि—इत्युक्त्वा, अन्तः प्रविश्य, द्वित्रानिङ्गितैराकार्य दर्शयाम्बभूव।

तावद् विद्युद्वेगेन नेदीयान् संवृत्तोऽयमश्व, सर्वे च 'निश्चितमसौ

---

शोभिरिव=यशःकीर्तिभिरिव। फेनैः=डिण्डीरैः। आलिप्तसृक्किणीकम्=व्याप्तोष्ठप्रान्तभागम्। उद्दिश्येव=लक्ष्यीकृत्येव। उपत्यकाम्=पर्वतासन्नभूमिम्। अनुकरोति=विडम्बयति। हयारोहभङ्गी=अश्वारोहणशैली। सम्भोभवीति=अतितरां सम्भवति।

प्रनष्टः=अदृष्टिगतः। संशेते=सन्देहं करोति। चक्षुषी=नेत्रे। अन्यम्=इतरम्। आकार्य=आहूय।

---

घोड़े को हाँकता हुआ उपत्यका के परिभ्रमण से परावृत्त होकर प्राय इस आश्रम की ओर ही आनेवाला यह कौन-सा धन्य व्यक्ति है? इसकी आकृति तो रघुवीरसिंह की जैसी लग रही है और इस तरह की अश्वारोहण-कला भी तो रघुवीरसिंह को छोड़कर अन्य व्यक्ति में होना अत्यन्त असम्भव है।"

उसकी बात सुनकर दूसरे ब्रह्मचारी ने भी अच्छी तरह उस अश्वारोही को देखकर कहा—यद्यपि बहुत दिनों से विलुप्त रघुवीरसिंह एकाएक इस वेश में यहाँ कैसे आ जायेंगे—इस प्रकार का सन्देह मेरे हृदय में है तथापि अपनी आँखों पर तो विश्वास करना ही है। निश्चित ही ये रघुवीरसिंह हैं। आओ, अन्य लोगों को भी दिखलायें—यह कहकर कुटी में प्रवेश कर दो-तीन अन्य व्यक्तियों को भी इशारे से बाहर बुलाकर उन दोनों को इन्हें आते हुए रघुवीर के दर्शन कराये।

तबतक तो बिजली की तरह तेज चलनेवाला रघुवीरसिंह का घोड़ा पास

रघुवीरसिंहः'—इति स्पष्टं व्याजह्रुः।

ततः केचित् "सोऽयं सोऽयम्" केचिद्—"दिष्ट्या जीवति"; केचिद्—"अहो! आनन्दः"; केचिद्—"कथं न स्यादीदृशी प्रसूतिः क्षत्रिय धौरेयाणाम्!" केचिद्—"समाकर्णि मया पूर्वमेव यत्तोषितप्रभुः समायाति रघुवीरः" इति; केचिद्—"सत्यं खलु भविष्यद्वचनं देवशर्म्मणः"; केचिद्—"फलमिदं वीरेन्द्रसिंह-महाव्रतस्य"; केचिद्—"विजृम्भित एष सौवर्ण्यास्तपसां परिणामः"; केचिच्च—"उच्यतामुच्यतां वीरो वीरेन्द्रसिंह"—इति परस्परमूचुः। तावत्झटिति प्रविश्य "जीवति रघुवीरसिंहः, समायातो रघुवीरसिंहः, एष बहिरुपस्थितो रघुवीरसिंहः, दृश्यतां रघुवीरसिंहः लभ्यतां

---

विद्युद्वेगेन=चपलाजवेन। नेदीयाम्=अतिनिकटस्थितः। व्याजह्रुः=कथयाञ्चक्रुः।

प्रसूतिः=सन्ततिः। क्षत्रियधौरेयाणाम्=बाहुजश्रेष्ठानाम्। समाकर्णि=श्रुतम्। विजृम्भितः=समेधितः। परिणामः=फलम्।

---

आ चुका। तब सबने "ये तो रघुवीर सिंह ही हैं" इस प्रकार स्पष्टरूप में कहा।

तदनन्तर कुछ लोग "वही हैं, वही हैं", कुछ लोग "अहो! कितना आनन्द है", "क्षत्रियश्रेष्ठ की सन्तति इस प्रकार प्रशस्त क्यों न हो", कुछ लोग "मैं तो पहले ही सुन चुका था कि महाराज को प्रसन्न कर रघुवीरसिंह आ रहे हैं", कुछ लोग "देवशर्माजी की भविष्यवाणी सत्य निकली", कुछ लोग "वीरेन्द्रसिंह की कठोर तपस्या का ही यह उत्तम परिणाम है", कुछ लोग "यह तो सौवर्णी के तप के फल की समृद्धि है" और कुछ लोग "जाओ, जाओ, वीरेन्द्रसिंह से जाकर कहो" इस प्रकार परस्पर बातचीत करने लगे। तबतक कुटी में प्रवेश कर "रघुवीरसिंह जिन्दे हैं, रघुवीरसिंह आ चुके, रघुवीरसिंह बाहर खड़े हैं, चलिए रघुवीरसिंह को देखिये, अब अपने रघुवीरसिंह को लीजिये" इस प्रकार बारबार कहनेवाले ब्रह्मचारियों

रघुवीरसिंहः"–इति क्रियासमभिहारेण वदतां वटूनां मुखमवलोकयन्, परिवृत्त-दृष्टिः, विस्मृतात्मा, व्यामुग्ध इव क्षणं स्तब्ध एव समतिष्ठत वीरेन्द्रसिंहः। अथ तैरुत्थाप्यमानः किञ्चिद्विश्वस्य बहिरायातः। तावद् रघुवीरसिंहागमन-कोलाहलेन व्याप्तमभूत् कुटीर-द्वारम्।

रघुवीरोऽपि दूरादेव हस्तमुद्यम्य अङ्गुल्या स्वं दर्शयतो वेगेन निविशमानान् पुनर्बहिरागच्छतः स्वात्मीयान् कथं कथमपि बहिरुपयान्तं बाष्प-धाराऽऽसारैः स्नातं पितरञ्च पश्यन्; अश्रुकलाऽऽकुलित-लोचनः क्षणेन तुरङ्गमं कुटीरद्वारमानयत्। कदाऽसावत्र समायातः? कदाऽश्वपृष्ठादुत्प्लुतः? कदा वा तातस्य

झटिति = त्वरितम्। परिवृत्तदृष्टिः = अन्यतः प्रक्षिप्तचक्षुः। व्यामुग्ध इव = व्यामूढ इव। विश्वस्य = विश्वासमाधाय।

उद्यम्य = उत्थाप्य। निविशमानान् = प्रविशतः। स्वात्मीयान् = स्वबन्धुजनान्। उपयान्तम् = समागच्छन्तम्। बाष्पधारासारैः = अश्रुवेगवर्षैः। स्नातम् = निषिक्तम्। तुरङ्गमम = हयम्। उत्प्लुतः =

के मुख का अवलोकन करते हुए प्रत्यावर्तित दृष्टिवाले वीरेन्द्रसिंह अपनी भी सुध भूलकर निश्चेष्ट व्यक्ति की तरह क्षणभर तो स्तब्ध ही रह गये। तदनन्तर उन ब्रह्मचारियों द्वारा उठाये जाने पर उनकी बातों पर कुछ विश्वास कर बाहर निकले। उस समय रघुवीरसिंह के शुभागमन के उपलक्ष्य में किये जानेवाले कोलाहल से कुटीर द्वार गूँज रहा था।

तबतक दूर से ही अपने हाथ उठाकर अपनी ओर अङ्गुल्यानिर्देश करते हुए अत्यन्त शीघ्रता से कुटी में प्रवेश-परावर्तन करनेवाले अपने बन्धुओं और जिस किसी प्रकार बाहर निकलते हुए तथा अश्रुधारा प्रवाह से स्नान करते हुए अपने पिताजी को देखता हुआ आँसूभरी आँखोंवाला रघुवीरसिंह भी अपने घोड़े को कुटीर के दरवाजे तक ले आया। वह कब कुटीर द्वार पर प्रस्तुत हो गया, कब वह घोड़े से उतर गया और कब उसने अपने

चरणयोः साष्टाङ्गं पतितः ?—इति न लक्षितः केनापि। तयोर्मेलनावलोकन-चकित इव महापरिणाहो गतसन्नाहो विगलत्स्वेदप्रवाहो वाहोऽपि दीर्घं निश्वसन् स्वतन्त्रोऽपि परतन्त्र इवैकतरतस्थौ। वीरसिंहस्तु स्वरोदनेन तमपि स्फुटं रोदयन्, उत्थाप्य गाढमालिलिङ्ग। योऽयमस्मिन् समये परितः समभूत् प्रेम-पूर-प्रवाहः; स कथमिव वर्णयितुं शक्यः स्यादस्मादृशैः ? यतो यैरनुभूतस्तैरप्यात्मा विस्मृत इति तैरप्यशक्य एव व्याख्यातुम्।

अथ मुहूर्त्तानन्तरं सर्वेऽपि कुटीरान्तः प्रविष्टाः, कटेषु चोपविष्टाः।

---

उत्कूर्दितः। पतितः=प्रणतः। न लक्षित =नावलोकितः। महापरिणाहः= अतिविशालः, अत्र बहुव्रीहिः। गतसन्नाहः=त्यक्तोद्यमः। विगलत्स्वेदप्रवाहः = निष्क्रामद्घर्मबिन्दुपूरः। वाहः = अश्वः। स्वतन्त्रोऽपि = अयन्त्रितोऽपि। परतन्त्र इव = अस्वाधीन इव। तमपि = रघुवीरमपि। स्फुटम् = प्रत्यक्षम्। प्रेमपूरप्रवाहः = अनुरागवारिनिर्झरणम्। अनुभूतः = अनुभवगोचरीकृतः। आत्मा = स्वम्। विस्मृतः = अनवधारितः। अशक्यः = अनर्हः। व्याख्यातुम् = कथयितुम्।

---

पिताजी को साष्टाङ्ग अभिवादन किया—इन बातों का परिज्ञान किसी भी व्यक्ति को नहीं हो सका। विशालकाय, परित्यक्तोद्यम एवम् पसीने की धारा बहानेवाला घोड़ा भी लम्बी साँस भरता हुआ स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्र की तरह एक ओर खड़ा हो गया मानो पिता-पुत्र के मिलन के दृश्य को देखने से वह चकित हो गया हो। वीरेन्द्रसिंह ने तो अपने क्रन्दन से रघुवीरसिंह को भी अत्यधिक रुलाते हुए अपने चरणों पर से उसे उठाकर गले लगा लिया। उस समय वहाँ सर्वतः प्रेम का जिस प्रकार का प्रवाह प्रवाहित हुआ उसका वर्णन हम जैसे व्यक्तियों द्वारा कैसे किया जा सकता, क्योंकि अपनी सुध भूल जाने के कारण उस प्रेम-प्रवाह का अनुभव करनेवाले भी उसका वर्णन नहीं कर सकते।

कुछ समय के बाद सब कुटी में घुस गए और वहाँ चटाई पर बैठ गए।

बटुनैकेन निरभीपूकृत्य घोटको द्रुमशाखायां बद्ध, अपरेण च सरोवरस्यापरतटे निकुञ्जे स्थितो गणेशशास्त्री सूचित । सोऽपि च हर्ष-वर्ष-परवश, कचित् कुशान् कचित्पात्रं कचिदुत्तरीयं कचिन्‍ माला पातयन्, स्वयमपि निपतन्निव धावमान कुटीरं प्रविष्टः ।

रघुवीरस्तु दृष्ट्वैवैनमुत्थाय साष्टाङ्गं चरणयोः पतितः । सोऽपि च वाष्प-पूर-स्नावित-नयनः, वैक्लव्य-द्विगुणीकृत-सहज-कम्पः कथं कथमप्युत्थाप्य वीर-बालकमेनं पौनःपुन्येन दक्षतो वामतश्च गाढमालिलिङ्ग । मुहूर्तं यावत् पारस्परिक-प्रेम पूर-प्रवाहाऽऽवर्तगर्त-

कटेषु = कुशासनेषु "चटाई" इति भाषा । निरभीपूकृत्य = निष्प्रग्रहीकृत्य । द्रुमशाखायाम् = वृक्षावयवे । निकुञ्जे = वाटिकायाम् । हर्षवर्षपरवशः = आनन्दवृष्ट्यधीनः । निपतन्निव = स्खलन्निव । धावमानः = त्वरया चलन् ।

एनम् = गणेशशास्त्रिणम् । अन्वादेशत्वादेनादेशः । वाष्पपूरेण स्नाविते = स्नपिते, नयने यस्य सः । वैक्लव्येन = विक्लवतया, द्विगुणीकृत, सहजः = स्वाभाविकः, कम्पो यस्य सः । पारस्परिकप्रेमपूरप्रवाहस्य =

एक ब्रह्मचारी ने लगाम खोल कर घोड़े को एक वृक्ष की शाखा में बान्ध दिया और एक दूसरे बटुक ने गणेश शास्त्री जी को रघुवीर सिंह जी के लौट आजाने की सूचना दी । सूचना पाते ही कुशा, अपने पात्र, द्वितीय वस्त्र तथा माला को जहाँ तहाँ गिराते हुए तथा स्वयम् भी गिरते हुए गणेशशास्त्री जी भी दौड़ कर वहाँ आ पहुँचे ।

गणेश शास्त्री जी को देखते ही रघुवीर सिंह ने उठ कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया । अश्रु प्रवाह से परिपूर्ण नेत्र वाले तथा विकलता ( वृद्धता ) के कारण द्विगुणित कम्पित होने वाले गणेश शास्त्री ने भी किसी प्रकार स्वचरण निपतित उस वीर बालक को उठा कर उसके दक्षिण तथा वाम भागों में पुनः पुनः गाढ़ालिङ्गन किया । एक मुहूर्त के लिये तो वहाँ वाणी प्रचरित नहीं हो सकी प्राय इसी लिये कि वाणी के मन में इस प्रकार

परिपतन-भीतेव न कुतोऽपि प्रचचार वाणी।

ततो रघुवीर एव धैर्य्यमवलम्ब्य, पटान्तेन चक्षुषी परिमृज्य, वीराऽऽसनेन पातित जानुद्वयमुपविश्य, उदारया वाचा एवमाललाप-

तात! न वचनीयं किमप्यावयोर्व्यतीत-व्याकुलता-विषये, सोढमस्माभिः प्राक्तन-कर्मणां फलम्। कर्ण-परम्परया सर्वं श्रुतवानस्मि भवतस्तत्रभवतः पुरोहितस्य च वृत्तान्तम्। चिरायात्रैव वसतामप्यस्माकं नाभूत् पारस्परिक-साक्षात्कारः। नेदिष्ठानामपि परस्पर-दिदृक्षा-क्षाम हृदयानामपि अपरिचितवतां चित्तानि चिरमाक्रान्त-

---

आन्योन्यानुरागोच्छल-जलधारायाः, आवर्त्ताः=अम्भसां भ्रमा एव, गर्त्ताः=गम्भीरस्थानानि, तेषु, परिपतनभीतेव = मज्जनत्रस्तेव प्रचचार = निश्चचार। वाणी = भारती। किंचित्काल मौनिनावेव स्थिताविति यावत्।

पटान्तेन = वसनप्रान्तेन। परिमृज्य = संशोध्य।

सोढम् = समनुभूतम्। कर्णपरम्परया = कर्णाकर्णिकया। पारस्परिकसाक्षात्कारः = आन्योन्यप्रत्यक्षीभवनम्। नेदिष्ठानाम् = अतिनिकटे

---

का भय हो रहा था कि वह उस प्रेम प्रवाहस्थ जलभँवर के मध्य में कहीं न गिर जाये।

तत् पश्चात् धैर्य धारण कर, कपड़े के खूँट से आँसू पोंछ कर वीरासन मुद्रा में बैठ कर रघुवीर सिंह ने ही अपने उदार शब्दों में इस प्रकार कहा—

तात! हम लोगों की बीती हुई व्याकुलता के विषय में कुछ नहीं कहना है। हम लोगों ने अपने पूर्वानुष्ठित कर्म का फलोपभोग किया। कर्णपरम्परा से मैं आपके तथा सम्मान्य पुरोहित महाशय के भी सारा वृत्तान्त सुन चुका हूँ। चिरकाल तक मेरे यहीं रहने पर भी हम लोगों का परस्पर साक्षात्कार नहीं पाया। हम लोगों के परस्पर समीपस्थ तथा परस्पर देखने (मिलने) की इच्छा से खिन्न हृदय वाले होने पर भी परस्पर परिचय के अभाव में हम लोगों का चित्त चिरकाल चिन्ताक्रान्त रहा।

चिन्तान्यासन्। सुखमेधतां परस्मिन्नपि लोके क्रूरसिंहः, यस्य पौरुषेण मिलिता वयम्!

नूनं भोक्तव्यं भोगेनैव समाप्नोति तद्‌दुःखमिदं घनीभूय प्रकटित-परिचयानां युष्माकम्, तिरोहित-परिचयस्य च मम शिरस्यापतितमनुभूतं चासहायेन हृदय-हतकेन। परमधुना गतास्ता विद्रावित निद्रास्तन्द्रा-दरिद्रा महायाम-यामिन्यो यामिन्यः।

---

स्थितानाम्। परस्परम्=इतरेतरम्, दिदृक्षया = द्रष्टुमिच्छया, क्षामम् = दुर्बलम्, हृदयं येषां तेषाम्। अपरिचिन्वताम् = परिचयमप्राप्नुवताम्। आक्रान्तचिन्तानि = चिन्ताव्याप्तानि। सुखम् = आनन्दम्। क्रियाविशेषणम्। एधताम् = वर्द्धताम्। परस्मिन् = स्वर्गादिके। पौरुषेण = पुरुषार्थेन।

नूनम् = निश्चितम्। भोक्तव्यम् = सहनीयम्। भोगेनैव = सुखदुःखसाक्षात्कारेणैव। घनीभूय = सान्द्रीभूय। प्रकटितपरिचयानाम्=प्रकाशितसत्त्वानाम्। असहायेन = एकाकिना। विद्राविताः = दूरीकृताः, निद्रा याभिस्ताः। तन्द्रादरिद्राः = निद्रापूर्वावस्थयाऽपि शून्याः। महा-

---

क्रूर सिंह परलोक में भी सुखपूर्वक बढ़ता रहे जिसके पौरुष के प्रभाव से ही हम लोगों का सम्मिलन हो सका है।

यतः भोक्तव्य कर्म का क्षय भोग से ही होता है अतः एव यह विपत्ति परस्पर परिचित आपलोगों के माथे पर भी उमड़ पड़ी थी और अपरिचित मेरे माथे पर भी और इस अभागे हृदय को उसकी कटु अनुभूति भी करनी पड़ी। परन्तु आज निद्रा एवं तन्द्रा से भी सर्वथा शून्य और लम्बे-लम्बे प्रहरों वाली रात्रियों का अन्त हो चुका। मेरे सौभाग्य से आप लोग भी सकुशल हैं। आप लोगों की तपस्या के प्रभाव से मैं भी पुनः महाराज का प्रेमपात्र बना गया हूँ। अब इससे बढ़कर मेरा कुशल क्या हो सकता है!

मम भाग्यैः कुशलिनो भवन्तः। भवतां सपोवलेनाहमपि पुनर्म्महाराजस्य तोषभाजनं संवृत्तोऽस्मीति किमतः परं स्यान्मे कुशलम्? । यवनराज-निगृहीतोऽपि भारतस्य भाग्येन कुशलेन प्रतिनिवृत्तो महाराष्ट्र-मेदिनी-मण्डलाऽऽखण्डलः। तन्मङ्गलमयेऽस्मिन् समये नोदासितव्यं भवद्भिः।

सार-गर्भामुपदेश-पूर्णां व्याकुलता-विरहितां धैर्य्य-धुरीणां कोमलाममलां वाचममूमाकर्ण्य सर्वेऽपि साधुवाद-पराधीनाः परमानन्द-सन्दोह-समुद्वेल्लद्वाष्प-बिन्दु-व्रजेनाऽऽत्मानं क्षालयाम्बभूवुः। ततो मुहूर्त्तमभूवन् तेषामालापा बहुविधाः। येषु पदे पदे कण्ठरोधः, पदे पदे बाष्प-धाराः, पदे पदे रोमाञ्चः, पदे पदे स्वर-

यामयामिन्यः = बृहत्तरनिशाहयुतप्रहरयुताः। यामिन्यः = निशीथिन्यः।
तोषभाजनम् = प्रसन्नतापात्रम्।
नोदासितव्यम् = नोदासीनैर्भाव्यम्।
सारगर्भाम् = सतत्त्वाम्। धैर्यधुरीणाम् = धीरताभारधारिणीम्।
कोमलाम् = मृद्वीम्। अमलाम् = निर्दूषणाम्। परमानन्दसन्दोहेन = अत्युत्कटहर्षसमूहेन, समुद्वेल्लता = समुच्छलता, बाष्पबिन्दुव्रजेन = अश्रु-

यवनराज द्वारा कैद कर लिए जाने पर भी भारत देश के सौभाग्य से महाराष्ट्र भूमण्डल के आखण्डल (इन्द्र) सकुशल यहाँ लौट आये हैं। अतः इस मङ्गल समय अवसर पर आप लोगों को उदासीन नहीं होना चाहिये।

रघुवीर सिंह की सारगर्भित, उपदेशपूर्ण, व्याकुलता रहित, धैर्य-सम्पन्न, कोमल तथा निर्मल वाणी सुन कर उसके साधुवाद में परवश सब लोगों ने परमानन्द सदोह से प्रवाहित होने वाले अश्रुबिन्दु समूह से अपने शरीर को प्रक्षालित कर लिया। तत्पश्चात् कुछ समय तक उन सबका परस्पर विविध वार्तालाप हुआ। जिस आलाप क्रम में पद-पद में कण्ठावरोध, पद-पद में अश्रु धारा, पद-पद में रोमाञ्च, पद-पद में दीर्घ श्वास, पद पद

भङ्गः, पदे पदे दीर्घनिश्वासः, पदे पदे वेपथुः, पदे पदे च वैकल्यम्। कस्तानालापान् अनुवदितुं पारयेत्? को वा तान् कल्पित-कम्पया अविरल गलत्-साञ्जन-वारि-धारया चटुलित-चञ्चु-पुटया, लेखन्या लिखितुमभिमन्येत?

अथ वीरेन्द्रसिंहं सम्बोध्य गणेशशास्त्रिणा कथितम्—

वीरवर! फलितं भवतस्तपोभिः, तदधुना यथाविधि व्रतं समाप्य ब्रह्मचारिवेषं विहाय पुनः राजवेषमासादयतु भवान्। तावत्तत्कुटीरनिवासिभिः सर्वैरपि बटुभिरेवमेवमिति यौगपद्येनोक्त्वा "साध्यतां साध्यताम्" इति गणेशशास्त्रिणा समाज्ञप्तैरुत्थाप्य, तदुक्त-प्रकारेण सामग्री साधनमारब्धम्।

---

कणगणेन। क्षालयाम्बभूवुः = धावयामासुः।

यौगपद्येन = समकालम्। साध्यताम् = सम्पाद्यताम्। समाज्ञप्तैः = समादिष्टैः। सामग्रीसाधनम् = वस्तुव्रजसम्पादनम्।

---

में कम्पन और पद पद में वैकल्य हुये थे उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है। और कौन सा व्यक्ति कम्पित होने वाली, सतत अञ्जन पूर्ण वारिधारा बहाने वाली तथा थरथराती चञ्चुपुट वाली लेखनी से उसे लिख ही सकता है।

तदनन्तर वीरेन्द्र सिंह को सम्बोधित कर गणेश शास्त्री जी ने कहा—

वीरवर! आपके तप सफल हो गये। अतः अब आप अपने व्रत की विधि पूर्वक समाप्ति कर ब्रह्मचारि वेश का परित्याग करें और क्षत्रिय का वेष धारण करें। तदनन्तर उस कुटीर में निवास करने वाले सब ब्रह्मचारी एक ही साथ "जी हाँ, जी हाँ" इस प्रकार का शब्दोच्चारण कर "तैयारी कीजिए, तैयारी कीजिए" इस प्रकार की गणेश शास्त्री की आज्ञा पाकर उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट रीति से सामग्री जुटाने में लग गये।

तावद्वायुवेगेन समुपाविष्टत तत्र कश्चन अश्वारोहः। तं च स्वेद-स्वेद-दुर्दिन-स्नातं त्वरित-श्वास-प्रश्वास तादृशेनैव सैन्धवेन प्रापितमालोक्य यावत्किमिति-किमित्यापृष्टमखिलैः तावत् स समुवाच-'श्रुतं वीर-रघुवीरसिंहः समायात'-इति।

तदाकर्ण्य सपदि रघुवीरसिंहेनोक्तम्—आम्, एषोऽस्मि, कः कुशल-वृत्तान्तः?

स उवाच—भगवतो महाराष्ट्र-राजमाता भवन्तमत्राऽऽगतं श्रुतवतीति गलज्जलाभ्यां नयनाभ्यां भवतः पन्थानमीक्षते।

श्रुत्वैवैतत्प्रणम्य पितरं पुरोहितञ्च रघुवीरः समुत्थाय निजमश्वमारूढः।

---

तादृशेनैव = स्वेदस्नातेन त्वरितश्वासेन च। प्रापितम्=लम्भितम्। अखिलैः = सकलैः।

गलज्जलाभ्याम् = निपतद्वारिभ्याम्।

---

उसी बीच वायु की तरह द्रुत गति से वहाँ एक अश्वारोही आ पहुँचा। परिश्रम जन्य स्वेदात्मक दुर्दिन (अतिवृष्टि) से स्नान किए हुए, शीघ्र श्वास-प्रश्वास लेते हुये तथा उसी प्रकार के ( परिश्रमजन्य दुर्दिन से स्नान किये हुये एवम् शीघ्र श्वास-प्रश्वास लेने वाले ) अश्व द्वारा वहाँ लाये गये उस अश्वारोही से जब तक लोग "क्या बात है ? क्या बात है ?" यह पूछने ही वाले थे तब तक उसने स्वयम् कहा—मैंने सुना है कि वीर रघुवीर सिंह आ गये हैं !

उसकी बात सुन कर रघुवीर सिंह ने तत्क्षण ही कहा—हाँ हाँ, मैं आ गया। कहिए क्या समाचार है ?

अश्वारोही ने उत्तर दिया—आपके यहाँ लौट आने की बात सुन कर सम्माननीया महाराष्ट्र राजमाता अश्रु प्रवाह करती आँखों से आपका रास्ता देख रही हैं।

उक्त बात सुनते ही रघुवीर सिंह अपने पिता तथा पुरोहित को प्रणाम कर अपने घोड़े पर सवार हो गया।

स च सादी स्वेङ्गितमनुसृत्य, केनापि बटुना समानीतमपरमश्वमारुह्य, एतमार्द्रपृष्ठीकरणाय तेषां समर्प्य, रघुवीरमनुचचाल। पश्यत्स्वेव च सर्वेषु, तौ खुराग्र शारद-घन-पटलमिव रेणुका-राशिमुद्गिरन्तौ, प्रलम्ब-पुच्छौ, आयत-ग्रीवौ, समीरण ससरण-सस्तब्ध-कण्ठकेशौ, सप्तसप्ति-सप्तिदर्पं दूरीकर्तुमिव विद्रुतौ, अङ्गार-परिपूर्णामिव भुवमुत्फालमुत्फाल पलमेकं स्पृशन्तौ, वाजिनौ चाल

स्वेङ्गितम् = स्वचेष्टितम्। अनुसृत्य = विचार्य स्वीकृत्य च। एतम् = आगमन एव कृत श्रमम्। आर्द्रपृष्ठीकरणाय = क्लिन्नपृष्ठशान्त्यादनाय। अनुचचाल = अनुससार। शारदघनपटलमिव = शरन्मेघसमूहमिव। रेणुकाराशिम् = धूलिनिकरम्। उद्गिरन्तौ = उद्वमन्तौ। समीरवत् = वायुवत्, ससरणेन = वेगगमनेन, सस्तब्धाः कण्ठकेशाः, ययोस्तौ। सप्तसप्तिः = सूर्यः, तस्य सप्तीनाम् = अश्वानाम्, दर्पम् = अभिमानम्। विद्रुतौ = पलायितौ। अङ्गारेण = वह्निखण्डेन, परिपूर्णामिव = परितो व्याप्तामिव। उत्फालमुत्फालम् – कूर्दित्वा कूर्दित्वा। पलम् = दण्डषष्टि

वह घुड़सवार भी अपने इङ्गित के अनुसार किसी ब्रह्मचारी द्वारा लाए गए अन्य अश्व पर आरूढ हो कर तथा अपने पूर्व अश्व को विश्राम देने के लिये उन ब्रह्मचारियों के हाथों समर्पित कर रघुवीर सिंह के पीछे चला। सबके देखते देखते ही वे दोनों शरत्कालीन मेघपटल की तरह धूलिपटल को अपने खुरों के अग्र भाग से उड़ाते हुये, लम्बी पूँछ वाले विशाल गरदन वाले, वायुवत् द्रुतगमनशील होने के कारण गतिहीन कण्ठप्रदेशस्थ केशवाले (यदि वेग में कमी तथा तारतम्य होता है तो चलते समय वायु के आघात में तारतम्य हो जाता है और इसलिये बाल फरफराते रहते हैं, परन्तु वेग में एकरूपता होने पर वायु के आघात में भी एकरूपता रहती है और इसलिये उस दशा में वायु के आघात से पीछे को ओर झुके बाल गतिशून्य अर्थात् कम्पनशून्य प्रतीत होते हैं), सूर्य के घोड़ों के मानमर्दन के लिये दौड़ते हुए तथा पृथिवी को अङ्गारपूर्ण-सा मानकर कूद-कूदकर पलमात्र

यन्तौ सर्जाऽर्जुन-भूर्ज-खर्जूर-वने निलिल्याते।

गणेशशास्त्री तु सहर्षवर्षं वीरमाशीराशिभिरभिनन्द्य, विधि-पूर्वं व्रतोत्सर्गं कर्म निर्वर्त्य, चिर-प्रवृद्धान् रूक्षान् केशान् वाप-यित्वा उद्वर्त्य, अभ्यञ्ज्य, स्नापयित्वा, नवाम्बराणि परिधाप्य, देवान् ब्राह्मणान् प्रणमय्य महोत्सवमकारयत्।

तावदवितर्कितसमागमः समुपाविशदेको जयपुरनगरात् सादी। स च जयपुराधीश्वर-श्रीजयसिंह-महाराजार्पित पत्रमेकं वीरेन्द्रसिंहायार्पयत्। स च सुवर्ण-वर्णाङ्कितं विविध-वर्ण-वर्ण-नीय कुसुम-माला-चित्र-विचित्र प्रावरणमपसार्य्य, तादृक्षैरेव

भागम्। 'कालाध्वनोरि'ति द्वितीया, निलिल्याते = लीनौ बभूवतुः।

व्रतोत्सर्गम् = व्रतसमाप्तौ क्रियमाण कर्म। निर्वर्त्य = कारयित्वा। रूक्षान् = अचिक्कणान्, तैलाद्यसंसर्गित्वात्। वापयित्वा = कर्तयित्वा। उद्वर्त्य = उद्वर्तनमनुलिप्य। अभ्यञ्ज्य = तैलं समर्द्य। नवाम्बराणि = नूतनवासांसि।

अवितर्कितसमागमः = अचिन्तितागमनः। समुपाविशत = समुपावि-शत्। सुवर्णवर्णाङ्कितम् = हैरण्यवर्णभूषितम्। विविधवर्णवर्णनीयेन = अनेकरङ्गरञ्जितेन, कुसुममालाचित्रेण, विचित्रम् = नानारूपम्।

के लिये उस पर पैर रखनेवाले घोड़ों को हाँकते हुए सर्ज, अर्जुन, भूर्ज तथा खजूर के वन में विलीन हो गये।

इधर गणेशशास्त्रीजी ने हर्षप्रवाह के साथ वीरेन्द्रसिंह का आशीर्वाद से अभिनन्दन कर विधिपूर्वक व्रतसमाप्तिकालिक कृत्य कराकर, चिरकाल से बढ़े रूखे बाल कटाकर, उबटन तथा तेल लगवाकर, स्नान कराकर, नये वस्त्र पहनवाकर एवं देवों तथा ब्राह्मणों को प्रणाम कराकर बहुत बड़ा उत्सव मनवाया।

उसी बीच जयपुर से एक घुड़सवार वहाँ आ पहुँचा जिसके आने के बारे में किसी ने पहले सोचा भी नहीं था। उसने जयपुरमहाराज जयसिंह

जाम्बूनदाक्षरैर्व्याप्तं पत्रं निस्सार्य पठनाय गणेश-हस्ते आर्पयत्। स तु निपुणमवलोक्यैवमपठत्—

"स्वस्ति श्रीदिगन्त-दन्त-दन्तुरित-कीर्ति-कौमुदी-धवलित-वसुधातल-राजपुत्रदेश-चूडामणीभूत-जयपुरप्रदेश- सामन्त-मण्डली मस्तक-मण्डन-मण्डित-पादारविन्दो जयपुराधीश साशीराशि सूचयति श्रीवीरेन्द्रसिंह यद्—

भवाननुक्त्वैवास्मान् कुतोऽपि प्रस्थितः, अन्वेषणैरपि च न लब्ध —इति चिरमन्वभूम चिन्ताकलापम्। इतस्तु भवत कुशल-

प्रावरणम् = पत्राच्छादनकम्। "लिफाफा" इति हिन्दी। जाम्बूनदाक्षरैः = सुवर्णवर्णैः। व्याप्तम् = युतम्। आर्पयत् = अदात्।

स्वस्ति = कल्याणम्। स्वस्तिश्रीत्यारभ्य पत्रलेखनशैली प्राचनी। दिगन्तानाम् - हरिदन्तरालानाम्, दन्तैः = दशनैः, तदुपलक्षितैर्मुखैरिति यावत्, दन्तुरितया=गर्भीकृतया,व्याप्तयेत्यर्थः,कीर्तिकौमुद्या=यशश्चन्द्रिकया, धवलितम् = श्वेतितम्, वसुधातलं यस्य, तादृशो यो राजपुत्रदेश = राजपुत्रायतप्रदेश, तच्चूडामणीभूतः = तच्छेखररत्नीभूत., यो जयपुर-प्रदेशः, तस्य सामन्तमण्डलीनाम् = माण्डलिकौघानाम्, मस्तक-मण्डनै = शिरोभूषणै मण्डितम् = भूषितम्, पादारविन्द यस्यैवम्भूतः, साशीराशि = अनेकाशीर्वादपुरस्सरम्। क्रियावि० सूचयति = बोधयति।

अनुक्त्वैव = अकथयित्वैव। चिन्ताकलापम् = चिन्तनव्रातम्। अव-

द्वारा भेजा गया एक पत्र वीरेन्द्रसिंह के हाथ में दिया। सुनहले अक्षरों से अङ्कित रङ्गबिरङ्गे पुष्पमाला चित्रादि से विभूषित लिफाफे को फाड़कर सुनहले अक्षरों से ही व्याप्त पत्र को उससे निकालकर वीरेन्द्रसिंह ने पढ़ने के लिये गणेशशास्त्री के हाथ में दे दिया। अच्छी तरह उस पत्र को देखकर गणेशशास्त्री ने उसे पढ़ा—

"स्वस्ति श्री दिग्दिगन्त में व्याप्त कीर्ति कौमुदी से वसुधातल को उज्ज्वल बनानेवाले, राजपुताने के शिरोमणि जयपुर प्रदेश के सामन्तों की मण्डली के मस्तकों के मुकुटों से विभूषित पादारविन्दवाले जयपुर महाराज आशीर्वादपूर्वक वीरेन्द्रसिंह को सूचित कर रहे हैं आप जो हम से कुछ कहे बिना

मवगत्य प्रसीदामः। मन्महे कुशली कुमाररामसिंहोऽप्युपलब्धः। इतस्त्वखिलाऽपि भवतः सम्पत् सुरक्षिताऽस्ति, नियत-व्यय-माहात्म्यात् कोषोऽपि सुप्रवृद्धोऽस्ति। शीर्णानि जीर्णान्यपि च भवतो निवास-भवनानि नूतनीकृतानि सन्ति। तत् समागम्यताम्। चिर प्रवृद्ध-तृष्णा सुखाक्रियतां स्वप्रजा। सपदस्माभिरश्वमेधयज्ञ-महोत्सवः करिष्यते।

सर्वेऽप्यस्मद्बन्धुजना समयेऽस्मिन् समुपस्थास्यन्ते। आशास्महे सकुमारो भवानप्यागत्य सर्वान् बन्धूनानन्दयिष्यति, स्वयञ्च महोत्सव साक्षात्कारेणातुलं मोदमासादयिष्यति।

---

गत्य = विज्ञाय। उपलब्धः = मिलितः। नियतस्य = निश्चितस्य व्ययस्य। माहात्म्यात् = कौशलात्। कोष = निधिः। शीर्णानि = विश्रृङ्खलितावयवानि। जीर्णानि = पुरातनानि, चिरप्रवृद्धतृष्णा = चिराय समेधिता स्पृहा यस्याः सा। "तृष्णे स्पृहा पिपासे द्वे" इत्यमरः। सुखाक्रियताम् = सानन्दा विधीयताम्। "सुखप्रियादानुलोम्ये" इति डाच्।

---

ही यहाँ से कहीं चले गये और खोज कराने पर भी मिले नहीं इससे हम लोग चिरकाल से चिन्तित थे। अब आपका कुशल जानकर हम लोग बहुत प्रसन्न हुए हैं। समझते हैं कि सकुशल कुमार रामसिंह भी मिल चुका है। आपकी सारी सम्पत्ति यहाँ सुरक्षित है एव नियमित व्यय के प्रभाव से कोश भी बहुत बढ चुका है। आपके जीर्ण शीर्ण वास-भवन भी नये बना दिये जा चुके हैं। अत अब आप यहाँ आ जायें। चिरकाल से प्रजा में आपके दर्शन की तृष्णा को शान्त कर अपनी प्रजा को सुखी बनायें। शीघ्र ही हम लोग अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान महोत्सव का प्रारम्भ करनेवाले हैं।

इस शुभावसर पर हमारे सभी बन्धु-बान्धव उपस्थित होंगे। हम लोग आशा करते हैं कि आप भी कुमार रामसिंह के साथ यहाँ उपस्थित होकर अपने बन्धुओं को आनन्दित करेंगे तथा स्वयम् भी इस महोत्सव के अवलोकन से अत्यन्त प्रमोद का अनुभव करेंगे।

कुमार-रामसिंहस्य सुक्षत्रियोचितं पराक्रमं सौशील्यञ्चावलोक्य तुष्यामस्तमाम् । एतस्मै सुबहुल-भूभाग-वितरण-पुरस्सरं मण्डलेश्वरता पर्य्यवसायि राजपदमर्प्पयामः, तत्सूचकमिदं सविवरणमपरमाज्ञापत्रमेतेन सहचरितमस्ति । एतदपि स्वीकृत्य सकुमारस्याऽऽगमनेन भूषणीयोऽयं देशः"—इति ।

तदाकर्ण्य सर्वेऽप्यत्यन्तं जहृषुः । तदपरमपि राजमुद्राङ्कितं प्रसार्य्य 'एवमेवम्' इति श्रावितम् । तदाकर्ण्य चाखिलाः-"अहो ! औदार्य्यं महाराजजयसिंहस्य ! अहो ! वैचित्री दैवघटनायाः !! युक्तमिदं यथोचितमिदं रामसिंहाचारस्य !! प्रत्यक्षाण्येतानि फलानि वीरेन्द्रसिंहस्य नैष्ठिकतपसाम् !!"—इति सामोदं व्याजहुः ।

पराक्रमम् = बलम् । सौशील्यम् = स्वभावम् । तुष्यामस्तमाम् = अतितरां प्रसीदामः । मण्डलेश्वरतायाम् = माण्डलिकतायाम् । पर्य्यवसायि = परिणतम् । राजपदम् = राजा इति उपाधिम् । सविवरणम् = सविशकलनम् । एतत् = आज्ञापत्रम् । भूषणीयः = मण्डयितव्यः ।
औदार्यम् = विशालहृदयता । वैचित्री = विचित्रता ।

कुमार रामसिंह के सुक्षत्रियानुरूप पराक्रम तथा विनय को देखकर हम लोग अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं । हम कुमार रामसिंह को बहुत विशाल भूभाग देने के साथ-साथ मण्डलेश्वर के पद पर भी नियुक्त कर रहे हैं और इस नियुक्ति का प्रमापक विवरण सहित यह दूसरा नियुक्ति पत्र भी साथ लगा हुआ है । इस नियुक्ति का भी स्वीकार तथा सकुमार इस देश में अपने शुभागमन से इस देश को आप विभूषित करें ।"

उस पत्र को सुनकर सब अत्यन्त प्रसन्न हो उठे । तत्पश्चात् राजा का मुहर लगा नियुक्तिपत्र भी सबको पढ़कर सुनाया गया । उस पत्र को सुनकर भी सब लोग "अहो ! महाराज जयसिंह की कैसी उदारता है । अहो ! दैव की घटना की कैसी विचित्रता है । रामसिंह के व्यवहार के लिये यह उपहार उचित ही है । वीरेन्द्रसिंह को नियमपूर्ण तपश्चर्या के ये प्रत्यक्ष फल हैं ।" इस प्रकार सानन्द कहने लगे ।

गणेशशास्त्री तु—"अश्वमुन्मोचय, अत्रैव निवस दिनमेकम्, श्वः प्राप्तपत्रोत्तरः स्वदेशं प्रस्थास्यसे"—इति सादिनमुदीर्य्य प्रस्तुताभिर्व्यञ्जन-सामग्रीभिर्ब्राह्मणान् भोजयितुमुदस्थात्।

अथापराह्णे प्रताप-दुर्गाद् गव्यूति द्वयं यावत् सुगन्धित-सलिलैरासिक्तो मार्गः। अभितः पन्थानं रम्भा स्तम्भाः सम्भाविताः। कुङ्कुम चर्चिता अम्भ पूर्णाः कुम्भाः स्थापिताः। अशोक-किसलय-माला आलम्बिताः। काश्मीर राग-रञ्जिता ध्वजा आरोपिताः। इतः पश्चाच्च सन्तस्थे शोणित-शीर्षण्य-शीर्षाणां सधनुर्बाणानां कलित-वारबाणानां कावचिकानां पङ्क्तिः।

ततः पश्चाच्चापरोऽवतस्थे व्यूढ-कङ्कटानामास्फोटित घोटक-

---

उभयतः पन्थानम् = मार्गस्य समन्तात्। "अभितः परितः" इत्यादिना द्वितीया। संभाविताः = स्थापिताः। कुङ्कुमचर्चिताः = नागकेशरसम्मर्दिताः। काश्मीररागेण = केशररङ्गेण, रञ्जिताः। शोणितशीर्षण्यशीर्षाणाम् = रक्तवर्णशिरस्त्रमस्तकानाम्। कलितवारबाणानाम् = धारितकञ्चुकानाम्। कावचिकानाम् = वर्मधारिसैनिकानाम्। पङ्क्ति = श्रेणी।

व्यूढकङ्कटानाम् = धारितकवचानाम्। "उरश्छदः कङ्कटकोऽजगरः कवचोऽस्त्रियाम्" इत्यमर। आस्फोटित घोटक सटानाम् = उत्साहवर्द्ध-

---

गणेशशास्त्री जी तो "घोड़ा खोलो, एक दिन यहीं रुक जाओ, कल पत्र का उत्तर लेकर यहाँ से अपने देश को लौट जाना" यह बात उस पत्रवाहक घुड़सवार से कहकर प्रस्तुत खाद्य पदार्थों से ब्राह्मणों को खिलाने के लिये उठ चले।

तत्पश्चात् अपराह्णकाल में प्रतापदुर्ग से लेकर चार कोशों की दूरी तक का राजमार्ग सुगन्धित जल सींच दिया गया। राजमार्ग के दोनों ओर केले के खम्भ खड़े कर दिये गये। कुङ्कुमचर्चित जलपूर्ण कलश रखे गये। अशोक पल्लवों का समूह लटका दिया गया। केसरिया रङ्ग में रङ्गी ध्वजायें खड़ी कर दी गईं। उनके पीछे लाल रङ्ग की पगड़ीवाले धनुषबाणयुक्त कञ्चुक सम्पन्न कवचधारी सैनिकों की पङ्क्ति खड़ी कर दी गई। उसके भी पीछे

सटानां मौर्वी-घात-सङ्घट्ट-किण-विकट-मणिबन्ध-संसर्पि-हाटक-कटकानां घोर-घन-विपाटकानां प्रत्यर्थिकूर्च्चोत्पाटकानां सादिभटानां श्रेणी । प्रतिघोटक-विंशतिकान्तराले च विविध-मण्डन-मण्डित-शुण्डादण्डाः मौक्तिक-स्तबक-चोचुम्ब्यमान-दान-वारिधाराऽऽसार-क्षालित-कपोलाः वमथु परिषिक्त-पार्श्व-परिवर्ति-तुरङ्गाऽऽरोहाङ्ग-निचोलाः नीलाद्रि सानु-मञ्जुला कुञ्जरा उपस्थापिताः; यान् कुसुम-निचयाऽऽकीर्ण-पात्र हस्ताः बहवो ब्राह्मणबटवः समारूढा ।

नाय विधोधित हयकेशराणाम् । मौर्व्याः = ज्यायाः, घातसङ्घट्टेन = ताडन-सघर्षेण य किणः = व्रण , तेन विकटे = निम्नोन्नते, मणिबन्धे = करमे, ससर्पीणि, हाटककटकानि = सुवर्णवलयानि येषा तेषाम् । घोरघनविपाटकानाम् = सान्द्रमेघभेदयानाम् । विविधमण्डनैः मण्डिता , शुण्डादण्डा येषा ते । मौक्तिकस्तबकैः=मणिगुच्छैः, चोचुम्ब्यमानाया=भृश स्पृश्यमानाया, दानवारिधाराया =मदजलप्रवाहस्य, आसारैः, क्षालिताः कपोला येषा ते । वमथुपरिषिक्ता = करशीकरसिक्ताः; "वमथुः करशीकरः" इत्यमरः । पार्श्वपरिवर्त्तिनाम् = समीपस्थानाम्, तुरङ्गारोहाणाम् = सादिनाम्, अङ्गनिचोलाः = शरीरकञ्चुकानि यैस्ते । नीलाद्रिसानु-मञ्जुलाः = नीलगिरि-शृङ्गसुन्दराः । कुञ्जराः = करिणः । कुसुमनिचयैः, आकीर्णानि = व्याप्तानि, पात्राणि, हस्ते येषा तादृशाः । ब्राह्मणबटव =

कवच धारण करनेवाले, घोड़ों के केशर का आस्फोटन करनेवाले, धनुष की प्रत्यञ्चा के आघात से उत्पन्न घट्ठों से भयङ्कर एवम् सुवर्णमय कङ्गनों से सुशोभित कलाइयोंवाले, घनी घनघटा को विदीर्ण कर देनेवाले और शत्रुओं की दाढ़ी उपाड़ने में निपुण घुड़सवारों की कतार खड़ी हुई थी। प्रत्येक बीस घोड़े के बीच विविध आभूषणों से अलङ्कृत सूँड़वाले, मस्तकस्थित गज-मुक्ताओं के स्तवक से अत्यन्त चुम्बित होनेवाले मद जलप्रवाह से प्रक्षालित कपोलोंवाले, सूँड़ से फेंके गये जलकणों द्वारा पार्श्वस्थित अश्वारोहियों के शरीर कञ्चुकों को सिक्त कर देनेवाले, नीलगिरि के शृङ्ग के समान सुन्दर गजराज खड़े कर दिये गये थे, जिनपर फूलभरे पात्रों को हाथ में लिये

प्रतिगज-द्वयानन्तरं च दौन्दुभिक वैणविक-वैणिक मार्दङ्गिक-मौरजिक-
पाणिघैरारूढा भेरी भाराक्रान्ता अपरे द्विरदा विन्यस्ता ।

७ अथ वारुणी ससर्गाधिक शोणे लज्जयेव पाश्चात्य पर्वतपङ्क्ति-
जवनिकाऽन्तर्निर्लीने चण्डमरीचिमण्डले, चिर-कर-स्पर्शोदीर्ण-
स्वेद-स्नात-वदनेषु पटान्त सङ्घर्षाधिक-ताम्र कान्तिषु वीरेषु, पर-

---

विप्रब्रह्मचारिण । दौन्दुभिकाः = दुन्दुभिवादनशीला., वैणविका =
वेणुवादनशीला, वैणिका = वीणावादनशीलाः, मार्दङ्गिका. = मृदङ्ग-
वादनशीलाः, मौरजिकाः = मुरजवादनशीला., पाणि घ्नन्तीति पाणिघा =
पाणिताडकाः, परस्परद्वन्द्व , ते । भेरीभारेण = दुन्दुभिभारेण, आक्रान्ताः=
नम्रतामिव गताः । द्विरदा = हस्तिनः ।

वारुणीससर्गेण = पश्चिमासम्पर्केण, अधिकशोणे = अतिरक्ते ।
लज्जयेव = त्रपयेवेत्युत्प्रेक्षा । वारुणी- (सुरा) ससर्गात् त्रपा । पाश्चात्यप-
र्वतपङ्क्तिरेव = पश्चिमस्थितगिरिश्रेण्येव, जवनिका = प्रतिसीरा, तस्याः,
अन्तः = अन्तराले । निर्लीने = अन्तर्हिते । चण्डमरीचिमण्डले =
भास्करबिम्बे । चिरकरस्पर्शेन = दीर्घकालकिरणसंसर्गेण, उदीर्णैः = उद्गतैः,
स्वेदैः = घर्मजलकणैः, स्नातवदनेषु = क्षालिताननेषु । पटान्तसङ्घर्षण =
वसनकोणसम्मर्दन, अधिकताम्रकान्तिषु = अतितरां शोणच्छविषु ।

---

ब्राह्मण बटुक चढ हुए थे । प्रत्येक दो गजराजों के बीच दुन्दुभीवादक,
वंशीवादक, वीणावादक, मृदंगवादक, मुरजवादक तथा ताली बजानेवालों
द्वारा आरूढ भेरी के भार से लदे अन्य गजराज भी विन्यस्त थे ।

७ तदनन्तर जब वारुणी (पश्चिम दिशा, पक्षमें–सुरामें) के सम्पर्कसे अत्यन्त
रक्त और (वारुणी=सुरा के पान की) लज्जा से ही मानो पश्चिम दिग्वस्थित
पर्वतश्रेणीरूप परदे के भीतर सूर्यमण्डल विलीन हो चुका था, जब वीरों की
मण्डली चिरकाल से सूर्यकिरण के सम्पर्क से टपकते पसीने से धुले मुखवाले
तथा वस्त्र के किनारे से बारबार पसीना पोंछने के कारण अधिक ताम्रवर्ण हो
चुके थे और सैकड़ों वाद्ययन्त्रों के वादन से उत्पन्न तारध्वनियों से दिग्दिगन्त

इशत वादित्र वादनोद्भूत महाध्वनि बधिरीकृतेषु दिगन्तरालेषु सकलै-रुद्ग्रीवैर्विस्मृतात्मभिर्निर्निमेष नयनैर्निपीयमान सहस्र गुण-यन् महाराष्ट्र वीराणामुत्साहम्, पुनरुज्जीवयन् चिर विरह वि धुरामात्ममात्र शरण जन गात्र यष्टिम्, दुर्दिन सशोषित भारत सौभाग्यस्य पुनरभिवर्षणेन हर्षमयमपर दुर्दिन विरचयन्, दिशोऽपि हासयन्, पृथिवीमपि पुलकयन्, आकाशमपि विकाशयन्, जग त्प्राणमपि प्राणयन्, द्रुम सन्दोहमप्यानन्दयन्, ब्रह्मानन्द-सोद-

---

वीरेषु = भटेषु। परश्शतानाम् = असङ्ख्यातानाम्, वादित्रा णाम् = वाद्यानाम् वादनात्, उद्भूतैः = सञ्जातैः महाध्वनिभिः, बधिरीकृतेषु। दिगन्तरालेषु = हरिदभ्यन्तरेषु। उद्ग्रीवैः = उत्कन्धरैः। निपीयमान = चक्षुर्गोचरीक्रियमाण.। पुनरुज्जीवयन् = मुहुरुत्प्राणयन्। आत्ममात्रशरणानाम् = स्वैकाश्रितानाम्, जनानाम्, गात्रयष्टिम् = यष्टिसदृश कृश शरीरम्। दुर्दिनेन = दुस्समयेन सशोषितस्य, भारतसौभाग्य = हैन्दवैश्वर्यस्य। पुन. = मुहु। अभिवर्षणेन = वृष्ट्या। दुर्दिनम् = मेघच्छन्नदिनम्। सततहर्षपूर्णम्। विरचयन् = सम्पादयन्। हासयन् = निर्मलीकुर्वन्। पुलकयन् = रोमाञ्चयन्। विकाशयन् = दीपयन्। जगत्प्राणम् = समीरणम्। प्राणयन् = समीरयन्। द्रुमसन्दोहम् = वृक्षव्रजम्। आनन्दयन् =

---

गूँज रहा था उस समय अपनी सुध भूलकर गले उठाकर देखनेवाले महाराष्ट्र-देशवासियोंके निमेषपात रहित नयनोंका विषय बने हुये,मराठे वीरोंके उत्साह को हजारगुना बढ़ाते हुए, अपने ऐकान्तिक आश्रित व्यक्तियों के चिरविरह खिन्न शरीरों को पुनरुज्जीवित करते हुए, दु समय दुर्दिन से अभिभूत भारत-देश सौभाग्य के पुनर्वर्षण द्वारा हर्षमय दुर्दिनान्तर का सङ्घटन करते हुए, दिशाओं को भी हँसाते हुए, पृथिवी को भी पुलकित करते हुए, आकाश को भी विकसित करते हुए, जग प्राण वायु को भी अनुप्राणित करते हुए, वृक्ष समूह को भी प्रसन्न बनाते हुए, ब्रह्मानन्द सहोदर से, सुषुप्त्यवस्था के अनु

र्य्यस्येव, सुषुप्ति-स्वादन-स्पर्द्धिन इव, साहित्य-रस-रसन समुत्थितस्येव, कस्यचिल्लोकोत्तर-महानन्दस्य निरुपम परम परमप्रवाह पूर-परम्पराभि- प्रजा- प्लावयन्, आशीर्भिरभिनन्द्यमानः, कुसुमैराकीर्य्यमाण, जयध्वनिभिरुन्मुखीक्रियमाणः, स्तूयमानः, गीयमानः वर्ण्यमानश्च सत्पथेऽस्मिन् न्यविशत महाराष्ट्र-चक्रवर्ती।

अग्रतोऽस्याश्वं नर्त्तयन्त्रः प्रचलिता- शतशोऽश्वारोहा वीराः। ततश्च विकोश कृपाण-पाणयः सहस्रशः पादातिका। ततोऽपि भुशुण्डी-कराणा वीर-वराणां पङ्क्ति-परम्परा, ततोऽपि बाहुमूलाऽऽ-

हर्षयन्। ब्रह्मानन्दस्य, सोदर्यस्येव = समस्येव, अभिन्नस्येवेति यावत्। एवमादिपूत्प्रेक्षा। सुषुप्तेः = तृतीयावस्थायाः, प्रपञ्चावबोधशून्यतात्मिकाया, स्वादनेन = रसनेन, स्पर्धिन इव = प्रतिद्वद्विन इव। साहित्यरसस्य, रसनेन = आस्वादनेन, समुत्थितस्येव = समुद्भूतस्येव। लोकोत्तरस्य = लौकिकानन्दव्यतिरेकिण, महानन्दस्य = निरुपमहर्षस्य। निरुपमः = उपमारहितः, परा, मा = शोभा यस्मिन्नेवम्भूत परमप्रवाहपूरः = अत्युत्कृष्टधारापूर, तत्परम्पराभिः = तच्छ्रेणीभिः। प्लावयन् = मज्जयन्। स्तूयमानः = स्तुतिगोचरीक्रियमाण-। न्यविशत = प्रविष्टः। "नेर्विशः" इत्यात्मनेपदम्।

अग्रतः = पुरतः। विकोशकृपाणपाणयः = नग्नासिहस्ताः। पादातिकाः = पदातयः। भुशुण्डीकराणाम् = "बन्दूक" हस्तानाम्। बाहु-

भव के प्रतिस्पर्धी जैसे तथा साहित्य रसास्वादन से उद्भूत से एक लोकोत्तर महानन्द के निरुपम तथा सर्वातिशायी प्रवाहों से अपनी प्रजा को डुबोते हुए, श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा आशीर्वाद से अभिनन्दित होते हुए, पुष्पवृष्टि से व्याप्त, जयध्वनि से उन्मुखीकृत, स्तुतियों का विषय बनते हुए, गीयमान यश के आश्रय होते हुए तथा वर्णन का विषय बनते हुए महाराष्ट्रचक्रवर्ती ने उस मार्ग में प्रवेश किया।

महाराष्ट्रराज के आगे अपने-अपने घोड़े को नचाते हुए सैकड़ों अश्वारोही वीर चल रहे थे। उनके पीछे खुले तलवारोंवाले हजारों

रोपित-भल्लिका-मतल्लिकानां मल्लतल्लजानामावलिपटलम् । तत. पश्चाच भूषण-सुरेश्वर-माल्यश्रीक-स्तन्यजीव-आन्यजीव गौरसिंह-श्यामसिंह-रघुवीरसिंहादिभि परिवृत, भारत भूमण्डलभागधेयम्. दाक्षिणात्य-वसुमती-वासव, वनीपकीकृतावनी-यवनी-समुदाय, धर्म धुरीणः, योध-बोध-पारीणः, महाराष्ट्र-मेदिनी-परिवृढो महाराज-शिवराजः।

हर्षवैव तारस्वरेण 'विजयतां महाराज' इत्याम्रेडयन्तो गगन विलोडयामासुरखिलाः। अभित पन्थान गजानारूढा विप्र

मूले, आरोपिता, भल्लिकामतल्लिका = प्रशस्ता कुन्ता यैस्तेषाम्। मल्लतल्लजानाम् = प्रशस्तभटानाम्। "प्रशंसावचनैश्च" इति मतल्लिका-तल्लजशब्दयो परनिपात । आवलिपटलम् = पङ्क्तिसमूहः । परिवृतः = परिलक्षितः। दाक्षिणात्यवसुमत्या, वासवः = इन्द्रः। वनीपकीकृतः = याचकीकृतः, "वनीपको याचनको मार्गणः" इत्यमरः, अवन्याः = पृथिव्याः, यवनीसमुदायः, येन सः । तत्पतीनां विध्वंसितत्वाद्याचनातिरिक्ता तासां जीविकैव नास्तीति भावः। धर्मधुरीणः = सनातनधर्मभारधारी। बोधे = परिज्ञाने। पारीण = पारगः।

पैदल वीर थे। उनके पीछे बन्दूकधारी वीरों की परम्परा थी और उसके भी पीछे कन्धे पर बड़े-बड़े बल्लम लिये योद्धाओं की मण्डली थी। उसके पीछे भूषण कवि, सुरेश्वर, माल्यश्रीक, स्तन्यजीव, आन्यजीव, गौरसिंह, श्यामसिंह तथा रघुवीरसिंह आदि के बीच भारतभूमि के सौभाग्य, दक्षिण देश की वसुधा के इन्द्र अवनीतल के यवनीसमूह को भिक्षुक या याचक बनानेवाले, धर्मधुरन्धर तथा युद्धविद्यानिपुण महाराष्ट्र की पृथिवी के अधिपति महाराज शिवाजी थे।

उन्हें देखते ही सब प्रेक्षकों द्वारा की गई उनकी विजयध्वनि से आकाश गूंज उठा। मार्ग दोनों तरफ गजारूढ़ ब्राह्मण बटुकों ने मकरन्द बिन्दुसन्दोह

वटवश्च मकरन्द–बिन्दु–सन्दोह–तुन्दिलानि महासौरभ–समाकृष्ट–परस्कोटि–रोलम्ब–कदम्बानि मोहित–सकल–जन–मनांसि सुमानि ववृषुः। वाद्य–नाद–प्रतिध्वनि व्याजेन विबुधा अपि वसुधाधिप-मेनं दिव्य-वाद्य-वादनैरिवाभिनन्दु। महासन्नाह–विविध–वाह–प्रवाहैः सञ्चङ्क्रम्यमाणा मोदेनेव चकम्पे वसुन्धरा। कुसुम-मरन्द-बिन्दुभिः स्नातः पुलकमिव समाससाद समीरणः। जयध्वनि–सन्तान–वितानैरोत–प्रोतः स्वयं जयशब्द-कोटिभिरिवाऽऽजुहाव

मकरन्दबिन्दूनाम् = पुष्परसपृषताम्, सन्दोहेन, तुन्दिलानि = भरितानि। महासौरभेण = अतिसौगन्ध्येन, समाकृष्टानि, परस्कोटीनि, रोलम्बकदम्बानि = द्विरेफव्राताः, यैस्तानि। परस्कोटि—इत्यत्र पारस्करादित्वात् प्राप्तसुट पदान्तत्वाभावात् विसर्गमध्यपाठः क्वापि विदुषा चिन्त्यः। मोहितसकलजनमनांसि=प्रसन्नीकृतनिखिलमानवस्वान्तानि। बहुव्रीहिः। सुमानि = प्रसूनानि। वाद्यनादानाम्, प्रतिध्वनेः = प्रतिनादस्य, व्याजेन = छद्मना। विबुधाः = देवाः। दिव्यवाद्यवादनैरिव = स्वर्गीय-मृदङ्गादिनादनैरिव उत्प्रेक्षा। महासन्नाहानाम्, विविधानाम्, वाहा-नाम् = घोटकानाम्, प्रवाहैः = यूथैः। सञ्चङ्क्रम्यमाणा = अतिवरा गम्यमाना। मोदेनेव = हर्षेणेव। कुसुममरन्दबिन्दुभिः = पुष्परस-पृषद्भिः। स्नातः = मिश्रः। पुलकम् = रोमाञ्चम्। ओतप्रोतः = विद्धा-नुविद्धः। आजुहाव = आकारयामास। सविकासः = विशालः।

से परिपुष्ट, उत्कट सुगन्धि से करोड़ों से भी अधिक भ्रमरों को आकृष्ट करने वाले तथा सज्जनों के मन को प्रमुदित करने वाले फूलों की वर्षा की। वाद्यन्त्रों की मधुरध्वनि की प्रतिध्वनि के छल से देवताओं ने भी मानों दिव्य वाद्यन्त्रों के मधुर वादन से ही उनका अभिवादन किया। विशाल एवम् विविध अश्वों के समूह के प्रचलन से वसुधा भी मानों हर्ष से ही कम्पित हो रही थी। पुष्पपराग की बिन्दुओं से मिश्रित वायु ने भी मानों रोमाञ्च प्राप्त कर लिया था। विजयध्वनि के प्रवाह के विस्तार से ओतप्रोत

सविकास आकाशः।

एवं क्रमेण सर्वानानन्दयन्, कुसुम-निचय भराक्रान्तमात्मानं मुहुर्मुहुरङ्ग स्फुरणैः सुमन-पातनैर्लघूकुर्वन्, अखर्वगन्धर्वखुराघातैर्धूलीभूयोद्गतया भुवाऽप्यालिङ्गयमानः,स्वदृग्द्वयोद्गतया आनन्द-सन्दोह-बाष्प-धारया अभिषिच्यमानः, सादी प्रतापदुर्गमाससाद देव ।

तत्र च परितः सर्वान् गण्ड शैलान् तरु-स्कन्धान् उन्नतभू भागान् दुर्ग प्रान्त-परिसर्युपत्यका दुर्गभित्तीश्च स्वावलोकनामोद

---

आकाशः = नभः। "पुस्याकाशविहायसी" इत्यमरः।

कुसुमनिचयभराक्रान्तम्=पुष्पसमूहभाराच्छन्नम् । अङ्गस्फुरणै = शरीरचालनै । सुमनसां = कुसुमानां स्वसमर्पितानाम्, पातनै = निरसनै लघूकुर्वन् = निर्भारीकुर्वन्। अखर्वाणाम्=अत्युन्नतानाम्, गन्धर्वाणाम् = हयानाम्, खुराघातै = शफसम्मर्दे, धूलीभूय = पांसुभूय । उद्गतया = उत्थितया। भुवाऽपि = पृथिव्याऽपि। आलिङ्गयमानः = आश्लिष्यः माण । अभिषिच्यमान = स्नाप्यमानः सन्। सादी=अश्वारोह, आससाद=प्राप।

गण्डशैलान् = स्थूलशैलावयवान् । स्वावलोकनामोदेन=स्वदर्शन

---

विशाल आकाश भी ऐसा लग रहा था मानों वह भी जय शब्दों से महाराष्ट्रराज का आवाहन कर रहा था।

उक्त रीति से सबको आनन्दित करते हुए, पुष्पसमूह के भार से लदे अपने शरीर को बारम्बार अङ्गों के कम्पन द्वारा पुष्पों के निपातन से हल्का बनाते हुए, अत्यन्त उन्नत अश्वों के खुराघात से धूलि बन कर उड़ती हुई पृथिवी द्वारा आलिङ्गित होते हुए तथा अपनी आँखों से प्रवाहित होती हुई अश्रुधारा से अभिषिक्त होते हुए अश्वारूढ महाराष्ट्रराज प्रताप दुर्ग के पास पहुँचे।

उस स्थान की सब तरफ उनके (महाराज के) अवलोकन से हुए आनन्दसन्दोह से परतन्त्र जन समुदाय से व्याप्त गण्डशैलों (भूकम्प या आँधी से नीचे गिराई गई बड़ी चट्टानों), वृक्ष की शाखाओं की सन्धियों

परवज्जन-समाकीर्णानेव समद्राक्षीत् ।

अथ तांस्तान् स्वदृक्पातेनैव सम्मान्य, सपल्लव-कलश-हस्तान् आशी-राशीन् गिरतो विप्रवरान् प्रणमन्नश्वादुदवीवरन्महाराजः। तत्रोपस्थितेष्वात्मीयेषु कांश्चिदालिङ्ग्य, कांश्चित् प्रणम्य, कांश्चिद् यथायोग्यमाशिष उक्त्वा, कांश्चिच्च कराग्रेण कराग्र एव गृहीत्वा, अपरान् कुशल प्रश्नैः सोत्साह-निरीक्षणैः स्नेह-वचनैश्च सन्तर्प्य, जननी स्मरणोद्भूतोद्भूत वाष्प-धारा-व्याकुल-लोचन-द्वयः पदे पदे

---

प्रसन्नतया, परवन्तः=पराधीनाः, ये जनाः, तैः । समाकीर्णान्=व्याप्तान् ।

सम्मान्य = सत्कृत्य । सपल्लवाः=सकिसलयाः, कलशाः=जलभरिता घटाः, हस्ते येषां तान् । गिरतः = कथयतः । प्रणमन् = नमस्कुर्वन् । उदवीवरत् = निम्नदेशे समागतः । वस्तुतस्त्ववातीतरदिति शोभनतर-मौदार्यविवक्षायाम् । यथायोग्यम् = यथानुरूपम् । कराग्रेण कराग्रे गृहीत्वेति साम्प्रतिकपाश्चात्यदेशीयनमनप्रकारः । जननीस्मरणात्=मात्राध्यानात्, उद्भूतोद्भूता = उन्नतीभूता, विपुलीभूतेति यावद्, या वाष्पधारा=

---

ऊँचे भूभागों, दुर्गपरिवर्ती उपत्यकाओं तथा दुर्ग की दीवारों को उन्होंने देखा ।

तत्पश्चात् उन व्यक्तियों को (उन पर) अपने दृष्टिपात से ही सम्मानित कर पल्लवयुक्त कलशों को हाथ में लिए आशीर्वाद प्रदान करने वाले ब्राह्मणों का अभिवादन करते हुए महाराज घोड़े से नीचे उतरे । उस स्थान पर उपस्थित आत्मीय व्यक्तियों में कुछ मित्रों का आलिङ्गन कर, कुछ गरीय व्यक्तियों का अभिवादन कर, कुछ कनीय व्यक्तियों को आशीर्वाद देकर, कुछ समवयस्क बन्धुओं से हाथ मिला कर तथा अन्य व्यक्तियों को कुशल प्रश्न, उत्साहपूर्ण निरीक्षण तथा प्रेमपूर्ण वचनों से सन्तुष्ट कर अपनी जननी के स्मरण से उमड़नेवाली अश्रुधारा से व्याकुल नेत्रद्वय वाले महाराज ने

प्रस्खलतेव प्रेमपरवता वपुषा सपदि दुर्गान्तः प्रविवेश।

× × ×

अन्येद्युः प्रातरेव कृत-सन्ध्यावन्दनादि-नित्यक्रियः, महाराजाऽऽगमन-महोत्सव-पराधीनानेक-सहस्र – सोपायन-प्रजा – परिवृत-प्रघाणस्य महाप्रासादस्य चन्द्रशालायामुपविष्टः, गौरसिंहमाऽऽहूय, सुरेश्वर-माल्यश्रीकादिभिः परिवृतः, स्वेङ्गितानुसारं स्तन्यजीवेनाऽऽनीतं पटखण्ड-परिवेष्टितं किञ्चन पत्रपटलं स्वनिकटे संस्थाप्यैवमालपत्।

---

अश्रुप्रवाहः, तया व्याकुलं लोचनद्वयं यस्य सः। प्रस्खलतेव = निपततेव, प्रेमपरवता = अनुरागाधीनेन।

× × ×

अन्येद्युः = परस्मिन् दिवसे। महाराजागमनमहोत्सवपराधीनाभिः = महाराजप्राप्तिप्रचुरहर्षवशाभि, अनेकसहस्राभिः = असङ्ख्याताभिः, सोपायनाभिः = देयवस्तुहस्ताभिः, परिवृतः = समाच्छन्नः, प्रघाणः = अलिन्दः, यस्य तादृशस्य। चन्द्रशालायाम् = शिरोगृहे। उपविष्टः = आसीनः। स्वेङ्गितानुसारम् = स्वचेष्टितानुकूल्म्। पत्रपटलम् = पत्रसमूहम्।

---

प्रेमपरवशता के कारण पद-पद में लड़खड़ाते शरीर से शीघ्र ही दुर्ग में प्रवेश किया।

× × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल में ही सन्ध्यावन्दनादि नित्यकृत्य को सम्पन्न कर के उनके ( महाराज के ) आगमन महोत्सव में विवश अनेक सहस्र उपहार-समर्पक प्रजाओं से भरे चबूतरे वाले महान् प्रासाद की चन्द्रशाला (चौबारा) में बैठे, सुरेश्वर तथा माल्यश्रीक आदि से घिरे हुये महाराज गौरसिंह को बुलवा कर स्तन्यजीव द्वारा लाये गये कपड़े के टुकड़े में लपेटे हुये पत्रों को अपने पास रख कर बात करने लगे।

शिवराजः—प्रिय ! गौरसिंह ! चिरान्मां तोषयसि, प्राणानगणयन् मां प्राणयसि, सांसारिक-सुखानि असंस्मरन् सङ्कटकष्टानि सहसे इति असाधारणवन्धुं त्वां महाराष्ट्र-मण्डले मण्डलेश्वर-पद-दानेन सत्कर्तुं मे महानुत्साहः। तद् गृहाणेदमधिकार-पत्रम्, भुङ्क्ष्व भागमेकं महाराष्ट्र-भुवः।

गौरसिंहः—[ पत्रम् स्पृष्ट्वा, प्रणम्य ] महाराज ! श्रीमान् यवनोद्दण्ड-शुण्डादण्ड-गण्डि-मण्डलं प्रविश्यापि केसरीव कुशलेन निर्गत्य महाराष्ट्र-राजसिंहासनमाक्रम्य भारताभिजन-प्रजाः प्रजा इव पातुमारब्धवानिति किमितोऽप्यधिकं विश्वस्मिन्नपि विश्वस्मिन् अस्माना-

तोषयसि = प्रसादयसि। प्राणयसि = जीवनयसि। असंस्मरन् = अचिन्तयन्। सङ्कटकष्टानि = सङ्ग्रामदुःखानि। भागम् = अंशम्।

यवना एव, उद्दण्डाः = उच्छृङ्खलाः, शुण्डादण्डगण्डिनः = करिणः, तेषां मण्डलम् = समूहम्। शुण्डादण्डदेनाति हस्तिस्वार्थप्रवीतो गण्डिनर्थं-न्तानुधावन समदकपोलस्थलत्त्वात्कत्वेन सार्थक्यमाभनतीति विदुषा सन्धिः। केसरीव = मृगेन्द्र इव, भारताभिजनप्रजाः = हैन्दवमूलनिवासिप्रजाः। पातुम् = रक्षितुम्। विश्वस्मिन् = समस्ते। विश्वस्मिन् = संसारे। संसार-

शिवराज—प्रिय गौर सिंह ! तुम चिरकाल से मुझे प्रसन्न करते आ रहे हो, अपने प्राण की भी उपेक्षा कर मुझे जिलाते आ रहे हो और सांसारिक सुखों को भूल कर युद्धोचित दुःख का सहन कर रहे हो। अतः अपने असाधारण बन्धु तुम्हें महाराष्ट्र मण्डल में मण्डलेश्वर के पद पर नियुक्त कर तुम्हें सम्मानित करने का उत्साह मेरे मन में है। अत एव तुम यह अधिकार पत्र ले लो और महाराष्ट्र मण्डल की वसुधा के एक अंश का उपभोग करो।

गौरसिंह—[ पत्र छू कर प्रणाम कर ] महाराज ! श्रीमान् यवनरूपी उद्दण्ड गजराजों की मण्डली में प्रवेश करने के बाद भी सिंह की तरह उससे बाहर निकल कर महाराष्ट्र देश के राजसिंहासन पर बैठ कर भारत देश-वासी जनता को अपनी सन्तति की तरह पालन करने लग गए हैं। अब

नन्दयितुमुपलभ्येत ? क्षम्यताम् ! अनुचरतां विहाय सामन्त-सिंहासन-मधिरोढुं लज्जते मे हृदयम्।

शिवराज—गौरसिंह ! सुविस्तीर्णमधुना महाराष्ट्र-राज्यम् ! तन्महाभारोऽयं विभज्य युष्माभिरपि बिभ्रियेत चेत् शासनं सुकरं संवृत्येत। कथं भवादृशेषु नीतिकुशलेषूपकारिषु सहचरेषु वर्त्त-मानेष्वपि अहमेव दक्षिण-भारताभिजन-भरण-भाराकुलो वर्त्तेय ? तन् सर्वथा भवतः स्वीकरणीयमिदम्, नात्र नकारोपन्यासो भवतो युक्तः—इति तद्धस्ते आज्ञापत्रमार्पयत्।

---

क्वाचिविश्वशब्दस्यापि सर्वार्थकत्वेन सर्वनामत्वमिति समाश्रित्येदम्। अनुचर-ताम् = भृत्यताम्। सामन्तसिंहासनम् = मण्डलेश्वरार्हं पीठम्।

बिभ्रियेत = धार्येत। शासनम् = रक्षणम्। संवृत्येत = सम्पद्येत। नीतिकुशलेषु = राजनीतिपण्डितेषु। दक्षिणभारताभिजनानाम्, भरण-भारेण = रक्षणभरेण, आकुल = व्यग्रः, नकारोपन्यासः = निषेधोक्तिः।

---

इस समस्त विश्व में इससे बढ़ कर आनन्द दायक विषय क्या हो सकता है ! क्षमा करें। आपकी सेवा को छोड़ कर मण्डलेश्वर के सिंहासन पर बैठने में मेरा हृदय लज्जा का अनुभव कर रहा है।

शिवराज—गौर सिंह ! अब महाराष्ट्र राज्य बहुत विस्तृत हो गया है। अतः यदि इस महाभार को विभक्त कर तुम लोग भी थोड़ा-थोड़ा भार ढोने लग जाओगे तो मेरे लिए शासन कार्य में थोड़ी सुविधा हो जायगी। तुम जैसे नीतिनिपुण उपकारक सहचरों के वर्तमान रहने पर भी समस्त दक्षिण भारत के भरण पोषणात्मक भार से मैं ही कैसे व्याकुल होता रहूँ ! अतः यह नियुक्ति तुम्हारे लिये सर्वथा स्वीकर्तव्य है, इसमें नकारात्मक उत्तर देना तुम्हारे लिए उचित नहीं है—यह कह कर महाराज ने गौर सिंह के हाथ वह आज्ञा पत्र दे दिया।

गौरसिंहः—[ पत्र गृहीत्वा प्रणम्य ] महाराज ! निदेशः सर्वथा वहनीय ।

शिवराजः—[ सौवर्णमुष्णीषं कृपाणञ्चार्पयित्वा ] धारयेमं मण्डलेश्वरमात्र-धार्य्यमुष्णीषम्, इद चानेन वैरि-व्रात-विमर्दनेन चन्द्रहासेन प्रकृतीः ।

गौरसिंहः—[ उष्णीषं शिरसि धारयित्वा, कृपाणं कटि-प्रदेशे बद्ध्वा प्रणनाम ] ।

शिवराज —[ रघुवीरमभिमुखीभूय ] वत्स रघुवीर ! स्मारं स्मारं तव परं पराक्रमम्, परां भक्तिम्, परं सौजन्यम्, परां स्वच्छताम्, परमुत्साहम्, परां वीरताम, परं सौहार्दम्, पराञ्च दृढप्रतिज्ञताम्, महापरिणाहमिव सम्पद्यते मे हृदयम् । बहुवारमहं

---

वैरिव्रातविमर्दनेन = शत्रुसमूहकर्त्तनेन । प्रकृतीः = प्रजाः ।

परम् = उत्कृष्टम् । दृढप्रतिज्ञताम् = सत्यसन्धताम् । महापरिणाहमिव = अतिविशालमिव । बहुव्रीहिः । प्रत्यर्थिनाम् = शत्रूणाम्, खड्गैः,

---

गौरसिंह—[ हाथ में पत्र लेकर प्रणाम कर ] महाराज ! आपका निर्देश सर्वथा पालनीय है ही ।

शिवराज—[ सोने की पगड़ी तथा खड्ग देकर ] लो, मण्डलेश्वर मात्र द्वारा धारण करने योग्य पगड़ी लो और शत्रुदल सहारी इस खड्ग से प्रजा की रक्षा भी करो ।

गौरसिंह ने [ पगड़ी को माथे पर डाल कर और खड्ग को कमर में बाँध कर महाराज को प्रणाम किया ]

शिवराज—[ रघुवीर सिंह की ओर देख कर ] बेटा रघुवीर ! तुम्हारे परम पराक्रम, परा भक्ति, अत्यन्त सौजन्य, अत्यन्त स्वच्छता, परम उत्साह, बड़ी वीरता, सुदृढ़ सौहार्द और परम दृढ़ प्रतिज्ञा का स्मरण कर मेरा हृदय विशाल-सा हो जाता है । शत्रु के खड्ग का लक्ष्य बनते बनते मैं अनेक बार तुम से बचाया गया हूँ । यदि तुमने मेरी रक्षा नहीं की होती तो

प्रत्यर्थि-खड्गालीढप्रायो भवता रक्षितोऽस्मि, भवान् मां नाऽरक्षिष्यत् चेच्छास्तिखानं नाजेष्यम्। भवानेव साहाय्यं न व्यधास्यच्चेद् • यवन कारागारान्धकूपान्न निरयास्यम्। रुद्रमण्डल विजयस्य च भवानेव...[ इत्यर्धोक्तौ निश्वस्य भग्नेन स्वरेण पुनर्वक्तुमारभत ] हाः! परस्ताद् यदाचरितं विलुप्तमतिना मया तत्संस्मृत्यापि विदीर्य्यते मे हृदयम्।

रघुवीरसिंहः—भगवन्! शान्तं पापम्, आसीत् तन्मम जन्मान्तरीण-पाप्मनां फलम्।

शिवराजः—यो हि बहुवारं प्राणानरक्षत्; तस्य प्रत्युपकारः प्राणैरपि विधातुमशक्य। यतः प्राणाः वारमेकमेव पार्य्यन्ते त्यक्तुम्, न तु पौनःपुन्येन। तत् सर्वथा तव ऋणी संवृत्तोऽस्मि।

---

आलीढप्रायः = आहतप्राय.। अरक्षिष्यत्=रक्षा व्यधास्यत्। अजेष्यम् = जयं प्राप्स्यम्। भविष्यति हेतुहेतुमद्भावे लृङ्। यवनकारागारमेव अन्धकूप.=तमोमयगर्तः,तस्मात्। निरयास्यम्=बहिर्निरगमिष्यम्। विलुप्तमतिना= विनष्टबुद्धिना। जन्मान्तरीणपाप्मनाम् = इतरजन्मसञ्चितपापानाम्।

---

मैं शाइस्ता खाँ को नहीं जीत पाता। यदि तुम्हारी सहायता न मिली होती तो मैं यवनों के कारागार रूप अन्धकूप से नहीं निकल पाता। रुद्रमण्डल की विजय का भी तुम ही"" [ इतना कहते-कहते उनका स्वर-भङ्ग हो गया। तत्पश्चात् गरम साँस लेकर टूटे स्वर में ही ] हाय! पीछे मति के विलुप्त हो जाने के कारण मैंने जो किया उसके स्मरण से भी मेरा हृदय विदीर्ण होने लग जाता है।

रघुवीरसिंह—भगवन्! आप शान्त हों ( ऐसा न कहें )। यह तो मेरे पूर्व जन्म सञ्चित पापों का फल था।

शिवराज—जिसने अनेक बार मेरे प्राण बचाए उसका प्रत्युपकार अपने प्राण के अर्पण से भी मैं नहीं कर सकता, क्योंकि प्राणत्याग तो एक ही बार किया जा सकता है, बारम्बार नहीं। अतः मैं सब प्रकार

तथाऽपि यथा मम निखिला आज्ञाः समपालयः, तथाऽनुपेक्षणी यमदोऽपि वचः—यदूरीकुरु महाराष्ट्रराजस्य मण्डलेश्वरताम्। दुर्लभो हि त्वादृशो महाराष्ट्रदेशबन्धुः।

रघुवीरसिंहः—[ प्रणम्य ] महाराज ! विनष्टमातृकोऽहमत्र भवत एवाऽऽश्रयेण वर्द्धितो भवच्चरणसेवन-पुण्यैरेव च चिर-प्रनष्ट तात-चरणमप्यलभे—इति ममैव न लक्ष्यते कश्चनाऽऽनृण्योपायः।

शिवराजः—वीर ! ऋतेऽनुचरेभ्यो राज्यकार्यं न सिद्ध्यतीति न तद्रक्षा राज्ञां निरभिसन्धिरनुग्रहः, अनुचरश्च चेत्स्वसमर्पित-कार्य्यातिरेकेण स्वामिनमनुचरेत्, तत् स एवाधमर्णं विदधाति

---

आज्ञाः = आदेशान्। समपालयः = पालितवानसि। अदः = इदम्।

विनष्टमातृकः = मृतजननीक। अलभे = प्रापम्। आश्रयेण = आधारेण। चिरप्रनष्टम् = दीर्घकालादृश्यपाक्तम्। आनृण्यस्य = ऋणशोधनस्य, उपाय = यत्नः। निरभिसन्धिः = निष्कारणक। अनुग्रह = कृपा। स्वसमर्पितकार्यस्य, अतिरेकेण = आधिक्येन।

---

से तुम्हारा अधमर्ण हूँ। तथापि जिस प्रकार मेरी सब आज्ञाओं का तुमने पालन किया है उसी प्रकार मेरी यह बात भी मान लो—तुम महाराष्ट्रराज्य की मण्डलेश्वरता स्वीकार कर लो, क्योंकि महाराष्ट्र देश का तुम-सा बन्धु दुर्लभ है।

रघुवीर सिंह—[ प्रणाम कर ] महाराज ! अधमर्णता तो मेरी अपरिहार्य है, क्योंकि मातृहीन मैं आपकी शरण में पला हूँ और आपके चरणों की सेवा से उत्पन्न पुण्य के कारण ही अपने चिर विलुप्त पिता जी को भी प्राप्त कर सका हूँ।

शिवराज—वीर ! अनुचरों के बिना राज्य का कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। अतः अनुचरों की रक्षा का अर्थ राजाओं का अकारण अनुग्रह नहीं है। अतः यदि कोई अनुचर अपने नियत कर्तव्य से अतिरिक्त

धनिनम्। अथ वा किमप्यस्तु गृहाणेदमधिकारपत्रम्, यथा न स्यान्मम रिक्तं वचः।

रघुवीरसिंहः—[ करौ सम्पुटीकृत्योत्थाय ] देव! साधारणोऽय मनुचर, राजसिंहासनाक्रमण च महतां कार्य्यम्, तत्क्षम्यताम्, अपरः कश्चन निर्धार्य्यताम्!

शिवराजः—आ! किमुक्तम्? असाधारण पौरुष दर्शयन् असाधारण-कृतज्ञतां प्रकाशयन्नपि साधारण इति ब्रूषे! जयपुराधीशानामसाधारणे वंशे तव जन्म। वचनधन पौरुषभूषणो राजर्षिकल्पः श्रीमानसाधारणो वीरो वीरेन्द्रसिंहस्ते पिता, तत् ततोऽप्यधिकगुण॰ को नामोपलभ्येत सामन्तसिंहासन-योग्य?—

अधमर्णम् = ऋणगृहीतारम्। धनिनम् = सिवज्ञन्तम्, स्वामिनम्, औपचारिकोऽय प्रयोग। रिक्तम् = शून्यम्।

राजसिंहासनस्य, आक्रमणम्=अधिरोहणम्। निर्धार्य्यताम्-निश्चीयताम्। असाधारणम्=अनन्यादृशम्, पौरुषम्=पुरुषार्थम्, असाधारणः-श्रेष्ठः।

अन्य कार्यों से स्वामी का अनुचरण करता है तो अपने स्वामी को ही वह अधमर्ण बना देता है। अथवा, जो कुछ भी हो, तुम यह अधिकार पत्र तो ले ही लो जिससे मेरी वाणी व्यर्थ न हो।

रघुवीर सिंह—[ हाथ जोड़ कर उठकर ] देव! यह एक साधारण अनुचर है और राजसिंहासन पर बैठना महापुरुषों का कार्य है। अतः क्षमा करें, अन्य कोई इस कार्य के लिये निश्चित किया जाय।

शिवराज—आ! क्या कह रहे हो! असाधारण पौरुष का प्रदर्शन एवम् असाधारण कृतज्ञता का प्रकाशन के पश्चात् भी अपने को साधारण व्यक्ति कह रहे हो? जयपुराधीश के असाधारण वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है, अपनी वाणी को ही सर्वस्व मानने वाले, पौरुष को ही अपना भूषण समझने वाले राजर्षिकल्प श्रीमान् असाधारण वीर वीरेन्द्र सिंह जी तुम्हारे पिता हैं। फिर तुमसे अधिक गुणवान् कौन मिल सकता है जिसमें मण्डलेश्वर के पद पर प्रतिष्ठित होने की योग्यता हो? अत शीघ्र यह

इति सपदि गृहाणेदमधिकारपत्रम्! [ इत्युत्थाय सम्पुटीभूतं तस्य कराग्रं स्वहस्तेन प्रसार्य्याधिकारपत्रमर्पयामास ]

रघुवीरसिंह.—[ प्रणमन् ] सर्वथाऽप्यादेशवशवर्त्तोऽयं जन! [ इत्यग्रहीत् ]

शिवराज.—[ सौवर्णमुष्णीषं कृपाणञ्चार्पयित्वा ] उष्णीषमिदं मण्डलेश्वरता-परिचायकं धार्य्यताम्! असिना चानेन सशात्रुशातनं प्रजा पाल्यन्ताम्!!

रघुवीरसिंह उष्णीषं शिरसि खड्गञ्च कटिप्रदेशे विन्यस्य, प्रणतिमकार्षीत्।

तावत्प्रतीहारेण प्रविश्य "देव! देवशर्म्मा पण्डितो द्वारि तिष्ठति" इति न्यवेदि। 'आम्! प्रवेशय प्रवेशय' इत्युक्तश्च देव-

सम्पुटीभूतम् = मुकुलितम्। प्रसार्य = उन्मेष्य।
सशात्रुशातनम् = शत्रुध्वंसनम्। पाल्यन्ताम् = रक्ष्यन्ताम्।

अधिकार पत्र स्वीकृत करो [ यह कह कर शिवाजी खड़े हो गये और रघुवीर सिंह का सम्पुटित हाथ स्वयम् फैला कर उसमें अधिकार पत्र रख दिया ]।

रघुवीर सिंह—[ प्रणाम करते हुए ] यह सेवक सर्वदा आपके आदेश का वशवद है [ यह कह कर अधिकार पत्र ले लिया ]।

शिवराज—[ सोने की पगड़ी तथा कृपाण देकर ] मण्डलेश्वर के परिचायक यह पगड़ी पहन लो और इस कृपाण से शत्रुओं का विदलन करते हुए प्रजा का पालन करो।

रघुवीरसिंह ने मस्तक पर पगड़ी रखकर और खड्ग को कमर में बाँधकर महाराज को प्रणाम किया।

उसी समय द्वारपाल ने वहाँ आकर निवेदन किया—"देव! पण्डित देवशर्माजी दरवाजे पर खड़े हैं।" "अच्छा तो उन्हें शीघ्र लिवा आओ" इस प्रकार की महाराज की अनुमति पाकर द्वारपाल ने पाँच-छः शिष्यों से

शर्म्माणं सपञ्चप-शिष्यं प्रावेशयत्। तमालोक्यैवोत्थाय सपादस्पर्शं प्रणनाम महाराष्ट्रराजः। स च गलदानन्द-सलिलाऽऽप्लुताभ्यां नयनाभ्यां लिहन्निव कम्पमानेन करेण स्पृशन्, भग्नेन स्वरेणाऽऽशिषोऽवादीत्। यथानिर्दिष्टमासनञ्चाध्युवास।

महाराष्ट्रराजस्तु करौ सम्पुटीकृत्य प्रावोचत्—विद्वद्वर! अगाध-सम्बाधे पतितो यदेष जनः कुशलेन परावृत्तः, स एष केवलं भवत एवाऽऽशीराशीनां परिणामः। भवतैव दैवज्ञवानेष देशः—इति गृह्यतां काचिदेषाऽल्पिष्ठा सेवा—इति दीनार-सहस्र-परिपूरितं सुवर्ण-पात्रं समार्पयत्।

देवशर्म्मा तु बहुश आशीराशिभिरभियोज्य प्राब्रूत यद्—"देव!

सपञ्चपशिष्यम् = पञ्चभिः षड्भिर्वा शिष्यैः सहितम्। गलता = निष्पतता, आनन्दसलिलेन = हर्षवारिणा, आप्लुताभ्याम् = व्याप्ताभ्याम्। लिहन्निव = आस्वादयन्निव। अध्युवास = अधितस्थौ, उपविष्टः।

अगाधे = गम्भीरे, सम्बाधे = पीडने। दैवज्ञवान् = ज्यौतिषिकयुत.। अल्पिष्ठा = न्यूनतमा। दीनाराणाम् = सुवर्णमुद्राणाम्, सहस्रेण, परिपूरितम् = भरितम्। सुवर्णपात्रम् = चामीकरभाजनम्।

समन्वित देवशर्माजी को वहाँ लिवा लाया। उन्हें देखते ही उठकर पैर पकड़कर महाराष्ट्रराज ने प्रणाम किया। देवशर्माजी ने भी अश्रुपूर्ण नयनों से उनका आस्वादन-सा करते हुए कम्पनयुक्त हाथ से उनका स्पर्श कर भग्नस्वर से उन्हें आशीर्वाद दिया और यथानिर्दिष्ट आसन पर बैठ गये।

तदनन्तर हाथों को सम्पुटित कर महाराष्ट्रराज ने पूछा—"विद्वद्वर! भयङ्कर विपत्ति में डूबने के बाद भी जो यह व्यक्ति कुशलपूर्वक यहाँ लौट आ सका है वह केवल आपके आशीर्वादों का ही परिणाम है। आपही से यह महाराष्ट्रदेश ज्यौतिषी सम्पन्न है। अतः आप इस तुच्छ सेवा को स्वीकृत करें"—यह कहकर महाराज ने एक सहस्र सुवर्ण मुद्राओं से परिपूर्ण सुवर्ण पात्र उनके हाथ में समर्पित कर दिया।

देवशर्माजी ने अनेक आशीर्वादों से महाराज का अभिनन्दन कर

न हि युष्मादृशा धर्म्म-धूर्वहा कदर्य्यैरवरोद्धु शक्यन्ते। भगवता चक्रपाणिनाऽनवरतं रक्ष्यमाणस्य जयलाभवतो विघ्नानामेव भवन्ति विघ्ना, आपदामेव भवन्त्यापदः!

महाराज! चिराय वेद-प्रतिपाद्यमाद्यं भारताभिजन-धर्म्मं रक्ष, प्रजाः पालय, महाराष्ट्रञ्च महाराष्ट्र-देशस्य सनाथय।"

महाराष्ट्रराज —भवदृशानां तपोधनानामाशिष एव सकलमङ्गलमूलम्! सर्वदा सनाथनीयोऽयं जन आज्ञादानैः।

देवशर्म्मा—देव! इमा एवाऽऽशिषः, इमा एव चाऽऽज्ञाः, न मे काचन चिन्ता ऋत एकस्याः।

महाराष्ट्रराज —का सा?

---

धर्मधूर्वहाः = सनातनभारवोढारः। कदर्य्यैः = नीचैः। चक्रपाणिना = वासुदेवेन। अनवरतम् = सततम्। जयलाभवतः = विजयप्राप्तियुतस्य। विघ्नानाम् = प्रत्यूहानाम्। आपदाम् = विपत्तीनाम्। वेदप्रतिपाद्यम् = श्रुतिमात्रनिवेद्यमानम्। "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" इति हि सिद्धान्तः। चोदना च विधिः। तथा च, भवति वेदैकप्रतिपाद्यत्वं धर्मस्य। आद्यम् = सनातनं धर्मम्। अयमेव धर्मः सकलस्य मूलमस्येति तत्त्वम्। महाराष्ट्रम् = महाराज्यम्।

---

कहा—"देव! आप जैसे धर्मधुरीणों का अवरोध क्षुद्रों द्वारा नहीं किया जा सकता। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अनवरत रक्षित होनेवाले और इसलिये जय तथा लाभ (अथवा जय के लाभ) से सम्पन्न सत्पुरुष की बाधाओं की ही बाधायें होती हैं तथा आपत्तियों की ही आपत्तियाँ।

महाराज! चिरकाल तक आप भारतवासियों के वेदप्रतिपाद्य सनातन धर्म की रक्षा करें, प्रजा का पालन करें तथा महाराष्ट्रदेश के महान् साम्राज्य का सनाथित करें"।

महाराष्ट्रराज—आप जैसे तपोधनों का आशीर्वाद ही सकल मङ्गलों का मूल है! इस सेवक को सर्वदा अपनी आज्ञा देकर सनाथित करते रहें।

देवशर्मा—देव! ये ही मेरे आशीर्वाद भी है और ये ही मेरी आज्ञायें भी। एक अबला को छोड़कर अन्य किसी के विषय में मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है।

महाराष्ट्रराज—वह कौन सी अबला है?

देवशर्मा—देव ! बाल्यात्परं वयो जुषते सौवर्णी । भाग्यैरेव तस्यास्तत्पितृ-सम्मतो वीरेन्द्रसिंह-पुत्र कुमाररामसिंहो विविधा आपदः सोढ्वा समुपलब्धः । भाग्यैरेव चापरिचिन्वती, अजानानाऽपि, चैनमेव सा वृतवती । व्यत्येति चैष समय उद्वाहस्य । तत्-

महाराष्ट्रराजः—[ अर्द्धोक्तावेव ] आम् ! स्मर्य्यते, ममैव व्यामूढस्यापराधात् साऽपि भगवती चिरं सोढवती दुःखानि । एष आयुष्मान् कुमाररामसिंहः, एष च सौवर्णी-भ्राता गौरसिंहः, उभावप्येतावद्यावधि महाराष्ट्र-देशस्य मण्डलेश्वरौ राजानौ, आशीर्भिर्भावनीयावेतौ ।

देवशर्मा—[ प्रणमन्तौ तौ सशिरःस्पर्शमाशीर्भिरभ्ययाजयत् ]

जुषते = सेवते । तत्पितृ, सम्मतः = इष्ट । सोढ्वा = अनुभूय । समुपलब्ध = सम्प्राप्तः, अपरिचिन्वती = अनिश्चिन्वाना । अजानाना = अविदन्ती । वृतवती = स्वीकृतवती । व्यत्येति = अतिक्रामति ।

व्यामूढस्य = विक्षिप्तचित्तस्य । भावनीयौ = अभिनन्दनीयौ ।

देवशर्मा—देव ! सौवर्णी अब युवती हो चुकी है । सौभाग्य से ही उसके वर के रूप में उसके पिता के सम्मत वीरेन्द्रसिंह के सुपुत्र कुमार रामसिंह विविध आपत्तियों को झेलकर सम्प्रति सुलभ हो गया है । भाग्य से ही रामसिंह के परिचय तथा परिज्ञान से रहित होकर भी सौवर्णी ने उन्हें ही अपने वर के रूप में मनोनीत कर रखा है । अब विवाह का समय बीता जा रहा है । अतः

महाराष्ट्रराज—[ *आधे कहते कहते ही* ]*जी हाँ, मैं भी स्मरण कर रहा हूँ ।* मुझ व्यामूढ के अपराध से ही भगवती सौवर्णी को भी इतना दुःख भोगना पड़ा है । यह है आयुष्मान कुमार रामसिंह और यही है सौवर्णी का भाई गौरसिंह । आज से ये दोनों महाराष्ट्रदेश के मण्डलेश्वर हो चुके हैं, अतः आप इन दोनों को अपने आशीर्वाद से सनाथित करें ।

देवशर्मा—[ प्रणाम करने वाले उन दोनों को शिरस्पर्शपूर्वक आशीर्वादों से अनुगृहीत किया । ]

महाराष्ट्रराजः—तत् सर्वेऽपि सोत्कण्ठा वयं परिणय-महोत्सवमेतं सम्पादयितुम्, तद् निश्चीयतां स्थिरीक्रियताञ्च कश्चन सकल-मङ्गलमयः समयः।

देवशर्म्मा—[ श्वेतोष्णीष वेष्टनान्तःस्थित तिथिपत्र निस्सार्य्य, कक्ष-गुटिकात उपनयन बहिष्कृत्य, चक्षुषोः सन्धाय, आलोच्य च ] कुमार-रामसिंह! किन्ते जन्मनाम?

रघुवीरसिंहः—आर्य! मोहनसिंहः—इति।

महाराष्ट्रराजः—इति! [ स्मित्वा ] अत एव गुणैरखिलान् मोहयसि।

देवशर्म्मा—अस्ति ते सिंहराशिः!

सर्वे—कथं न स्यात् सिंहविक्रमस्य सिंहराशिः?

देवशर्म्मा—महाराज! इतः पञ्चमेऽहनि सुदिनं सुलग्नञ्चास्ति।

---

तिथिपत्रम् = पञ्चाङ्गम्। कक्षगुटिकातः = बाहुमूलस्थपोट्टलिकायाः। उपनयनम् = उपनेत्रम्। सन्धाय = धारयित्वा। आलोच्य = विचार्य। उक्तवस्तूना तत्तत्स्थानेषु निधानं प्राचीनपद्धतिः।

सिंहविक्रमस्य = मृगेन्द्रपराक्रमस्य।

---

महाराष्ट्रराज—अतः हम सभी इस विवाह महोत्सव को सम्पन्न करने के लिये उत्सुक हैं, इसलिये कोई सर्वविध मङ्गलमय समय निश्चित एवं स्थिर किया जाय।

देवशर्मा—[ उजले पगड़ी के वेष्टन से पञ्चाङ्ग निकालकर काँख में लटकती थैली से चश्मा निकालकर पहन लिया और विचारकर ] कुमार-रामसिंह! तुम्हारा मौलिक नाम क्या है?

रघुवीरसिंह—आर्य! मेरा नाम मोहनसिंह है।

महाराष्ट्रराज—मोहनसिंह तुम्हारा नाम है। [मुसकुराते हुए] इसीलिये तो अपने गुणों से तुम सबको मोह लिया करते हो।

देवशर्मा—तुम्हारी राशि तो सिंह है।

सब—सिंह सदृश पराक्रमी व्यक्ति की राशि सिंह क्यों न हो!

देवशर्मा—महाराज! पाचवें दिन बड़े ही अच्छे दिन तथा लग्न हैं। इसके

इतः परमावर्षसमाप्ति न लक्ष्यत ईदृशोऽभ्यर्हितः समयः।

महाराजः—साधु, साधु, स्वीकृतमस्माभिः! स्वयमहमुपस्थास्ये विवाह एतस्मिन्।

प्रतीहारः—[ झटिति प्रविश्य, करौ सम्पुटीकृत्य ] महाराज! उदयपुरात्पत्रमानीय द्वित्राः सादिनः समुपस्थिताः।

महा०—[ माल्यश्रीकमवलोक्य ] साध्यताम्!

माल्य०—यदाज्ञाप्यते! [ इति निष्क्रम्य सुवर्णमुद्राङ्कितपत्रहस्तः पुनः प्रविश्य च ] पत्रमिदमुदयपुराधीशस्य।

महा०—अहो! आनन्द! पठ्यताम्!!

माल्य०—[ प्रसार्य्य वारमेकं मनस्येव पठित्वा ] महाराज! परम-प्रीति-पूर-पूर्णो भर्ता भारताभिजनानाम्, भाग्यं भारतस्य, तत्रभवा

आवर्षसमाप्ति = हायनावसानपर्यन्तम्। लक्ष्यते = दृश्यते। अभ्यर्हितः = श्रेष्ठः।

उपस्थास्ये = उपस्थितो भविष्यामि।

साध्यताम् = गम्यताम्। गत्वा पत्रमानीयतामिति तात्पर्यम्।

परमेण, प्रीतिपूरेण, पूर्णः = समाक्रान्तः। भर्त्ता। भाग्यम् = मूर्तिमद्भागधेयम्। क्षेमम् = भवन्तम्।

बाद वर्षसमाप्ति तक इस प्रकार का अनुकूल समय देखनेमें नहीं आ रहा है।

महाराज—ठीक है, ठीक है, हम लोगों की स्वीकृति है। इस विवाह में मैं स्वयम् उपस्थित होऊँगा।

द्वारपाल—[ शीघ्रता से प्रवेश कर अञ्जलिबद्ध होकर ] महाराज! उदयपुर से पत्र के साथ दो तीन अश्वारोही प्रस्तुत हैं।

महा०—[ माल्यश्रीक की ओर देखकर ] ठीक है, जाओ, ले आओ।

माल्य०—जैसी श्रीमान् की आज्ञा हो। [ यह कहकर बाहर निकलकर सुवर्ण मुद्राङ्कित पत्र लेकर पुनः प्रवेश कर ] यह पत्र उदयपुराधीश्वर का है।

महा०—अहो! आनन्द है! पढ़ो।

माल्य०—[ पत्र खोलकर एकबार मन ही मन पढ़कर ] महाराज! श्रीमान् को सम्बोधित कर परम प्रेमप्रवाह से परिपूर्ण, भारतवासियों के भर्त्ता,

नुदयपुराधीश्वरो देवं सम्बोध्यैवं लिखति—

महा०—आम् ! अवदधामि, पठ्यतां पठ्यताम् !

माल्य०—देव ! श्रूयताम्—

"स्वस्ति श्रीसकल-वसुमती-वलय-देदीप्यमान – धैर्य - वीर्य-गाम्भीर्य – प्रभावेषु, स्वच्छन्दोच्छृङ्खलोच्छलन्म्लेच्छ – मण्डल मूर्छा-दीक्षा-दक्षेषु, रणाङ्गणागणित-प्राणेषु वैरि-व्रात-घात-कृपा-कृपण-कृपाण- धारावलीढ- भारत-प्रत्न- सपत्न- व्यम- ग्रीवाग्र- विगलत्-कवोष्ण-शोण-शोणित-शोण-चन्दन-द्रव- चर्चित- भूभागेषु,

श्रिया = लक्ष्म्या शोभया च सहिताया, सकलायाः = समग्रायाः, वसुमत्या = वसुन्धराया, वलये, देदीप्यमानाः = जाज्वल्यमाना, धैर्यवीर्य-गाम्भीर्यप्रभावा, येषां तेषु। स्वच्छन्दानाम् = स्वतन्त्राणाम्, उच्छृङ्खलानाम् = उद्दण्डानाम्, उच्छलताम् = उत्कूर्दताम्, म्लेच्छानाम् = यवनानाम्, मण्डलस्य = समूहस्य, मूर्च्छादीक्षायाम् = विक्षिप्तताकरण-नियमे, दक्षेषु = निपुणेषु। रणाङ्गणे, अगणिताः, प्राणाः = असवो यैस्तेषु। वैरिव्रातघाते = शत्रुसमूहहनने, कृपाकृपणः = दयादरिद्र, यः कृपाणः = महासि, तस्य धारया, अवलीढानाम् = आस्वादितानाम्, भारतस्य, प्रत्नसपत्नानाम् = पुरातनशत्रूणाम्, व्यमेभ्यः = विकटेभ्यः, ग्रीवाग्रेभ्यः = कन्धराग्रेभ्यः, विगलत् = निःसरत्, यत् कवोष्णम् = ईषदुष्णम्, शोणम् = रक्तवर्णम्, शोणितम् = रुधिरम्, तदेव शोणचन्दनद्रवः = रक्तचन्दनरसः, तेन चर्चिताः = अनुलिप्ताः, भूभागा यैस्तेषु। स्वातन्त्र्यम् =

भारत देश के मान्य आदरणीय उदयपुर महाराज लिखते हैं—

महा०—हाँ, मैं सावधान हूँ। पढ़ो, पढ़ो।

माल्य०—देव ! सुनें—

"स्वस्ति समस्त वसुधा के मण्डल में देदीप्यमान धैर्य, वीर्य तथा गाम्भीर्य से सम्पन्न, स्वतन्त्र, उद्दण्ड तथा कूदफान करनेवाले म्लेच्छों की मण्डली को मूर्छा की दीक्षा देने में दक्ष, रणाङ्गण में अपने प्राण की गणना नहीं करनेवाले, शत्रुसमूह के विध्वंस में निर्दय कृपाणों की धारा से आक्रान्त भारतदेश के पुराने शत्रुओं की ( छिन्न होने के कारण ) विकट

स्वातन्त्र्य-पीयूष प्रवाह-रञ्जित-महाराष्ट्र-प्रदेशेषु, क्षत्रिय भूपानुरूपाऽऽचार प्रचुरीकृताऽऽस्माकीनाभिमानेषु, परमस्नेह भाजनेषु महाराष्ट्रचक्र-चक्रवर्त्तिषु, श्रीशिवराज वीर वरेषु, यथोचिताचारपुरस्सरं, स्वाभिप्रायं प्रकटयति यवन वन दाव दहन., करप्रदता कलङ्क पङ्कानङ्कित-वशावतंस., वीर मित्रम्, वीर पुत्र, वीर बन्धु, वीरता सिन्धु, वीरता धन, वीरतामात्र विश्रान्त-कुलाभिमान, मानोन्नत, नत शरण, रण यज्ञ दीक्षा दीक्षित, मेद पाट क्षितीश्वरो देव।

स्वातन्त्र्यमेव पीयूषम् =सुधा, तस्य प्रवाहेण, रञ्जिता॰, महाराष्ट्रदेशप्रदेशा, यैस्तेषु। क्षत्रियभूपानुरूपाणाम्=बाहुजनरेशयोग्यानाम्, आचाराणाम्=व्यवहाराणाम्, प्रचारेण, प्रचुरीकृत =वृद्धिं नीत, आस्माकीन॰ अभिमान॰, यैस्तेषु। परमस्नेहभाजनेषु = विपुलप्रेमपात्रेषु। महाराष्ट्रमेव चक्रम् = राज्यम्, तच्चक्रवर्तिषु = तत्स्वतन्त्रनरेशेषु। स्वाभिप्रायम् = स्वविचारम्। यवना एव वनानि = काननानि, तेषां दावदहन –वनाग्नि। करप्रदताकलङ्कपङ्केन = राजस्वार्पणदुर्यश कर्दमेन, अनङ्कितस्य = अलाञ्छितस्य, वंशस्य = अन्वयस्य, अवतंस॰ = भूषणीभूत। वीरतामात्रे विश्रान्त॰ कुलाभिमानो यस्य स॰। मानेन, उन्नत = श्रेष्ठ॰। नतानाम् = नम्राणाम्, शरण॰ = रक्षक। रणयज्ञदीक्षया, दीक्षित = सञ्जातदीक्ष। सर्वदा रणपरायण इत्यर्थ। मेद पाटस्य = मेवाड़स्य, क्षितीश्वर॰ = भूमिपति.।

ग्रीवाओं के अग्रभाग से प्रवाहित होनेवाले कुछ गरम तथा लाल रक्तस्वरूप चन्दनरस से भूमण्डल को चर्चित करनेवाले, स्वातन्त्र्यामृत के प्रवाह से महाराष्ट्रदेश को प्रसन्न करनेवाले क्षत्रियराजोचित व्यवहार से हम लोगों के सम्मान को भी सवर्द्धित करनेवाले परमप्रेमपात्र महाराष्ट्र चक्रवर्ती वीर शिवाजी के प्रति उचित आचार प्रदर्शनपूर्वक यवन वन के दावानल, यवनों को कर देने के कलङ्क से अपने कुल को कलङ्कित नहीं होने देनेवाले, वीरों के मित्र, वीर-पुत्र, वीरबन्धु, वीरता को ही अपना सर्वस्व समझनेवाले, वीरता मात्र में अपने कुल के सम्मान को प्रतिष्ठित समझनेवाले, मान से उन्नत, प्रणतपाल, रणात्मक यज्ञ की दीक्षा में दीक्षित मेवाड़देश की वसुधा के महाराज अपना आशय प्रकट कर रहे हैं—

"तत्रभवतो म्लेच्छोच्छेदन-महाव्रत-श्रवण रोमाञ्चित गात्रा अपि जयपुरेश्वर-जयसिंह-वाक्-प्रलोभ-क्षोभित-हृदयस्य दिल्ली-कर-प्रदता-स्वीकाराऽऽकर्णनेनातितरां क्षुभितहृदया वयमास्म। तत्रापि च "शत्रु-नगरीं प्राविशद् भवान्" इति वृत्तान्तश्चिरमखेदयदस्मान्। ततोऽपि चाश्रावि करालः कर्णशूल इव रोधोदन्त।

ह्यस्तु भवत कुशलाय भगवतीं बहुशो निवेद्य सुप्ते मयि, स्वप्ने प्रत्यक्षीभूता सिंह-वाहिनी बाहु-सहस्रेण गगन व्याप्य पुर समुपतस्थे। ततश्चाह प्रलम्ब सावर्त-लाङ्गूलम्, विद्युद्विनिन्दक च्छटा-

म्लेच्छोच्छेदनमेव = यवनहननमेव महाव्रतम्, तस्य श्रवणेन = आकर्णनेन। रोमाञ्चितगात्राः=पुलकितशरीरा। जयपुरेश्वरस्य, जयसिंहस्य वाक्यप्रलोभेन, क्षोभित हृदय यस्य तादृशस्य भवतः। दिल्लीकरप्रदता-स्वीकारस्य, आकर्णनेन = श्रवणेन। अतितराम् = अत्यन्तम्। आस्म = अभूम। प्राविशद् = गतवान्। करालः = कठिनः। कर्णशूल इव = श्रोत्रपीडेव। रोधोदन्तः = बन्धनवृत्तान्तः।

ह्य० = विगतेऽव्यवहितपूर्वदिने। सिंहवाहिनी = मृगेन्द्रगमना, दुर्गा। प्रलम्बम्=दीर्घम्, सावर्तम्=वलयितम्, लाङ्गूलम्=पुच्छं यस्य तम्। विद्यु-

आपके द्वारा किये गये म्लेच्छ विध्वसनात्मक महान् व्रत के श्रवण से रोमाञ्चित हो कर भी जयपुर महाराज जयसिंह के वाक्प्रलोभन से क्षोभित हृदय वाले आपकी दिल्लीश्वर को कर देने में स्वीकृति सुन कर हम लोगों का हृदय बहुत ही क्षुब्ध हो गया है। "आप शत्रु की राजधानी गये थे" इस वृत्तान्त से तो हम लोगों का हृदय और भी खिन्न हो गया। और वहाँ भी आपको कैद कर लिया गया था—यह बात तो सुनने में विकराल श्रवण-शूल की तरह लगी।

कल जब मैं आपके कुशल के लिये भगवती से बहुत प्रार्थना कर सो गया तब स्वप्न में बाहुसहस्र से सारे गगनतल को व्याप्त कर सिंहवाहिनी भगवती दुर्गा मेरे समक्ष प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत हो गई। तदनन्तर लम्बी

पटल-परिव्याप्त-सटा-घटाऽऽलिङ्गित-कण्ठम् , खर नखराग्र सम्पात-सावटीकृत-भूभागम् , जाज्वल्यमान-लौह-गोलक-युगलावगूरण-गरिम-गुरु-नयन-गोलकम् , शूलि-शूलाग्र-महिमोन्मूलन-दशन-दीप्ति – दूरीकृतान्धकार – प्रचारम् , पृष्ठ – संस्पृष्ट – देवी – दिव्य-दुकूलम् , परिपन्थि – प्रतिकूल शार्दूलम् , तलाग्र - विलसन्मा-णिक्य-मणि-मर्दन-शोणित-सङ्घात – शोणीकृत-पञ्चानन – पृष्ठ-देशं

---

द्विनिन्दकेन = चपलातिरस्कारिणा, छटापटलेन = प्रभासमूहेन, परिव्याप्ता नाम्=समलङ्कृतानाम्, सटानाम् = केसराणाम् , घटया = तत्या, आलिङ्गितः कण्ठो यस्य तम् । खराणाम् = तीक्ष्णानाम् , नखराग्राणाम् , सम्पातेन, सावटीकृतः = सगर्तीकृत , भूभागो येन तम् । जाज्वल्यमानस्य = देदीप्यमानस्य, लौहगोलकयुगलस्य, अवगूरणगरिम्णा = आघूर्णनगौरवेण, गुरु = महत्, नयनगोलक यस्य तम् । शूलिशूलाग्रस्य = शिवत्रिशूलप्रान्तस्य, महिम्नाम् = प्रभावाणाम् , उन्मूलना = उच्चकाः, ये दशनाः = दन्ता , तेषा दीप्त्या, दूरीकृतः, अन्धकारप्रचारो येन तम् । संस्पृष्टम् = सक्तम् , देव्या , दिव्य दुकूलं यस्य तम् । परिपन्थिप्रतिकूलम् = शत्रुविरुद्धम् । शार्दूलम् = मृगेन्द्रम् । तलाग्रे विलसताम् = चरणनिम्नांशे शोभमानानाम् , माणिक्यमणीनाम् = रक्तमणीनाम् , मर्दनेन = सङ्घर्षेण, यः शोणितसङ्घातः = रुधिरसमूह , तेन शोणीकृत- = रक्तीकृत

---

एवं वर्तुलित पूँछ वाले, बिजली की चमक को भी तिरस्कृत कर देने वाली छटाओं से परिव्याप्त केशरों से सुशोभित कण्ठ वाले, नखों के तीक्ष्ण अग्रभाग की खरोंच से जमीन में गर्त्त बनाने वाले, लोहे के जाज्वल्यमान दो गोलों के समान घुड़कने के प्रभाव से भयङ्कर दो आँखों वाले, भगवान् शङ्कर के त्रिशूल के नोक की महिमा को उन्मूलन कर देने वाले दाँतों की दीप्ति से अन्धकार को दूर कर देने वाले, देवी दुर्गा के वस्त्र के सम्पर्क

पाद-युगलम् , वाल-भास्कर - कर - निकरैरेव ग्रथितमिव स्वप्रभा-प्रवाह-व्याप्ताम्बरमम्बरम् , हरित शोणितार्जुन-हारिद्रयाद्यनेक-विध-चारुचक्याऽऽक्षिप्ताक्षि-मणिमयालङ्कार-निचयम् , असि-शक्त्यृष्टि-शूल – चाप – द्रुघण – परिघ – सर्वौघ-तोमर-कुठार – पारश्वधादि-विविधाऽऽयुध - मुष्टिपीडन - पराधीन – मुष्टिकं भुज – मण्डलम् ;

पञ्चाननस्य पृष्ठदेशो येन तादृशम् । पादयुगलम् = चरणद्वयम् । देव्यामा-पादमामस्तकञ्च वर्णयति दृष्टिपथगाम् । बालभास्करनिकरैरेव = नवो-दितप्रभाकरदीधितिव्रातैरेव । ग्रथितमिव = अनुस्यूतमिव । स्वप्रवाहेण व्याप्तम् = लसितम् , अम्बरम् = गगनतलम् , येन तादृशम् । अम्बरम् = वसनम् । हरित = पालाशवर्ण , शोणितः = लोहित , अर्जुनः = श्वेत , हारिद्रय म् = पीतवर्णः. इत्यादि, अनेकविधम् = विविधप्रकारम् । यत् चारुचक्यम् = चमत्कृतिः, तेन, आक्षिप्तानि अक्षीणि, यैरेवम्भूता-नाम् , मणिमयानाम् , अलङ्काराणाम् = आभूषणानाम् , निचया यस्मिन् तादृशम् । भुजमण्डलविशेषणम् । असयादीनाम् , विविधानाम् , आयुधानाम् मुष्टिपीडने = अग्रभागग्रहणे, मुष्टिः = "मूठ" इति हिन्दी । पराधीना-मुष्टिका यस्य तादृशम् । भुजानाम् = अष्टादशसङ्ख्याकानां , बाहूनाम् , मण्डलम् = समूहम् । "अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती" इति रहस्यवचनेन महालक्ष्म्या अष्टादशभुजत्वोक्तेः तस्या एव राज्ञा पूजाविषय-

से सुशोभित पृष्ठ वाले एवम् शत्रुसंहारक ( देवी के वाहन ) सिंह को, तलवे में सुशोभित होने वाले माणिक्यमणि के मर्दन से उद्भूत रक्त प्रवाह से वाहन सिंह के पीठ को भी रक्त बना देने वाले ( उस देवी के ) चरण-युगल को; बाल सूर्य के किरण निकर से ही जड़ित से तथा अपनी प्रभा के प्रवाह से आकाश को भी भासित कर देने वाले ( देवी के ) वस्त्र को, हरे, लाल, उजले, पीले आदि अनेक प्रकार के रङ्गों की चमक से दृष्टि को आकृष्ट करने वाले मणिमय अलङ्कारों से विभूषित तथा खड्ग, शक्ति, ऋष्टि ( बर्छी ), शूल, धनुष-बाण, गदा, मुद्गर, सर्वौघ, तोमर, कुठार तथा फरसे आदि विविध आयुधों की मूँठ पकड़ने में व्यस्त मुष्टि वाली (देवी की)

ताम्बूल-राग-रक्तोष्ठं शोणापाङ्ग-लोचन-युगलं पूर्वाचल-चूडा-चुम्बि-चन्द्र-चन्द्रिका-चयेनेव रचित मुनिजनमनोमन्दिरं मन्मथ-मथन-नयन-मिलिन्द-विश्रामैक-कोकनद वदनमण्डलञ्च पश्यन्) विस्मृतात्मा क्षण बद्धकरसम्पुटस्तूष्णीक एव तस्थिवान्।

किञ्चित्क्षणानन्तरञ्च—'अहो ! यस्याश्चरण-रेणु-निकरेणैव

त्वात्। अत एव यालङ्कारणामायुधानाञ्चानेकविधत्व प्रदर्शितमिति यत्किञ्चिदेतत्। ताम्बूलरागेण रक्तौ, ओष्ठौ यस्मिन् तादृशम्। वदनमण्डलविशेषणमिदमग्रेतनानि च। शोणापाङ्गम् = रक्तप्रान्तम्, लोचनयुगल यस्मिन् तत्। पूर्वाचलचूडाचुम्बिनः = उदयगिरिशृङ्गसम्पर्किणः, चन्द्रस्य, चन्द्रिकाणाम् = कौमुदीनाम्, चयेन। रचितम् = निर्मितम्। मुनिजनमनसाम्, मन्दिरम् = देवायतनम्। मन्मथमथनस्य = कामदर्दनस्य, नयनमिलिन्दानाम् = नेत्रभ्रमराणाम्, विश्रामस्य = विश्रान्तेः, एकम् = अद्वितीयम्, कोकनदम् = रक्तकमलम्। वदनमण्डलम् = मुखमण्डलम्। पाणिनीयव्याकरणानुसार 'विश्रम' इत्येव युक्तः प्रयोग इति "विश्राम इति त्वपाणिनीयम्" इति वदता दीक्षितादीनाम्मतम्। तन्मते प्रयोगाणामीदृशानां पाणिनिबोधाविषयाणां माहेश्वरादिव्याकरणेन साधुत्वमिति पूर्वमेव निवेदितम्, वस्तुतस्तु पाणिनिव्याकरणेनाप्यस्य साधुत्वमिति कौमुदीटीकासु निवृतम्।

चरणरेणुनिकरेण = अङ्घ्रिधूलिव्रजेन। "समादाय सृष्टा सृजति

मुजाओंके मडलको तथा ताम्बूल के रंग से रंगे होठों वाले, लाल-लाल आँखों वाले, उदयाचल की चोटी को चूमने वाले चन्द्रमा की चन्द्रिका से निर्मित-सी, मुनिजन के मनोमन्दिर एवं कामदेव विध्वंसक भगवान् शङ्कर के नेत्रात्मक भ्रमरों के विश्राम के लिये आश्रयभूत एकमात्र रक्तकमल स्वरूप (देवी के) मुखमण्डल का अवलोकन करता हुआ मैं अपनी सुध भूल कर क्षण भर तक तो अञ्जलिबद्ध मुद्रा में चुप ही रहा।

कुछ क्षणों के पश्चात् "अहो ! जिस देवी के चरण रेणु के समूह से

शेषस्यापि शिरोधार्य्यं गृहीत-वराहावतारस्य विष्णोरप्युद्धरणीयं गङ्गाधरस्यापि भस्मच्छुरणच्छद्मना सर्वाङ्गसंश्लेषणीयं ब्रह्माण्ड-मण्डलं रचितमस्ति, सेयं भगवती जगदम्बिका समुपस्थिता"—इति सञ्चिन्त्य साष्टाङ्गं प्रणम्य बहुशः स्तुत्वा च समचकथम्—

'मातः ! इतः परं प्रतीक्ष्यते दुर्दशा भारतवर्षस्य, यदा सफलीकरिष्यसीमं बाहु-सहस्र-भारम् ? आः ! पश्यतो पित्रो-

---

पदयामूल् निनकरै' इति देवीस्तवे भगवच्छङ्कराचार्यैरुक्तम्। शेषस्य = अनन्तस्य। शिरसा धार्यम् = वाह्यम्। गृहीतवराहावतारस्य=धारितसूकराकृतेः। विष्णोः = वासुदेवस्य। उद्धरणीयम् = उत्थापनीयम्। गङ्गाधरस्यापि = भूतेशस्यापि। भस्मच्छुरणच्छद्मना = भूतिकल्पनाव्याजेन। सर्वेषु अङ्गेषु संश्लेषणीयम् = समालिङ्गनीयम्। जगदम्बिका = विधिहरीशादीनामप्युत्पादयित्री शिवादिभिन्ना तुरीया काचिच्छक्तिः। तथा चाऽऽचार्यचरणाः—

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया काऽपि त्वं निखिलनिगमोद्गीतचरिता
महामाये ! विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी॥

---

इस ब्रह्माण्डमण्डल की रचना हुई है, जो शेषनाग के लिये भी शिरोधार्य, वराहावतार धारी भगवान् विष्णु के लिये भी उद्धरणीय तथा भस्म रमाने के छल से भगवान शङ्कर के लिये भी सर्वाङ्ग में धारणीय है वही देवी जगदम्बिका मेरे समक्ष प्रस्तुत है' यह सोच कर, उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर तथा बहुत प्रकार से उसकी प्रार्थना कर मैंने कहा—

"मातः ! भारत देश को इससे भी अधिक कौन सी दुर्दशा की प्रतीक्षा कर रही हो जब तुम अपनी सहस्र बाहुओं के भार को सफल बनाओगी ?

बाला. करपत्रैः कर्त्यन्ते, रुदतः पत्युः पत्न्यः पात्यन्ते; हाहाकारै-र्गगन-तलमपि विदारयतां भक्तानां भगवन्मन्दिराणि चूर्ण्यन्ते, सोढ-विविध-बाधाना निरपराधानां हीनानां दीनानां रक्तै रक्ता-क्रियते भगवती वसुन्धरा । देवि ! निजतनयेषु समापादिता इमा दुर्दशाः पश्यन्त्यपि न पश्यसि ? रोदसी रोदयद्रोदनमदः शृण्वन्त्यपि न शृणोषि । मातैव समुपेक्षेत चेत् कोऽन्यो रक्षितुमपेक्षेत बालान् ।

योऽसौ दिल्ली-दौर्भाग्य-परिणाम-स्वरूपोऽवरङ्गो मया युद्धे विजिता गृहीतश्चाऽपि च शरणं वाञ्छन् जीवन्नेव परित्यक्तः, स

करपत्रैः = ककचैः । कर्त्यन्ते = छिद्यन्ते । पात्यन्ते = भ्रश्यन्ते प्रातिव्रत्यात् । मिश्रो पत्युः, "षष्ठी चानादरे" इति षष्ठी । चूर्ण्यन्ते=धूलिसा-त्क्रियन्ते । सोढविविधबाधानाम् = अनुभूतानेकपीडानाम् । रक्ताक्रियते= लोहिता सम्पाद्यते । समापादिताः = सम्पादिताः । रोदसी = द्यावापृथि-व्यौ । रोदयत् = क्रन्दयत् रोदनम् । अपेक्षेत = अभिलषेत् ।

दिल्ल्याः, दौर्भाग्यस्य = दुरदृष्टस्य, परिणामस्वरूपः = परिपाक-रूपः । शरणम्, वाञ्छन् = अभिलषन् । मैत्रीम् = सौहार्दम् ।

माता-पिता के देखते ही बच्चे आरे से चीर दिये जा रहे हैं, क्रन्दन करते पतियों के समक्ष पत्नियों के सतीत्व की हत्या की जा रही है, हाहाकार से आकाशमण्डल को भी विदीर्ण कर देने वाले भक्तों के समक्ष भगवान् के मन्दिर चूर-चूर कर दिये जा रहे हैं और विविध विपत्तियों का सहन करने वाले तथा निरपराध दीन हीन जनों के रक्त से यह भगवती वसुन्धरा भी रक्तमय बनाई जा रही है। देवि ! क्या अपने पुत्रों पर आयी इन दुर्दशाओं को देख कर भी देखती नहीं हो ! क्या स्वर्गमर्त्य लोकों को रुलाने वाले इस करुणापूर्ण रोदन को सुन कर भी नहीं सुनती हो ? यदि बच्चों की उपेक्षा उनकी माता हो कर दे तो फिर कौन सा दूसरा व्यक्ति उनकी रक्षा करेगा !

दिल्ली के प्रतिकूल अदृष्ट का परिणामस्वरूप जो औरङ्गजेब युद्ध में मेरे द्वारा जीत लिया गया था और पकड़ लिये जाने के बाद भी शरण

एवासौ मैत्रीं प्रविज्ञाय, अस्मद्बन्धुष्वन्यतमं महाराष्ट्रराजं जयपुरेश्वर-द्वारा स्वालयमानाय्य विश्वास्यापि कारागारनिरुद्धमकरोत् ? सहसे चेदीदृशान् करालानत्याचारान् मुधैव जगज्जननीपदेन विडम्बयसे। यदि नाहं सत्वरं शृणोमि-"शिवराजः कुशलेन महाराष्ट्रदेशं न्यवर्तत"—इति; ततस्तु भवत्या सत्ता-विषयेऽपि शैथिल्यमासादयिष्यति मे विश्वासः"—

इति कथयति मयि गम्भीरेण स्वरेण दुर्गा समगादीत्-"मुक्तो महाराष्ट्रराजश्चतुर्थेऽहनि प्रतापदुर्गं प्रवेक्ष्यति। मा स्म खिद्येथाः! दुराचारा एते न चिरमधिकरिष्यन्ति। कियतैव कालेन करटैः सरटैरेव च व्याप्ता द्रक्ष्यन्त एतेषां प्रासादाः" इत्युक्त्वैवान्तरधाद्

प्रतिज्ञाय = प्रतिश्रुत्य। आनाय्य = प्रापय्य। विश्वास्य = विश्वासमुत्पाद्य। विडम्बयसे = उपहसयसे। सत्तायाः = विद्यमानतायाः, विषये। खिद्येथाः = खेदं भजेथाः। करटैः = काकैः। सरटैः = कृकलासैः। अन्तरधात् = अन्तर्हिता।

की कामना करता हुआ मेरे द्वारा जीवित ही छोड़ दिया गया था उसने ही आज मैत्री की प्रतिज्ञा करने पर भी हमारे बन्धुओं में अन्यतम महाराष्ट्र राज को जयपुरेश्वर द्वारा अपनी राजधानी बुलवा कर और विश्वास भी दिला कर कैद भी कर लिया। देवि ! तुम इतने भयङ्कर अत्याचारों का भी सहन यदि कर ही रही हो तो फिर अपने को व्यर्थ में जगज्जननी कहलवा कर अपना उपहास क्यों करवा रही हो ? "शिवराज कुशलपूर्वक महाराष्ट्र देश लौट आये" यह सवाद यदि मैं शीघ्रातिशीघ्र नहीं सुन लूँगा तो तुम्हारी सत्ता के विषय में भी मेरा विश्वास शिथिल हो जाएगा"—

जब मैंने इतना कहा तब गम्भीर स्वर से भगवती दुर्गा ने उत्तर दिया—"महाराष्ट्रराज मुक्त हो चुके हैं और चौथे दिन अपने प्रताप-दुर्ग में प्रवेश करने वाले हैं। चिन्ता नहीं करो, ये दुराचारी चिरकाल तक राज्य नहीं करेंगे। कुछ ही दिनों में इनके ये राजमहल कौवे तथा छिपकलियों

देवी। प्रबुद्ध एव च पत्रमेतत् प्रहिणोमि, यतः प्रायशो न भवन्ति वितथानि स्वप्न-कथानकानि ईदृशाणि।

इतस्तु साम्रेडमिदमेव कथ्यते-यन्न कदाऽपि कथमपि दिल्ली-कलङ्का इमे विश्वसनीयाः। दृश्यताम्, योऽसौ जयसिंहो भारते स्तम्भभूतो यवनराज्यस्य, यश्च भवादृशानपि यवन-कुल-करि-कदम्ब-केशरिणो हस्तयित्वा दिल्लीमानिन्ये, तस्मिन्नेव दक्षिणदेशे युद्ध-महाम्बुधि-निमग्ने, वारं वारं सक्रन्दनं कुमाररामसिंहेन प्रार्थ्यमानोऽपि सेना-प्रेषणेन सम्राट्पद-विडम्बनोऽसौ रक्षाभिक्षां न प्रादात्, जयपुराधीश्वरस्य विपत्तिमाकलय्य च प्रासीदत्, सोऽसौ स्वप्नेऽपि न सन्धेयः। पुनरेतेन सह योद्धव्यम्। अवहेलितो

प्रहिणोमि=प्रेषयामि। वितथानि=असत्यानि। स्तम्भभूत = आधारभूत.। यवनकुलमेव करिकदम्ब तस्य केशरिणः = मृगेन्द्रान् हस्तयित्वा = वशमानीय। आनिन्ये = आनीतवान्। आकलय्य = निर्धार्य। प्रासीदत् = प्रसन्नता गत। सन्धेय = सन्धातुमर्हः।

से भरे देखे जायेंगे।" यह कह कर ही देवी अन्तर्हित हो गई। जगते ही मैं यह पत्र भेज रहा हूँ, क्योंकि इस तरह की स्वप्नकालिक घटनाएँ प्रायशः मिथ्या नहीं हुआ करती हैं।

अब मैं बारम्बार यही कहना चाहता हूँ कि ये दिल्ली के कलङ्क कदापि विश्वास-पात्र नहीं हैं। देखिए—जो जयसिंह भारतवर्ष में वर्तमान यवन-साम्राज्य के स्तम्भ हैं तथा यवन-कुलरूपी गजों के लिए सिंह आप जैसे व्यक्तियों को भी हस्तगत कर दिल्ली ले आए वही (जय सिंह) जब दक्षिण देश में जाकर युद्धरूपी महासमुद्र में निमग्न हो गए तब कुमार रामसिंह द्वारा बारम्बार क्रन्दनपूर्वक प्रार्थना करने के बाद भी सम्राट् के पद को भी उपहासास्पद बनाने वाले इस दुष्ट ने सेना भेज कर उन्हें (जय सिंह को) रक्षा रूपी भिक्षा नहीं दी और जयपुर महाराज जयसिंह की विपत्ति को जानकर बहुत प्रसन्न हुआ था, उस दुष्ट से स्वप्न में भी सन्धि नहीं करनी

जयपुरेश्वरो नाधुनैतस्य साहाय्यं विधास्यति। मरुधराधीशश्च यवनराजस्यैवाविश्वास्यः। यदितोऽप्येतौ यवनसेनां निजभटैर्द्विगुणयन्तौ प्रचलेताम्, तदितोऽहमेतयो राज्यं भस्मसात् करिष्यामि। अस्माकमपि चिरवैरं जयपुरेण सहेति को न वेत्ति? भवता स्वप्रान्तस्थैरपरैरपि विजयपुराधीश्वरादिभिः सह योक्तव्यम्। भारतवर्षे न कोऽपि शुद्धेन हृदा समाद्रियते एतान् मन्दिर-मर्दनान् यवनहतकान्। अस्मासु भेरीराहत्य ध्वजानुद्धूय युद्धं विदधत्सु च, स्मारं स्मारमेषामत्याचारान् सर्वेऽप्यस्मानेव वलक्षं पक्षमवलम्बिष्यन्ते—न चैषां शरणागत-घातकानां विहित-महापातकानां कुक्कुट-कूट-कवलीकाराऽऽकलित-कलुष-कुटिल-कर्कशाऽऽकार-विकार-

अवहेलितः = तिरस्कृत। अविश्वास्यः = न विश्वासभाजनम्। यवनसेनाम् = म्लेच्छवाहिनीम्। द्विगुणयन्तौ = वर्धयन्तौ। चिरवैरम् = प्राचीन शत्रुत्वम्। युद्धम् = सङ्ग्रामम्। विदधत्सु = कुर्वत्सु। वलक्षम् = शुद्धम्। अवलम्बिष्यन्ते = धारयिष्यन्ति। कुक्कुटकूटकवलीकारेण = चरणायुधौघभक्षणेन। आकलितम् = सञ्चितम्, यत् कलुषम् = पाप्मा, तेन,

चाहिए। उसके साथ पुनः युद्ध करना चाहिए। अपमानित जयपुर महाराज भी अब उस (औरङ्गजेब) की सहायता नहीं करेंगे। मरुदेशाधिपति पर तो यवनराज का ही विश्वास नहीं है। इतना होने पर भी यदि ये दोनों (जयपुरेश्वर तथा मरुदेशाधिपति) अपनी सेना से यवन सेना को द्विगुणित कर (आप से युद्ध के लिए) आगे बढ़ेंगे तो इधर मैं इनके राज्य को भस्मसात् कर डालूँगा। जयपुर के साथ हम लोगों का भी चिरकाल से वैरभाव आ रहा है—यह बात कौन नहीं जानता? आप भी अपने प्रान्त के विजयपुराधीश आदि के साथ सम्बन्ध स्थापित करें। भारतवर्ष में कोई भी व्यक्ति इन मन्दिर-विध्वंसक हत्यारे यवनों को हृदय से नहीं चाहता। जब हम लोग डंका बजाकर ध्वजा फहरा कर युद्ध करने लग जाएँगे तब इन यवनाधमों के अत्याचारों को याद कर सभी भारतदेशवासी हम लोगों के निर्मल पक्ष का ही अवलम्बन करेंगे। न कि इन शरणागत घातक,

प्रकाराणामकीर्ति-सवनानां दुराचार-यवनानाम्' तच्छीघ्रं निष्कृप-कृपाण-धारा-प्रवाहे एव प्रवाहयन्तु भवन्त एतान्।

एतावन्मात्रं पठितवत्येव माल्यश्रीके, परितो "हन्यन्तां हन्यन्तां म्लेच्छाः"—इति महान् समुदस्थात् प्रतिध्वनि-ध्वनन-शतगुणितो ध्वनिः। महाराष्ट्रचक्र-चक्रवर्त्ती च दक्षिण-करपल्लवाग्रेण श्मश्रु-प्रान्तं परिमृशन्, गगने दृष्टिं बद्ध्वा प्रोवाच-"अरे! अरे! यवनाः! सपदि विलयं यात!!"

अथ माल्यश्रीक उवाच—देव! अपरमपि किञ्चिदवशिष्यते पठितुम्।

ततः 'पठ्यतां पठ्यताम्"—इत्याज्ञापयति महाराजे, पुनरारब्धवान् पठितुं यत्—

---

कुटिलाः=वक्राः, कर्कशाः=कठोराः, आकारविकारप्रकाराः, येषां तेषाम्। अकीर्त्ति-सवनानाम्=अयशोयज्ञानाम्।

प्रतिध्वनीनाम्, ध्वननेन=रणनेन, शतगुणितः=अतितरां वृद्धिं नीतः। परिमृशन्=स्पृशन्। विलयम्=विनाशम्।

---

महापातकी, मुर्गी खाने के पाप से उत्पन्न कुटिल तथा कर्कश आकृतियों वाले, अकीर्तिकर तथा दुराचारी यवनों के पक्ष का। अतः शीघ्र ही आप इन यवनाधमों को अपने निर्दय कृपाण के धारा-प्रवाह में प्रवाहित करें।"

माल्यश्रीक द्वारा पत्र का उपर्युक्त अंश पढ़े जाते ही चारों तरफ से "मारिए, मारिए, इन म्लेच्छों को मारिए" इस प्रकार का प्रतिध्वनि से शतगुणित शब्द हुआ। महाराष्ट्रराज ने भी दायें हाथ से मूँछ पर ताव देते हुए ऊपर की ओर दृष्टि डाल कर कहा—"अरे रे यवनाधमों! अभी-अभी विनष्ट हो जाओ!"

तदनन्तर माल्यश्रीक ने कहा—देव! और भी कुछ अंश पढ़ने को अवशिष्ट है।

तत्पश्चात् "पढ़ो, पढ़ो" इस प्रकार महाराज की आज्ञा पाकर माल्यश्रीक अग्रिमांश को पढ़ने लग गया :—

"इति भवतः प्रत्यावर्त्तनस्य हर्ष-वर्ष-पुरस्सरं साशीराशि समापयामि विषयममुम्।

द्वितीयश्चासौ निवेदनीयो वृत्तान्तो यद्—आसीदस्मद्बन्धुः खड्गसिंहः।

इति स्वपितृनामधेय-श्रवणेन सावष्टम्भ सगात्र-स्फुरण चैकाग्रयोर्गौरसिंह श्यामसिंहयोः, पुनरप्यवाऽपठत्—तस्य पुत्रौ गौरसिंह-श्यामसिंहौ, आख्याऽनुकूलाकारौ, आखेट परिभ्रष्टौ, चिरान्वेषणेर-प्यस्माभिरलब्धौ, श्रीमद्दत्तहस्तावलम्बनौ स्त इति श्रूयते। सत्येयं वार्त्ता चेत् सपद्यस्मन्निकटे प्रेषणीयौ, तदीया सर्वाऽपि स्थावर-जङ्गम-सम्पत्तिरस्माभिः सम्यग् रक्षिता वर्द्धिता चास्ति। तावागत्य

सावष्टम्भम् = सस्तम्भनम्। सगात्रस्फुरणम् = सशरीरकम्पम्। एकाग्रयोः = एकचित्तयोः। आख्यानुकूलाकारौ=नामसदृशाकृतिकौ। आखेटे = मृगयायाम्, परिभ्रष्टौ = दूरीभूतौ। स्त = विद्येते। स्थावरा = स्थितिशीला भूम्यादिरूपा, जङ्गमा = गमनशीला गजाश्वादिरूपा; सम्पत्तिः = लक्ष्मी। रक्षिता = पालिता। वर्द्धिता = वृद्धिं नीता।

"इस भावना से आपके सकुशल अपनी राजधानी लौट आने के कारण हुए अपने हर्ष के वर्षण की अभिव्यक्ति करता हुआ आशीर्वादपूर्वक मैं इस विषय का अन्त कर रहा हूँ।

दूसरा निवेदनीय वृत्तान्त यह है कि 'मेरा एक बन्धु खड्ग सिंह था।'

पत्र के इस अंश में अपने पिता का नाम सुनकर स्तब्धता तथा शरीर-कम्पन के साथ गौर सिंह तथा श्याम सिंह के एकाग्र हो जाने पर मालवीक आगे पढ़ने लगा—"उसके दो पुत्र थे गौर सिंह तथा श्याम सिंह जिनकी आकृति उनके नामों के अनुरूप है। आखेट (शिकार) के समय वे दोनों कहीं भटक गए और हम लोगों के चिरकालीन अन्वेषण के बावजूद भी मिल न पाए। सुना जाता है कि ये दोनों आपकी शरण में सम्प्रति हैं। यदि यह बात सत्य है तो आप उन्हें शीघ्रही मेरे पास भेज दें। उनकी सारी चल तथा अचल सम्पत्ति को हम लोगों ने सुरक्षित रखा है तथा

स्वसम्पदं स्वायत्तां कुर्य्यातां चेद् गतैतच्चिन्तश्च सुखेन समुच्छ्वसेयम्। तद्भगिनी कोशला तत्पुरोहितो देवशर्मा च क स्त इति नाधुनाऽपि मम ज्ञान-गोचरतामापन्नम्। परन्तु तत्सत्ता-सम्बन्धेऽपि भवद्राज्य एव पक्षपातो मे हृदयस्य।

समाप्तप्रायेऽप्यस्मिन् पत्रे पुनरेतत्सूचयामि—यद् भाग्यैरेषां भारत-परिपन्थिनां यवनानां न भवति पारस्परिक-प्रीतिरस्माकं भारतीय-क्षत्रियाणाम्। तद् भारताभिजन-भूरि-भाग्य-भवन-भारताभिभावक-भाग्य-पराभवनञ्च सर्वथैक्यमेवाऽऽसादनीयमस्माभिः। पारस्परिक विरोध ज्वरावलीढानि दुर्बलानि भवन्ति बलानि, प्रेम पीयूष धाराऽभ्युक्षितानि च महामहांसि सम्पद्यन्ते

स्वायत्ताम् = स्वाधीनाम्। समुच्छ्वसेयम् = श्वास गृह्णीयाम्। सुखी स्यामिति यावत्। ज्ञानगोचरताम् = ज्ञानविषयताम्। आपन्नम् = आयातम्। तयोः, सत्तायाः = स्थिते, सम्बन्धे = विषये।

पारस्परिकप्रीति = अन्योन्यप्रेमा। भारताभिजनानाम्, भूरिभाग्यस्य महतो भागधेयस्य, भवनम् = सदनम्। भारताभिभावकानाम् = भारतशासनत्वेन ख्यातिं गतानाम्, यवनानाम्, भाग्यस्य, पराभवनम् = तिरस्करणम्। दुर्बलानि = बलशून्यानि। बलानि = सैन्यानि। महा-

(यथासम्भव) उसे बढ़ाया भी है। यदि वे दोनों यहाँ आकर अपनी सम्पत्ति को स्वायत्त कर लेंगे तो उसकी सुरक्षा की चिन्ता से मुक्त होकर मैं चैन की साँस ले सकूँगा। उनकी बहन कौसल्या तथा उनके पुरोहित देवशर्मा भी कहाँ हैं—इसका पता अब तक भी मुझे नहीं मिल पाया है। परन्तु मेरी सम्भावना है कि वे दोनों भी आपके राज्य में ही कहीं होंगे।

इस पत्र के अन्त में मैं पुनः यही कहना चाहता कि इन भारत द्रोही यवनों के सौभाग्य से हम भारतीय क्षत्रियों में परस्पर प्रेम नहीं हो पाता है। अत हम लोगों को आपस में वैसी एकता स्थापित करनी चाहिए जो भारतवासियों के महान् सौभाग्य का भवन (आधार) तथा भारत-द्रोही यवनाधमों के सौभाग्य का पराभवन (विध्वंसक) हो। पारस्परिक विरोध-

तेजांसि—इति किमधिकं वचनीयं स्यान्नीति-निष्णातेषु भवत्सु"—इति।

तदाकर्ण्य महाराष्ट्रराजः प्रावोचत्—

सत्यं दुग्धदग्धो जनस्तक्रमपि व्यजनैर्वीजयित्वा पिबति, व्याविद्धकण्टको न कण्टकाऽऽकुलेन पथा पौनःपुन्येन प्रचरति, तद् यवनैः सह सन्धेर्ज्ञाताऽऽस्वादैः कथं मुहुर्मुहुः संमुह्य सन्धास्यते? धन्यः उदयपुराधीश्वरः! यः स्वयमेव खड्गमात्र-सहायस्य मम सहायः संवृत्तः। "एकमेकश्चैकादश भवन्तीति" प्रसिद्धमाभाणकम्। तदावामधुना द्वौ महासमुद्रौ स्वाश्रितैस्तिमिङ्गिल-

---

महांसि = भूरिधामानि। नीतिनिष्णातेषु = नीतिनिपुणेषु।

दुग्धदग्धः = तप्तेन पयसा ज्वलितमुखः। तक्रम् = उदश्वित्। व्याविद्धकण्टकः = पादे प्रविष्टकण्टकः। ज्ञातास्वादैः = अनुभूतरसैः। संमुह्य = मूढैः भूत्वा। सन्धास्यते = सन्धिर्विधास्यते। खड्गमात्रम्, सहायः = साहाय्यकारी यस्य सः। असहायस्येत्यर्थः। एकसङ्ख्यामुल्लिख्य तद्वामे दक्षे वा पुनस्तस्या एवोल्लेखे भवत्येकादशसङ्ख्या। आभाणकम् = लोकोक्तिः, "कहावत" इति हिन्दी। तिमिङ्गिलपर्यैः = महामत्स्यकवलीकारकैर्भिदैः

---

रूपी ज्वाला से आक्रान्त सेना दुर्बल हो जाती है जब कि प्रेमपीयूष की धारा से सींची सेना दिनानुदिन प्रबल तेजस्वी होती जाती है। आप जैसे नीति-निष्णात महापुरुषों के प्रति मैं अधिक क्या कहूँ!"

उपर्युक्त वचन सुनकर महाराष्ट्रराज ने कहा—

यह सत्य है कि दूध का जला आदमी तक्र भी पंखा झेल कर ही पीता है, जिसके पैर में एक बार काँटा चुभ जाता है वह पुनः काँटेदार रास्ते से नहीं जाता है। अतः यवनों के साथ सन्धि के परिणाम को जानने वालों द्वारा पुनः पुनः मोहित हो कर उनके साथ सन्धि कैसे की जाएगी? उदयपुर महाराज धन्य हैं जो स्वयम् ही खड्गमात्र की सहायता से सम्पन्न मेरा सहायक बन चुके हैं। "एक एक मिलकर ग्यारह हो जाते हैं" यह लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है। अतः इस समय स्वाश्रित तिमिङ्गिलसदृश वीरों से परिपूर्ण

प्रायैर्वारिभिरिरौ प्रत्यर्थिन एतान् व्यामोह-प्रवाह-पतितान् गण्डूपद-वृन्दानीवात्स्यावः।

तावदकस्मात् प्रविश्य प्रतीहारः प्रणम्य प्रावोचत्—देव! "सेनापतिर्विजयध्वजः समुपतिष्ठते"—इति। "आम्! प्रवेशय प्रवेशय" इत्युक्तश्च तं प्रावेशयत्।

स च सौवर्ण-प्रान्तारुण-वस्त्राऽऽलिङ्गिताङ्गः कटि-विलम्बि-महाचन्द्रहासः शिरसा भुवं स्पृशन् करौ सम्पुटीकृत्य न्यवेदयद्—

विजयतां विजयतां महाराष्ट्र-चक्र-चक्रवर्ती मण्डलेश्वर-मण्डल-चूडामणि चोचुम्ब्यमान चरणतलो महाराजाधिराजः।

मत्स्यविशेषसदृशौ। व्यामोहस्य = मूर्खतायाः, प्रवाहे = धारायाम्, पतितान् = आगतान्। गण्डूपदवृन्दानीव = किञ्चुलकव्रातानिव। "गण्डूपद. किञ्चुलक" इत्यमरः। "केंचुवा" इति हिन्दी। अत्स्याव. = खादिष्याव।

सौवर्णप्रान्तेन = चामीकरतन्तुरचिताग्रेण, अरुणेन=ईषद्रक्तेन, वस्त्रेण, आलिङ्गिताङ्गः = भूषितशरीरः।

मण्डलेश्वरमण्डलस्य, चूडामणिभिः = शिरोमौक्तिकैः,चोचुम्ब्यमानम्= भृश स्पृश्यमानम्, चरणतल यस्य सः। राजभिः प्रणम्यमान इति भावः।

हम दोनों महासमुद्र अज्ञान प्रवाह में निपतित केंचुए के समान इन शत्रुओं को खा डालेंगे।

उसी समय अकस्मात् प्रविष्ट हो कर द्वारपालने प्रणाम कर कहा—"देव! सेनापति विजयध्वज जी दरवाजे पर उपस्थित हैं।" तदनन्तर "ठीक है, बुलाओ" इस प्रकार महाराज द्वारा आदिष्ट द्वारपाल ने सेनापति को प्रवेश कराया।

सोने के तार जडे किनारे वाले वस्त्र से विभूषित शरीर वाले और कमर में लटकते खड्ग से सुशोभित सेनापति ने जमीन पर शिर रख कर हाथ जोड़ कर महाराज से निवेदन किया—"मण्डलेश्वरों के मण्डल के मुकुटों से पुन पुनः चुम्बित चरण वाले महाराष्ट्र चक्रवर्ती महाराज की विजय हो विजय हो।

देव ! सन्धि-बन्धनाय यान्यस्मद्विजित-दुर्गाणि दिल्लीदूषणाय प्रतिनिवर्त्तितान्यासन्, तानि ह्य एव श्रीचरणानामाज्ञयाऽस्माभि-रक्षितानि। प्रातरेव चाद्य सर्वाण्यपि देवस्य वशंवदानि संवृत्तानि। शत्रुभटाः केचन हता, केचन पलायिताः, केचन गृहीताः, केचन च "त्रायध्वम् . त्रायध्वम्" इति वदन्तः शरणागताः संवृत्ताः।

ततः सर्वे जयध्वनि-प्रतिध्वनिभिः प्रासादमेवाध्वनयन्। महा-राजश्च सौवर्ण-कङ्कण-युगलमस्मै प्रादात्।

तत क्षणं परस्पर विविधानालापान् विधाय, बहुविध-वीर-रस कलित-कविता. पठते कविकुल भूषणाय भूषणाय भूस्वामिता-सूचकमधिकारपत्रं प्रायच्छत्। स च गृहीत्वा पत्रमेतत् साशी-राशि

सन्धिबन्धनाय = मित्रतास्थापनाय। प्रतिनिवर्त्तितानि=प्रतिदत्तानि। अक्षितानि = आक्रान्तानि। वशंवदानि = स्वायत्तानि।

सौवर्णकङ्कणयुगलम् = हैरण्यवलयद्वयम्।

बहुविधाः = अनेकप्रकाराः, वीररसाकलिताः = ओज.पूर्णाः। कविताः = काव्यानि। एतत् = अधिकारबोधक पत्रम्। अन्याः = इतराः।

देव ! सन्धि-स्थापना के लिए हम लोगों द्वारा जीते गये जो दुर्ग दिल्लीनलङ्क को समर्पित कर दिए गये थे उन सब पर हम लोगों ने कल ही श्रीमान् की आज्ञा से आक्रमण कर दिया था और आज प्रात.काल तक वे सब आपके अधीन हो चुके। शत्रु के कुछ वीर मार दिये गये, कुछ भाग गये, कुछ पकड़ लिये गये और कुछ "रक्षा करें, रक्षा करें" कहते हुये शरण में आ पहुँचे हैं।"

यह सुन कर सबों की जयध्वनि की प्रतिध्वनि से वह प्रासाद गूँज उठा एवं महाराज ने सेनापति को पारितोषिक रूप में दो सोने की कङ्गनें दीं।

तदनन्तर थोड़ी देर तक आपस में तरह-तरह की बातचीत कर महाराज ने नाना प्रकार की वीररस की कविताएँ पढने वाले कविकुलभूषण 'भूषण' को कुछ भूभाग के अधिकार का सूचक एक पत्र दिया। पत्र लेकर

पुनरन्या धन्य धन्या मान्या ओजस्वि-पदविन्यासास्तत्क्षण रचिता कविता अपठत्, या श्रुत्वा तत्रत्य-वीराणां दक्षिण-बाहवः प्रास्फुरन्, कृपाणा स्वय कोशात् किञ्चिद् वहिर्निरगच्छन्, लोचनानि च माञ्जिष्ठ-मञ्जिमानमकलयन् ।

तत क्षण निभृत स्थित्वा भूषण प्रशस्य गौरसिंहाभिमुखीभूय महाराज उक्तवान्—

गौर ! श्रुत भवता—यद् उदयपुराधीश्वरेण क्षत्रिय-कुल कमल दिवाकरेण भवन्तमुद्दिश्य लिखितम् ! धन्यो भवान् ! य एव मत्प्रीति-प्रवाह-पात्रमपि पूर्ण प्रताप-पटल-पाटलीकृत-मेद पाटन

ओजस्विनाम् = ओजोगुणपूर्णानाम्, पदानाम्, विन्यासो यासु ताः । प्रास्फुरन् = समचलन् । कृपाणा = असय. । स्वयम् = आत्मनैव । अनिष्कासिता एवेति यावत् । वहिर्निरगच्छन् = बहिर्निष्कान्ता । अतिशयोक्ति । लोचनानि = नयनानि । माञ्जिष्ठमञ्जिमानम् = मञ्जिष्ठ वर्णताम । अकलयन् = अधारयन् ।

निभृतम् = मौनेन ।

मत्प्रीते, प्रवाहस्य, पात्रम् = आधार । पूर्ण-प्रताप-पटलेन = अत्यधिकतेन समूहेन, पाटलीकृत = श्वेतरक्तीकृत, मेद पाटः = मेवार,

भूषण कवि ने महाराज को आशीर्वाद देकर पुन ओजस्वी शब्दों से विन्यस्त उसी क्षण बनाई गई कुछ अच्छी-अच्छी कविताएँ सुनाई जिन्हें सुन कर वहाँ बैठे वीरों की दाहिनी भुजाएँ फरकने लग गईं, उनके कृपाण अपने कोश से स्वय कुछ बाहर निकल गए तथा उनकी आँखे लाल-लाल हो गईं ।

बाद मे थोड़े समय तक मौन रह कर भूषण कवि की प्रशंसा कर महाराष्ट्रराज गौरसिंह की ओर देखते हुये कहा—

गौर ! क्षत्रिय कुलकमल दिवाकर उदयपुरेश्वर ने तुम्हारे बारे में जो पत्र लिखा है उसे तुम सुन चुके । तुम धन्य हो, क्योंकि मेरे प्रीति प्रवाह का पात्र होकर भी अपने पूर्ण प्रताप से मेवाड़ को समुज्ज्वल बनाने वाले,

दुष्टगाण-दुर्घट घटना विघाटनेन प्रत्यर्थि प्राचीर-कपाट विपाटनेन तत्रभवता श्रीमदुदयपुर-परिवृढेनापि सतत स्मर्य्यते। भाग्यवानसि, सम्प्रति सम्पाद्य भगिन्या उद्वाहमहोत्सव वारमेक गत्वा महाराज-मानन्दय, स्वसम्पत्तिमवलोकय। सानुजस्त्व चिरात् कौमार-महाव्रतमेवाङ्गीकृत्य कुलोचिता वीरता धुरां वहसि, तदधुना ससोदर्य्य पदमाधेहि गार्हस्थ्याश्रमे।

अत्रैवसच्छिरो नमयित्वा यावत्किमपि विवक्षते गौरसिंह, तावत् प्रविश्य विप्र-बटुनेकेन साशीर्वचन निवेदित यत्-"सम्पन्नो भगव त्प्रसादीकृतास्वाद्यास्वादन समय"—इति।

येन स.। दुष्टगणस्य, दुर्घटघटनाया. = अनिष्टकारियोजनाया विघा टकेन = विनाशकेन। उदयपुरपरिवृढेन = उदयपुराधीश्वरेण। आनन्दय = हर्षय। कौमारम् = अविवाहितत्वम्, एव महाव्रतम् = कठोर नियमम्। ससोदर्य. = सानुज।

भगवत्प्रसादीकृतस्य = भगवदर्पितस्य, आस्वाद्यस्य = खाद्यस्य, आस्वादनसमय = रसग्रहसमय, भोजनकाल इति यावत्।

दुष्टों के अनिष्ट कृत्यों के विध्वसक तथा शत्रुओं के प्राचीर की किवाड़ी को तोड़ने वाले सम्मान्य उदयपुराधीश्वर भी इस प्रकार तुम्हारी याद कर रहे हैं। तुम सौभाग्यवान् हो, सम्प्रति अपनी बहन का विवाहोत्सव सम्पन्न कर एक बार वहाँ जाकर उदयपुर महाराज को आनन्दित करो और अपनी सम्पत्ति की देख रेख करो। अपने अनुज के साथ चिर काल तक तुमने कौमारमहाव्रत का स्वीकार कर सुक्षत्रिय कुलोचित वीरता के धुरे का वहन किया है। अत अब अपने अनुज के साथ स्वयम् भी गार्हस्थ्याश्रम में प्रवेश करो।

महाराज की वाणी सुन कर शिर झुका कर गौरसिंह कुछ कहना ही चाहता था कि बीच में ही एक ब्राह्मण बटुक ने वहाँ आकर आशीर्वाद पूर्वक कहा—"अब भगवान् के निमित्त निवेदित खाद्य पदार्थ के भक्षण का समय (भोजन का समय) आ चुका।"

ततः "पुनरालपिष्याम"—इत्युक्त्वा महाराज उदस्थात्। सर्वे च यथोचिताऽऽचारपुरस्सर निवृत्ताः।

× × ×

महामङ्गलमय दिनमिद सौवर्णी-विवाहस्य। केन वा वर्णनीया स्याद् नवाधिकृत राज्यस्य राज्ञो गौरसिंहस्य नवाऽऽसादित-प्रासाद-परिष्कार-शोभा ? प्रासादेऽस्मिन् प्रतिद्वार प्रत्यङ्गण प्रतिशाल प्रत्यट्ट प्रतिप्रघणञ्च रम्भा-स्तम्भाः, मङ्गल-कलशा', अशोक-पल्लव-सल्लजावली, प्रतिस्तम्भं परिवेष्टयत्कुसुमित वल्ली-

उदस्थात् = उत्थितोऽभूत्।

× × +

वर्णनीया = कथनीया। नवम्, अधिकृतम् = अधिष्ठितम्, राज्य येन तस्य। नवासादितप्रासादस्य = नवप्राप्तहर्म्यस्य, परिष्कारशोभा = भूषणच्छवि। द्वार प्रतीति प्रतिद्वारम्। प्रत्यङ्गणम् = प्रत्यजिरम्। प्रति प्रघणम् = प्रत्यलिन्दम्। अशोकपल्लवसल्लजानाम् = अशोकप्रवरतकिस लयानाम्, आवली = पङ्क्ति। प्रतिस्तम्भम् = स्तम्भ स्तम्भम्। परिवेष्टयन्त्य० = वलयिता०, कुसुमिता = पुष्पिताः। वल्लीमतल्लिकाः = प्रशस्ता

तत्पश्चात् "फिर बातें करेंगे" यह कह कर शिवाजी यथोचित आचार का निर्वाह करते हुये वहाँ से चल पडे।

× × ×

यह सौवर्णी के विवाहोत्सव का महामङ्गलमय दिन था। कुछ ही दिन पूर्व राज्याधिकार को प्राप्त करने वाले राजा गौरसिंह के नवप्राप्त प्रासाद के परिष्कार की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है ? उस प्रासाद के प्रत्येक द्वार पर प्रत्येक प्राङ्गण में, प्रत्येक मीनार पर तथा प्रत्येक ड्योढ़ी (भवन के द्वार के सामने बनी) मङ्गल-कलश, अशोक के रमणीय पल्लवों से सुशोभित हो रहे थे, प्रत्येक स्तम्भ कुसुमित लताओं से परिवेष्टित था, प्रत्येक कलश

मतल्लिकाः, प्रतिकक्षं कुङ्कुम-कस्तूरी-चन्दन-चर्चा मचर्चिकाः, प्रतिगवाक्षं यक्षकर्दम-वृकधूप-घनसारधूप-धूमोद्भूत-घन-घनाघनोद्धाः, प्रतिकुञ्जं माङ्गलिक-मण्डन-प्रकाराः, प्रतिचन्द्रशालञ्च दोधूयमाना ध्वजाः परितो मङ्गलमिव वर्षन्ति स्म। परितः सुदूर-पर्य्यन्तं केतक-सौरभ-सुरभीकृतैरम्भोभिः परिपिक्ताः पन्थानः खेचराणामपि घ्राणास्तर्पयन्ति स्म।

व्रतवय। कुङ्कुम-कस्तूरी-चन्दनानाम् = काश्मीर-केसर-मृगमद-पाटीराणाम्, चर्चामचर्चिकाः = मनोहराणि रूपाणि। मचर्चिकाशब्दः प्रशस्तवाचकः। प्रतिगवाक्षम् = प्रतिवातायनम्। यक्षकर्दमः = एकीकृतं कर्पूरादि। तदुक्तं व्याडिना—

कर्पूरागुरुकस्तूरीकक्कोलघुसृणानि च।
एकीकृतमिदं सर्वं यक्षकर्दम उच्यते॥

वृकधूपः = दशाङ्गधूप, घनसारधूपः = कर्पूरधूप, एतेषां धूमैः, उद्भूताः = उत्थिताः, घनाः = सान्द्राः, ये घनाघनोद्धाः = प्रशस्ता वर्षुकवारिदाः। "प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ" इत्यमरः। प्रतिकुञ्जम् = प्रतिलतादिपिहितोदरम्। माङ्गलिकानाम् = मङ्गलप्रयोजनानाम्, मण्डनानाम् = अलङ्करणानाम्, प्रकाराः = भेदाः। प्रतिचन्द्रशालम् = प्रतिशिरोगृहम्। दोधूयमानाः = भृशं कम्पमानाः। वर्षन्ति स्मेदेति क्रियोत्प्रेक्षा। केतकसौरभेण = केतकसुगन्धिना, "केवड़े के जल से" इति हिन्दी, सुरभीकृतैः = सुगन्धितामापादितैः, परिपिक्ताः = सर्वत आर्द्रीकृताः। खेचराणामपि = आकाशगामिनामपि। भूचारिणां तु कथैव का। घ्राणान् = नासिकाः।

कुङ्कुम कस्तूरी तथा चन्दन से चर्चित था, प्रत्येक खिड़की यक्षकर्दम (कपूर, अगर, कस्तूरी आदि का मिश्रित चूर्ण) मिश्रित धूप, तथा कर्पूर के धूप से निरस्त धूमावली से निर्मित घन घनपटल से विभूषित थी; प्रत्येक कुञ्ज मंगलकारक अलङ्करण साधनों से सजाया था और प्रत्येक चन्द्रशाला (चौपारा) पर उड़ती हुई ध्वजाएँ मानो मंगल की ही वर्षा कर रही थीं। सर्वतः अत्यन्त दूर तक केवड़े के सौरभ से मिश्रित जल से सींचे हुए राजमार्ग गगनचरों की नासिकाओं को भी तृप्त कर रहे थे।

अभितो मार्गञ्च रम्भास्रक्-पल्लव-तोरण-पताका-कलशादीनां श्रेणी श्रेयांसि वितरणयति । दुन्दुभि-पणवाऽऽनक-मर्दल-झर्झर-डिण्डिम-पटहादि-वाद्यानां सप्रसादा नादाश्च दिवं स्पृशन्ति । सुहासिनीनां सुवासिनीनां कलित-ललित काकलीभिर्गीतानि गीतानि पुंस्कोकिलानपि कलकूजनं शिक्षयन्ति । पीतारुण कौसुम्भ पट्टोष्णीषोत्तरीय-कञ्चुकाः कुङ्कुमतिलकाः क्रमुक-कुसुम-कुङ्कुमाक्षताम्बर - नारिकेलादि - महामाङ्गलिक-प्राभृत-हस्ताः सहस्रशो नागरिका यातायातैः पद्वीराकुलयन्ति ।

अभितः=उभयतः। श्रेयांसि । वितरणयति = ददाति । सप्रसादाः = मनोहर्षकाः श्रव्याः । नादाः = ध्वनयः । दिवम् = नभः । स्पृशन्ति = व्याप्नुवन्ति । सुहासिनीनाम् = शोभनहास्यवतीनाम् । सुवासिनीनाम् = सौभाग्यवतीनाम् । कलितललितकाकलीभिः = धारितशोभनसूक्ष्मस्वरैः । उद्गीतानि = उच्चारितानि । पुंस्कोकिलान् = पिकान् । कलकूजनम् = मधुररणनम् । शिक्षयन्ति = पाठयन्ति । आसां गीतध्वनिः कोकिलध्वनेरपि मधुर इति तात्पर्यम् । पीतारुणकौसुम्भानि, पट्टानि = कौशेयानि, उष्णीषोत्तरीयकञ्चुकानि येषां ते । क्रमुकम् = पूगी, कुसुमम्=पुष्पम्, कुङ्कुमम् = केशरम्, अक्षताः = तण्डुलाः, अम्बरम् = एतेनैव प्रसिद्ध सुगन्धद्रव्य बहुमूल्यम्, नारिकेलम्=लाङ्गलीफलम्, इत्यादीनि, महामाङ्गलिकानि=अतिशयमङ्गलबोधकानि, उपायनानि=उपहाराः, हस्ते येषां ते । पद्वीः=सरणीः ।

मार्ग की दोनों तरफ कदलीस्तम्भ, माला, तोरण ( महराब ), पताका तथा कलश आदि की श्रेणी मंगल का प्रसार कर रही थी। दुन्दुभी, पणव, नगाड़े, मृदंग, मजीरे, डिण्डिम तथा ढोल आदि के मनोहर शब्द से आकाश गूँज रहा था। हँसती हुई सुवासिनियों द्वारा मन्दमधुर स्वर से गाये जाने वाले गीत कोकिलों को भी कलकूजन की शिक्षा दे रहे थे ( अर्थात् तिरस्कृत कर रहे थे )। पीले, लाल तथा केशरिया रंग के रेशमी वस्त्र, पगड़ी तथा कञ्चुक से सज्जित, कुङ्कुम का तिलक लगाये हुये एवम् सुपारी, फूल, कुङ्कुम, अक्षत, वस्त्र तथा नारिकेल आदि अत्यन्त मंगलमय

समयेऽस्मिन् महाराष्ट्रराजः स्वयमुपतिष्ठते गौरसिंहप्रासादे प्राप्त-राज्यस्य सोदर्य्या-पाणिपीडन-महोत्सव-पीयूष-पूर-प्रवाह-स्नातस्य दक्षिण-क्षितिचक्र-चक्रवर्तिनाऽपि च सनाथ्यमानस्य केन वा वर्णनीयः स्यादानन्दो गौरसिंहस्य श्यामसिंहस्य च ।

अद्य वृद्धोऽपि देवशर्म्मा महोत्सव-रस-रसायनैस्तरुणीकृत इव क्षणमुद्वाह मण्डपे क्षण जनसमाजे च प्रविशति, क्षणमेष रजत-पात्र-स्थापिता औद्वाहिकीः सामग्रीर्गणयति, क्षण हरिद्रा हरिद्रा, लाजा लाजाः, शमी शमी, दूर्वा दूर्वा' इति सामग्रीरानेतुं छात्रान् त्वरयति, क्षण तिथिपत्र प्रसार्य्य ग्रहगतीरालोकयति, क्षणश्चाऽऽयस्त इव भित्ति-

सोदर्य्याया=समानगर्भजातायाः, भगिन्याः, पाणिपीडनमहोत्सव-एव = विवाहमहोत्सव एव, पीयूषपूरप्रवाह=अमृतमहाधारा, तेन स्नातस्य = निमग्नस्य । दक्षिणक्षितिचक्रस्य, चक्रवर्त्तिना = सम्राजा । सनाथ्यमानस्य=सहकृतस्य, सम्मानितस्य ।

महोत्सवरस एव रसायनानि = जीवनौषधानि, तैः । तरुणीकृत इव= युवकीकृत इव । औद्वाहिकीः = उपयामसम्बन्धिनीः । गणयति = सङ्ख्याति । सामग्री = उपकरणानि । त्वरयति = शीघ्रयति । तिथिपत्रम् =

उपहारों को अपने-अपने हाथ में लिये हजारों नागरिक यातायात से मार्ग को व्याकुल कर रहे थे।

उस समय महाराष्ट्र राज स्वयम् गौरसिंह के महल में पहुँचे। उनके वहाँ उपस्थित होने पर राज्य को प्राप्त करने वाले, बहन के विवाहमहोत्सव में प्रवाहित होने वाली पीयूषधारा में स्नान करने वाले तथा दक्षिण देश के भूभाग के चक्रवर्ती ( शिवाजी ) से सनाथित गौर सिंह तथा श्याम सिंह के आनन्द का वर्णन कौन कर सकता है ?

उस दिन देवशर्मा जी वृद्ध होने पर भी विवाहमहोत्सवरसरूप रसायनों से युवक जैसे बना दिए जाने के कारण झट से विवाह मण्डप में और झट से उपस्थित जन-समाज में चले जाते थे, कभी चान्दी के पात्र में वर्त्तमान विवाह सामग्रियों की गणना करने लग जाते थे, कभी "हल्दी २, लाजा २,

काश्रितः पृष्ठदेशे उपविश्य कण्ठावलम्बिनीं तुलसी-मालिकां करे कृत्वा चक्षुषी सम्मील्य भगवन्नामानि जपति ।

तावदश्रूयत भेरी-पटह-शङ्ख-झर्झरादीनां दविष्ठो ध्वनिः, क्रमेण चायं नेदिष्ठतां प्रतिपेदे । "वरयात्रा वरयात्रा" इति परितः समुदस्थाद् महोत्साहमयः कलकलः । सत्पथाभिमुख-चन्द्रशालासु गवाक्षेषु च सपदि प्रविश्य शतशो गायन्त्यश्चिरण्ट्य उपतस्थिरे । अभितो मार्गं जनानां महान् सम्बाधः । द्वार-समीप-वर्त्तिनि रम्भा-स्तम्भ-

---

पञ्चाङ्गम् । आयस्त इव = श्रान्त इव । भित्तिका श्रितः, भित्तिकाश्रितः । "द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः" इति समासः । 'पृष्ठदेशे' इति सप्तम्यन्त भित्तिकाम्वयि द्रष्टव्यम् ।

दविष्ठः = अतिशयदूरस्थितः । नेदिष्ठताम् = अतिशयनिकटताम् । प्रतिपेदे = प्राप । सत्पथस्य = शोभनमार्गस्य, अभिमुखासु = सम्मुखासु, चन्द्रशालासु = शिरोगृहेषु । गवाक्षेषु = वातायनेषु । चिरण्ट्यः = सुवासिन्यः । सम्बाधः = सम्मर्दः । आरक्तानाम् = ईषद्रक्तानाम् ,

---

( भूना हुआ धान ), शमी शमी, दूब दूब" यह कह कर छात्रों को सामग्रियाँ लाने दौड़ाते थे, कभी पञ्चाग खोल कर ग्रहों की गति विधि की गणना करने लग जाते थे और कभी श्रान्त के समान भीत में पीठ के सहारे उठंग कर कण्ठ में लटकती तुलसी माला का हाथ में लेकर आँखें मून्द कर भगवान के नाम जपने लग जाते थे ।

उसी समय भेरी, पटह, शङ्ख तथा भर्झरे आदि की दूरवर्त्ती ध्वनि सुनाई पड़ी जो शनैः शनैः काफी नजदीक आ गई । "वरयात्रा वरयात्रा" इस तरह का कलकल सब तरफ से मचने लगा । सन्मार्ग के सम्मुख बनी चन्द्रशालाओं में तथा खिड़कियों के भीतर झट से प्रवेश कर सुवासिनियाँ तरह तरह के गीत गाने लगीं थीं । मार्ग की दोनों तरफ लोगों की बड़ी भीड़ लग गई । द्वार के समीप में वर्त्तमान, केले के खम्भों से हरे वर्ण

"विचित्रेयं दैव-घटना ! क्व मेद-पाट-वाट-वास्तव्यो गौरसिंहः श्यामसिंहश्च ? क्व जयपुर-प्रान्त-निवासी वीरेन्द्रसिंहो रामसिंहश्च ? क्वेयं सतारा-नगरी ? क्व चैष महामहो महाराष्ट्र-मही-महेश्वरस्य ? गौरोऽपि श्यामोऽपि कोशलाऽपि रामोऽपि वीरोऽपि महाराजोऽपि च सर्वे एवैते प्राणसंशयाऽऽपादिकाः कष्टपरम्पराः सोढं सोढमेव प्रतिनिवृत्ताः। दयतामखिलानां दीन-दयार्द्र-हृदयो दयोदन्वान् दामोदरः; यथैतेषां दयितवान्। नूनं रामं विना कोऽन्यः कोशलाया सौभाग्य-भवनं भवेत् ?

मेदःपाटस्य, वाटे = मार्गे, वास्तव्यः = निवासी। महामहः = महोत्सवः। "मह उद्धव उत्सव" इत्यमरः।

प्राणसंशयापादिकाः = जीवनसन्देहाधायिन्यः। कष्टपरम्पराः = दुःखश्रेणीः। सोढं सोढम् = पुनः पुनरनुभूय। प्रतिनिवृत्ता = प्रत्यागताः। दयताम् = दया करोतु। अखिलानाम् = समस्तानां भूमण्डलप्राणिनाम्, "अधीग र्दयेशा कर्मणि" इति कर्मणि षष्ठी। दीनेषु = खिन्नेषु, दयार्द्रम् = कृपाकोमलम्, हृदयं यस्य सः। दयायाः, उदन्वान् = सागरः। दाम = रज्जुर्यशोदार्पिता, उदरे यस्य सः, दामोदरः = वासुदेवः। दयितवान् = कृपा कृतवान्।

"दैव की यह घटना भी विचित्र है! मेवाड़ के रास्ते में रहने वाले गौर सिंह तथा श्याम सिंह कहाँ ? जयपुर के रहने वाले वीरेन्द्र सिंह तथा राम सिंह कहा ? वह 'सतारा' नगरी कहाँ ? और महाराष्ट्र देश के महेश्वर का वह महान् उत्सव कहाँ ?

गौर सिंह, श्याम सिंह, कोशला ( सौवर्णी ), राम सिंह (रघुवीर सिंह) वीरेन्द्र सिंह तथा महाराष्ट्रराज ये सबके सब प्राण को भी संशय में डालने वाले कष्टों को बारम्बार सहने के बाद ही लौटे हुए व्यक्ति हैं। जिस प्रकार दीनों के प्रति की गई दया से आर्द्र हृदय वाले दयासमुद्र भगवान् दामोदर ने उन सबके ऊपर दया की थी उसी प्रकार समस्त भूमण्डल के जीव-जन्तुओं पर दया किया करें। निश्चित ही 'राम' के बिना कोशला के सौभाग्य का संरक्षक अन्य कौन सा व्यक्ति हो सकता है !

श्रूयते राम एव क्रूरं हतवान्, राम एव च संन्यासिवेषमाकलय्य प्रच्छन्नरूपो महाराजेन सहैव दिल्लीमगमत्, सैन्धवनियामक वेषश्च महाराजस्य प्राणानप्यरक्षत्। ईदृशानामेवोदाराणामाचाराणां फलमेतद् यद् असौ सन्देश हरश्चरोऽप्यधुना कोङ्कणदेशस्यान्यतमो मण्डलेश्वरो राजा सवृत्त। राजपुत्र देशेऽपि च लब्ध पारम्परीण स्थावर-जङ्गम-सम्पत्को जयपुराधीश्वराणां परम-प्रीति पात्रं समपद्यत।

धन्योऽसौ गौरसिंहोऽपि यो रसनारीमाहृतवान्, महासेना-समुद्र वीचि सहस्रैः कोङ्कण-देशं प्लावयितुकामं मायाजिह्ममपि पक्षिराज इव गुप्तसर्पं निभृतं हृत्वा, आनीय माया भवने निरुद्ध-

क्रूरम् = क्रूरकर्माणम्, क्रूरसिंहम्। आकलय्य = धृत्वा। प्रच्छन्न-रूपः = गुप्तवेषः। सैन्धवनियामकवेष = अश्ववाहकनेपथ्यः। अर-क्षत् = अपालयत्। सन्देशहरः = वार्ताहारी। चर = भृत्यः। लब्धा = अधिगता, पारम्परीणा = पितृपितामहादिपरम्पराप्राप्ता, स्थावरा जङ्गमा च सम्पत् येन सः परमप्रीतिपात्रम्=अत्युत्कृष्टस्नेहास्पदम्। समपद्यत=संवृत्तः।

महासेनैव समुद्रस्तस्य वीचिसहस्रैः। प्लावयितुम् = ब्रुडयितुम्। नाश-यितुमिति यावत्। पक्षिराज इव = वैनतेय इव। सुप्तसर्पम् = शयितं सर्पम्। हृत्वा = चोरयित्वा।

सुना जाता है कि 'राम' ने ही क्रूर सिंह की भी हत्या की है, 'राम' ही सन्यासी के वेष में अपने स्वरूप को छिपा कर महाराज के साथ दिल्ली तक गया था और साइस के वेश महाराज के प्राण भी इसने ही बचाए हैं। इन्हीं उदार कार्यों का फल है कि प्रथमतः एक सन्देह वाहक दूत हो कर भी बाद में यह कोङ्कण देश के मण्डलेश्वरों में अन्यतम हो गया है। साथ हीं, राजपुताने में भी पैतृक स्थावर तथा जङ्गम सम्पत्ति को प्राप्त करते हुए जयपुर महाराज का भी प्रेमपात्र बन गया है।

यह गौरसिंह भी धन्य है जिसने रोशनआरा का आहरण किया और महासेनारूपी समुद्र की सहस्र तरङ्गों से कोङ्कणदेश को जलमग्न कर देने की इच्छा रखनेवाले मुअज्जम को भी सोये सर्प को गरुड़ के समान पकड़कर

वान्। अत एव महाराज इममसाधारण वन्धु मन्वानो मण्डलेश्वर पदेनामण्डयत्, अनुज चैतस्यान्यतम सेनापतिमकार्षीत्।

अहह! धन्या भगवती कोशला! या मनोमात्रेण वृतस्य रामसिंहस्यापि प्रनष्टता–श्रवणेन जीवन तृणाय मन्यमाना, समिद्धतमेऽग्नौ प्रवेष्टु प्रक्रान्तवती, कथ कथमपि च, मौनमूरीकृत्यावधूतवेषेण विधूतेतर वासना पूतेन हृदा भगवन्त भूतनाथ चिरमाराधयाम्बभूव। तस्या एव तपसामेष पूरित–सकल–काम परिणाम.।

सत्यम्! कलित दुर्घट घटना-नैपुण्यानां पुण्यानामेव फलमिद

अहह = हर्षे। अग्रिमेऽन्वित्रकम। मनोमात्रेणेत्येतदग्रे द्रष्टव्य। एवकारार्थे च। वृतस्य = पतित्वेन स्वीकृतस्य। समिद्धतमे = अतिप्रज्वलिते। प्रक्रान्तवती = प्रारब्धवती। अवधूतवेषेण = तपस्विनेपथ्येन। विधूताभि = तिरस्कृताभि, इतरवासनाभि – अन्यकामनाभि, पूतेन = पवित्रेण। हृदा = चित्तेन। आराधयाम्बभूव = सेवयामास। पूरिता = पूर्णता नीता सकला, कामा = अभिलाषा, येन स। परिणाम = परिपाक।

कलितम् = प्राप्तम्, दुर्घटघटनानाम् = दुष्करसयोगानाम्, नैपुण्य यैस्ते-

राजधानी से आकर माया भवन में नन्द कर रक्खा था। इसी लिये महाराज ने भी उसे अपना असाधारण बन्धु समझकर मण्डलेश्वर की उपाधि से विभूषित कर दिया और उसके अनुज श्यामसिंह को भी सेनापति के पद पर नियुक्त कर दिया है।

अहो! यह सौभाग्यशालिनी कोशला भी धन्य है जो केवल अपने मनोनीत वर रामसिंह की विनष्टता को सुनकर अपने जीवन को व्यर्थ मानती हुई प्रज्वलित अग्नि में जलने के लिये उद्यत हो गई थी तथा जिस किसी प्रकार मौनव्रत का अवलम्बन कर सन्यासिनी के वेष में अन्यान्य वासनाओं को हृदय से समाप्त कर भगवान् भूतनाथ की चिरकाल तक आराधना की। इसी के तप का यह सर्वाङ्गपूर्ण परिणाम है।

सत्य ही यह भी असम्भव को भी सम्भव बनाने में निपुण पुण्यों का ही

यद् बाल्ये देवशर्म्म-भिक्षा-भाग भोग-भागधेयाऽप्यधुना महाराजाधिराजेन निजकन्येव सोत्साह रामसिंहस्य राज्ञी क्रियते। काऽन्या स्यादितोऽपि धन्य-धन्या !"—

इत्येव परस्परमालपन्त. सहस्रशो जना. परित समुपतस्थिरे।

तावत्समीपमायातो वरयात्रा-समारोह.। एकतान-श्रुतिशतैः सुखेनाऽऽस्वाद्यमाना वाद्याना परतो वाद्यानि, रञ्जित विविध रङ्ग-भङ्गाना मतङ्गानां परतो मतङ्गा, अनवरत-पातित-फेन राजीनां खर-खुराग्र-समुद्धूत-धूलि महान्धकारान्धीकृत महाजीनां वाजिनां

---

पाम्। देवशमण, भिक्षाभागस्य = याचनाशस्य, भोगे = मानवादितोन-भोगे, भागधेयम् = भाग्य यस्या, सा। धन्यधन्या = अतिभाग्यवती।

एकतानश्रुतिशतै = एकाग्रीकृ तानेकश्रोत्रै.। आस्वाद्यमानानाम् = ग्रह्यमाणानाम्। रञ्जिता = रक्तोकृता, रञ्जिता विविधैः, रङ्गै = वर्णैः, भङ्गा = पत्रभङ्गाः, नामैकदेशे नामग्रहणात्, रचनाविशेषा अलङ्कारार्थं क्रियमाणा., येषा तेपाम्। मतङ्गानाम् = करिणाम्। अनवरतम् = सततम्, पातिताः फेनराजयः यैस्तेषाम्। खरैः, खुराग्रैः, समुद्धृतानाम् = उत्थापितानाम्, धूलीनाम् = रजसाम्, महान्धकारेण, अन्धीकृता', महा-

---

परिणाम है कि बाल्यावस्था मे देवशर्मा द्वारा अर्जित भिक्षा के भाग को खाने के भाग्य से युक्त होने पर भी यह कोशला आज महाराजाधिराज द्वारा अपनी पुत्री के समान उत्साह से राजारामसिंह की रानी बनाई जा रही है। इससे अधिक धन्य और कौन हो सकती है ?"

इस प्रकार बातचीत करते हुए हजारों व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे।

तबतक वरयात्रा समारोह निकट आ चुका। एकाग्र कानोंवाले श्रोताओं से सुखपूर्वक आस्वाद्यमान वाद्यों के पीछे वाद्य, विविध वर्णों से रञ्जित पत्र-भङ्गवाले हाथियों के पीछे हाथी, सतत फेन गिरानेवाले तथा खुरों के कर्कश अग्रभाग से उडाई गई धूलियों से महान् संग्राम को भी अन्धकाराच्छन्न करने मे समर्थ अश्वों के पाछे अश्व, लाल, पीले आदि अनेक रङ्गों के वस्त्रों

परतो वाजिन·, पीतारुणाऽऽद्यनेक-वर्णनीयाम्वराणां मणि-गण प्रभा-प्रभासिताम्बराणां वीरवराणां परतो वीरवराः, नाना-चित्र-चय-चकितीकृतावलोचक लोचन व्रजानां ध्वजानां परतो ध्वजा, तुण्ड-सौष्ठव-परिस्पर्ध्यग्र-व्यग्रीकृत-शकुन्तानां कुन्तानाञ्च परतः कुन्ताः,— इति स्मरण-मात्रेणापि पराधीना अलौकिक-सामर्थ्य विहीना नवीनाः कथमिव वर्णयेयुः कवि कोविदम्मन्याः ?

नय = महासङ्ग्रामा, यैस्तेषाम्। वाजिनाम् = घोटकानाम्। पीतारुणाद्यनेकवर्णैः वर्णनीयानि = रञ्जनीयानि, प्रशंस्यानि वा, अम्बराणि = वसनानि येषां तेषाम्। मणिगणप्रभाभिः, प्रभासितम् = प्रकाशितम्, अम्बरम् = नभो वसनं वा यैस्तेषाम्। वीरवराणाम् = श्रेष्ठभटानाम्। नानाचित्रचयैः, चकितीकृता = साश्चर्यीकृता, अवलोचकानां लोचनव्रजा यैस्तेषाम्। तुण्डसौष्ठवपरिस्पर्धिना = त्रोटिसौन्दर्यप्रतिद्वन्द्विना, अग्रेण, व्यग्रीकृताः = विमनायिता., शकुन्ताः = पक्षिण., यैस्तेषाम्। कुन्तानाम् = भल्लानाम्। नवीना. कविकोविदम्मन्या कथं वर्णयेयुरिति सम्बन्ध.। नवीनत्वादननुभूतत्वात्स्मरणासम्भवात्सुतरां वर्णनासम्भवः। तदाह—स्मरणमात्रेण पराधीनाः = अस्वाधीना.। स्मर्तुमप्यशक्नुवन्त इत्यर्थः। अथास्ति कश्चिदन्यो वर्णनोपायो न वा ?—तत्राऽऽह-अस्ति परं सोऽपि नवीनेषु नास्ति, एतदेवाह-अलौकिकेन = वैदिकेन, योगादिमाहात्म्यजन्येन, सामर्थ्येन = शक्त्या, विहीनाः = रहिताः।

से मण्डित तथा ( वस्त्रजड़ित ) मणियों की प्रभा से आकाश को भी प्रतिभासित करनेवाले वीरों के पीछे वीर, नाना प्रकार के चित्रों से दर्शकों की आँखों को चकित कर देनेवाली ध्वजाओं के पीछे ध्वजायें और नोक के सौष्ठव में परस्पर प्रतिस्पर्धा रखनेवाले अपने अपने अग्रभाग से पक्षियों को व्यग्र कर देनेवाले भालों के पीछे भाले थे, उनका वर्णन अपने को कवि तथा विद्वान् समझनेवाले नवीन लोग कैसे कर सकते हैं, क्योंकि अलौकिक सामर्थ्य से विहीन होने के कारण नवीन कविमानी तो उनका स्मरण करने में भी समर्थ नहीं हैं।

वरयात्रा-महासमारोहस्यैतस्य शेषभागे परिहित-महा-कञ्चुकैः, आबद्ध पीतारुणोष्णीषैः, आमुक्त मुक्ता माणिक्य वैदूर्य्य-हीरक- मरकत- पद्मरागाद्यगणित- मणि-गणप्रभा- पुञ्ज- पिञ्जरीकृत-निज-मण्डलैः, कमल-मुकुल-कुलाऽऽकलित हार-सौरभ भार-प्रचाराऽऽकृष्ट भ्रमद्-भ्रमर निकर-झङ्कार-स्तूयमानैः, क्षत्रिय-वशावतंसे आवृतः, परस्सहस्र-मौक्तिक जालावृत सर्वाङ्गाऽऽ-कलिताऽऽलोचक लोचन लाभावह शोभा नूपुर-शिञ्जितैर-खिलाना मनो हरन्ती लोल लाङ्गूलेन चामर दोलनमनुकुर्वतो-

परिहितमहाकञ्चुकैः = धारितविपुलचोलकैः। आबद्धानि = वेष्टितानि, पीतारुणानि, उष्णीषाणि यैस्तैः। आमुक्तानाम् = ससक्तानाम्, मुक्त-माणिक्य वैदूर्य-हीरक मरकत पद्मरागादीनाम्, अगणितानाम् = असङ्ख्यातानाम्, मणीनाम्, गणस्य, प्रभापुञ्जैः, पिञ्जरीकृतानि, निजमण्डलानि यैस्तैः। कमलमुकुलकुलैः = सरसिजकोरकव्रातैः, आकलितानाम् = निर्मितानाम्, हाराणाम्, सौरभभारप्रचारेण = सौगन्ध्यभरप्रसारणेन, आकृष्टानाम्, भ्रमताम्, भ्रमराणाम्, निकरस्य, झङ्कारैः, स्तूयमानैः = स्तुतिगोचरीक्रियमाणैः, लुतो प्रेक्षा। क्षत्रियवशावतंसैः = क्षात्रान्वयभूषणैः, आवृतः = वेष्टितः। श्रीमान् रामसिंह इति विशेष्यम्। परस्सहस्राणाम्, मौक्तिकानाम्, जालैः = समूहैः, आवृतैः = सञ्छन्नैः, सर्वैः, अङ्गैः, आकलिता = धारिता, आलोचकानाम् = द्रष्टॄणाम्, लोकनलोभावहा = दर्शनलालसोत्पादयित्री, शोभा = छविः, यया ताम्। लोलडाङ्गूलेन =

वरयात्रा समारोह के अन्त्य भाग में महान् कञ्चुकों को धारण किये हुए; (वस्त्र) सक्त मुक्ता, माणिक्य, वैदूर्य, हीरक, मरकत तथा पद्मराग आदि मणियों की प्रभा से अपनी मण्डली को सुवर्णवर्ण बनाते हुए और कमल की कलियों की बने हार के सौरभ के प्रचार से आकृष्ट भ्रमरों की झङ्कार से स्तूयमान क्षत्रिय वशावतसों द्वारा घिरा हुआ; सहस्राधिक मोतियों से सर्वाङ्ग के व्याप्त होने के कारण दर्शकों की दृष्टि को लुभानेवाली शोभा से सम्पन्न, नूपुरों के शिञ्जित से सबों के मन को हरती हुई चञ्चल पूँछ से चामर डुलाने

मुन्नतग्रीवां स्तब्धकर्णां हरितवर्णां वडवामेकामारूढः, सौवर्ण-शिल्प-सौष्ठवासादितारुण-सर्वाङ्गीण वासाः, कुसुम-कोरक रचित-हार-माला-कङ्कण केयूरावतंस ललामः, विविधालङ्कारालङ्कृतः, ताम्बूल रसारुणिताधरः, प्रतिरूपमिव भगवतः कुसुमधन्वनः, अवतार इव माधुर्य्यस्य, विश्वेषां नयनानि सर्वेषाञ्च मनो मोदयन्, जितवार धराधीशस्य श्रीवीरेन्द्रसिंहस्य कुमारः श्रीमान् रामसिंहो दृष्टः।

---

चञ्चलत्वेन। चामरदोलनम् = चामरचालनम्। अनुकुर्वतीम् = विडम्बयन्तीम्। उन्नतग्रीवाम् = उत्थितकन्धराम्। स्तब्धकर्णाम् = शङ्कुश्रोत्राम्। वडवाम् = अश्वाम्। राजपुताने तदन्तिकेषु च वरो वडवामारुह्य गच्छति। आरूढः = अधिष्ठित। सौवर्णशिल्पस्य = चामीकरतन्तुकाकचित्यस्य, सौष्ठवेन, आसादितानि = युक्तानि, अरुणानि = रक्तानि, सर्वाङ्गीणानि = सकलशरीरव्यापीनि, वासांसि, यस्य सः। कुसुमकोरकरचितैः = कुसुमकलिकानिर्मितैः, हारमालाकङ्कणकेयूरावतंसैः, ललामम् = भूषणं यस्य सः। "ललाम पुच्छपुण्ड्राश्वभूषाप्राधान्यकेतुषु" इत्यमरः। विविधैः, अलङ्कारैः, अलंकृत = भूषितः। ताम्बूलरसारुणिताधर = नागवल्लीदलद्रवरक्तौष्ठः। प्रतिरूपमिव = प्रतिकृतिरिव। कुसुमधन्वन. = कामस्य। माधुर्यस्य = सौन्दर्यस्य। अवतार इव = देहग्रहणमिव।

---

की छवि का अनुकरण करनेवाली खड़े कानोंवाली हरे रङ्ग की अश्वा पर आरूढ; सोने के तार के आकर्षक शिल्प से अरुणवर्ण के सर्वाङ्गीण वस्त्रों से विभूषित; फूलों की कलियों से निर्मित हार, माला, कङ्कन, केयूर तथा अवतंस ( कर्णाभरण ) से रमणीय, विविध अलङ्कारों से अलङ्कृत, ताम्बूल राग से लाल अधरोष्ठवाला, भगवान् कामदेव की प्रतिमूर्त्ति सा, माधुर्य का अवतार-सा, सबके नेत्रों एवम् मन को प्रमुदित करता हुआ जितवार के राजा श्री वीरेन्द्रसिंह का सुपुत्र कुमार रामसिंह देखा गया।

दृष्ट्वैव महाराष्ट्रराज यावत् कुमार रामसिंहस्योपरि प्रसारितं मौक्तिक-जालावली-ललित-प्रान्त महापुण्डरीक-मञ्जिमामत्रं छत्र वाहकोऽस्याऽऽकुञ्चयितुं यतते, तावद् 'नैवं मैवमुद्वाह-महोत्सवे, अलमेतेनाऽऽचारेण"—इति देवेन वारितः पुनस्तथैवावतस्थे। सर्वे च वीरेन्द्रसिंहाद्योऽवलोक्यैवमुदारहृदय सहर्षमहाराजं "विजयतां विजयतां महाराजाधिराज !"—इत्युच्चैर्जगदुः।

अथ द्वारसमीपमायाते वरे, अट्टस्था माङ्गलिक-गीति-गानपरा। सुन्दर्यः सुमनसो ववर्षुः।

---

मौक्तिकजालावलीभिः, ललितः = रम्य, प्रान्त = गोलभागः, यस्य तादृशम्। महापुण्डरीकस्य = विशालकमलस्य, मञ्जिम्न = सौन्दर्यस्य, अमत्रम् = पात्रम्, तत्। छत्रम् = आतपत्रम्। आकुञ्चयितुम् = मीलयितुम्। चक्रवर्तिनोऽग्रे छत्रचामरादि नाम्नैधारणीयमिति मर्यादारक्षणार्थम्। अलमेतेनाऽऽचारेण = नाऽऽचरणीयोऽय व्यवहारः। वारित = निषेधितः।

अट्टस्थाः = अट्टालिकाया विद्यमाना। माङ्गलिकीनाम्, गीतीनाम्, गाने परा = लग्नाः। सुमनसः = पुष्पाणि। 'स्त्रियः सुमनस पुष्पं प्रसून कुसुम सुममि" त्यमर।

---

महाराष्ट्रराज को देखते ही जब कुमार रामसिंह के ऊपर फैलाये, मोतियों की पंक्ति से विभूषित किनारावाले विशाल कमल के सौन्दर्य के आधार छत्र को छत्र-वाहक आकुञ्चित करना चाहा तब महाराज के द्वारा "नहीं, नहीं, विवाह के समय ऐसा नहीं करना चाहिए" यह कहकर छत्र-सङ्कोच करने से रोका गया छत्र-वाहक यथापूर्व छत्र को फैलाये ही रक्खा। उदार हृदय महाराज को देखकर वीरेन्द्रसिंह आदि सब लोग उच्च स्वर से "महाराजाधिराज की विजय हो, विजय हो" कहने लग गये।

तदनन्तर द्वार के समीप वर के आ जाने पर अट्टालिका में माङ्गलिक गीत गानेवाली सुन्दरियों ने फूलों की वर्षा की।

ततो बहुभिराचार-व्यवहारैः सह द्वारपूजायां सवृत्तायां वरेण सह वीरेन्द्रसिंहादयो महाराष्ट्र-देश दिवस्पतिश्चान्त. प्रविविशु । श्यामसिंहस्य परमादरेण सन्तर्पिता सर्वे आत्मानमपि विसस्मर ।

अनुरागिणो हृदयमनुरागी वेत्ति, नापर । चिरवियोग ज्वाला जालावलीढ हृदय सयोगायातिलोल भवति। प्रेय-प्राप्ति साकल्येन धैर्यं धुनोति। तत् को नाम साकल्येन यक्तुं पारयेत पारस्परिकावलोकन-विकसित-विविध-भाव-मङ्ग-तुङ्ग-

---

द्वारपूजायाम् = द्वारे स्थापितानां गणेशगौर्यादीनाम् , स्थितस्य वरस्य च सपर्यायाम् । द्वारशब्दस्य तात्पर्यग्राहकलक्षणामाश्रित्य षष्ठ्यन्तेन विगृह्य समास इति सिद्धान्त. । एतेन द्वारशब्दस्य जडवाचकत्वेन पूजायाश्च चेतनकर्मकत्वेन षष्ठ्यन्तसमासानुपपत्तिमाश्रित्य सप्तम्यन्तसमासोपपत्तिचिन्तार्थं मनीषा सपयन्त परास्ता इति वेदितव्यम् । सवृत्तायाम् = समाप्तायाम् , महाराष्ट्र-देशस्य, दिवस्पतिः = इन्द्र । सन्तर्पिता. = सन्तोषिता । विसस्मरः = विस्मृतवन्त. ।

अनुरागिण. = प्रेमवत । हृदयम् = अन्तःकरणम् । चिरवियोग-ज्वालाजालेन, अवलीढम् = व्याप्तम् । सयोगाय = मिलनाय । अतिलोलम् = अतिचपलम् । प्रेय प्राप्तिः = अतिशयेन प्रियस्य लब्धि । साकल्येन = सर्वतो भावेन । धुनोति = चालयति । पारस्परिकाव-

---

तत्पश्चात् बहुत प्रकार के आचार-व्यवहारों के साथ द्वारा पूजा के समाप्त हो जाने पर वर के साथ वीरेन्द्रसिंह आदि तथा स्वयम् महाराष्ट्रराज ने भी अन्तःपुर में प्रवेश किया। वहाँ श्यामसिंह के उदात्त आतिथ्य से सन्तुष्ट होकर वे सब अपने को भी भूल गये।

एक प्रेमी के हृदय को दूसरा प्रेमी ही जान सकता है, अन्य व्यक्ति नहीं। चिर वियोग की ज्वाला से सन्तप्त हृदय सयोग के लिये बहुत ही चञ्चल ( लालायित ) रहता है। प्रिय पदार्थ की सम्प्राप्ति मनुष्य के धैर्य को सर्वथा शिथिल कर देती है। अतएव पति-पत्नी के पारस्परिक अवलोकन से

तरङ्गाऽऽकुलस्य हृदयस्य दशाम् ?

एतैर्हि लज्जया बलादाकृष्येतस्ततः क्षिप्ताऽपि दृष्टिः शिथिलित-जाल-बन्धना शफरीव तडाग-तलमज्ञात-प्रचारा स्वयं परस्परमभिमुखीभवति। धैर्य्येण गृह्यमाणाऽपि गात्रयष्टिः पुनः पुनः कम्पते। ताल-दल-व्यजन-वीजनैः कौशेय-पट्टाम्बर-सम्मर्दैश्चामरोद्धूननैश्चापह्नियमाणोऽपि मुहुर्मुहुर्निर्झरवारां प्रसार इव प्रस्रवति स्वेद-बिन्दुव्रज। अरुण-वसन-महामाणिक्य-पद्मराग-निचय-प्रभा-सहस्रैर-

लोकनेन = अन्योन्यसाक्षात्कारेण, विकसितानाम्, विविधभावभङ्गानाम्, तुङ्गैः = उन्नतैः, तरङ्गैः आकुलस्य = विचलितप्रायस्य।

एतैः = अनुरागिभिः। आकृष्य = आकृष्य। इतस्ततः = विषयान्तरे। क्षिप्ता = प्रेरिता। शिथिलितजालबन्धना = विश्रृङ्खलितानायबन्धा। शफरीव = मत्स्यस्त्रीव। स्त्रीजातिग्रहणं चापल्यातिशयद्योतनाय। तडागतलम् = सरोवराधोभागम्। अज्ञातप्रचारा = अविदितचलना। अभिमुखीभवति = सम्मुखीभवति। गृह्यमाणाऽपि = धार्यमाणाऽपि। तालदलस्य, व्यजनानाम् = पवनसाधनानाम्, वीजनैः = सञ्चालनैः। चामराणाम्, उद्धूननैः = हिल्लोलनैः। निर्झरवारां प्रसार इव = वारिप्रवाहजलानां प्रसरणमिव। प्रस्रवति = प्रवहति। स्वेद-बिन्दुव्रज = घर्मोदकपृषद्गणः। अरुणवसनानाम्, महामाणिक्यानाम्, पद्मरागाणाञ्च निचयस्य, प्रभासहस्रैः = अगणितच्छटाभिः। अरुणीक्रियमाणाऽपि =

विकसित विविध भावभङ्गिमाओं की प्रचण्ड तरङ्गों से आकुल हृदय की दशा का पूर्ण वर्णन कौन कर सकता है!

प्रेमियों द्वारा अन्योन्य संसक्त दृष्टि बलात् इधर-उधर विक्षिप्त कर दिये जाने पर भी पुनः स्वयम् उसी प्रकार अज्ञानपूर्वक परस्पर अभिमुख हो जाती है जिस प्रकार जाल-बन्धन के शिथिल हो जाने पर मछली पुनः जलाशय के अभिमुख हो ही जाती है। धैर्य से सम्भाली गई भी गात्रयष्टि पुनः पुनः काँप उठती है। ताल के पत्ते की हवा से, रेशमी वस्त्र के पोंछने से और चामर डुलाने से सुखाए जाने पर भी पसीने की बूँदें बारम्बार टपकती रहती

रुणीक्रियमाणाऽपि भूयस्वाहो-दल-द्युतिमासादयति कपोल-पाली।

उभयोः पितृवन्मान्यौ नेदीयांसौ देवशर्म्म – गणेशशास्त्रिणौ। वीरेन्द्र-गौर-श्यामादयोऽभ्यर्णस्था बान्धवाः। सर्वथा रक्षणीय एव विनयो महाराजाधिराजस्य सम्मुखे। तथाऽप्येनयोरावेगः, जडता, स्तम्भः, रोमोद्गमश्च क्रियासमभिहारेण सधैर्य्यं रोरुध्यमाना अपि प्रकटीभवन्त्येव। पाणिग्रहण – समये कैर्भावैरालीढमेनयोर्हृदयमिति तावेव वित्तः।

ऊर्ध्वतनशालासु सुवासिन्यो मङ्गल-गीतानि गायन्ति। उद्वाह-समये ब्राह्मणा ब्रह्मघोषै पारिषदानां कर्णौ पाययन्ति। प्रासादस्य

---

लोहिततामापाद्यमानाऽपि। वालीदलद्युतिम् = पीतिमानम्। आसादयति = प्राप्नो त। कपोलपाली = गण्डस्थलम्।

नेदीयांसौ = निकट स्थितौ। अभ्यर्णस्थाः = समीपस्थाः। विनयः= नम्रता। सधैर्यम् = सधीरतम्, रोरुध्यमाना अपि = बार बार गोप्यमानौ अपि। प्रकटीभवन्ति = आविर्भवन्ति। वित्तः = जानीत। विदो लटः प्र० पु० द्वि०।

ऊर्ध्वतनशालासु = चन्द्रशालासु। ब्रह्मघोषै. = वेदध्वनिभिः। पारिषदानाम् = परिषदि सभायां भवानाम्, मण्डपे तिष्ठताम्। पाययन्ति=पविन-

---

है। अरुणवर्ण के वस्त्र और महामाणिक्य एवम् पद्मराग आदि की अत्यधिक प्रभा से अरुणवर्ण की बनाई गई भी कपोलपाली (गाल) पुन पीली हो जाती है।

पिता के समान दोनों (वर-वधू) के लिए सम्मान्य देवशर्मा जी तथा गणेश शास्त्री जी समीप में ही थे। वीरेन्द्र सिंह, गौर सिंह एवम् श्यामसिंह आदि बान्धव भी निकटस्थ ही थे। महाराजाधिराज के सम्मुख विनय की रक्षा भी अत्यन्त आवश्यक थी। तथापि उन दोनों के प्रेमावेग जड़ता, स्तब्धता एवम् रोमाञ्च धैर्यपूर्वक अवरुद्ध किए जाने पर भी पुनः पुनः प्रकट हो जाते थे। पाणिग्रहण के समय तो किन भावों से उनके हृदय व्याप्त थे—यह वे ही दोनों जानते होंगे।

चन्द्रशालाओं में सुवासिनियाँ मङ्गलगीत गा रही थीं। विवाह के

द्वारे वादका वाद्यानि वादयन्ति । क्षणे क्षणे कुमार्य्यः कुसुमानि वर्षन्ति-इति घनानन्दानुभव-पुरस्सरं समाप्तोऽसौ कोशलापरिणय-महोत्सवः । रामविरहेण चिरग्लाना कोशला पुना रामेण सनाथिता-इति राम-प्राप्ति सकल-सौभाग्य-भवनभूतां कोशलां दर्शं दर्शं मोमुद्यन्तेतमां पौराः ।

शान्तोऽधुना देवशर्म्मणो गौर-श्यामयोश्च चिन्ता-चक्रस्य महाज्वरः । सुखेन निरश्वसद् वीरो वीरेन्द्रसिंहश्च विलोक्य राजपदालङ्कृतं गृहीत सुकुल कन्या पाणिपद्मं निजतनयम् । कृतकृत्यतामन्वभूद् यजमानानन्दानन्दितो गणेशशास्त्री । क्रमेण रामसिंहतिरस्कारस्य

यन्ति । घनस्य=सान्द्रस्य,आनन्दस्य,अनुभवपुरस्सरम् । कोशलाया ,परिणयस्य, महोत्सवः = महामहः । चिरग्लाना = दीर्घकालखिन्ना । सनाथिता = समानिता । रामप्राप्त्या = राममिलनेन, सकलसौभाग्यानाम् , भवनभूताम् = आश्रयभूताम् । मोमुद्यन्तेतमाम् = अतितरां प्रसीदन्तितमाम् । पौराः = नागरिकाः । श्रीराममद्रायोध्याप्रतान्तोऽपि व्यक्तीकृतोऽनेन प्रकारेणेति समासोक्तिरलङ्कारः ।

गृहीतम् , सुकुलस्य = शोभनान्वयस्य, कन्यायाः, पाणिपद्मं येन तम् । कृतकृत्यताम् = विहितविधेयताम् । यजमानानन्देन, आनन्दितः = हृष्टः ।

समय ब्राह्मण लोग वेद-मन्त्रों के उच्चारण से सभ्यों के कानों को पवित्र कर रहे थे । प्रासाद के दरवाजे पर वादक लोग बाजे बजा रहे थे । क्षण-क्षण में कुमारियाँ फूल बरसा रही थीं । इस प्रकार अत्यन्त आनन्द के साथ कोशला का विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ । 'राम' के विरह से कोशला चिरकाल तक खिन्न रह कर पुनः 'राम' के साथ मिल चुकी—इस लिए 'राम' की सम्प्राप्ति सब सौभाग्यों के आश्रयभूत कोशला को देख कर सब पुरवासी अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे ।

देवशर्मा तथा गौरसिंह के चिन्ताचक्र का महान् ज्वर शान्त हो गया। राजा के पद से अलंकृत तथा कुलीन कन्या के साथ विवाहित अपने पुत्र को देख कर वीर वीरेन्द्र सिंह ने भी चैन की साँस ली। यजमान के

राज्य दानादि-च्छलेन विहितप्रायश्चित्त इव च सन्तोषमाससाद महाराजः। कोशलारामयो शुद्धोऽनुरागो निर्बाधो निष्प्रतिबन्धोऽधुना क्रमतो यथासमयमासादितैरतिदुर्लभैस्तैस्तैर्विलासैः साफल्यमापेदे।

अधुना पुण्यनगरोपकण्ठस्थायाम्, तारा मण्डल-चुम्बि सौधाग्र-शत विहितामरावती विडम्बनायाम्, नीलगिरि प्रतिम-महामत्त-मतङ्गज प्रकाण्ड गण्ड-मण्डल-सोस्रूयमाण मदधाराऽभ्युक्षित-घण्टा पथायाम्, अनवरतसरीसृयमाणाजानेय सहस्र खर-खुराग्र खननो-

न हि ब्राह्मणाना पृथक् स्वार्थ इति विदन्ति सर्वे। विहितम्, प्रायश्चित्तम्= पापविशोधन येन स। निर्बाध =निर्विघ्न। निष्प्रतिबन्धः=नीरोध। विलासैः =हावभावादिभि।

× × ×

पुण्यनगरस्य, उपकण्ठस्थायाम्=समीपस्थायाम्। तारामण्डलचुम्बिभिः, सौधाग्रशतैः विहिता, अमरावत्या =आखण्डलनगर्याः, विडम्बना=अनुकृतिर्यया तस्याम्। नीलगिरिप्रतिमानाम्=नीलाचलतुल्यानाम्, महामत्तानाम्, मतङ्गजप्रकाण्डानाम्=प्रशस्तकरिणाम्, गण्डमण्डलेभ्यः, सोस्रूयमाणया=अतिशयेन क्षरन्त्या, मदधारया, अभ्युक्षिता =सिक्ता, घण्टापथा =राजमार्गो, यस्या तस्याम्। अनवरतम्=सततम्, सरीसृयमाणानाम्=अतिशयेन सरताम्, आजानेया-

आनन्द से आनन्दित गणेश शास्त्री को भी कृतकृत्यता का अनुभव हुआ। रामसिंह के भ्रमवश तिरस्कार से उत्पन्न पाप के उन्मूलनार्थ राम सिंह के निमित्त राज्य के प्रदान के छल से प्रायश्चित्त करने वाले महाराज भी प्रसन्न हुये। कौशला तथा 'राम' का विशुद्ध प्रेम सभी विघ्न बाधाओं को पार कर समयानुसार विहित अत्यन्त दुर्लभ हाव भाव के रूप में सफल हो चुका।

उस समय पूना नगरी के समीप में अवस्थित, तारामण्डल चुम्बी अग्रभाग वाली अट्टालिकाओं से अमरावती का अनुकरण करने वाली, नीलगिरि तुल्य उन्मत्त गजराजों के गण्डस्थल से बहने वाली मद जलधारा

द्धूत-रेणुका पटल घटाऽऽलिङ्गित प्राचीर परिवेष्टितायाम्, निरन्तर-महाराष्ट्रराज-जयध्वनि-समाकर्णन-सञ्जात-संस्कार-भार-तदानुपूर्वी-रटन-पटु-कीर-सारिकादि-चङ्क्रम्यमाण-विटपावृतोद्यान-कदम्बायाम, सतारा-नगर्यां महोद्यान वर्त्तिन्येकस्मिन् महाप्रासादे सकुटुम्बो महाराष्ट्रपतिर्वसति।

कदाचन पाणिगृहीत्या विहरन्, कदाचन कुमारं लालयन्, कर्हिचित् सैनिकानां व्यूह-रचना-कौशल शस्त्रक्षेप-लाघव-कौशलञ्च परीक्षमाणः, कर्हिचिच्च सैन्धवैर्धावं धावं कन्दुकादि क्रीडा-

---

नाम्, सहस्रस्य, खरखुराग्राणाम्, खननात्, उद्धूतानाम् = उद्गतानाम्, रेणुकानाम् पटलस्य, घटया आलिङ्गितेन = आश्लिष्टेन, प्राचीरेण, परित वेष्टितायाम्, निरन्तरम्, महाराष्ट्रराजस्य, जयध्वने, समाकर्णनेन, सञ्जातेन, संस्कारभारेण = भावनातिशयेन, तदानुपूर्वीरटने = तत्क्रमानुसन्धानपूर्वकभाषणे, पटुभिः, कीरसारिकादिभिः, चङ्क्रम्यमाणैः = कम्प्यमानैः, विटपैः, आवृतानि = आच्छन्नानि, उद्यानकदम्बानि, यस्याः तस्याम्। महोद्यानवर्त्तिनि = विस्तीर्णनिष्कुटान्तर्गते।

पाणिगृहीत्या=भार्यया। व्यूहरचनायाः=सैनिकस्थितिप्रकारनिर्माणस्य, कौशलम् = नैपुणीम्। सैन्धवैः = घोटकैः। कन्दुकादिक्रीडायाः =

---

से सींचे गये राजमार्ग से सम्पन्न, सतत दौड़ते हुए आजानेय अश्व सहस्र के कर्कश खुरों के अग्र भाग से खुरचे गये धूली पटल की घटा से संयुक्त प्राचीर से घिरी हुई और निरन्तर महाराष्ट्रराज की जयध्वनि के श्रवण से उत्पन्न संस्कार के प्रभाव से जयध्वनि के यथाक्रम अभ्यास में प्रवीण शुग्गे तथा सारिका आदि पक्षियों से कम्पित होने वाले वृक्षों से भरी वाटिकाओं से विभूषित 'सतारा' नगरी में एक विशाल उद्यान में अवस्थित महाप्रासाद में महाराष्ट्रराज अपने कुटुम्बों के साथ ठहरे हुये थे।

कभी अपनी पत्नी के साथ विहार करते हुए, कभी कुमार का प्यार करते हुये, कभी सैनिकों की व्यूह रचना नैपुण्य और शस्त्र फेंकने की कुशलता

कुतूहलानि रचयन् विलसति। उत्तरस्यां मथुरापर्य्यन्तमेतस्यैव राज्यम्। एतद्राज्यवर्त्तिनो यवना अप्येतस्य सौजन्येन, औदार्य्येण, गाम्भीर्येण सदाचारेण, सौहार्देन, करुणया, प्रेम्णा च वशंवदा इव सर्वेऽप्येतस्यैव प्रशंसाभिः समयं गमयन्ति। दिल्लीश्वरस्य महाभिमान-मतङ्गजोऽपि महाराजस्य कीर्त्ति-देवधुन्याः कृपाण-धारा-स्थालैर्गम्भीरतरे प्रवाहे ग्राव-शकलवन्निमग्नः। ज्वाला-माला-जटालस्यास्य प्रताप-तपनस्य प्रकाशेन भारत-गौरवं विश्वेषा-मन्तराकाशे प्रचकाशे। धूमेनैव चास्य ध्वान्तैरिवान्धीकृतं दिल्लीश्वरस्य

---

'पोलो' इत्याङ्ग्लदेशे ख्यातायाः, कुतूहलानि = कुतुकानि। महाभिमान एव मतङ्गज इति रूपकम्। महाभिमानस्य सविशेषणत्वेऽपि नित्यसापेक्ष-त्वात्समासः। कीर्त्तिरेव, देवधुनी = स्वर्धुनी, जाह्नवी, तस्याः। ग्रावशकल-वत् = अश्मखण्डवत्। निमग्नः = मुडितः। ज्वालामालया, जटालस्य = वृद्धि गतस्य। प्रताप एव तपनः = दहनः, तस्य। ध्वान्तैः = अन्धकारैः। स्वान्तम् = मानसम्। विधूनितम् = समुज्ज्वालितम्। नि सारा = निस्त-

---

की परीक्षा करते हुए और कभी घोड़ा पर सवार हो कर 'पोलो' खेलते हुये महाराष्ट्रराज सुशोभित हो रहे थे। उत्तर दिशा में मथुरा तक उन्हीं का राज्य था। उनके राज्य में रहने वाले यवन भी उनके सौजन्य, उदारता, गाम्भीर्य, सदाचार, सौहार्द, करुणा तथा प्रेम से वशंवद व्यक्तियों की तरह उनकी प्रशंसा में ही अपना सारा समय व्यतीत किया करते थे। दिल्लीश्वर औरङ्गजेब का महाभिमान रूप गजराज भी महाराष्ट्रराज की कीर्तिस्वरूपी आकाश गङ्गा के कृपाणधारा की तरङ्गों से गम्भीरतर प्रवाह में पत्थल के टुकड़े के समान डूब चुका था। ज्वालाओं से सवर्धित उनके प्रतापानल के प्रकाश से भारतवर्ष का गौरव सबके हृदयाकाश में प्रकाशित हो रहा था। उसी प्रतापानल से उपस्थित धूम से ही दिल्लीश्वर का चित्त उस प्रकार अन्ध बना दिया गया था मानो अन्धकार से ही वह अन्ध बना दिया गया हो। उनकी ध्वजा की उड़ान से मानो शत्रुओं

स्वान्तम्। एतद्ध्वजोद्धूननैरिव विधूनितं प्रत्यर्थिनां धैर्य्यम्, एतच्चामराऽऽहत-समीर-प्रसारैरिव शोषिता निस्साराः पर-मनोरथ-कासाराः।

एकदा केतकी सौरभ-वासित-पानीय-पूरित-पात्रस्थ-मरन्द-तुन्दिल कुसुम-वृन्दामोदान्ध-मधुप-झङ्कृतायां नागदन्तिकाऽवलम्बि कराल-करवाल निपतद्दीपावली प्रवियातनाप्रभूत - प्रभूत -प्रभाप्रभासितायामत्युच्चतया पदार्पित-चित्रगतस्येव समस्त-सतारागृहोद्यान-वापी तडाग-शाला-मन्दिर-चत्वरादेः ससौष्ठवावलोकन-

---

त्वा, निर्जलाः, परमनोरथाः = शत्रुकामा एव, कासाराः = सरांसि। "कासारः सरसी सरः" इत्यमरः।

एकदाऽट्टालिकाया शयानो महाराज स्वप्नममुमपश्यदिति सम्बन्धः। अट्टालिका विशिनष्टि—केतक्या., सौरभेण वासितेन पानीयेन पूरितेषु ,पात्रेषु तिष्ठताम् मरन्दतुन्दिलानाम् कुसुमानाम् वृन्दस्य, आमोदेन = सुगन्धेन, अन्धैः = मत्तैः, मधुपैः, झङ्कृतायाम् = नादितायाम्। नागदन्तिकावलम्बिषु = शङ्कुदोलायमानेषु, करालेषु = खरेषु, करवालेषु = खड्गेषु, निपतन्त्या, दीपावलीप्रवियातनया = आलोकनिचयप्रतिकृत्या, प्रभूताभिः = समुत्पन्नाभिः, प्रभूतप्रभाभिः = विपुलकान्तिभिः, प्रभासितायाम् = भ्राजमानायाम्। ससौष्ठवम्, यदवलोकनचौकर्यम्,

---

का धैर्य उड़ चुका था, उनके चामरों से निकली हवा के प्रसार से मानो शत्रुओं के मनोरथरूपी सरोवर शोषित अत एव निःसार बना दिए गये थे।

एक दिन केतकी पुष्प के सौरभ से सुरभित जल से परिपूर्ण पात्र में वर्त्तमान मकरन्द पूर्ण पुष्पों के आमोद से उन्मत्त भ्रमरों की झङ्कार से झकृत, दीवार में लगी खूटी में लटकते भयङ्कर कृपाणों पर प्रतिबिम्बित होने वाली दीपावली से उत्पन्न विशद प्रकाश से प्रकाशित, अत्यन्त उच्च होने के कारण पैरों पर अर्पित चित्र में उल्लिखित किए गए पदार्थों के समान समस्त 'सतारा' नगरी के गृह, उद्यान, वापी, तड़ाग, शाला

सौकर्य्यं प्रदाया परितो गवाक्ष-मण्डलावृतायां तारामह-मण्डलं स्पृशन्त्यामिवाट्टालिकाया गजदन्त पर्य्यङ्के पय-फेन-निभायां तूलिकायां शयानो महाराजः स्वप्नममुमपश्यत्—

यत् "सौवर्ण पर्य्यङ्के महोपधानावलम्बित पृष्ठदेशोऽवरङ्गजीव उपविष्टोऽस्ति। कदाचिन् पादौ प्रसारयति, कदाचिदाकुञ्चयति, कदाचिद्दक्षतः कदाचिद्वामतश्च परिवर्तते, कदाचिदुष्णीषिकां क्षिपति, कदाचित् व्यजनेन सम्यग् वीजयन्तमपि दासेरं 'बलेन वीजय, बलेन" इति आक्रुश्यति, कदाचित् स्वेदाक्लिन्नं कञ्चुकं दूरतः क्षिपति। मुहुर्मुहुः पानीय पूरित जाम्बूनद-भाजनं शिथिलेन

---

सम्भवायाम् = सद्भाविन्याम्। ताराभलणां, मण्डलम्। स्पृशन्त्याम् = चुम्बन्त्याम्। अत्युच्चायामिति यावत्। गजदन्तपर्य्यङ्के = हस्तिदशननिर्मिते पल्यङ्के। पय फेननिभायाम् = क्षीरडिण्डीरसमायाम्। तूलिकायाम = तूलतल्पाम्। शय्यायामिति यावत्। अमुम्=वक्ष्यमाणम्।

सौवर्णपर्य्यङ्के = चामीकरमण्डितपल्यङ्के। महोपधाने = महाबर्हे, अवलम्बित = आश्रितः, पृष्ठदेशो यस्य स। उष्णीषिकाम् = लघुष्णीषम्। "टोपी" इति हिंदी। दासेरम्=भृत्यम्। आक्रुश्यति=भर्त्सयति। जाम्बून-

---

(प्रकोष्ठ अथवा बैठक) मन्दिर तथा चत्वर आदि के रूप अवलोकन में सुविधा प्रदान करने वाली, सब तरफ से खिड़कियों से भरी और तारामण्डल का स्पर्श-सा करती हुई अट्टालिका में स्थित हाथी के दाँतों के बने पलङ्ग पर बिछे दूध के फेन के समान दीखने वाले रुई के गद्दे पर सोते हुये महाराज ने इस स्वप्न को देखा —

"सुवर्णमय पलङ्ग पर एक विशाल तकिये पर पीठ के सहारे उठंग कर औरङ्गजेब बैठा (लेटा) हुआ है। कभी पैर फैलाता है और कभी सिकोड़ लेता है। कभी दायीं करवट और कभी बायीं करवट बदलता है, कभी अपनी टोपी उतार कर फेंक देता है, कभी अच्छी तरह पंखा झलते हुए दास को भी "ठीक से झलो" कहकर डाँटता है, कभी पसीने से भीगे कञ्चुक को दूर हटा देता है। कभी-कभी जल से परिपूर्ण सुवर्णपात्र को

करेणोत्थाप्य मुखे योजयति, मुहुरुष्णं निश्वसिति, मुहुर्वक्षसि करं विन्यस्य मन्त्र-कीलितो जीर्णाजगर इव स्तब्धनयनोऽवतिष्ठते, कदाचिच्च ललाटतले पिच्छिलीभवत्स्वेदराशिं करेणापहृत्य, श्वास प्रश्वास-च्छलेन लशुन-प्रियाल-पलल-विस्र-पूतिगन्धोद्गारैर्मशकानपि मूर्च्छयन् मन्दं मन्दमेव रटति यद्—

"हा! हतोऽस्मि महाराष्ट्र-वञ्चकेन!! एष मम नासामिव छित्वा कूर्चमिव समूलमुल्लूय श्मश्रु युगलमिवोत्पाट्य पादत्राणेनेवाऽऽहत्य निष्ठीवनेनेवाभिषिच्य धूलिभिरिव चान्धीकृत्य कारा-

दभाजनम् = हिरण्यपात्रम्। विशिथिलेन=दुर्बलेन। योजयति = मेलयति! ननु पिबति। मन्त्रैः कीलित = यन्त्रित। निर्विषीकृत इति यावत्। जीर्णाजगर इव = वृद्धमहासर्प इव। स्तब्धनयनः=स्थगितनेत्र। पिच्छिलीभवत्स्वेदराशिम् = अधिकीभवद्घर्मजलम्। लशुनस्य=रसनस्य प्रियालस्य = ग्रन्थकस्य, "प्याज" इति ख्यातस्य, पललस्य = मांसस्य, च यः, विस्रः = दीर्घकालरक्षितविकृतमांसगन्धः, पूतिगन्धः = दुर्गन्धः, तस्य, उद्गारैः = उद्गमनैः। "पूतिगन्धिस्तु दुर्गन्धो विस्रं स्यादामगन्धि यत्" इत्यमरः। मूर्च्छयन् = मोहयन्। दुर्गन्धस्यात्युत्कटत्वाद् दुर्गन्धप्रियानपि खेदयन्निति यावत्।

नासाम् = घोणाम्। छित्वेव = खण्डयित्वेव। उल्लूय = उच्छिद्य। उत्पाट्य = उन्मूल्य। पादत्राणेन = उपानहा। निष्ठीवनेन=थूत्कारेण।

शिथिल हाथ से उठाकर मुँह में लगाता है, कदाचित् लम्बी साँसें भरता है, बारबार हाथ सिमट कर मन्त्र से अवरुद्ध वीर्य वाले जीर्ण अजगर के समान नेत्रों को स्तब्ध बनाकर बैठ जाता है और कभी ललाटतट से टपकते पसीने को हाथ से पोंछ कर श्वास-प्रश्वास के छल से लहसुन, प्याज तथा मांस के पाक न होने के कारण होने वाली गन्ध तथा अन्य प्रकार की दुर्गन्धि के प्रकटन के कारण मच्छरों को भी मूर्छित करता हुआ बोलता है :—

"हाय! महाराष्ट्र के ठग ने मुझे मार दिया! वह तो कारागार से भी निकल कर भग गया मानो उसने मेरा नाक काट कर, मेरी दाढ़ी को

गारान्निष्क्रान्तः। आः! कथमेव मया प्रथम-साक्षात्कार एव खड्गेन खण्डशः कृतः। संन्यासिभिरालपन् पलायितुकामोऽवगतोऽपि कथन्न सवास-भवनो दग्धः? एतस्य भोज्येषु गरलं मेलयित्वा भवने सर्पान् क्षिप्त्वा वा कथन्नैव कालाजगर-जठर-ज्वलन-ज्वाला-पतङ्गः कृतः।

अहह! निर्गतोऽसौ महाशत्रुरत्रुटित केशाग्रः। किं करोमि, न मे चिन्ता शाम्यति, पश्चात्ताप-तपनोऽयं तापयतितमाम्। प्रसिद्धिं गता मम निष्फल-यत्नता, निखिला अपि मे प्रजाः शत्रुभूताः। पथि मामवलोक्य बालोऽपि हसति, धिङ् माम्! धिक् च मम क्लैब्यं जीवनम्!!

---

अन्धीकृत्य = निर्लोचनीकृत्य। अवगतः = बुद्धः। वासभवनेन सहितः, सवासभवनः। क्षिप्त्वा = सम्प्रेर्य। कालाजगरस्य, जठरज्वलनज्वालायाम्, पतङ्गः = शलभः।

अत्रुटितकेशाग्रः = अच्छिन्नकेशमुख्यभागः। तस्य किमप्यनिष्टं न जातमिति भावः। क्लैब्यम् = नपुंसकम्। अनावश्यकं पुरुषार्थ क्षीणञ्च वृते।

---

उन्मूलित कर, मेरे मूँछ उखाड़ कर, मुझे जूते से ठुकरा कर, थूक से अभिषिक्त कर और मेरी आँखों में धूल झोंक कर मुझे अन्धा बनाकर ही यहाँ से निकल गया। हाय! प्रथम साक्षात्कार के समय ही मैंने उसे खड्ग से खण्ड-खण्ड क्यों नहीं कर डाला? संन्यासियों के साथ भागने की इच्छा से बातचीत कर रहा है—ऐसा जानकर भी मैंने उसे उसके निवास गृह के साथ क्यों नहीं जला दिया! उसके भोजन में विष मिला कर अथवा उसके आवासगृह में भयङ्कर साँप भेजवा कर कालतुल्य अजगर की जठराग्नि की ज्वाला का मैंने उसे पतङ्ग क्यों नहीं बना दिया!

अहा! वह शत्रु बाल बाल बचकर निकल गया। क्या करूँ? मेरी चिन्ता दूर नहीं हो रही है! यह पश्चात्तापस्वरूप अनल मुझे बहुत ही जला रहा है। मेरे प्रयास की विफलता प्रसिद्ध हो चुकी, मेरी सारी प्रजा मेरा शत्रु बन गई। रास्ते में चलते मुझे देखकर बच्चा भी हँसता है। मुझे धिक्कार है! मेरे इस निष्प्रयोजन जीवन को भी धिक्कार है! यहाँ आकर 'शिव' ने

अत्राऽऽगत्य शिवेन स्वाचारेण स्वपौरुषेण च दिल्लीवास्तव्या अपि बहवो वशंवदा विहिताः। किमन्यत्तु तनयोऽपि मम मायाजिह्मस्तमेव समये समये प्रशंसति। दुहिता रसनारी च तद्गतप्राणाऽपक्षीयते। हा हतोऽस्मि! अस्तं प्रयातो मे प्रतापतपनः॥"

जागरे हि, "एक-सम्बन्धि ज्ञानमपर-सम्बन्धि-स्मारकं भवति" स्वापे तु,"एकसम्बन्धि-साक्षात्कारोऽपर-सम्बन्धि साक्षात्कार-कारको जायते"—इति रसनारी-शब्द-साक्षात्कारात्परं प्रत्यक्षीकृतमिव यद्—

एकतो द्वारमुद्घाट्य निःशब्दं रुदती, बाष्प-धारा-स्नपित-स्तन-द्वया, अस्थि-चर्म-मात्र-शेषा, सामर्थ्य-विहीनतयाऽयथोचित-

---

अपक्षीयते = अपचीयते। प्रतापतपनः = प्रतापभानुः।

जागरे = जाग्रदवस्थायाम्। एकस्य, सम्बन्धिनः = सवर्गिणः, ज्ञानम् = बोधः। यथा "पूर्वश्चासिद्धमि" त्यत्र पूर्वशब्दस्मरणम्, यथा वा मातरि पितरि च ज्ञाते पुत्रस्य स्मरणम्। स्वापे = स्वप्नावस्थायाम्। एकस्य सम्बन्धिनः, साक्षात्कारः = प्रत्यक्षम्।

सामर्थ्यविहीनतया = शक्तिराहित्येन। अयथोचितपादविन्यासा =

---

अपने आचरण तथा पौरुष से बहुत से दिल्ली वासी भी वशंवद बना लिए। अधिक क्या कहना? मेरा पुत्र मुअज्जम भी समय-समय पर उसी की प्रशंसा किया करता है। मेरी बेटी रोशनआरा भी उससे अत्यन्त अनुरक्त होकर उसके बिना दिनानुदिन क्षीण होती जा रही है। हा! मैं मारा गया। मेरा प्रतापसूर्य अस्त हो गया।

जाग्रदवस्था में 'एक सम्बन्धी का ज्ञान दूसरे सम्बन्धी का स्मरण कराता है' परन्तु स्वप्न की अवस्था में 'एक सम्बन्धी का प्रत्यक्ष दूसरे सम्बन्धी का प्रत्यक्ष करा देता है' इस कारण से रोशनआरा के शब्द के प्रत्यक्ष-श्रवण-के पश्चात् प्रत्यक्ष सा (महाराज ने) देखा कि एक ओर से दरवाजा खोलकर रोती हुई- अश्रुधारा से धुले स्तनों वाली, (वियोग दुःख के प्रभाव

पाद-विन्यासा, कटि-पर्य्यन्तावलम्बि-केशपाशा, धैर्य्य-विरहात् स्खलदवगुण्ठन-वसना सवेग स्वपितुः सम्मुखमागता रसनारी।

न्पूर्वैना कोपाऽऽकुलः समवादीदवरङ्गजीवो यत्-"कर्कशे! मम शत्रु स्मरन्ती, उन्मादावस्थां नाटयन्ती, मुहुर्मुहुर्मां पीडयसि। तदीप-धमेतस्य समुचितो दण्ड। अस्मिन्नपि क्षणे प्रकृतिं न यासि चेत्ताड्यसे"—

श्रुत्वैतद् विस्फार्य्य नयने निरीक्ष्य तम्, ताटशमरुणैरपाङ्गैर्दहन्तीव स्फुरितेनाधरेण शपमानेव, उच्चस्वरेण रसनारी—'नोन्मादः, प्रकृतिं यामि, स्वयमात्मानं दण्डयामि, शाम्यतु शत्रु-शासनस्य भवतः

---

अयथायोग्याद्विस्थापना। स्खलदवगुण्ठनवसना=निपतदवगुण्ठनवस्त्रा। सवेगम्=सत्वरम्।

कर्कशे!=कठोरे!। उन्मादावस्थाम् = कामकृतामुन्मत्तताम्। नाटयन्ती=अभिनयन्ती। दण्ड =शासनम्। प्रकृतिम्=स्वाभाविकावस्थाम्।

अपाङ्गैः=नेत्रप्रान्तैः। दहन्तीव = ज्वालयन्तीव। प्रस्फुरितेन = चपलितेन। शपमानेव=अनिष्टं कथयन्तीव। शत्रुशासनस्य=रिपुना

---

से) अस्थि-चर्म-मात्र शरीर वाली, शक्तिहीन होने के कारण लड़खड़ाती हुई, कमर तक लटकते हुए केशपाश वाली और अधीर होने के कारण नीचे गिरते हुए घुरके वाली रोशनआरा बहुत वेग से अपने पिता के सम्मुख आई।

उसे देखते ही कोप से व्याकुल औरङ्गजेब ने उससे कहा—"अरी कर्कशा! मेरे शत्रु की याद करती हुई और अपनी उन्मादावस्था का अभिनय करती तू बार बार मुझे कष्ट दे रही है। इसकी दवा समुचित दण्ड ही है। यदि अब भी तू रास्ते पर नहीं आती तो मार खानी होगी।"

यह बात सुनकर आँखें खोल्कर अपने पिता को कोपाकुल देखकर अपनी लाल लाल आँखों से उसे (अपने पिता को) जलाती सी और अपने कम्पमान अधरोष्ठ से उसे अभिशाप देती-सी (रोशनआरा ने) उच्च स्वर से "उन्माद नहीं, मैं अपनी प्रकृति को प्राप्त कर रही हूँ, स्वयम् अपने

पीडा"—इति व्याहृत्य स्वतेजसा सदासेर दिल्लीश्वरमपि धर्षयन्ती, नागदन्तिकावलम्बितामेकां छुरिकां त्सरौ गृहीत्वा, झटिति कोशादाकृष्य, 'ईदृशजीवनान्मरणं श्रेय.'—इति कथयन्ती, बलेनाऽऽहत्य स्ववक्षो विददार, रुधिर-धाराभिश्च समं भूमौ निपपात।

दशामेतां स्वप्ने पश्यन्, स्वयं केनापि बलेनाऽऽहत इव, 'हा हा! हन्त हन्त! कष्टं कष्टम्! विरम विरम!" इति विलपन् झटित्युत्थाय करौ प्रसार्य, "उत्तिष्ठ, एषोऽस्मि"—इति कथयन्, सपदि पर्य्यङ्कादवतीर्य्य, प्रस्खलन्निव कोणात् कोणे समधावद् महाराजः। तावद् व्यजनचालकेन—'महाराज! महाराज! अवधीयताम्, स्वप्नोऽसौ, स्वप्नोऽसौ"—इति साम्रेडनमुक्तश्चक्षुर्मी

शनस्य। धर्षयन्ती = भीषयन्ती। त्सरौ = मुष्टौ। श्रेय = कल्याणम्, शोभनम्। आहृत्य = प्रहारं कृत्वा। विददार = द्विधा कृतवती। रुधिरधाराभिः = लोहितप्रवाहैः।

बलेन = बलात्कारेण। आहत इव = ताडित इव। प्रस्खलन्निव =

को दण्डित कर रही हूँ, शत्रु को विदलित करने वाले आपकी पीडा शान्त हो" यह कहकर अपने तेज से भृत्यसहित औरङ्गजेब को भी डराती हुई, दीवार में लगी खूटी पर अवलम्बित एक छूरे का मूँठ पकडकर शीघ्रता से कोश से उसे निकाल कर "इस तरह के जीवन से मरना ही अच्छा है" यह कहती हुई रोशनआरा ने बलपूर्वक छूरा मारकर अपने हृदय को विदीर्ण कर दिया और रक्तधारा के साथ साथ स्वयम् भी वह जमीन पर गिर गई।

स्वप्नावस्था मे इस दशा को देखते हुये, स्वयम् भी किसी के द्वारा बलपूर्वक आहत से होकर "हा! हा! हन्त! हन्त! बहुत कष्ट है! बहुत कष्ट है! ठहरो, ठहरो!" इस प्रकार विलाप करते हुये झट से उठ कर हाथ फैला कर "उठो, मैं आ गया" यह कहते हुये, शीघ्रता से पलङ्ग से उतर कर गिरते हुये से महाराष्ट्रराज एक कोने से दूसरे कोने की ओर दौड़ने लग गये। उस समय पङ्खा झलने वाले सेवक द्वारा "महाराज! महाराज! घबरायें नहीं, यह स्वप्न है, स्वप्न है" इस प्रकार बार बार कहे जाने पर

सम्मृज्य समद्राक्षीत्—यद् न तत्र रशनारी, न चाऽवरङ्गजीवः।

ततः स्वप्नोऽयमिति जानानोऽपि वञ्चित इव, मुग्ध इव, दीर्घमुष्णं निश्वसन्, तेनैव सघडक्कतिना वक्षसा धमद्धमद्धमन्तीभिर्धमनी-भिर्लोल-लोलाभ्यां लोचनाभ्यां, शुष्कतरेण च कण्ठेन निर्वृत्यै पुनः शयनीयमधिष्ठित करयोरङ्गुलीः सङ्ग्रथ्य, हस्तौ सप्रसारमुत्तानीकृत्य, वदनं व्यादाय, नाडीः सस्तभ्य, जृम्भयाऽऽलस्यमिवोद्गीर्य, किञ्चिज्जलं पीत्वा, शुष्कप्रायां गल-नलिकामार्द्रयित्वा, दुःस्वप्न-जनितारिष्ट-शङ्कां निवर्त्य, भगवन्तं नारायणं मातरं दुर्गां

निपतन्निव। अवधीयताम् = समाश्वस्यताम्। सम्मृज्य = सम्मर्द्य। जानानोऽपि = निश्चिन्वानोऽपि। धमनीभिः = शिराभिः। लोल-लोलाभ्याम् = अतिचपलाभ्याम्। निर्वृत्यै = सुखाय। शयनीयम् = विष्टरम्। सप्रसारम् = प्रसारणपूर्वकम्। उत्तानीकृत्य = उत्थाप्य। व्यादाय = विस्फार्य। गलनलिकाम् = कण्ठस्रोत, दुःस्वप्नजनितस्य,

महाराज ने आँखें पोंछ कर देखा कि वहाँ न तो रोशनआरा थी और न औरंगजेब ही।

तत्पश्चात् 'वह स्वप्न था' इतना समझ कर भी वञ्चित तथा मुग्ध हुये की तरह लम्बी साँस लेते हुये, धड़धड़ाते हृदय, धमकती धमनियाँ, चञ्चल आँखों तथा सूखे कण्ठ से युक्त महाराज पुनः आराम-सुख के लिये शय्या पर चले गये। दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर फँसा कर, हाथों को उत्तान मुद्रा से * ऊपर उठा कर मुँह फैला कर, नाड़ियों को स्तम्भित कर, जम्भाई लेकर आलस्य को प्रकटित कर, कुछ पानी पीकर शुष्कप्राय गले की नली को आर्द्र बना कर दुःस्वप्नदर्शनजन्य दोष की आशङ्का को निवृत्त कर भगवान् नारायण, माँ दुर्गा तथा कुक्कुट ब्राह्मण का स्मरण कर महाराज

* इस दशा का वर्णन शब्द में नहीं किया जा सकता है। निद्राकुल व्यक्ति की निद्रा से पूर्व की यह मुद्रा अनुभवमात्र गम्य है।

कुक्कुटञ्च स्मृत्वा पुन शिश्ये । सान्द्र-तन्द्रा-मुद्रित नयनस्यास्य सपदि पुनरङ्कान्यालिलिङ्ग निद्रा ।

स्वप्न-जर्जरीकृत-निद्रस्य सुप्तोत्थितस्य पुनः शयनेऽपि न भवत्येव सुषुप्तिरिति कथमपि सुप्तोऽप्येष पुनरपश्यद् यद्—ज्वर-जर्जरितो जराजीर्णो जयपुर-ज्या-जानिर्महाराजो जयसिंहः काञ्चन-पर्य्यङ्कमधिष्ठित, महोपबर्हाश्रितः, अर्द्धोपविष्टः, निश्चिदुच्छ्वसन्, बाल-व्यजनेन वीज्यमानः, भव-रोग-भेषज-भूतानि भगवन्नामानि भज्यमानेन स्वरेण जपन् स्वामिमुख एव स्थितोऽस्तीति।

---

अरिष्टस्य = दुर्योगस्य, शङ्का । कुक्कुटम् = एतन्नामकं ब्राह्मणविशेषम् ।

वाराणस्या दक्षिणेऽस्ति कुक्कुटो नाम वै द्विजः ।
तस्य स्मरणमात्रेण दुःस्वप्नः सुखदो भवेत् ॥

इति स्कान्देऽभिहितत्वात् । गजेन्द्रमोक्षपाठोऽपि दुःस्वप्नफलनाशक इति स्मर्यते । शिश्ये = सुष्वाप । सान्द्रया = घनीभूतया, तन्द्रया, मुद्रिते नयने यस्य तस्य । आलिलिङ्ग = आशिश्लेष ।

स्वप्नेन, जर्जरीकृता, निद्रा, यस्य तस्य । सुषुप्ति = स्वप्नविरहितस्वापः । जयपुरस्य, ज्या = भूमि, जाया यस्य सः जयपुरज्याजानिः । "जायाया निङ्" । भवरोगस्य भेषजभूतानि = औषधायमानानि ।

---

पुनः सो गये। घनी तन्द्रा से निमीलित नेत्र वाले महाराज को पुनः निद्रा आ गई।

स्वप्न से निद्रा के विघटित हो जाने के कारण सुप्तोत्थित व्यक्ति के पुनः सो जाने पर भी उसे गाढ़ी नींद नहीं आती है—अतः किसी प्रकार सोने के बाद भी महाराज ने देखा कि ज्वर से जर्जरित, जरा से जीर्ण एवम् जयपुर की पृथिवी के स्वामी महाराज जयसिंह सुवर्णमय पलंग पर तकिये के सहारे लेटे हुये, लम्बी साँस भरते हुये, चामरों से पंखा किये जाते हुये और संसारात्मक रोग की औषधि भगवन्नाम का भग्न स्वर से जप करते

दृष्टवांश्च यज्जयपुरेश्वरः किञ्चित् स्वामिमुखं परिवृत्य निजेन सहैवमालपितवान्—

जय०—वीर ! दिष्ट्या मम चरम-निश्वास-विमोक्षणात् प्रागेव समुपस्थितोऽसि ! त्वां दृष्ट्वा भारतभुवं पुत्रवतीं मन्वानः सुखेन प्राणानुत्स्रक्ष्यामि। न मे सामर्थ्यमुत्थायाऽऽश्लेष्टुमिति न गृह्यतां मम दोषः।

स्वयम्—महाराज ! एवमल्पीयसा समयेनेदृशीं दशामापत्स्यते देवः—इति स्वप्नेऽपि नाभूदनुभवः।

जय०—देहः क्षणभङ्गुरः, तत्रापि च समयेऽस्मिन् देहत्याग एव मे हर्षदः।

---

दिष्ट्या = भाग्येन। चरमनिश्वास-विमोक्षणात् = अन्तिमश्वासत्यागात्। मरणादिति यावत्। समुपस्थितः = समुपयातः। उत्स्रक्ष्यामि = त्यक्ष्यामि। न गृह्यताम् = नावधार्यताम्।

आपत्स्यते = प्राप्स्यति। अनुभवः = सम्भावना।

क्षणभङ्गुरः = अत्यल्पसमयनाश्यः।

---

हुये उनके समक्ष ही स्थित थे। यह भी देखा कि जयपुरेश्वर उनकी ओर देख कर उनके साथ कुछ बातचीत कर रहे थे—

जय०—वीर ! सौभाग्य से मेरी मृत्यु से पूर्व ही आप यहाँ आ चुके हैं। आपको देखकर भारतभूमि पुत्रवती मानता हुआ मैं प्राणत्याग करूँगा। अब मुझमें उठकर गले लगाने की शक्ति नहीं है। अतः आप इसके लिये मेरी त्रुटि न समझें।

स्वयम्—महाराज ! मैंने तो स्वप्न में भी यह अनुभव नहीं किया था कि आप इतने ही थोड़े समय में इस स्थिति को प्राप्त कर लेंगे।

जय०—शरीर क्षणभङ्गुर है और इस समय तो मेरे लिये शरीर त्याग ही हर्षप्रद है।

स्वयम्—देव ! किमिति ?

जय०—तथैव प्रतिज्ञातवानस्मि—यद् दिल्लीं गतो भवानवहेल्येत चेत् प्राणांस्त्यक्ष्यामि, बहुशश्च साभिमानमुक्तवानस्मि यद्—न भवत्यस्मादृक्षाणां क्षत्रियाणां भग्ना प्रतिज्ञा। तद्भवन्तं मैत्र्या विश्वास्य दिल्लीं प्रेष्य, महायन्त्रणामनुभावितवानस्मि। तदेव कल्मषमलीमसेन देहेन नाहमात्मानं कलुषयितुमुत्सहे।

स्वयम्—[ कर्णौ पिधाय ] देव ! शान्तं पापम् ! शान्तं पापम् !! [ अञ्जलिं बद्ध्वा ] महाराज ! नास्य विश्वास-घातस्याल्पिष्ठमपि कारणं देवः। दिल्ली-कलङ्को वा मम दुरदृष्टानि वा कारणम्। अत्रभवतस्तु आशिषामेव परिणामो यज्जीवन् निवृत्तोऽस्मि-

---

अवहेल्येत = तिरस्क्रियेत। भग्ना = त्रुटिता। महायन्त्रणाम् = विपुल मानसिक खेदम्। कल्मषमलीमसेन = पापमलिनेन। कलुषयितुम् = दूषयितुम्। उत्सहे = समर्थो भवामि।

अल्पिष्ठम् = न्यूनतमम्। जीवन् = प्राणान् धारयन्। निवृत्तः =

---

स्वयम्—देव ! ऐसा क्यों !

जय०—मैंने ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी कि यदि दिल्ली जाने पर आपका वहाँ अपमान होगा तो मैं प्राणत्याग कर दूँगा और अनेक बार मैं अभिमान के साथ घोषणा कर चुका हूँ कि मेरे जैसे क्षत्रियों की प्रतिज्ञा वृथा नहीं होती। मैत्री द्वारा आपको विश्वास दिलाकर दिल्ली भेजकर मुझे बहुत बड़े मनोदुःख का अनुभव करने को बाध्य किया गया है। इसलिये पाप-कलुषित शरीर का धारण कर मैं अपनी आत्मा को कलुषित करना नहीं चाहता।

स्वयम्—[ कान मूँदकर ] देव ! पाप शान्त हो ! पाप शान्त हो ! महाराज ! आप इस विश्वासघात के कारण नहीं हैं। इसका कारण तो वह दिल्लीकलङ्क है अथवा मेरा दौर्भाग्य ही। यह भी आपके आशीर्वाद का ही परिणाम है कि मैं जीवित ही वहाँ से अपनी राजधानी लौट आया। अतः आपके लिये ग्लानि करना उचित नहीं। क्षत्रियराज ! रक्षा करें, रक्षा करें !

इत्यस्थाने ग्लानिः! त्रायतां त्रायतां क्षत्रियराजः !! मादृशान् हेतू-कृत्य क्षत्रिय वंशावतंसानां युष्मादृशाणामस्मत्परम-पूज्यानां लेश-मात्रेणापि क्लेशः शुभोदर्क्क-विघटक एव स्यात्। मा मां ग्लपय! न्नु मे जीवनं मलिनय!! अवरङ्गेऽप्रीविद्धश्चेत् तत्सम्बन्ध-सूत्रं त्रोटयित्वा स्वतन्त्रो राजपुत्र-राज्यसिंहासनमलङ्करोतु देवः। ससेन. - सकोशः सप्रजोऽहं सन्नद्धोऽस्मि चरणौ सेवितुम्। मनि अवरङ्गेन युयुत्सौ संवृत्ते, मरुधराधीशोऽपि ततो दिल्ली-कलङ्क-शोणित-पङ्क-चर्चा - व्याकुल-कृपाणादुदयपुराधीश- श्रीराज-सिंहात्, इतश्च दिल्ली-दुरित-दर्प-दलन-दीर्घ - भुजदण्डोद्यत्प्रचण्ड-दण्डादस्मभवतो विभ्यदगत्या मैत्रीमेव रक्षिष्यति। मयि च प्रपन्ने

---

प्रत्यागतः। अस्थाने = अनवसरे। हेतूकृत्य = कारणीकृत्य, शुभोद-र्कस्य = शुभपरिणामस्य, विघटकः = नाशकः। स्वतन्त्रः = अकरदः। सकोशः = सनिधिः। युयुत्सौ = योद्धुमिच्छौ। दिल्लीकलङ्कशोणितपङ्कस्य, चर्चया = सम्मर्देन, व्याकुलः कृपाणः, यस्य तस्मात्। दिल्लीदुरितस्य = दिल्लीपापस्य, अवरङ्गजीवस्य दर्पदलनाभ्याम्, दीर्घाभ्याम्, भुजदण्डाभ्याम्, उद्यन् = उदयं प्राप्नुवन्, प्रचण्डः दण्डः = दमनं यस्मात्तस्मात्।

---

मुझमें साधारण व्यक्तियों के कारण यदि क्षत्रिय वंशावतंस आप जैसे परम-पूज्यों को थोड़ा भी क्लेश होगा तो उससे सत्परिणाम का विघटन ही होगा। आप मुझे लज्जित न करें। मेरे जीवन को मलिन नहीं करें। यदि आप औरङ्गजेब से अप्रसन्न हो गये हैं तो उससे सम्बन्ध तोड़कर स्वतन्त्ररूप से राजपुताने की राजगद्दी पर बैठ जाँय। अपनी सेना, अपने कोश तथा अपनी प्रजा के साथ मैं आपके चरणों की सेवा करने के लिये उद्यत हूँ। औरङ्गजेब के साथ जब आप युद्ध करने को तैयार हो जायेंगे तब दिल्ली-कलङ्क के रक्तपङ्क के लेप में व्याकुल कृपाणवाले उदयपुर महाराज तथा दिल्लीपाप के दर्प के विदलन में विशाल भुजदण्ड के प्रभाव से दिये जाने-वाले प्रचण्ड दण्ड के प्रदाता आपके भय से मरुप्रदेशाधिपति भी अगत्या

सर्वोऽपि दक्षिण देशोऽत्रभवतः स्वेदेन सह स्व-शोणितं पातयितुं सज्जोऽस्ति; एवमस्माकं महामण्डले परस्परमैक्ये सञ्जाते के नाम वराका मौद्गलाः ? का वाऽल्पीयस्येषां शक्तिः ? स्मृत्वाऽपीदशमैक्यमस्माकं स्फुरति मे बाहुः, उत्साहैः धमन्ति च धमन्यः। त्यज्यतां विश्वास-घातकस्य क्ररतरस्यास्य अवरङ्गहवकस्य सङ्गः। पुनर्भारताभिजन-प्रताप-पताका दोधूयन्तां हिम-सानुषु, अकूपार-कूलेषु च। स्पृशतु च भारतीय-भेरी-नादः पारसीकानाम्, आरब्याणाम्, काम्बोजीयानाम्, त्रिवृत्तानम्, चीनानाम्, वर्मणाम्, सिंहलानाञ्च कर्णम्!!

---

बिभ्यत् = भयं कुर्वाणः। प्रपन्ने = शरणागते। धमन्यः = नाड्यः। धमन्ति = प्रफुल्ला भवन्ति। हिमसानुषु = प्रालेयाद्रिनितम्बेषु। अकूपाराणाम् = वारिधीनाम्, कूलेषु = तटेषु च। त्रिवृत्तानाम् = "त्रितानियाँ" इति ख्यातानाम्। वर्मणाम् = "बर्मा" इति ख्यातानाम्। अन्ये स्फुटाः, व्याख्याताश्च प्राक्।

---

हम लोगों के साथ मैत्री ही बनाये रक्खेंगे। जब मैं आपकी शरण में चला आऊँगा तब यह समस्त दक्षिणदेश आपके पसीने के साथ अपने रक्त को बहाने के लिये तत्पर हो जायेगा और इस प्रकार हम लोगों के महामण्डल में परस्पर एकता की स्थापना हो जाने पर ये क्षुद्र मुगल तथा इनकी शक्ति किस काम की होगी ? इस तरह की एकता का स्मरण करने पर भी मेरी बाहें स्फुरित हो उठती हैं, उत्साह से धमनियाँ धमकने लग जाती हैं। इस विश्वासघाती क्रूरतर नीच औरङ्गजेब का साथ छोड़ें। पुनः हिमालय के शिखर पर और समुद्र के तट पर भारतवासी की विजयपताका फहराये और भारतीयों की भेरी का शब्द पारसीकों, अरबियों, कम्बोजदेशवासियों, त्रिवृत्तदेशवासियों, चीनियों, बर्मावासियों तथा सिंहलदेशनिवासियों के कानों तक पहुँचे।

—

जय०—वीर ! तथैवाचिरात्सर्वं सम्पत्स्यते, किन्तु वृद्धस्य मे सत्यप्रतिज्ञता-महाव्रतं मा जर्जरय !

स्वयम्—[ किञ्चिदुच्छ्वस्य ] महाराज ! जाज्वल्यमाने यवन-प्रताप-तपने कथं सर्वं तथैव सम्पत्स्यते ?

जय०—वीर ! यवनानां प्रताप-तपनोऽसौ तथा विलयं यास्यति, यथैतस्याऽऽख्यानकमपि न श्रोष्यते परतः ।

स्वयम्—महाराज ! भवादृशे गृहीत-सेनापति-कार्ये कथं यवन-राजस्य विपच्छङ्का ?

जय०—एषोऽहमपि परलोकं प्रस्थितप्रायः ।

स्वयम्—देव ! तथाऽपि वीरसू राजपुत्र भूमिः । अत्रभवति भारतं विरहय्य लोकान्तरं सनाथितवत्यपि कुमाररामसिंहस्तथैव मर्य्यादया सेनापति-कार्य्यं निर्वक्ष्यति—इति कथं सम्भाव्यते

---

जर्जरय = शिथिलय । आख्यानकम् = कथानकम् ।

वीरसू = वीरप्रसविनी । निर्वक्ष्यति = सञ्चालयिष्यति ।

---

जय०—वीर ! कुछ ही समय में वैसा ही होनेवाला है । किन्तु मुझ वृद्ध के सत्यप्रतिज्ञतास्वरूप महान् व्रत का विघटन न करें ।

स्वयम्—[ कुछ लम्बी साँस लेकर ] महाराज ! यवनों के प्रतापसूर्य के देदीप्यमान रहते सब कुछ वैसा ही कैसे होगा ?

जय०—वीर ! यवनों का यह प्रताप सूर्य इस प्रकार अस्त हो जायेगा कि बाद में इसका नाम भी लोग नहीं सुन सकेंगे ।

स्वयम्—महाराज ! जब तक आप जैसे वीरवर यवनों के सेनापति का कार्य करते रहेंगे तबतक उनकी विपत्ति की कैसे शङ्का भी हो सकती है ?

जय०—मैं भी तो अब परलोक पहुँच-सा जा चुका हूँ ।

स्वयम्—देव ! तथापि राजपुताने की पृथिवी वीरों की माता है । भारत को छोड़कर आपके परलोक प्रस्थान के बाद भी तो कुमार रामसिंह इसी मर्यादा के साथ सेनापति का कार्य करते रहेंगे । ऐसी दशा में यह

भवत्कुल-कृपाणावलम्बस्य प्रलम्बस्य यवन-राज्यस्य शैथिल्यम् ?

जय०—[ उच्छ्वस्य ] वीर! सत्य वद्सि, मयि महाध्वन्य-पृथ्वन्ये सवृत्तोऽपि न वार विरहिना भवेद् भारत भूमि, राजपुत्र देशे गृहे गृहे मादृशा मत्तोऽप्यधिकाश्च रण धीरा वीराः समुल्लसन्ति। परन्तु राज्यमाभ्यन्तर बलमवलम्ब्य स्थिर भवति, न तु बाह्यम्। स्नेह पाश बद्धाः सुहृदः प्रजा भृत्याश्च राजार्थे प्राणानपि तृणाय मन्यन्ते, क्रौर्य्य-कण्टकोत्सारिताश्च त एव राजान हन्तुमवसर प्रतीक्षन्ते। प्रत्यक्षमेव दृश्यताम्! यदि भवता सह मैत्री स्वच्छेन निश्छद्मना च हृदा समरक्षिष्यद् दिल्लीपति, तदखण्डस्तस्य प्रतापो दक्षिण देशेऽपि बद्धमूलः प्राज्वलिष्यत्। भवत्खड्गमाश्रित्य स विजयपुराधि महाराजानपि व्यजेष्यत, प्रासारयिष्यच्च स्वप्रताप सिंहल द्वीपेऽपि। एव मत्प्रतिज्ञा रक्षण-

वद्सि = कथयसि। महाध्वनि=मृत्युमार्गे। क्रौर्यमेव कण्टकम्, तेन उत्सारिताः = उत्खाताः, सिंहलद्वीपे = रामेश्वरादनतिदूरे समुद्रगर्भस्थे

कैसे सम्भावित है कि आपके कुल में उत्पन्न वीरों के कृपाणों पर आश्रित यवनों का विशाल राज्य शिथिल हो जायेगा?

जय०—[ लम्बी साँस लेकर ] वीर! आपका कहना ठीक है, मृत्यु-मार्ग पर मेरे प्रयाण के पश्चात् भी यह भारतभूमि वीरहीन नहीं हो जायेगी। राजपुताने में घर घर में मेरे जैसे और मुझसे भी बड़े-बड़े रणधीर वीर भरे हैं। परन्तु राज्य आभ्यन्तर बल पर सुदृढ होता है, बाह्यबल पर नहीं। स्नेहपाश में निबद्ध मित्र, प्रजा तथा सेवक राजा के निमित्त अपने प्राणों को भी तुच्छ समझते हैं, किन्तु क्रूरतारूपी काँटों से दूर हटाये गये मित्र आदि राजा के हनन की ही प्रतीक्षा करते रहते हैं। प्रत्यक्ष ही देखें—यदि आपके साथ स्वच्छ तथा निश्छल हृदय से दिल्लीश्वर मैत्री की रक्षा करते तो आज दक्षिणदेश में भी उनका अखण्ड प्रताप बद्धमूल हो गया होता। आपके खड्ग का सहारा लेकर वे विजयपुराधीश्वर को भी जीत सके होते और सिंहलद्वीप में भी अपने प्रताप को फैला सके होते। साथ ही अपनी प्रतिज्ञा

सद्गुणश्चावलोक्याहमपि द्विगुणतरोत्साहेन मैत्र्युचितकार्य्याणि निरवक्ष्यम् । मयि भवति च तथाऽनुगते; शेषाः सर्वेऽपि महाराजास्तं सममानयिष्यन् । आवयोर्मन्त्रणामुररीकृत्य यदि स वैदिक-धर्म्म-विरोधमत्यक्ष्यत्, ततः सर्वा अपि प्रकृतयः पितरमिवैनमपूजयिष्यन् । एवं स्ववशीकृताखिल भारतवर्षस्य वर्षीयसोऽस्य प्राज्य राज्य वर्षाणां सहस्रेणाप्यभेद्य समपत्स्यत । परमधुना दुराचारैरेतस्य न कोऽपि भारतीय एवं स्निह्यति—इति सत्स्वपि वीर-सहस्रेषु अचिरादिलयं यास्यति यवन-राज्यम्, विजयपुर-गोलखण्ड-नगराद्यधीशाः प्रसिद्धाः शत्रवोऽस्य । चिरशत्रुरुदयपुराधीश, नन्दक-सम्प्रदायाऽऽचार्य्य-तिरस्कारिणाऽस्य पाञ्चालवीराः सर्वेऽपि शिक्ष्या विपक्षाः । भारतचन्द्रादि-महामात्य-जनावहेलनेन

द्वीपविशेषे । भ्रमादनेके तमेव लङ्कात्मना जानन्ति, किन्तु भूमध्यरेखाया, तदसत्त्वाद्वाल्मीकिप्रदर्शित-शतयोजनात्मकान्तरालस्य चाविद्यमानत्वान्नासौ लङ्केति निर्धारितमिति वेदितव्यम् । वर्षीयसः = अतिवृद्धस्य । प्राज्यम् = समृद्धम् । शिक्ष्या = "सिक्ख" इति ख्याताः । भारतचन्द्रादीनाम्, महा-

के रक्षण में उन्हें दत्तचित्त देखने पर मैं भी द्विगुण उत्साह से मैत्री के निर्वाह के लिये उचित कार्य करता रहता । मेरे तथा आपके अधीनस्थ हो जाने पर अन्य सभी महाराज उनका सम्मान करते । हम दोनों की मन्त्रणा को मानकर यदि वे वैदिक धर्म से अपना विरोध छोड़ देते तो समस्त प्रजा पिता के समान उनकी पूजा करती । इस प्रकार से समस्त भारतवर्ष को वश में कर लेनेवाले उन वृद्ध यवनसम्राट् का विशाल राज्य हजार वर्षों के के बाद भी अक्षुण्ण बना रहता । परन्तु उनके दुराचारों के कारण कोई भी भारतवासी उनके साथ प्रेम नहीं करते । अतः असंख्य वीरों के रहने पर भी यवनराज्य शीघ्र ही विलीन होनेवाला है । विजयपुर तथा गोलखण्ड आदि के महाराज यवनसम्राट् के प्रसिद्ध शत्रु हैं, उदयपुराधीश भी पुराने शत्रु हैं और गुरुनानक के सम्प्रदाय आचार्यों के तिरस्कारक इस यवनाधीश के पञ्जाबनिवासी सभी सिक्खसम्प्रदाय के वीर विपक्षी हैं । भारतचन्द्र

मद्वदेशे न कोऽप्यस्य मित्रम्। भवान् जगद्विदित एतस्य सपत्नः। रामकाश्च रामसिंहादयोऽप्येतस्य विश्वास-घातकतायाः स्मारं स्मारं सन्धि बन्धं शिथिलीकृतवन्त—इति न चिरमवतिष्ठते यवनराज्यम्।

स्वयम्—[ रोष-ज्वलित-नयनः ] देवोऽश्वमेघ-यज्ञे शाकल्यैः साकं यवन राज्य प्रतापमपि हुतवान्, यद्गीतानि गायं गायं योषितो बालान् शाययन्ति—इति कथन्न स्यान्नाश एषां कदाचारिणां प्रजा-मृग-वृकाणाम्॥

जय०—[ प्रवृद्धोच्छ्वासवेगः ] वीर! प्रत्यक्षमिव पश्यामि यत् कोप-ज्वलन-ज्वाला परितः प्रवृद्धाः। अत्यन्त यत्नमानोऽपि

मान्यानाम्, अवहेलनेन = तिरस्करणेन, अयदा-मङ्गलादिकाव्यरचयिता वङ्गभाषाया महाकवि श्रीभारतचन्द्रोऽजरङ्गजीवेन दिल्लीमाहूतस्तिरस्कृतश्चेति तेनैवालेखीति मूलकारानुमोदिता टिप्पणी।

शाकल्यैः = हविष्यैः। गायं गायम् = गीत्वा गीत्वा, शाययन्ति = स्वापयन्ति। प्रजा एव मृगाः, वृकाणाम् = दीर्घोदराणाम् "हुंडार" इति ख्यातानाम्। प्रजाहिंसकानामिति भावः।

आदि महामान्य व्यक्तियों के तिरस्करण से वङ्गाल में भी उनका कोई मित्र अवशिष्ट नहीं है। आप उनके विश्वविख्यात शत्रु हैं ही। मेरे बन्धु रामसिंह आदि भी उनकी विश्वासघातकता का स्मरण कर उनके साथ अपने सन्धि-बन्धन को शिथिल कर चुके हैं। अतः यवनों का साम्राज्य चिरकाल तक नहीं रहनेवाला है।

स्वयम्—[ *रोष से आँखें लाल कर* ] *अश्वमेध यज्ञ में 'शाकल्य'* के साथ साथ श्रीमान् ने यवन राज्य के प्रताप का भी हवन कर दिया। जिनके गीत गा गा कर स्त्रियाँ बच्चों को सुलाया करती हैं इसलिए इन दुराचारी तथा प्रजारूपी मृग के लिये भेड़िये का विनाश क्यों न हो!

जय०—[ वेग से लम्बी साँसें भरते हुये ] वीर! मैं तो प्रत्यक्ष-सा देख रहा हूँ कि कोपानल की ज्वालाएँ चारों तरफ धधक रही हैं। कठिन

न पारयत्यवरङ्गजीवः प्रशमयितुम्। एष रोदिति, विलपति, अतिपश्चात्तापैस्तप्यते, सर्वोऽपि चास्य पराक्रमी घृतधारेव ज्वाला-जालमेतद् द्विगुणयति, न तु शमयति। सोदर्य्याणां शिरश्छित्वा जरा-जर्ज्जरं जनकञ्च कारागारे निगृह्य, हत्या काण्ड सहस्रैः पर-लोकं यन्त्रणामयं विधाय, धूम-ध्वान्तेनेव दुर्य्यश सङ्घातेनाऽऽत्मानमावृत्य च समासादितमस्य राज्यं स्वयं हस्तात् स्खलति। एतस्य नैजा अप्यमात्या बान्धवा सैनिका प्रकृतयश्च प्रत्यर्थिनः सवृत्ताः, सर्वेऽपि भारतीया एत हस्तावुद्यम्य शपन्ति। कोप ज्वलन-ज्वाला-धूम्याभिर्मशका इव परितो यवन वराका प्रनष्टा।

महाराष्ट्र-वीरा दिल्लीं विलुण्ठन्ति। भग्नोऽसौ दिल्लीश्वर-प्रासाद। क्वासौ वराकः कदर्य्योऽवरङ्गजीवः—इत्यस्य देहोऽपि नोपलभ्यते।

घृतधारेव = सर्पि प्रवाह इव। यन्त्रणामयम् = सन्टप्रायम्। कोपज्वलनज्वालानाम्, धूम्याभि = धूमसमूहैः।

प्रयास के बाद भी औरङ्गजेब उन्हें शान्त करने में समर्थ नहीं हो रहे हैं। स्वयम् तो रोते हैं, विलाप करते हैं और अत्यन्त पश्चात्ताप से सन्तप्त हो रहे हैं तथा उनके सहायक और घृत की धारा के समान उन ज्वालाओं को द्विगुणित बना रहे हैं, न कि शान्त कर पा रहे हैं। अपने सगे भाइयों के शिर काट कर, जरा से जर्जर जनक को कैद कर, हजारों हत्या काण्डों से अन्य लोगों को सङ्कट ग्रस्त बना कर एवम् धूमकृत अन्धकार के समान अपने दुर्यशः समूह से अपनी दृष्टि को आच्छन्न कर अर्जित उनका राज्य अपने आप उनके हाथों से जा रहा है। उनके अपने भी अमात्य, बान्धव, सैनिक तथा प्रजागण उनके शत्रु हो चुके हैं और सभी भारतीय लोग हाथ उठा कर उन्हें शाप दिया करते हैं। कोपानल की ज्वाला से उपस्थित धूम समूह से मच्छरों की तरह वे दुष्ट यवन चारो ओर विनष्ट प्राय हो हो चुके हैं।

महाराष्ट्र के वीर दिल्ली को लूट रहे हैं। दिल्लीश्वर का प्रासाद गिर चुका है। वह वराक (बेचारा) औरङ्गजेब कहाँ है ? उसका तो शरीर भी उपलब्ध नहीं होता।

आः ! किं स्वप्नमिव पश्यामि ? [ दीर्घं निश्वस्य ] विश्वम्भर ! विलक्षणस्ते महिमा। भगवन् ! चिरमुद्भ्रान्तोऽस्मि जालेष्वेतेषु। सम्प्रति दर्शयाऽऽत्मानम् ! [ उछ्वस्य ] दिष्ट्या दृष्टोऽसि ! अहो शोभा ! स्मृत एव सपदि समायातोऽसि। शारदाऽऽकाश-श्यामेषु त्वदाङ्गेषु तारका इव स्वेद बिन्दवो भासन्ते। गलित-कुसुमबन्धनाः कुञ्चित मेचक कचाः स्वेदार्द्रौ कपोलौ चुम्बन्ति। सौदामिनी वृन्द-विनिन्दकमिदं वसनमंसात् स्खलति। मौक्तिकहारा कुसुममालिकाश्च परस्परं सङ्ग्रथिताः। [ सगद्गदम् ] कन्दरान् प्रविश्य, कर्णौ सम्मुद्रय, चक्षुषी सम्मील्य, श्वासमवरुध्य, मनो नियम्य, योगिराजैरपि कथं कथमपि ध्येयं देहि ते पादाम्बुजम्।

जालेषु = इन्द्रजालायमानेषु जगत्सु। स्वप्नेष्विति यावत्। शारदाकाशवत्, श्यामेषु = नीलेषु, सौदामिनीवृन्दस्य = तडिद्गणस्य। विनिन्दकम् = विजेतृ। योगिराजैरपि कथं कथमपि, अविजितहृषीकाणामात्मात्मीयगणनिपष्टिमनसान्तु का कथा।

आः ! क्या मैं स्वप्न देख रहा हू ? [ दीर्घ श्वास लेकर ] विश्वम्भर ! तुम्हारी महिमा विचित्र है। भगवान् ! इन विभ्रम जालों में मैं चिरकाल से भ्रमण कर चुका। अब अपने दर्शन दो। [ लम्बी साँस लेकर ] सौभाग्य से तुम्हारे दर्शन हो चुके। अहो ! कैसी अद्भुत शोभा ! स्मरण करते ही यहाँ आ गए। शरदृतु के आकाश के समान साँवले तेरे शरीर में तारों के समान पसीने की बूँदें पभासित हो रही हैं। कुसुम बन्धन से रहित तेरे घुँघराले और काले बाल पसीने से भींगे तेरे कपोलों को चूम रहे हैं। बिजली के समूह की निन्दा करने मे समर्थ यह तेरा वस्त्र कन्धे से गिर रहा है। मोतियों के हार एवम् फूल की मालाएँ परस्पर सग्रथित हैं। [ गद्गद स्वर में ] पर्वत की कन्दराओं में जा कर, कान मूँद कर, आँखें बन्द कर, प्राणयाम कर एवम् मनोवृत्तियों को रोक कर योगिराजों द्वारा यथा-कथञ्चित् ध्यान करने योग्य अपने चरण कमल मुझे भी ( दर्शन करने के लिए ) दो।

[ दीर्घमुच्छ्वस्य मन्देन स्वरेण ] नारायण ! दामोदर ! विश्वम्भर ! जगदीश्वर ! हरे ! हरे ! [ ततो दौर्बल्यमस्य वाचमरुणत् ]।

विलोक्यैवमुपरतप्राय राजपुत्र रणधीरता धुरन्धरम्, आत्मान नियन्तुमपारयन् बालक इव महाराष्ट्रराज उच्चै रुरोद, निद्रा चास्य समभज्यत। चिर विचार-मग्न इव चोत्थाय भगवन्त सूर्यं प्रणनाम।

× × ×

अथ महाराष्ट्रदेशे गृहे गृहे जयध्वनिः, गृहे गृहे भेरीनादः, गृहे गृहे च शस्त्रपरिष्कार। गुञ्जा-तोलनेन खिन्नमिव हिरण्य

---

समभज्यत = भग्ना। सूर्यं प्रणनाम = प्रत्यूहवारणार्थं दुःस्वप्नफलनिवारणार्थञ्च भास्कर नमश्चक्रे। प्रातरभवदिदशि व्यङ्गयम्। प्रात कालदृष्टश्च स्वप्नो नानर्थको भवतीति गाधयन् सत्यघटनया साम्य प्रस्तौति। अत एव स्वाप्निकानामानि वास्तविकविषयघटनाया सन्निश्रितानीति वेदितव्यम्।

× × ×

गुञ्जाभिः = रत्तिकाभिः, "रत्ती" इति हिन्दी, तोलनेन। खिन्नमिव=

---

[ दीर्घ श्वास लेकर मन्द स्वर से ] नारायण ! दामोदर ! विश्वम्भर ! जगदीश्वर ! हरे हरे ! [ तत्पश्चात् दुर्बलता ने उनकी वाणी को अवरुद्ध कर दिया ]।

उपर्युक्त रीति से राजपूताने की रणधीरता के धुरन्धर जयपुर महाराज को मुर्दा सा देख कर अपने को नियन्त्रित करने में असमर्थ महाराष्ट्र राज बालक के समान जोरों से रोने लग गये और उनकी निद्रा टूट गई। चिर काल तक विचार मग्न की तरह बैठ कर उठे और सूर्य को प्रणाम किया।

× × ×

आज के दिन महाराष्ट्र देश में घर घर में विजयध्वनि हो रही थी। घर घर में डङ्के पर चोट पड़ रही थी और घर घर में शस्त्रों का परिष्कार हो रहा

गर्भस्य हरेरेकं रूपमिव हिरण्यमानन्दयितुमष्टोत्तरं शतं यावदात्मना सन्तोल्य, ब्राह्मणेभ्यो व्यतरन्महाराष्ट्रपतिः। तावदागत्य विजयध्वजेनोक्तम्—देवानां प्रताप-तपन-प्रभावेण मथुरापर्यन्तं सपत्ना यवना अपसारिताः। अकस्माच्च मोहाबत्तखानो दिल्लीश्वरस्यान्यतमः सेनानीर्महत्या सेनया समायातः, किन्तु "हन्यतां हन्यतां जित जितम्"—इति सद्द्वेडं सेनासमुद्रे सोत्फालं पतितेषु महाराष्ट्रकं वीरेषु:

दुःखितमिव। खेदकारणं दर्शयति-हरेरेकं रूपं हिरण्यमिति। परमपुरुषस्वरूपसुवर्णस्य नीचतमगुञ्जासाम्यप्रदर्शनात्खेदः, एतच्च प्राचीनेन कविना केनचिदपि प्रदर्शितम्—

"उचिताऽपि तुले! किं तुलयसि गुञ्जाफलैः कनकम्"

हिरण्यस्य भगवद्रूपत्वञ्च—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

इति मानवादिषु सर्वकारणीभूतस्य हैमत्वोक्त्या स्फुटमेव। विश्वपद्मोत-श्रुतमथ्राक्षरो प्रतिपादितमिति वेदितव्यम्। अष्टोत्तरशतं यावत्=अष्टोत्तरशतवारम्। आत्मना सन्तोल्य, तुलादानमिति कथ्यते, लोकैः सर्वेभ्यो वस्तुदानेभ्यः प्रशस्यञ्चेदम्।

मोहाबत्तखानः="मोहब्बत खाँ" इति ख्यातः।

था। हिरण्यगर्भ भगवान् के एक स्वरूप-सा मान कर एक रत्ती भर सोना तौलनेमें खिन्नता का अनुभव करते हुए महाराष्ट्रराजने एक सौ आठ ब्राह्मणों को प्रसन्न करने के लिए अपने परिमाण के समान परिमाण का (तुलादान) सुवर्ण दिया। उसी समय आकर विजयध्वज ने कहा—श्रीमान् के प्रताप सूर्य के प्रभाव से मथुरा तक तो आपके शत्रु यवन पहले ही हटा दिए गए थे। पश्चात् एकाएक दिल्लीश्वर का अन्यतम सेनापति मुहब्बत खाँ बहुत बड़ी सेना के साथ आया; किन्तु "मारो, मारो, जीत लिया, जीत लिया" यह कहते हुए महाराष्ट्र वीर जब ललकारते हुये उसके सेना समुद्र

ते प्रहरमात्र-युद्धेनैव विमुखा अभूवन । रिपूणां रक्त-चन्दन-क्षोदेनेव गाढ-रक्तेन समभ्यर्च्य, अलि-कुलाऽऽकुले कमलैरिव चैषां सश्मश्रुवदनैः समपूज्यत भगवती वसुन्धरा, हतशेषा भटम्मन्याश्च पलायिताः । विलक्षणोऽयमत्र भवत प्रभावो यद्—"विजयतां महाराष्ट्रराजः"—इति गर्जनं श्रुत्वैव पश्चादनवलोक्यन सर्वोऽपि यवन भटः पलायते ।

इत्याकर्ण्य सर्वेऽपि सभास्थाः खणखणित-खड्गा वीरास्तार-तरेण स्वरेण "जयति सनातनो धर्म्मः, विजयतां महाराष्ट्रपतिः"—इत्यादि सहर्षमवोचन् ।

समस्तेऽपि महाराष्ट्र देशे सर्वत्र समुत्थितं भेरी झर्झर पणवादि-नाद सहकृतं प्रतिध्वनि निवह सहस्र गुणितं जयध्वनि ध्वानममुं कन्दरि-कन्दरेष्वपि प्रविष्टं गृहीत-ब्रह्मचारि-गुरु वेषेण वीरधीरेन्द्र-

---

में कूद पड़े तब एक पहर के युद्ध से ही उसकी सेना विमुख हो गई। रक्तचन्दन के रस के समान शत्रुओं के गाढ़ रक्त से हम लोगों ने भगवती वसुन्धरा की अर्चना कर पीछे भ्रमरों से आकुल कमलों के समान उन यवनों के मूँछ युक्त मुखों से भी उसकी (भगवती वसुन्धरा की) पूजा की। मरे हुए वीरों से अतिरिक्त यवन पक्षीय वीरम्मन्य ( अपने को वीर मानने वाले ) भाग गए। श्रीमान् का प्रभाव ही ऐसा विलक्षण है कि "महाराष्ट्रराज की विजय हो" यह शब्द सुनते यवनवीर इस तरह जी जान से भागने लग जाते हैं कि पीछे भी उलटकर वे नहीं देखते।

यह सुनकर सभा मे उपस्थित सभी वीर अपने अपने खड्ग को खट-खटाते हुए उच्च स्वर से "सनातन धर्म की जय है, महाराष्ट्रराज की विजय हो" इत्यादि शब्द कहने लगे।

समस्त महाराष्ट्र देश में सब तरफ से उच्चारित, भेरी, झाँझ एव पणव आदि वाद्य यन्त्रों के नाद से समन्वित, प्रतिध्वनियों से सहस्रगुणित एवम् पर्वत की गुफा में भी प्रविष्ट उस विजयध्वनि को ब्रह्मचारिगुरु के वेष को

सिंहेन कुटीरे पूजितः स एव योगिराजोऽपि कथ कथमपि समाधिसन्धावर्थोपीत्।

श्रुत्वैव च कन्दराद् बहिरागत्य, शैलसानु समारुह्य, त्राटकी-त्रुटितावरोधया दृष्ट्या सुदूर पश्यन्, आपूर्वसमुद्रमापश्चिमसमुद्रमालङ्कमाविन्ध्यञ्च कुसुमितमिवोद्यानम्, प्रफुल्लकमल

स एव योगिराज =य आदिमनिश्वासे कथादौ स्मृत। योगिराजचरितेनैव समारम्भ तेनैव समापयन् उपक्रमोपसहारयोरैक्य प्रदर्शयति। समाधिसन्धौ = चित्तनिरोधविरामकाले। ध्वनिरय समाधिभङ्गश्च दैवाद्वा योगिना तत्कालस्य पूर्वत एव ज्ञातत्वाद्वा समकालमेव समभूदिति तत्त्वम्।

त्राटक्या=योगमुद्राविशेषेण,त्रुटितः,अवरोध =प्रतिबन्धो यस्या एवम्भूतया। चक्षुषो भ्रुवोरन्तरे स्थापन त्राटकी। तया चक्षुषोर्नियता शक्तिरप्रतिहता भवति। अत एव योगी सर्वं द्रष्टु शक्नोतीति तात्पर्यम्। आलङ्कम् = आसिंहलमिति तात्पर्यम्। वस्तुतस्तु लङ्कासिंहलयोर्भेद इति पूर्वं प्रतिपादितम्। राक्षसराजनगरी भूमध्यरेखाया विद्यमाना रामेश्वरकूलाच्छतयोजनदूरे स्थिता लङ्का रामरावणयुद्धसमाप्तावेव समुद्रेण जलप्लाविता, अधुनाऽपि जलमग्नैव तिष्ठति, तस्याश्च कियानशो दृष्टिगोचरो भवतीति वेदितव्यम्।

भवति चात्रेतिहासवचनम्

"सप्तमेऽहनि ता लङ्का समुद्रः प्लावयिष्यति।" इति।

धारण करने वाले, वीर वीरेन्द्रसिंह द्वारा अपनी कुटिया में पूजित उन योगिराज ने भी अपनी समाधियों के सन्धिक्षण में किसी न किसी तरहसुना।

सुनते ही कन्दरा से बाहर निकल कर, पर्वत की चोटी पर चढ़कर 'त्राटकी' नाम की योगमुद्रा से दूरदर्शन में होने वाले दृष्ट्यवरोध को मिनष्ट कर दूर तक देखने पर पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक लङ्का से विन्ध्याचल तक विस्तृत उद्यान, विकसित कमलों से परिपूर्ण सरोवर तथा दानववृन्द के,

मिव तडागम् , विध्वस्त दानववृन्दमिव चेन्द्रपुरम् , महाराष्ट्रराज्यं पश्यन् , बहुश आशिषो वदन् पुनः समाधिमाकलयितुं तमेव कन्दरं प्रविष्टः ।

प्रविशंश्च मन्दमन्दमेवमपठत्—

---

अस्मद्रचितपुराणमतदीपिकाया सुविशद निरूपितमिदम् ।

यतो धर्मस्ततो जय इति पद्यखण्ड विशदयन् धर्मपदस्य वास्तविक तत्त्वञ्च प्रदर्शयन् तमेव पद्यखण्ड विवर्द्धय पठति–यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जय इति ।

शेषाशेषवचोविमन्थनविधौ मन्थानदण्डायिता
यस्यौ यस्य निपीय पाणिनिगवीचिन्तापराः शाब्दिकाः ।
सोऽयं पण्डितपण्डितार्चितपदो नारायणान्तो हरः
ख्यातो भूवलयेऽधिकाशि निवसन् यस्य त्रिपाठी गुरुः ॥१॥
तर्के कर्कशतामुपागतवती यद्भारती भारते
गङ्गात्मत्वमुपागता विदलयत्यान्वीक्षिकीदूषणम् ।
सोऽयं श्रीशिवदत्तमिश्रविबुधो गौडाब्जिनीवल्लभो
य प्राबोधयदञ्जसा मतिमतामामोदावहं दर्शनम् ॥२॥
वैयासे गणितो ग्रहीयगणिते पारङ्गतः पण्डितः
श्रीमान् भागवतो बभूव जनको यस्यातिपौराणिकः ।
य प्रासूत सतीशिरोमणिरनल्पै राजिता सद्गुणै-
र्देवी दिव्यशरीरिणी भगवती कीर्त्या स्थिता भूतले ॥३॥

---

विध्वस से शान्त इन्द्रपुर ( स्वर्ग ) के समान महाराष्ट्र राज्य देखकर, बहुत आशीर्वाद देकर पुनः समाहित होने के लिये वे योगिराज उसी कन्दरा में घुस गये ।

घुसते समय मन्द मन्द स्वर से वे पढ़ रहे थे—"जहाँ धर्म है वहीं कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण हैं वहीं विजय है," और

यद्—"यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।"

"हिंस्रः स्वपापेन विहिंसित खलः

साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते"

इति महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचिते शिवराजविजये

द्वादशो निश्वासः।

इति तृतीयो विरामः।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः॥

---

पाण्डेयोत्तररामजीत्यभिहित सोऽय सिपाहोद्भवो

व्यासोक्ते शिवराजवीरविजये विद्वज्जनाङ्गीकृते।

सप्त्यङ्काङ्कवसुन्धरापरिमिते श्रीवैक्रमाब्दे वरे

पूर्णायामथ माघवेऽन्वगमयच्छ्रीवैजयन्तीमिमाम् ॥४॥

श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यां द्वादशनिश्वासविवरणं समाप्तम्।

इति तृतीयो विरामः।

---

"हत्यारा दुष्ट अपने ही पापों से विनष्ट हो जाता है एवम् समदृष्टि के प्रभाव से सज्जन स्वयम् भय से मुक्त हो जाते हैं।"

कृतिषु प्रथमः प्रथितो यः श्रीमानम्बिकादत्त.।
यस्तत्कृतिषु प्रथम प्रथितः शिवराजविजयोऽस्य ॥१॥
लक्ष्मीनाथ पितरमनिशं बुद्धिमत्याख्ययाऽम्बा
ख्याता नत्वा परममहिता मिश्रनारायणेन।
वाराणस्यामिह विरचिते राष्ट्रभाषाऽनुवादे
तार्तीयीकः परिणतिमगादन्तिमोऽस्य विरामः ॥२॥
पुनः पुन परिश्रयो मादृशामल्पमेधसाम्।
वाग्विस्तरे दुस्तरेऽस्मिन्, क्षन्तव्य स मनस्विभि ॥३॥
ऋतुनेत्राम्बरश्रोत्रमिते ( २०२६ ) विक्रमवत्सरे।
प्रपूरितोऽनुवादोऽय सज्जनेभ्य समर्प्यते ॥४॥

महाकवि अम्बिकादत्तव्यास विरचित
शिवराजविजय उपन्यास का बारहवाँ निश्वासानुवाद समाप्त हुआ।
तृतीय विराम समाप्त हुआ।

शुभमस्तु, भारते भातु भारती।

---